वर्ष : १९
अंक : १

- शिक्षा और जनशक्ति
- शिक्षा में लोकतंत्रीकरण
- परीक्षा—नकल की परीक्षा
- सिमेस्टर-प्रणाली : शिक्षा के क्षेत्र में नया कदम

अगस्त, १९७०

ग्रामस्वराज्य-कोष
में
दान दें

२ अक्तूबर १९७०

वर्धा में आचार्य विनोबा
को
ग्रामस्वराज्य-कोष का समर्पण

सम्पर्क स्थापित करें :
ग्रामस्वराज्य-कोष
६ राजघाट कालोनी
नयी दिल्ली-१

बगावत का यह साल

इस महीने से 'नयी तालीम' का नया साल शुरू हो रहा है। लगता है शिक्षा के क्षेत्र मे यूनेस्को की ओर से मनाया जानेवाला यह अन्तरराष्ट्रीय शिक्षा वर्ष, भारत मे बगावत का साल सिद्ध होगा। स्वतन्त्रता के इन तेईस वर्षों मे बुजुर्गों को शिक्षा मे कोई परिवर्तन न करते देख अब मैदान मे तरुण आ गये हैं। गत मई मे अहमदाबाद मे भारतीय तरुण शान्तिसेना ने प्रचलित शिक्षण-विरोधी मौन जुलूस निकाला। शिक्षा में क्रान्ति की माँग करने के लिए भारत मे पहली बार तरुणो ने आवाज उठायी। अपनी माँगो को जनता के सामने रखने के लिए उन्होने कुछ सूचना फलक तैयार किये थे–'आज का पाठ्यक्रम पानी मे डालो', 'बदलो आज की शिक्षा, नहीं तो मांगनी पडेगी भिक्षा,' 'शिक्षण और जीवन के बीच दीवार क्यों?' बालकों के कारखाने बद करो', 'परीक्षा-पद्धति बदलो' आदि-आदि। इन फलको को उठाये हुए तरुण अहमदाबाद की गरमी मे जलती हुई सडको पर मौन चलते रहे। और उन्हे देखने के लिए अहमदावाद की सडको पर लोगो की भीड लग गयी थी। यह शान्त तरुणो की विधायक आवाज थी, परन्तु बगावत की आवाज थी।

वर्ष : १९
अंक : १

अभी हाल मे तरुणो के एक दूसरे समूह ने, अपेक्षाकृत अधिक उग्र वर्ग ने, तालीम के खिलाफ बगावत का झण्डा उठाया है। वाराणसी मे 'युवजन सभा' के तरुणो ने शिक्षा समस्या-सम्मेलन का आयोजन किया था। शिक्षा बदलो आन्दोलन

का आरम्भ कहते है वे इसे। इस सम्मेलन मे मौजूदा शिक्षा-पद्धति के रोगी होने के सात कारण गिनाये गये हैं—

(१) सीमित शिक्षा, (२) रद्दी और पिछडे किस्म का पाठयक्रम, (३) अंग्रेजी माध्यम, (४) शिक्षितो को बेकार बनानेवाली शिक्षा, (५) नौकरशाही का ढांचा (६) अनैतिक परीक्षा प्रणाली, और (७) शिक्षा का महँगी होते जाना। इसका परिणाम यह हुआ है कि समाजवाद लाने के लिए कृतसकल्प देश मे, जिस शिक्षा को समता और सम्पन्नता का माध्यम होना चाहिए था, वह असमता और अन्याय का कारण बन गयी है। और इस समस्या को हल करने की रणनीति की व्याख्या करते हुए सम्मेलन ने घोषणा की है कि—"हमे तत्काल इस अपमानकारी शिक्षा चला रहे मत्री, उपकुलपति, आचार्य और सेठ का सम्मान बद करना चाहिए। मौजूदा कुव्यवस्था की जगह सुव्यवस्था लाने के लिए हमे भारी अव्यवस्था का दौर आरम्भ करना चाहिए। इसके लिए हम समाज के हर पीडित और दुखी हिस्से का सहकार जुटायेंगे।"

तरुण की इस आवाज मे अधिक गरमी है, स्वर मे निराशा है और क्षोभ अमर्यादित होकर व्यक्त हुआ है। शिक्षा के एक सनातन मूल्य विनय' की अवहेलना से ही लडाई प्रारम्भ करने की बात कही गयी है। और, अगर लडाई प्रारम्भ हुई तो इस युद्ध की बहिया मे भारतीय शिक्षा के अनेक शाश्वत मूल्य सदा के लिए बह जायेंगे। और, यह बहुत उचित नही होगा। इसीलिए इसी सम्मेलन मे बिना किसी निश्चित योजना और विकल्प के आदोलन आरम्भ न करने की बात भी कही गयी और यह भी आवाज उठी कि पहले चल रही पढाई स्थगित हो, तभी नयी पढाई का ब्योरा तय हो सकेगा। (बीस वर्ष पहले विनोबा ने भी यही कहा था।)

जो कुछ भी हो आज की वाहियात निकम्मी शिक्षा-पद्धति का खमियाजा सबसे अधिक तरुण को ही भुगतना पडता है। अत वह उठे, बोले, और बगावत करे और इस निष्ठा के साथ बगावत करे कि समाज को बदलने के लिए शिक्षा को बदलना होगा, तो ठीक ही होगा।

परन्तु उसके बगावत करने का ढंग विधायक होना चाहिए—

जो सडा-गला है उसे अवश्य काटकर निकाल दिया जाय, परन्तु जो नया लाना है उसका चित्र तो स्पष्ट रहे। यह ठीक है कि आज की शिक्षा एक दिन भी नहीं चलनी चाहिए—समाजवाद के लिए कृतसकल्प राष्ट्र मे तो एक क्षण के लिए भी नही चलनी चाहिए—और अगर देश के सारे स्कूल प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक के, कल ही दो साल के लिए बद कर दिये जायें तो देश का कोई भी काम क्षण भर के लिए भी नही रुकेगा। अत. विद्यार्थी सगठित रूप से इस शिक्षा के आलयों को बद करने का प्रयास करें। यह एक काम है, जो होना चाहिए।

दूसरा काम यह है कि जो विकल्प हमे रखना है—उसका रूप धूंधला न पडे, उस विकल्प का चित्र स्पष्ट रहे। और मैं, कहूँ कि वह विकल्प राष्ट्रपिता ने ३३ वर्ष पहले, नयी तालीम के रूप मे देश के सामने रखा था—'जिसे इस देश के नेताओ, विद्वानो और प्रशासको ने मिलकर खतम कर दिया', तो एक रचनात्मक सुझाव मानकर इसका स्वागत होना चाहिए।

शिक्षा के इस अन्तरराष्ट्रीय वर्ष मे हमारे तरुण यदि विधायक और अहिंसक ढग से प्रचलित शिक्षा-पद्धति को समाप्त करने और नयी तालीम को प्रतिस्थापित करने का सफल आन्दोलन करें तो नयी तालीम उनकी बगावत का स्वागत करेगी।

— यशोधर श्रीवास्तव

विशेष सूचना

प्रेस को असुविधा तथा बिजली की हड़ताल के कारण यह अंक १५ दिन विलम्ब से प्रकाशित हो रहा है। पाठक क्षमा करेंगे। —स०

शिक्षा में लोकतंत्रीकरण

श्रीनिवास आचार्लु

'शिक्षा में लोकतंत्रीकरण' से हमारा आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा शिक्षा लोकतांत्रिक हो जाती है।

संविधान के जिन विशेषज्ञों ने हमारे संविधान का प्रारूप बनाया उन्होंने भारत को विधिवत एक प्रभुता-सम्पन्न लोकतांत्रिक गणतंत्र के रूप में गठित करते हुए उसकी प्रस्तावना में सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, धारणा, विश्वास और उपासना की स्वतंत्रता, पद और अवसर की समानता, मातृभाव वृद्धि, हर व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता का आश्वासन दिया।

शिक्षा की व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि शिक्षा, सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता और भाईचारा के आदर्शों के माध्यम से लोकतंत्र की खोज है।

लोकतंत्र यह विश्वास करता है कि मानवजीवन महत्वपूर्ण है। इसमें एक व्यक्ति की भी गरिमा और उपयोगिता है। लोकतंत्र की दृष्टि में हर व्यक्ति साध्य है साधन नहीं। अतः शिक्षा की सार्थकता इस बात में है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को उसके विकास की ऊँचाई तक पहुँचाये जहाँ वह अपनी समस्त विशेषताओं का साक्षात्कार करके उनका भरपूर उपयोग कर सके।

हर व्यक्ति अपने आपमें एक स्वतंत्र ईकाई है। वह स्वतंत्र रूप में कार्य कर सकता है। वह स्वयं अपने भविष्य का निर्माण कर सकता है। वह स्वयं अपना जीने का तरीका तय कर सकता है। शिक्षा को चाहिए कि वह व्यक्ति की स्वायत्तता के इस विचार की जड़ों को मजबूत बनाये। इस विचार के अनुसार कार्य करनेवाला शिक्षक व्यक्ति के विकास में प्रेरक और सहयोगी के रूप में सामने आता है। इस सन्दर्भ में शिक्षा 'खाली पात्रों को भरनेवाली न होकर दीये को जलाने वाली' प्रक्रिया हो जाती है। चूँकि शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति और उसके विकास से है अतः शिक्षक को व्यक्ति के आंशिक व्यक्तित्व के बदले उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ध्यान रखना होगा। कोई व्यक्ति विभिन्न क्षमताओं और कुशलताओं का ढेर मात्र नहीं है, वह वस्तुतः अपने आपमें एक ईकाई है जिसमें उसकी सभी विशेषताएँ समायी हुई हैं। अतः उसकी समस्त कायिक, मानसिक, कलात्मक और आध्यात्मिक शक्तियाँ उसकी समग्रता का अंग हैं और शिक्षा का

उसके समग्र व्यक्तित्व से ही नाता है। व्यक्ति के विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं में से किसी एक पर अच्छी तरह ध्यान न दिया जाय तो व्यक्ति का शैक्षिक जागरण नहीं हो पाता। इस धारणा के अनुसार शिक्षण ऐसा होना चाहिए कि उसका पाठ्यक्रम पूरा करने पर व्यक्ति का बौद्धिक विकास, व्यावहारिक कुशलता, कलात्मक आनन्द प्राप्ति और नैतिक उत्थान का कार्य साथ-साथ होता रहे।

समाज-रचना में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा ऐसी समाज रचना करे जिसमें धनी और गरीब की खाई न हो, जो शोषण को बढ़ावा न दे और जो हर नागरिक को, जो सुखी और स्वस्थ होने का अवसर दे, यह लोकतान्त्रिक समाज-व्यवस्था की माँग है। समाज में करोड़ों लोग गरीबी, बीमारी, भूख और अज्ञान के बोझ से कराह रहे हो तो लोकतन्त्र एक दिखावा मात्र हो जाता है। सबको खाना मिले, सबको रहने के लिए आवास हो, सबको कुछ-न-कुछ काम करने का अवसर मिले और सबको जीवन की साधारण सुविधाएँ मिलें यह लोकतन्त्र का आवश्यक और सर्वाधिक महत्व का काम है। अतः लोकतन्त्र को इस दिशा में आवश्यक कदम उठाना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति तभी सम्भव है जब कि खेती और उद्योग शिक्षा के पाठ्यक्रम का अविभाज्य अंग बनें और विज्ञान तथा यन्त्रशास्त्र मानव के रहन-सहन और मानवीय उत्थान का दायित्व वहन करें। 'जब तक विश्व की प्रकट और दबी हुई शक्तियाँ केवल विनाश-कारी कार्यों में प्रयुक्त होती रहेंगी तब तक गरीबी समाप्त करने की दिशा में कोई सफलता नहीं मिलेगी'। श्री नारमन कजिन्स के ये वाक्य इस सन्दर्भ में सहज ही स्मरण हो जाते हैं।

व्यक्ति लोकतान्त्रिक समाज की एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट पहचान है। प्राचीन काल से ही हमारे देश में यह परम्परा रही है कि शिक्षा के मामले में राजनीति या किसी अन्य क्षेत्र का हस्तक्षेप नहीं होता था। शक्तिशाली शासक और सम्राट भी संत और कुलपतियों से विचार विमर्श करके उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते थे और उनकी बतायी गयी राय को बड़े आदर के साथ सुनते थे। प्राचीन काल के बुद्धिमान व्यक्ति राजनैतिक सत्ता के साथ अपनी बुद्धिमत्ता को जोड़ने के लिए तैयार नहीं होते थे। महान् शिक्षक और संत जब शासकों को कोई सलाह देते थे तो उससे अपने को हटा लेने की स्वतन्त्रता भी रखते थ। लोकतान्त्रिक समाज में शिक्षा को यह जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है कि वह स्वतन्त्रतापूर्वक विचार कर सके, स्वतन्त्रतापूर्वक योजना बनाकर उसे कार्यान्वित कर सके और अपने निर्धारित रास्ते पर स्वतन्त्रतापूर्वक आगे बढ़ सके। हमारी

शिक्षा-प्रणाली ने महान् विचारक, उच्चनेता, सृजनशील कलाकार, विचारक, संत और दार्शनिकों की एक बड़ी जमात नहीं तैयार की उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली में स्वातंत्र्य की चेतना का अभाव है। शिक्षा-प्रणाली में से स्वतंत्रता की चेतना के निर्वासित हो जाने का एक मुख्य परिणाम यह हुआ है कि शिक्षा के क्षेत्र में नव-चिंतन और मौलिकता के बदले एकरूपता कायम रखने और बनी-बनायी लीक पर चलने की परिपाटी प्रतिष्ठित हो गयी।

आज जिम्मेदार शिक्षाशास्त्री भी यह कहते हैं कि पाठ्यक्रम, पुस्तकों और परीक्षाओं के मामले में पूरे देश की हर स्तर की शिक्षा में एकरूपता होनी चाहिए। यह स्थिति अत्यंत दुखद है। इससे अधिक अशैक्षिक और अलोकतान्त्रिक बात कोई और नहीं हो सकती। कोई कारण नहीं है कि एक प्रदेश के भीतर भी पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और परीक्षाओं की उत्तम विविधता न होनी चाहिए।

स्वतंत्र व्यक्ति और समाजवादी समाज

लोकतंत्र में शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि उससे मानव की महत्ता और स्वतंत्रता का बीज अंकुरित होकर फले फूले। आमलोग सच्चाई की खोज में लगें, इसकी प्रेरणा और सहायता उन्हें शिक्षा द्वारा मिलनी चाहिए। यह बिलकुल ठीक ही कहा गया है कि शिक्षा की अन्तरात्मा किसी प्रश्न के उत्तर या निष्कर्ष में नहीं, खोज में नीहित है। शिक्षा की जो प्रणाली भिन्न राय रखनेवाले का मुँह बन्द कर देती है उसके दिन लद चुके हैं, वह अपने मूल्य और महत्व का विश्वास ही खो चुकी है। शिक्षकों, और साथ ही छात्रों को भी इस बात की योग्यता और क्षमता होनी चाहिए कि वे जिसे ठीक और सच्चा समझते हैं उसे प्रकट कर सकें। उनके मुँह पर ताला लगने का अर्थ होता है उनके दिमाग पर ताला लगना। जिस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है वह किसी विचार से डरता नहीं और सबसे सोचने के लिए तैयार रहता है। वह सच्ची बात करने में डर का अनुभव नहीं करता और अपने विश्वास के लिए हर प्रकार के परिणाम भुगतने की तैयारी रखता है। अगर लोकतन्त्र को ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो सच्चाई के रास्ते पर बिना भय के आगे बढ़ें तो तोता रटंत विश्वासों और निरंकुश पद्धतियों का शिक्षा में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। विचारों के अंधानुगमन से न तो जागरूक नागरिकता तक पहुँचा जा सकता है और न तो व्यक्तिगत दायित्व निभाने की प्रवृत्ति को ही पनपाया जा सकता है।

हमारे शिक्षक हाँ में हाँ मिलाते चलें तो वे हर्गिज ऊपर नहीं उठ सकेंगे। उनका उन्नयन तो सत्य-प्रेम और मौलिकता की भावना द्वारा ही होगा।

लोकतन्त्र एक जीवन-पद्धति है। यह जीवन-पद्धति अपने अनुयाइयों से यह अपेक्षा रखती है कि उनमें मात्र अपने अधिकार के लिए ही नहीं, बल्कि औरों के अधिकार के प्रति भी उतनी ही कद्र की भावना हो जितनी अपने अधिकार के प्रति। लोकतन्त्र के इस रुख के पीछे तात्विक आधार यह है कि नागरिक का धर्म जाति, धर्म, पद, जीविका, और समुदाय चाहे जो हो लेकिन लोकतन्त्र में उसकी स्वतंत्रता और अधिकार की हैसियत औरों के बराबर होगी। समाज में जिन साधनों से नागरिकों को सामाजिक मुक्ति और समानता का प्रादुर्भाव होता है उनमें शिक्षा का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। समानता का अर्थ एकरूपता नहीं है। अत व्यक्तिगत गुणों को समाप्त करनेवाली प्रवृत्ति को समानान्तर साधक नहीं माना जायेगा। शिक्षा में समानता को एक महत्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में स्वीकार करने का अर्थ यह कदापि नहीं है, जैसा कि प्राध्यापक टाउनी ने कहा है कि शिक्षा मनुष्य की क्षमताओं में स्वाभाविक रूप से पाये जानेवाले अन्तर को नहीं मानती। शिक्षा यदि मनुष्य में विद्यमान स्वाभाविक क्षमताओं को आँख से ओझल रखेगी तो व्यक्ति की विविधता और उसकी अपनी ही प्रेरणा से कार्यरत होने की प्रवृत्ति के बदले एक निर्जीव और उदासीनता की स्थिति उत्पन्न होगी। अत शिक्षा को ऐसे तरीकों का अवलम्बन करना है जिसमें मेधावी और मद बुद्धि धनी और गरीब, सबको विकास का समान अवसर मिले। शिक्षा को राज्य की ओर से प्राप्त होनेवाले पुरस्कार के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में प्रतिष्ठित होना है। जो शिक्षा-पद्धति धनी परिवार के लड़कों को शिक्षा प्राप्त करने की अधिक और उत्तम व्यवस्था प्रदान करती है और निर्धन परिवार के लड़कों के प्रति सौतेली माँ जैसा व्यवहार करती है वह निंदनीय है। किसी लड़के ने धनी घर में जन्म लिया या गरीब घर में इस कारण उसकी शिक्षा में कोई ऐसी बाधा नहीं मानी चाहिए कि उसका विकास न हो सके। वह ऊँचे विकास का अवसर पायेगा तो समाज की ऊँची सेवा करेगा। आज पब्लिक स्कूल या इसी प्रकार की जो दूसरी शान-शौकतवाली शिक्षण-संस्थाएँ हैं, उनके खिलाफ यह आरोप काफी महत्व रखता है कि वे सामाजिक उत्थान की प्रक्रिया से अलग अलग हैं और समाज में समानता के आदर्श से उनका कोई ताल-मेल नहीं है। इसलिए आज की स्थिति में यह आवश्यक है कि समाज की पिछड़ी जातियों, और निर्धन परिवार के

लड़कों को विशेष सुविधाएं और छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जायँ। चूँकि आज नगरों और महानगरों में रहनेवाले लोगों के लिए वरीयता के आधार पर राज्य द्वारा विशेष सुविधा-सम्पन्न शिक्षण-संस्थाएं चलायी जा रही है, अत मेरा सुझाव है कि अब सरकार प्रदेश के पिछड़े और गरीब लोगों की आबादीवाले क्षेत्रों में अच्छी इमारतों और शैक्षिक साधनों से सम्पन्न शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना को प्रथम वरीयता प्रदान करे। अब नगरों की इतनी आर्थिक समृद्धि हो रही है कि वे अपनी स्वयं ही चिंता कर सकते हैं।

लोकतांत्रिक समाज का विकास

अतः एक लोकतांत्रिक जीवन पद्धति का अर्थ होता है पारस्परिक सहिष्णुता, विश्वास, समझदारी, सहयोग और निरपेक्ष सेवा, और शिक्षा वह क्षेत्र है जहाँ नागरिक को विवेकयुक्त राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकात्मकता और अन्तर्राष्ट्रीय भावना की दीक्षा प्राप्त होती है। जो शिक्षा अपने लोगों के बीच में हमें अजनबी जैसा बना देती है वह निकम्मी है। 'चूँकि शिक्षा का उद्देश्य है मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, अत उसे दूसरों के कल्याण और दूसरों के जीवन की समृद्धि के प्रति चिंता और सहानुभूति पैदा करना चाहिए' यह डाक्टर टेलर का मत है। आज विद्यालय और महाविद्यालय सिर्फ ऐसी कक्षाएँ है जहाँ अध्यापकगण केवल पढ़ाते हैं। इसके बदले इन संस्थाओं को एक सामाजिक-समुदाय के रूप में रहना चाहिए। शैक्षिक संस्थाओं और महाविद्यालयों में सामुदायिक जीवन-पद्धति की शुरुआत करके, छात्रों में विद्यालय अथवा महा-विद्यालय की विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रति जिम्मेदारी की भावना को पनपाकर और शैक्षिक संस्था द्वारा पास-पड़ोस के लोगों की सामाजिक सेवा के कार्यक्रम हाथ में लेकर शिक्षण संस्था के सभी सम्बन्धित लोगों में चरित्र, आत्मानु-शासन, और सामाजिक दायित्व की भावना का उत्कर्ष किया जा सकता है। सिलसिलेवार सही शिक्षण, और दूसरों के प्रति सम्मान की भावना को जिसने हृदयंगम किया हो वह मन की क्षुद्रता, अंधभक्ति और अपनी संस्कृति को ऊँचा मानने की अहवृत्ति से अपना छुटकारा पाने में समर्थ हो जाता है। शिक्षा का दायित्व है कि वह छात्रों में विश्व-समाज के लिए एक ऐसी ललक पैदा करे जिससे दुनिया के हर हिस्से के लोगों में आपस में न्यायपूर्ण और मानवीय सम्बन्ध स्थापित होने *का मार्ग खुल जाय। दुनियाभर* के मनुष्य स्वस्थ और खुशहाल तभी हो सकते हैं जबकि वे आपसी-एकता की अनिवार्य आवश्यकता का अनुभव करने लगें।

लोकतंत्र को राजनैतिक दृष्टि से व्याख्या की जाय तो वह शिक्षा की दृष्टि से कोई बहुत आकर्षक साध्य नही रहता। लोकतंत्र शासन करने का एक ढंग है, जिसमें वोट, चुनाव और बहुमत-प्राप्त दल के शासन का विधान है। इस प्रकार के किसी लोकतांत्रिक राज्य में हमारी उतनी दिलचस्पी नही है। हमारी दिलचस्पी तो लोकतांत्रिक समाज में है जिसकी ऊपर की पंक्तियों में व्याख्या प्रस्तुत है।

—(मूल अंग्रेजी से)

बच्चों को नि शुल्क और अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जायगी, कार्यरूप देने का काम पिछड गया है। १९६८-६९ में ६ वर्ष से १४ वर्ष की आयुवाले बच्चो में से केवल ६३ प्रतिशत बच्चे ही स्कूलो में जा रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में पिछडे वर्गों और क्षेत्रीय असमानताओ की ओर ध्यान देना भी आवश्यक हो गया है।

चौथी योजना के दौरान प्रारम्भिक शिक्षा, जिसमें पिछडे वर्गों और लडकियों की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जायेगा, के प्रसार को प्राथमिकता दी जायेगी। शिक्षा के स्तरों, अनुसधान और प्रशिक्षण, भारतीय भाषाओं के विकास और पाठ्यपुस्तको के तैयार करने व छापने और उद्योगो की आवश्यकताओं के अनुरूप तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम तैयार करने की ओर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

स्कूल-पूर्व शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण-सामग्री, शिक्षको के प्रशिक्षण और शिक्षण-विधियों में सुधार करने पर बल दिया जायेगा।

प्रारम्भिक शिक्षा के प्रसार के लिए योजना में ८ करोड ६८ लाख छात्र-छात्राओ को स्कूलो में भर्ती करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, जिनमें से ३ करोड ४१ लाख ४० हजार लडकियाँ होंगी। चौथी योजना में ३८ लाख और छात्र-छात्राओं को माध्यमिक शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त कराने का लक्ष्य है। योजना के अन्त तक ७४ लाख ४० हजार लडके और २९ लाख ६० हजार लडकियाँ माध्यमिक स्तर के स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे होंगे। माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को बेहतर बनाने और शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने पर भी जोर दिया जायेगा।

चौथी योजना में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए ६ लाख ४४ हजार और माध्यमिक स्तर पर १ लाख ५३ हजार अध्यापकों की और जरूरत होगी। कुछ राज्यों को छोडकर शेष में आवश्यक अध्यापक चौथी योजना के दौरान प्रशिक्षित किये जाने की आशा है।

जहाँ तक उच्च शिक्षा का सम्बन्ध है, १० लाख अतिरिक्त छात्र-छात्राओं के लिए शिक्षण की सुविधाएँ जुटानी पडेंगी। इनमें से डेढ लाख को पत्राचार तथा साध्य कालेजों द्वारा शिक्षा की सुविधाएँ मिलेंगी। विज्ञानेतर विषयों के साथ साथ अन्य विषयों में भी शिक्षा की सुविधाएँ पत्राचार द्वारा उपलब्ध करायी जायेंगी।

स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अन्तर्शाला अनुसधान का स्तर ऊँचा करने की और चौथी योजना में बहुत ध्यान दिया जायेगा। समाज-विज्ञान में शोधकार्य

शिक्षा और जनशक्ति

शिक्षा के प्रसार के लिए चौथी योजना में ५५० करोड़ के वार्षिक गैरयोजना-व्यय के अतिरिक्त ८०२ करोड रुपये खर्च किये जायेंगे । कुल परिव्यय में से ५४३ करोड राज्यों के लिए, २८ करोड केन्द्र द्वारा चालू की गयी योजनाओं के लिए और २३१ करोड रुपये केन्द्रीय क्षेत्र के लिए रखे गये हैं। लगभग १५० करोड़ रुपये की राशि गैरसरकारी साधनों से प्राप्त होगी।

कोठारी-आयोग (१९६४-६६) की सिफारिशों के आधार पर ही शिक्षा-सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति तैयार की गयी है। चौथी योजना में इसीके अनुरूप ही शिक्षा-सम्बन्धी योजनाएँ तैयार की जायेंगी। चौथी योजना में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार को प्राथमिकता दी जायेगी। पिछडे क्षेत्रों और वर्गों तथा लड़कियों की शिक्षा की अधिक सुविधाएँ प्राप्त कराने पर और अधिक ध्यान दिया जायेगा। इसके अलावा वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा, शिक्षक-प्रशिक्षण स्नातकोत्तर शिक्षा तथा शोध-कार्य की सुविधाएँ बढाने, भारतीय भाषाओं के विकास, पुस्तक-प्रकाशन (विशेषकर पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन) और उद्योगों की आवश्यकताओं और स्वयं काम करने की प्रवृत्ति को बढावा देने के उद्देश्य से तकनीकी शिक्षा के समेकीकरण, युवक सेवाओं के विस्तार आदि की ओर भी ध्यान दिया जायेगा। थोडी लागत और अधिक लोगों को काम देने की संभावना-वाले कार्यों को भी बढ़ावा दिया जायेगा। शिक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रम सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर तैयार किये व चलाये जायेंगे।

पिछले ८ वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति का ब्योरा निम्न अनुसार है :

	१९६०-६१	१९६८-६९
स्कूलों में विद्यार्थी	४ करोड ५० लाख	७ करोड ६० लाख
कालेजों और वि० वि० में विद्यार्थी	७ लाख ४० हजार	१६ लाख ६० हजार०
इंजीनियरी और तकनीकी शिक्षा-संस्थानों में विद्यार्थी	४०,०००	७३,६००
शिक्षा पर कुल व्यय	३४४ करोड़	८५० करोड
व्यय में सरकार का भाग	६८ प्रतिशत	७५ प्रतिशत

शिक्षा के क्षेत्र में हुई महत्वपूर्ण प्रगति के बावजूद अभी तक संविधान में दिये गये इस निर्देश को कि १० वर्ष के अन्दर अन्दर १४ वर्ष से कम आयुवाले

बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जायगी, कार्यरूप देने का काम पिछड गया है। १९६८-६९ में ६ वर्ष से १४ वर्ष की आयुवाले बच्चों में से केवल ६३ प्रतिशत बच्चे ही स्कूलों में जा रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े वर्गों और क्षेत्रीय असमानताओं की ओर ध्यान देना भी आवश्यक हो गया है।

चौथी योजना के दौरान प्रारम्भिक शिक्षा, जिसमें पिछडे वर्गों और लड़कियों की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जायेगा, के प्रसार को प्राथमिकता दी जायेगी। शिक्षा के स्तरों, अनुसंधान और प्रशिक्षण, भारतीय भाषाओं के विकास और पाठ्यपुस्तकों के तैयार करने व छापने और उद्योगों की आवश्यकताओं के अनुरूप तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम तैयार करने की ओर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

स्कूल-पूर्व शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण-सामग्री, शिक्षकों के प्रशिक्षण और शिक्षण-विधियों में सुधार करने पर बल दिया जायेगा।

प्रारम्भिक शिक्षा के प्रसार के लिए योजना में ८ करोड ६८ लाख छात्र-छात्राओं को स्कूलों में भर्ती करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, जिनमें से ३ करोड़ ४१ लाख ४० हजार लड़कियाँ होंगी। चौथी योजना में ३८ लाख और छात्र-छात्राओं को माध्यमिक शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त कराने का लक्ष्य है। योजना के अन्त तक ७४ लाख ४० हजार लडके और २९ लाख ६० हजार लडकियाँ माध्यमिक स्तर के स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे होंगे। माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को बेहतर बनाने और शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने पर भी जोर दिया जायेगा।

चौथी योजना में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए ६ लाख ४४ हजार और माध्यमिक स्तर पर १ लाख ५३ हजार अध्यापकों की और जरूरत होगी। कुछ राज्यों को छोड़कर शेष में आवश्यक अध्यापक चौथी योजना के दौरान प्रशिक्षित किये जाने की आशा है।

जहाँ तक उच्च शिक्षा का सम्बन्ध है, १० लाख अतिरिक्त छात्र-छात्राओं के लिए शिक्षण की सुविधाएँ जुटानी पडेंगी। इनमें से डेढ लाख को पत्राचार तथा सान्ध्य कालेजों द्वारा शिक्षा की सुविधाएँ मिलेंगी। विज्ञानेतर विषयों के साथ-साथ अन्य विषयों में भी शिक्षा की सुविधाएँ पत्राचार द्वारा उपलब्ध करायी जायेंगी।

स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अन्तर्शाखा अनुसंधान का स्तर ऊँचा करने की ओर चौथी योजना में बहुत ध्यान दिया जायेगा। समाज-विज्ञान में शोधकार्य

को बढावा देने के उद्देश्य से एक राष्ट्रीय परिषद् का गठन किया जायेगा। स्नातकोत्तर शिक्षा को सुविधाओं के प्रसार के लिए ऐसे शहरों में, जहाँ बहुत-से कालेज हों और जहाँ विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होगी, विश्वविद्यालय खोले जायेंगे।

इसी तरह पिछडे वर्गों के विद्यार्थियों को मैट्रिक के बाद दी जानेवाली वृत्तियों की संख्या १९७३-७४ तक १ लाख ४५ हजार से बढकर २ लाख हो जायेगी।

अधिक उपज देनेवाली किस्में पैदा करनेवाले इलाकों के किसानों को कामचलाऊ पढना-लिखना सिखाने के कार्यक्रम का विस्तार किया जायेगा, ताकि १०० जिलों के १० लाख वयस्क किसान साक्षर हो सकें।

इसी प्रकार अन्तर्भाषायी अनुसंधान, अनुवादकों के प्रशिक्षण तथा भारतीय भाषाओं में उपयुक्त साहित्य के प्रकाशन को प्रोत्साहन देने के लिए भाषा-संस्थान स्थापित करने का प्रस्ताव है।

इसके साथ ही भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में पुस्तकों के प्रकाशन का काम भी विश्वविद्यालय अनुसंधान आयोग तथा राज्य सरकारों के सहयोग से हाथ में लिया जायेगा।

तकनीकी शिक्षा

चौथी योजना में कई नयी तकनीकी संस्थाएँ खोलने की योजना है। इन संस्थानों में उपाधि-स्तर पर २५ हजार और डिप्लोमा स्तर पर ४८ हजार ६०० विद्यार्थियों को दाखिला मिल सकेगा। योजना में पढ़ाई के स्तर और पाठ्यक्रम के सुधार पर विशेष बल दिया जायगा। वैमानिकी (एयरोनाटिक्स) समवाय विज्ञान (मैटीरियल साइंसेज) तथा औजार प्रौद्योगिक (इन्स्ट्रूमेंट टेक्नोलोजी) में उच्च अध्ययन के लिए केन्द्रों का विकास किया जायेगा।

जनशक्ति

उच्च शिक्षा का विकास मोटे तौर पर काम-धंधों और शिक्षित जनशक्ति के लिए अर्थव्यवस्था की भावी माँगों से सम्बद्ध होना चाहिए।

चौथी योजना के अंत तक देश में मेडिकल कालेजों की संख्या बढ़कर १०३ हो जायेगी, जिनमें १३ हजार विद्यार्थियों को दाखिला मिल सकेगा। इसी तरह डाक्टरों की संख्या भी बढ़कर १ लाख ३८ हजार हो जायेगी। १९६८-६९ में ५,२०० व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर था जबकि चौथी योजना के अंत तक ४,३०० व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर और इसके ५ साल बाद ३,७०० व्यक्तियों

के पीछे एक डाक्टर होगा। इसी प्रकार नर्सों तथा पैरामेडिकल कर्मचारियों (डाक्टरों के अलावा) की संख्या जो १९६८-६९ में १ लाख ७० हजार ५०० थी, योजना के अंत तक बढ़कर २ लाख ५९ हजार ६०० हो जायेगी।

१९६० ६१ में कृषि तथा पशु-चिकित्सा-स्नातकों की संख्या जो क्रमश १४ हजार तथा ५ हजार थी, १९७३-७४ तक बढकर क्रमश ७१ हजार तथा १५ हजार २०० हो जायेगी।

तीसरी योजना की अवधि में डिप्लोमा तथा उपाधि-पाठ्यक्रमों में दोनों स्तरों पर इन्जीनियरी शिक्षा को बडी मात्रा में काफी सुविधाएँ दी गयीं। १९६२ में चीनी आक्रमण के बावजूद १९,१०० उपाधिधारको तथा ३७ हजार ४०० डिप्लोमाधारको को तैयार करने का तीसरी योजना का जो प्रारम्भिक लक्ष्य था वह केवल पूरा ही नही हुआ बल्कि १९६३-६४ तक पहुँचते-पहुँचते इससे ज्यादा उपाधि डिप्लोमाधारक तैयार किये गये। यद्यपि १९६७-६८ में इजीनियरी पाठयक्रमों में छात्रो के दाखिले में गिरावट जरूर आयी और पूववर्ती वर्ष की अपेक्षा १९६८-६९ में ३० प्रतिशत कम विद्यार्थियो ने ही दाखिला लिया, लेकिन १९६०-६१ में स्नातक इजीनियरों की संख्या जहाँ ५८ हजार थी वहाँ वह १९६८-६९ में बढकर कुल १ लाख ३४ हजार है। इसी तरह जहाँ १९६०-६१ में ७५ हजार डिप्लोमाधारक थे वहाँ १९६८ ६९ में उनकी कुल संख्या बढकर १ लाख ६८ हजार हो गयी।

चौथी और पाँचवी योजनाओं की औसत आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए इजीनियरी में वर्तमान शिक्षा-सुविधाएँ पर्याप्त होगी। शुरू में समस्या केवल उपलब्ध कर्मचारियो को कारगर ढग से काम में लगाने तथा उनका बेहतर ढग से उपयोग करने की होगी।

वैज्ञानिक अनुसधान

चौथी योजना में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसधान परिपद के लिए ७४ करोड ६ लाख रुपये के अतिरिक्त गैरयोजना व्यय के साथ ५० करोड रुपये निर्धारित किये गये हैं। तीसरी योजना में इस सगठन के लिए २५ करोड ३० लाख रुपये के गैरयोजना व्यय के साथ ३३ करोड रुपये के परिव्यय की व्यवस्था की गयी थी।

परिपद अनुसधान और विकास के लिए ऐसी परियोजनाएँ चुनेगी जिनका औद्योगिक उत्पादन पर काफी तथा स्पष्ट प्रभाव पडे। अनुसधान शालाओं और उद्योगों में अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का भी प्रस्ताव है। तकनीकी

विज्ञान के विकास को जिसमें कांच और मिट्टी के बर्तन, अलौह धातुओं को जैसे मैगनेशियम और टाईटेनियम, मिश्रधातु (अलोय) पोलीमर्स और वायोकेमिकल्स शामिल हैं, प्राथमिता दी जायेगी।

चौथी योजना में जो परियोजनाएँ शामिल की गयी है उनमें राणा प्रताप सागर तथा कलपक्कम (प्रथम चरण) स्थित परमाणु शक्ति परियोजनाओं को पूरा करना भी शामिल है। इनमें बड़ी मात्रा में देश में बनी सामग्री का इस्तेमाल किया जायेगा और अपने इन्जीनियर ही इनके डिजाइन आदि तैयार करेंगे। एक दूसरी परियोजना है कलपक्कम में प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रियेक्टर के साथ भट्ठी अनुसंधान केन्द्र तथा कलकत्ते में एक वेरीएबल एनर्जी साइक्लोट्रौन खोलने की। कलपक्कम स्थित केन्द्र थोरियम के इस्तेमाल के सम्बन्ध में अनुसधान-कार्य करेगा।

ऋतु विज्ञान (मिट्रिओरॉलोजी) तथा विषुवद् वृत्तीय वैमानिकी (इक्वीटोरियल एयरोनामी) से सम्बन्धित अन्तरिक्ष अनुसंधान के लिए उन्नत राकेट विकसित किये जायेंगे। पूर्वी तट पर मध्यम ऊँचाईवाले अन्तरिक्ष अनुसधान के लिए राकेट छोड़ने का केन्द्र स्थापित करने का काम भी चालू किया जायेगा।

चौथी योजना में परमाणु शक्ति विभाग के लिए ८५ करोड़ १६ लाख रुपये के गैरयोजना व्यय के साथ ६१ करोड़ १८ लाख रुपये का व्यय निर्धारित करने का प्रस्ताव है।

राष्ट्रीय अनुसधान विकास निगम को औद्योगिक क्षेत्र में अनुसंधान-शालाओं में किये गये अनुसंधानों और नयी खोजी हुई परिष्कृत कार्यविधियों के उपयोग करने का काम सौंपा गया है। इस कार्य के लिए योजना में २ करोड़ रुपये की राशि रखी गयी है।

[चौथी पंचवर्षीय योजना, संक्षिप्त प्रारूप से]

सीमेस्टर-प्रणाली : शिक्षा के क्षेत्र में नया कदम

वेदप्रकाश सिंह

"जी हाँ, यह सत्य है कि हमने दिल्ली विश्वविद्यालय में 'सीमेस्टर'-प्रणाली अपनाने का फैसला कर लिया है—फैसला ही क्यों, १६७१ तक विश्वविद्यालय में यह प्रणाली सभी विषयों में लागू भी हो जायेगी। अमेरिका की सीमेस्टर-प्रणाली को हमने अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुरूप ढाल लिया है। एक प्रकार से, उसमें पुरानी और नवीन प्रणाली का सम्मिश्रण है। यहाँ की आवश्यकताओं और परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए ऐसा करना आवश्यक था।"

ये विचार दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के रीडर डा० रणधीर बहादुर जैन ने उस समय प्रकट किये जब उनसे दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा अमेरिका में प्रचलित, सीमेस्टर प्रणाली अपनाये जाने के बारे में पूछा गया।

हँसमुख स्वभाव के युवा डा० रणधीर जैन स्वयं उन गिने-चुने शिक्षाशास्त्रियों में से हैं, जो वर्तमान शिक्षा-पद्धति की कमियों से भली प्रकार परिचित हैं और उन त्रुटियों को दूर करने में छात्रों से अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

जब डा० जैन से मैंने पूछा कि दिल्ली विश्वविद्यालय ने सीमेस्टर-प्रणाली ही अपनाने का फैसला क्यों किया, तो उन्होंने बताया कि ऐसा करने के कई कारण हैं। सबसे पहला तो यह है कि हमारी शिक्षा प्रणाली पुरानी पड़ गयी है और समय की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती। इस युग में, जबकि जीवन के सभी क्षेत्रों में क्रान्ति हो रही है और मनुष्य के समक्ष ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी विद्या के क्षेत्र में असीम सम्भावनाओं के द्वार उन्मुक्त हो गये हैं, हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली को भी आधुनिक रूप देना अनिवार्य हो गया है ताकि वह समय की गति के साथ चल सके और उन आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति कर सके जो हम उससे करते हैं। सीमेस्टर-प्रणाली हमारी इन आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और शिक्षा-प्रणाली को आधुनिक बनाने के साथ साथ उसे उद्देश्य एवं पथ प्रदान करती है।

डा० जैन के अनुसार, सीमेस्टर प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं

सीमेस्टर-प्रणाली में समय की काफी बचत होती है। पुरानी शिक्षा-प्रणाली में छात्र को एक वर्ष में एक ही वार्षिक परीक्षा देनी पड़ती है और यदि वह

किसी कारणवश उसमें असफल हो जाता है तो उसे पुनः एक वर्ष तक उसी कक्षा में अध्ययन करना पडता है। दुबारा परीक्षा पास करने पर ही, वह दूसरी कक्षा में प्रवेश पा सकता है। लेकिन, सीमेस्टर-प्रणाली में यह दोष नहीं है। इसके अन्तर्गत एक वर्ष के अध्ययनक्रम को दो सीमेस्टरो में बाँट दिया गया है। पहला सीमेस्टर १५ जुलाई से प्रारम्भ होकर १४ नवम्बर तक चलता है तथा दूसरा १२ दिसम्बर से ३१ मार्च तक। प्रत्येक सीमेस्टर के लिए विषयों का निर्धारण कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, प्रथम सीमेस्टर में चार विषय पढ़ाये जाते है और दूसरे में ६ विषय। यदि प्रथम सीमेस्टर में अध्ययन करनेवाला छात्र किसी कारणवश 'सीमेस्टर' में निर्धारित सभी विषयो में उत्तीर्ण नहीं हो पाता तो उसे रुकना नहीं पडता। वह दूसरे सीमेस्टर में प्रवेश कर जाता है तथा दूसरे सीमेस्टर की पढाई करता हुआ प्रथम सीमेस्टर की कमी को भी पूरा कर सकता है। और, यदि छात्र चाहे कि वह प्रथम सीमेस्टर में शामिल किसी विषय की परीक्षा प्रथम सीमेस्टर में न देकर दूसरे सीमेस्टर में दे, तो वह ऐसा भी कर सकता है।

अध्ययन-क्रमों की विविधता सीमेस्टर-प्रणाली की एक दूसरी विशेषता है। डा० जैन ने बताया कि जहाँ हम पहले छात्रों को केवल कुछ विषय ही पढा सकते थे, वहाँ अब एक ही विषय में ५० से भी अधिक विविध अध्ययन-क्रमो की व्यवस्था करना तथा विभिन्न पेशों को दृष्टि में रखते हुए अध्ययन-क्रमों की रचना करना सम्भव हो गया है। अत इस प्रकार की शिक्षा में लेक्चरों और पाठ्य-पुस्तकों के बजाय गोष्ठियों, परिचर्चाओ, और अनुसन्धानात्मक अध्ययन पर काफी जोर दिया जाता है। उन्होने बताया कि अकेले राजनीतिविज्ञान में ५८ विभिन्न अध्ययन-क्रमों की व्यवस्था की गयी है।

डा० जैन ने बताया कि इस सीमेस्टर-प्रणाली की एक बडी विशेषता यह है कि जहाँ इसने छात्रों के बोझ को घटाया है और उनके समय की बचत की है, वहाँ उन्हें पूरे वर्ष अध्ययन करने के लिए विवश कर दिया है। अब तक जो प्रणाली प्रचलित थी उसके अन्तर्गत वार्षिक परीक्षा निकट आने पर छात्र एक महीने तक धुआँधार पढाई कर किसी प्रकार परीक्षा पास कर लेते थे। अब ऐसा करना सम्भव न होगा, क्योंकि अब उन्हें हर विषय की तैयारी करनी पड़ेगी, उससे सम्बन्धित परिचर्चाओं और गोष्ठियों में भाग लेना पडेगा, पुस्तकालयों में बैठकर गहन अध्ययन करना होगा। अब जो प्रश्न-पत्र उन्हें हल करने पड़ेंगे उसमें अधिकांश प्रश्न सैद्धान्तिक न होकर समस्यामूलक होंगे। इस प्रकार

के प्रश्नों को वह तभी हल कर पायेगा, जब वह उस विषय में गहन और व्यापक जानकारी रखता हो।

इस प्रणाली की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि छात्रों को ही नहीं, शिक्षकों को भी शिक्षण के ढंग में परिवर्तन करना पड़ेगा। अब शिक्षक का काम कक्षाओं में लेक्चर देने तक ही सीमित नहीं रहेगा। अब उसे छात्रों के लिए गोष्ठियों, परिचर्चाओं और समस्यामूलक शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ेगी और उनके मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना पड़ेगा। इसका फल यह होगा कि छात्रों और शिक्षकों में अधिक निकट और घनिष्ठ सम्बन्ध कायम होंगे।

यह पूछने पर कि क्या दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा अपनायी गयी सीमेस्टर-प्रणाली अमेरिका में प्रचलित सीमेस्टर-प्रणाली के ही ढंग की है, डा० जैन ने कहा कि अमेरिका की हुबहू नकल करना न तो हमारा उद्देश्य है और न ऐसा कर पाना हमारे लिए सम्भव है।

सबसे पहली बात तो यह है कि हमने अपने देश की आवश्यकताओं और परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए उसके स्वरूप में संशोधन और परिवर्तन कर लिये हैं। उदाहरणार्थ, अभी हमने छात्रों की योग्यता को आंकने के लिए अमेरिकी सीमेस्टर-प्रणाली में प्रचलित ढंग 'आन्तरिक मूल्यांकन' को नहीं अपनाया है। हम अब भी पुरानी प्रणाली की 'परीक्षा' द्वारा ही छात्रों की योग्यता को आँकते हैं। इसके अलावा और भी कई परिवर्तन किये गये हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हम चाह कर भी सीमेस्टर-प्रणाली को पूरी तरह नहीं अपना सकते, क्योंकि इसके लिए निम्नलिखित बातों का होना बहुत जरूरी है :

(१) प्रचुर परिमाण में पाठ्य-सामग्री की उपलब्धि तथा अच्छे पुस्तकालय,
(२) छात्रों और शिक्षकों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध,
(३) शिक्षकों की प्रचुरता,
(४) छात्रों और शिक्षकों में ताल मेल तथा शिक्षकों का तटस्थ दृष्टिकोण,
(५) गोष्ठियों, परिचर्चाओं और गहन अध्ययन की सुविधाएँ,

भारत में अभी इन सब चीजों का अभाव है, इसलिए सीमेस्टर-प्रणाली को उसके मूल रूप में लागू नहीं किया जा सकता।

सीमेस्टर प्रणाली के प्रति छात्रों में व्याप्त असन्तोष की चर्चा करने पर डा० जैन ने कहा कि इस सम्बन्ध में छात्रों का भय निर्मूल है। लेकिन, इसके

लिए कुछ हद तक हम भी जिम्मेदार हैं, क्योंकि हम अब तक छात्रों को सोमेस्टर-प्रणाली और उसकी अच्छाइयों से परिचित नहीं करा पाये हैं। मेरा यह दृढ़ मत है कि सीमेस्टर प्रणाली छात्रों के लिए हितकर है और वह निश्चय ही सफल होगी। वह शिक्षा का आधुनिकीकरण करने के साथ-साथ छात्रों में आत्म-विश्वास पैदा करने तथा विभिन्न पेशों के अनुकूल शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से बहुत ही कारगर है।

—'अमेरिकन रिपोर्टर' से

शिक्षा का स्वरूप एवं प्रशासन

डा० मगल प्रसाद अग्रवाल

आज गणतत्र को गुणतत्र में (अवगुणतत्र में नही) रूपान्तरित करने की तीव्र आवश्यकता है। वस्तुत देश की सुरक्षा, एकता, अनैतिकता और विकास की सभी समस्याओ के केन्द्रविन्दु में—मूल में मनुष्य है। मनुष्य बिगडा तो पूरा देश बिगडा और मनुष्य बना तो पूरा देश बना। मनुष्य ही सृष्टि का मुकुट है। अत वास्तविक रूप से आज मनुष्य, स्वावलम्बी मनुष्य, चरित्रवान मनुष्य, बनाने की ही तीव्र आवश्यकता है। मनुष्य बनाने या मनुष्यता का विकास करने के सबसे अधिक कठिन कार्य का प्रमुख एव सबल माध्यम है शिक्षा—सविधिक शिक्षा एव अविधिक शिक्षा। किन्तु अपने देश की वर्तमान शिक्षा ऐसी है कि आज घर के चिराग से ही घर में आग लग रही है। आज हमारे अधिकाश बालक शरीर, मस्तिष्क, आत्मा, ज्ञान, कौशल, रुचि तथा विचार एव व्यवहार सबमें दीन हीन-दुर्बल है। इसमें आश्चर्य नही। यह हम सब अभिभावकों, प्रशासको एव शिक्षकों की कृतियो या विकृतियों का परिणाम है। कोई भी बालक या बालिका जन्म या स्वभाव से विध्वसक या पापात्मा नही है। स्पष्टतया हम अपने चिराग एव आत्मस्वरूप बच्चो को सुविकसित करने हेतु सविधिक एव अविधिक रूप से जो शिक्षा देते हैं उससे आज बालक का विकास कम और विनाश अधिक हो रहा है। सक्षेपत वर्तमान शिक्षा की गुणात्मक दृष्टि से ज्वलन्त समस्याएँ निम्नवत हैं—

१—पढाई के बाद बेकारी।

२—आतक या डडे के बल पर पढाई के प्रमाण-पत्र एव उपाधियों की प्राप्ति।

३—चलचित्रों के अभिशाप से फैशन, कामुकता और अपराध प्रवृत्ति की प्रबलता।

शिक्षा के ये प्राणघातक कैन्सर हैं। ये ऐसे दोष हैं जैसे किसी मनुष्य के सब अग प्रत्यग हो, परन्तु उसकी साँस नही चलती हो। अब क्या चीज बची ? लाश। वस्तुत आज शिक्षा निष्प्राण है। अब चाहे जितने करोड रुपये खर्च करके इस शिक्षारूपी लाश का ढाँचा बनाये रहें।

माता-पिता के कर्तव्य

शिक्षा को अब सजीवनी चाहिए और यह तभी मिलेगी जब अपने मेरुदण्ड

लक्ष्मण के लिए राम और हनुमान जैसी आन्तरिक तड़पन हो। यह तड़पन अपने प्राणप्रिय बालक के लिए यदि माता-पिता में नहीं हुई तो दुनिया में किसीको नहीं हो सकती। बालक हमेशा दिन के १८ घन्टे और २० घन्टे अपने माता-पिता या अभिभावक के पास ही तो रहता हैं। इसलिए यदि शिक्षा को प्राणवान बनाना है तो सर्वोच्च प्राथमिकता में यह जरूरी है कि माता-पिता अपने बच्चों का जिस प्रकार रक्षण और पोषण यथाशक्ति करते हैं उसी प्रकार उसके शिक्षण के लिए भी वे सतत जागरूक रहें और प्रतिदिन १ घन्टा या आधा घन्टा का समय इस कार्य हेतु दें। हम माता-पिता आज पूरे देश और दुनिया की क्षणिक खबरों को जानने की कोशिश करते हैं और उस पर बहस करते हैं लेकिन दुर्भाग्य है कि हमें अपने प्राणप्रिय बच्चे की पढाई और उसकी आदतों को जानने-समझने के लिए कोई समय नहीं, ख्याल नहीं, शक्ति नहीं। सच तो यह है कि हममें बाल-चेतना का भयंकर अभाव है। आज भी पूर्व माध्यमिक और माध्यमिक शिक्षा को देश के केवल १०-१५ प्रतिशत तक बालक-बालिकाएँ ही प्राप्त कर रहे हैं। उच्च शिक्षा तो प्राय. ५ प्रतिशत युवक ही प्राप्त करते हैं। यह भी बहुत अशों तक बाल-चेतना के अभाव का ही परिचायक है। अतः यदि देश के केवल ५ प्रतिशत अभिभावक ही अपने बच्चे को शिक्षा के बारे में जागरूक हो जायें, बच्चे से घर में खेती, उद्योग, व्यापार या सेवा का कार्य लें, अवसर विद्यालय जायें, अपने बालक की आदतों, उसके दैनन्दिन व्यवहारों और उसके साथियों को जानने-समझने एव सुधारने की चेष्टा करें तो निश्चय ही शिक्षा का मुरझाया हुआ कल्पवृक्ष पुन. पल्लवित होगा। इसके लिए जरूरी है कि हम अपने से ही प्रारम्भ करें और अपने सम्पर्क में आनेवाले अभिभावकों को इस ओर उत्प्रेरित करें।

शिक्षा-संहिता बने

इस दिशा में अभिभावकों के अतिरिक्त शासन और समाज को भी अब शास्त्राग्रही नहीं मूल्याग्रही प्रयत्न करने होंगे और सर्वप्रथम प्रशासन को स्वयं अपना शुद्धिकरण करना होगा। वर्तमान काल में अच्छी शिक्षा के लिए स्वच्छ एवं शुद्ध प्रशासन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। श्री रामचन्द्रन् समिति ने एक वाक्य में अपना निष्कर्ष लिखा—"हमें अच्छा प्रशासन दीजिये, हम आपको अच्छी शिक्षा (बुनियादी) देंगे।" प्रस्तुत लेखक द्वारा सम्पादित शोध कार्य का भी यह एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष है। जनतंत्र की वर्तमान अवस्था एवं स्वरूप में शुद्धीकरण अनुभव से कठिन प्रतीत होता है। अतः श्रेयस्कर होगा यदि

न्याय-विभाग के समान शिक्षा-विभाग को भी स्वतंत्र कर दिया जाय जिससे राजनीतिक हस्तक्षेप और दवाव से शिक्षा मुक्त हो सके और जनतंत्र के आधार-स्वरूप मानसिक स्वातंत्र्य के लिए निष्पक्ष हो सके। यहाँ इसका उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि शासन स्वयं शिक्षा का भार पंचायतों को सौंपकर मुक्त होना चाहता है और यह हस्तांतरण शीघ्र ही पंचायतराज के अन्दर हो रहा है। तब इससे निश्चित रूप में यह अनेकानेक गुना श्रेष्ठ होगा कि शिक्षा-विभाग को, न्यूनतम रूप से प्रारम्भिक शिक्षा-विभाग को, न्याय-विभाग के समान स्वतंत्र कर दिया जाय। आज की पंचायतें स्पष्टतया निष्पक्ष, सत्यनिष्ठ और वैचारिक तथा आर्थिक दृष्टि से समर्थ नहीं हैं। किन्हीं कारणों से यदि यह स्वीकार्य न हो, तब वस्तुनिष्ठ मापदण्डों पर अत्यन्त सुस्पष्ट और सुविस्तृत रूप से 'शिक्षा संहिता' निर्मित की जाय और इसके आधार पर न्यायालयों में प्रत्येक शिक्षक, शिक्षार्थी और अभिभावक को न्याय पाने हेतु जाना संभव हो। प्रस्तुत लेखक ने शिक्षा-संहिता समिति के लैखिक अनुरोध पर समूचे प्रदेश के लिए स्वयं शिक्षा-संहिता बनाकर तैयार किया। किन्तु अभी तक यह संहिता निर्णीत नहीं की जा सकी। यह कार्य गुणात्मक शिक्षा हेतु तत्काल पूर्ण किया जाना चाहिए।

द्वितीय—स्वच्छ प्रशासन के लिए जरूरी है कि शिक्षा की अनेकानेक समितियों में राजनीतिक महानुभावों को न रखा जाय। इनमें शिक्षा-विशेषज्ञ, विषय-विशेषज्ञ, मनोवैज्ञानिक, समाज-शास्त्री, शिक्षक एवं सर्वाधिक अंक प्राप्त करनेवाले छात्र रखे जायें।

शिक्षा में सुधार के सुझाव

प्रशासन की व्यवस्था उक्त प्रकार से करते हुए शिक्षा की वर्तमान उल्लिखित समस्याओं के निराकरण-हेतु निम्नांकित प्रकार से प्रयत्न किये जायें—

१—शिक्षा के अनेक प्राप्य लक्ष्यों में एक लक्ष्य प्रमुखता के साथ यह स्वीकार किया जाय कि कम-से-कम १० या ११ वर्षों की माध्यमिक शिक्षा प्राप्त शिक्षार्थी स्वावलम्बी होगा। शिक्षार्थी आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी तो हो, साथ ही मानसिक और आत्मिक दृष्टि से भी वह स्वावलम्बी होगा। अर्थात् शिक्षार्थी अपने पेट, मस्तिष्क और आत्मा की भूख को तृप्त करने के लिए आवश्यक खुराक स्वयं के सद्प्रयत्नों से अर्जित कर सकेगा।

२—इस लक्ष्य को सेवाग्राम, गांधीग्राम एवं खादीग्राम आदि अनेक संस्थानों ने वर्तमान काल में भी प्राप्त किया है। अतः यदि एक स्थान में हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलाने से पानी बना है तो वह अन्यत्र भी बनेगा। तदनुसार

इस स्वावलम्बन के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु यह सुझाव है कि हाफ-हाफ स्कूल चलाये जायें। इसका अर्थ है कि छात्र प्रतिदिन ३ घन्टे उत्पादक एवं शिक्षाप्रद कार्य करें और ३ घन्टे विषयों का अध्ययन करें। उत्पादक कार्यों में स्वावलम्बन हेतु कृषि, बागवानी, कताई-बुनाई एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अन्य शिक्षा-प्रद उत्पादक उद्योग हो सकते हैं। यदि विद्यालय में इन उद्योगों की व्यवस्था एवं सञ्चालन सम्भव नहीं हो तो छात्रों को अपने अपने माता-पिता या अभिभावक के साथ ही अपने परिवार की कृषि, उद्योग, व्यापार या अन्य सेवा-कार्य करने दिया जाय। छात्र यह कार्य व्यक्तिगत रूप से या टोलियों में कर सकते हैं। सम्बन्धित शिक्षक इनके कार्यों का निरीक्षण करें, रेकार्ड रखें तथा अभिभावक के हस्ताक्षर प्राप्त करें। इस प्रकार छात्र जो उत्पादन करें वह सब उनके अभिभावक का हो, किन्तु उत्पादित अंश में से चौथाई या छठा हिस्सा अथवा एक न्यूनतम निर्धारित राशि जो कम हो, शिक्षण-शुल्क के रूप में जमा किया जाय।

यहाँ पूज्य महात्मा गांधी का एक निर्देश उल्लेखनीय है—

"मैं मंत्रियों से कहूँगा कि वे खैराती तालीम देकर बच्चों को असहाय और अपाहिज बनायेंगे जबकि उसकी तालीम के लिए उनसे मेहनत कराकर उन्हें वे बहादुर और आत्मविश्वासी बनायेंगे।"

३—शिक्षा के पाठ्यक्रम में मानवीय गुणों का शिक्षण भी विधिवत् रखा जाय—जैसे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, अस्तेय, अस्वाद, अभय, प्रेम, परोपकार, मित्रता, बन्धुता, विनम्रता, सेवा आदि। इन गुणों के अनुसार छात्र आचरण करें और इनके परीक्षण हेतु 'नान-पेपर-पेन्सिल-टेस्ट' की पद्धति अपनायी जाय।

४—शिक्षा का पर्यवेक्षण समग्र, वस्तुनिष्ठ, जनतान्त्रिक और सहकारी ढंग से अधिकाधिक आवृत्तियों में किया जाय। हमारी पीढ़ी का निर्माण कक्षाओं में हो रहा है और कक्षाओं या कक्षा शिक्षण के सुधार की नींव में है पर्यवेक्षण। शिक्षकों की दक्षता का मापन एवं मूल्यांकन प्रक्रिया तथा परिणाम के वस्तुनिष्ठ मापदण्डों पर स्वयं शिक्षकों तथा छात्रों के हित में किया जाय, और शिक्षक-दक्षता की वृद्धि की जाय। प्रस्तुत लेखक ने दक्षता-उपकरणों की रचना प्रयोग एवं सप्रामाणिकता आदि का कार्य पूर्ण किया है। अतः दक्षता-उपकरणों का अभाव अब नहीं है।

५—प्रत्येक विद्यालय के साथ एक विद्यालय-विकास-समिति का गठन किया जाय। इसमें प्रधानाध्यापक, प्राचार्य, एक से पाँच तक शिक्षक (दक्ष) तथा

प्रत्येक कक्षा से एक-एक सर्वाधिक अंक प्राप्त करनेवाले छात्र और ३ से ५ तक ऐसे अभिभावक रखे जायें जो किसी राजनीतिक दल के सदस्य न हो।

इस समिति के निर्णयों को पर्याप्त महत्व दिया जाय।

६—शिक्षकों की सुरक्षा हेतु विशेषतया परीक्षा-अवधि में प्रबन्ध किया जाय। यदि किसी शिक्षक को चोट पहुँचे या उसकी हत्या हो तो उसके परिवार के पोषण हेतु समुचित प्रबन्ध किया जाय और अपराधियों को सख्ती के साथ दण्डित किया जाय। किसी भी समय शिक्षक की रिपोर्ट पर, सुरक्षात्मक प्रभाव पूर्ण कार्यवाही तत्काल हो की जाय। विद्यालय या महाविद्यालय में १% या २% ऐसे जो सबसे अधिक हिंसक छात्र हैं उनकी सूची रखी जाय और उन पर विशेष निगाह रखी जाय।

७—उच्च शिक्षा के महाविद्यालय (मेडिकल व ऐसे ही अन्य व्यावसायिक महाविद्यालयों के अतिरिक्त) प्रात कालीन ७ से १० या सायकालीन ६ से ६ रखे जायें। अधिकाधिक शिक्षण पत्राचार पाठ्यक्रम के द्वारा हो, जिससे शिक्षार्थी अपनी जीविकोपार्जन करते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें और अपने-अपने स्थान में रहकर शिक्षा प्राप्त कर सकें। साथ ही नियमित महाविद्यालयों में केवल प्रतिभावान एव उपप्रतिभावान सामान्य से अधिक बुद्धि स्तर के छात्रों को ही प्रवेश दिया जाय। अवकाश विद्यालयो एव महाविद्यालयों म न्यूनतम हो। यह शिक्षा वस्तुत स्वावलम्बन के द्वारा होनी चाहिए।

८—चलचित्रों में इस प्रकार सुधार किया जाय कि उसमें योनि-उत्प्रेरकता तथा अपराध-प्रवृत्ति का पोषण न रहे। फिल्मों का नियमन भारतीय संस्कृति, सदभिरुचि तथा सामान्य चरित्र पर पड़नेवाले प्रभाव की दृष्टि से किया जाय।

आज की शिक्षा का एक बहुत बड़ा अभाव यह भी है कि सिद्धान्त को व्यवहार में हम रूपान्तरित नही कर पाते। अत यदि इस अभाव से मुक्त होकर उक्त सुझावों को हम अभिभावकों ने ही अपने प्राणप्रिय बच्चों के हित में और अपने हित में कार्यान्वित किया तो मनुष्यता का विकास होगा, अनुकूल जनमत बनेगा और 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' का मार्ग प्रशस्त होगा।

परीक्षा—नकल की परीक्षा

वंशीधर श्रीवास्तव

परीक्षा प्रारम्भ हुई। लडके मेज थपथपाने लगे—कहा, "हम शांतिपूर्वक परीक्षा देने को तैयार हैं, परन्तु परीक्षा देने का हमारा ढंग अपना होगा। इसमें किसी प्रकार का अवरोध हम नहीं चाहते।" उन्होंने कहा, "हर कालेज में यही ढंग चल रहा है। हम चाहते है, यहाँ विधिवत चले। हमें भी नकल करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। ऐसा नही हुआ तो इसका परिणाम भयकर होगा।" प्राचार्य परीक्षा-भवन से बाहर चले गये। इन्वीजिलेटर खामोश बैठे रहे। छात्रों ने मनमानी की। यह एक विश्वविद्यालय की परीक्षा में हुआ।

दूसरी घटना इसी वर्ष ४ अप्रैल की है। मैनपुरी (उ० प्र०) के एक कालेज के उपप्राचार्य ने कुछ परीक्षार्थियों को परीक्षा में नकल करते हुए पकडा और उनकी कापियाँ छीन ली। परीक्षार्थियो ने परीक्षा-भवन से बाहर जाते हुए कहा, "इसका भयकर परिणाम होगा।" और, दूसरे दिन उपप्राचार्य पर लाठियों और चाकुओं से आक्रमण किया गया। उन्हें गंभीर चोटें आयी और अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गयी।

मुरादाबाद (उ० प्र०) के एक कालेज में एक प्राध्यापक ने एक परीक्षार्थी को परीक्षा-भवन में नकल करते हुए पकडा। साथी परीक्षार्थियों ने उनको धमकी दी। किसी कक्षा की ओर गोली मारी गयी। गोली प्राध्यापक के सिर में लगी और उनको अस्पताल पहुँचाया गया।

जौनपुर (उ० प्र०) में कुछ परीक्षार्थियों को नकल करने के आरोप में परीक्षा-भवन से निकाल दिया गया तो विद्यार्थियों ने प्रदर्शन किया और कालेज में आग लगा दी। उत्तर प्रदेश के ही आजमगढ जिले में एक परीक्षा-केन्द्र पर एक विद्यार्थी एक भयकर अलसेशियन कुत्ते को लेकर परीक्षा देने आया। कुत्ता परीक्षार्थी की मेज के नीचे बैठा रहा और उसने निरीक्षकों को अपने मालिक के नजदीक नही आने दिया। परीक्षार्थी मजे से पाठ्यपुस्तकों और नोटों से नकल करता रहा। कुत्ता छुरे से अधिक कारगर साबित हुआ। दूसरे दिन वह फिर कुत्ता लेकर आया। उस दिन जाने-अनजाने कुछ निरीक्षक उसकी मेज के पास पहुँच गये। कुत्ता उन पर झपटा। कुछ तो जान बचाकर भागे, परन्तु एक पकड गया। कुत्ते ने उसके कपडे फाड डाले। बडी कठिनाई से कुत्ते को परीक्षा-भवन से बाहर निकाला जा सका।

हाजीपुर (विहार) के हाईस्कूल के एक परीक्षार्थी ने पकडे जाने पर छुरे से निरीक्षक को घायल कर दिया। एक साथी परीक्षार्थी ने अध्यापक को बचाने की कोशिश की तो उसे भी छुरे मारे। विहार का ही समाचार है। सकरा नाम के एक केन्द्र पर लगभग ४०० परीक्षार्थियो की नकल में सहायता के लिए उनके लगभग २५०० अभिभावक आये। निरीक्षकों ने सहायता की और परीक्षार्थियो ने जी खोलकर नकल की। एक दूसरे केन्द्र में परीक्षार्थी अपने अभिभावकों या मित्रों के साथ पहुँचे, जिन्होंने नकल करने में उनकी मदद की। निरीक्षक या लोग टुकुर-टुकुर देखते रहे या उन्होंने सक्रिय सहायता की। बिहार के ही एक दूसरे केन्द्र में अभिभावको ने परीक्षा-हाल में घूम घूमकर परीक्षार्थियो की नकल करने में सहायता की। कई केन्द्रों में लाउडस्पीकरो का प्रयोग भी किया गया। लाउड-स्पीकर बाहर लगाये गये। पर्चे बाहर पहुँचा दिये गये। बाहर से प्रश्नो के उत्तर बोले गये और परीक्षार्थियो ने उन्हें अपनी उत्तरपुस्तिकाओ में अंकित किया।

नागपुर विश्वविद्यालय की विभिन्न परीक्षाओ में १६० परीक्षार्थियों को नकल करते हुए पकडा गया। उसमें एक के पास लम्बा रामपुरी चाकू था—यह दूसरी बात है कि उसे चाकू के प्रयोग करने का या तो साहस नही हुआ या मौका नहीं मिला। सतना (मध्यप्रदेश) में कुछ छात्रो को जब नकल करते हुए पकडा गया तो उन्होंने नकल को अपना जन्मसिद्ध अधिकार बताया और परीक्षा भवन से बाहर जाने से इन्कार किया तो पुलिस बुलायी गयी। पुलिस और विद्यार्थियो में मुठभेड हुई। पुलिस ने छात्रों की भीड को तितर बितर तो कर दिया, परन्तु बाहर फिर एकत्र होकर विद्यार्थियों ने रेलवे स्टेशन पर पथराव किया और टेलीफोन एक्सचेंज को नुकसान पहुँचाया।

गोहाटी (असम) का समाचार है कि गणित के पर्चे में नकल करते हुए दो परीक्षार्थियो को परीक्षाभवन से निकाल दिया गया। इस पर एक हजार से अधिक युवकों ने एक परीक्षा-केन्द्र पर आक्रमण किया और परीक्षा-पत्रों और उत्तर-पुस्तकों को फाडकर फेंक दिया। पत्थरबाजी में कई अध्यापक और अध्यापि-काएँ घायल हुई। गनीमत है किसीकी जान नहीं गयी।

इसी प्रकार कलकत्ता (बंगाल) में एक केन्द्र के परीक्षार्थियो ने परीक्षा देने से इन्कार किया और दूसरे केन्द्रो पर आक्रमण कर परीक्षा को स्थगित करा दिया।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से छह छात्रो और दो छात्राओ को निष्कासित कर दिया गया है। इन पर रिवाल्वर और छुरे रखने के आरोप थे।

लखनऊ विश्वविद्यालय में छात्र चाकू-छुरा लेकर धड़ल्ले से परीक्षा-भवन में आते हैं और नकल करते हैं। कोई कुछ कहे तो परिणाम भयकर हो सकता है। अपने को अरक्षित पाकर प्रवक्ताओ ने निरीक्षण करने से इन्कार कर दिया और जब तक उनको सुरक्षा का आश्वासन न मिले, निरीक्षण करना अस्वीकार कर दिया।

विक्रम विश्वविद्यालय के अन्तर्गत मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय केन्द्र पर परीक्षार्थियो ने जब खुलकर नकल करना शुरू किया तो परीक्षाएँ रोक दी गयी। परीक्षाओ के पुन प्रारम्भ होने के पहले ही छात्रो ने उपकुलपति का घेराव किया और परीक्षाएँ पुन स्थगित कर दी गयी।

परीक्षा के सम्बन्ध में आये दिन के ये उपद्रव जो अब किसी प्रदेश में सीमित नही रह गये है, एक ही बात सिद्ध करते हैं कि परीक्षा में नकल करने में जो अनैतिकता की भावना जुडी हुई थी, अब वह बिलकुल निकल गयी है। परीक्षार्थी अब नकल करने को अनैतिक नही मानता। जो अनैतिक नही है उसे अपना 'अधिकार' मानने लगने की बात भी सहज मालूम पडती है। अब परीक्षार्थी जब अपने इस अधिकार के मार्ग में बाधा पडते देखता है तो वह किसी भी प्रकार की हिंसा के प्रयोग को जायज समझता है, चाहे वह व्यक्तिगत रूप से छुरे और पिस्तौल का प्रयोग हो अथवा सामूहिक रूप से पथराव और आगजनी का।

इन सारी घटनाओ का परिणाम यह हुआ है कि परीक्षाएँ अध्यापक के लिए चुनौती हो गयी है। चुपचाप लडको को नकल करने दीजिए, नही तो आपकी जान का खतरा है। और आज के जमाने में कौन इतना बडा सिद्धान्त-वादी है जो झूठमूठ यह खतरा मोल लेने बैठे। सक्षेप में, आज की परीक्षा-पद्धति के सामने एक चुनौती उपस्थित हुई है। कैसे इस चुनौती का मुकाबला किया जाय, यही मूल प्रश्न है।

निरीक्षको की सुरक्षा के लिए पुलिस की सगीनो की छाया में परीक्षा हो, यह समस्या का हल नही है। अत हल तो कोई दूसरा ही ढूँढ़ना होगा। नि सदेह, एक हल होगा परीक्षा-पद्धति में सुधार। अभी केन्द्रीय शिक्षा मत्री ने परीक्षाओं में सुधार के लिए जो समिति गठित की है उसकी रिपोर्ट चाहे जो हो, वह भी परीक्षा-पद्धति में कुछ सुधार सुझायेगी। सुधार पहले भी सुझाये गये हैं। अखबारो में रोज नये-नये सुझाव आते भी हैं। परन्तु इन सुझावो पर अमल नहीं होता—समस्या के न सुलझने का सबसे बडा कारण यही है।

हमें यह मानकर चलना चाहिए कि शिक्षा-संस्थाओं में पूरी पढाई नहीं होती, पढ़ाने के लिए पर्याप्त उपकरण नहीं हैं, पुस्तकें नहीं हैं, अध्यापक नहीं हैं, पाठ्यक्रम संतोषपूर्ण ढग से समाप्त नहीं हुआ है, परीक्षा भी आदर्श ढग से नहीं होती। परन्तु होता यह है–पढ़ाई हो चाहे न हो, पढ़ाने के साधन हों या न हों–परीक्षा आदर्श ढग से ही हो। वैसे ही पर्चे बनाये जायेंगे, कसकर माडरेशन होगा, निरीक्षण और गोपनीयता का प्रयास होगा। फलस्वरूप परीक्षार्थियों में परीक्षा के प्रति आक्रोश और अनिष्ठा का भाव उत्पन्न होता है। परीक्षा का स्वरूप आदर्श रखना है तो पढाई का रूप भी आदर्श होना चाहिए।

परतु पढाई हो या न, परीक्षा होगी। कारण है 'परीक्षा' एक रक्षित स्वार्थ बन गयी है। पर्चे बनाना, कापियाँ जाँचना, माडरेशन, टेबुलेशन, स्क्रूटिनी आदि अनेक धन्धे जिसमें लाखों लोग लगे हैं, इस परीक्षा के साथ जुड़ गये हैं। परीक्षा परीक्षार्थी को रोटी-रोजी दे, न दे, दूसरे अनेक की रोटी-रोजी का सहारा है। अत. परीक्षा के क्षेत्र में स्टेटसको नहीं बदलता। मैं परीक्षा के प्रति विद्रोह को, चाहे वह नकल करके हो अथवा कापियाँ जलाकर, इसी 'स्टेटसको' के विरुद्ध विद्रोह के रूप में देखता हूँ।

इसलिए परीक्षा के क्षेत्र में जो 'नकल' और उपद्रव आदि के अनैतिक तत्व दाखिल हो गये हैं उसको रोकने का सबसे पहला उपाय है कि परीक्षा-पद्धति के रूप को इस प्रकार बदल दिया जाय जिससे 'नकल' करने की 'प्रवृत्ति' समाप्त हो। सभी सुधारक कहते हैं कि परीक्षाएँ शिक्षा-संस्थाओं के द्वारा ली जायें और साल में एक बार न होकर हर माह हो—पढाई-लिखाई के साथ चलनेवाली वह सतत-प्रक्रिया 'कन्टीन्युअस प्रोसेस' हो, जाँच करनेवाले वही हो जो पढानेवाले हो, परीक्षा केवल स्मरण-शक्ति की न हो, व्यक्तित्व के हर पहलू की हो। परन्तु होता नहीं है। बाह्य-परीक्षा पूर्ववत् चलती रहती है। रक्षित स्वार्थ कुछ होने नहीं देते। समाज तब बदलेगा जब शिक्षा-पद्धति बदलेगी। शिक्षा-पद्धति तब बदलेगी जब परीक्षा-पद्धति बदलेगी। जब तक परीक्षा-पद्धति नहीं बदलेगी शिक्षा पद्धति नहीं बदलेगी। जब शिक्षा-पद्धति नहीं बदलेगी, समाज नहीं बदलेगा। यह एक दु श्चक्र है, जिसे रक्षित स्वार्थ टूटने नहीं देता। बिना तोडे काम नहीं चलेगा।

एक सुझाव यह दिया गया है कि परीक्षार्थियों को सदर्भ-पुस्तकें देखने दी जायें। पाठ्य-पुस्तकें, नोट्स, कुंजियाँ, गेसपेपर्स, सभी सदर्भ-पुस्तकें मान लिये जायें और परीक्षार्थी उत्तर देने के लिए चाहे जिसे देखें। परन्तु इससे

समस्या हल नही होती। मगर प्रश्न ऐसे हुए, जो परीक्षार्थी के किसी सदर्भ-ग्रन्थ में तत्काल बने-बनाये उत्तर के रूप में नही मिलते, तो इस बात की क्या गारन्टी कि परीक्षार्थी अपने साथी से पूछताछ नही करेंगे अथवा पर्चे छोड़कर उठ न जायें और उपद्रव न करें। अत. यह नकल करने की छूट समस्या का हल नही है।

'नकल' का सबसे घृणित पहलू है—अभिभावको और शिक्षको द्वारा परीक्षार्थियों को नकल करने में सहायता देना। सामूहिक नकल आम बात हो गयी है। उत्तर प्रदेश की बोर्ड की परीक्षा में हर साल हजारों परीक्षार्थी नकल करने के अपराधी घोषित होते है और सैकडो शिक्षक नकल कराने के लिए दण्डित होते हैं। बिहार में अभिभावको द्वारा नकल कराने का ऊपर उल्लेख हो चुका है। परीक्षा-फल का सम्बन्ध जब तक अध्यापक के प्रमोशन से जुडा रहेगा और परीक्षा जब तक नौकरी पाने की कुञ्जी बनी रहेगी तब तक शिक्षको और अभिभावको का यह मोह नही छूटेगा। पहला काम तो आसानी से हो सकता है। परन्तु दूसरे काम का सम्बन्ध शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन से ही है। परीक्षा नौकरी की पासपोर्ट न हो।

दीक्षा-विद्यालयों (महिला और पुरुष) द्वारा प्रारम्भिक विद्यालयों का उन्नयन

प्रारम्भिक विद्यालयों का गुणात्मक विकास निम्नलिखित विषयों में किया जाना चाहिए —

(१) स्वच्छता।
(२) स्वास्थ्य।
(३) भाषा शिक्षण।
(४) गणित-शिक्षण।
(५) सामाजिक विषय-शिक्षण।

स्वच्छता

(१) समस्त प्रधानाचार्यों को राजकीय दीक्षा विद्यालयों की स्वच्छता के सभी पहलुओं पर विचार करके पूर्ण वर्ष के लिए एक कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिए।

(२) इस कार्यक्रम में सर्वप्रथम व्यक्तिगत स्वच्छता पर बल दिया जाय। प्रथम तीन महीनों में व्यक्तिगत स्वच्छता को ही अपनाया जाय।

(३) व्यक्तिगत स्वच्छता में नाखून, दाँत, आँख, नाक, कान तथा वस्त्रों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(४) खाना या नाश्ता बाँधकर लाने का कपड़ा स्वच्छ होना चाहिए।

(५) छात्रों एवं छात्राओं की कापियों तथा किताबों की स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(६) व्यक्तिगत स्वच्छता-कार्यक्रम के साथ विद्यालय-भवन, क्षेत्र तथा कक्षा-कक्षों की स्वच्छता एवं सजावट की ओर ध्यान दिया जाय।

(७) छात्रों को स्वच्छ रहने तथा स्वच्छता-कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए प्रोत्साहन देने तथा आपस में इस विषय में स्पर्धा रखने का प्रयत्न किया जाय।

(८) विद्यालय की स्वच्छता तथा उसके वातावरण को आकर्षित बनाया जाय। छात्रों को विद्यालय की सजावट करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

(९) स्वच्छता के साथ ही साथ छात्रों की आदतों, नैतिक एवं सामाजिक व्यवहार के सुधार की ओर भी ध्यान दिया जाय।

(१०) स्वच्छता-सम्बन्धी बातों का सम्यक् अभ्यास राजकीय आदर्श

विद्यालयों तथा अपनाये गये ३ प्रारम्भिक विद्यालयों में छात्राध्यापकों द्वारा नियमित रूप से कराया जाय।

स्वास्थ्य

(१) दीक्षा-विद्यालयों के व्यायाम-शिक्षकों की देख-रेख में शारीरिक व्यायाम आयु के अनुसार नियमित तथा अनिवार्य रूप से कराया जाय।

(२) व्यायाम का कार्य गर्मियों में प्रातःकाल के प्रारम्भ के चार घण्टों में तथा सर्दियों में सायंकाल के अन्तिम चार घण्टों में कराया जाय। स्थान तथा समय के अनुसार यह कार्य एकसाथ भी हो सकता है और अलग-अलग घंटों में भी कराया जा सकता है। सामूहिक व्यायाम भी कराया जाय।

(३) राष्ट्रीय पर्वों पर स्वास्थ्य-प्रतियोगिताएँ करायी जायँ। प्रतियोगिताओं में अन्य विद्यालयों के छात्रों को भी सम्मिलित किया जाय। स्वस्थ छात्रों को पुरस्कृत किया जाय। दीक्षा-विद्यालय पुरस्कारों का प्रबन्ध करें।

(४) दीक्षा-विद्यालयों को सम्बन्धित विद्यालयों में तौलने की मशीन का प्रबन्ध कराना चाहिए। छात्रों को प्रवेश के, त्रैमासिक, षट-मासिक तथा वार्षिक परीक्षा के समय तौला जाय और उनका वजन परीक्षाफल में अंकित किया जाय।

(५) शैक्षिक सत्र में समय-समय पर छात्रों के चेचक, हैजा तथा अन्य स्वास्थ्य-वर्द्धक टीके लगवाये जायँ।

(६) समय-समय पर स्वास्थ्य-अधिकारी को बुलाकर छात्रों का परीक्षण कराया जाय। यदि किसी छात्र के स्वास्थ्य में दोष हो तो उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाय।

(७) स्वास्थ्य-वर्द्धक अल्पाहार की व्यवस्था की जाय। उपलब्ध भूमि में गाजर, मूली, टमाटर उगायी जाय और उन्हें छात्रों में वितरित किया जाय।

(८) दीक्षा विद्यालय अपनाये गये विद्यालयों में खेलकूद-कार्यक्रम आकर्षक ढंग से चलवाने के लिए प्रयास करें। आवश्यकतानुसार अपने भण्डार से क्रीडा-सामग्री भी सुलभ करायें।

(९) कक्षाओं में छात्रों की अनावश्यक भीड़ रोकी जाय और निर्धारित प्रवेश-संख्या तक ही प्रवेश स्वीकृत किया जाय।

(१०) सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं विभिन्न कार्यक्रमों में दूसरे विद्यालयों के छात्र तथा अध्यापकों को आमंत्रित किया जाय। स्थानाभाव की दशा में दीक्षा-विद्यालयों के साधनों का उपयोग किया जाय।

(११) स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्यक्रमो में छात्राध्यापको तथा राजकीय आदर्श विद्यालयो के अध्यापको से नियमित रूप से सहयोग लिया जाय।

भाषा, गणित तथा सामाजिक-अध्ययन-शिक्षण

(१) दीक्षा विद्यालयो के प्रधानाचार्य, उप विद्यालय-निरीक्षक तथा नगर-पालिकाओं के शिक्षा-अधीक्षकों से अपना सम्पर्क स्थापित करके, दीक्षा-विद्यालय के समीपस्थ तीन प्राथमिक विद्यालयो को इस प्रकार चुनें कि विद्यालयों में प्रशिक्षको व छात्राध्यापकों को जाने में अधिक समय व्यय न हो तथा इन विद्यालयो के छात्र भी सुगमता से अन्य विद्यालयो के कार्यक्रमों में जाकर भाग ले सकें।

(२) आदर्श विद्यालय तथा सम्बन्धित विद्यालयों की एक परामर्शदात्री समिति बनायी जाय, जिसमें दीक्षा विद्यालयो के प्रधानाचार्य, सम्बन्धित प्रारम्भिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापक एव निकटवर्ती नगरपालिकाओं के शिक्षा-अधीक्षक, सहायक-उपस्थिति-अधिकारी, अध्यक्ष जिला-परिषद् तथा उप विद्यालय-निरीक्षक हों।

(३) आदर्श विद्यालय तथा सम्बन्धित ३ प्राथमिक विद्यालयों के प्रधान एव सहायक-अध्यापको की एक गोष्ठी आयोजित करके, जिसमें दीक्षा-विद्यालय के प्रशिक्षक भी उपस्थित रहें, वर्ष भर के कार्यक्रम को निम्नलिखित आधार पर पूर्वनिश्चित किया जाय।

(अ) शैक्षणिक-पाठ्यक्रम के अनुसार विभिन्न विषयों के अध्यापन की कार्य-योजना।

(ब) शारीरिक उत्कर्ष एव खेलकूद, व्यक्तिगत तथा विद्यालय के एव घर के वातावरण की स्वच्छता, सम्बन्धित खेलकूद, व्यायाम, पाठ्यक्रमेतर कार्यकलाप, जैसे स्काउटिंग, जूनियर रेडक्रास इत्यादि।

(स) आचार-सम्बन्धी व्यावहारिक ढग के अवसरो का लाभ उठा करके नागरिकता एव नैतिक शिक्षा का कार्यक्रम।

(द) सामाजिक पर्व एव त्योहारों का मनाना, सामाजिक सस्थाओं (विद्यालय, चिकित्सालय, डाकघर, रेलवे स्टेशन) तथा व्यक्तियों (कथानायक, मुखिया, चौकीदार आदि) से कौनसी सुविधाएँ मिलती हैं तथा उनके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है।

(ह) इस समिति द्वारा दैनिक कार्यक्रम की एक योजना भी बनायी जाय, जिसमें प्रभावशाली ढग पर गृहसर्च का सकेत रहे। इस समिति की मासिक

बैठकों में विद्यालय की शैक्षणिक समस्याओं पर विवेचन कार्य प्रगति प्रस्तुत की जाय।

(४) दीक्षा विद्यालयों में पुरान (छात्राध्यापकों) की गोष्ठी का आयोजन समय समय पर किया जाय, जिसमें इस प्रकार की योजनाओं को सफल बनाने में सहयोग प्राप्त हो और उनका ज्ञान-वर्द्धन हो।

(५) अध्यापकों के मौलिक प्रयासों तथा अध्ययन का विवरण, एवं रचनाओं का पठन आदि हो।

ये बैठकें बारी बारी से प्रत्यक विद्यालय में हो।

(६) प्रशिक्षकों तथा प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों द्वारा विभिन्न विद्यालयों में आदर्श-पाठ, सहायक सामग्री प्रदर्शन आदि हो।

(७) इन विद्यालयों में छात्राध्यापकों द्वारा निर्मित सहायक सामग्री एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ (आबजेक्टिव टस्ट्स) धीरे धीरे प्रयोग में लायी जायें। षट एवं वार्षिक परीक्षाओं में वस्तुनिष्ठ प्रश्न भी रहें।

(८) सभी छात्राध्यापकों द्वारा कृषि एवं सामुदायिक कार्य की प्रभावशाली योजना बनाकर इन विद्यालयों में प्रदर्शनी आयोजित की जाय।

(९) विशेषज्ञ अध्यापकों विज्ञान क्राफ्ट, कला अथवा किसी प्रकरण को उत्तम विधि से पढ़ानेवाले अध्यापकों का विभिन्न विद्यालयों में कुछ समय के लिये आदान प्रदान हो।

(१०) अच्छे प्रयास करने वाले अध्यापकों को अगले वर्ष अध्यापक दिवस पर इन विद्यालयों की एक सभा बुलाकर 'प्रशस्ति पत्र' किसी गण्यमान व्यक्ति द्वारा दिलाये जाय।

(११) सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं विभिन्न कार्यक्रमों में दूसरे विद्यालयों के छात्र एवं अध्यापक आमन्त्रित किये जाय। स्थानाभाव की दशा में दीक्षा विद्यालयों के साधनों का उपयोग किया जाय।

(१२) दीक्षा विद्यालय में उपलब्ध साधन-जैसे पुस्तकालय मानचित्र, भूगोल एवं विज्ञान शिक्षण के उपकरण इत्यादि को इन सभी विद्यालयों में उपयोग की समुचित सुविधा प्रदान की जाय।

(१३) इन विद्यालयों के छात्रों की समस्त क्षेत्रों में सम्मिलित प्रतियोगिताएँ आयोजित की जायें और विजेताओं को यथासम्भव पुरस्कृत किया जाय।

(१४) विषयानुसार शिक्षण के गुणात्मक सुधार के विषय में आगरा-मण्डल की विचारगोष्ठी की संस्तुतियाँ निम्नवत् हैं :

अ—भाषा-शिक्षण

(१) दीक्षा-विद्यालय के अध्यापकों तथा छात्राध्यापकों को भाषा-सम्बन्धी कहानियों का सकलन हितोपदेश, पचतंत्र तथा ईसप-टेल्स, साप्ताहिक पत्रों आदि से कराना चाहिए। कक्षा १ से ५ तक के बच्चों को सुन्दर एव सुरुचि-पूर्ण कहानियाँ सुनायी जायँ।

(२) फाउण्टेनपेन से लिखना बंद करा दिया जाय। विद्यालयों में कलमों का गट्ठर रहना चाहिए। आवश्यकतानुसार छात्रों को कलमें दी जायँ।

(३) छात्रों के लिखित कार्य का प्रतिदिन निरीक्षण किया जाय। उसे दीक्षा विद्यालय के सहायक अध्यापक देखें।

(४) श्रुतलेख का कार्य प्रतिदिन कराया जाय। त्रुटियों का सुधार ५ बार, पुन- भूल करने पर १० या १५ बार लिखने का अभ्यास कराया जाय। इस प्रकार के शब्दों की तालिका छात्राध्यापकों तथा अध्यापकों के सहयोग से प्रस्तुत की जाय, जिनके लिखने तथा शुद्ध उच्चारण में बहुधा बालक भूल करते हैं।

(५) हिन्दी भाषा में ही नहीं, बल्कि प्रत्येक विषय में सुलेख पर ध्यान दिया जाय। कक्षानुसार प्रति सप्ताह सुलेख की प्रतियोगिताएँ करायी जायँ। सुलेख का कार्य घर से भी करने को दिया जाय।

(६) छात्रों से कागज एकत्र कराये जायँ और दीक्षा विद्यालय के छात्राध्यापकों से उनकी कापियाँ बनाकर, उन कापियों के ऊपर पंक्तियाँ शुद्ध और स्वच्छ ढंग से अच्छे छात्राध्यापकों द्वारा लिखवायी जायँ—छात्रों से उनका अनुकरण कराया जाय।

आ—गणित-शिक्षण

(१) गिनती तथा पहाड़ा-सम्बन्धी सहायक सामग्री तथा चार्ट दीक्षा-विद्यालय में बनवाये जायँ तथा सम्बन्धित पाठशालाओं में भेजे जायँ और उनका प्रयोग कराया जाय।

(२) तौल के बाट, नाप के फीते तथा धारिता के पात्रों का छात्रों को ज्ञान कराया जाय। छात्राध्यापक बाट, फीता तैयार करें तथा प्रयोग के लिए विद्यालयों में पहुँचायें।

(३) लिखित गणित कराने से पूर्व मौखिक गणित का अनिवार्य एव नियमित

अभ्यास कराया जाना चाहिए। लिखित कार्य का प्रतिदिन निरीक्षण किया जाय। राजकीय दीक्षा विद्यालय के प्रधानाचार्य राजकीय आदर्श विद्यालय के प्रधानाध्यापक के सहयोग से सप्ताह में एक बार उसका निरीक्षण करें।

(४) गृह-कार्य का निर्धारण उसके निमित्त पुस्तिका में किया जाय तथा उसकी जानकारी अभिभावक को नियमित रूप से करायी जाय।

(५) प्रत्येक माह के अन्तिम सप्ताह में कार्य का सिंहावलोकन करने के लिए तथा त्रुटियों एवं कठिनाइयों के निराकरण हेतु समस्त अध्यापकों की एक बैठक बुलायी जाय। कठिनाइयों के निवारण हेतु विचार विमर्श किया जाय।

(६) छात्राध्यापकों के कार्य का मूल्यांकन प्रधानाचार्य को अपने सहयोगी-अध्यापकों के सहयोग से आदर्श विद्यालय एवं निकटस्थ प्राथमिक पाठशालाओं में किये कार्य के आधार पर करना चाहिए।

द—सामाजिक विषय-शिक्षण

इतिहास में कक्षा १ से ५ तक इतिहास की कहानियाँ भाषा की पुस्तकों के आधार पर स्मरण करायी जायें। छात्राध्यापक एवं अध्यापक स्वयं वीर पुरुषों की तथा देश और राष्ट्रोत्थान की कहानियाँ प्रस्तुत करें।

भूगोल के शिक्षण में तहसील, जिला, नदी, ऐतिहासिक भवन, नगरपालिका तथा जिला-परिषद् की जानकारी उनसे सम्बन्धित व्यावहारिक वस्तुओं को आधार मानकर करायी जायें। भूगोल-शिक्षण में मानचित्रों का अनिवार्य रूप से प्रयोग कराया जाय।

भूगोल शिक्षण में दीक्षा-विद्यालय के अध्यापकों तथा छात्राध्यापकों की देखरेख में पर्यटन की व्यवस्था करायी जाय।

ई—नागरिक शिक्षा-शिक्षण

(१) व्यक्तिगत वार्तालाप एवं शिष्टाचार तथा नैतिक भावनाओं का व्यावहारिक पक्ष अपनाया जाय। बच्चों के समक्ष बोलने के आदर्श प्रस्तुत किये जायें।

(२) शिष्टता-सप्ताह मनाया जाय और शिष्ट छात्रों को पुरस्कृत किया जाय।

(३) मताधिकार के प्रयोग का उचित ज्ञान बालसभा के चुनाव के माध्यम से कराया जाय। विद्यालयों में पोलिंग स्टेशन बनाये जाय तथा छात्रों को चुनाव-प्रणाली से अवगत कराया जाय। छात्राध्यापकों को एक कक्षा के स्थान पर बहुकक्षा शिक्षण का अभ्यास दिया जाय।

दीक्षा-विद्यालयों द्वारा प्रारम्भिक विद्यालयों के उन्नयन का वार्षिक कार्यक्रम

मास	कार्य-विवरण	विशेष विवरण
मई	दीक्षा-विद्यालय प्रांगण में, उपविद्यालय निरीक्षक, प्रति उपविद्यालय-निरीक्षक, शिक्षा अधीक्षक, नगरपालिका एवं सम्बद्ध विद्यालयों के अध्यापकों की संयुक्त बैठक, जिसमें वर्ष भर के कार्य को रूपरेखा तैयार की जायगी और आवश्यकतानुकूल सम्बन्धित विद्यालय के अध्यापकों से पूछताछ करके शैक्षिक उपादानों को सुलभ करने या कराने के लिए व्यवस्था की जायगी।	
अगस्त	दीक्षा-विद्यालय के अध्यापकों द्वारा सम्बद्ध विद्यालयों के प्रांगण में आदर्श-पाठ-समायोजन, विभागीय निर्देशिकानुसार उनकी दैनन्दिनी तैयार कराना तथा दीक्षा-विद्यालय में सम्पन्न होनेवाले आदर्श-पाठों के अवलोकनार्थ सम्बद्ध विद्यालयों के अध्यापकों को एक-एक करके समयान्तर से बुलाना और तदनुकूल कार्यान्वयन की प्रेरणा देना।	१५ अगस्त, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी समारोह।
सितम्बर	सम्बद्ध-विद्यालयों में दीक्षा-विद्यालय के शिक्षा-शिक्षकों के जाने का कार्यक्रम सम्पन्न होगा और सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में ७ अक्तूबर तक की योजना-पाठ के रूप में पढ़ाने की यथावश्यक रूपरेखा, दीक्षा विद्यालय के सामान्य अध्यापक द्वारा तैयार की जायगी। सामान्य रूप से मास अगस्त के कार्यों की जाँच की जायगी और लिखित कार्य का संशोधन किया जायगा।	५ सितम्बर, शिक्षक-दिवस-समारोह। बालसभा की बैठक, २ अक्तूबर मनाने की तैयारी
अक्तूबर	प्रथम सप्ताह में योजना पाठ समापन समारोह होगा। इसी मास में दशहरा-अवकाश रहने के नाते समय कुछ कम मिलेगा, फिर भी जो समय मिलेगा उसमें दीक्षा-विद्यालय के कृषि अध्यापक, सम्बद्ध विद्यालयों की उपलब्ध वाटिका में कुछ पौष्टिक आहार-सम्बन्धी वस्तुएँ उगाने का उपक्रम करायेंगे और व्यायाम-शिक्षक छात्रों के स्वास्थ्य-सम्बन्धी (भार लेना, लम्बाई आदि लेना) सुधारात्मक कार्य करेंगे।	गांधी-जयंती समारोह, रवी-अभियान

मास	कार्य-विवरण	विशेष विवरण
नवम्बर	त्रैमासिक परीक्षा ली जायगी। कलात्मक-कार्य हेतु दीक्षा विद्यालय के कलाध्यापक सम्बद्ध विद्यालयों में जायँगे और छात्रों में कलात्मक अभिरुचि पैदा करेंगे। दीपावली अवकाश के कारण समय कुछ कम ही मिलेगा। क्षेत्रीय एव जनपदीय बाल-युवक समारोहो की तैयारियाँ भी की जायेंगी।	बाल-दिवस, क्षेत्रीय एव जनपदीय बाल-युवक-समारोह।
दिसम्बर	दीक्षा विद्यालय के कृषि-अध्यापक, पूर्व निर्देशित कार्य की जाँच एव सुधार हेतु सम्बद्ध विद्यालयो में जायँगे और आवश्यक सरक्षण प्रदान करेंगे। सामान्य अध्यापक भी एक बार जायगा, जो अनुबंधित पाठ की योजना का कार्यान्वियन करेगा और छात्रो के लिखित कार्यों के सुधारार्थ कुछ उपाय बतायेगा।	झंडा-समारोह, अभिभावकों सहित बाल-सभा की बैठक जिसमें परीक्षा द्वारा ज्ञात सफलता से उन्हें अवगत कराया जा सके।
जनवरी	दीक्षा-विद्यालय के प्रधानाध्यापक द्वारा उनके सहायकों के कार्यों एव अन्य विद्यालयीय कार्यों की प्रगति का निरीक्षण, सशोधन एव सुझाव। सम्बद्ध विद्यालयों के अध्यापकों की दैनन्दिनी की जाँच तथा अगले सत्र के लिए दैनन्दिनी बनवाना। जनवरी के द्वितीय सप्ताह तक षट्-मासिक परीक्षा समाप्त करने का यत्न। यथासम्भव २६ जनवरी को भी योजना-पाठ बनाकर पढ़वाना।	२६ जनवरी, गणतन्त्र-दिवस समारोह। ३० जनवरी, शहीद-दिवस-समारोह।
फरवरी	व्यायाम-शिक्षक, दीक्षा-विद्यालय छात्रों के स्वास्थ्य की प्रगति की जानकारी करने हेतु, सम्बद्ध विद्यालयों में जायेंगे और छात्रों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित कुछ सुधार के उपाय इंगित करेंगे। शिल्प-शिक्षक भी, शिल्प-विकास के लिए इन विद्यालयों में जाकर अपने विद्यालय में तैयार या प्राप्त कुछ अच्छे सामान देकर छात्रों का मनोबल बढ़ायेंगे।	वसन्तोत्सव, बालसभा की बैठक जिसमें षट्मासिक परीक्षा की सफलता-असफलता के प्रति यथावश्यक निर्देश-प्रसारण

मास	कार्य विवरण	विशेष विवरण
मार्च	वार्षिकोत्सव के रूप में, सम्बद्ध विद्यालयों के अध्यापकों एवं छात्रों को दीक्षा-विद्यालय प्रांगण में एकत्र कराना। वर्ष भर के कार्यों का मूल्यांकन करना। पुरस्कार-विधि से प्रोत्साहन देना। प्रति-उप-विद्यालय-निरीक्षक, अधीक्षक नगरपालिका एवं अन्य क्षेत्रीय गण्यमान लोगों की उपस्थिति में यह समारोह सम्पन्न होगा।	
अप्रैल	माध्यमिक शिक्षा परिषदीय परीक्षाएँ	
अप्रैल-मई	विभागीय परीक्षाएँ	

दीर्घकालीन संस्तुतियाँ

प्राथमिक विद्यालयों की दशा जो वर्तमान काल में दृष्टिगोचर होती है वह अत्यन्त ही शोचनीय है। उचित भवनों की साज-सज्जा एवं अन्य उपकरणों की कमी के अतिरिक्त निष्ठाहीन अध्यापकों के बाहुल्य के कारण प्राथमिक विद्यालयों का उन्नयन उचित दिशा में सुचारु रूप से नहीं हो पा रहा है। अतः प्राथमिक आवश्यकता इस बात की है कि इन पाठशालाओं के लिए उचित भवनों की व्यवस्था की जाय तथा अध्यापक को सन्तुष्ट करने के लिए उसकी आर्थिक कठिनाइयों को दूर किया जाय। विषम आर्थिक परिस्थितियों के कारण अध्यापकों का मन शिक्षण की ओर उतना उन्मुख नहीं होता जितना कि उनसे अपेक्षित है। अतः वस्तुस्थिति यह है कि पहले हम शिक्षा प्रदान करनेवाले उस अध्यापक को उचित सुविधाओं, यथा-आवास की, चिकित्सा की, बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करें। इसीके साथ-साथ हम यह भी देखें कि विद्यार्थियों के बैठने के लिए भवन स्वच्छ, स्वास्थ्यप्रद एवं आकर्षक वातावरण में स्थित है।

प्राथमिक पाठशालाओं के उन्नयन करने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि विद्यार्थियों का चयन योग्यता के आधार पर किया जाय। वर्तमान काल में प्राथमिक-शिक्षा निःशुल्क है, अतः प्राथमिक विद्यालयों में सम्पन्न एवं उन्नत परिवारों से विद्यार्थी पढ़ने नहीं आते। ऐसे परिवारवाले अपने बच्चों का बौद्धिक स्तर गिर जाने के भय से उन्हें प्राथमिक पाठशालाओं में नहीं भेजते। इसका परिणाम यह है कि प्राथमिक पाठशालाओं के विद्यार्थियों का स्तर निम्न-

कोटि का रह जाता है और स्वस्थ सामाजिक वातावरण का अभाव रहता है। प्राथमिक पाठशालाओं में कुछ शुल्क लेने की व्यवस्था की जाय, जिससे वहाँ के छात्रों की जलपान आदि की समुचित व्यवस्था हो सके। इसके अतिरिक्त शिक्षण-सहायक-सामग्री के लिए भी आवश्यक शुल्क की व्यवस्था की जाय। अन्यथा शिक्षा-विभाग के द्वारा विद्यार्थियों के लिए यूनीफार्म, शिक्षण-सहायक-सामग्री, लेखन-सामग्री तथा पुस्तकों आदि की नि शुल्क व्यवस्था आवश्यक है।

दीक्षा-विद्यालयों के साथ उन्नयन हेतु कम-से-कम ३ प्राथमिक विद्यालयों को सम्बद्ध किया जा रहा है। उन विद्यालयों के सम्बन्ध में शासकीय आदेश दिये जायँ कि —

(१) उन विद्यालयों में अध्यापकों की नियुक्ति, स्थानान्तर, व्यवस्था आदि के सम्पूर्ण अधिकार दीक्षा-विद्यालय के प्रधानाचार्य की सम्मति से केवल जिला-विद्यालय-निरीक्षक को ही हों।

(२) साज-सज्जा, उपकरण आदि के निर्माण एवं रखरखाव की व्यवस्था उन विद्यालयों में होनी चाहिए।

(३) इन विद्यालयों के भवन स्वास्थ्यप्रद, स्वच्छ एवं आकर्षक वातावरण में हों।

(४) इन विद्यालयों का निरीक्षण प्रति विद्यालय-निरीक्षक के अतिरिक्त दीक्षा-विद्यालय के अध्यापक तथा क्राफ्ट-टीचर की समिति द्वारा किया जाय।

(५) विभाग ऐसे आदेश पारित करे कि इस प्रकार के निरीक्षण आख्या में दिये सुझावों का अनुपालन अध्यक्ष, जिला-परिषद् द्वारा किया जाय।

(६) समय-समय पर इन विद्यालयों के अध्यापक दीक्षा-विद्यालयों में अभिनवीकरण एवं अनुसरण-गोष्ठियों के लिए भेजे जायँ।

(७) मासिक परीक्षाओं के आधार पर ही वार्षिक उन्नति दी जाय।

['शैक्षिक उन्नयन राजकीय शिक्षा-संस्थान' से साभार]

भाषा, लिपि और विनोबा

काका कालेलकर

हम दोनों (विनोबाजी और मैं) करीब एक ही समय गांधीजी के आश्रम में गये। मैं मानता हूँ कि गांधीजी के आश्रमवासियों में सबसे पुराने हम दो ही हैं। गांधीजी की भाषा-नीति हम दोनों को एक-सी जँच गयी।

आश्रम में गुजराती

आश्रम के प्रारम्भ में सवाल उठा था कि आश्रम की भाषा कौनसी ? स्वयं गांधीजी हिन्दी बहुत कम जानते थे, तो भी वे हिन्दी के पक्ष के थे। मैंने कहा, [उन दिनों विनोबा संस्कृत सीखने के लिए 'प्राज्ञ पाठशाला', वाई चले गये थे] "नहीं, आश्रम गुजरातीप्रधान शहर में स्थापित है। आश्रम में अधिकांश व्यक्ति गुजराती हैं। आसपास का सारा समाज गुजराती है, इसलिए आश्रम की भाषा गुजराती ही होनी चाहिए।" मेरी बात का स्वीकार हुआ और आश्रम में सब लोग गुजराती ही चलाने लगे।

हिन्दी राष्ट्रभाषा क्यों ?

यह इसलिए कहता हूँ कि हम सब लोग गांधीजी के साथ पूरे सहमत थे कि भारत की एकता के लिए राष्ट्रभाषा का प्रचार सार्वत्रिक होना चाहिए। हम सब एकमत थे कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है। भरुच (भडौंच) में जो शिक्षा परिषद् हुई थी, उसमें गांधीजी अध्यक्ष थे और गांधीजी ने मुझे राष्ट्रभाषा पर एक लेख लिखने के लिए प्रेरित किया था। मेरी प्रथम दलील थी कि राष्ट्रभाषा का स्थान कोई एक स्वदेशी भाषा ही ले सकती है। मेरी दूसरी दलील थी कि इस सवाल का हल भारत के संत और यात्रियों ने कब का किया है कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है। इस निर्णय पर दृढ होते हुए भी जब मैंने आश्रम की और गुजरात विद्यापीठ की बोधभाषा गुजराती ही हो ऐसा आग्रह चलाया तब मुझे अपनी सब बातें स्पष्ट करनी पडीं। वे ही बातें आज भारत के लोगों के सामने रखना जरूरी हो गया है। खुशी की बात है कि इस सम्बन्ध में श्री विनोबाजी और मैं सौ प्रतिशत सहमत हैं।

प्रादेशिक भाषाएँ

हमारा कहना है कि भारत की प्रादेशिक भाषाएं छोटी हों या बडी, पूर्ण विकसित हों या अर्धविकसित—जनता की भाषाएँ हैं। उनकी जडें लोकजीवन में पहुँचकर मजबूत हुई हैं। इनका अधिकार सबसे अधिक है। और अगर

भारत में प्रजाराज चलाना है तो जनता की भाषाओं के द्वारा ही जनता में हम जागृति और एकता तथा स्वराज-निष्ठा उत्पन्न कर सकते है ।

इसलिए जनता की प्रादेशिक भाषाओं के द्वारा लोक-जागृति का काम करते हुए, हमें राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता के लिए हिन्दी भाषा का सहारा लेना चाहिए। मैंने यहाँ तक कहा कि हिन्दी तो इस देश में प्रादेशिक भाषाओं की सेवा करके, उनका आशीर्वाद प्राप्त करके ही पनप सकती है ।

भाषा सीखने का पुरुषार्थ

यही बात विनोबाजी ने केवल शब्दों से नही, लेकिन अपने असाधारण पुरुषार्थ से देश के सामने रखी है। विनोबाजी ने सब प्रादेशिक भाषाएँ सीखने का पुरुषार्थ किया है।

विनोबा का संकल्प

हम दोनो पुराने आश्रमवासी थे सही, लेकिन जेल में हम एक-दूसरे के साथ बहुत अधिक नजदीक आ गये । विनोबा ने पूछा, "भारत की सब भाषाएँ क्यों न सीख लूँ ?" मैंने कहा, "उदार कल्प (उत्तम संकल्प)। इसमें मैं आपको पूरी सहायता दे सकूँगा।"

तमिल से श्रीगणेश

विनोबा कहने लगे—"राजाजी हमें उलाहना देते है कि 'हमें हिन्दी सीखने को कहते हो, परन्तु हमारी भाषा क्यो नही सीखते ?' राजाजी के कहने में सार है तो मैं तमिल से ही क्यों न प्रारंभ करूँ ?" मैंने कहा, "बहुत अच्छा है । आप तमिल भाषा सीख गये तो आपको मलयालम आ ही गयी समझिए और तेलुगु और कन्नड भी आसान होगी।" मैंने उनको समझाया कि दक्षिण की चार द्रविड भाषाओं में संस्कृत शब्दो का परिमाण अच्छा है । केरल की मलयालम में फीसदी अस्सी शब्द संस्कृत के हैं । कन्नड और तेलुगु में भी फीसदी साठ संस्कृत के शब्द हैं । एक तमिल ऐसी है जिसमें संस्कृत के शब्द फीसदी शायद चालीस से अधिक नहीं है । तमिल के अधिक-से अधिक शब्द लिये है मलयालम ने । प्रत्यय भी द्राविडी भाषाओं में एक-दूसरी के साथ मिलने होंगे । तमिल सीख ली हो तो द्रविड भाषाओं का सवाल मानो हल ही हो गया ।

कैदी को न देने की किताबें

वेलोर जेल में विनोबा ने दक्षिण की चार भाषाएँ हस्तगत और मुखोद्गत कर डालीं।

जब अपनी पदयात्रा के सिलसिले में किसी भी प्रदेश में वहाँ की भाषा में विनोबा जनता से कह सकते थे कि 'आप अपनी भाषा में बोलिए, मैं समझ सकूँगा।' सचमुच भाषा तो लोक-हृदय को पूरा-पूरा खोलने की दैवी कुंजी है। किसी भी आदमी के साथ उसकी भाषा बोलिए और उसकी आँखों की चमक देखिए। प्रसन्न होकर वह दिल खोल ही देता है।

विनोबा की हिन्दी को देन

मेरे जैसे यात्री अपना प्रचार का विषय लेकर एक-एक प्रान्त में आठ-दस दिन घूमते हैं। स्थानिक भाषा सीखने का हमें मौका नहीं मिलता। विनोबा जब कहीं जाते हैं, वहीं के हो जाते हैं। वहाँ वे काफी रहते हैं, स्थानिक साहित्य थोड़ा पढ़ लेते हैं और स्थानिक भाषा की सेवा भी कर लेते हैं। मैं स्वयं आठ-दस बार असम (आसाम) गया हूँ। वहाँ के लोग मुझे अपना ही समझते हैं। अनेक असमीया परिवारों में मुझे आत्मीयता का स्थान मिला है। मैं असमीया थोड़ी-थोड़ी समझ सकता हूँ। बंगला लिपि और असमीया लिपि में दो-तीन अक्षरों का ही फरक है। तो भी मैंने असमीया साहित्य को छुआ भी नहीं है और विनोबा ने वहाँ के प्रधान संत साहित्यिक शंकरदेव-माधवदेव का साहित्य पढ़कर नामघोषा का सार निकाला और हिन्दी को दे दिया। यही हालत पंजाबी भाषा और सिख साहित्य की है। मैंने 'जपुजी' के गुजराती अनुवाद की प्रस्तावना लिखी है सही, लेकिन विनोबा ने जपुजी का सारा अनुवाद तैयार करके हिन्दी जगत् को दिया है।

राष्ट्रभाषा की दो लिपियाँ

भाषा और लिपि के सवाल में गांधीजी पहचान गये थे कि ब्रिटिश साम्राज्य को मजबूत करनेवाली भाषा है अंग्रेजी। इसके भक्त अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों में काफी थे। ब्रिटिश राज्य भारत में चलानेवाले नौकरों को भी अंग्रेजी भाषा अनुकूल थी। और देश में उनका प्रभाव कम नहीं था। ऐसी हालत में अंग्रेजी को हटाना है तो भारतीय एकता का आग्रह रखनेवाले सब लोगों को एकत्र लाकर मजबूत करना चाहिए।

भारत में धर्म भेद के कारण उन-उन धर्मों के समाज इतने अलग-अलग रहते हैं कि मानो हरएक समाज अलग राष्ट्र ही है।

जब हिंदुओं में जाति-भेद के कारण रोटी-बेटी-व्यवहार भी सार्वत्रिक नहीं है तो धर्मसमाजों में एक सामाजिकता उत्पन्न कैसे की जाय ?

देशी भाषाओं में संतों के कारण और यात्रियों के कारण हिंदी भाषा का

प्रचलन भारत में थोडा-थोडा सर्वत्र था ही। इसी स्थिति का लाभ उठाकर उन्हें हिंदी को अखिल भारत के व्यवहार की भाषा बनानी थी।

जब गाधीजी के प्रयत्न से हिंदी का प्रचार और उसकी प्रतिष्ठा बढी और अग्रेजी भाषा के साम्राज्य के लिए खतरा दीख पडा तब विरोधी लोग जागे।

इनमें मुसलमान लोग कहने लगे—

जब पठानो का और मुगलो का राज्य था तब राज्यभाषा पर्शियन थी। बाद में जनता की भाषा को प्रधानता देने के लिए खडी बोली को प्रतिष्ठित बनाया। उन दिनों देश के हिंदु-मुसलमान सब फारसी और अरबी कमोबेश सीखते थे। ऐसी हालत में राज्यभाषा और लोकभाषा एकत्र करके उर्दू बनायी गयी। उर्दू अखिल भारतीय देशी भाषा है। उसी को राष्ट्रभाषा क्यो नही बनाते ? जिनको राष्ट्रीय एकता चाहिए, स्वराज्य चाहिए उनका यह काम है।

गाधीजी ने देखा कि जो भाषा भारत की नही है और जिसे भारतीय जनता जानती नही ऐसी अग्रेजी को हटाकर अगर हिंदी को वह स्थान देना है तो मुसलमानों के साथ और उर्दू के साथ समझौता किये बिना चारा नही है।

अगर समझौता नही किया, एकता के लिए उसकी कीमत नही दी तो अग्रेजो का और अग्रेजी का राज्य मजूर करना पडेगा। मजूर न हो तो उर्दू के काफी शब्दों को हिंदी मे लेना पडेगा। और काफी समय तक नागरी और उर्दू, दोनो लिपियो का स्वीकार करके आगे बढना होगा। बाद में जब दोनो लिपियो का परिचय सबको होगा तब दो मे से किसी एक लिपि पर ही सारा देश आ जायेगा।

हमारी अखिल भारतीय देशी भाषा को मुसलमानो ने ही हिंदी का नाम दिया था। लेकिन जब हिंदी हिंदुओ की भाषा बनी तब हिंदी और उर्दू को मिलानेवाली भाषा को कोई नाम देना पडा। यह आसान नही था। लेकिन समझौते के बिना एकता स्थापित नही होती। और समझौते के लिए हिंदी को हिंदुस्तानी कहना और फिलहाल दो लिपियो का स्वीकार करना अत्यन्त जरूरी था। गाधीजी ने राष्ट्रहित के लिए इन बातों का स्वीकार किया और प्रचार का काम मुझे सौंप दिया।

मैंने देखा कि जितना हम दो लिपियों का प्रचार करते हैं, विरोध बढता है, साम्प्रदायिकता बढती है। हिंदुस्तानी के प्रचार से दस-बीस मुसलमान राजी हुए। इससे अधिक हम कुछ न कर सके। और काग्रेस की स्वराज्य साधना जोरो से बढ रही थी। जगत् में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभाव कम हुआ था। इस सारी

परिस्थिति से लाभ उठाकर अंग्रेजो ने प्रथम भारत का विभाजन किया। और दोनों हिस्सों को स्वराज्य देकर वे यहाँ से चले गये। जिन्ना साहेब ने कहा था, 'First split and then quit' अंग्रेजो ने वात मान्य की। गाधीजो इसका खतरा जानते थे। लेकिन उनकी नही चली। काग्रेस के नेता देश के बँटवार के लिए, भले लाचारी से, अनुकूल हो गये।

और तब विनोबा ने भी देखा कि गाधीजी की दो लिपियों की बातें चलनेवाली नही हैं। इसलिए उन्होने नागरी का ही प्रचार चलाया।

लिपि-सुधार के बारे में विनोबा मेरे साथ हुए और आगे बढे। और जब उन्होंने देखा कि जनता की ओर से उसका स्वागत नही हो रहा है तब वे आज तक चलती आयी रूढ नागरी लिपि पर ही पहुँच गये और अपने लिपि-सुधार को लोकनागरी के नाम से अपने हस्तलिखित पत्रव्यवहार तक ही उन्होने सीमित किया।

लिपि का प्रश्न

भारत की भाषाएँ ज्यादातर संस्कृत कुटुम्ब की हैं। दक्षिण की द्रविड भाषाएँ भी संस्कृत से प्रभावित हैं। इसलिए अगर भारत की सब भाषाओ के लिए संस्कृत की नागरी लिपि का स्वीकार हो जाय तो राष्ट्रीय एकता मजबूत होगी। इतना ही नही, प्रादेशिक भाषाओं का प्रचलन भी आसानी से सर्वत्र बढेगा। यह खयाल नया नहीं है। देश के कई मनीषियों ने इसका प्रचार किया। इसमें सर्वश्रेष्ठ थे न्यायमूर्ति शारदाचरण मुखर्जी। इनके प्रयास से एक लिपि विस्तार परिषद्' की स्थापना हुई थी। उन्होंने भारत भर में नागरी का प्रचार करने का विचार फैलाया। उस समय अनेक प्रात के नेताओ ने इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किये थे। उनमें मैंने पजाब के सिखो के और मुसलमानों के भी हस्ताक्षर पढे थे। उन दिनो इस विचार का कड़ा विरोध कही नहीं था। [यह प्रचार नही चला। किसी के विरोध के कारण नहीं, लेकिन सार्वत्रिक अनास्था के कारण।] उन दिनों जोर किया होता तो भारत में भाषाओं के लिये नागरी लिपि का स्वीकार हो ही जाता। उर्दू भाषा के लिए भी शायद विशेष कठिनाई नही होती, लेकिन वह जमाना 'विचार मन में लाने का था, लोगों को सुनाने का था।' अमल के प्रयत्न करने की किसी को सूझती ही नहीं थी।

रवि बाबू का मत

जब मैंने अखिल भारतीय नागरी-प्रचार की बात हाथ में ली, तब अपनी-

अपनी प्रादेशिक लिपि का आग्रह और अभिमान बढ गया था। ऐसी हालत में मैंने सोचा कि सब प्रान्तो में जाकर सास्कृतिक और साहित्यिक नेताओ से मिलूँ, उनसे चर्चा करूँ, लेकिन अखबारी प्रचार नही करूँगा। अखबारी प्रचार में नाहक के विरोध को भी प्रोत्साहन मिलता है। एक अनुभव कहूँ। कविवर रवीन्द्रनाथ की सस्था में मैं पाँच महीना रहा था। कविवर से अच्छा परिचय था। मैंने उनसे एक-लिपि की बात की। तत्त्वतः उन्होने एक-लिपि के प्रस्ताव का समर्थन किया। फिर मैंने कहा कि आपके साहित्य में से उत्कृष्ट ग्रंथों की 'भाषा बंगला, लिपि नागरी'—ऐसी आवृत्तियाँ तैयार करेंगे तो आप सम्मति देंगे? उन्होने कहा—'बडी खुशी से। सम्मति तो आज ही दे रहा हूँ, लेकिन मेरे साहित्य के सारे अधिकार विश्वभारती को दिये है। उनसे आप बातें करें मैं, उनसे कहूँगा।' तो भी मैंने कहा, 'इस तरह नागरी बगाली में आपकी किताबें छापने से अगर अधिक नुक्सान हुआ तो हमारी सस्था भुगत लेगी। मुनाफा हुआ तो आपकी संस्था को देने में मुझे प्रसन्नता होगी।'

बंगला लिपि से प्रेम

इतना सब होने के बाद उन्होंने कहा—'जानते हो कि मैं नागरी लिपि से पूरा परिचित हूँ। सस्कृत ग्रंथ पढ़ता हूँ, हिन्दी पढता हूँ। नागरी की मुझे कठिनाई नही है। लेकिन मेरा साहित्य बगला लिपि में पढते मुझे जो आनंद आता है, वही आनद आज नागरी अक्षरों में पढते हुए नही आता। सच बात तो कहनी ही चाहिए।' कविवर की इस अतिम बात से मै बड़ा प्रभावित हो गया। एकता का हमारा आग्रह बढना चाहिये, किन्तु जिस तरह लोग अपनी-अपनी सस्कृति का प्रेम रखते है, वैसे ही अपनी लिपि के प्रति भी मनुष्य की आत्मीयता होती है, प्रेम होता है। इसलिए अपनी लिपि छोडने का विरोध करनेवाले लोगो के प्रति प्रेमादर से ही मुझे पेश आना चाहिए। तभी जाकर हम अपनी बातें सिद्ध कर सकेंगे। राज्यकर्ताओं की बातों का खयाल अलग है। उनसे डरनेवाले और लाभ उठानेवाले लोग अपनी भावनाओं को दबाकर राज्यकर्ता की बातें मानने को तैयार होते हैं। इस तरह से अगर एकता हो जाय तो एकता का लाभ तो हमें मिलेगा, लेकिन साथ-साथ चारित्र्य की हानि भी करनी होगी।

एकमात्र उपाय—प्रेम

लोगों को प्रेम से समझाकर उनका मन-परिवर्तन करना और अपना एकता का उत्साह उनमें लाना यही एकमात्र उपाय है। बाकी के सब उपाय हीन हो सकते है, खतरनाक भी हो सकते हैं।

तब से एकता का प्रचार पूरे हृदय से करता आया हूँ और जितनी सफलता मिलती है, उससे संतोष मानना सीखा हूँ।

लिपि-सुधार का प्रयत्न

इसके बाद आ गया नागरी-लिपि-सुधार का प्रश्न। महाराष्ट्र ने नागरी-लिपि-सुधार में बहुत काम किया है। न्यायमूर्ति रानडे जैसे राष्ट्रपुरुष का समर्थन इसमें मिला था। वह सब इतिहास ढूँढ करके मैंने पढ लिया। बंगाल में बँगला लिपि-सुधार के प्रयत्न हुए थे, उनका भी अध्ययन किया। तमिलनाड में लिपि-सुधार का खयाल बड़ा टेढा था। उसे भी समझ लिया। राजाजी जैसों के साथ चर्चा करके उनके प्रयत्न भी समझ लिये। सारे भारत में घूमकर मैंने जबरदस्त प्रचार किया। लेकिन अखबारों में कुछ भी नहीं लिखा।

इसके बाद मेरे खयाल से जो लिपि-सुधार आवश्यक था उसके अनुसार टाइप भी तैयार करवाये।

मेरे सुधार में दो विचार प्रधान थे (१) नागरी लिपि को अधिक वैज्ञानिक करते हुए सामान्य जनता को नागरी सीखना आसान बनाना चाहिए। नागरी की वर्ण-व्यवस्था यानी ध्वनि-व्यवस्था वैज्ञानिक है, संस्कृत भाषा के लिए पर्याप्त है, किन्तु *वर्ण-व्यवस्था (ध्वनि-व्यवस्था) और लिपि व्यवस्था एक नहीं है।* ध्वनि-व्यवस्था में आज भारत की सब भाषाओं के लिए चन्द ध्वनियों के लिए नये अक्षर बनाने होंगे। तब नागरी लिपि परिपूर्ण होगी। एक उदाहरण दे दूँ। नागरी लिपि में दीर्घ 'अ' नहीं है, ह्रस्व 'आ' नहीं है। भारतीय भाषाओं में 'ए' और 'ओ' दोनों ह्रस्व और दीर्घ होते हैं। लेकिन नागरी में ह्रस्व 'ए' और 'ओ' की व्यवस्था नहीं है।

(२) दूसरा उदाहरण 'च' वर्ग का। च तालव्य भी है और दन्त्य भी है। मराठी में और उर्दू में, अन्य भाषाओं में भी दन्त्य च, ज काफी मात्रा में है। इसके लिए नागरी में कोई व्यवस्था नहीं है। नागरी के अभिमानी अध्ययन करते नहीं और अपूर्णता की बात सुनकर चिढते हैं। उनको तो क्षमा ही करनी चाहिए।

सामान्य जनता के लिए नागरी लिपि आसान बनानी चाहिए यह है मेरा दूसरा उद्देश्य। *स्वर और स्वराखडी में साम्य लाना अत्यंत जरूरी है।* घोष और अघोष का भेद बताने के लिए एक सर्वसामान्य चिह्न हो तो सीखना कम हो जायगा। पचवर्गीय अक्षरों में कठोर और मृदु व्यजनों का फरक हम वैज्ञानिक ढग से बता सकते हैं। इसका विस्तार यहाँ नहीं करूँगा।

मुख्य उद्देश्य नागरी अक्षरों को प्रेस में छपवाने के लिए विचार करना चाहिए। आज की नागरी में ककहरा बताने अक्षरों के सिर पर इ ए ऐ तथा अनुस्वार के चिह्न ि े ै बिठाने पडते हैं और अक्षरों के पाँव के नीचे उ ऊ ऋ आदि के ु ू चिह्न देने पडते हैं, इस तरह नागरी कम्पोजिंग तीन मंजिल का है। इससे खर्च बहुत बढता है। ब्लैक टाइप बढाने पडते हैं। खर्चा बेहद होता है। अंग्रेजी टाइप एक मंजिल का है। इसमें कुछ अक्षर ऊपर उठते हैं, चंद नीचे जाते हैं, लेकिन कम्पोजिंग एक ही मंजिल का होता है (leg)। नागरी में भी उच्चारण क्रम से युक्ताक्षर और ककहरा सब कुछ एक पंक्ति में आ सकता है।

इस विषय का मैंने बरसों तक अध्ययन किया है असंख्य लोगों से चर्चा की है प्रेस का सारा विस्तार समझ लिया है, खर्च का हिसाब किया है और सबसे ज्यादा, धैर्य के साथ चन्द लोगों में इसका प्रचार करता हूँ।

अब जब हम सिवनी जल में थे, तब मेरे प्रचार की ओर तीन आदमी आकर्षित हुए। विनोबा, किशोरलाल मशरूवाला और भारतन कुमारप्पा। इनके अलावा श्री शिवाजीराव पटवर्धन जैसे जिज्ञासु अनेकानक थे। लेकिन प्रथम के तीनों अपनी पूरी लगन से मेरी बातें सुनने लगे। हमारी चर्चाएँ हुई। किशोरलाल भाई ने अंग्रेजी की रोमन लिपि का स्वीकार भारतीय भाषाओं के लिए करने का पक्ष उठाया। महीनों तक हम सुबह, दोपहर और रात को भी चर्चा करने लगे। इन तीनों ने मेरी दृष्टि का पूरी तरह से स्वीकार किया। केवल अमल में लाने की पद्धतियों में मतभद चालू रहा।

व्यवहार पक्ष

आखिरकार जेल से मुक्त हुए, तब विनोबा ने सिवनी जेल के अध्ययन का लाभ दुनिया को देने की ठानी। मैंने उनसे कहा कि मैं व्यवहार पक्ष को जानता हूँ। नागरी के स्वरों में इ ई, उ ऊ, ऋ, लृ, ए, ऐ इतने अक्षरों को अो औ के जैसे स्वराखडी में लाना चाहिए। इतना सुधार मैं भारत भर में कर रहा हूँ। इसका समर्थन आप कीजिए। बड़ा लाभ होगा। और आप युक्ताक्षर तोडकर हलंत चिह्न के साथ अक्षर एक के बाद एक ऐसा वैज्ञानिक प्रकार चलाना चाहते हैं उसे स्थगित कर दीजिए। मैंने विनोबा को तरह-तरह से समझाया, लेकिन मन के साथ अपना निर्णय होने के बाद किसीकी सूचना मानें तो वे विनोबा नहीं। उन्होंने अपनी बात जोरों से चलायी। देवनागरी लिपि को अधिक

वैज्ञानिक बनाने के बाद उसे उन्होंने नाम दिया 'लोकनागरी'। यह तो अच्छा ही हुआ। मैंने इस नामकरण का अभिनन्दन किया, किंतु युक्ताक्षरों में जो सुधार विनोबा कर रहे थे, उसका मैंने विरोध किया।

नतीजा ? विनोबा ने अपना साहित्य अपनी लोकनागरी में चलाकर देखा। अनुभव हुआ कि लोग साहित्य खरीदने को तैयार नहीं हैं।

स्वराखड़ी

इस अनुभव के बाद अगर मेरी बात मान जाते—युक्ताक्षर की बात छोड़कर स्वराखडी की बात चलाते तो अच्छा होता, क्योंकि स्वराखडी महाराष्ट्र में अत्यन्त लोकप्रिय हुई ही थी। गुजरात में, बंगाल में, आसाम में और पंजाब में कई लोगों ने स्वराखडी का स्वीकार किया था। दक्षिण के द्रविड प्रांत स्वराखडी पर संतुष्ट थे ही। लेकिन जब विनोबा ने अनुभव किया कि अपनी लोकनागरी नहीं चल रही है तब सोचा मैं तो ग्रामदान, भूदान आदि महान सुधार चलाने के लिए प्रस्तुत हुआ हूँ, लिपि-सुधार के प्रयत्न में अगर मेरा विचार-प्रचार कुंठित हुआ तो यह किस काम का! बस कटु अनुभव से वे ऐसे घबड़ा गये कि उन्होंने जहाँ तक छापने का सवाल है, लोकनागरी का त्याग करके पुरानी लोकरूढ लिपि चलाने का तय किया और अपनी संपूर्ण, विशुद्ध परिशुद्ध लोकनागरी अपने हस्तलिखित पत्र-व्यवहार तक सीमित बना दी। उनको अपने क्षेत्र में चाहे जो करने का पूरा अधिकार था, लेकिन जब उन्होंने हारकर स्वराखडी भी छपे हुए साहित्य में छोड़ दी तब सारे देश में इसका असर हुआ और मेरा स्वराखड़ी का सुधार जो सफल हो रहा था, मन्द हो गया।

इस परिवर्तन का लाभ उठाकर रूढिवादी उत्तर प्रदेश (यू० पी०) के हिन्दीवालों ने उनके नेता श्री गोविन्द वल्लभ पंत का सहारा लिया और एक विशाल अखिल भारतीय लिपि परिषद बुलायी। फिर तो पूछना ही क्या ? मेरे उत्तमोत्तम सहायक और समर्थक भी राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने के कारण गोविन्द वल्लभ पंत के पीछे चले और हमारा सारा प्रयास गोविंदार्पण हो गया।

पंत-परिषद् का परिणाम

पंतवाली परिषद् ने ख, भ आदि अक्षरों में थोड़े सुधार किये, जो सारे भारत में एकदम प्रचलित हुए, लेकिन न नागरी लिपि नागरी ध्वनि के जैसी वैज्ञानिक हुई, न प्रेस का खर्चा कम हुआ, न अंग्रेजी के विरोध में हम हिंदी की शक्ति बढ़ा सके।

[विनोबा की 'भाषा का प्रश्न' किताब के लिए लिखी गयी प्रस्तावना से उद्धृत।]

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार - प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १९
अंक : १
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

अगस्त, '७०

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा ६ रुपये है।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम : अगस्त, '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

आवरण मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस, मानमदिर, वाराणसी

वर्ष : १०
अंक : २
सितम्बर, १९७०

विनोवाजी अपने पवित्र जीवन का ७५वाँ वर्ष ११ सितम्बर, '७० को पूरा कर रहे है। हमारा अहोभाग्य है कि इस अनुपम वेला में साक्षात् दर्शन देते हुए आप हमारे बीच सुखासीन है। विनम्र भाव से नतमस्तक हो, इस शुभ अवसर पर हम आपका हार्दिक अभिनन्दन करते है। परमात्मा से हमारी यह याचना है

"—जीवेत शरदः शतम्।"

विनोबा तुम्हारी जय हो !

जैसे बिजली घूमती है घन में
ऐसे आजकल घूमता है मन में
तुम्हारा नाम !

अँधेरा रह-रहकर भर जाता है
लेकिन क्या इससे
उसका कुछ घट जाता है ?

तुम बीस बरस तक सूरज रहे
और बादल जो उठे हैं
वे तुमने उठाये हैं
और बरसेंगे जब वे
अँधेरे के बावजूद
तो हरी हो जायेगी
देश की धरती !
तुम्हारी जय हो !

मेरे मन का अँधेरा झूठा है
सब देखेंगे
आज नहीं कल
तुम्हारा तेज
होले हलके अनजाने
बंजर विस्तारों पर
आषाढ़-सावन बनकर टूटा है !

"तुम्हारी जय हो" कहना
कोई कोरी कामना नहीं है, क्योंकि
कामना नहीं है जिन्हें,
गिरते हुए स्तम्भ
देश के, जगत् के, मानवता के
देखते रहना है केवल गुमसुम
उनमें नहीं हो तुम !

तिस पर बल नहीं है तुम्हारे पास कोई
राम के सिवा
इसलिए तुम कुछ करते नहीं हो
राम के काम के सिवा ।
और विनम्र हो
सफलता के क्षण में
आम वृक्षों से भी ज्यादा
बाधा जो दीखती है लोगों को
वह इसीलिए छोटी है
सारी दुनिया तुम्हारे डगों के आगे
छोटी है !

तुम्हारी जय हो !
निर्भय हो किसान धरती पर
लहराए सर्वोदय
बंजर में, पहाड़ पर, परती पर !

—भवानीप्रसाद मिश्र

मुक्ति का मसीहा

विनोबा अब व्यक्ति नहीं रह गये हैं। जिस शरीर को हम विनोबा नाम से जानते हैं—उठने-बैठने, बोलने-चालने, खाने-पीनेवाला शरीर—विनोबा उससे बडे, सूक्ष्म, सौम्य हो गये हैं। विनोबा अब एक प्रकाश हैं, प्रेरणा हैं, इसलिए जीवन की सामान्य सीमाओं से परे हैं विनोबा एक विभूति हैं।

विनोबा ने जो शक्ति जीवन की साधना से कमायी वह उन्होंने हमे यो ही दे दी। उस शक्ति के स्पर्श से हम सशक्त हुए हैं। उससे हमारा सकल्प सुदृढ हुआ है। उस शक्ति से हमे अपनी साधना की दिशा और प्रक्रिया दोनों स्पष्ट हैं। विनोबा ने हमें लाकर क्रान्ति के एक राजपथ पर खडा कर दिया है। उन्होंने इतना तो किया ही है, साथ ही यह भी किया है कि हमारे ऊपर अपना 'बोझ' नही रखा है, उन्होंने कभी हमे बाँधा नही, दबाया नही, हमेशा जगाया, उठाया, बढाया। हम स्वतत्र हैं उन्हे स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए। इस त्याग की दूसरी कोई मिसाल नही है।

वर्ष : १९
अंक : २

आज की दुनिया मे हर जगह विचार बदी है—कहीं अन्धी स्वीकृति का, कहीं अन्धी अस्वीकृति का। विनोबा ने विचार को इस दोहरे अधेपन से मुक्त किया है। इस युग में विज्ञान ने मुक्ति की प्रेरणा दी, लोकतत्र ने मुक्ति का अवसर दिया, और विनोबा ने हमे मुक्ति का मार्ग दिखाया।

मुक्ति के ऐसे मसीहा को क्या हम कभी भूल सकेंगे? क्या दुनिया कभी भूल सकेगी? —राममूर्ति

एक मुलाकात

विनोबा : सज्जन, संत, स्कूलमास्टर

जॉन पापवर्थ, सम्पादक, 'रीसर्जेन्स', लन्दन

मैं विनोबा के सामने खो-सा गया। मैंने उनके बारे मे जो कुछ सुन रखा था, उससे मैं उनके व्यक्तित्व की इस नाटकीयता के लिए तैयार नही था। पवर्ना मे उनका निवास ऊँची टेकरी पर है जहां से चारो ओर का देहात अच्छी तरह दिखायी देता है। यह स्थान भौगोलिक दृष्टि से भारत के मध्य मे भी है।

मैंने सोचा था कि मुलाकात के लिए मैं किसी कमरे में बुलाया जाऊँगा, लेकिन ऐसा नही हुआ। एक बरामदे मे लगभग एक दर्जन लोगो के बीच, दरी पर मुझे बिठा दिया गया। मै पैर मोडकर बैठ गया। हम सब लोग दीवाल से सटे एक तख्त की ओर मुँह करके बैठे हुए थे। तख्त पर विनोबा लेटे हुए थे। उनका चेहरा एक हरे कपड़े से ढका हुआ था। विनोबा ने करवट बदली एक सेवक ने कटोरी मे दही दिया। विनोबा ने उसे बडे चाव से खा लिया। खाकर उपस्थित लोगो को देखा। लगा, जैसे सबको आँखो मे समेट लिया। और, एक किताब उलटने लगे। विनोबा ने अपनी दाढी बनवा दी है। वह गाढ़े रग का चश्मा पहनते हैं, और अक्सर चेहरे पर हरा कपडा लपेटे रहते हैं। देखनेवाले को यह सब रहस्यपूर्ण सा लगता है। विनोबा का खाना-पीना, उठना-बैठना, सब सबके सामने ही होता है।

अचानक विनोबा ने अपनी घडी देखी और उनके सचिव ने हममे से एक को बुलाया। मुलाकात शुरू हुई। दूसरे लोग देखते रहे, सुनते रहे। मैं कुछ नहीं समझ सका। चर्चा हिन्दी मे थी। उसके बाद मेरी बारी आयी। विनोबा अब पदयात्री नही रहे, लेकिन उनका मस्तिष्क उतना ही सजीव और स्पष्ट है। चर्चा के दौरान उन्होंने मेरे पत्र 'रिसर्जेंस' के एक पाठक के पत्र का एक अंश पढा जिसमे उसने लिखा था कि यह पत्रिका कितनी नीरस और शब्द-जाल से भरी हुई है। पत्र पढकर उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा : 'बोलो !' इसके पहले कि मैं कुछ कहूँ, बैठे हुए लोग हंस पडे।

जो लोग मानते हैं कि कौतुक का युग नहीं रहा, उनके लिए विनोबा चुनौती के रूप मे मौजूद हैं। उन्होंने नम्रता किन्तु दृढ़ता के साथ भारत के धनियो को राजी किया है कि वे अपनी भूमि का एक भाग भूमिहीनों को दें।

विनोबा ने जितनी भूमि बांटी है उतनी भारत की सरकार आज इतने वर्षों मे भी नही बांट सकी है। भूदान और ग्रामदान से विनोबा ने ऐसी ज्योति जलायी है जो शानदार तो है ही, चमत्कारपूर्ण भी है। अगर इसके साथ परिवर्तन करने का दृढ सकल्प जुड जाय तो यह ज्योति भारत का स्वरूप बदल देगी। भारत की सबसे बडी समस्या गाँवो की निष्क्रियता है। इस निष्क्रियता की बात सभी कहते हैं, लेकिन उपाय क्या है ? मर्ज पहचानना एक बात है, इलाज ढूंढना दूसरी। आज तक जितने इलाज ढूंढे गये हैं वे सब फेल हो चुके हैं। लेकिन मुझे लगता है कि कोई भी सामाजिक समस्या हो, उसके समाधान में एक तत्त्व जरूरी है, वह है असाधारण व्यक्ति का नेतृत्व। लोग आजकल इसका महत्त्व कम मानते हैं, शायद इसलिए कि कुछ पश्चिमी नेता नैतिक, आध्यात्मिक दृष्टि से मानव नहीं, दानव हुए हैं। स्वेतलाना ने अपने पिता स्टालिन का इन्हीं शब्दो मे उल्लेख किया है। लेकिन हम न भूलें कि मानव के विकास-क्रम मे बडे कदम ऊँचे आशय और प्रेरणा के व्यक्तियो ने ही उठाये हैं। क्या सत पॉल के गिरजाघर को किसी कमेटी ने बनाया था ? उसके निर्माता रेन ने कभी निर्माण-कला के किसी स्कूल का मुंह भी नहीं देखा था। डिग्री-डिप्लोमा की दृष्टि से वह 'क्वालिफाइड' भी नहीं था।

विनोबा भी 'क्वालिफाइड' समाजशास्त्री नहीं हैं, और न तो वह 'रूरल डेवलपमेन्ट' के विशेषज्ञ ही हैं। लेकिन अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से उन्होंने ग्रामीण जीवन मे परिवर्तन की यह प्रक्रिया शुरू की है, जो पीढियों तक चलती रहेगी। विनोबा के व्यक्तित्व को स्वीकार करना व्यक्ति-पूजा नहीं है, और अगर हो तो भी मैं विनोबा के व्यक्तित्व को कही अधिक हर्ष से स्वीकार करूंगा बनिस्बत उन लोगों के व्यक्तित्व के, जो आज राजनीति पर हावी हैं।

विनोबा को देखने पर तुरन्त कोई यह सोच सकता है कि यह एक स्कूल-मास्टर है जिसकी अभी ऊँची और अच्छी-अच्छी बातें कहने की आदत नहीं छूटी है। लेकिन नहीं, इस व्यक्ति के व्यक्तित्व मे एक शक्ति है जिसका अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नही। मैं जॉन कालिन्स, और उनकी पत्नी डायना से चर्चा कर रहा था। वे भी दिल्ली की गोष्ठी के बाद विनोबा से मिलने आये थे। वे विनोबा के बारे मे मेरी राय से सहमत थे। महान व्यक्ति ? हाँ, सज्जन, एक सत ! लेकिन क्यों? कैसे ? उनके व्यक्तित्व के गुण को शब्दों में उतारना सम्भव नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे सगीत का आनन्द उसके विवरण से नहीं लिया जा सकता।

विनोबा ने अनेक गाँवो मे भूमि के स्वामित्व का स्वरूप बदल दिया है। भूमि के स्वामियो ने उन्हे भूमि दी है। ऐसा कब, किस भूमिपति ने किया है? स्टालिन जैसा लौह-पुरुष भी रूस के किसानो से यह नही करा सका!

भूदान ग्रामदान की आलोचनाएँ हुई हैं, और ऐसा नही है कि उनमे सार नहीं है। लेकिन विनोबा को एक सफलता मिल गयी है। भारत की नैतिक कल्पना मे उन्होने एक व्यावहारिक लक्ष्य का प्रवेश करा दिया है, जो देश को एक कठिन से-कठिन समस्या के समाधान का रास्ता दिखा सकता है। वह समस्या है भारत के ग्रामीण जीवन की निष्क्रियता को समाप्त करना। जो भूमि दान मे मिली है वह अच्छी है, बुरी है, या दाताओं ने किस नीयत से दी है वह अच्छी है या बुरी है, या अभी तक बहुत परिवर्तन नहीं दिखायी देता, आदि प्रश्न बहुत महत्त्व के नहीं हैं। विनोबा ने पैदल चलकर देश की यात्रा की है। वह जानते हैं कि बडी-से बडी यात्रा मे एक पैर के बाद दूसरा पैर उठाने से ही यात्रा शुरू होती है। और अगर यात्रा मे किसी जगह रुककर सोचिए कि कितनी यात्रा पूरी हुई और एक बिन्दु से आगे-पीछे कुछ ही कदम गिनिए तो क्या लगेगा? लगेगा कि इतना ही चले! इस तरह प्रगति थोड़ी लगेगी, लेकिन सही दिशा मे कदम उठा गया, यह बडी बात है।

मुलाकात के अन्त में उन्होंने कहा 'हम लोग सहमत हैं।'

मैंने कहा 'आश्चर्य है कि जीवन भर का पापी और जीवन भर का सत, दोनों पूर्ण सहमत हैं।'

विनोबा ने उत्तर दिया 'ईश्वर ही बता सकता है कि कौन सत है, कौन पापी।' यह कहकर वह रुक गये, फिर बोले: 'किन्तु पापी के सामने भविष्य है, जब कि सत के लिए भूत ही भूत है।' (मूल अंग्रेजी से)

विनोबा के शिक्षण-विचार

स्वतन्त्रता के बाद एक दिन के लिए भी पुरानी शिक्षा-पद्धति चलनी नही चाहिए थी। एक साल के लिए शिक्षा-सस्थाएँ बन्द कर दी जाती, देश के शिक्षा-शास्त्री बैठकर स्वतन्त्र देश की आवश्यकता के अनुरूप हिन्दुस्तान की तालीम का ढाँचा तैयार करते तो तालीम शुरू होती। जैसे विदेशी राज्य गया तो एक दिन के लिए भी विदेशी झडा नहीं चला वैसे ही विदेशी राज्य गया तो विदेशी शिक्षा पद्धति को एक दिन के लिए भी टिकना नहीं चाहिए था। अगर पुराना झडा चले तो उसका अर्थ होगा पुराना राज्य ही चल रहा है। अगर पुरानी तालीम भी चल रही है तो समझना चाहिए कि पुराने राज्य का ही 'एक्सटेंशन' चल रहा है।

शिक्षा मे ऐसा सुधार करना चाहिए, जिससे ज्ञान और कर्म का समन्वय हो। इस प्रकार का समन्वित व्यक्तित्व विकसित करना ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। कम और ज्ञान अलग नहीं हैं, दोनो एक हैं। नयी तालीम कर्म और ज्ञान की एकता पर ही आधारित है।

× × × ×

शिक्षा में ब्रह्मविद्या और उद्योग का समावेश होना चाहिए। एक आत्मा की भूख शान्त करे और दूसरा शरीर की।

× × × ×

आजकल जैसा समाज है उसे वैसा रखते हुए नयी तालीम को चलाया नहीं जा सकता। नयी तालीम तो सामाजिक मूल्यो मे क्रान्ति है। उसका लक्ष्य तो एक नये समाज का निर्माण है जो वर्गविहीन और शोषणमुक्त हो। इस नये समाज का निर्माण ज्ञान और कर्म के समन्वय के बिना सम्भव नहीं है। ज्ञान और कर्म का सम्बन्ध विच्छेद सामाजिक अन्याय को जन्म देता है। इस नये समाज का एक लक्षण है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शरीरश्रम करे। ऐसा नहीं होता तो परिणाम शोषण होगा। इसीलिए नयी तालीम मे आधा समय पढ़ने और आधा समय हाथ के काम करने की बात कही गयी है।

नयी तालीम अहिंसा की शिक्षा है। उसका लक्ष्य समाज को हिंसा से मुक्त करना है। नयी तालीम छात्रों को ऐसी योग्यता दे कि वे कह सकें कि वे देश की अहिंसात्मक भाग से सुरक्षा कर सकेंगे। नयी तालीम का लक्ष्य भय से मुक्ति है। नयी तालीम के विद्यार्थी को भय से मुक्त होना चाहिए।

× × × ×

कृषि के ज्ञान के बिना जीवन अधूरा रह जाता है। हमारा भूमि से सम्पर्क होना चाहिए। हमारी जड़ें धरती मे होनी चाहिए। इससे सृष्टि के साथ तादात्म्य का बोध होता है।

× × × ×

शिक्षा-संस्था का सगठन एक अच्छे परिवार के नमूने पर होना चाहिए। उसका आधार आत्मसंयम और त्याग हो भोग नही।

× × × ×

नयी तालीम नित्य नयी है। उसमे जड़ता नही आनी चाहिए। वह देश और काल के अनुसार भिन्न होगी। उसे नित्य नयी रहना चाहिए। दस वर्ष पहले का ढाँचा पुरानी तालीम है। पुराना ढाँचा नयी तालीम का नही चलेगा। नित्य नये प्रयोग होना चाहिए। नयी तालीम केवल प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा नहीं है। उसके उसूल शिक्षा के सभी स्तरों पर लागू होने चाहिए। वह केवल गाँव के लिए नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए, उसके विकास के प्रत्येक स्तर के लिए है।

× × × ×

नयी तालीम शिक्षा-पद्धतिमात्र नहीं है। वह एक्टिविटि एजूकेशन नही है। डाल्टन पद्धति 'प्रोजेक्ट पद्धति' की भाँति वह शिक्षा-पद्धति नहीं है। वह तो नया दृष्टिकोण है—नया एप्रोच' है—जीवनयापन की एक पद्धति है। नयी तालीम चलानी हो तो पूरी नयी तालीम चलाइए, नहीं तो पुरानी ही तालीम चलाइए। आज जो नयी तालीम चल रही है वह नयी तालीम का वानरीकरण है। उसे छोड़ देना ही ठीक होगा।

× × × ×

शिक्षक शान्तिसैनिक है। तालीम का महकमा शान्ति का महकमा है। हिन्दुस्तान पर बड़ी जिम्मेदारी है। दुनिया देख रही है। आप रूस और अमेरिका की सैनिक प्रतिद्वंद्विता नहीं कर सकते। आप आध्यात्मिक सेना ही तैयार कर सकते हैं।

नयी तालीम पुराने मूल्यों के प्रति विद्रोह करना सिखाती है। वह झाड़ू की तालीम है—पुराने मूल्यो को झाडकर फेंक देने की तालीम। अगर वह पुराने जर्जर मूल्यो को झाडकर फेंक नही देती तो वह नयी तालीम नही है।

× × × ×

तालीम सरकार के हाथ मे नहीं होनी चाहिए, नहीं तो तालीम एक ढाँचे में ढाली जायगी और दिमाग स्वतन्त्र नहीं होगा। इसलिए शिक्षा शासन-मुक्त रहनी चाहिए। न्यायालय की भाँति शिक्षा विभाग भी शासन से ऊपर रखना चाहिए। न्याय-विभाग को शासन की तरफ से तनख्वाह मिलती है, लेकिन फिर भी उस पर शासन का अकुश नहीं है। यह बात न्याय विभाग के बारे मे जिस तरह मान्य हो गयी है उसी तरह शिक्षा के बारे मे भी मान्य होनी चाहिए।

× × × ×

शिक्षा पर सरकार का नहीं समाज का नियन्त्रण हो। शिक्षा पर समाज के विद्वज्जनों का नियन्त्रण हो। राज्य सबके अनिवार्य अध्ययन के पाठ्यपुस्तक निश्चित न करे। राज्य शिक्षा-सस्थाओ को जेनरल गाइडेन्स दे और उन पर छोड दे कि वे स्वीकार अथवा अस्वीकार करें। राज्य पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तकों की सस्तुतियाँ करे, परन्तु अनिवार्यतः लागू न करे। शिक्षा-सस्थाएँ विद्यार्थियो को ऐसी शिक्षा देने के लिए, जिसे वे अच्छा समझती हों, स्वतन्त्र हैं।

× × × ×

जो विभाग नौकरी दे वह अपनी परीक्षाएँ स्वयं ले ले यह आवश्यक नहीं रखा जाय कि नौकरी के लिए हाईस्कूल पास करना अथवा ग्रेजुएट (स्नातक) होना जरूरी है।

× × × ×

समवाय उस पद्धति की सज्ञा है, जिसमें ज्ञान और कर्म का इस तरह समन्वय हो कि छात्र को पता नहीं चले कि स्कूल मे जो हो रहा है वह 'ज्ञान' है अथवा कर्म।

× × × ×

तालीम के लिए अग्रेजी की जरूरत नहीं है। मातृभाषा का पूरा ज्ञान हो जाय तब दूसरी भाषा सिखायी जाय। कम से-कम बुनियादी स्कूल मे अग्रेजी पढ़ाने की जरूरत नहीं है। इसके बाद जरूरत हो तो पढ़ायी जाय।

स्कूल को परिश्रमालय होना चाहिए। शरीर-श्रम सेवा है, पूजा है, आनन्द है, वह दिमाग को ताजा रखता है और बुद्धि को तीक्ष्ण बनाता है। उद्योग के माध्यम से वैज्ञानिक ढग से सोचने की आदत डालनी चाहिए। उद्योग के माध्यम से तीन लक्ष्य पूरे होते हैं (१) व्यक्तित्व का समन्वित विकास होता है (२) गांव के लिए उपयोगी ज्ञान प्राप्त होता है, (३) जीवन के लिए हुनर हासिल होती है। परन्तु नयी तालीम मे उद्योग शिक्षण मात्र नहीं है। वह तो व्यक्ति की क्षमताओ का पूर्ण विकास है—शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक क्षमताओ का।

\+ + + +

शिक्षकों के हाथ मे सारे देश का मार्गदर्शन होना चाहिए, परन्तु यह तभी होगा जब शिक्षक सत्ता के पीछे न भागकर स्वय अपनी स्वतन्त्र शक्ति का विकास करें। शिक्षक को दल तथा सत्ता एव सघर्ष की कलुषित राजनीति से ऊपर उठकर विश्वव्यापक मानवीय राजनीति तथा जनशक्ति पर आधारित लोकनीति को अपनाना चाहिए। राजनीति से अलग हुए बिना वे राजनीति पर असर नहीं डाल सकते। लेकिन राजनीति से अलग रहकर भी शिक्षको को जनता से सम्पर्क रखना चाहिए। अगर शिक्षक ऐसा मानते हैं कि हमने स्कूल-कालेजो मे पढ़ा दिया, अब हमारा कोई कर्तव्य नही है, तो चलेगा नहीं। जनता के साथ सम्पर्क नही हो, लोकसेवा द्वारा लोकमानस का साक्षात्कार नही हो, तो राजनीति पर असर नहीं पड़ेगा।

राजनीति और धर्म पुराने पड गये हैं। भिन्न भिन्न मजहबो की जगह अध्यात्म आना चाहिए और राजनीति की जगह विज्ञान। राजनीति को छोड़ना होगा। धर्म को छोड़ना होगा। व्यापक विज्ञान और व्यापक अध्यात्म को स्वीकार करना होगा, तभी बुनियादी मसले हल होंगे।

प्रस्तुतकर्ता यशोधर श्रीवास्तव

रूसो, मानव-विज्ञान के पिता

क्लॉड लेवि-स्ट्रॉस

[क्लॉड-लेवि स्ट्रॉस सम्भवत आजकल संसार के श्रेष्ठ मानव-वैज्ञानिको मे से एक हैं। वे कालेज डि फ्रास मे प्रोफेसर और उसकी सामाजिक मानव विज्ञान की प्रयोगशाला के निदेशक हैं।—स०]

रूसो कृषक जीवन के एक गम्भीर सूक्ष्म निरीक्षक से ज्यादा और कुछ थे। वे विदेश यात्रा सम्बन्धी पुस्तको के एक उत्साही पाठक विदेशी रिवाजो और विश्वासो के एक चतुर और निष्पक्ष अन्वेषक थे। निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि मानव विज्ञान के वास्तविक आरम्भ के एक शताब्दी पहले उन्होने इसकी कल्पना, जिज्ञासा और भविष्यवाणी की उसे सीधे उस जमाने म विद्यमान प्राकृतिक एव मानव विज्ञानो की श्रेणी तक पहुँचा दिया।

यह भविष्यदर्शी धारणा, जिसे उन्होने एक दलील एव एक क्रिया, दोनो रूपो मे व्यक्त किया 'डिसकोर्स इन ए ओरिजिन आफ इनइक्वैलिटि' (असमानता के उद्भव पर एक लेख) की एक लम्बी पाद-टिप्पणी मे प्रकट होती है। रूसो ने लिखा, 'मेरी समझ म यह कम आता है कि क्यो स्वय शिक्षा पर गर्व करनेवाले इस युग मे, ऐसे दो मनुष्य नही दिखाई देते जिनमे पहला अपनी सम्पति से दो हजार क्राउन और दूसरा अपने जीवन से दस वर्ष केवल प्राकृतिक पत्थरो और पौधों को नही, अपितु मनुष्यो और रिवाजो को एक बार पढते हुए दुनिया के चारो ओर एक ऐतिहासिक यात्रा करने के लिए दान दे सकता है।'

और कुछ आगे चलकर वे विस्मित होते हैं 'सारी दुनिया राष्ट्रो का ताना-बाना है जिसके बारे मे हम केवल नाममात्र जानते हैं और हम मानवजाति को आँकने का गर्व करते हैं।'

'कल्पना करें कि एक मोंटेस्क्यू, एक बफून, एक डिडेरोट, एक डी अल्बेर्ट, एक कान्डिलाक, या उसी प्रकार के आदमी जितना वे जानते हैं सिर्फ उसीको मानकर एवं बताते हुए अपने गाँववालो को यह सिखाने निकलते हैं कि टर्की ईजिप्ट व रबेरी, मोरावको साम्राज्य गिनी काफिरो का प्रदेश अफ्रीका के भीतरी एव पूर्व तट के प्रदेश मालाबार, मुगल गंगा के तट, स्याम, पेगु और अवा के साम्राज्य, चीन, टारटारी, और सबसे ऊपर जापान और दूसरे गोलार्ध के मैक्सिको, पेरू, चिली, मगल्लन प्रदेश, वास्तविक या काल्पनिक पारागोनि को न भूलते हुए,

टुकुमान, पेरुवे तथा अगर सभव हो तो ब्राजील, कैरेबियन, फ्लोरिडा और सारे असभ्य प्रदेश कैसे हैं। ऐसी एक यात्रा दूसरो की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होगी तथा सबसे अधिक ध्यान से की जानी चाहिए।

'कल्पना करें कि ये नये हरकुलिस उन अविस्मरणीय यात्राओ से वापस *आने पर अपने अवकाश के समय उन्होने जो देखा था, उस प्राकृतिक*, नैतिक और राजनीतिक इतिहास को लिखनेवाले थे, तो हम अपने आप देखेंगे कि उनकी लेखनी से एक नयी दुनिया उभर आती है, और हम यह समझना सीखेंगे कि हमारा अपना ' (असमानता के उद्‌भव पर एक लेख, टिप्पणी १०)।

क्या यह आधुनिक मानव विज्ञान के विषय के अलावा कार्यचालन की विधि भी नहीं है?

किन्तु रूसो केवल मानव विज्ञान का दूरदर्शी हो नही बल्कि वास्तव मे उसका निर्माता है। पहले उन्होने 'डिसकोर्स आफ दी ओरिजिन एण्ड फाउंडेशंस आफ इनइक्वैलिटी अमंग मैन' (मनुष्य के बीच की असमानता के रहस्य पर एक लेख) लिखकर असल मे वैसा ही किया। किताब ने प्रकृति और संस्कृति के बीच के सम्बन्ध के प्रश्न सामने रखे, और यह शायद सामान्य मानव विज्ञान पर लिखा पहला प्रबन्ध है। दूसरा उन्होने मानव विज्ञान के लक्ष्यों को नीतिज्ञो और इतिहासकार के लक्ष्यो से पृथक् करके उल्लेखनीय स्पष्टता एव सूक्ष्मता से उस विज्ञान को सिद्धान्त के रूप मे प्रस्तुत किया।

"जब कोई मनुष्य का अध्ययन करना चाहता है तो उसे नजदीक से देखना चाहिए। उसका अध्ययन करने के लिए उसके अन्तराल तक देखना है, विशेषताओ को समझने के लिए, पहले उसकी विषमताओ को समझना चाहिए।' (भाषाओ के उद्‌भव पर लेख, अध्याय ८)

मानव-विज्ञान के प्रति रूसो के उपगम की यह रीति एक नये विज्ञान का उदय सूचित करती है और इसे स्पष्ट करने मे *सहायता करती है* जो *प्रथम दृष्टि* म दोहरा विरोधाभास लगेगा, कि रूसो एक ही समय मे पृथ्वी के सबसे सुदूर कोने में जीवित मनुष्य के अध्ययन का समर्थन कर सके किन्तु वस्तुत उन्होंने सबसे अधिक ध्यान अपने सबसे पासवाले मनुष्य पर अर्थात् स्वयं पर केन्द्रित किया और उनकी सभी रचनाओं मे दूसरों के साथ तादात्म्य की उनकी सुव्यवस्थित इच्छा अपने ही साथ तादात्म्य के पूर्ण निषेध के साथ साथ चली।

अब हरेक मानवविज्ञानी को किसी न-किसी प्रकार अपने जीवनकाल म, समान दिखाई देनेवाले इन दो विरोधाभासों को समझना चाहिए जो वास्तव म एक सिक्के के परिवर्तन योग्य दो पार्श्व के अलावा और कुछ नहीं है।

हर समय जब मानवविज्ञानी मैदान मे उतर आता है, ऐसी दुनिया को पहचानता है जहाँ उसके चारों ओर सारी बातें अपरिचित तथा अकसर विपरीत लगेंगी। वह अपने को अकेले कुछ नहीं देखता, बल्कि अपने आपको, अपने विषय से सम्बद्ध करके देखता है, जो अपने को और अपने काम को जारी करने मे मदद करेगा।

शारीरिक और मानसिक रूप से, थकान, भूख और कठिनाइयो से जर्जरित होने के कारण, अपनी सामान्य आदतों के विघटन से और पूर्वाग्रहो की एकाएक प्रतिक्रिया—जिसके होने की उसे कल्पना तक न थी—के कारण उसकी आत्मा इन अपरिचित परिस्थितियो मे अपने आपको ऐसे रूप मे प्रकट करती है मानो वह उसके उस व्यक्तिगत जीवन के सारे आघातो और सघातो से पीडित और जर्जरित हो चुकी है, जिसने न केवल उसकी जीविका के वरण पर प्रभाव डाला, अपितु उसके बाद के जीवन-प्रवाह को भी गहराई से प्रभावित किया।

इस महान् सिद्धान्त के आविष्कार के लिए हम रूसो के प्रति आभारी हैं—और यही एकमात्र सिद्धान्त है जिस पर मनुष्य का विज्ञान आधारित हो सकता है। किन्तु जब तक यह स्वीकृत दर्शन कोजिटो (कोजिटो एर्गो सम) के डेसकार्टे के सिद्धान्त पर आधारित है, वह पहुँच और समझ के बाहर और अबोधगम्य रहा और जिस बहाने पर, यद्यपि समाजविज्ञान और प्राणिविज्ञान को छोडकर क्यो न हो, भौतिक विज्ञान का भवन खड़ा किया था, उसके तथाकथित तर्कशास्त्रीय प्रमाण को रोक दिया गया।

डेसकार्टेस का विश्वास था कि मनुष्य के अन्तर से बाहरी दुनिया मे वे सीधे पहुँच सकते हैं। यह देखते हुए कि इन दोनों सीमाओं के बीच समुदाय और सभ्यताएँ विद्यमान हैं, अर्थात् मनुष्यों से बनी दुनिया।

रूसो भावपूर्ण ढग से अपने को अन्य पुरुष मे समझते हैं जैसे 'वह' (कभी-कभी इस 'वह' को दो विभिन्न भागो मे विभक्त करके, जैसे सवादो मे किया है) और इस प्रसिद्ध नियम 'मैं दूसरा आदमी हूँ' की घोषणा करते हैं। (मानव-विज्ञानी यह बताने के पहले कि अन्य लोग भी उन्हींके समान आदमी हैं, या दूसरे शब्दो मे, दूसरा आदमी मैं ही हूँ, यही करते हैं।)

रूसो, इस प्रकार, अप्रतिबद्ध वास्तविकता के विचार के महान् प्रवर्तक के रूप मे आते हैं। अपने पहले प्रोमेनेड मे, वे अपने उद्देश्य को, 'मेरी आत्मा एवं उसके परिणामों के सुधारो का अध्ययन करना'' बताते हैं और आगे कहते है:

"एक दृष्टि से, मुझे अपने पर वही प्रयोग करना है जो कि भौतिक विज्ञानी वायुमंडल में उसकी दैनिक स्थितियों को समझने के लिए करते रहते हैं।"

रूसो हमसे यह कहना चाहते हैं (और यद्यपि आधुनिक मनोविज्ञान और मानव-विज्ञान ने इसको और अधिक साधारण बना दिया है, तो भी यह एक सबसे आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटन है) कि एक तीसरा आदमी 'वह' है जो मेरे अन्तर में सोचता है और पहले-पहल इस भ्रम की ओर ले जाता है कि वह मैं ही हूँ जो सोचता है।

मौंटाइन के प्रश्न पर 'मैं क्या जानता हूँ ?" (जिसने सारी चर्चा का प्रारम्भ कराया) डेसकार्टेस ने सोचा कि वे यह उत्तर दे सकते हैं 'मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ।" इस पर रूसो ने प्रत्युत्तर दिया 'मैं कौन हूँ ?" इसका उत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता, जब तक कि दूसरा और भी आधारभूत प्रश्न 'क्या मैं हूँ" का समाधान नहीं दिया जाता है। वैयक्तिक अनुभव से इसका जवाब, 'वह" की धारणा है जो रूसो का आविष्कार है और जिसे उत्कृष्ट सुबोध गम्यता के साथ उन्होंने तुरन्त छानबीन के लिए पेश किया..

अब अगर हम विश्वास करते हैं कि जब पहला मानव-समुदाय पृथ्वी पर आया, तब प्रकृति की स्थिति से संस्कृति की ओर भावुकता से ज्ञान की ओर और पाशविकता की अवस्था से मानवीयता की ओर गया मनुष्य ने एक त्रिरूपी परिवर्तन किये (जिसे वस्तुतः रूसो अपने 'डिसकोर्स आन इनइक्वैलिटी' में बताने लगे थे), हम तभी ऐसा कर सकते हैं जब हम मनुष्य की सबसे पहले की अवस्था पर कुछ अनिवार्य मनीषा या गुण जिसने उसे इस त्रिविध परिवर्तन की प्रेरणा दी, का आरोप लगायें।

इस प्रकार पहला आदमी अपनी सहज बुद्धि से अपने को सहजीवों से अभिन्न महसूस करने लगा। और जबकि बढ़ती आबादी ने उसे नये प्रदेशों में बसने को मजबूर किया, और जीवन के नये मोड़ों को अपनाने को विवश किया और उसे अपनी निजी पहचान का उद्बोधन दिया, फिर भी वह कभी भी इस संवेदनशीलता को पूरी तरह नहीं भूला।

लेकिन यह उद्बोधन उसे तभी मिला जबकि उसने क्रमशः औरों के व्यक्तित्व का तथा अनेक जानवरों को उनकी जातियों के अनुसार, पारस्परिक स्थिति व मानसिक स्थिति का, दूसरे मनुष्य के व्यक्तित्व व अपने निजी व्यक्तित्व को, पहचानना सीख लिया।

यह पहचान कि सारे मनुष्य तथा जानवर सवेदनशील प्राणी हैं (यही तो पहचान व्यक्त करता है) उनकी भिन्नताओ के सम्बन्ध म मानव की जानकारी के काफी पहले घटित हुई थी, पहले सारे जीवित प्राणियो की सामान्य विशेषताओ के सम्बन्ध म, और बाद म ही मानव के सम्बन्ध म जिसे अमानवीय गुण माना गया है। इसी सुस्पष्ट निर्णय पर ही रूसो ने कोजिटो के डसकोर्ट के सिद्धान्त को बन्द कर दिया।

रूसो के विचार, इस प्रकार, दो तरहो से बने हुए हैं, दूसरे के साथ प्राणिजगत् के सभी जीवो सहित सभी दूसरों से निकाले गये 'दूसरे' के साथ पहचान और अपने साथ पहचान करने का निराकरण। अर्थात् जो अपने को सुयोग्य' दिखा सकेगा उन सबका निराकरण। ये दोनो मनोभाव पूरक हैं, दूसरा वास्तव मे पहले का प्रेरक है, मैं मैं नहीं हूं, किन्तु 'दूसरो' से सबसे अधिक कमजोर तथा विनीत हूँ। यही स्वीकृति की नैसर्गिकता रहती है।

रूसो की क्रांति मानव विज्ञान सम्बन्धी क्रान्ति का एक पुरोगामी तथा प्रारम्भिक रूप है जो थापी हुई एकता का खडन करती है चाहे वह एकता अपनी निजी सस्कृति के साथ एक सस्कृति की हो या किसी सस्कृति के व्यक्तिगत सदस्य की जनसामान्य या उस कार्य के साथ हो जिसे वह सस्कृति उस पर थोपना चाहती है।

दोनों मामलो म, सस्कृति एवं व्यक्ति अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के अधिकार का दावा करते हैं, और यह केवल मनुष्य से परे, अर्थात् सभी जीवों के साथ और इसलिए दुखी जीवो के साथ, प्राप्त किया जा सकता है और जन सामान्य या कार्य के पहले भी, अर्थात् ऐसे ही किसी जीव के साथ और उसके साथ नही जो पहले ही से व्यवस्थित और वर्गीकृत है।

इस दृष्टि से मैं और 'वह' जो उस भिन्नता से मुक्त हैं जिसे केवल दर्शन से ही प्रोत्साहन मिल सकता है, एक बार फिर मिल गये हैं और एक हो गये हैं। इस प्रकार सतत प्राप्त इस मूल एकता से वे 'हमको' और 'उनको' अर्थात् मनुष्य के प्रति विरोधात्मक एव प्रतिकूल समुदाय को जिसे अस्वीकार करने के लिए मनुष्य जल्दी ही तैयार हो जाता है, एकमात्र मिला सकते हैं क्योकि रूसो ने अपने निजी उदाहरण स मनुष्य को सिखाया है कि सभ्य जीवन के असहनीय विरोधाभासो से कैसे रक्षा की जाय।

यद्यपि यह सच है कि मनुष्य प्रकृति द्वारा बहिष्कृत है और समाज उस पर अत्याचार करता रहता है वह कम से कम अपने निजी फायदे के लिए अपनी

दुनिया के सिरों को, समुदाय की प्रकृति पर विचार करने के लिए प्रकृति के समाज को तलाश करते हुए मोड सकता है। मुझे लगता है कि यह सोशल 'कांट्रैक्ट' (सामाजिक अनुबन्ध) 'लैटर्स आन बाटनी' (वनस्पतिशास्त्र पर पत्र) और रेवेरीज (दिवा स्वप्न) आदि के शाश्वत सन्देश हैं।

किन्तु आज यह हम सब पाठकों के लिए है, जिन्होंने रूसो की उस भविष्य-वाणी का जो 'उन अभागों के आतंक, जो आपके बाद जीवित रहेंगे' के विषय में है, का अनुभव किया है, कि उनके विचार अपनी पूरी ताकत से मन मे जमते हैं और उनकी सीमाओं में समेटकर प्रकट होते हैं।

इस दुनिया मे, मनुष्य के प्रति सभी प्रकार के विध्वंस से युक्त ज्यादा क्रूर, शायद पहले ऐसी क्रूरता नहीं रही, हत्याकांड और उत्पीडन की हमेशा अस्वीकृति हुई है, इसमे सन्देह नहीं है, किन्तु हमने सरलता से इन्हे महत्त्वपूर्ण न समझकर समाप्त कर दिया है, *क्योंकि वे उन दूरस्थ लोगो से सम्बन्धित हैं जिन्होने, जैसा कि* हमे बताया गया है, हमारी भलाई के लिए और कम-से-कम हमारे नाम पर दु ख उठाये हैं। जैसे-जैसे हमारे सदस्य संगठित होकर बढते जाते हैं, और मानवता का छोटा-सा भी भाग भोलरी आक्रमणो से मुक्त नही होता, हमारी इस दुनिया मे हत्याकाड और उत्पीडन कम होते जा रहे हैं, और हम सबमे समाज मे रहने की आकुलता बढ रही है।

रूसो ने सभ्यता के अत्याचारो और दुरुपयोगो की ओर उँगली उठाते हुए उसका परीक्षण किया और इनकार किया कि ये कदाचित ही मनुष्य मे नैतिकता का अभ्यास करायेंगे, इसलिए मैं पुन कहता हूँ कि आज रूसो उस भ्रान्ति को *मिटाने मे सहायता कर सकते हैं, जिसके* भयंकर प्रभाव आज हम अपने मे, और अपने ही ऊपर छाये हुए वातावरण मे देखते हैं। क्या यह मानवीय प्रकृति की अनन्य महिमा की गलत धारणा के कारण तो नहीं है कि स्वयं प्रकृति ने उसकी पहली विकृति को, अपरिहार्य रूप से अन्य विकृतियों का अनुकरण करते हुए सह लिया था?

पिछली चार शताब्दियों मे कभी भी, पश्चिम के लोग यह समझने की अच्छी स्थिति मे नहीं थे कि मानव समाज और प्रकृति मे विद्यमान जानवरों को पृथक् करनेवाली एक दीवार को खड़ा करने की स्वयं अनधिकार चेष्टा करने से, और सारे गुणों के लिए, जिन्हे दूसरो मे नही माना, अपने को सुयोग्य मानने से, उसने एक नारकीय चक्र को चलाया है।

कुछ लोगों को दूसरे लोगो से अलग करके उस दीवार को और मजबूत बनाना था और हमेशा कतरानेवाले लोगो के मन मे अपने दावे का, कि उन्हींकी

एकमात्र मानव-संस्कृति है, समर्थन करता था। जो अभिमान के सिद्धान्त एवं लक्ष्य पर आधारित है ऐसी एक संस्कृति शुरू से ही दूषित थी।

सिर्फ रूसो ने इस प्रकार के अहंकारवाद के विरुद्ध आवाज उठायी। उपर्युक्त डिसकोर्स की पाद-टिप्पणी में, रूसो बताते हैं, कि मुसाफिरों के फूहड़ विवरणों से, उन्होंने प्राणियों की तुलना में जिस किसीमें भी विद्यमान मानव प्रकृति को इनकार करने की अपेक्षा, अफ्रीका और एशिया के बड़े बानरों को किसी अज्ञात वर्ग के मनुष्यों के रूप में पहचानना पसंद किया है।

हममें से प्रत्येक यही आशा कर सकता है कि एक दिन हम अपने साथियों द्वारा जानवरों जैसे व्यवहृत नहीं होंगे, यह आशा अपने सब साथियों में है। उनमें हमको सबसे पहले अपने आपको दुखी जीवों के समान समझना है और अपने में सहानुभूति की प्रवृत्ति जगानी है जो प्रकृति में 'नियम, नैतिकता और सदाचार' कहलाती है, और जिसके बिना, जैसे अब हम समझने लगे हैं समाज में न कोई नियम रहेगा, न नैतिकता और न सदाचार।

सम्भवतः यह अच्छा है कि सुदूर पूर्व के महान धर्मों में यह तत्त्व पहले से ही विद्यमान हैं। किन्तु पश्चिम की परम्परा में, जहाँ प्राचीनकाल से यह विचार रहा है कि कोई भी व्यक्ति दुहरा जीवन बिता सकता है और इस प्रमाण में हस्तक्षेप कर सकता है कि मनुष्य एक जीवित और दुखी प्राणी है, जब तक सहायक कारण मनुष्य को दूसरे प्राणियों से अलग सिद्ध न करें तब तक सभी प्राणी समान हैं ज्यां जैक्विस रूसो के अलावा किसने हमें यह संदेश दिया है?

रूसोने मोनशियर डो मेल्शेरबेस के चौथे पत्र में लिखा है, "दूसरों पर अधिकार चलानेवाली सामाजिक व्यवस्थाओं से मैं सख्त घृणा करता हूँ। मैं महान् से घृणा करता हूँ। मैं उसकी स्थिति से घृणा करता हूँ।" क्या यह कथन पहले मनुष्य पर लागू नहीं होता जिसने दूसरे जीवित प्राणियों पर अधिकार करना और एक अलग राज्य बनाये रखना चाहा और इस तरह लोगों के प्रति इसी प्रकार का व्यवहार करने की बहुत कम स्वतन्त्रता दी, और जैसे पिछले व्यापक प्रसग में था, उतने ही लज्जाजनक रूप से इस उपर्युक्त दृष्टान्त में भी, एक दृष्टि से फायदा उठाना चाहा।

एक सुसंस्कृत समाज में, मनुष्य को स्थायी या क्षणिक रूप से योग्य व्यक्ति मानते हुए, या जाति, सभ्यता, विजय या सिर्फ औचित्य के कारण मनुष्य को किसी विषय के रूप में मानकर उसके एकमात्र वास्तविक अक्षम्य अपराध के लिए कोई माफी नहीं दी जा सकती है।

('यूनेस्को कूरियर' के संग्रह विशेषांक से पुनर्मुद्रित)

धीरेन्द्र भाई का एक पत्र

ग्राम-स्वराज्य और नयी तालीम

प्रिय सिद्धराज,

पिछले नवम्बर मे एक पत्र भेजा था। उसमे सिर्फ जनाधार के पहलू पर अपना अनुभव बताया था। आज समग्र नयी तालीम की दिशा मे क्या-क्या हो सका है, उसका विवरण भेज रहा हूँ।

जून के पत्र म बच्चो की सफाई के काम पर कुछ प्रकाश डाला था। वैसे तो मैं यहाँ जो कुछ काम करने की कोशिश कर रहा हूँ, सभी नयी तालीम का काम है, क्योकि आज गाँव की जो परिस्थिति है, उसम तालीम के सिवाय और कोई काम हो ही नही सकता है। सरकार द्वारा या सरकारी मदद से हमारे द्वारा कुछ काम गाँवो मे हो रहे हैं, उन्हे हम ग्राम विकास या ग्राम निर्माण का नाम देते हैं लेकिन गहराई से देखने पर स्पष्ट मालूम होगा कि इसमे गाँव मे कुछ काम भले ही खडे हो, पर उसका विकास नहीं हो पाता है। गाँव मे हम लोग अपनी ओर से कुआँ, तालाब, सडक आदि का निर्माण अवश्य कर देते हैं, पढाकर साक्षर भी बना देते हैं, धन संग्रह करके कुछ लोगो के खाने की व्यवस्था भी कर देते हैं या पानी का इन्तजाम करके खेती की पैदावार बढा देते हैं। अर्थात गाँव मे कुछ सामग्री बना देते हैं, लेकिन गाँव का निर्माण नही कर पाते। यह इसलिए नहीं होता है कि हमारा काम तालीम-मूलक नही होता और बिना तालीम के साधन और समृद्धि का निर्माण भले हो जाय, सम्बन्धो का निर्माण नहीं हो सकता।

जब हम नयी तालीम की बात सोचते हैं तब भी सदियो के संस्कार के अनुसार ही बच्चो की पढाई पर विचार करते हैं। कोई ज्यादा गहराई से विचार करनेवाले हों तो अधिक-से अधिक उनकी शिक्षा की बात सोचते हैं। लेकिन इतने भर से नयी तालीम नहीं होती। अत नयी तालीम के सेवको को अपनी धारणा स्पष्ट कर लेने की आवश्यकता है। जो लोग सन् १९३७ से ही गाधीजी की बतायी तालीम से कुछ सम्बन्ध रखते हैं, वे जानते हैं कि शुरू मे इसकी कल्पना बुनियादी शिक्षा के रूप में आयी अर्थात् ऊपर लिखित धारणा के अनुसार सात साल से चौदह साल तक के बच्चो की शिक्षा की बात आयी। लेकिन गाधीजी ने सन् १९४४ मे जेल से लौटने के बाद दुनिया के सामने राष्ट्रीय शिक्षा को

नयी तालीम की सना देकर और उसकी परिधि गर्भ से मृत्यु तक बताकर तालीम की कल्पना ही बदल दी। फिर तालीम समाज निर्माण का आधार बन गयी। इस कल्पना का सहज मतलब ही नित्य नयी तालीम है, जैसा कि विनोबाजी कहते हैं।

नयी तालीम का वास्तविक अर्थ

इस प्रकार नयी तालीम का वास्तविक अर्थ नयी बुनियाद की तालीम हुई अर्थात् तालीम हमेशा समाज की नयी बुनियाद डालने का जरिया बनी रहेगी। अत हम देखना है कि आज ग्राम निर्माण के लिए हम करना क्या है? निर्माण का काम पुरानी और नयी दोनों बुनियादो पर हो सकता है। जो लोग पुरानी मान्यता के अनुसार चलना यानी बुनियाद बदलना नही चाहते उनके सामने भी प्रश्न यह है कि हमारे देश के देहातो म कोई ऐसी पुरानी बुनियाद है क्या, जिस पर से नव निर्माण हो सकता है। मैं आजकल देहातो मे दौरा करता हूँ और भाषण म हमेशा की तरह अकसर कहा करता हूँ कि आज का गाँव गाँव नहीं है जगत है। यह एक बस्तीमात्र है, यानी केवल एक भौगोलिक ईकाई है। इससे स्पष्ट है कि आज के समाज मे पुरानी बुनियाद के नाम की कोई चीज रह ही नही गयी है।

अत आज की भारतीय परिस्थिति के सन्दभ म ग्राम निर्माण का मतलब कुआं, तालाब, खेत या खेती का सुधार आदि का कायक्रम नही है बल्कि नयी बुनियाद डालकर गाँव को ग्राम समाज म परिणत करन का प्रयास है। निर्माण के उपरोक्त कायक्रम जरुर रहेंगे लेकिन वे कायक्रम ग्राम समाज की नयी बुनियाद डालने के माध्यममात्र होंग। यनी यह काम नयी बुनियाद की नयी तालीम का प्रसगमात्र होगा।

ग्राम स्वराज्य के आठ कदम

इसलिए मैंने ग्राम-स्वराज्य के कायक्रम के साधारणत आठ कदम माने हैं जिसे तुम लोग नयी तालीम का पाठ्यक्रम कह सकते हो—

१—ग्राम भावना	२—ग्राम-सहकार
३—ग्राम-सगठन	४—ग्राम-शक्ति
५—ग्राम सकल्प	६—ग्रामदान
७—ग्राम भारती	८—ग्राम स्वराज्य

समग्र नयी तालीम के उपरोक्त कदमो पर विचार करने स यह स्पष्ट हो जायेगा कि प्रौढ शिक्षा ही समग्र नयी तालीम का प्रारम्भिक कायक्रम हो सकता है।

शुरू-शुरू में जो हमलोग बच्चों में सफाई का संस्कार डालने की कोशिश करते थे, उसके लिए भी बच्चों के साथ साथ विशेष रूप से उनकी माताओं से ही झगड़ते थे। साप्ताहिक श्रमदान मे जब कुछ स्त्रियाँ काम करने आती थीं तो विद्या बहन उन्हें बच्चों को ठीक ढंग से कैसे सभाला जाय, इसका शिक्षण देती थीं। इसके बारे मे भी लिख चुका हूँ। जब हमलोगो ने यहाँ की स्थानीय संस्था सर्वोदय आश्रम के सहारे न रहकर जनाधार पर रहने का आग्रह बताया तो उस प्रसंग से भी प्रौढ़ शिक्षण हो, इसकी भी योजना सहज बन गयी। नरेन्द्र भाई व विद्या बहन लोगो के घरो मे जाकर बैठते थे, गप करते थे और अनेक प्रकार के विषयों की चर्चा होती थी। खेती-बारी, सफाई, परस्पर-सम्बन्ध, झगड़ा-प्यार, सभी विषय आ जाते थे। मैं भी अपनी जगह बैठे-बैठे जो लोग आते थे, उन्हें विचार समझाता रहता था। उसके उपरान्त एक-एक दिन एक एक टोले मे जाकर गप की बैठक भी होती थी, क्योंकि तुम लोग जानते हो कि प्रौढ़-शिक्षण के लिए मेरा मूल-उद्योग गप ही है।

नयी तालीम का प्राथमिक उद्योग

देहात मे नयी तालीम के माध्यम के रूप मे प्राथमिक उद्योग खेती ही हो सकती है। हम जो नया समाज बनाना चाहते हैं, उसका रूप भी कृषिमूलक ग्रामोद्योग-प्रधान होगा, ऐसी कल्पना करते हैं। अतः हम लोगो ने कृषि सुधार के प्रसंग को ही तालीम का माध्यम बनाने का निश्चय किया। यह केवल वाञ्छनीय ही है, ऐसी बात नहीं है, बल्कि स्वाभाविक भी है, क्योंकि नयी तालीम वस्तुत जिज्ञासाजनित ही हो सकती है। ज्ञान का आरोपण नयी तालीम नहीं है, यह जान लेना चाहिए। आज गाँव की मूल समस्या अन्न-समस्या है और कृषि उनकी जीविका का एकमात्र साधन है। अतएव कृषि के प्रसग मे ही उनमे स्वत. जिज्ञासा जाग्रत हो सकती है। इसलिए हमलोगो ने यह निर्णय किया कि घूम घूमकर खेती की तालीम देने के बजाय अगर सामूहिक खेती मे एक-दो प्लाट लेकर हम अपने हाथ से नमूने को खेती करें तो उसके उदाहरण मे जो जिज्ञासा पैदा होगी, उसमे हमे एक छोर मिल जायेगा। तदनुसार हमने एक एकड़ के एक प्लाट पर मकई की खेती की और एक प्लाट पर गेहूँ की खेती करने के लिए चौमास छोड़ दिया। इस साल धान का प्लाट नहीं लिया, क्योंकि हमलोग सख्या म थोड़े हैं।

शुरू-शुरू मे हम लोगों को खेती देखकर लोगों को ऐसा नहीं लगता था कि हमको खेती आती है। कुछ लोग तो ऐसा भी कहते थे कि एक टुकड़ा खिलवाड़

के लिए इन्होंने लिया है। लेकिन जब भुट्टा लगने लगा और लोगों ने देखा कि और खेतों से बहुत ज्यादा भुट्टा लगा है, तो वे मान गये कि हमको खेती आती है। फिर उसकी शोहरत हुई और लोग नरेन्द्र भाई के पास आकर चर्चा करने लगे। जब लोगों की दिलचस्पी और आकर्षण हमारी तरफ हुआ तो व्यापक रूप से चर्चा शुरू हुई और खेती के अलावा भी प्रसग आने लगे। इसकी दिलचस्पी इतनी दूर तक फैली कि बीच मे जब मैं खादीग्राम गया था तो लौटते समय भवानीपुर मे शाम को रुकने पर वहाँ के बीस-पच्चीस लोग मुझसे आकर मिले और खेती-सम्बन्धी अनेक प्रकार के प्रश्न पूछने लगे। चर्चा देर तक चली, और खेती मे से हम समाज-शास्त्र की ओर चले गये।

शिक्षण-कार्य के आरम्भ के लिए इतना समय खर्च करना नयी तालीम के सेवकों के लिए आवश्यक है। हम प्रायः यह भूल करते हैं कि जब नयी तालीम का कार्यक्रम लेकर गाँव मे जाते हैं तो अपने को शिक्षक के रूप मे ही पेश करते हैं। लेकिन शिक्षण की प्रक्रिया तभी शुरू हो सकती है, जब लोगों मे सेवक को गुरु मानकर उससे तालीम लेने की आकांक्षा पैदा हो जाय। नयी तालीम मुख्यतः कृषि और उद्योगमूलक होने के कारण सेवक को पहले अपने कार्यक्रम से यह साबित करना होगा कि वह इन विषयों में सक्षम है, और उसके लिए आवश्यक समय देना होगा। पुरानी तालीम के लिए इसकी आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि एक व्यक्ति ने जिस स्तर तक की परीक्षा पास की है, उसके नीचेवाले लोगों को वह पढ़ा सकता है, यह मान्यता पहले ही से मौजूद है। तो वह प्रथम दिन से ही अपना गुरुत्व जाहिर कर सकता है।

अतएव जब लोगों ने नरेन्द्र भाई की योग्यता परख ली तो उन्हें अपने खेत म ले जाकर दिखलाने लगे और उनमे क्या कमी है, इत्यादि पूछने लगे। उनके साथ जाने मे, खेत देखने में, वे भौतिक विज्ञान तथा समाज विज्ञान के अनेक पहलुओं को कह देते हैं। साथ-ही-साथ जापान, चीन, इजराइल आदि मुल्कों मे कितनी पैदावार होती है, यह भी बतलाते हैं। हमारे पास कुछ सुधरे हुए औजार हैं। उन्हें इस्तेमाल करके बताते हैं कि खेती को उन्नत करने के लिए औजार सुधार की कितनी आवश्यकता है। खाद बनाने के प्रसंग मे सफाई और स्वास्थ्य की भी बातें आ जाती हैं। इस गाँव मे पहले के काम के कारण जब कभी सम्मेलन आदि होता है तो ट्रेंच' पाखाने बनाये जाते हैं। इससे लोक-मानस मे इसकी धारणा थी और एकाध घर म इसका इस्तेमाल भी होता था। कृषि सुधार के सिलसिले में खाद के लिए व्यापक चर्चा से इस चीज के लिए उत्साह

पैदा हुआ और आज कई घरों में इसका इस्तेमाल होने लगा है। यहाँ भी अब ऐसी स्थिति हो गयी है कि 'ट्रेंच' पाखाने को अगर 'ड्राइव' दिया जाय और बनाकर बिक्री में बेचा जाय तो काफी लोग इसे लेंगे। लेकिन चूँकि हम चाहते हैं कि धीरे-धीरे हम खुद ही बनवा लें, इसलिए उसे बनाकर बेचने पर जोर नहीं दे रहे हैं। और सिर्फ सुधरे हुए औजारों को बनाकर बेचने पर ही दे रहे हैं, क्योंकि चर्चा तथा प्रदर्शन से उसकी माँग पैदा हो गयी है।

कृषि-सुधार के प्रसंग में मैं उन्हें अपनी क्रान्ति की बात भी समझाता हूँ। साथ-साथ वर्ग-परिवर्तन की चर्चा भी करता हूँ। भूदान और ग्रामदान की बात भी आ जाती है। मैं उन्हें कहता हूँ कि आपके पास १०० बीघा जमीन है, पाँच मन के हिसाब से पाँच सौ मन अनाज घर में आता है। अगर हम एक बीघा में पचीस मन पैदा कर दें तो बीस बीघा से फाजिल जमीन भूदान में दे देने में आपको उज्र क्या है? भूदान के सामाजिक न्याय के अलावा इस पहलू की चर्चा भी स्वतः आ जाती है। मैं उन्हें कहता हूँ कि आपने देखा कि इस तरह की पैदावार के लिए दिल से काफी मेहनत करने की जरूरत है। और इतनी मेहनत मजदूर भेजकर नहीं हो सकती है। बाबू लोगों को सपरिवार खेत में जाकर मेहनत करने की आदत डालनी होगी।

इस तरह जब लोग यह कहने लगे कि यह कैसी सहकारी खेती है कि हम ही से बीज माँगा जाता है और हम ही को जाकर काम करना पड़ता है तो हम उन्हें समझाते हैं कि सहकारी खेती एक प्रसंगमात्र है। हम तो सहकारी समाज बनाना चाहते हैं। वे हमसे ऐसा प्रश्न इसलिए करते हैं कि आज जो सहकारी खेती के नाम से व्यापक प्रचार तथा कहीं-कहीं आचार हो रहा है, उसका स्वरूप खेतों को मिलाकर एक जगह किसी व्यवस्थापक द्वारा खेती कराकर भूमिपतियों में मुनाफा बाँटने का है। जिन लोगों का खेत है उनमें और जो उसमें मेहनत करते हैं उनमें आपस में तथा एक-दूसरे में आपस में सहकार की कोई प्रक्रिया नहीं रहती है। मैं जब इस बात को कोशिश करता हूँ तो उन्हें यह चीज अटपटी मालूम होती है। और स्वाभाविक जिज्ञासा भी पैदा होती है। इसी प्रसंग में पूरा समाज-विज्ञान समझाने का अवसर मिल जाता है।

प्रौढ़-शिक्षण की प्रक्रिया

दरअसल प्रौढ़ शिक्षा का काम भी करीब करीब उसी प्रकार का है, जिस प्रकार बच्चों के पढ़ाने का है। बच्चों को क ख ग लिखना बताया जाता है, फिर उसे तख्ती और कलम हाथ में देकर कहा जाता है कि अब तुम लिखो। जब

उसे लिखने को छोड दिया जाता है तो वह लिखने के बजाय तख्ती पर हिजिर-बिजिर लकीर खींचता है कीरा काटी करता है। थोडी देर उसे वैसे ही खीचने दिया जाता है। फिर गुरुजी बच्चो के साथ उनकी कलम का ऊपरी हिस्सा पकडकर लिखवाते हैं और समझाते रहते हैं। यहाँ उसी प्रकार से हमको प्रौढो के साथ करना पडता है। जब हमने उन्हें सहकारी खेती के काम का तरीका समझाकर उसको चलाने के लिए उनको ही सौंपा तो जितना करने का उनका अभ्यास था उतना तो उन्होंने ठीक से किया, लेकिन जितनी नयी बात थी उसमे हिजिर-बिजिर करने लगे। हल से खेत जोतना, बोआई करना तथा दूसरी प्रक्रियाओं को चलाना, सब ठीक किया। लेकिन सबका खेत है, सबको उसमे दिलचस्पी लेने का, मजदूर वर्ग को बिना तुरन्त मजदूरी लिये खेत मे काम करके पैदावार तक और मालिकों का आखिर तक व्यवस्थित रूप से पूरी फसल तैयार होने तक इन्तजार करने इत्यादि का अभ्यास उन्हें कभी नही था। तो उसमे वे चूकते रहे। फलस्वरूप अच्छी खेती भी बर्बाद हुई। केवल अभ्यास के अभाव से खराबी हुई, ऐसी ही बात नही है बल्कि मालिक मजदूर के सदियो के पूँजीभूत अविश्वास भी उसी तरह उमड आये, जिस तरह होमियोपैथी की डोज से भीतर भरा हुआ रोग उमड आता है। हम अगर खुद सँभाल्ते होते तो ऐसी बर्बादी नही होती। लेकिन जिस तरह से बच्चो को हिजिर-बिजिर करने के लिए छोड दिया जाता है उसी तरह उनको छोड दिया गया। फिर जब खादीग्राम से लौटकर आया और उन्हें हिम्मत-पस्त देखा तो गुरुजी ने कलम के ऊपर अपना हाथ लगाकर उन्हें लिखवाने की प्रक्रिया शुरू की। अर्थात् अन्नदान आदि बटोरना, सामूहिक खेती को पुनर्जीवित करना आदि कामो मे मैं खुद दिलचस्पी लेने लगा और कहीं-कहीं अभिक्रम भी मैं ही करने लगा।

गुरु का गुरुत्व इसीमे है कि वह समझे कि कितनी देर बच्चों को अनाप शनाप लकीर खींचने देना है और कब कलम को अपने हाथ मे पकडकर बच्चे के हाथ को दोयम स्थिति मे रखकर पीछे से खुद लिखना है। उसी तरह कार्यकर्ता को भी इस बात मे माहिर होना पडेगा कि वे कब किस काम को कितनी देर जनाधार पर छोडकर बर्बाद तक होने दें और कब उसे अपने अभिक्रम मे लेकर सम्भाल लें। इसका कोई फार्मूला (बना-बनाया नियम) नहीं हो सकता है। कार्यकर्ता का विवेक ही आखिरी गणित है। मैंने साधन-प्राप्ति के काम मे अभिक्रम पूर्ण रूप से गाँव के लोगो पर छोडकर भूखे रहने की स्थिति तक चुप बैठने की नीति रखी। वह बिलकुल सही था, मैं यह स्पष्ट रूप से मानता हूँ। लेकिन मालिक-मजदूर के सम्बन्ध मे इतना अधिक अविश्वास के रहते सामू-

हिक खेती मे व्यक्तिगत मालिको ने जब अपना खेत काटा तो अपने अभिक्रम से उन्हें रोककर खेत काटना और बँटवारे की जिम्मेदारी अपने ऊपर न लेकर बर्बादी तक लोगो पर छोड़ना, फिर बाद को अपने से उसे पुनः प्रतिष्ठित करने के काम को अपने हाथ मे लेना सही था या नहीं, इस पर मुझको कभी-कभी सन्देह होता है। साथ ही, यह भी लगता है कि नीति सही थी, क्योकि जहाँ एक ओर अविश्वास की परिस्थिति थी वहाँ दूसरी ओर 'धीरेन्द्र भाई कर देंगे', लोगो मे यह अपेक्षा भी थी। अत अगर अविश्वास या उभाड रोकने की कोशिश मे मैं व्यवस्था अपने हाथ मे ले लेता तो शायद दूसरी अपेक्षा अधिक उभड़ जाती और जनाधार के मानस को पुन स्थापित करने मे अधिक मेहनत लगती। अतएव मैंने, जो हुआ ठीक ही हुआ, उसे ईश्वर की मर्जी मानकर आगे बढना शुरू किया।

पिछले पत्र मे मैंने लिखा था कि कटनी और खादीग्राम के अनुष्ठान के कारण एक माह गैरहाजिर रहकर जब लौटा तो पूरे गाँव के लोगो मे निराशा देखी। उस समय इस इलाके मे अतिवर्षा के कारण हमारी नदी मे बाढ आ गयी थी और अपनी कुटिया डूब गयी थी। उस समय नरेन्द्र भाई और विद्या-बहन खादीग्राम मे अम्बर चरखा का अभ्यास कर रहे थे। मुझे लोगो ने गाँव के एक भाई के मकान पर ठहरा दिया। गाँव मे ही रहने से सभी लोगों से काफी घनिष्ठता हुई। दिन भर बीच मचान पर बैठे रहने से लोग वहाँ जुटते थे और मैं अपने मूलोद्योग के मार्फत प्रौढ-शिक्षा का काम चलाता था। उन्ही दिनो खेती की बर्बादी को लेकर काफी चर्चा चलती थी और उस प्रसग से जनाधार का विचार समझाने का काफी अवसर मिलता था। एक महीना गाँव मे रहने से करीब-करीब सर्वोदय-विचार के सभी अगों की मीमासा कर सका। राज-नीति कैसी होगी, क्यो होगी? विज्ञान ने मानव समाज के सामने क्या-क्या समस्याएँ खडी कर दी हैं? शासनमुक्त यानी सैनिक-मुक्त समाज क्यो? वर्ग-सघर्ष का खतरा कहाँ तक जा सकता है—इत्यादि प्रश्नों पर विशेष चर्चा होती रही। इस इलाके मे सामतवादी मानस भरपूर है। इस अति-आधुनिक युग मे भी मजदूर वर्ग वस्तुत गुलाम है। इस परिस्थिति के प्रसग मे भी काफी ब्योरे से विवेचन कर सका। तालीम के प्रश्न पर पहले से चर्चा चलती थी। लेकिन इस बार काफी ब्योरे से लोग समझ पाये। इस प्रौढ-शिक्षण प्रकिया के फल-स्वरूप दो-तीन भाई ऐसे हो गये, जो हमारे विचार को दूसरो को भी समझाने लगे।

शिक्षा-सम्बन्धी आम मान्यता

इस प्रसग से समग्र नयी तालीम के सेवक को शिक्षा के सम्बन्ध में देश की आम मान्यता के बारे में सोचना होगा। मैंने पहले पत्र मे लिखा था कि देश मे शिक्षा या ज्ञानार्जन की चाह नहीं है, यद्यपि स्कूलो की माँग दिन ब दिन तेजी से बढ रही है। माँग शिक्षा की नही है बल्कि नौकरी के लिए 'लेबिल' प्राप्त करने की है। अत, शिक्षा का मतलब नागरिक की सर्वाङ्गीण तालीम से है, यह तो मानने ही नहीं बल्कि बच्चों का जीवन-शिक्षण आवश्यक है, यह भी नही मानते हैं। मानते यह हैं कि बिना पढे कह-सुनकर, या दे दिलाकर सर्टिफिकेट मिल जाय तो ज्यादा अच्छा है। उत्तरप्रदेश के हाईस्कूल के एक हेडमास्टर ने एक बार मुझे एक दिलचस्प बात सुनायी। उन्होंने कहा कि साल के अन्त मे परीक्षा के बाद नतीजा निकलने समय 'गार्जियन (अभिभावक) लोग मुझे घेरे रहते थे। फेल किए हुए बच्चों को ऊपर के क्लास मे बैठाने का आग्रह करते थे। लडकों के बारे में जब मैं समझाता था कि बुनियाद कच्ची होने से आगे चलकर फेल हो जायेगा तो कुछ 'गार्जियन' तो मान जाते थे, लेकिन लडकियों के बारे मे वे तब तक आग्रह करते थे जब तक मैं उन्हें 'प्रमोशन' न दे देता। वे कहते थे कि मैट्रिक में फेल कर जाय तो हमें कोई एतराज नही है, क्योंकि हमें लडकियों को नौकरी कराकर पैसा नही कमाना है लेकिन आजकल शादी के बाजार में लडकी मैट्रिक फेल है इतना तक कहा जा सके तो तिलक-दहेज मे सुविधा हो जाती है। तो इस प्रकार, शिक्षा के बारे मे यह मान्यता है कि शिक्षा बच्चों की पढायी और वह भी ज्ञान के लिए नहीं है, नौकरी या शादी की पात्रता हासिल करने के लिए है।

यही कारण है कि राष्ट्रपति से लेकर देश के सभी नेताओं और जनता को मौजूदा शिक्षा प्रणाली से असन्तोष होने पर भी यह प्रणाली चल रही है, और कांग्रेस तथा सरकार की मान्यता, तथा देश के अनेक निष्ठावान सेवकों द्वारा सातत्य के साथ नयी तालीम की सेवा के बावजूद वह देश में यशस्वी नही हो रही है। क्योंकि नयी तालीम के सन्दर्भ मे सोचनेवाले नेता और कार्यकर्ता के मानस मे भी तालीम का अर्थ केवल बच्चों की ही शिक्षा है और बुनियादी शिक्षा से निकलकर अपने बच्चों को जब नौकरी नहीं मिलती है तो उनके मन मे भी असन्तोष होता है। क्योंकि आखिर हमलोग भी इसी समाज के सदस्य हैं। बुद्धि से चाहे जो विचार करें, सस्कार तो वही हैं जो आम जनता के हैं।

अगर हमे इस परिस्थिति म नयी तालीम की ओर जाना है तो वहीं से चलना शुरू करना होगा जहाँ देश की जनता बैठी हुई है। यात्रा का प्रारम्भ

कूदकर मंगे के कदम से नही हो सकता। दिल्ली के निवासी को अगर कलकत्ता जाना होगा तो उसे अपने घर पर से ही चलना होगा और काफी दूर तक दिल्ली की सडकों से ही गुजरना पडेगा। इसलिए यद्यपि हम जनाधार, खेती या अन्य प्रसग से प्रौढ शिक्षा का कार्यक्रम चलाते रहे लेकिन उसे जाहिर में हमने नयी तालीम की सज्ञा नहीं दी। अपने मानस म हम उस नयी तालीम की प्रक्रिया के रूप मे व्यवस्थित करने की निरन्तर कोशिश करते रहे, क्योंकि वास्तव मे वे सब शिक्षण की ही प्रक्रियाएँ हैं। लेकिन यह बात तत्काल किसीके के गले उतर नहीं सकती है। इसीलिए जब कभी तालीम के बारे में समझाते हैं तो यह बताते हैं कि गाँव भर के सारे काम तालीम के माध्यम मे होने चाहिए और इसी बात को बार बार कहते रहते हैं। इस प्रकार समग्र नयी तालीम के विचार का प्रचार हमेशा करते रहते हैं। ग्रामभारती की कल्पना को समझाते समय यह एक ग्राम विश्वविद्यालय का रूप है, ऐसा समझाते हैं।

उन्हें यह बताता हूँ कि ग्राम विश्वविद्यालय से यह मतलब नही है कि हम गाँव के अन्दर कोई विश्वविद्यालय की स्थापना करना चाहते हैं, बल्कि गाँव को ही विश्वविद्यालय मे परिणत करना चाहते हैं। फिर वर्तमान परिस्थिति के सन्दर्भ मे इस विचार का विवेचन करता हूँ।

शिक्षा के प्रश्न पर वर्तमान परिस्थिति क्या है? पहली परिस्थिति यह है कि वतमान शिक्षा पद्धति से नेता शिक्षक शिक्षार्थी तथा जनता सभी को असन्तोष है। फिर भी सभी असहाय बनकर उसीको चला रहे हैं। नाना प्रकार के सुधार की कोशिश करते हैं, लेकिन यह नहीं समझते हैं कि केवल सुधार से काम नहीं चलेगा, सन्दर्भ ही बदलना होगा अर्थात् सुधार की खोज न कर विकल्प की खोज करनी होगी। दूसरी बात यह है कि आज समस्त जनता की आकाक्षा और जमाने की आवश्यकता, दोनो की माँग यह है कि बच्चे, युवक, बूढे, सबको ऊँची शिक्षा मिले। पुराने जमाने में जब राजतन्त्र था तो राजा का लडका ही सत्तारूढ हो सकता था, दूसरा नहीं। लेकिन आज जब बालिग मताधिकार की बुनियाद पर लोकतन्त्र प्रतिष्ठित है तो हरेक अठारह वर्ष के स्त्री पुरुष के लिए यह सम्भावना निर्माण हो गयी है कि वह भी सत्तारूढ हो सकेगा। इस सम्भावना से हरेक स्त्री पुरुष के अन्तरमन मे ऊँची महत्वाकाक्षाओ का पैदा होना सहज हो गया है। अर्थात् हरेक आदमी ऊपर उठना चाहता है। कल्याणकारी राज्यवाद ने अपने को जन जीवन के अग प्रत्यग मे फैलाकर इतना अधिक व्यापक और प्रतिष्ठित कर लिया है कि

हरेक मनुष्य उसीम नोकरी करने के लिए व्याकुल है। इसने भी हरेक के दिल में शिक्षा की आवाश्गा पैदा कर दी है। लोकतन्त्र की आवश्यकता यह है कि प्रत्येक मतदाता उम्मीदवारो में घोषणा-पत्रो का सम्यक् विश्लेषण कर राय कायम कर सके। काफी ऊपर तक की शिक्षा द्वारा ही यह सभव हो सकता है। अगर ऐसा नही हुआ तो कोई धन से मत खरीदकर, कोई लाठी से डराकर या कोई धोखा देकर मत सग्रह कर लोकतन्त्र को पूर्ण रूप से विफल कर सकता है।

इस प्रकार विश्लेषण कर मैं उन्हे कहता हूँ कि अगर आज की परिस्थिति की माँग यह है कि हरेक आदमी को उच्च शिक्षा मिले तो यह सम्भव नही है कि वर्तमान स्कूल की प्रथा से जरूरत पूरी हो सकेगी। न तो स्कूलों की इमारत इतनी बडी हो सकती है और न हरेक व्यक्ति सब काम से मुक्त होकर स्कूल के कमरों मे आकर बैठ सकता है। फिर किस तरह कृषि-गोपालन, ग्रामोद्योग तथा समाज के सभी अन्य कार्यक्रमो के समवाय से शिक्षक का काम चल सकता है यह बताता हूँ। इस प्रकार ग्राम भारती के लिए जनाधारित साधन सग्रह के प्रसग से समग्र नयी तालीम के विचार का काम सध रहा है। अब इस इलाके के लोगो मे इसकी चर्चा होने लगी है। वलिया गाव के लोगो मे तो ग्राम भारती का काम शुरू हो धीरे धीरे ऐसी दिलचस्पी पैदा हो रही है।

इस सिलसिले मे जब मैं उनसे कहता हूँ कि भैंस चराने का काम भी तालीम का माध्यम कैसे हो सकता है तो इसे समझाने म भूमि की परिस्थिति पर चर्चा करनी पडती है। इस चर्चा मे वे अपने आप कहने लगते हैं कि आयोजित कृषि के बिना कुल भैंसो के लिए एक प्लाट छोडना सम्भव नहीं है। और यह चर्चा निरन्तर होने के कारण ग्रामदान का विचार समझाने का काफी अवसर मिलता है। फिर मैं उन्हे कहता हूँ कि अगर ग्रामदान के लिए मोह और ममता के कारण तैयारी नहीं है तो कम से कम जिस तरह एक प्लाट को सामूहिक बनाया है उसी तरह से तीन चार प्लाट सामूहिक बनाइए ताकि एक प्लाट भैंस चराने के लिए हर साल छोडा जा सके। फिर पैदावार पूरी कसे होगी', इस प्रसग से हम उनको कहते हैं कि अगर नियमित रूप से वे अपने हिस्से की जिम्मेदारी अदा करें तो चरागाह छोडने के बाद बाकी खेतो म टोटल भूमि से ज्यादा पैदा हो सकता है। यह बात व मानते भी हैं क्योंकि हमलाग पैदावार बढा सकते हैं यह विश्वास उन्ह हो चुका है। लेकिन ममता तथा

परस्पर अविश्वास इतना गहरा है कि वे तत्काल उसे नहीं कर सकते हैं। पर विचार सही है और उससे उन्नति होगी, यह वे मानते हैं और आपस में इसकी चर्चा भी करते हैं।

ग्राम-भारती का आरम्भ

इस प्रकार की चर्चा से गाँव मे काफी उत्सुकता पैदा हुई है। लोग हमसे काफी ब्योरे के साथ सवाल करते है और समझने की कोशिश करते हैं। कुछ लोग तो कहने भी लगे हैं कि ग्रामभारती शुरू ही की जाय। मजदूर वर्ग के कुछ लोग पूछते भी रहते हैं कि कब शुरू होगा। हमारा एक ही उत्तर रहता है कि जब आप चाहेगे तब शुरू होगा। आखिर हम जिस टोले मे रहते हैं उस टोले के लोगों ने एक दिन नरेन्द्र भाई से कहा कि आप लोग जिस ग्राम-भारती की चर्चा करते हैं उसके लिए हमारे टोले के सात लड़के तैयार हैं। और जब नरेन्द्र भाई ने मुझसे जिक्र किया तो मैंने कहा कि तुरन्त खोल देना चाहिए।

किसी भी नयी चीज के प्रारम्भ के लिए यह आवश्यक है कि पहले उस चीज का व्यापक जप होना चाहिए। यही कारण है कि विनोबा चरैवेति, चरैवेति की बात कहते हैं। जन-मानस रूढ़िग्रस्त होता है। जन-मानस रूढ़िग्रस्त होता है, ऐसा कहना भी शायद गलत होगा, क्योंकि इस देश मे मैंने देखा है कि जो लोग अपने को पढ़े-लिखे कहते हैं उनके मानस मे तो रूढ़ि भी नहीं बल्कि वे तो बिलकुल शून्य ही हैं। अत. रूढ़िग्रस्त मानस है ऐसा न कहकर केवल रूढ़ आचरण है, ऐसा कहना सही होगा। अतएव कोई नयी क्रान्ति की बात स्वीकार करने से पहले उनके सामने कुछ समस्या है, इसका बोध दिलाना और क्रान्ति का सन्देश उस समस्या का हल है, ऐसा कहना ही क्रान्ति का पहला कार्यक्रम हो जाता है। जहाँ तहाँ कुछ रचना का प्रयास करना भी जरूरी होगा। लेकिन उस प्रयास का लक्ष्य रचना नहीं होगी, बल्कि विचार-प्रचार का आनुषगिक कार्यक्रम होगा। जिस तरह बच्चों को पढाने के लिए कुछ माडल और तस्वीर बनानी पडती है, उसमे माडल बनाना कार्यक्रम नहीं होता है बल्कि शिक्षा के उपादानस्वरूप वह बनाना होता है। उसी तरह रचनात्मक काम विचार-प्रचार का उपादान मात्र है, ऐसा समझना चाहिए।

वस्तुत सर्वोदय क्रान्ति के विचारानुसार हम जितनी बातें करते हैं, जनता अपने लिए उसकी आवश्यकता महसूस नहीं करती है। जिन चीजों को हम बदलना चाहते हैं वे उसके लिए समस्याएँ हैं, यह भी जनता नहीं मानती है।

समस्याएँ नहीं हैं इतना ही नहीं मानती, बल्कि यह मानती है कि ये सारी पुरानी चीजें उसके लिए कल्याणकारी हैं। हम शासनमुक्त समाज बनाना चाहते हैं, सैनिक-शक्ति के बदले प्रत्यक्ष सहकारी जन शक्ति की स्थापना करना चाहते हैं, लेकिन शिक्षित-अशिक्षित सारी जनता उन सैनिक शक्ति को समाज के लिए वरदान मानती है। हम केन्द्रीय उद्योगवाद को बदलना चाहते हैं, उसे भी वे अपने लिए वरदान ही समझते हैं। वर्तमान काल की जितनी चीजें हम बदलना चाहते हैं उसमें से शिक्षा-पद्धति ही ऐसी है जिसके लिए आज असंतोष है। और जिसकी बदल की बात लोग सुनने को तैयार भी होते हैं। लेकिन नयी तालीम के व्यापक तथा सघन-प्रचार के बिना उसे स्वीकार करना तो दूर की बात है, उसे वे समझ भी नहीं पाते हैं। इसलिए जब गाँव के लोग हम लोगों के गुजारे के लिए अन्नदान माँगने के लिए निकल रहे थे तो मैंने उन्हें कहा कि यह सही है कि इस वक्त मेरे नाम से ही अन्नदान मिलेगा, लेकिन आप माँगिए ग्राम-भारती के नाम से। ग्राम-भारती की कल्पना के बारे में लोगों से चर्चा करने के लिए, *उनकी माँग के अनुसार मैंने रामावतार भाई को उनके साथ भेज दिया।* इससे आसपास के दूसरे गाँवों के लोगों में भी काफी जिज्ञासा पैदा हुई। वे मानते हैं कि ऐसा हो तो अच्छा है। लेकिन साथ साथ वे यह भी मानते हैं कि वह सरकार की ओर से चले या कम-से-कम सरकारी मान्यता प्राप्त हो, क्योंकि सरकार आज जनमानस में केवल वरदान ही नहीं है, बल्कि माई बाप भी है। जो हो, इतना तो स्पष्ट है कि *सर्वोदय-विचार के अनुसार जितनी प्रवृत्तियाँ हो* सकती हैं उसमें से शिक्षा ही ऐसी चीज है जिसके बारे में चालू पद्धति के बदल की माँग है। और हमारे लिए भी नयी तालीम ही ऐसा कार्यक्रम है, जो क्रान्ति के लिए सक्रिय रचनात्मक कदम है। इसलिए बार-बार मैं कहता हूँ कि भूदान-ग्रामदान आदि का विचार-प्रचार, अशोभनीय पोस्टर, सर्वोदयनगर, शराब-बन्दी इत्यादि सब हमारे आन्दोलनात्मक कार्यक्रम हैं, और *नयी तालीम ही* क्रान्ति के आरोहण में एकमात्र रचनात्मक कार्यक्रम है।

समग्र नयी तालीम की टेकनीक

नयी तालीम का मतलब है समग्र जीवन की तालीम और सर्वोदय समाज का मतलब है तालीम-मय समाज। इसके लिए आवश्यक है कि समाज का समस्त कार्यक्रम तालीम का माध्यम हो। इसकी टेक्नीक निकालनी होगी। अन्यथा शाला में केवल उद्योग और कृषि दाखिल करने से उद्योगयुक्त पुरानी तालीम होगी, नयी तालीम नहीं। अभी जब मैं ग्राम-भारती के लिए कटनी

करने जाता हूँ तो अपने भाषण मे यह कहता हूँ कि भैंस की पीठ का बच्चा उतरकर स्कूल में नहीं जा सकता है, इसलिए स्कूल को भैंस की पीठ पर जाना होगा। गाँव के लोग इतने ही मे ग्रामभारती की धारणा कर लेते हैं।

अतएव मैंने नरेन्द्र भाई से कहा कि अब तुमको हरेक बच्चे की गृह-कार्य योजना बनानी होगी। प्रत्येक 'गार्जियन' के साथ चर्चा करके इसकी एक विशेष टेकनीक निकालनी होगी कि किस तरह घर के काम को शिक्षा का माध्यम बनाया जा सके। आज बच्चे जो घर का काम करते हैं उसमे कोई सिलसिला नहीं है। अत्यन्त गरीबी और साधन-हीन परिस्थिति में, जिन्दगी को कायम रखने के संघर्ष की आवश्यकता में, जब जो काम आ जाये, उन्हें करना पड़ता है। जिन झोपड़ियों मे ये लोग रहते हैं उनमें दरवाजा नहीं होता है तो जब माता-पिता, बड़े भाई-बहन सब खेत मे कमाने चले जाते हैं तो बच्चा घर पर ही रहता है, ताकि घर की रखवाली हो। वह कभी घास लाने जाता है, कभी भैंस चराने, कभी बच्चा सम्हालता है, तो कभी घर का खाना भी बनाता है, ताकि जो लोग खेत मे कमाने गये हैं वे लोग लौटकर बना-बनाया खाना खा सकें। जिस तरह सस्थागत बुनियादी शाला मे शिक्षकों का प्रथम काम उद्योग के औजार, खेती, बागवानी, आदि कामो को व्यवस्थित और सयोजित करना होता है, उसी तरह ग्रामभारती मे शिक्षक का पहला काम इन तमाम फुटकर कामो का अध्ययन तथा उसका सयोजन करना होगा, ताकि काम बेतरतीब ढग से न होकर आयोजित ढंग से हो और इस आयोजन मे बच्चे के समग्र परिवार की तालीम भी निहित हो।

बलिया, पूर्णिया, (बिहार) तुम्हारा

२०-१-१९६१ धीरेन्भाई

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा

प्रसार

तृतीय योजना-काल में कुल १८,७३० विद्यालय खोले गये तथा २६,७०० की नियुक्ति की गयी। विद्यालयों में छात्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने रहने के कारण अध्यापक-छात्र-अनुपात में अन्तर बढ़ता गया, फलतः अध्यापकों की कमी बनी रही। इस अभाव को दूर करने के लिए वर्ष १९६६–६७ से १९६८–६९ तक तीन वार्षिक योजनाओं में ग्रामीण क्षेत्रों में १६,८४८ अध्यापक नियुक्त किये गये। वर्ष १९६८–६९ तक प्रदेश में ६१,६५ जूनियर बेसिक स्कूल थे, जिनमें ६२ ४२ लाख बालक तथा ३४ ८१ लाख बालिकाएँ अर्थात् ९७ २३ लाख बच्चे भर्ती थे। चतुर्थ योजना के प्रथम वर्ष में ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में ९,७०० तथा नगर-क्षेत्रों में २०० अतिरिक्त अध्यापकों की और नियुक्ति की जा रही है। वर्ष १९६७–६८ तथा १९६८–६९ में ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के २९८ नये जूनियर बेसिक स्कूल खोले गये हैं। चतुर्थ योजना के प्रथम वर्ष में ३५० नये मिश्रित जूनियर बेसिक स्कूल तथा नगर-क्षेत्रों में ५५ जूनियर बेसिक स्कूलों की स्थापना की जा रही है।

जिन-जिन क्षेत्रों में माँग विशेष है और उसकी पूर्ति के लिए व्यग्रता है वहाँ जनता की उदारता और स्वावलम्बन की भावना से स्कूल खुले हैं, इन स्कूलों को स्वावलम्बी स्कूल कहते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार का जनसहयोग विशेष उपयोगी है। अतः स्वावलम्बी स्कूलों को उदारता के साथ मान्यता प्रदान करने की नीति अपनायी गयी है। वाराणसी मंडल के जिलों में अधिकांश स्वावलम्बी स्कूल हैं। इस वर्ष ६०० स्वावलम्बी स्कूलों को अनुदान देने के लिए १,८०,००० रु० स्वीकृत किया गया है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में बालिकाओं की शिक्षा में प्रगति लाने के लिए विशेष कदम उठाये गये हैं। इस बात का भरसक प्रयत्न किया गया है कि मिश्रित स्कूलों में अधिक-से-अधिक संख्या में बालिकाओं का प्रवेश हो। तृतीय योजना में ८२ प्रतिशत बालकों तथा ४३ प्रतिशत बालिकाओं के प्रवेश कराने का लक्ष्य था, किन्तु विशेष प्रयास करके इन लक्ष्यों को क्रमशः १०० प्रतिशत तथा ६२ प्रतिशत तक बढ़ाया गया है। बालिकाओं को अधिक-से-अधिक संख्या में मिश्रित जूनियर बेसिक विद्यालयों में भर्ती करने के प्रयास जारी हैं। बालि-

कार्मों को अधिक-से-अधिक संख्या में मिश्रित जूनियर बेसिक विद्यालयों में भर्ती करने के प्रयास जारी हैं। इस वर्ष प्रारम्भिक शिक्षा के लिए कुल ३६·०४ करोड़ का बजट में प्राविधान किया गया है।

बालिकाओं की शिक्षा

बालिकाओं की शिक्षा के प्रसार के लिए तृतीय पंचवर्षीय योजना में जो प्रयास किये गये उनमें अध्यापिकाओं के लिए ग्रामीण भत्ते, आवास-गृह, स्कूल-माताओं की नियुक्ति, सेवाकालीन प्रशिक्षण और प्रशिक्षण-काल में छात्रवृत्ति की दर में वृद्धि मुख्य हैं। प्रशिक्षित अध्यापिकाओं को १५ रु० तथा अप्रशिक्षित को १० रु० मासिक भत्ता अपने गाँव से बाहर ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने पर दिया जाता है। तृतीय योजना-काल में ४,८५४ अध्यापिकाओं के आवास-गृहों के निर्माण के लिए शासकीय अनुदान दिया गया। मिश्रित स्कूलों में छात्राओं की सुविधा के लिए २,५०० स्कूल-माताओं की नियुक्ति की गयी। इस वर्ष १२५ स्कूल-माताओं की और नियुक्ति की जा रही है। साथ ही बालिकाओं के लिए ५,००० शौचालय निर्माण कराने के लिए भी अनुदान दिया गया है। राजकीय दीक्षा विद्यालयों में महिलाओं को प्रशिक्षण-काल में पहले केवल २५ रु० मासिक छात्रवृत्ति मिलती थी, उसे अब ३० रु० मासिक कर दिया गया है। इस वर्ष ग्रामीण क्षेत्रों के ५६ स्कूलों को भवन-सुधार एवं ७५ विद्यालयों के भवन-निर्माण हेतु क्रमशः १ ४० लाख रु० की आर्थिक सहायता दी गयी।

चार पूर्वी जिलों—देवरिया, जौनपुर और गाजीपुर—में द्रुतगामी कार्यक्रम (एक्सीलिरेटेड प्रोग्राम) के अन्तर्गत अब तक ११६ बालिकाओं के जूनियर बेसिक स्कूल खोले जा चुके हैं तथा २६६ स्कूल-माताओं की नियुक्ति की गयी है। आशा है, इससे उन जिलों में बालिकाओं की शिक्षा का अधिक प्रसार होगा।

प्रशिक्षण

प्राथमिक स्कूलों के लिए प्रशिक्षित अध्यापक तैयार करने के लिए तृतीय योजना-काल के अन्त में प्रदेश में कुल मिलाकर १५२ नार्मल स्कूल थे जिनमें बालकों के ११४ (१११ शासकीय तथा ३ अशासकीय) तथा बालिकाओं के ३८ (३३ शासकीय तथा ५ अशासकीय) थे। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों तथा प्रशिक्षण-संस्थाओं के साथ एच० टी० सी० इकाइयाँ संलग्न की गयी। इस प्रकार तृतीय योजना के अन्त में प्रदेश में कुल ५१ एच० टी० सी० इकाइयाँ (२०

बालकों की तथा ३१ बालिकाओं की) थी। इन सभी इकाइयों में छात्र की वार्षिक प्रवेश-संख्या प्रति इकाई ३० है। किन्तु इस स्तर पर प्रशिक्षित अध्यापकों का उत्पादन अधिक बढ़ जाने की सम्भावना के कारण जुलाई १९६९ से ३६ इकाइयाँ (१९ बालकों की तथा १७ बालिकाओं की) समाप्त कर दी गयी। वर्ष १९६९ के सत्र में एच० टी० सी० के पाठ्यक्रम में आमूल परिवर्तन करके एच० टी० सी० तथा जे० टी० सी० कोर्स के स्थान पर एक नवीन एक वर्षीय बी० टी० सी० कोर्स प्रारम्भ किया गया जिसमें प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण रखी गयी है। किन्तु महिला छात्राध्यापिकाओं तथा स्थानीय निकायों में सेवारत अप्रशिक्षित अध्यापकों के लिए प्रवेश की न्यूनतम शैक्षिक योग्यता जूनियर हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर दी गयी है। ऐसी छात्राध्यापिकाओं/छात्राध्यापकों के लिए बी० टी० सी० का पाठ्यक्रम दो वर्ष के लिए कर दिया गया है। प्रदेश में १२ सेवाकालीन प्रशिक्षण केन्द्र पुरुष-अध्यापकों के लिए तथा २ केन्द्र महिलाओं के लिए हैं। वर्ष १९६६-६७ में राज्य शिक्षा संस्थान, इलाहाबाद में एक ऐसे केन्द्र की स्थापना की गयी है, जो प्राथमिक स्कूलों के सेवारत अप्रशिक्षित अध्यापकों को पत्र-व्यवहार-पद्धति द्वारा प्रशिक्षण प्रदान कर रहा है। इसके अतिरिक्त अब इस स्तर पर भी ४ विस्तार सेवा केन्द्र संचालित हैं, उनमें से एक केंद्र राज्य शिक्षा संस्थान से सम्बद्ध है। वर्ष १९६९ की परीक्षा में उत्तीर्ण बी० टी० सी० परीक्षार्थियों (संस्थागत) की कुल संख्या १५,८९२ है।

जिला परिषद्, नगरपालिका तथा महापालिका के अन्तर्गत कार्य करनेवाले अध्यापकों के अवकाश-ग्रहण करने की वय ५८ से ६० कर दी गयी है।

जिला परिषद् की कन्या पाठशालाओं में अध्यापिकाओं के अभाव में अवकाश-प्राप्त पुरुष-अध्यापकों को जिनकी आयु ५५ वर्ष या उससे अधिक हो, बालिका विद्यालयों में कतिपय प्रतिबन्धों के साथ ६० वर्ष की आयु तक अध्यापन-कार्य हेतु नियुक्त करने की स्वीकृति दी गयी है।

जनसहयोग प्राप्त करने के लिए पाठशाला प्रबन्ध समितियों के गठन का आयोजन किया गया। पाठशाला प्रबन्धक समितियाँ प्राय सब स्कूलों के लिए बन गयी हैं और उन विद्यालयों के विकास में बहुत सहायता मिल रही है।

इस स्तर पर पुस्तकें शिक्षा-विभाग के पाठ्य-पुस्तक अधिकारी के निर्देशन में तैयार की जाती हैं और विभाग द्वारा ही उनका प्रकाशन किया जाता है। १९६९-७० के लिए राजकीय पाठ्य पुस्तकों की लगभग दो करोड़ प्रतियों की

व्यवस्था की गयी है। जूनियर बेसिक स्कूलों में निर्धन छात्र/छात्राओं को नि शुल्क पुस्तकें वितरित की जाती हैं। गत वर्ष में शासन को पाठ्यपुस्तकों की रायल्टी के रूप में ६,२६,६५२ रु० की आय प्राप्त हुई।

जूनियर बेसिक स्कूलों को शिल्प-सामग्री और पुस्तक आदि के लिए १०० रु० प्रति स्कूल की दर से वर्ष १९५६-५७ से अनुदान दिया जा रहा है। इस धन-राशि में से २१ रु० शासन द्वारा स्वीकृत पुस्तक और मासिक पत्रिका खरीदने तथा ७९ रु० शिल्प एवं शिक्षण सामग्री तथा उपकरण के लिए व्यय किया जाता है। जिला परिषदों के पथ-प्रदर्शन के लिए विभाग द्वारा स्वीकृत शिल्प एवं उपकरणों की एक सूची वितरित की गयी है। प्रत्येक जिले में इस सामग्री के क्रय करने के लिए स्थानीय निकायों के स्कूलों के लिए एक समिति का गठन भी किया गया है, जिससे सामग्री का सदुपयोग हो सके। कुशल अध्यापकों ने इस अनुदान का बहुत सफल उपयोग किया है।

इस वर्ष प्रदेश के प्राथमिक विद्यालयों के ८ अध्यापकों को राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। राज्य सरकार की ओर से भी अध्यापकों को प्रदेशीय पुरस्कार प्रदान किया जाता है। प्राथमिक शिक्षा के प्रसार से सम्बन्धित विभिन्न आयोजनों के सम्पादन के लिए निरीक्षण को सुदृढ़ किया गया है। इस समय प्रदेश में ५४ विद्यालय उपनिरीक्षक, ३० उपविद्यालय निरीक्षिकाएँ, ६३६ विद्यालय प्रतिउपनिरीक्षक और २४४ सहायक बालिका विद्यालय निरीक्षिकाएँ हैं। पाठन स्तर में निरन्तर सुधार लाने के दृष्टिकोण से निरीक्षण व्यवस्था में सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक है। अस्तु इस वर्ष चतुर्थ योजना के प्रथम वर्ष में १० उप बालिका विद्यालय निरीक्षिकाओं के पद सृजित हुए हैं तथा ६ सहायक बालिका विद्यालय निरीक्षिकाओं एवं २५ विद्यालय प्रतिउपनिरीक्षकों के पदों के सृजन का प्राविधान है। सभी प्रतिउपविद्यालय निरीक्षकों को तहसीलों पर स्थानान्तरित कर दिया गया है।

"केयर" के सहयोग से बालाहार योजनान्तर्गत वर्ष १९६९-७० में १७,७२,१६१ बच्चों को नि शुल्क बालाहार दिया जा रहा है।

शासन द्वारा गठित भाषा समिति की संस्तुतियों को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से जिन जूनियर बेसिक विद्यालयों में उर्दू अध्यापकों की नियुक्ति हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं हैं वहाँ उर्दू अध्यापकों की नियुक्ति हेतु चतुर्थ योजना के प्रथम वर्ष १९६९-७० में अनुपातन अनुदान देने हेतु रु० १०,००,००० की धनराशि का प्राविधान किया गया है।

राज्य शिक्षा संस्थान ने फरवरी १९६४ से कार्य प्रारम्भ किया है। इसके उद्देश्य निम्नांकित हैं :—

१—निरीक्षक वर्ग सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करना।

२—प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ानेवाले अध्यापकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनुसंधान करना।

३—प्रदेश के प्राथमिक स्तर के अध्यापकों के लिए प्रसार-सेवाओं का आयोजन।

४—प्राथमिक पाठशालाओं के छात्रों तथा अध्यापकों के लिए साहित्य-निर्माण।

५—निरीक्षक वर्ग तथा प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के लिए अभिनवीकरण पाठ्यक्रम का आयोजन।

६—शिक्षकों के लिए प्रकाशन।

—शिक्षा की प्रगति १९६९-७० से साभार

प्राथमिक विद्यालयों में निरीक्षण को प्रभावकारी कैसे बनाया जाय ?

अल्पकालीन संस्तुतियाँ

(१) शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने एवं निरीक्षण को प्रभावकारी बनाने के लिए निरीक्षक-वर्ग को अपना मनोभाव बदलना होगा। वे अपने को अधिकार-सम्पन्न प्रशासनिक अधिकारी की अपेक्षा अध्यापकों का सच्चा हितैषी एवं मार्ग-दर्शक समझें, विद्यालय की समस्याओं को समझकर उनको हल करने का प्रयास करें।

(२) निरीक्षण रचनात्मक होना चाहिए, निरीक्षण में अध्यापक की त्रुटियाँ ही न दर्शायी जावें, अपितु ठोस सुझाव देते हुए मार्ग-प्रदर्शन किया जाय।

(३) प्रथम निरीक्षण के समय दिये गये सुझावों का अनुपालन सन्तोषजनक रूप में हुआ है या नहीं, यह देखना आवश्यक है। निम्न सुझावों के कार्यान्वयन में अध्यापकों को जो कठिनाइयाँ हुई हों उनको यथासम्भव दूर करने की चेष्टा करें।

(४) केन्द्रीय पाठशाला के प्रधानाध्यापक के पास भी अन्य विद्यालयों को दिये गये सुझावों को संक्षिप्त आख्या निरीक्षक-वर्ग को देनी चाहिए। प्रत्येक विद्यालय को सुधार-हेतु दिये गये निर्देश क्रमानुसार एक पंजिका में अंकित होने चाहिए तथा उस दिशा में की गयी मासिक प्रगति का पूर्ण विवरण भी इसमें अंकित करना चाहिए। केन्द्रीय पाठशाला के माध्यम से निरीक्षक-वर्ग प्रत्येक विद्यालय की मासिक प्रगति-आख्या प्राप्त करें।

(५) निरीक्षण-कार्य को सुदृढ़ बनाने के लिए केन्द्रीय विद्यालयों के प्रधानाध्यापक अपने अधीनस्थ विद्यालयों का सामान्य निरीक्षण एवं नियंत्रण करें। उनका यह निरीक्षण प्रति-उप-विद्यालय निरीक्षक के दो नियमित निरीक्षणों के अतिरिक्त होगा। इस कार्य के लिए माह में अधिक से-अधिक दो दिन व्यतीत किये जायँ।

(६) केन्द्रीय विद्यालयों को आदर्श बनाया जाय, जिससे अन्य विद्यालय उनका अनुकरण कर सकें।

(७) निरीक्षक के सुझावों के अनुसार प्रगति दिखानेवाले शिक्षकों को प्रशस्ति-पत्र दिये जायँ।

(८) निरीक्षण आख्या के महत्वपूर्ण अंशों को सम्बन्धित अधिकारी, जैसे-अध्यक्ष,

शिक्षा-अधिकारी, अभियन्ता, वित्त अधिकारी आदि को शीघ्र आवश्यक कार्यवाही हेतु भेजा जाय।

(९) एक विद्यालय के निरीक्षण मे निरीक्षक पूरा एक दिन लगावें तथा निरीक्षण के पश्चात् निरीक्षण आख्या प्रधानाध्यापक को उसी दिन देकर हस्ताक्षर प्राप्त कर लें। निरीक्षणोपरान्त विद्यालय-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातो पर अध्यापको से विचार विमर्श करें।

(१०) निरीक्षण के समय निम्नांकित बातो पर विशेष बल दिया जाय।

(अ) टोली द्वारा क्रमानुसार पाठशाला भवन तथा प्रांगण की सफाई।

(ब) सामूहिक प्रार्थना, राष्ट्रीय गान प्रवचन, सूचना, व्यायाम आदि का कार्यक्रम।

(स) छात्रो की व्यक्तिगत स्वच्छता का निरीक्षण (हाथ, पाँव, नाखून, दाँत, इत्यादि की सफाई)।

(द) विलम्ब से आनेवाले छात्रो की संख्या कम करने का प्रयास।

(य) *समय-विभाग चक्र तथा (शिक्षक-डायरी)* अध्यापको को दैनन्दिनी के अनुसार कार्यक्रम का संचालन।

(र) विद्यालय की प्रगति का पंचवर्षीय चार्ट।

(ल) कक्षा एक के बालको की प्रगति का मासिक-लेखा तथा उसके आधार पर कक्षा की जाँच।

(व) बालकों के बैठने व लेखनी पकडने का ढग।

(श) कक्षा १ और २ मे अनिवार्य रूप से तख्ती व कलम का प्रयोग।

(ष) श्यामपट्ट, चार्ट, चित्र, मॉडल तथा जो मानचित्र विद्यालय मे उपलब्ध हैं उनका उचित प्रयोग।

(स) अध्यापक व छात्र द्वारा शुद्ध भाषा के प्रयोग पर बल।

(ह) खेल कूद, स्काउटिंग, सांस्कृतिक एवम् साहित्यिक कार्यक्रम की प्रगति का अवलोकन।

(क्ष) छात्रो के ज्ञान के स्तर को जाँच मौखिक, लिखित एव क्रियात्मक कार्य द्वारा।

(त्र) शिल्प एव सम्बन्धित कला के सामान का निर्माण, संग्रह व बालको में वितरण।

(ज्ञ) अभ्यास पुस्तिकाओं की जाँच तथा लेख व वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियो मे सुधार का प्रयास।

(११) शिक्षकों द्वारा स्वयं निर्मित शिक्षण उपकरणों के प्रयोग पर बल दिया जाय।

(१२) गणित तथा भाषा को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया जाय क्योंकि अन्य विषयों की ज्ञान प्राप्ति में यही विषय सहायक होते हैं। निरीक्षण के समय इन विषयों के शिक्षण की नवीन विधियों से अध्यापक को परिचित कराया जाय।

निरीक्षण में जो विद्यालय आदर्श पाये जायें उनसे सम्बन्धित निरीक्षण-आख्या सभी विद्यालयों में प्रसारित की जाय।

(१३) निरीक्षक निरीक्षण के समय विभाग द्वारा प्राप्त निर्देश पुस्तकों को पढ़ने व उनके अनुसार कार्य करने पर बल देवें।

(१४) निरीक्षकों को प्रत्येक कक्षा के पाठ्य क्रम तथा विषय-वस्तु का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए तथा निरीक्षण आख्या में प्रत्येक विषय पर संक्षेप में सुझावों सहित टिप्पणी दी जानी चाहिए।

(१५) वर्ष में प्रत्येक अध्यापक कम से-कम १० पाठ योजनाएँ तैयार करे तथा निरीक्षण के समय इन पाठ योजनाओं को निरीक्षक वर्ग द्वारा देखा जाय। इन पाठों का शिक्षण प्रधानाध्यापक की देख रेख में हो। यदि निरीक्षक उचित समझें तो अपने समक्ष भी उनमें से किसी पाठ का शिक्षण अध्यापकों से अपने सामने करायें।

(१६) निरीक्षक भी समय-समय पर अध्यापकों के समक्ष आदर्श पाठ दें।

(१७) विभागीय योजनाओं यथा छात्र वृद्धि अभियान, स्वावलम्बी विद्यालय, मध्याह्न स्वल्पाहार आदि पर बल दिया जाय।

(१८) प्रति-उप विद्यालय निरीक्षक अपने कार्यक्रम की सूचना विद्यालयों को पहले से ही देवें जिससे पाठशाला प्रबन्ध समिति के सदस्यों एवं अभिभावकों से सम्पर्क किया जाय और समस्याओं का अध्ययन कर निराकरण किया जा सके।

(१९) दीक्षित व अदीक्षित सभी अध्यापकों की चरित्र-पंजिका प्रतिवर्ष लिखी जाय। कार्य सम्बन्धी टिप्पणी बहुत संक्षेप में न कर स्पष्ट होनी चाहिए। असन्तोषजनक कार्य सम्बन्धी अंकन की सूचना सम्बन्धित अध्यापक को अवश्य दी जाय।

(२०) ह्रास एवम् अवरोध की रोकथाम के लिए प्रत्येक वर्ष विद्यालय में चार्ट तैयार कराए जायें तथा निरीक्षण के समय प्रति विद्यालय निरीक्षक इसका अध्ययन करके निरीक्षण आख्या में संकेत करें। यदि सम्भव हो तो अवरोधवाले छात्रों के लिए अतिरिक्त कक्षा की व्यवस्था की जाय।

(२१) प्रत्येक विद्यालय मे सप्ताह मे एक दिन बाल सभा की बैठक का आयोजन किया जाय। इसकी कार्यवाही पंजिका म अवश्य होनी चाहिए।

(२२) राष्ट्रीय पचसूत्रि कार्यक्रम के सफल कार्यान्वयन हेतु प्रयास होना चाहिए।

दीर्घकालीन संस्तुतियाँ

१—उपविद्यालय निरीक्षक के कार्यालय मे एक पुस्तकालय की व्यवस्था होनी चाहिए। पुस्तकालय मे उपयोगी पुस्तकें जैसे शिक्षा संहिता, फाइनेंशियल हैण्डबुक, विभिन्न शिक्षा-आयोगो की आख्याएँ, संस्थाओं द्वारा प्रकाशित 'निर्देश पुस्तिका', विद्यालयों के पाठ्यक्रम आदि अवश्य रहे। जिला परिषदों की बचत स प्रतिवर्ष ५०० रु० की पुस्तकें क्रय करने की व्यवस्था की जाय।

२—क्षेत्र-स्तर पर समय समय पर अध्यापको की विचार-गोष्ठियाँ प्रति उप-विद्यालय निरीक्षकों/सहायक बालिका विद्यालय-निरीक्षिकाओ की अध्यक्षता मे आयोजित की जाय। अध्यापिकाओ के विषय-ज्ञान-वृद्धि के लिए कम-से-कम चार सप्ताह के क्षेत्रवार शिविर आयोजित किये जायँ।

३—पाठशाला प्रबन्धक-समिति को और अधिक क्रियाशील बनाने के निमित्त अतिरिक्त जिलाधीश, जिला नियोजन अधिकारी के माध्यम से पंचायत-राज विभाग से पूर्ण सहयोग प्राप्त किये जायँ।

४—निरीक्षकों की व्यावसायिक दक्षता मे वृद्धि के लिए समय-समय पर सेवा-कालीन प्रशिक्षणो का सर्वेक्षण किया जाय, जिससे वे निरीक्षण की नवीनतम विचार-धाराओं से परिचित होते रहें।

५—निरीक्षकों को अन्य प्रदेशो मे जाकर वहाँ की प्राथमिक पाठशालाओ की व्यवस्था, उनकी समस्याओं तथा निरीक्षण की विधियों के अध्ययन का अवसर भी प्रदान करना चाहिए।

६—निरीक्षको तथा प्रशिक्षण-संस्थाओं के बीच प्रतिसयुगमन (Interchangeability) होना चाहिए, जिसमे प्रशिक्षण-संस्थाओ के क्षेत्र की समस्याओ से तथा निरीक्षक-वर्ग शिक्षण की नवीनतम विधियों से परिचित होते रहें।

७—किसी भी जिले मे प्रति उप विद्यालय निरीक्षक के पद को एक माह से अधिक समय तक रिक्त न रखा जाय।

८—आदर्श-कक्षा एवम् आदर्श पाठ पर 'डाकुमेंट्री फिल्म' तैयार करायी जायें तथा दृश्य-श्रव्य उपकरणो द्वारा उनका प्रदर्शन स्थान-स्थान पर किया जाय।

९—विद्यालय-भवन राजकीय अनुदान द्वारा जिला-परिषद सार्वजनिक निर्माण विभाग (Public works Department) के माध्यम से बनाया जाय तथा भवन का नक्शा संस्थान बनाकर दे।

१०—विकेन्द्रीकरण के परिणामस्वरूप जो अधिकार जनता के प्रतिनिधियों को दिये गये हैं वे शिक्षा के क्षेत्र मे केवल नीति-निर्धारण तक ही सीमित हो और दैनिक प्रशासन मे उनका हस्तक्षेप शिक्षा के हित मे अवाछनीय है।

११—निरीक्षक-वर्ग को पूर्व-सेवा-प्रशिक्षण दिया जाय।

१२—जिला-परिषद् के शिक्षा-कार्यालय मे जो लिपिक हो, उन पर उप-विद्यालय-निरीक्षक का पूर्ण नियंत्रण हो।

१३—वर्तमान ढांचे मे प्रति-उप-विद्यालय निरीक्षक/सहायक बालिका विद्यालय निरीक्षिका को पदोन्नति प्राप्त करने मे काफी समय लगता है, जिसके कारण उनमे उदासीनता बनी रहती है। इसके लिए निम्न सस्तुतियाँ की जाती हैं।

(क) उप विद्यालय निरीक्षक/बालिका विद्यालय निरीक्षिका के पद पर सीधी भरती बन्द की जाय।

(ख) सभी जिलो मे अतिरिक्त उप-विद्यालय-निरीक्षकों के पद पुनः चालू किये जायें।

(ग) सभी जिलो मे उप-विद्यालय-निरीक्षकों का पद होना चाहिए तथा उनके अधिकारों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाय।

(घ) प्रति-उप-विद्यालय-निरीक्षक को कोठारी-शिक्षा-आयोग के अनुसार सुपरवाइजरी स्टाफ का वेतन-मान दिया जाय।

—शैक्षिक उन्नयन, राज्य शिक्षा-संस्थान से साभार

छात्र-संघों की सदस्यता : एक दृष्टिकोण

अजित कुमार

['छात्र-संघ अध्यादेश' पर इस लेख मे जो विचार प्रकट किये गये हैं— वे 'नयी तालीम' के विचार नहीं हैं। 'वादे वादे जायते तत्त्वबोध' की दृष्टि से हम इस लेख को प्रकाशित कर रहे हैं। इस विषय पर दूसरे लेखों का भी स्वागत होगा।—सम्पादक]

छात्र-संगठनों की सदस्यता को स्वैच्छिक बना देने के कारण कुछ प्रतिक्रियाएँ देखने मे आ रही हैं। यह प्रचार किया जा रहा है कि सरकार छात्र-संगठनो की स्वतंत्रता अपहरण करना चाहती है। यह प्रचार भ्रामक ही नही, वरन् सत्य से पूर्णतया परे है। वास्तविकता तो यह है कि इस प्रकार दूषित प्रचार व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित है तथा छात्रों के भारी बहुमत के हित के विरुद्ध भी है। साथ ही-साथ प्रजातांत्रिक प्रणाली की कसौटी पर किसी भी प्रकार सही नही उतरता। *सरकार ने छात्र-संघ की सदस्यता को केवल स्वैच्छिक बनाया है।* अर्थात् जो छात्र चाहे वह संघ मे रहे और अपनी इच्छा से चाहे एक संगठन बनाये, चाहे अनेक। अब उनके लिए किसी एक संगठन का सदस्य बनना अनिवार्य नहीं है और न यह आवश्यक है कि उनसे उनकी इच्छा के विरुद्ध सदस्यता की फीस वसूल की जाय।

छात्र-संघ की सदस्यता को ऐच्छिक रूप प्रदान करने की आवश्यकता क्यो पड़ी, यह एक विचारणीय प्रश्न है। छात्रों मे बढ़ती हुई अनुशासनहीनता, उनमे बढ़ती हुई हिंसात्मक प्रवृत्ति और उच्च शिक्षा के स्तर मे आती हुई गिरावट जन-जन की चर्चा का विषय हो गये हैं। प्रत्येक अभिभावक आज इन तीनो समस्याओ से त्रस्त है। इस महत्त्वपूर्ण समस्या पर विचार करने के लिए वर्ष १९६४ मे इलाहाबाद, लखनऊ, गोरखपुर तथा आगरा विश्वविद्यालयो के उप-कुलपतियों की बैठक हुई। इस बात पर सभी एकमत थे कि छात्र-संघो के विधान में इस प्रकार परिवर्तन कर दिये जायें कि सम्बन्धित बुराइयाँ कम हो जायें। कोठारी-आयोग ने भी वर्ष १९६६ मे अपनी रिपोर्ट मे कहा है कि कुछ विश्वविद्यालयों, विशेषकर लखनऊ विश्वविद्यालय मे हाल ही मे ऐसी घटनाएँ हुईं जिनके कारण परीक्षाओं के निर्धारित कार्यक्रम पूर्णतया अस्त-व्यस्त हो गये और छात्रों के एक वर्ग ने हिंसात्मक कार्य भी किये। कोठारी-आयोग के मत म

इसका मूल कारण छात्र-संघ की व्यापक कार्यवाहियाँ हैं। पुन प्रदेश के उप कुलपतियों की एक बैठक जनवरी १९६९ में हुई जिसने एक प्रस्ताव द्वारा छात्र-अनुशासनहीनता के प्रश्न पर विचार करने के लिए समिति बनाने का निर्णय लिया।

यह समिति मेरठ विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० आर० के० सिंह की अध्यक्षता में गठित हुई। यह समिति भी एक मत से इस निर्णय पर पहुँची कि छात्र संघों ने कोई भी ठोस और लाभदायक काम नहीं किया। उनका मुख्य काम हड़तालें कराना और छात्रों तथा विधिपूर्वक स्थापित सत्ता में संघर्ष कराना ही रहा है। समिति ने यह मत व्यक्त किया कि यदि इस स्थिति को रोकने का प्रयास न किया गया तो देश में अराजकता की परिस्थिति अन्त में उत्पन्न हो जायगी।

परिनियम बनाने की पृष्ठभूमि में शिक्षाविदों तथा अभिभावकों की यही चिन्ता है। वर्तमान सरकार ने यह कदम उठाकर राष्ट्रहित की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है जिसके लिए सामान्य से अधिक साहस, आत्मविश्वास और सिद्धान्तों के लिए अपनी लोकप्रियता और भविष्य के लिए खतरा उठाने की श्लाघनीय भावना निहित है।

शासन का यह कदम प्रजातंत्र के मूल सिद्धान्त पर आधारित है। प्रजातंत्र में जोर-जबरदस्ती का कोई स्थान नहीं है। इस प्रणाली में चन्दा देनेवाली या वोट देनेवालों के प्रति चंदा लेनेवाले या वोट लेनेवाले उत्तरदायी होते हैं। अनिवार्य सदस्यता और उसकी फीस वसूलना जनतंत्र नहीं, वरन् तानाशाही मनोवृत्ति का परिचायक है। सरकार ने संगठनों की सदस्यता को स्वैच्छिक बनाकर इस तानाशाही और अनुत्तरदायी मनोवृत्ति को रोकने का प्रयास किया है।

छात्रों को यह समझना चाहिए कि वे देश की सम्पदा हैं। यदि इस सम्पदा का सही उपयोग होगा तो निश्चय ही राष्ट्र समृद्धिशाली और शक्तिवान बनेगा अन्यथा देश दरिद्रता और भुखमरी की ओर ठीक उसी प्रकार जायगा जिस प्रकार पूंजी का दुरुपयोग होने से व्यापार नष्ट होता है। आज चंद स्वार्थी छात्र और असामाजिक तत्व उन्हें गलत मार्ग पर ले जाने की चेष्टा में हैं। वे छात्रों की अपार शक्ति को विध्वंसात्मक कार्यों में लगाकर उसे नष्ट करना चाहते हैं। उन्हें ऐसे स्वार्थी तत्वों से सजग रहना चाहिए।

यदि छात्र, जीवन म ज्ञान और शक्ति को अर्जित करने के स्थान पर समय का अपव्यय करेंगे और स्वार्थी तथा असामाजिक तत्त्वों के इशारों पर चलकर अपनी शक्ति का नाश करेंगे तो निश्चय ही हम उन लाखों-करोड़ों गरीब किसानों, मजदूरों, निम्नतम वेतनभोगी वर्गों के साथ विश्वासघात करेंगे जिनसे प्राप्त टैक्स से विश्वविद्यालय अथवा डिग्री कालेजों में उच्च शिक्षा दी जाती है। छात्रों को यह स्मरण रखना चाहिए कि उच्च शिक्षा का व्यय उनके दिय गय शिक्षण-शुल्क से पूरा नहीं होता, वरन् सरकारी कोष द्वारा दिये गये धन से, और यह धन सरकारी कोष में उत्तरप्रदेश की गरीब जनता से आता है। जनता इसी आशा पर टैक्स देती है कि छात्र शिक्षित होकर उसकी दरिद्रता को दूर करने में सहायक होंगे। स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा का दुरुपयोग न केवल उत्तरप्रदेश की गरीब जनता के प्रति विश्वासघात हो होगा वरन् हमारे पूर्वजों द्वारा चलायी गयी मान्यताओं के विरुद्ध भी होगा।

विश्वविद्यालय ही वे स्थान हैं जहाँ एकाग्रचित्त होकर छात्र आगे आनेवाले अपने उत्तरदायित्व को निभाने के लिए अपने को मानसिक और शारीरिक रूप से तैयार कर सकते हैं। छात्र-जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है। उसका अपव्यय राष्ट्र के साथ विश्वासघात है। प्रत्येक छात्र को यह याद रखना चाहिए कि न कोई ऐसा मनुष्य हुआ है और न कोई ऐसा राष्ट्र, जिसने समय का अपव्यय करके भी ख्याति अर्जित की हो। सरकार स्वयं इस बात के लिए जागरूक है कि संस्थाओं में शान्ति का वातावरण हो और विद्यार्थी तन्मय होकर अध्ययन कर आगे आनेवाले उत्तरदायित्व को मानसिक रूप से वहन करने में सक्षम बनें।

छात्र-संगठनों, जिन्हें शिक्षा-मन्दिरों में शैक्षिक वातावरण बनाना चाहिए था, अपने ध्येय से पथभ्रष्ट हो गये हैं। अत सरकार ने छात्र-संघ की सदस्यता को स्वैच्छिक बनाया। लेकिन, सरकार द्वारा इतने विवेकपूर्ण कदम उठाने पर इसका विरोध क्यों? स्पष्ट है कि इससे कुछ छात्रों को सस्ती नेतागिरी करने और दूसरे छात्रों का धन शोषण कर स्वयं आगे बढ़ने का अवसर न मिल सकेगा।

छात्र संगठनों का विगत दो दशाब्दियों का इतिहास बताता है कि विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजों के छात्रों का भारी बहुमत अधिक-से-अधिक अध्ययन कर अपने भविष्य को बनाने का इच्छुक होता है पर प्रत्येक संस्था मे कुछ छात्र ऐसे भी होते हैं जिनका ध्येय दूसरे छात्रों के पैसे पर मौज करना होता है। अभी तक अनिवार्य सदस्यता के कारण सदस्यता की फीस के रूप में लाखों रुपये एकत्रित

होते रहते हैं। इन रुपयो पर कब्जा करना, उनको अपने निजी स्वार्थ मे व्यय करना, इन कुछेक छात्रो का ध्येय रहा है। ये छात्र-नेता इस धनराशि को हथियाने के लिए ही मुख्यत छात्र-संगठनो का सहारा लेते रहे हैं। इसके लिए वे कभी भी उन छात्रो के प्रति अपने को उत्तरदायी नही समझते रहे, जिनसे यह धन फीस के रूप मे वसूल किया जाता था। यदि यही धनराशि सगठनो द्वारा छात्रो से उनकी स्वेच्छा से ली गयी होती तो इसका अपव्यय करने का साहस उन तथाकथित छात्र-नेताओं को न होता जो आज अध्यादेश का विरोध कर रहे हैं, क्योकि उस समय उन्हें छात्रो को व्यय का हिसाब देना पडता। इस धन के अपव्यय की झलक उस समय मिलती है जब छात्र-सगठनो के चुनाव होते हैं और प्रतिद्वन्द्वी एक-दूसरे का भेद खोलने मे नही हिचकते। छात्र सगठनो के चुनाव हिंसा, अश्लीलता और द्वेष का बीज शिक्षा-मन्दिरो मे बोते हैं। छात्र-नेता चुनावो मे अन्धाधुन्ध व्यय करते हैं। यह धन कहाँ से प्राप्त होता है और किस आशा मे ? यह भी ध्यान देने योग्य है।

अपने इसी एकाधिकार को कायम रखने के लिए ये तथाकथित छात्र-नेता विश्वविद्यालयो मे हिंसात्मक कार्यों को प्रोत्साहित कर बाहरी असामाजिक तत्त्वो से गठबन्धन कर आतक का वातावरण बनाये रखने की बराबर कोशिश करते हैं। शिक्षा-सस्थाओ मे चाकू, छूरों, पिस्तलो आदि अवैध शस्त्रों का छात्रों के पास होने के पीछे इन्ही तथाकथित नेताओं का हाथ होता है।

इन तथाकथित छात्र-नेताओ मे से अधिकाशतः ऐसे हैं जो दस-दस वर्षों से विश्वविद्यालयो मे हैं जब कि एक अध्ययनशील छात्र के लिए बी० ए० से पी० एच० डी० तक शिक्षा प्राप्त करने के लिए केवल सात वर्ष का समय चाहिए। ये छात्र-नेता विवाहित तथा बाल-बच्चेदार होते हैं और गृहस्थ जीवन के समस्त सुखो का उपभोग करते हुए भी विश्वविद्यालयो मे छात्र बनकर घूमते हैं। स्पष्ट है कि इनका शिक्षा और छात्रो से कोई लगाव नहीं होता। इनका एकमात्र ध्येय छात्र-शोषण ही होता है। ये तथाकथित छात्र नेता सिनेमाहाल, रेस्टोरेन्ट और शराबखानो मे भी प्राय देखे जाते हैं। इनके खर्च को देखकर आश्चर्य होता है कि ये छात्र हैं अथवा और कुछ।

अपने प्रभाव और आतक को जमाये रखने के लिए इन छात्र नेताओ का सबसे आसान तरीका संगठनों के माध्यम से हडताल कराना और सार्वजनिक सम्पत्ति का नाश कराना है। सदैव यह देखा गया है कि इन विध्वंसात्मक कार्यों के पीछे इन्ही नेता कहे जानेवाले छात्रो का हाथ होता है। इन तथाकथित नेताओ को लेशमात्र भी ध्यान नहीं होता कि शिक्षा-सस्थाओ की हडताल से कितनी

अपार क्षति राष्ट्र और उन छात्रो की होती है जो शिक्षा का एकमात्र ध्येय लेकर आते हैं। और इन तथाकथित नेताओ को चिन्ता हो भी तो क्यो ? वे तो अपना गठबधन अन्य दलों से किये रहते हैं और उनके सहारे अपना भविष्य बनाते हैं। कुछ राजनीतिक दल विश्वविद्यालयो और डिग्री कालेजों को अपनी पार्टी के लिए रगरूट भरती करने का अच्छा स्थान (recruiting ground) समझते हैं। अत उन्हें भी अध्ययनरत छात्रो के भविष्य मे कोई भी रुचि नही रहती और वे भी छात्र-सघो के माध्यम से अपनी स्वार्थ पूर्ति मे ही लगे रहते हैं।

हानि होती है केवल उन छात्रो की जो शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते हैं, और जिन पर आशा लगाकर उनके गरीब अभिभावक धन व्यय करते हैं। ऐसे ही छात्र किसी भी संस्था मे भारी बहुमत मे होते हैं यह राष्ट्रीय क्षति है।

स्वतत्रता की एक बहुत बडी देन है देश के गरीब वर्ग मे नवीन जागृति का होना। आज हमारे विश्वविद्यालयो और डिग्री कालेजों में भारी सख्या मे गरीब वर्ग के छात्र आ रहे हैं। उनके मस्तिष्क मे यह विचार बैठ गया है कि शिक्षित बन, तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर, वे अपनी अधिक से अधिक उन्नति कर सकेंगे। लेकिन ये तथाकथित छात्र-नेता जो अधिकाशत धनिक वग से आते हैं, नहीं चाहते कि गरीब वर्ग के लोग शिक्षा म आगे बढ़ें। वे इन छात्रो को शैक्षिक क्रान्ति का गलत मार्गदर्शन कर उनकी प्रगति म रोडा अटका रहे हैं। शिक्षा-सस्थाओं मे हडतालो द्वारा सबसे अधिक क्षति आज गरीब वग के मेधावी छात्रो की होती है।

सगठन का ध्येय

छात्र सगठनों की स्थापना का वास्तविक ध्येय छात्रों का रचनात्मक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमो द्वारा सर्वांगीण विकास करना है। वाद विवाद प्रतियोगिता, नाटक, संगीत, स्वस्थ मनोरंजन, कवि सम्मेलन, मुशायरे, विद्वानो का सम्मान तथा उनके व्याख्यानो का आयोजन उनका प्रमुख कार्य है। इसके साथ ही साथ अपनी सस्थाओं म छात्र कल्याणकारी कायक्रमो का आयोजन और विद्यालयो के अधिकारियो की सहायता से उनकी व्यवस्था करना और कराना भी है। परन्तु किसी भी विश्वविद्यालय अथवा डिग्री कालेज के छात्र सगठन के किसी एक वर्ष के कार्यकलाप का अध्ययन करें तो मालूम होगा कि रचनात्मक कार्य के नाम पर लेशमात्र कार्य नहीं हुआ, लेकिन विध्वसात्मक कार्यों की सूची अवश्य तैयार हो जायगी जिनमे गुरुजनों का अपमान, हड़ताल, परीक्षा में नकल, आपसी छुरेबाजी, छात्राओं के प्रति अश्लील व्यवहार, गुडागर्दी आदि प्रमुख होंगे।

छात्र-संघो ने वर्तमान समय मे 'ट्रेड यूनियनों' का रूप ले लिया है। छात्रों के हितो मे प्रयत्नशील होने के स्थान पर इनका प्रयोग अध्यापको और उपकुलपतियों को बाध्य करने के लिए ही किया जाता है। छात्र-संगठनों के माध्यम से ये छात्र॰ नेता उनका घेराव करते हैं और धमकियाँ देते हैं।

यह सर्वविदित है कि छात्रो की सामूहिक शक्ति अपार है। स्वतंत्रता-युद्ध मे छात्रो ने रचनात्मक एवं देशभक्ति के कार्य मे अपनी सामूहिक शक्ति का प्रदर्शन किया था। उन्होने स्वतंत्रता-युद्ध मे अपना पूर्ण योगदान किया। परन्तु खेद है कि विगत दो दशाब्दियो मे इन अनुकरणीय परम्पराओ मे गिरावट आयी और आज तो ये परम्पराएँ लगभग लुप्त-सी हो गयी हैं। आज बाढ़ व सूखा-जैसी प्राकृतिक आपदाओं के समय छात्र-सगठनो द्वारा किसी रचनात्मक कार्य की खबरें समाचार-पत्रो मे पढने को नही मिलती। वालेन्टियरो के रूप मे आज छात्रों के दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। यूनियनो द्वारा छात्रो की सामूहिक शक्ति का प्रदर्शन, दुकानें लूटने, सार्वजनिक सम्पत्ति का नाश कराने, हड़तालें कराने, एवं कानून और व्यवस्था तोड़ने मे ही होते देखा गया है। छात्राओ के प्रति होनेवाले अशिष्ट व्यवहार के समय अथवा किसी गुडे द्वारा सताये गरीब व्यक्ति की रक्षा के समय यह सामूहिक शक्ति सामूहिक कायरता मे परिणत हो जाती है। रैगिग (Ragging) अथवा इन्ट्रोडक्शन नाइट (Introduction night) जैसी अवाछनीय प्रथाओं के विरुद्ध किसी छात्र नेता ने आवाज नहीं उठायी।

यह उल्लेखनीय है कि गत १२ जुलाई, जिस दिन अध्यादेश जारी हुआ, से आज तक किसी भी अभिभावक ने इसके विरुद्ध एक भी शब्द नहीं कहा और न लिखा। स्पष्ट है कि प्रत्येक अभिभावक यह चाहता है कि छात्र गम्भीरता से शिक्षा प्राप्त करें और वह यूनियनो की इस नयी व्यवस्था का स्वागत करता है। आलोचक सिर्फ वे ही हैं जो विश्वविद्यालय को रंगरूट भरती करने का स्थान मानते हैं अथवा वे छात्र जो दूसरे छात्रो का शोषण कर अपना निजी भविष्य बनाना चाहते हैं। छात्रों को ऐसे दलो, तथा उनके पिट्ठू छात्र-नेताओ से सचेत रहना चाहिए।

ऐच्छिक सघों के विरुद्ध एक तर्क यह दिया गया है कि कोई भी धनवान वर्ग या दल छात्रो की ओर से फीस जमा कर अपना 'पाकेट संघ' खडा कर सकता है और उसके माध्यम से अनाचार और अराजकता फैला सकता है। यह तर्क एक सतही आशंका पर आधारित है। यदि पूँजीपतियो या विदेशी धन का उपयोग छात्र-संघ बनाने में बड़े पैमाने पर होगा तो ऐच्छिक सघ बनने पर यह तथ्य

सबके सामने अपने आप आ जायेगा और आज जो इन दोनो प्रकार की शक्तियो के दलाल सभी विद्यार्थियो की अनिवार्य फीस के लाखो रुपये के पीछे छिपकर अपना खेल खेलते हैं वह सम्भव न हो सकेगा। छात्रो का विशाल बहुमत उक्त दोनो प्रकार के दलो से घृणा करता है और फिर उनके द्वारा फैलाये गये जाल मे फँसने से बचा रहेगा।

अन्त मे एक बार पुन नौजवानो को यह स्मरण दिलाना है कि वे उन छात्र-नेताओ के बहकावे मे न आवें जो उनकी सामूहिक शक्ति का अनुचित प्रयोग अपने निजी स्वार्थ के लिए करें। इससे न केवल उनका व्यक्तिगत अहित होगा, बल्कि राष्ट्र की अपार क्षति होगी। छात्रो के गुमराह होने से उनके अभिभावको, प्रदेश की गरीब जनता तथा राष्ट्र के कर्णधारों को, जो छात्रो की ओर आशा की दृष्टि लगाये बैठे हैं, हार्दिक पीडा होगी। हो सकता है कि 'क्रान्ति' जैसे लुभावने शब्दों का जाल उनके सामने फैलाया जाय, लेकिन छात्रो को सचेत रहना है कि वह क्रान्ति कैसी होगी। हिंसात्मक क्रान्ति से उठनेवाले राष्ट्र आज भी हिंसा के दल-दल में फँसे हुए हैं। उनकी सामाजिक तथा सास्कृतिक प्रगति रुक गयी है। भारत मे वही क्रान्ति सफल होगी जिसका बीज महात्मा गाधी और पण्डित नेहरू ने बोया है और जो अहिंसात्मक और प्रजातान्त्रिक है।•

जीवन की शिक्षा का विद्यालय

गोपालदत्त भट्ट

अनेक वर्षों से सुनता आ रहा था कि बेतूल जिले के करजगांव में श्री गंगाधर उमराव पाटणकरजी नयी तालीम का विद्यालय चलाते हैं। गांधी-शताब्दी शिविर-शृंखला के सन्दर्भ में मेरा वहाँ जाना हो सका और कुछ दिन जयनारायण सर्वोदय विद्यालय करजगांव के मधुर और जीवंत वातावरण में रहने का सुअवसर मिला। मैंने अपने मन में करजगांव के विद्यालय का जो चित्र बना रखा था उससे बहुत अधिक मुझे वहाँ देखने को मिला। अपनी आकांक्षा से अधिक मैंने वहाँ पाया।

आठवीं कक्षा तक वहाँ शिक्षा दी जाती है। कुल मिलाकर ९ अध्यापक वहाँ हैं। वहाँ शिक्षा की पहली वर्णमाला सफाई से, गोबर उठाने एवं खाद बनाने से शुरू होती है। जब विद्यार्थी विद्यालय से आठवीं पास करके निकलता है तो वह एक ऐसा किसान बनकर निकलता है जिसे खेती का पूरा ज्ञान होता है, जो यह जानता है कि कौनसे फल से कौनसा जीवन-तत्त्व एवं खनिज, लवण शरीर को मिलता है, कम्पोस्ट खाद कैसे बनायी जाती है, तथा मानव मलमूत्र कितना कीमती और उपयोगी होता है। एक साथ कैसे दो, तीन फसलें खेत से ली जा सकती हैं। अगर मैं ऐसा कह दूं कि जयनारायण सर्वोदय विद्यालय से निकला हुआ विद्यार्थी एक वैज्ञानिक कृषि-पण्डित, देश की हर समस्या पर शान्तिपूर्वक सोचने-समझने और उसे सुलझाने के लिए सतत प्रयत्नशील, जागृत जिम्मेदार नागरिक, जाति-पांति, रंग भेद छुआ-छूत आदि को मिटाने के लिए उद्यत क्रान्तिकारी, एवं भगवान पर अटूट विश्वास और श्रद्धा रखनेवाला कर्मयोगी भक्त होता है तो कोई अत्युक्ति न होगी।

सुबह के पांच बजे मधुर जागरण-गीत सुनकर मैं जागा और मैंने देखा कि विद्यालय के बाल-गोपालों की लम्बी कतार गांव से गाते हुए विद्यालय की ओर आ रहे हैं। मालूम हुआ कि यह केवल आज का नहीं, अपितु बारिस छोडकर साल भर का कार्यक्रम है। उस प्रातर्वेला में गीता के श्लोकों और गीताई के छन्दों से अमृतपान करते हुए ये बच्चे ऐसे लगते हैं जैसे किसी प्राचीन काल के गुरुकुलों के विद्यार्थी हों।

प्रार्थना के बाद सामूहिक श्रम होता है। चट्टान-जैसे धरातल पर मिट्टी बिछा बिछाकर अमरूदों का लहलहाता बगीचा उगाया है। टमाटर, मटर, आलू,

गेहूं, चना, गाजर कौनसी चीज ऐसी है जो बच्चों ने नहीं उगायी है। विद्यालय के बच्चों ने जो काम वहां किया है उसे देखकर अच्छे-अच्छे किसान दंग रह जाते हैं। ये छोटे-छोटे बच्चे मस्ती से किलकते हुए कितना कर सकते हैं, उसका सबूत विद्यालय की खेती है। छोटे बच्चे भी बड़े लोगों की तरह देश का उत्पादन बढ़ा सकते हैं यह मैंने यहीं देखकर जाना। खेलते हुए, मेहनत करते हुए, सीखते हुए उत्पादन बढ़ाना इन बच्चों ने सीखा है। श्रम के बाद हाथ-पांव धोकर सभी बच्चे पंक्तियों मे बैठकर अपने पैदा किये हुए चीजों का नाश्ता करते हैं—अमरूद, टमाटर, मटर, गाजर से भरी प्लेटें। १० बजे के बाद फिर वर्गों मे पढ़ाई होती है।

सौम्यता और नम्रता की मूर्ति श्री पाटणकरजी की अथक साधना की फलश्रुति है यह। विद्यालय के पास के गांव, नयेगांववालों ने एकसाथ बैठकर २६ जनवरी के दिन तय किया कि आज से कोई भी व्यक्ति खुले मे शौच नहीं जायेगा। लोगो ने घर-घर सण्डास लगाये, गांव साफ-सुथरा, जगह-जगह कम्पोस्ट खाद के गड्ढे गोबर से लिपे हुए खेतों मे लहराते हुए गेहूँ देखकर मैं मन मे गुदगुदा उठा। आप देखना चाहेंगे तो जाइए आदर्श ग्रामदानी गांव देखिए। यह गांव करजगांव विद्यालय की देन है। वहां के अधिकांश युवक किसान करजगांव विद्यालय से निकले हुए हैं। विद्यालय ने उनके जीवन की बुनियाद को मजबूत कर दिया और आज वे लोग स्वतः अपने जीवन का भव्य भवन निर्माण कर रहे हैं।

आज ऐसे ही विद्यालयों की आवश्यकता है जो करजगांव विद्यालय की तरह खेत से जुड़े हों, श्रम से जुड़े हो, पसीने और ईमानदारी से जुड़े हो, श्रद्धा और भक्ति से जुड़े हो, किसानो और मजदूरो से जुड़े हों, जीवन से जुड़े हो, जीवन की शिक्षा से जुड़े हों। देश की समृद्धि और मानवता के भव्य विकास के लिए यह अत्यन्त अनिवार्य है।•

सम्पादक मण्डल :
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १९
अंक : २
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

सितम्बर, '७०

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा ६ रुपये है।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री ओमप्रकाश भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : सितम्बर, '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

आवरण मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस मानमंदिर, वाराणसी

वर्ष : १९
अंक : ३

छात्र-संघ

आचार्यकुल का अभिमत
उत्तरप्रदेश सरकार का अध्यादेश
उ० प्र० आचार्यकुल की गोष्ठी

अक्तूबर, १९७०

६२,५६,२८५ रु० का ग्रामस्वराज्य कोष

२ अक्तूबर को विनोबाजी को समर्पित

●

ग्रामस्वराज्य कोष की अवधि ३१ दिसम्बर '७०
तक के लिए सर्व सेवा संघ की
प्रबन्ध समिति ने बढ़ायी है।

मुक्त हस्त दान दीजिये और
१ करोड़ पूरा कीजिये

उत्तरप्रदेश सरकार का छात्र-संघ अध्यादेश

वर्ष : १९
अक : ३

उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा, गोरखपुर, वाराणसेय सस्कृत, कानपुर और मेरठ विश्वविद्यालयो और इनके सगठक या सम्बद्ध कालेजो मे छात्र-सघ की सदस्यता अनिवार्य थी। छात्रो के प्रवेश के समय इन सस्थाओ द्वारा दूसरी फीसो के साथ छात्र-सघ की सदस्यता की फीस भी वसूल कर ली जाती थी। ११ जुलाई १९७० को उत्तर-प्रदेश सरकार ने एक अध्यादेश जारी कर छात्र-सघो की अनिवार्य सदस्यता समाप्त कर दी। अध्यादेश मे यह भी आदेश था कि सस्थाएँ छात्र-सघो की सदस्यता-शुल्क वसूल न करें।

अध्यादेश बनाते समय यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि सीमित अवधि के लिए राज्य-सरकार को अधिकार दिया जा रहा है कि वह छात्र-सघो के सगठन और कार्य-सचालन के सम्बन्ध में परि-नियम बना सके, जिससे इस प्रकार के बने परि-नियम समानुरूप हों।

इस अध्यादेश से सारे उत्तरप्रदेश का छात्र-जीवन विक्षुब्ध हो गया। छात्र-नेताओ ने इसे छात्र-स्वतत्रता का अपहरण समझकर इसका उग्र विरोध किया। सरकार-विरोधी राजनैतिक दलो ने छात्र-नेताओ का समर्थन किया। सरकार ने इन नेताओ और कुछ समर्थको को जेल मे बन्द किया। परन्तु कुछ लोगो ने छात्र-सघ की सदस्यता को ऐच्छिक बनाने का स्वागत किया। उन्होंने कहा कि किसी भी सगठन की अनिवार्य सदस्यता लोकतत्र की भावना के विरुद्ध है और इससे व्यक्ति के मूलाधिकार का हनन होता है। यह भी कहा गया कि छात्र नेताओ को जेल मे बद करने से जो शान्ति दिखाई दे रही है वह अस्थायी है और इस प्रकार का दमन समस्या का स्थायी हल नही है। इस प्रकार विभिन्न मत प्रकट किये गये और अखबारो मे लेख भी लिखे गये।

इस क्षुब्ध वातावरण में केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की बैठक आगरा मे हुई जहाँ यह निश्चिय किया गया कि चूँकि इस समस्या का सीधा सम्बन्ध आचार्यो और छात्रो से है अत आचार्यकुल इस समस्या पर विचार करे और अपना निष्पक्ष अभिमत प्रकट करे। यह भी सोचा गयर कि अधिक अच्छा यह होगा कि इस प्रकार का अभिमत प्रकट करने के पहले आचार्यकुल के मच पर सभी विचार-वालो को आचार्यो को, छात्रो को, और विभिन्न दल के नेताओ को, सामाजिक कार्यकर्ताओ को एकत्र किया जाय और सब मिलकर इस समस्या पर विचार करें। तदनुसार १६ २०, २१, सितम्बर को वाराणसी मे एक गोष्ठी का आयोजन हुआ। गोष्ठी में विभिन्न दल के नेताओ आचार्यो उपकुलपतियो सामाजिक कार्यकर्ताओ आर छात्रो ने अपनी-अपनी बातें कही। सबकी बातें सुनकर आचार्यकुल ने अपना अभिमत प्रकट किया। सबकी बात और आचार्यकुल का अभिमत नयी तालीम' के इस अक का विषय है।

—वशीधर श्रीवास्तव

छात्र-संघ-अध्यादेश : उद्देश्य और कारण

राज्य के विश्वविद्यालयो के उप-कुलपतियो के सम्मेलनो मे अन्य बातो के अतिरिक्त छात्र-सघो के कार्य-कलापों के बारे मे भी विचार विमर्श होते रहे हैं। शिक्षाविदो का यह मत है कि विश्वविद्यालयो और डिग्री कालेजों के छात्र-सघ छात्रो के बीच स्वस्थ, सगठित जीवन के समुचित विकास मे सहायक नही हुए हैं। केन्द्र द्वारा नियुक्त कोठारी आयोग (सन् १९६६) ने भी यह मत प्रकट किया है कि पिछले कुछ वर्षों मे अधिकतर छात्र-सघो के कार्य-कलाप ट्रेड यूनियन का रूप धारण कर चुके हैं, जिसे दृढता से निरुत्साहित करना आवश्यक है। आयोग ने यह सस्तुति की है कि सारे विश्वविद्यालय अथवा कालेज के एक छात्र-सघ को सदस्यता के लिए छात्रो द्वारा अनिवार्य शुल्क दिये जाने का प्राविधान नहीं होना चाहिए। अतएव छात्र-सघो के सगठन और कार्य संचालन को उचित आधार देने के लिए यह प्रस्ताव है कि उनके सम्बन्ध मे परिनियम बनाने की व्यवस्था की जाय। आरम्भ मे सीमित अवधि के लिए राज्य-सरकार को यह अधिकार दिया जा रहा है कि वह इस सम्बन्ध मे परिनियम बना सके जिससे कि इस प्रकार बने परिनियम समानुरूप हों। इस प्रयोजन के लिए लखनऊ इलाहाबाद, आगरा, गोरखपुर, कानपुर तथा मेरठ विश्वविद्यालयो तथा वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बन्धित अधिनियमितियो मे सशोधन करना आवश्यक है।

तदनुसार उत्तरप्रदेशीय विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, १९७० पुन स्थापित किया जाता है।

श्रीपति मिश्र
शिक्षा मत्री

इस अधिनियम के प्रारम्भ होने से २ वर्ष की अवधि मे राज्य सरकार जब भी अपेक्षित हो, विश्वविद्यालयों अथवा उसके सगठक या कालेजों या उसके सघटक कालेजों या सबद्ध कालेजों म छात्र-सघो के सगठन तथा कृत्यो के सम्बन्ध मे, गजट मे, अधिसूचना द्वारा परिनियम बना सकती है।

संख्या ग—१।२३०६—यू—१५-१४-२१-७०

उत्तरप्रदेश विश्वविद्यालय (सशोधन) अध्यादेश, १९७० (उत्तरप्रदेश अध्यादेश सख्या ९ १९७०) की धारा ८ के साथ पठित—विश्वविद्यालय अधिनियम, १०२६ (संयुक्त प्रात अधिनियम संख्या ८,१९२६) की धारा २६ के

अधीन अधिकारों का प्रयोग करके; राज्यपाल निर्देश देते हैं कि आगरा विश्वविद्यालय की परिनियमावली (स्टटयूटस) में तात्कालिक प्रभाव से निम्नलिखित परिवर्द्धन किया जाय अर्थात्—

अध्याय १० के पश्चात्, एक नये अध्याय के अतगत निम्नलिखित परिनियम बढ़ा दिया जाय —

"अध्याय १० ए

छात्र-सघ

१—उक्त अधिनियम के अधीन बनाये गये किसी परिनियम या अध्यादेश में निहित किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी विश्वविद्यालय या किसी सम्बद्ध महा विद्यालय के किसी छात्र-सघ की (चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाय) सदस्यता अनिवार्य नही होगी, और तदनुसार, ऐसे सघ की ऐसी सदस्यता के लिए शुल्क या अभिदान के रूप में (चाहे इसे सदस्यता शुल्क या अभिदान अथवा किसी निधि में अंशदान देना कहा जाय या किसी भी अन्य नाम स क्यो न पुकारा जाय) दिये जाने के लिए अभिप्रेत कोई धनराशि विश्वविद्यालय या किसी सम्बद्ध महा-विद्यालय द्वारा किसी छात्र से वसूल नही की जायगी। •

सन्देश

छात्र-सघ के बारे मे मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि उसे बन्द नहीं करना चाहिए बल्कि छात्रो के मन मे जो विद्रोह का कारण है उसे समझ लेना चाहिए और उनके सामने जो कठिनाइयाँ हैं उन्हें मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

स्वराज्य मिलने के बाद जिस प्रकार हमारे देश मे कृषि तथा लघु-उद्योगो के प्रति उपेक्षा रही है उसीका परिणाम आज नवयुवको का विद्रोह तथा असंतुलन है।

नवयुवको म जो तोड फोड की भावना देखन म मिलती है उसे सहानुभूति की दृष्टि से देखना चाहिए क्योकि हमारे देश की आत्मतुष्ट सरकारें इतनी मद गति म या कभी-कभी अगति से चलती हैं कि यदि युवको का मन खौल उठता हो और विध्वसक काय करते हो तो यह स्वाभाविक है। युवको के प्रति मेरे मन में पूर्ण सहानुभूति है और मुझे बार-बार लगता है कि उनके प्रति न्याय नहीं किया जा रहा है। यदि छात्र सघ के साथ शिक्षक-वग भी व्यापक दृष्टि से युवा जीवन का

सचालन करने की ओर प्रवृत्त हो और उपयुक्त असन्तोष के कारणो पर सरकार गभीरतापूवक विचार करने का कष्ट करे तो मुझे पूण विश्वास है कि छात्र संघ को तोडने से नही बल्कि उसके बनाये रखने से छात्रो के जीवन में भविष्य के लिए उपयोगी सगठन, एक्य तथा लोक-सेवा की भावना जाग्रत की जा सकती है।

—सुमित्रानन्दन पत

छात्र सघ छात्र वग के परस्पर-सहयोग, सद्भाव और समानता की वृद्धि के लिए बने थे और उनका लक्ष्य अपने सदस्यो के सामूहिक हित की रक्षा था। उन छात्र-सघो को विघटित करने के उपाय अन्तत स्वाथ और अवसरवादिता के आधार पर बन गुटो को जन्म देंगे जिनमे छात्र वग की समष्टिगत हानि होगी ऐसी मेरी धारणा है।

तरुण वग का असन्तोष विश्व-व्यापी है परन्तु उसके देशज कारण हैं जब तक उनके स्थितियो म परिवतन न लाया जाय असन्तोष मे परिवतन सम्भव नही है। दीघकाल तक बना रहनेवाला असन्तोष हिंसात्मक उपायो की शरण लेता है। यह सत्य हमारे देश के अनेक भागो म प्रमाणित हो चुका है। छात्र संघो को विघटित करने से अथवा एक ही सस्था म अनेक सघो के बन जाने से सघष का क्षेत्र समाप्त नही होता बढ जाता है। अत प्रयास असन्तोष को समाप्त करना ही होना चाहिए।

हमारे देश म छात्र वग का असतोष बेकारी तथा दूषित शिक्षा प्रणाली से जुडा हुआ है शिक्षा का लक्ष्य दुहरा होता है। उसका अन्तलक्ष्य मानवीय मूल्यो का बोध और उन मूल्यो मे आस्था उत्पन्न करना है और बहीलक्ष्य मनुष्य को सामाजिक प्राणी के रूप मे अपने जीवन-यापन की सुविधा प्रदान करना है। अत अन्तलक्ष्य शिक्षा के दशन मे सम्बन्ध रखता है और बहिलक्ष्य उसके विधान से।

हमने स्वतत्र होने के उपरान्त न शिक्षा के लक्ष्य की चिन्ता की न लक्ष्य तक पहुँचनेवाली पद्धति की। परिणामत हमारे देश के तारुण्य की ऊर्जा व्यय जा रही है। लक्ष्यहीन क्रियाशीलता अब ध्वसात्मक दिशा मे बन रही है जो युग के लिए आत्मघाती प्रवृत्ति सिद्ध होगी। केवल दमन के अस्त्रो से इसे पराजित नहीं किया जा सकता। छात्र सघ सम्बन्धी अध्यादेश भी दमन का ही प्रच्छन्न रूप है। अत इसका परिणाम सम्भवत विपरीत ही होगा। मागव्यय उपाय और भी हैं, परन्तु उसके लिए चिन्तन और चिन्तन से प्राप्त सत्य के कार्यान्वियन की आवश्यकता है जिसके लिए हमारे पास अवकाश का अभाव है।

—महादेवी वर्मा

छात्र-संघ की रूपरेखा : प्रश्नोत्तर

धीरेन्द्र मजूमदार

थोड़ी देर पहले मुझे मालूम हुआ कि मुझे उद्घाटन करना है। मेरी राय श्री वशीधरजी ने मुझसे पूछ ली थी, जो आपको पढ़ने के लिए दी जायेगी। फिर भी कुछ दो-एक मुद्दों पर विचार के लिए कुछ सवाल रख देना मैं उचित समझता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपकी अजीब स्थिति है। आप आचार्य भी हैं और व्यवस्थापक भी। आचार्य और व्यवस्थापक का जो 'रोल' है उसको कैसे निभाया जाय, यह आप लोगों की बुद्धि ही बता सकती है। आचार्यों का एक कुलधर्म है, और व्यवस्थापकों का एक दूसरा कुलधर्म है। आचार्यकुल का कुलधर्म है—शिक्षण। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि इस प्रश्न के हर पहलुओं पर आप विचार करेंगे। आज की परिस्थिति मे आज के और पिछली पीढी के सम्बन्धो का जो वैज्ञानिक पहलू है उसको भी आप सोचेंगे हो, लेकिन कुल पहलुओं पर सोचने के लिए जो आधारिक पहलू–शिक्षण–है उसे आप सामने रखेंगे ऐसा मैं मानता हूँ। तो पहला प्रश्न है कि आज के विज्ञान और लोकतत्र की प्रगति के परिणाम से जो सार्वजनिक चेतना दिखाई देती है, उस सन्दर्भ मे अनिवार्यता और शिक्षण का मेल खाता है क्या? और दूसरा प्रश्न है कि ऐसी परिस्थिति मे, और मन स्थिति मे, शिक्षण की प्रक्रिया जिज्ञासामूलक होगी या आरोपित होगी?

[उत्तरप्रदेश की सरकार ने छात्र-सघ की सदस्यता को एक अध्यादेश द्वारा ऐच्छिक बना दिया है। इस विषय पर श्री धीरेन्द्र मजूमदार से एक 'इन्टरव्यू' मे कुछ प्रश्न पूछे गये थे, जिन्हे हम यहाँ दे रहे हैं।—स०]

प्रश्न : उत्तरप्रदेश की सरकार ने एक अध्यादेश द्वारा छात्र सघ की सदस्यता को विद्यार्थियों के लिए ऐच्छिक बना दी है। पहले छात्र-सघ की सदस्यता अनिवार्य थी। सरकार का यह कदम क्या ठीक है?

धीरेन्द्र भाई : ठीक भी है और नहीं भी है।

विचार की दृष्टि से यह बिलकुल ठीक है। किसी भी प्रकार के सघ या संगठन को अनिवार्य बनाना भारतीय सविधान के विरुद्ध है। भारतीय सविधान के अनुच्छेद १९-१ (ग) के अनुसार किसी भी प्रकार का सगठन बनाया तो जा सकता है, परन्तु उसे अनिवार्यत. लागू नहीं किया जा सकता।

लोकतंत्र ने हमेशा साम्य, मैत्री और स्वतंत्रता का नारा दिया है। आज जब लोकतंत्र की माँग सैनिक-भर्ती की अनिवार्यता तक के खिलाफ है और हर आदमी अनिवार्य रूप से वोटर हो', यह मान्यता भी हट रही है, तो विद्यार्थियों के लिए अमुक यूनियन या संघ की सदस्यता अनिवार्य हो यह बात कतई लोकतंत्र विरोधी है। मुझे आश्चर्य होता है कि जो लडके हर प्रश्न पर सरकारी आदेश द्वारा अनिवार्य बनाने के सिद्धान्त का विरोध करते हैं, वही लडके एक विषय पर सरकारी अनिवार्यता हटाने का विरोध क्यों कर रहे हैं? स्पष्ट है कि इसके पीछे राजनैतिक पक्षवाद काम कर रहा है। हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। मुझको लगता है कि अनिवार्यता हटाने के सरकार के इस निर्णय के मूल मे राजनैतिक पक्षवाद भी रहा है। और उसीको स्वाभाविक प्रतिक्रिया से यह विरोध खडा हुआ है। इसीलिए मैंने कहा कि अध्यादेश ठीक भी है और नहीं भी है। अगर अध्यादेश की प्रेरणा पक्षमुक्त होती तो वह सही होता।

प्रश्न निर्णय चाहे पक्षग्रस्त हो, परन्तु क्या उसका मूलरूप लोकतांत्रिक नहीं है?

धीरेन्द्र भाई किसी चीज को वृत्ति उसके बाह्य रूप से नहीं आँकी जा सकती। इसके लिए उसकी अन्तर्चेतना को देखना होता है। लोकतंत्र को जो लोग केवल वैधानिक परिस्थिति मानते हैं वे ठीक नहीं करते। लोकतंत्र समाज की सांस्कृतिक वृत्ति है। इसीलिए लोकतंत्र को कृति से नहीं पहचाना जा सकता—वृत्ति देखनी होती है। अगर अनिवार्य सदस्यता के नियम को हटाने मे पक्षवादी प्रेरणा रही है तो कृति देखने म चाहे जितनी भी लोकतांत्रिक क्यों न हो, उसकी वृत्ति अधिसत्तावादी ही है।

प्रश्न छात्र-संघ की कल्पना छात्रों के लिए 'लोकतंत्र मे शिक्षण भूमि" के रूप मे की गयी है। इस दृष्टि से उसे लोकतंत्र में अनिवार्य होना चाहिए, जिससे प्रत्येक छात्र का लोकतांत्रिक वृत्ति में शिक्षण हो। आपका इस विषय मे क्या विचार है?

धीरेन्द्र भाई शिक्षण मे कानूनन अनिवार्यता के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि आरोपित शिक्षण शिक्षण नही प्रशिक्षण होता है—एजूकेशन नही ट्रेनिंग होता है। इसलिए शिक्षण (एजूकेशन) जिज्ञासामूलक ही हो सकता है—आरोपण-मूलक नहीं। आज भी आरोपित शिक्षण की कुछ झलक हमारी दूषित शिक्षा पद्धति म दिखाई देती है जहाँ शिक्षार्थी के लिए कुछ विषयो को अनिवार्य रखा गया है। इसलिए हम शिक्षालयो मे विषय को अनिवार्य बनाने के पक्ष म नहीं हैं। शिक्षा

र्थियों को विषय चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। यद्यपि इतने मात्र से ही शिक्षण-प्रक्रिया का विचार पूरा नहीं होता है, फिर भी इसमें रुचि और विचार की स्वतंत्रता तो हो ही जाती है। इसी सिद्धान्त के अनुसार प्रचलित लोकतंत्र का यह तकनीकी शिक्षण भी ऐच्छिक होना चाहिए, नहीं तो वह शिक्षण नहीं रहेगा, प्रशिक्षण हो जायगा।

प्रश्न : छात्र संघ चाहे ऐच्छिक हो या अनिवार्य, यदि दलगत राजनीति उसे अपना साधन बनाती है, तो यूनियन बनाने की मूल-भावना ही समाप्त हो जाती है। क्या आप इससे सहमत हैं ?

धीरेन्द्र भाई इसके लिए छात्र-संघ के विषय को लेकर अलग से विचार करने का कोई मतलब नहीं होता। किसी वस्तु के किसी एक टुकड़े को लेकर विचार करने का परिणाम भ्रामक होगा ? वस्तुस्थिति यह है कि जिस साम्य, मैत्री और स्वतंत्रता के विचार से मनुष्य ने वर्तमान लोकतांत्रिक विधानों को बनाया था, उसमें पक्षगत राजनीति का विचार शामिल कर मूलरूप से लोकतंत्र के उद्देश्य को ही विफल कर दिया है। परिणामस्वरूप जब दलगत राजनीति पूरे समाज के अंग-प्रत्यंग में प्रवेश कर गयी है तो छात्र-समाज उससे अछूता कैसे रहेगा, विशेषकर आज की अनिवार्य शिक्षा की आकांक्षा के जमाने में, जब छात्र-समाज का मतलब है पूरा तरुण-समाज। अतएव दलगत राजनीति को छात्र-समाज से अगर अलग रखना है, तो पूरे समाज के ढाँचे से दलगत राजनीति का निराकरण करना होगा, नहीं तो छात्र-यूनियन को अनिवार्य रखें, ऐच्छिक रखें या पूर्ण रूप से विघटित कर दें, हम छात्र-समाज को दलगत राजनीति से मुक्त नहीं कर सकेंगे। आप लोग इस तरह टुकड़ों पर अपनी चिन्तन-शक्ति का अपव्यय न करके पूरे समाज के ढाँचे पर विचार केन्द्रित करें तो अधिक अच्छा होगा।

प्रश्न : जब आप यह मानते हैं कि संघ ऐच्छिक हो या अनिवार्य, वह दलगत राजनीति से मुक्त नहीं हो सकता तो आप यह भी मानेंगे ही कि एक विद्यालय के लिए एक अनिवार्य संघ का रहना अधिक श्रेष्ठ होगा, क्योंकि उस हालत में विद्यालय विभिन्न पार्टियों से प्रभावित अलग-अलग संघों की युद्ध-भूमि होने से बच जायगा ?

धीरेन्द्र भाई : मैं यह नहीं मानता। मैं तो मानता हूँ कि अध्यादेश के कारण एक ही संस्था में अलग-अलग यूनियन बनें या अनिवार्य संघ के रूप में एक ही संघ में अलग अलग गुट बनें, युद्ध-क्षेत्र की भूमिका में कोई अन्तर नहीं होगा। लेकिन यूनियन के एकत्रित होने में यह लाभ होगा कि उसमें शिक्षण-संस्था का 'इन्वाल्व-

मट' बच सकता है, जबकि अनिवायता म इस प्रकार का 'इन्वाल्वमट' रुक नहीं सकता। यूनियन के सस्था की ओर से अनिवार्य होन का एक फलित (कारोलरी) यह होता है कि उस सस्था के शिक्षक भी उसमे शामिल हो जाते हैं—ऐच्छिक मे उनके इससे बचने की गुञ्जाइश है।

ऐच्छिक यूनियन का दूसरा लाभ यह है कि काफी तादाद म विद्यार्थी भी उस रणभूमि से बच सकते हैं, जिसकी चर्चा आपने की है, जबकि अनिवार्य संगठनों का स्वधर्म यह है कि सगठन का हर सदस्य उसकी हर प्रवृत्ति म शामिल रहे।

प्रश्न छात्र-सघ का दोष उसके अनिवार्य अथवा ऐच्छिक होने मे उतना नहीं है जितना उसकी सचालन-पद्धति मे। क्या आप यह नहीं मानते हैं कि जिस प्रकार 'डेलिगेट डिमोक्रेसी' के स्थान पर पार्टिसिपेटिंग डिमोक्रेसी' लाकर आप राष्ट्र के राजनैतिक ढांचे मे परिवर्तन का प्रयास कर रहे हैं उसी प्रकार यूनियन की अनिवार्यता को रखते हुए भी उसकी सचालन पद्धति को 'पार्टिसिपेटिंग' बनाया जाय तो समस्या का अधिक अच्छा समाधान होगा?

धीरेन्द्र भाई आप दलगत राजनीति के स्थान पर लोकनीति की स्थापना की बात कह रहे हैं। समाज म राजनीति को बदलकर लोकनीति की स्थापना म हम कानून का आधार नहीं लेते। अनिवार्यता के लिए कानून आवश्यक है। जिस तरह हम राजनीति को सुधारना चाहते हैं उसी तरह हम छात्र सघो को भी सुधारना जरूर चाहेंगे, लेकिन उसके लिए भी राजनीति म सुधार की हमारी जो प्रक्रिया है, वही प्रक्रिया इसमे लागू होगी। अर्थात् हम कानून की प्रक्रिया को छोडकर शिक्षण की प्रक्रिया को ही अपनायेंगे और जिस तरह शिक्षण प्रक्रिया के फलस्वरूप जितने परिवार ग्रामदान म शामिल होते हैं, उन्हीको लेकर सुधार का प्रारम्भ-बिन्दु बनता है, उसी तरह विचार प्रेरणा से जितने विद्यार्थी शामिल होगे उन्हीको लेकर हमारी सुधार-यात्रा शुरू होगी। इसी प्रकार हम आचार्यकुल को लेकर भी आगे बढ रहे हैं। इस दृष्टि से भी अनिवार्यता के लिए कोई स्थान नही है।

प्रश्न छात्र-सघों को अनिवार्य बनाने के मूल में एक विचार यह भी था कि विश्वविद्यालयो मे पढनेवाले विभिन्न सम्प्रदायों सामाजिक एव सास्कृतिक स्तरों से आनेवाले और विभिन्न राजनैतिक विचारों मे विश्वास रखनेवाले विद्यार्थियों को जब छात्र सघ का एक अनिवार्य मच मिलेगा तो पूरी शिक्षा सस्था एक सूत्र मे बँध सकेगी। छात्र सघों को ऐच्छिक बना देने से एकसूत्रता मे बाँधने का यह काम क्या समाप्त नहीं हो जायगा?

धीरेन्द्र भाई एकसूत्रता का काम तो उसी दिन खतम हो गया जिस दिन संघो मे दलगत राजनीति का प्रवेश हुआ और सघ किसी विशेष दल की राजनीति के प्रकाशन और प्रचार के माध्यम बने। अत सघो से यह आशा की जाय कि वे विश्वविद्यालय के विभिन्न विचारवाले छात्रो को एक सूत्र म पिरोयेंगे तो उनसे दलगत राजनीति की और गुटबन्दी को दूर करना होगा और सघ के प्रत्येक सदस्य को अर्थात् अनिवार्य होने की स्थिति मे पूरी सस्था के छात्रो को यह सकल्प करना होगा कि भले ही वह राजनीति का शैक्षणिक और शास्त्रीय अध्ययन करे, वह किसी राजनीतिक दल का न सदस्य होगा और न उस दल का प्रचार करेगा।

प्रश्न यह देखा गया है कि दस-बारह प्रतिशत से अधिक विद्यार्थी छात्र सघ के कार्यक्रमों मे भाग नहीं लेते। क्या आप कोई ऐसा सुझाव देंगे, जिससे छात्र इन कायक्रमो में भाग लें?

धीरेन्द्र भाई इसका उत्तर सिवाय इसके और क्या हो सकता है कि आप इस प्रकार के कार्यक्रम बनाइए जिनका सम्बन्ध किसी दलगत, सम्प्रदायगत, भाषागत आग्रह से न हो। तरुण शातिसेना ने जो कार्यक्रम उठाया है, वह इसी प्रकार का कार्यक्रम है। निरक्षर मजदूर किसानो की शिक्षा और सवा का काम भी इस प्रकार का कायक्रम है। राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं पर तटस्थ दृष्टि से विचार करने के लिए गोष्ठियों का आयोजन और राष्ट्रीय एकता के लिए अन्तर्प्रांदेशिक सास्कृतिक यात्राओ का आयोजन भी इसी प्रकार का कार्यक्रम है।•

अध्यादेश तथा युवाविद्रोह

कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

छात्रों के बारे में समाज में दो दृष्टिकोण पाये जाते हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार छात्र वह बालक या युवा व्यक्ति है, जो समाज के भावी नागरिक के रूप में समाज में अपना उचित स्थान प्राप्त करने का प्रशिक्षण ले रहा है। प्रशिक्षण की पद्धतियों में फर्क हो सकता है, किन्तु विभिन्न पद्धतियों में, इस दृष्टिकोण के अनुसार, छात्र या शिष्य को समाज के द्वारा निर्धारित मूल्य-प्रतिमानों को समझने का प्रयास करना होता है और फिर तद्जन्य अपने मूल्यों का सामाजिक मूल्यों से तालमेल बिठाना होता है। यह तालमेल सकारात्मक हुआ तो वह समाज स्वीकृत हो जाता है, नकारात्मक हुआ तो वह और समाज परस्पर-संघर्ष की स्थिति में खड़े हो जाते हैं। इस स्थिति को टालना छात्र तथा समाज दोनों के लिए हितकर है, यह मानकर इस विचारधारा के लोग कहते हैं कि छात्र को चाहिए कि वह समाज के बुजुर्गों या महापुरुषों का ही अनुगमन करे याने समय विशेष पर वे करते हैं वैसा ही वह भी करें। यह प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण रहा है और आज का पाश्चात्य मनोविज्ञान का एक बड़ा भाग भी लगभग इसी मान्यता को स्वीकार करता है।

किन्तु दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार छात्र वह व्यक्ति है जो अपनी बुद्धि के विकास के लिए समाज का उपयोग करता है और समाज का यह दायित्व है कि वह उसे इसमें मदद तो करे, पर उस पर कोई पूर्व-निर्धारित मूल्य-प्रतिमान न लादे। जब वह स्वत. निर्णय करने योग्य होगा तो स्वयं के लिए निर्णय कर लेगा। समाज को इसमें दखल देने की आवश्यकता नहीं है, सिवाय इसके कि वह छात्र को समझाने का प्रयास करे और उसके आन्तरिक गुणों का विकास करने का उसे अवसर यानी सुविधा प्रदान करे। इस दृष्टिकोण के अनुसार यह नहीं माना जाता कि छात्र को समाज की मूल्य-परम्परा का न केवल निर्वहन करना है, बरन् उसे आगे भी बढ़ाना है। समाज को, इस दृष्टिकोण के अनुसार ऐसी कोई अपेक्षा करने का हक नहीं है, उसे केवल छात्र की मदद करने का हक है और छात्र को यह मदद लेने का हक है। इस दृष्टिकोण को अक्सर 'व्यक्ति की नैसर्गिक स्वतंत्रता' के नाम से पुकारा जाता है और पश्चिम से आज जो भी विचारधाराएँ चली—पूँजीवादी, समाजवादी, साम्यवादी—सबने ही इस दृष्टिकोण को स्वीकार किया है।

इन दोनों दृष्टिकोणों में यों तो काफी अन्तर है, किन्तु सबसे बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ पहले दृष्टिकोण के अनुसार युवक को और समाज को एक अंगांगी के

रूप मे देखा गया है, वही दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार वे दो भिन्न और आमने-सामने की दो स्थितियाँ है, जो अक्सर की जाती है, क्योकि दोनो मे ही प्रवाह होना है। मेरे विचार से आज की छात्र या युवा-समस्या इसी परिप्रेक्ष्य मे देखी जानी चाहिए।

छात्रो तथा सघो का उद्देश्य

आज न केवल भारत मे ही, वरन् सारे ससार मे ही युवा लोगो मे एक प्रकार की कृत्रिम उत्तेजना व्याप्त है, कृत्रिम इसलिए कि यह युवावस्था की सहजावस्था नहीं प्रतीत होती। युवावस्था की सहजोत्तेजना मे एक उद्देश्य-युक्तता रहती है, वह किसी चीज को समझना चाहता है, उसको अपने सन्दर्भ से मुक्त करना चाहता है और इस अर्थ मे वह जिज्ञासु की श्रेणी मे रहता है, किन्तु आज की इस विश्व-व्यापी उत्तेजना मे युवक जिज्ञासु नही लगता। वह किन्ही निष्कर्षो पर पहुँच गया है, ऐसा युवक को भी लगता है और ऐसा ही वह समाज को भी बताना चाहता है तथा वह केवल अपने निश्चय के अनुरूप समाज को ले जाना या बदल देना चाहता है। पश्चिम मे इसे 'एडोलेसेन्ट एक्टीविज्म' नाम दिया गया है किन्तु यह उससे भी पूरी तरह पारिभाषित नही होता। 'एडोलेसेन्ट' यह मानता है कि वह नाबालिग है, किन्तु वह बालिग के समान व्यवहार प्रतिमानो का हठ करता है और इस क्रम मे समाज के साथ टकरा जाने की स्थिति मे आ जाता है। किन्तु आज का युवक अपने को 'एडोलेसेन्ट' नही मानता, वह इस शब्द से ही चिढता है। वह खुद को पूर्ण बालिग और जिम्मेदार नागरिक मानता है और इसलिए उसकी माँग ही यह है कि उसे समाज-व्यापी निर्णयो म दूसरे बालिगो के समान हक मिले। इस मनोवृत्ति को अमेरिका मे आजकल Demand for Self hood' कहा जा रहा है। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि यह माँग उसी समाज से की जा रही है जिसे वहाँ का युवक बदलना या नष्ट करना चाहता है। यह 'अस्वीकार का स्वीकार' (Acceptance of negation) का अन्तर्विरोध या विरोधाभास है। मेरे विचार स यह अन्तर्विरोध युवक या समाज को कुछ भी नही दे सकेगा।

जनतंत्र की समस्या विचार नहीं, सख्या

मूल-प्रश्न यह है कि छात्र क्या चाहते हैं या यह है कि उन्हे क्या चाहना चाहिए ? इसमें कोई सन्देह नही है कि हर व्यक्ति को स्वत निर्णय का नैसर्गिक अधिकार है क्योकि जैसा मनुष्य को परिभाषित किया गया है कि वह चिन्तन-युक्त पशु (Thinking animal) है। इस दृष्टि से कोई किसी भी मनुष्य को किसी बात के मानने या न मानने के लिए विवश नही कर सकता, न करना ही

चाहिए। किन्तु यदि हम छात्र-संगठनों की कार्यविधियों व संविधानों का अध्ययन करें तो पता लगेगा कि इन संगठनों का उद्देश्य ही यह है कि वे छात्रों तथा अधिकारियों पर अपनी बात मनवाने के लिए दबाव डाल सकें। हमें यह समझना चाहिए कि सकारात्मक स्थितियों के लिए दबाव की आवश्यकता नहीं होती है, अतः निष्कर्ष यह निकला कि दबाव से उन बातों को मनवाने का प्रयत्न होता है जिन्हें लोग अन्यथा स्वीकार नहीं करेंगे। अभी उ० प्र० सरकार ने छात्र संघों के बारे में जो अध्यादेश निकाला है, उसमें यही बात कही गयी है कि इन संघों के कारण छात्रों में मजदूर संघवाद (Trade Unionism) व्याप्त हो रहा है। और समाज को इसे रोकना ही चाहिए। सरकार ने समाज के प्रतिनिधि के नाते यही कार्य किया और अपनी कार्यवाही के समर्थन में उपकुलपतियों के सम्मेलन की इसी अर्थ की सिफारिशों का हवाला दिया है। छात्र संघ यह मानता है कि उसकी सदस्यता सब छात्रों के लिए अनिवार्य कर देनी चाहिए और इस माँग के समर्थन में चाहे जो तर्क दिये जायँ, अन्ततः इस माँग का अर्थ यही है कि छात्रों (यानी व्यक्तियों) की संघों में चुनाव करने की स्वतन्त्रता (और इसीलिए संघ बनाने की स्वतन्त्रता भी) को अस्वीकार किया जाय। आश्चर्य की बात है कि इसे जनतान्त्रिक माँग कहा जाता है और भारत के राजनैतिक दल इस जनतान्त्रिक माँग का समर्थन करते हैं। किन्तु किसी भी व्यक्ति की कोई भी बात, भले ही वह १०० फीसदी अच्छी ही क्यों न हो अपनी इच्छा के विपरीत स्वीकार करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। कम-से कम जनतंत्र के नाम पर तो इसका समर्थन नहीं ही किया जा सकता है। फिर भी यह माँग होती है और उसको राजनैतिक समर्थन भी मिलता है, तो इसका अर्थ यह है कि असल में माँग तथा समर्थन करनेवाले, दोनों ही जनतन्त्र के नाम पर दासता के मूल्यों को स्वीकारते हैं। जनतन्त्र कोई पद्धति नहीं है, वह मूलतः एक मनोवृत्ति (Attitude) है और उसे केवल व्यवहार देखकर ही नहीं समझा जा सकता। जो व्यक्ति या समूह जनतान्त्रिक मूल्यों को स्वीकार करता है वह कभी भी यह नहीं चाहेगा, कहेगा या करेगा कि उसकी ही राय दूसरों पर जबरन् लाद दी जाय। कभी-कभी यह तर्क दिया गया है कि आजादी के युग में जब हमारा स्वार्थ था तब हमने छात्रों को अंग्रेजों पर दबाव डालने के लिए इस्तेमाल किया और उन्हें संघ बनाकर सरकार के विरुद्ध खड़ा किया। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि तब भी कभी किसीने यह नहीं कहा कि छात्रों की अपनी कोई पृथक् सत्ता है यानी स्वार्थ या इच्छा है जिसे देश पर लादना उचित है। उस वक्त तो असल में यह कहा गया कि छात्रों का हित राष्ट्र-हित में निहित है और उन्हें राष्ट्र-हित में

सगठित होना चाहिए। चूकि ब्रिटिश स्कूलो मे राष्ट्र हित अवमानना थी, अत ऐसे छात्रो के लिए पृथक् विद्यापीठ, राष्ट्रीय विद्यालय कायम किये गये। आज भी यही बात सही है कि राष्ट्र-हित ही छात्र हित है। किन्तु आज के छात्र तथा उनके सघ तो राष्ट्र के बजाय दल हित को प्रधानता देते है और प्रत्येक छात्र-सघ का किसी-न किसी राजनैतिक दल स सम्बन्ध होता ही है। ऐसी हालत में उनका यह दावा व्यथ है कि वे राष्ट्र हित के हेतु हैं। इस दृष्टि स तो यह निष्कर्ष निकलता है कि न केवल सघा की सदस्यता की अनिवार्यता मिटा देना उचित है वरन् यह भी कि सघ भी व्यर्थ हैं और छात्रो के कोई सगठन ही नही होने चाहिए। यहाँ यह तक कोई अथ नही रखता कि हमारे सविधान मे हर नागरिक को सगठन बनाने की स्वतत्रता का अधिकार प्राप्त है। क्योकि सविधान यह अधिकार नागरिको को देता है, छात्रो को नही, जो अक्सर नागरिक नही होते वे उस उम्र से कम ही होते हैं और वे अक्सर ही दूसरे नागरिको के निर्देशो के अनुसार कार्य करते हैं। छात्र-सघ इस तरह, गैर-नागरिको के सगठन हैं और वे सविधान की सुविधाओ का हक के रूप मे उपयोग नही कर सकते।

यह बात सुनने मे अखर सकती है, किन्तु यही वस्तुस्थिति है। सभवत इसी वस्तुस्थिति को ध्यान म रखकर कुछ लोग मताधिकार की उम्र-सीमा २१ स घटाकर १८ साल करने को माँग भी कर रहे हैं और मैं मानता हूँ कि वह माँग उचित है, क्योकि नागरिक हो जाने के बाद फिर सविधान की सारी सुविधाओ के उपभोग का हक स्वत ही प्राप्त हो जायेगा। दूसरी बात यह है कि आज भी सामान्यत छात्र-संघो के सचालक-छात्र २१ साल से ऊपर के ही होते हैं याने वे दूसरे कम उम्र के छात्रों का अपने नागरिक हित मे केवल उपयोग करते हैं, अत १८ साल को मताधिकार की उम्र मान लेने से छात्रों के इस दुरुपयोग का दायरा काफी सकुचित हो जायेगा, क्योकि तब अधिकतर छात्र नागरिक होंगे, यह सब वैधानिकता की दृष्टि से कहा जा रहा है और इसका अपने म एक महत्व है।

छात्र सगठन ऐच्छिक सगठन है

किन्तु यहाँ इस प्रश्न को एक और दृष्टि से देखना भी उचित होगा। छात्र सघो की सदस्यता अनिवार्य रहे या न रहे यह विवाद ही किसलिए है? क्या इसक पोछे कोई नैतिक, सार्वभौम अनिवार्य सामाजिक मूल्य है? ऐसा नही है। इस माँग के समथक तथा विरोधी दोनो ही गैर-लोकतान्त्रिक हैं, क्याकि व दोनों ही सरकार का, कानून का याने दबाव का सिद्धान्त स्वीकार करते हैं। यह

सिद्धान्त लोकतंत्र (मनाव) के मूल्यों के विपरीत है। अत हमारी दृष्टि से इस माँग के समर्थक तथा विरोधी दोनों को ही या तो अपनी असल बात सामने रखने की हिम्मत नही है या वे फिर धोखे मे हैं और धोखा दे रहे हैं। छात्र-सघ बने या न बने, यह फैसला सरकार या कानून क्यो करे? किन्तु इस देश म स्वतत्रता के नाम पर सरकारपरकता का मूल्य पनपाया गया है। सरकार के समर्थक या विरोधी दोनो ही, सरकार का निर्वाय मूल्य स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से उ० प्र० सरकार का यह अध्यादेश अनैतिक है क्योकि उसने अध्यादेश के समर्थन म जो दलीलें दी हैं, वे उसकी करनी से व्यर्थ हो जाती हैं वह दलील तो देती है छात्रों की स्वतत्रता की, किन्तु उन्ह यह स्वतत्रता प्रदान करती है गवनर के आदेश से तथा पुलिस के बल पर। स्वतत्र भारत की सरकारें अपने जन्म से ही ऐसे अनेक अन्तर्विरोधो में फँसी हैं और वे कोठारी-कमीशन या उपकुलपतियों के सम्मेलन की कुछ सिफारिशो का अपने पक्ष म हवाला देकर इस प्रकार के अन्तर्विरोवो से छुटकारा नही पा सकती।

कानून या बल से जनतत्र का सरकारी प्रयत्न अनैतिक है

हमारे देश म आज तक कोई जनतांत्रिक सरकार बनी ही नही है और हम आज की किसी भी सरकार को जनतांत्रिक नही कह सकते, क्योकि जिन सरकारो का काम बिना पुलिस, फौजें तथा कानून के नही चल सके, वे कैसे दावा कर सकती हैं कि वे जनेच्छा की प्रतिनिधि हैं। अत इस दृष्टि स छात्र सघ बने, या न बने, उनकी सदस्यता अनिवार्य हो या ऐच्छिक हो, इससे छात्रो की भलाई या व्यापक समाजवादी भलाई का कोई सम्बन्ध नही है। बल्कि इससे एक उल्टा तर्क पैदा होता है कि जब एक तरफ से शक्ति और दमन का सहारा लेगा ही और इस चक्र का कही अन्त नहीं है, समाज को इस व्यर्थ के विवाद से कोई ताल्लुक नही रखना चाहिए और यदि यह विवाद समाज के हितो को हानि पहुँचाता हो तो फिर इन दोनो ही पक्षो का न केवल विरोध करना चाहिए वरन् दोनो ही पक्षो को समाज-हित के अनुकूल आचरण के लिए विवश भी करना चाहिए। ऐसी सामाजिक शक्ति का निर्माण होना ही चाहिए। दलीय तथा सकुचित स्वार्थो मे फँसे छात्र-सघ या सरकारें या राजनैतिक दल, कोई भी आज ऐसी सामाजिक शक्ति का निर्माण करने में नितान्त असमर्थ हैं।

दलमुक्त तथा सरकारमुक्त सगठन ही उपाय है

तब समस्या का निदान क्या है? यह एक ही हो सकता है कि समाज की प्रबुद्ध शक्तियाँ जागृत हों। वह शक्ति छात्र, अध्यापक तथा बौद्धिक समाज

मे पडी है। यह शक्ति अभी न तो जागृत है, न सक्रिय है, न ही संगठित है। हाँ, कभी-कभी दलपतियो के अखाडो मे हो रहे तुमुल-द्वन्द्व की दर्शक मात्र अवश्य बन जाती है और इससे इन पहलवानो का उत्साह ही बढता है। किन्तु अब यदि इस समस्या का, जो युवा-समस्या की ही नही, वरन् व्यापक सामाजिक सन्दर्भ मे देखी जानी चाहिए, कोई हल निकालना हो तो फिर सारे प्रचलित शैक्षणिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक ढाँचे को ही आमूलचूल बदलना होगा। वह वही कर सकता है जो स्वयं दलीय दलदल से अलग हो। अतः श्री विनोबाजी ने आचार्यकुल का जो एक विचार रखा है उसका इस सन्दर्भ मे भारी महत्व है। असल बात तो यह है कि वर्तमान शिक्षा, शिक्षक, राजनीति तथा सरकार-प्रणाली के चलते इस तथा ऐसी किसी भी समस्या का हल सभव ही नही है। छात्र-सघो को भी इस दिशा म सोचना होगा। जिसे ट्रेड यूनियनिज्म कहा गया है, उन्हें उस प्रवृत्ति से बचना हो, और वह प्रवृत्ति असल म वर्तमान शोषित-शोषक प्रणाली की ही एक प्रतिक्रिया है, तथा इस प्रवृत्ति को मिटाने के लिए भी वर्तमान सामाजिक राजनैतिक ढाँचा बदलना आवश्यक है, तो फिर उन्हे ऐसे कार्यक्रम उठाने चाहिए कि छात्र स्वय ही उनकी ओर आकृष्ट हो। जैसे, सस्था मे गरीब तथा कमजोर छात्रो की मुफ्त सहायता करने के कार्यक्रम, शिक्षा मे समाज-सेवा के द्वारा सोद्देश्यता लाने का कार्यक्रम तथा स्वय छात्रो के रहन-सहन तथा आदतो मे ऐसे परिवर्तन लाने का कार्यक्रम जिनसे कि वे वर्तमान शोषण-प्रणाली के उपभोक्ता न बने रहे। यह वे सादा व स्वच्छ भेष-भूषा अपनाकर तडक-भडक तथा साहबी मनोवृत्ति त्यागकर कर सकते हैं। यह नही हो सकता कि वे वर्तमान समाज मे शोषण तथा अन्याय की शक्तियों की निन्दा भी करें, किन्तु उन्ही कार्यवाहियो के वाहक भी बने रहें। छात्र-सघो को सस्था तथा आसपास शाति बनाये रखने के लिए भी प्रतिज्ञाबद्ध होना होगा और यह वे तभी कर सकते हैं जब वे स्वत शातिपूर्ण व्यवहार की प्रतिज्ञा करें। शान्तिसेना एक ऐसी ही प्रवृत्ति है, जो उन्हे इस तरह के कार्यो मे प्रशिक्षण तथा मदद दे सकती है। छात्र सघ उसका उपयोग करे। असल मे छात्र कोई वर्ग नहीं हैं, वे समाज का भाग हैं। उन्ह एक वर्ग मानने के विचार के कारण ही य सारी बातें पनपती हैं।

श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा सर्व सेवा सघ-प्रकाशन राजघाट, वाराणसी-१

छात्र-समस्या एक राष्ट्रीय समस्या

डा० रामजी सिंह

लोकतंत्र के इस युग में जब हर व्यक्ति का शासन बदलने का जन्म-सिद्ध अधिकार स्वीकार किया जा चुका है, उस समय अपने बीच विद्यार्थियों का स्वशासन छीनना युग प्रवाह के विपरीत माना ही जायगा। इसीलिए उत्तर-प्रदेश की राज्य-सरकार ने यहाँ के विश्वविद्यालयों के छात्र-संघों के कार्य संचालन पर, अध्यादेश लागू करके, एकाएक रोक लगा दी तो इस सम्बन्ध में प्रमुख राजनीतिक दलों की कठोर-से-कठोर प्रतिक्रियाएँ हुईं। यत्र तत्र कुछ आन्दोलन भी हुए और शायद आगे भी हों। यह ठीक है कि छात्र संघों के वर्तमान संचालन एवं रीति-नीति से सबको संतोष नहीं था और किसी किसी मानें में कहीं-कहीं इसकी गदगी सीमा के बाहर चली गयी थी। किन्तु फिर भी शिक्षा-जगत् में लोकतंत्र के नाम पर सिद्धान्ततः शायद ही ऐसा कोई होगा जो छात्रों का कोई संगठन नहीं चाहता हो। शायद इसीलिए सरकार ने भी अध्यादेश में छात्र-संघों के कार्यों को अभी केवल स्थगित किया है जिसका शायद यह भी अर्थ हो सकता है कि सरकार के मानस में भी छात्र-संघों के उन्मूलन का प्रयोजन नहीं, उनके रूप-परिवर्तन का प्रश्न है। लेकिन छात्र संघों की रूपरेखा के विषय में यदि सरकार ने केवल शिक्षा विभाग के मार्फत अपने राजनैतिक आग्रहों से प्रभावित होकर कोई फार्मूला तय किया तो वह सचमुच विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिए सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात होगी। इसके लिए तो विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं अन्य सम्बद्ध लोगों का विचार विनिमय आवश्यक है।

शिक्षण संस्थाओं के संचालन और प्रशासन में शिक्षार्थी की ही उपेक्षा हो जायगी तो वह प्रशासन ठीक से चलेगा नहीं। कोई भी और कहीं का भी शासन हो वह यथास्थिति (स्टेट्सको) का प्रतिनिधित्व करता है वह मोह के कारण पुराने मूल्यों का और लाभ के कारण निहित स्वार्थों का संरक्षक होता है। आज का युवक उसको बदलना चाहता है, क्योंकि आज के युवक की मानसिक स्थिति हर पुराने मूल्यों का अस्वीकार करने की है। यही है विद्यार्थियों के विक्षोभ का आंतरिक रूप।

लेकिन दुर्भाग्य तो यह है कि हम भले ही सिद्धान्ततः 'आत्म विकास' या 'स्वयं प्रकाश' के सिद्धान्तों को मानते हों, किन्तु जब व्यवहार की बात होने लगती है तो गीता, बुद्ध एवं ईसा के इन वचनों को युवकों के लिए अपवाद कर

देते हैं। क्या गुरुकुल की व्यवस्था अन्तेवासी नहीं करते थे? अफलातून की 'एकेडिमी', अरस्तू का 'लाइसियम', विटोरिनो द फेल्ट्रा के 'प्लेजेन्ट हाउस' और जेसुइट सम्प्रदायों के विद्यालयों में विद्यार्थियों का वहाँ के प्रबन्ध में कितना योगदान था? शिक्षण-प्रबन्ध में विद्यार्थियों के सहकार प्राप्त करने के लिए पेस्टालोजी, फ्रोबेल, रूसो और टैगोर ने कितना जोर दिया है? मूल विचार तो यह है कि शिक्षा की बुनियाद एक सामान्य धरातल पर है, जिसमें न केवल शिक्षक और व्यवस्थापक हैं, बल्कि शिक्षार्थी भी हैं। रवीन्द्रनाथ ने तो कहा ही है: 'शिक्षण-संस्था के निर्माण में शिक्षार्थी अपने जीवन का योगदान दें और यह अनुभव करें कि वे जिस संसार में रह रहे हैं उसका निर्माण उन्होंने भी किया है।' आज भी किंडरगार्टन एवं मांटेसरी पद्धति में इसका विकास किया जा रहा है। मध्य-युग में शासकों के उत्पीडन ने भले ही इस स्वातंत्र्य-प्रवृत्ति को रोका हो, लेकिन जेफरसन के आदर्शवाद से प्रभावित होकर अमेरिका में रिचार्ड वेलिंग के नेतृत्व में 'राष्ट्रीय आत्म-विकास परिषद्' की स्थापना हुई जिसने बाद में 'राष्ट्रीय विद्यार्थी परिषद्' को वहाँ जन्म दिया। 'शिक्षण-संस्थाओं के प्रशासन एवं प्रबन्ध' में विद्यार्थियों के सहयोग का इतिहास अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। कोई भी सृजन बिना स्वतन्त्रता एवं आत्म-विश्वास की भावना के संभव नहीं। शिक्षा वस्तुतः एक सृजनात्मक कार्य है। अतः इसमें स्वातंत्र्य-भावना एवं आत्म-विश्वास चाहिए ही। सुकुमार बच्चों को नागरिकता का शिक्षण, दायित्व-निर्वाह की भावना, नीति-निर्धारण का अभ्यास, अभिव्यक्ति एवं नेतृत्व का प्रशिक्षण—ये सभी आखिर उन्हें कब और कहाँ मिलेंगे? जिन बच्चों पर आखिर हम भविष्य की सारी बागडोर देनेवाले हैं, उन्हें अपने क्षेत्र में स्वशासन का भी अभ्यास नहीं दिला सकें, यह दुर्भाग्यपूर्ण होगा।

अतः शिक्षण-संस्थाओं में 'स्वशासन' की प्रत्येक माँग को शैक्षिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से मुक्त कंठ से स्वागत करना हमारा धर्म है।

राजनैतिक घुसपैठ

लेकिन विद्यार्थियों के इस मौलिक अधिकार का जहाँ हम समर्थन करते हैं, वहाँ विद्यार्थी-संगठनों में प्रचलित राजनैतिक घुसपैठ एवं भ्रष्टाचार को भी नजर-अन्दाज नहीं कर सकते। 'छात्र-संघ' में 'संघ' की प्रधानता हो जाती है, 'छात्र' तो बेचारा गौण हो जाता है। 'छात्रों' के लोकतंत्र के नाम पर वस्तुतः कुछ चुने हुए पेशेवर भ्रष्ट लोगों का अधिनायकतंत्र स्थापित हो जाता है। अधिकांश छात्र भी अपनी उदासीनता से इसको अप्रत्यक्ष रूप से सहारा ही देते हैं। छात्र-संघ

का कोप ही सबसे बड़ा आकर्षण होता है। अपना अभिक्रम, अपनी योजना अपना पुरुषार्थ तो कभी प्रकट होता ही नहीं। सबसे भयंकर बात तो यह है कि बहुत जगहों में इन छात्र संघों की निष्ठाएँ छात्र संघ से बाहर राजनैतिक दलों एवं गुटों के पास रहती हैं। फल होता है कि विभिन्न विचारों एवं दलों और गुटों के बीच संघर्ष अनिवार्य हो जाता है। इस स्थिति में सृजन के बदले विद्यार्थी-शक्ति का संहार होता है।

मेरे विचार से अभी ऐसी ही स्थिति है। इस दुष्टचक्र का भेदन करना ही होगा। विद्यार्थी समस्या को दल विशेष की समस्या के बदले राष्ट्रीय समस्या के रूप में जब तक हम नहीं देखेंगे, यह समस्या बनी रहेगी।

अल्प प्रयास

इसीलिए आचार्यकुल ने इस समस्या के महत्त्व को समझते हुए आप सबको सादर निमंत्रित किया है। हमारी यह भी मंशा है कि हम एक-दूसरे के विचार को सादर सुनें और समझें और यदि संभव हो सके तो जनता के सामने एक निष्पक्ष राय रखें। अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त आचार्यकुल का कार्य-क्षेत्र लोक शिक्षण एवं लोकसेवा का है। देश विदेश या राज्य-स्तर की ज्वलंत समस्याओं का आचार्यकुल अध्ययन करता है और परिषदों में एकत्र होकर निष्पक्षता तथा निर्भीकतापूर्वक अपनी राय भी देता है। यह परिषद् उसी दिशा में एक छोटा सा प्रयास है।

डा० रामजी सिंह प्राध्यापक दर्शनशास्त्र भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर, बिहार

अध्यादेश का अनौचित्य

कृष्णनाथ

११ जुलाई, १९७० को उत्तरप्रदेश विश्वविद्यालय (संशोधन) अध्यादेश, १९७० जारी कर प्रदेश सरकार ने विश्वविद्यालय छात्र-संघों की अनिवार्य सदस्यता समाप्त कर ऐच्छिक बनाया। यह छात्रों के माने हुए अधिकार का हनन है। इसलिए जैसा कोई भी देख सकता था इस पर उत्तरप्रदेश के विश्वविद्यालयों मे उग्र छात्र आन्दोलन छिड़ा। विभिन्न विश्वविद्यालय विभिन्न अवधियों तक बंद रहे। छात्र-नेताओं और उनके सहयोगी छात्रों का प्रदेश की पुलिस ऐसे पीछा करती रही जैसे शिकारी कुत्ते अपने शिकार का करते हैं। गिरफ्तारी, दमन, जासूसी के बीच छात्र-आन्दोलन का एक दौर पूरा हुआ। उत्तरप्रदेश छात्र संघर्ष समिति दूसरे दौर की तैयारी कर रही है। इस अन्तराल मे आचार्यकुल इस प्रश्न पर परिसंवाद कर रहा है। अगर यह परिसंवाद पहले हुआ होता और इसने सरकारी दमन पर अंकुश लगाने और छात्रों के माने हुए अधिकारों की रक्षा के लिए अपने बहुमूल्य सुझाव दिये होते तो अच्छा होता। देर से ही सही, इस पर विचार हो रहा है, यह ठीक ही है।

आचार्यकुल से अपेक्षा

परिसंवाद मे विचार के लिए यह चर्चा प्रस्तुत है। यह मूल रूप से आन्दोलन के पहले दौर मे १० अगस्त, '७० को श्री चरण सिंह के वक्तव्य के जवाब मे लिखा गया। अन्य वक्तव्यों, लेखों के अलावा, इस लेख के कारण उत्तरप्रदेश सरकार ने मुझे जाब्ता फौजदारी की दफा १०७।११७ के अन्तर्गत १८ अगस्त, १९७० को गिरफ्तार कर लिया। मैंने २२ अगस्त, '७० को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को जिला जेल वाराणसी से तार भेजकर व्यक्ति स्वातंत्र्य की याचिका प्रस्तुत की। २ सितम्बर को याचिका की प्रारम्भिक सुनवायी हुई। सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तरप्रदेश सरकार से पूछा कि क्यो न मुझे रिहा कर दिया जाय? १४ सितम्बर को हमारी याचिका की सुनवायी निर्धारित हुई। उत्तरप्रदेश सरकार ने ११ सितम्बर को मुकदमा वापस लेकर मुझे अपने साथियो सहित रिहा करने का आदेश दिया। सरकार मे सर्वोच्च न्यायालय का सामना करने का साहस न हुआ, किन्तु मैं जिसे सही समझता हूँ उसे लिखने-बोलने के लिए लगभग १ मास तक नजरबन्द रहा। मैं नही जानता कि आचार्यकुल इस पर क्या सोचता

है ? किन्तु मैं समझता हूँ कि आचार्यकुल को अगर आचार्यकुल जैसा नाम रखना है तो उसे नागरिक-स्वतन्त्रता के अपहरण की ऐसी घटनाओं पर सरकार की निन्दा करने का साहस होना चाहिए।

छात्र-संघ की रूपरेखा कौन तय करे ?

उत्तरप्रदेश के मुख्य मंत्री श्री चरण सिंह ने १० अगस्त को लखनऊ से दिये गए वक्तव्य में कहा कि छात्र संघों के लिए एक आदर्श संविधान तैयार किया जा रहा है। यह परस्पर-विरुद्ध बात है। छात्र संघों का संविधान कैसा हो, यह छात्र और विश्वविद्यालय ही तय कर सकते हैं। छात्र-संघों का निर्माण ही स्वशासन और छात्र शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए होता है। छात्र-संघों के लिए 'आदर्श संविधान' का निर्माण उत्तरप्रदेश सरकार कैसे कर सकती है ? हाँ, सरकार अलबत्ता 'आदर्श थाना' बना सकती है। इसकी अधिकारी सरकार है। छात्र-संघों का संविधान बनाने की अधिकारी संस्था सरकार नहीं, छात्र संघ और विश्वविद्यालय स्वयं है।

उत्तरप्रदेश का शासन उन्नीसवीं सदी के पुलिस राज की मान्यताओं के आधार पर चलाया जा रहा है। सरकार इसके लिए एक के बाद एक अध्यादेश जारी कर रही है। गोया, सरकार सपेरे के सिवा कुछ भी नहीं है। गुजरती हुई बीसवीं सदी में विश्वविद्यालय के संचालन और प्रशासन में यहाँ तक कि विश्वविद्यालय की कल्पना में, छात्रों और छात्र-संघों के महत्वपूर्ण रोल को मानकर सारी दुनिया में परिवर्तन के लिए प्रयत्न हो रहे हैं। अकेले श्री चरण सिंह उत्तरप्रदेश में कालचक्र को उल्टा घुमाने की चेष्टा कर रहे हैं। यह चेष्टा स्वतन्त्र शिक्षा के आदर्शों, परम्पराओं और रीति-रिवाजों के विपरीत तो है ही, भारत सरकार की मान्य शिक्षा नीति के भी प्रतिकूल है।

इस सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा नियुक्त शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट के छात्र-संघ सम्बन्धी प्रकरण से आवश्यक उद्धरणों से उत्तरप्रदेश सरकार की विपरीत नीति सिद्ध होती है। रिपोर्ट के पृष्ठ ३३६ पर कहा गया है "छात्र संघ ऐसा महत्वपूर्ण माध्यम होते हैं जिनके सहारे छात्र कक्षा के बाहर रहकर भी विश्वविद्यालय के जीवन में भाग ले सकते हैं। अगर उनका सही ढंग से आयोजन किया जाय तो इनसे स्वशासन और आत्मानुशासन में सहायता मिलती है, छात्रों को अपनी शक्तियों की अभिव्यक्ति का सही मार्ग मिल जाता है और उन्हें लोकतान्त्रिक पद्धतियों के उपयोग का अच्छा-खासा प्रशिक्षण मिल जाता है।"

जाहिर है, छात्र-संघ किस प्रकार काम करें यह विश्वविद्यालय स्वयं तय करेंगे, सरकारी अध्यादेश नहीं। इस सम्बन्ध में भारत सरकार के शिक्षा-आयोग

की सम्मति है "हर विश्वविद्यालय को स्वय यह तय करना चाहिए कि उसके छात्र-सघ किस प्रकार काम करें।"

सदस्यता ऐच्छिक या अनिवार्य ?

शिक्षा-आयोग ने उत्तरप्रदेश सरकार के इस तर्क का खण्डन किया है कि आखिर छात्र सघ की सदस्यता ऐच्छिक हो इसमें हर्ज क्या है ? जिसकी मर्जी होगी वह सदस्य बनेगा, नही मर्जी होगी नही बनेगा। यह तर्क ऊपर से जितना मासूम लगता है उतना है नहीं। छात्र सघ की सदस्यता ऐच्छिक हो या न हो, यह भी तो छात्र और विश्वविद्यालय तय कर सकता है। सरकार अध्यादेश लागू कर सदस्यता को ऐच्छिक बनाये इसमें ऐच्छिक कहाँ है ? यह तो विश्वविद्यालय और छात्र-सघो की स्वतत्रता और आत्म निर्णय का अपहरण है।

ऐच्छिक सदस्यता और अनिवार्य सदस्यता के बारे म सन् १९४० और '५० की दहाई म बहस चल चुकी है। फैसला अनिवार्य सदस्यता के पक्ष म हुआ। ऐच्छिक सदस्यता म तीन बड़े दोष हैं १—पैसेवाले छात्र और गुट अपनी ओर से पैसा जमा कर सदस्यता करेंगे और छात्र सघ पर कब्जा कर लेंगे। २—सभी विद्यार्थियो का कोई प्रतिनिधि सगठन न होगा। ३—स्वशासन और जनतात्रिक पद्धतियो का प्रशिक्षण न होगा। इसलिए अगर छात्र-सघो की यह भूमिका है तो सभी छात्रो को इसका सदस्य होना चाहिए।

छात्र सघो की सदस्यता के बारे म भी शिक्षा-आयोग का स्पष्ट मत है कि 'छात्र-सघो की सदस्यता इस अर्थ मे स्वत सिद्ध होनी चाहिए कि हर छात्र को अपने आप उसका सदस्य समझ लिया जाना चाहिए।'

भारत सरकार द्वारा नियुक्त शिक्षा-आयोग छात्र सघ की सदस्यता को 'स्वयं सिद्ध' माने और उत्तरप्रदेश सरकार अध्यादेश से इसे खत्म करना चाहे, ऐसा क्यो है ?

इस सम्बन्ध मे मेरा पहला सुझाव यह है कि शिक्षा-आयोग की संस्तुति के अनुसार छात्र-संघो की सदस्यता को स्वयं सिद्ध मानकर छात्र-संघ कैसे काम करें इसे तय करने का अधिकार और कर्तव्य विश्वविद्यालय का ही हो। सरकार इसमें जब भी हस्तक्षेप करती है बुरे के लिए करती है। सन् १९५३ मे उत्तरप्रदेश सरकार ने हस्तक्षेप किया, छात्र-सघ की सदस्यता को ऐच्छिक बनाना चाहा। छात्र आन्दोलन और शहीद डाक्टर गमन्दर की मृत्यु के बाद सरकार को अपना आदेश खारिज करना पड़ा। सन् १९७० म तो उत्तरप्रदेश सरकार और विश्वविद्यालय प्रशासन सन् १९५३ की तुलना म बहुत कमजोर हैं और विश्वविद्यालय के प्रशासन

मे छात्रो की भागीदारी की भावना पहले से ज्यादा प्रबल है। इसलिए छात्र-सघो की सदस्यता को ऐच्छिक बनाना अवाछनीय है और असम्भव भी।

सरकार दोषी

अध्यादेश जारी कर प्रदेश म विश्वविद्यालय जीवन और सामान्य जीवन को अस्त व्यस्त करने का दोष उत्तरप्रदेश सरकार का है। मैंने बहुत से जानकार लोगो से जानना चाहा कि आखिर इस अध्यादेश को इस समय जारी करने का उद्देश्य क्या है? वर्षों से जो सदस्यता अनिवार्य थी उसे अध्यादेश निकालकर ऐच्छिक बनाने की अभी जरूरत क्या थी? इसका कोई सन्तोषजनक जवाब कही मिला नही। मुझे तो यही लगता है कि 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' के अलावा इसका और कोई जवाब है नहीं। यह विनाश अब निकट है। इसलिए भी आचाय-कुल को अपनी राय रखने म डर नहीं होना चाहिए।

मेरा दृढ विश्वास है कि छात्र-शक्ति से टकराकर जब राष्ट्रपति दगाल गय, राष्ट्रपति जानसन गय, राष्ट्रपति अयूब खां गय, जहां बडे-बडे बह गय वहां चरण सिह कहाँ टिकेंगे? मुझे ऐसा भी विश्वास है कि छात्र-आन्दोलन तब तक चलता रहेगा जब तक कि उनकी छीनी गयी 'स्वयसिद्ध' सदस्यता और स्वतन्त्रता वापस नहीं मिल जाती।

मेरी प्रार्थना है कि आचार्यकुल अपने स्वयसिद्ध अधिकार की प्राप्ति के लिए अपने शिष्यों को आशीर्वाद दे। 'परिसवाद' इस दिशा म कारगर योगदान करे।

प्रो० कृष्णनाथ, काशी विद्यापीठ वाराणसी

छात्र-संघ : ऐच्छिक बनाम अनिवार्य

नागेश्वर प्रसाद

छात्र संघो के सम्बन्ध म उत्तरप्रदेश की सरकार ने जो अध्यादेश जारी किया है, उसे लेकर छात्रो ने प्रदेश के बडे-बडे नगरो म आन्दोलन एव प्रदर्शन किया है। समाचार-पत्रो एव राजनीतिक क्षेत्रो मे भी इसकी काफी चर्चा हुई है। अध्यादेश को लेकर पक्ष और विपक्ष मे अनेक प्रकार की रायें व्यक्त की गयी हैं। अध्यादेश के समर्थन करनेवालो का यह कहना है कि छात्रसघो के पास अपना कोई कार्यक्रम नहीं रह गया है, अतएव वे राजनीतिक दलो का अखाडा बन गये हैं। फलस्वरूप राजनीतिक दल उन्ह अपने राजनीतिक लक्ष्यो की पूर्ति के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। अध्यादेश के विरोधियो का यह कथन है कि छात्र-सघ छात्रो की एक ऐसी सस्था है जिसके मच से छात्र अपने कठिनाइयो एवं तकलीफो का इजहार कर सकते हैं। साथ ही छात्रसघ, छात्रो को जनतत्रीय प्रणाली मे शिक्षित करने का एक बडा महत्वपूर्ण साधन है।

इस लेख में हम छात्र-सघो का जनतत्रीय सदर्भ मे क्या 'रोल' हो सकता है, इस पर प्रकाश डालना चाहते हैं। हम इस पचडे मे नहीं पडना चाहते कि उत्तर प्रदेशीय सरकार का अध्यादेश कहाँ तक वैधानिक या अवैधानिक है।

जनतत्री राजनीतिक सस्कृति

किसी भी टिकाऊ राजनीतिक व्यवस्था के लिए यह जरूरी है कि उसमे रहनेवाले नागरिको की उसमे गहरी आस्था हो। अर्थात् यदि वह व्यवस्था जनतत्रीय है तो उसके मूल्यो, उसकी प्रणाली और प्रक्रिया मे प्रत्येक नागरिक की आस्था होनी चाहिए। आस्था के इस पुज को ही हम जनतंत्रीय राजनीतिक संस्कृति कहते हैं। हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस प्रकार की जनतत्रीय राजनीतिक संस्कृति म गाधीजी की अहिंसा भी समाविष्ट है।

छात्र और राजनीतिक समाजीकरण

अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार की जनतंत्रीय राजनीतिक सस्कृति का किस प्रकार निर्माण हो। समाज शास्त्र के विद्वानों ने इस प्रक्रिया का अध्ययन उन देशों म किया है, जहाँ जनतंत्र कई सौ सालो से प्रस्थापित है। उन अध्ययनों का निष्कर्ष यह निकला है कि बच्चा राजनीतिक मूल्यो एव विधानों को परिवार, मित्र-मंडली, स्कूल और कालेजो, तथा विश्वविद्यालयो के बीच सीखता है। जब वह वयस्क होता है तो अनेक प्रकार के समुदायो मे भाग लेता है, तथा राजनीतिक

पार्टियों के सम्पर्क में आता है। ये सभी राजनीतिक समाजीकरण के उपकरण हैं, जिनके द्वारा बचपन से लेकर अपने वयस्कता तक व्यक्ति राजनीतिक मूल्यों एवं विचारों को आत्मसात करता है।

बच्चों का जीवन स्कूल और कालेजों में अधिकतर बीतता है। स्वभावतः स्कूल और कालेज राजनीतिक समाजीकरण के एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण साधन हैं। जरूरी यह है कि इन स्कूल और कालेजों में अवश्य ही कोई ऐसा मंच होना चाहिए, जहाँ उनकी शिक्षा जनतन्त्रीय मूल्यों एवं विचारों में हो सके। मेरी समझ से छात्रसंघ ही ऐसे मंच हो सकते हैं। इस तरह स्कूल, कालेज एवं विश्वविद्यालय के जीवन में छात्रसंघ का होना अनिवार्य हो जाता है।

नवीनीकरण और छात्र

इस समस्या पर एक और दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है। आज का भारत नवीनीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है। नवीनीकरण (माडर्नाइजेशन) की इस प्रक्रिया से इधर शिक्षा में भी वृद्धि हुई है, जिसके फलस्वरूप शिक्षा का विस्तार उन वर्गों एवं जातियों तक हुआ है, जो कुछ वर्ष पूर्व उसकी परिधि के बाहर थे। जाहिर है कि शिक्षा की इस बढ़ती हुई जन संख्या का राजनीतिक व्यवस्था तथा विश्वविद्यालयों की व्यवस्था के साथ एकीकरण (इन्टीग्रेशन) होना चाहिए। वास्तव में नवीनीकरण का यह नियम है कि उसके चलते शिक्षा और औद्योगीकरण की वृद्धि के साथ-साथ नये-नये समुदाय और शक्तियाँ पैदा होती हैं, जो राजनीतिक व्यवस्था से अनेक प्रकार की अपेक्षाएँ रखती हैं। नवीनीकरण का एक परिणाम अपेक्षा-क्रान्ति (रेवेल्यूशन इन राइजिंग एक्सपेक्टेशन) भी है। इन अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति उतनी ही जरूरी है, जितनी उनकी पूर्ति। विद्यार्थी समुदाय भी इन अपेक्षाओं से अछूता नहीं रह गया है। इन अपेक्षाओं से समुदायों में एक और भावना उत्पन्न हुई है और वह यह है कि व्यवस्था के संचालन में समुदायों का हाथ हो। जिसको समाजशास्त्रियों ने सहभागिता संकट (पार्टिसिपेशन क्राइसिस) की संज्ञा दी है, वह इस प्रकार के समाज पर लागू होती है जिसमें नवीनीकरण के परिणामस्वरूप नयी-नयी शक्तियाँ और समुदाय व्यवस्था में उत्तरोत्तर भाग लेने की माँग करती हैं और जो व्यवस्था जहाँ तक इन समूहों आदि को भाग लेने का अवसर देती है, उसी हद तक वह स्थायी एवं भली-भाँति एकीकृत (इन्टीग्रेटेड) मानी जा सकती हैं। सहभागिता (पार्टिसिपेशन) के अभाव में व्यवस्था से लोगों का बिलगाव (एलिनेशन) होता है, जिसके कारण व्यवस्था कमजोर होती है। हर प्रकार की विघटनकारी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं जो व्यवस्था को तोड़कर नयी व्यवस्था स्थापित करना चाहती हैं।

जो बात व्यापक समाज के सदभ म चरितार्थ होती है वही छात्रो के सम्बन्ध मे भी सही है शिक्षा की बढती हुई प्रगति के कारण छात्रो मे सहभागी होने की भावना प्रबल हुई है। मतलब यह कि छात्र राजनीतिक व्यवस्था के साथ ही नहा वलिक विश्वविद्यालयो की व्यवस्था के साथ भी एकरस (इटीग्रेटेड) होना चाहते हैं। वह तभी सम्भव है जब उन्ह आत्माभिव्यक्ति का साधन मिले। स्पष्ट है कि यह अभिव्यक्ति उन्ह छात्रो-सघो द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इसलिए छात्र-सघो का सगठन अनिवाय हो जाता है।

राजनीतिक दल और छात्र

अब रह गयी राजनीतिक दलो की बात। जिस प्रकार का ससदीय जनतत्र हमारे देश म है उसका आधार राजनीतिक दल हैं। शायद राजनीतिक दल और इस प्रकार की ससदीय प्रणाली का अकाट्य सम्बन्ध है। अगर ऐसा है तो फिर दलो का समाज के हर वर्ग समुदाय एव समूह मे प्रवेश करना लाजिमी हो जाता है। आखिर उनको समथन प्राप्त करने के लिए यह तो करना ही पडेगा। कालेजो एव विश्वविद्यालयो मे पढनेवाले छात्र तब कैसे इन दलो से अछूते रह सकते हैं। चाहे हम कोई भी रोक लगायें, दलों का छात्र समुदाय म प्रवेश करना स्वाभाविक है क्योकि यह समुदाय बडा जागरूक एव सक्रिय समुदाय है जिसम से भविष्य के राज-नेता पैदा होते हैं।

इसलिए प्रश्न राजनीतिक दलो के प्रवेश करन का नही है। वह तो होगा ही। प्रश्न यह है कि भारतीय राजनीतिक पार्टियाँ जनतत्रीय पद्धति मे कहाँ तक विश्वास करती है और कहाँ तक वे उसके तौर-तरीको पर एकमत हैं। जिस हद तक राजनीतिक दलो के व्यवहार मे जनतत्रीय मूल्य प्रकट होगे उसी हद तक छात्र समुदाय म भी जनतत्रीय मूल्यो की स्थापना होगी। मेरा यह विचार है कि जनतत्रीय राजनीतिक सस्कृति जिसकी मैंने ऊपर चर्चा की है उसकी सवव्यापक प्रस्थापना किस प्रकार हो किस प्रकार दलो के व्यवहार मे उसकी प्रतिष्ठा हो, आदि प्रश्न जनतत्र के व्यापक प्रश्न से जुडे हुए हैं। परन्तु मेरा इतना कहना है कि चूँकि विद्यार्थी समुदायो मे राजनीतिक दलो का प्रवेश होता है, इसलिए उसे भंग कर दिया जाय या ऐच्छिक बना दिया जाय यह कोई तक नही। इस प्रकार के तर्क की अतिम परिणति दलो के भजन म हो सकती है जो आज के जनतत्र के लिए अनिवाय माने जाते हैं। स्मरण रहे कि जो कुछ भी मैं जनतत्र के सम्बन्ध म कह रहा हूँ, उसका सन्दभ आज का ससदीय जनतत्र है। इसलिए मुझे डर है कि इस प्रकार के अध्यादेश जनतात्रिक पद्धति के लिए बहुत खतरनाक हो सकते हैं।

जिन सस्थाओ का जनतत्र मे स्थान है उन्हे तोडकर नही बल्कि उनमे और अधिक प्राण की प्रतिष्ठा करके ही जनतत्र को सफल बनाया जा सकता है। हमारा विचार है कि छात्र-सघ एक ऐसी ही सस्था है। इसलिए छात्र-संघो की सदस्यता भी अनिवार्य होनी चाहिए।

उपसहार

अन्त मे मैं यह कहकर अपना लेख समाप्त कर रहा हू कि इतिहास मे ऐसे भी काल आते हैं जब एक समाज को प्रगति के माग पर बढने के लिए छलागें (लीप) लेनी होती हैं। जिस प्रकार से पश्चिम म एक मजिल से लेकर दूसरे मजिल से गुजरते हुए समाज का विकास हुआ है, उसी तरह आज के समाजो का विकास हो, यह कोई आवश्यक नहीं। कल की तीर चलानेवाली आदिमजाति आज बन्दूक चलाने लगी है। मानो उसे उन सब मजिलो से गुजरना नही पडता जिन मजिलो से तीर की तकनीक स लेकर बन्दूक की तकनीक तक पहुंचना पडा था। उसी प्रकार उत्पादन की पुरानी प्रक्रिया को छोडकर बहुत-से राष्ट्र आज की उच्चतम प्रक्रिया को अपना रह हैं। उन्ह उन तमाम प्रक्रियाओ से गुजरना नही पडा जिनसे पश्चिम क राष्ट्र गुजरते हुए, उत्पादन की आज की प्रक्रिया को प्राप्त हुए हैं। वही बात ससदीय प्रणाली के बारे म भी लागू है। आज के जनतत्रात्मक ढांचे को अपनाने के लिए भारत का उन सारे मंजिलो से नही गुजरना पडा जिनसे इग्लैंड आदि को गुजरना पडा था। इसी प्रक्रिया को इतिहास की छलाग कहते हैं। मेरा स्पष्ट मत है कि हमे प्रारम्भ मे उन सस्थाओ को अवश्य ही अनिवार्य बनाना पडेगा जिनसे हम समझते हैं कि जनतत्र की जडें मजबूत हो सकती हैं। और मेरी समझ से छात्र सघ ऐसी सस्थाओ को भी जनतात्रिक व्यवस्था मे एक अनिवाय संस्था के रूप म ग्रहण करना पडेगा। मुझे विश्वास है कि जिन राजनीतिक कणधारो के हाथ म आज सत्ता है वे छात्र सघ की अहमियत को नजर अन्दाज नही करेंगे।●

श्री नागेश्वर प्रसाद गाधी विद्या सस्थान राजघाट वाराणसी-१

स्वतंत्रता वनाम अनिवार्य सदस्यता

नारायण देसाई

कल स जो चर्चा चल रही है उस पर से ऐसा मालूम होता है, अध्यादेश के विपय म आगे चर्चा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब तक जितने वक्ता बोले वे अध्यादेश के पक्ष में बोले हो, ऐसा दीखता नही। अध्यादेश के बारे मे आचार्यकुल को सर्वसम्मति से यह राय देनी चाहिए कि अध्यादेश के जरिये शिक्षा-क्षेत्र मे दस्तदाजी हुई है। और अध्यादेश के जरिये इस प्रकार की समस्याओ का हल नहीं निकलता। मुझे यह भी लगता है कि छात्र सघ की आवश्यकता नम्बर एक सवाल जो है, इसकी चर्चा हुई थी, उस चर्चा मे यह साफ हो गया था कि सघ की आवश्यकता है और उसको प्रमुखता देने के लिए ही यह मुद्दा रखा गया है। यह बहस का मुद्दा नही है। उस पर मतभेद नहीं है। चर्चा के असली मुद्दे तीन और चार हैं। छात्र सघ की सदस्यता अनिवार्य होनी चाहिए या नहीं, इसके बारे मे मैं कुछ बोलना चाहता हूँ।

इस विषय पर एक दूसरे 'अप्रोच से देखने की आवश्यकता है। एक तो ला एण्ड आर्डर' के 'अप्रोच' से देखा जा रहा है। पुलिस और उनके दलवाले के माध्यम से इसे हल करने का जो प्रयत्न हो रहा है वह गलत है और यह तो एक स्वर से सबने यहाँ कहा है इसलिए उस पर ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं। छात्रों की समस्या या शिक्षा की समस्या दमन के तरीके से हल हो नही सकती है। और इसलिए ला एण्ड आर्डर का अप्रोच गलत है। शिक्षा की समस्या को राज नैतिक दलबन्दी के तरीके से भी हल नहीं किया जा सकता है। दूसरा 'अप्रोच' जो हो रहा है वह राजनैतिक दलबन्दी का हो है। अब तक जो उदाहरण दिये गये हैं सब उसी प्रकार क उदाहरण थे।

जैसे जीवन का मूलभूत एक अधिकार यह है कि जो सगठन करना चाहता है वह करे, उसी तरह और एक जीवन का मूलभूत अधिकार यह भी है कि जो सगठन नहीं करना चाहे वह न करे। यह उसकी स्वतत्रता का अधिकार है। हम मानते है कि 'कम्पलशन' हो तो इसका मतलब है हमने एक तीसरी 'अथारिटी' को मान लिया। फिर वह उपकुलपति हों या चरण सिंह हों, जिसके विषय बहुत सारे म बयान कहे गये। जहाँ एक दूसरी 'अथारिटी' है उसके जरिय 'कम्पलशन होता या कम्पलशन' हटा लिया जाता है। 'कम्पलशन' हटाना जिस तर्क स गलत है उसी तर्क से 'कम्पलशन लाना भी गलत है। क्योंकि उन्होंने एक दूसरी अथारिटी को सौंप दिया।

छात्र सघ मे सारे-के सारे छात्र अपने आप उसमे शरीक होते तब तो ठीक है। लेकिन एक छात्र भी अलग रह जाता है तो उसको अपना मत रखने का पूर्ण अधिकार है।

छात्र-सघो की अनिवार्य सदस्यता की जो तीन शर्तें श्री कृष्णनाथजी ने रखी है उसमे एक शर्त मैं और जोड देना चाहता हूँ कि यदि छात्र-सघ अनिवार्य रूप से रखे जायें तो उनकी सदस्यता नि शुल्क हो। छात्र सगठन नि शुल्क रखकर अनिवार्य करना हो तो कर लीजिए। इससे जो छात्र नही शामिल होना चाहते हैं, वे बच जायेंगे। और इसमे जो डक है वह निकल जायेगा। ऐच्छिक सदस्यता का जा मेरा मूलभूत तर्क है वह तो कायम ही है, फिर भी मैं इस शर्त के साथ अनिवार्य सदस्यता को स्वीकार कर लूँगा।

'कॉन्सेंशस ऑब्जेक्शन' का स्थान होता है जीवन मे। अगर 'कॉन्सेंश ऑब्जेक्शन' का स्थान युद्ध मे भी होता है तो एक छात्र अगर अलग रहना चाहता है तो उसे रहने देना चाहिए। मुझे उस छात्र की स्वतत्रता की चिन्ता है कि वह कही सेवक गोत्र के हाथ म दवा हुआ छात्र न रह जाय। सर्वोदय समाज भी सेवक गोत्र बन सकता है। यह तो एक भयानकता होगी। जिस तरह सर्वोदय-सेवको का गोत्र बन जाना बुरा है उसी प्रकार से कोई भी छात्र-सगठन गोत्र बनाता है तो वह भी बुरा है। गोत्र के कारण स्वतत्रता मे बाधा होती है। इसलिए मैं इसे ऐच्छिक रखना चाहता हूँ। छात्र की स्वतत्रता को टिकाने के लिए।

श्री नारायण देसाई, मत्री, अ० भा० शातिसेना मडल, राजघाट, वाराणसी–१

छात्र-संघ रूपरेखा : गोष्ठी की रिपोर्ट

उत्तरप्रदेश के विश्वविद्यालयों में छात्र-संघों की सदस्यता की अनिवार्यता समाप्त करने के सम्बन्ध में उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा अभी हाल में जारी किये गये अध्यादेश ने न केवल छात्रों में, वरन् समाज के अन्य सम्बन्धित लोगों में भी एक चिन्ता पैदा कर दी है। उत्तरप्रदेश आचार्यकुल की २७ अगस्त को हुई बैठक में यह तय किया गया कि इस अध्यादेश से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने और उसका कोई हल ढूँढ़ने के लिए छात्र-संघों के प्रतिनिधियों, शिक्षा शास्त्रियों, शिक्षण-संस्थाओं के अधिकारियों, राजनैतिक दलों, और अन्य सम्बन्धित लोगों का एक गोष्ठी बुलायी जाय। तदनुसार दिनांक १९–२० और २१ सितम्बर, १९७० को वाराणसी के गांधी विद्या संस्थान के सभाकक्ष में कानपुर विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ और आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपतित्रय-सर्वश्री राधाकृष्णजी, शीतल प्रसादजी तथा श्री राजाराम शास्त्री की अध्यक्षता में एक गोष्ठी सम्पन्न हुई। गोष्ठी में आगरा, कानपुर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों के छात्र-संघों के प्रतिनिधियों के अलावा अनेक डिग्री कालेजों के प्राचार्य तथा आगरा, कानपुर और काशी विद्यापीठ के उपकुलपति, गांधी विद्या संस्थान, वाराणसी के सह निदेशक तथा प्राध्यापक, आचार्यकुल के सदस्य, अखिल भारत शांति-सेना मण्डल, सर्व सेवा संघ, संयुक्त समाजवादी पार्टी (संसोपा), जनसंघ, मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी, भारतीय साम्यवादी पार्टी तथा अन्य नागरिकों ने भाग लिया।

गोष्ठी के १९, २० तथा २१ सितम्बर,' ७० को प्रात तथा सायं कुल ५ अधिवेशन हुए। गोष्ठी का आरम्भ केन्द्रीय आचार्यकुल के संयोजक श्री वंशीधरजी के द्वारा गोष्ठी के लिए सर्वश्री सुमित्रानन्दन पंत तथा श्रीमती महादेवी वर्मा के सन्देश-वाचन से हुआ। गोष्ठी का उद्घाटन प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने किया। गोष्ठी में गांधी विद्या संस्थान के प्रोफेसर नागेश्वर प्रसाद, भागलपुर विश्वविद्यालय (बिहार) के डा० रामजी सिंह, काशी विद्यापीठ के श्री कृष्णनाथ, सर्व सेवा संघ के श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा के चार सन्दर्भ-लेख पढ़े गये। सन्दर्भ-लेखों के अलावा गोष्ठी में अनेक वक्ताओं ने भी भाषण किये। वक्ताओं में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र-नेता श्री आनन्द कुमार तथा श्री सुरेन्द्र प्रताप तथा शतरुद्र प्रताप, लखीमपुर खीरी डिग्री कालेज के प्राचार्य डा० गणपत सिंह और बरात कालेज की प्राचार्या

कु० शुभदा तेलग, जुहारी कन्या डिग्री कालेज, कानपुर की प्राचार्या श्रीमती सुमन, मेरठ विश्वविद्यालय के श्री राय परमात्मा प्रसाद राव, वाराणसी नगर ससोपा के अध्यक्ष श्री आनदेश्वरी प्रसाद, गाधी विद्या सस्थान के श्यामसुन्दर भट्टाचार्य, श्री रोहित मेहता, अखिल भारत शातिसेना मण्डल के मत्री श्री नारायण देसाई, काशी विद्यापीठ के उपकुलपति श्री राजाराम शास्त्री, प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्र-सघ के प्रतिनिधि श्री अजय शकर प्रसाद और वाराणसी सस्कृत विश्वविद्यालय के छात्र-सघ के प्रतिनिधि श्री विजय शकर पाण्डे, प्रयाग विश्वविद्यालय के श्री बनवारीलाल शर्मा, प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमार सर्वोदय-विचारक आचार्य राममूर्ति, जनसघ के ससद-सदस्य श्री नारायण शर्मा तथा मार्क्सवादी साम्यवादी के श्री गणेशजी मानव तथा साम्यवादी दल के श्री रुस्तम सैटिन के भाषण हुए।

गोष्ठी में अधिकाश वक्ताओ ने इस प्रकार से अध्यादेश जारी करने के फलितार्थों पर विचार करते हुए यह अनुभव किया कि अध्यादेश जनतत्र के हितो के विरुद्ध है। गोष्ठी में यह अनुभव किया गया कि कालेजो और विश्वविद्यालयो में छात्र-सघों का होना आवश्यक है। खासकर छात्र-सघो की सदस्यता की अनिवार्यता और उनकी सरचना तथा कार्यक्रम जैसे प्रश्नो पर विस्तार से विचार हुआ और अधिकाश वक्ताओ ने सदस्यता ऐच्छिक बनाने के विरुद्ध विचार व्यक्त किये। क्योकि इससे छात्र-सघो की एकरूपता और शक्ति पर विपरीत प्रभाव पडेगा। छात्रसघो की सदस्यता ऐच्छिक बना देने से छात्रो का बिखराव अधिक तेज होगा और इससे विश्वविद्यालयो में प्रशासन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ और भी बढ जायेंगी। छात्र-सघ छात्रो में सामुदायिक जीवन के विकास में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं, अत छात्रसघो की सदस्यता तो छात्रो के लिए स्वत सिद्ध होनी चाहिए। छात्रसघो की सदस्यता ऐच्छिक बना देने से निहित स्वार्थों को छात्रसघो का अपने हित में उपयोग करना और भी सरल हो जायेगा, क्योकि उस हालत में शिक्षण-सस्थाओ में अनेक छात्र-सगठन खडे हो जायेंगे और धन के बल पर सदस्य बनाना आसान हो जायेगा। यद्यपि जनतत्र और अनिवार्यता तर्क-सगत नहीं है, किन्तु हमारा जनतत्र अभी जिस अवस्था में है, उसमें सदस्यता अनिवार्य रखना अनिवार्य है। इससे छात्रसघो के छात्रों का न केवल जननागरिक शिक्षण होगा, वरन् आगे चलकर हम छात्रो को शिक्षण प्रबध में भागीदार बनाना चाहते हैं, शिक्षा-सस्थाओ में एक ही छात्र-सगठन होने से उसमें काफी सरलता होगी। अनिवार्य सदस्यता के कारण सघो

में सदस्य सख्या की अधिकता के कारण छात्र-प्रतिनिधियों को अधिक सामूहिक समर्थन और शक्ति प्राप्त होगी।

किन्तु गोष्ठी में कुछ वक्ताओं ने यह भी अनुभव किया कि छात्र-सघो की सदस्यता अनिवार्य कर देने से छात्रो की स्वतनता का हनन होना है। अतः ऐच्छिक सदस्यता रहनी चाहिए। इससे अधिक छात्रो को सघो के कार्यों में भाग लेने का अवसर मिलेगा और छात्र-सघ भी मजबूत होगे। जनतत्र में अनिवार्यता नही हो सकती और छात्रों को सघो का सदस्य बनने या न बनने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, क्योकि यह प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार है। एक वक्ता ने यह भी सुझाव दिया कि अगर सदस्यता अनिवार्य ही रखनी हो तो उसे नि.शुल्क होना चाहिए। एक अन्य वक्ता ने कहा—अगर छात्र-संघ छात्रो के लोकतान्त्रिक शिक्षण के माध्यम हैं, तो फिर छात्र-सघो में ससदीय प्रणाली अपनायी जानी चाहिए। क्योकि यूनियन के होने से तो छात्र ट्रेड यूनियनो में मजदूरो की तरह प्रतिष्ठान के विरुद्ध अपने हितो की रक्षा के अपने मौलिक अधिकारो के लिए ही सगठित होते है और इस हालत में छात्र-सघों का ट्रेड यूनियन की तरह काम करना अनिवार्य हो जाता है। यदि हमें इसे यूनियन ही रखना हो तो फिर इसे राष्ट्रीय श्रम-आयोग का यह तर्क स्वीकार करना होगा कि एक ही संस्थान में कई यूनियनें हो, परन्तु मुख्य मान्यता-प्राप्त एक ही सघ रहे और बाकी यूनियनें केवल अपने व्यक्तिगत हितो का ही प्रतिनिधित्व करें। किन्तु यदि इसे ससदीय प्रणाली पर चलाना हो तो फिर इसमें एक कार्यकारिणी और एक एसेम्बली होनी चाहिए, जो कि छात्र-जनता के प्रति उत्तरदायी हो। एक वक्ता ने यह सुझाव दिया कि छात्र-सघो को छात्रो के सार्वजनिक हित और लोकतान्त्रिक शिक्षण के माध्यम के साथ-साथ एक विरोधी मच के रूप में भी काम करना होता है। अतः छात्र-सघो का विधान ऐसा बनाया जा सकता है कि वे ससदीय प्रणाली के और यूनियन के रूप में एकसाथ काम कर सकते हैं।

कुछ वक्ताओ का यह विचार था कि छात्र-समस्या को असल में हमें व्यापक सामाजिक सन्दर्भ में देखना होगा। और इसे केवल छात्रो तथा शिक्षा तक ही सीमित नही रखना होगा। आज का छात्र-असतोष तो आज के व्यापक सामाजिक असतोष का ही एक प्रतिरूप है। छात्र-समस्या को पृथकता में देखने से छात्र-सघ केवल यथास्थिति के ही विष्टपोषक बने रहेंगे और किसी भी बुनियादी परिवर्तन के लिए बाधक होगे। यदि छात्रो को इस वर्तमान सामाजिक व्यवस्था से नाराजी है और यदि वे मानते हैं—आज की सामाजिक संरचना मानव के सामान्य हितों के विरुद्ध है, तो फिर उन्हें चाहिए कि वे इस सम्पूर्ण व्यवस्था को

हो अस्वीकार कर दें और एक नयी शाश्वत क्रान्ति के लिए अपने को अर्पण कर दें। *उन्हें छात्र-संघों को केवल दो-तीन साल के छात्र जीवन तक सीमित नहीं* रखना चाहिए। बल्कि उन्हें एक नये समाज की रचना के सन्दर्भ से जोड़ देना होगा।

छात्र-नेताओं ने एकमत से वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की यथास्थिति का पोषक होने के रूप में कड़ी निन्दा की। उन्होंने कहा कि इस शिक्षा-पद्धति ने छात्रों के अन्दर एक भयानक कुण्ठा और निराशा पैदा कर दी है, क्योंकि उनके सामने कोई भविष्य नहीं है। आज की शिक्षा समाज के एक खास वर्ग के हित का साधन है और जब तक शिक्षा सर्वसाधारण के हित से नहीं होगी तब तक वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को तत्काल समाप्त कर देना होगा। तब शायद जनता ही अपने लिए कोई उचित शिक्षा-प्रणाली खोज ले।

उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा जारी किये गये वर्तमान अध्यादेश के बारे में वक्ताओं में अधिकांश यह आम राय थी कि जिस स्थिति में यह अध्यादेश जारी *किया गया, यह खेद का विषय है और उसके अध्ययन की आवश्यकता है,* जिससे ऐसी स्थिति का निर्माण हो सके, जिससे शिक्षण-संस्थाओं की स्वायत्तता सुरक्षित रह सके।

वंशीधर श्रीवास्तव

संयोजक, केन्द्रीय आचार्यकुल

नौजवान-आन्दोलन और विद्यार्थी-आन्दोलन को मैं हमेशा अलग मानता हूँ। हिन्दुस्तान मे नौजवान आन्दोलन कभी सगठित हुआ ही नही। जो भी सगठन की शक्ति पुराने जमाने म मिलती थी वह अग्रेज विरोधी आन्दोलन से मिलती थी, विद्यार्थी आन्दोलन स मिलती थी। नौजवान केवल स्कूलो और कालेजो मे ही नहीं हैं, नौजवान तो ससद सदस्य भी हैं मिलों म भी काम करते हैं, खेतों मे भी काम करते हैं। नौजवान आन्दोलन को तो हिन्दुस्तान मे कोई समझता ही नहीं। नौजवान-आन्दोलन का विद्यार्थी आन्दोलन एक अग भर है। फ्रास म नौजवानो ने जो आन्दोलन किया उसम विद्यार्थी भी थे, ससद-सदस्य भी थे, मजदूर भी थे। इसी तरह अमेरिका मे जो नौजवान आन्दोलन है उसम वहाँ का विद्यार्थी भी है, डेमाक्रेट्स भी हैं, रिपब्लिकन भी हैं और मार्क्सिस्ट भी हैं। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आज नौजवानो मे एक जागृति आ रही है। आज गति का युग है। युद्ध और शान्ति विद्यार्थियो के अस्तित्व से भी उतने ही जुडे हुए हैं जितना कि राजनीतिको के अस्तित्व से। विद्यार्थी उससे निरपेक्ष नहीं रह सकता। कहने का तात्पय यह है कि दुनिया मे जो नौजवान आन्दोलन है, विद्यार्थी आन्दोलन है वह मानव जीवन का एक अग है। इसलिए उसका समाज की समस्याओ स गहरा लगाव (सेंस आफ इन्वाल्वमट) रहेगा ही। विद्यार्थी भी सामाजिक जीवन के अभिन्न अग हैं इसलिए उनके अन्दर जो कमजोरियाँ हो त्रुटियाँ आयें, उनके प्रति हमदर्दी दिखाने की जरूरत है।

मैं विद्यार्थी-आन्दोलन को सगठित रूप मे देखना चाहता हूँ लेकिन खेद की बात है कि आज लोग विद्यार्थी समाज को एक 'क्रिमिनल क्लास' (अपराधी-वर्ग) मानते हैं और उसे विभाजित करने की कोशिश करते हैं। जितना ही इसे विभाजित करने का प्रयास किया जायेगा उतनी ही देश की राजनीति गदी होगी।

नेता दोषी

विद्यार्थी भी इसी देश के रहनेवाले हैं और वे इसी देश मे रहेग। समाज म जो कमियाँ दिखाई देती हैं उनका वे तेजी से अनुभव करते हैं और उन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। आदर्श के नाम पर तो हमने उन्हें कुछ दिया नहीं। सन् '४७ के बाद राजनीतिक आदमी बेईमान हो गया है, व्यापारी बेईमान हो गया है, कर्मचारी बेईमान हो गये हैं। चारों तरफ भ्रष्टाचार का बोलबाला है। इन सबका प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ेगा ही। विद्यार्थी आन्दोलन भविष्य के नेता तैयार करने की एक प्रयोगशाला है। यह प्रयोगशाला और अच्छी बन सकती है, बशर्ते हम उसके साथ हमदर्दी दिखायें।

भारत के नौजवानों को ऊँचा उठाने की हमने कोशिश नहीं की। युगोस्लाविया ने वहाँ के नौजवानों को संगठित किया। वहाँ के दो हजार नौजवानों ने मिलकर छह महीने तक काम करके एक विशाल होटल का निर्माण किया। इस सम्बन्ध मे वहाँ के अधिकारियों से पूछने पर उन्होंने बताया कि यह हमने विद्यार्थियों को मेहनताना देने की नीयत से नहीं किया, बल्कि इसलिए किया कि नौजवान यह अनुभव कर सकें कि देश के निर्माण मे हिस्सा बँटा रहे हैं।

मैं भारत के सभी राजनीतिक दलों को इस बात के लिए दोषी मानता हूँ कि उन्होंने विद्यार्थी आन्दोलन को गुमराह किया। आज स्थिति यह है कि अगर नक्सलवादी या बिगड़े हुए मजदूर कुछ करते हैं तो कह दिया जाता है कि यह विद्यार्थियों ने किया। हमारा विद्यार्थी-समाज ईमानदार है, उसमे देशभक्ति की भावना है। विद्यार्थी आन्दोलन का एक राष्ट्रीय स्वरूप बना होता लेकिन राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर विद्यार्थी-आन्दोलन बनने ही नहीं दिया गया। एक समय था कि एक आवाज पर लोग गोली खाने के लिए तैयार हो जाते थे लेकिन आज हम सस्ती लोकप्रियता के लिए कुछ भी करने को तयार हैं। किसीने संसद भवन मे परचा फेंका तो उसे अखबारों मे प्रमुख स्थान मिल जाता है। विद्यार्थी उसीकी नकल करते हैं। पुराने लोगों ने विद्यार्थियों के लिए कुछ भी नहीं किया है।

आज विद्यार्थी अपना भविष्य लडखडाता हुआ देखता है। पढाई खत्म करने के बाद उसे बेकारी का शिकार बनना पडता है। अगर हम एक तरह का कार्यक्रम चलायें कि बेकार नौजवानों को बेकारी का भत्ता दें और उनसे निर्माण का काय करायें सडक बनवायें मकान बनवायें तो बहुत सारी समस्याएँ हल हो सकती हैं। हमारे देश मे न तो इट की कमी है और न चूना गारा की। इनके लिए विदेशी मुद्रा की जरूरत नहीं पडती। जब तक विद्यार्थियों को नौकरी नहीं मिलती तब तक हम उनसे सडक-मकान आदि का निर्माण करा सकते है। इस प्रकार कम-से कम देश की एक समस्या—आवास की समस्या—हल हो सकती है। इसी तरह समाज-सेवा के लिए युवकों के समाजवादी संगठन बनाये जा सकते हैं—ऐसे संगठित दल जो खेती के कामों से लेकर निर्माण के कामों तक मे हाथ बँटायें।

आज लगभग सभी पश्चिमी और पूर्वी यूरोपीय देशों मे विद्यार्थियों का राष्ट्रीय संगठन है। हमारे देश मे भी सन् १९५०-५१ मे यह कोशिश की गयी थी कि सभी विद्यार्थी-यूनियनों को मिलाकर एक राष्ट्रीय संगठन बना दिया जाय। लेकिन उस प्रयास को सरकार का कोई समर्थन नहीं मिला, जिससे वह कामयाब नहीं हो सका। बिना सरकार की मदद के विद्यार्थियों का राष्ट्रीय संगठन चल नहीं

सकता। ३ प्रतिशत विद्यार्थी ही राजनीतिक दृष्टिकोण के होते हैं। ये तीन प्रतिशत डामिनेट' करते हैं। अगर विद्यार्थियों का एक राष्ट्रीय संगठन होता तो इन तीन प्रतिशत का प्रभुत्व कम हो जाता। दूसरे विषयों में विद्यार्थियों की रुचि भी बढ़ता, मसलन कला, साहित्य की गतिविधियों में और वे अपने को रचनात्मक आयोजना से जोड़ पाते।

विद्यार्थी में प्रतिक्रिया करने की जबदस्त क्षमता होती है। विद्यार्थी ने काम किया आजादी के लिए। चीन पाकिस्तान के आक्रमण पर प्रतिक्रिया की। फिर भी उनका एक राष्ट्रीय चरित्र क्या नहीं बन सका यहाँ के विद्यार्थी के मुकाबले फ्रांस का विद्यार्थी ज्यादा जान देनेवाला साबित हुआ। यहाँ विद्यार्थी छोटी-छोटी चीजों के लिए लड़ता है क्योंकि विद्यार्थी आन्दोलन को आदर्शवादी आन्दोलन रहने ही नहीं दिया गया। देश के नेताओं को विद्यार्थियों का राष्ट्रीय आन्दोलन खड़ा करना चाहिए, मगर वह उन्होंने नहीं किया। कांग्रेसवाले चाहते हैं कि विद्यार्थी-आन्दोलन उनकी मुट्ठी में हो कम्यूनिस्ट चाहते हैं कि उनकी मुट्ठी में हो और ससोपा के लोग चाहते हैं कि विद्यार्थी आन्दोलन पर उनका प्रभुत्व रहे। खण्डित विद्यार्थी-आन्दोलन के कारण ही यहाँ विद्यार्थी छोटी छोटी चीजों के लिए लड़ता है कभी थोड़े-से नम्बर बढ़वाने के लिए तो कभी किसी और बात के लिए, तो कभी किसी और बातों के लिए। इसका विशाल राष्ट्रीय आन्दोलन होता तो वह छोटी-छोटी बातों के लिए न लड़ता।

छात्र क्या करें ?

नौजवान-आन्दोलन भी नहीं है। अगर कोशिश की जाय तो नौजवान आन्दोलन खड़ा हो सकता है लेकिन आसान नहीं है। दो चीजों को अलग करके देखना है। विद्यार्थी-आन्दोलन नौजवान-आन्दोलन नहीं है। अक्सर लोग इन दोनों को एक समझने की गलती करते हैं। आज अगर नौजवान आन्दोलन बन जाय तो हिन्दुस्तान की कई समस्याएँ हल हो सकती हैं। आज अगर उन्हें बहुमुखी कार्यक्रम दिया जाय, उनमें वे जुट जायें तो उन्हें छोटी छोटी बातों में उलझने का मौका नहीं मिलेगा। जहाँ तक नौजवान आन्दोलन का सवाल है युवा लोग जहाँ रहते हैं काम करते हैं वहाँ उनके संगठन बनें, केन्द्र क्लब बनें तो उनकी शक्ति संगठित होगी और इस शक्ति का उपयोग समाज हित में हो सकेगा और उनका आन्दोलन धीरे-धीरे विकसित होता जायेगा। जिस तरह मिलों से निकले हुए मजदूरों की एक शक्ति मालूम पड़ती है, या स्कूल

कालेजो से छुट्टी होने पर जब विद्यार्थी बाहर निकलते हैं तो उन्हे इकट्ठा देखकर उनकी शक्ति का अहसास होता है उसी तरह नौजवानो की इकट्ठी शक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वे बिखरे-बिखरे न रहें, किसी एक जगह इकट्ठा हो और किसी-न-किसी रूप मे रचनात्मक कार्यक्रमो मे अपने को लगायें।

विद्यार्थी-आन्दोलन के लिए भी बहुत कुछ करने की जरूरत है। मैं विद्यार्थियो की समस्या के लिए मुख्य रूप से समाज के नेताओ को, राजनैतिक नेताओ को दोषी मानता हूँ। यूनियनो की सदस्यता को ऐच्छिक बनाने के अध्यादेश को मैं उचित मानता नही हूँ। इसका परिणाम यह होगा कि जो धनी विद्यार्थी हैं, या राजनैतिक दलो के लोग हैं, वे अपने पैसे से यूनियन बनायेंगे और फिर कहेंगे कि हम फलाँ यूनियन की तरफ से बोल रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि विद्यार्थी-संगठनो का विधान बदल दिया जाय। उन्हे स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने का मौका दिया जाय। अध्यादेश मे उसी दिमाग की झलक है, जिसने विद्यार्थियो की अवहेलना की है। आप बुजुर्ग हो गये तो नौजवान को तिरस्कृत करने का अधिकार आपको मिल गया। नौजवान तो देश की आधी आबादी है।

अगर किसी देश का नौजवान पगला हो जाता है तो उस देश का भविष्य नहीं रह जाता। मैं फिर कहूँगा कि नौजवान-आन्दोलन का मतलब लोग नही समझते। नौजवान फैक्टरियो मे हैं, खेतो मे हैं, नौजवानों को उनकी रुचि के अनुसार कार्यक्रम देने की जरूरत है। बेकारी की समस्या को मिटाने के लिए मैं समझता हूँ कि सरकार कुछ करनेवाली है। नौजवान-आन्दोलन और विद्यार्थी-आन्दोलन अलग-अलग होने से उनमे कोई विरोधाभास नही होगा। विद्यार्थी आन्दोलन मे भी हिस्सा ले सकता है और राजनीति मे भी। आज बहुत बडे पैमाने पर राष्ट्रीय संपत्ति की चोरी हो रही है। कान्ट्रेक्टर सडकें बनाने के लिए, बाँध बनाने के लिए जो पैसा लेते हैं उनमे से बहुत-सा धन वे खा जाते हैं। बडी योजनाओ पर खर्च होनेवाला राष्ट्रीय संपत्ति का एक छोटा-सा हिस्सा अगर विद्यार्थी-आन्दोलन पर खर्च किया जाय तो उससे बहुत लाभ हो सकता है। ऐसा करके हम भविष्य के लिए भी कुछ कर रहे होंगे; यानी अगर भविष्य मे अपनी राष्ट्रीय संपत्ति हमे बढानी है तो यह जरूरी है कि विद्यार्थी और नौजवान की ओर आज उचित ध्यान दिया जाय। यद्यपि इससे बेकारी की समस्या पूरी तरह हल नही होगी, लेकिन कुछ तो हल होगी और जितनी मात्रा मे हल होगी उतनी मात्रा मे तनाव घटेगा।

विद्यार्थियो से हम आदश की तो माँग करते हैं, लेकिन हम स्वय उनके सामने कैसा आदश रखते हैं। फिर भी मैं विद्यार्थियो को इस बात की चेतावनी देना चाहता हूँ कि व हर बात पर बुडबुडाने की आदत छोड दें और अपने को सुधारने की कोशिश करें। जो नौजवान दस हजार रुपये का दहेज लेता है या जो हरिजन को नीच समझता है उसे कोई हक नहीं कि वह दूसरो की दुनिया भर की आलोचना करे। उन्ह अपनी कमजोरियों का भी विश्लेषण करना चाहिए। इस देश म स्टेशन जलाना बसें जलाना किसी तरह से भी उनके भविष्य को ऊँचा उठानेवाला नहीं है। मैं जब सन् ५३ मे चीन गया था तो पीकिंग के मन्दिरो पुराने भवनों को देखकर मैंने कम्यूनिस्ट सरकार के अधिकारियो स पूछा कि य इतनी अच्छी हालत म कैसे हैं? इन्ह देखकर लगता नही है कि देश गृह-युद्ध से गुजरा है। उन्होने जवाब दिया कि हम चीनी पहले हैं साम्यवादी बाद म। यह हमारे देश की सपत्ति है इन्हे हम क्यो नष्ट करें? आज जो नक्सालवादी या नौजवान नेता देश को बर्बाद करने की कोशिश कर रहे हैं वे सोचें कि जब कम्यूनिस्ट चीन का नागरिक राष्ट्रवादी हो सकता है तो वे क्यों नहीं राष्ट्रवादी हो सकते। अगर वे इस देश मे समाजवाद लाना चाहते हैं तो आखिर किसकी सपत्ति नष्ट कर रहे हैं?

मेरी राय यह है कि किसी भी राजनैतिक पार्टी के नेता को यह कोशिश नही करनी चाहिए कि वह नौजवान और विद्यार्थी-आन्दोलन को अपने चगुल मे ले। मैं चाहता हूँ कि विद्यार्थियो का आन्दोलन सयुक्त संगठित और गैर-पार्टी आन्दोलन हो और इस विद्यार्थी-सगठन की सदस्यता अनिवार्य हो। जितना ही विशाल आन्दोलन होगा उतना ही उसम आदर्शवाद आयेगा।

दुनिया के दूसरे देशों की तुलना म हिन्दुस्तान का विद्यार्थी-आन्दोलन और नौजवान-आन्दोलन कुछ भी नहीं है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि हमारी योजना म शिक्षा-व्यवस्था को बहुत निम्न स्थान दिया जाता है। दूसरे देशो मे विद्यार्थियो के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है और शिक्षा-व्यवस्था को स्तरीय बनाने की पूरी कोशिश की जाती है।

आज जरूरत इस बात की है कि विद्यार्थी अपने देश की समस्याओं से जुड़ें। इसमे शिक्षा की भूमिका बहुत बडी होगी।

[दिनमान' ३० अगस्त '७० से साभार]

छात्र-संघ : चिन्तन की आवश्यकता

अतुलरंजन श्रीवास्तव

कुछ बड़े खतरे, जिनका मुझे अहसास हो रहा है, अब समय आ गया है, उन पर बहस की जाय, विश्वविद्यालय-छात्र-संघों के दिशा-निर्देश के लिए योग्य अध्यापकों का सहयोग प्राप्त होना व्यवस्था और छात्र-समुदाय दोनों के हित में है। योग्य प्राध्यापक भविष्य के नेताओं को संस्कार और दिशा-निर्देश दे सकते हैं। विश्वविद्यालय द्वारा शुल्क लिये जाने की स्थिति में विश्वविद्यालय-प्रशासन द्वारा किसी प्रवक्ता को कोषाध्यक्ष नियत किया जाता है। अलावा इसके छात्र-संघ में एक वरिष्ठ प्राध्यापक, उपकुलपति अथवा कालेज के प्रधानाचार्य द्वारा नामांकित सदस्य होता है। छात्र-संघ की कार्यवाहियों में उसकी उपस्थिति वांछित होती है। वह वस्तुतः छात्र संघ का सलाहाकार होता है। उसकी संस्तुति कई कार्यवाहियों में आवश्यक होती है। इस रूप में योग्य प्राध्यापक का सहयोग छात्र-संघों के संस्कार और दिशा निर्देश के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकता है। विश्वविद्यालय द्वारा यूनियन के गठन में कोई सक्रिय सहयोग न होने से व्यवस्था और छात्र-संघ के बीच इस प्रकार का कोई संपर्क-सूत्र नहीं रह जायेगा।

यदि कोई यह समझता है कि यूनियन का गठन पैसों के अभाव में नहीं हो सकेगा, वह मूर्ख है। क्या रिक्शा-यूनियनें और मजदूर-यूनियनें नहीं हैं? क्या उनकी सदस्यता अनिवार्य है? यूनियनें बनेंगी, परन्तु अब उनके विकृत होने का खतरा बढ़ गया है। अभी तक यूनियन-शुल्क शिक्षण-संस्थाएँ लेती थीं और उनके निरीक्षण में चुनाव सम्पन्न किये जाते रहे हैं। इस प्रकार एक शिक्षण-संस्था में एक ही अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मंत्री आदि होते थे, यानी एक ही यूनियन होती थी, अब वर्तमान स्थिति में जब हर छात्र को छात्र-संगठन करने का अधिकार होगा और तब यह आश्चर्यजनक नहीं होगा यदि एक ही शिक्षण-संस्था में एक से अधिक यूनियनें गठित हो जाये, जितनी राजनीतिक पार्टियाँ हैं। इस तरह एक शिक्षण-संस्था में कई छात्र संघ, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष आदि होंगे और कभी किसी छात्र-संघ के आवाहन पर, किसी अन्य के आवाहन पर हड़ताल, घेराव आदि होंगे। यही नहीं, प्रतिस्पर्धी छात्र-संघों की टक्कर भी कुछ कम नहीं होगी। उनकी प्रतिस्पर्धा का रूप कुछ ऐसा होगा कि व्यवस्था, प्रशासन आदि पर कौन अधिक विकट प्रहार करता है। सामान्य छात्र तो शायद सिर्फ अनिर्णय की स्थिति में होगा, परन्तु प्रशासन सम्भवतः किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायेगा।

अभी तक की व्यवस्था मे अथ संग्रह का कार्य शिक्षण-सस्थाएं करती थी, अत कोष का विवरण ज्ञात होता था। प्राप्त पैसों का बजट बनाकर उनका उपयोग किया जाता था तथा इसकी लेखाकार द्वारा जांच भी सम्भव थी क्योंकि विश्व विद्यालय नियत्रण करने की स्थिति मे था। परन्तु अब इस प्रकार का नियत्रण सम्भव नहा रह गया है। निहित स्वार्थों के लिए युवा वग का उपयोग करने से होनेवाले राजनतिक लाभ का महत्व किसी राजनैतिक दल को बताने की आव श्यकता नहीं है। किसी प्रकट नियत्रण के अभाव मे राजनतिक पार्टियो और शिक्षण सस्थाओ के बाहर की किन्ही अन्य शक्तियो के लिए छात्र सघा का नियत्रण अपने हाथों म ले लेना सहज होगा। इस प्रकार छात्र आसानी से वरगलाये जा सकेंगे। वामपथी क्रान्ति के निर्यातकर्ता हैं और दक्षिणपथी भी आयात निर्यात को उचित मानते हैं। इन खतरा की सम्भावना तात्कालिक है और यह भविष्य मे और भी जटिल हो सकती है शायद विस्तृत भी।

[दिनमान' ६ सितम्बर ७० से साभार]

अनुलरजन श्रीवास्तव गोरखपुर उत्तरप्रदेश

आचार्यकुल का अभिमत

२२ ८ ७० को आगरा म आचार्यकुल की बैठक मे उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा प्रदेश के विश्वविद्यालयों तथा सम्बद्ध महाविद्यालयों में छात्र संघों के विषय मे अध्यादेश की चर्चा चली और इस प्रश्न के महत्व को देखते हुए आचार्यकुल ने तय किया कि अध्यादेश एव उससे सम्बन्धित प्रश्नो का गहराई से अध्ययन करके आचार्यकुल निष्पक्षतापूर्वक अपना विचार जनता के समक्ष प्रस्तुत करे, ताकि लोगो को एक तटस्थ दिशा मिल सके।

इसी निर्णय के अनुसार आचार्यकुल के सर्व सेवा सघ, वाराणसी ने प्रागए मे १९, २० और २१ सितम्बर १९७० को क्रमश कानपुर और आगरा विश्वविद्यालयो तथा काशी विद्यापीठ के उपकुलपतियो की अध्यक्षता मे एक गोष्ठी का आयोजन किया। इस गोष्ठी मे विभिन्न राजनीतिक दलो के सदस्यो, छात्र-प्रतिनिधियो, शिक्षाविदों एव अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओ ने अध्यादेश के कारण उत्पन्न पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किये। गोष्ठी मे व्यक्त किय हुए विचारो पर चिन्तन करने के उपरान्त आचार्यकुल निम्नलिखित वक्तव्य दे रहा है :

• आचार्यकुल शिक्षा को शिक्षको, छात्रों एव अभिभावको का एक परस्पर दायित्व मानता है। इसलिए सरकार के किसी प्रकाशकीय 'आदेश', 'निर्देश', या 'अध्यादेश' के द्वारा शिक्षा-क्षेत्र मे किसी भी ऐसे सुधार के प्रयत्न को जो उसके विभिन्न अगों के दैनन्दिन जीवन एव कार्यों को गभीर रूप से प्रभावित करता है, शिक्षा एव लोकतत्र के मूल्यो के विपरीत मानता है और यह भी मानता है कि अन्ततोगत्वा इससे कोई स्थायी लाभ नहीं होगा।

• शिक्षण सस्थाओ मे राजनैतिक प्रयोजन के कारण हुए दलीय प्रवेश से विद्यार्थियो एव शिक्षको के बीच शीत-युद्ध का वातावरण बनता है। आचार्यकुल इसको शिक्षा के क्षेत्र मे हस्तक्षेप ही नहीं, बल्कि शिक्षा के लिए घातक भी मानता है क्योंकि इससे तात्कालिक समस्याएँ तो उलझती ही है, साथ-साथ शिक्षा के मूल्यो की स्थायी क्षति होती है।

• छात्र सघ के स्वरूप एव सरचना के प्रश्न का वास्तविक समाधान शिक्षक एव छात्रो के सम्मिलित आत्म निर्णय से ही हो सकता है। इस दिशा मे किसी बाह्य आदेश, निर्देश अथवा विधान की आवश्यकता नहीं है। आत्म-

निर्धारण के कारण उनके स्वरूपो मे विविधता रह सकती है, और रहनी भी चाहिए। इस दिशा मे एक से अधिक प्रयोग साध्य ही नहीं, वाछनीय भी हैं। इस दृष्टि से छात्र-सघ की सदस्यता की अनिवार्यता या वैकल्पिकता का प्रश्न ही नही उठता, क्योंकि हर व्यक्ति मे यह अधिकार निहित है कि वह किसी सघ अथवा सगठन का सदस्य हो या न हो। आचार्यकुल का दृढ मत है कि बाहरी शक्ति का प्रयोग आत्मानुशासन के विकास मे सहायक नहीं, बाधक होता है। आत्मानुशासन का प्रशिक्षण एव अभ्यास दायित्व निर्वाह के अधिकाधिक अवसरो के द्वारा ही सभव है।

• छात्र-सघ छात्रो मे सामाजिकता के विकास एव लोकतत्र के अभ्यास का एक शक्तिशाली माध्यम है। वह शिक्षा का एक अविभाज्य अग ही है। परन्तु छात्र सघ का प्रश्न भी शिक्षा के समग्र रूप से जुडा हुआ है इसलिए उसे पृथक् करके कभी नहीं सोचा जा सकता है। अत आचार्यकुल का मत है कि शिक्षा की सम्पूर्ण सघटना मे आमूल एव तात्कालिक परिवर्तन किया जाय।

• आचार्यकुल युवा शक्ति का स्वागत करते हुए आशा करता है कि युवको की विद्रोह भावना सजनात्मक दिशा मे विकसित एव विस्तृत होगी और अपनी समस्याओ के समाधान मे राष्ट्र एव मानव जीवन के व्यापक सन्दर्भ को स्वीकार करेगी।

—यशोधर श्रीवास्तव
सयोजक
केन्द्रीय आचार्यकुल

आचार्यकुल की प्रतिक्रिया

रामभूर्ति

सरकार शिक्षण की समस्या को भी 'शान्ति और सुव्यवस्था' (ला ऐण्ड ग्रार्डर) की समस्या समझती है और उसे कानून और पुलिस की शक्ति से हल करने की कोशिश करती है। यह सही है कि पिछले कुछ वर्षों में विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में छात्र संघ जिस तरह संगठित हुए हैं, और उनकी ओर से जो काण्ड हुए हैं उनके कारण शान्ति और सुव्यवस्था की समस्या पैदा हुई है और सरकार को अपनी दमन-शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। एक बार दमन-चक्र चल जाता है तो वह संयम और विवेक की सीमा में कब तक रहेगा, यह कहना कठिन होता है, खासकर आजकल जब विद्यार्थी और सिपाही दोनों एक-दूसरे को दुश्मन मानकर खुला, निर्मम प्रहार करना सीख गये हैं।

विद्यालयों के तरुण अपने अनिवार्य छात्र-संघों के तत्वावधान में संगठित होकर विद्यालयों के अधिकारियों और सरकार के लिए सिर दर्द हो गये थे। यह सिर-दर्द बहुत बढ़ जाता है जब छात्र-संघ सरकार के विरोधी राजनैतिक दलों से जुड़े हुए होते हैं। उत्तर प्रदेश के विद्यालयों में कई छात्र-संघ एस० एस० पी० और जनसंघ से जुड़े हुए हैं। ये संघ अपने अपने दल से दलगत राजनीति की सीख प्राप्त करते हैं, और विद्यालय के भीतर कई काम ऐसे करते हैं, जो बाहर की राजनीति के रंग में रंगे होते हैं। इससे स्थिति यह हो गयी है कि एक एक विद्यालय में अलग अलग दलों के गुट बन गये हैं। इनमें शिक्षक और कार्यालयों के सेवक तक शामिल हैं। उनके माध्यम से राजनैतिक दलों का विद्यालयों के जीवन में प्रवेश होता है, और विद्यालयों में वस्तुतः शीतयुद्ध का वातावरण बना रहता है। राजनैतिक गुटों के अलावा जाति और सम्प्रदाय के गुट तो हैं ही। वर्गों के भी हैं। गुटबन्दी का अन्त नहीं है।

सम्भवतः इस स्थिति को समाप्त करने की नीयत से श्री चरण सिंह की सरकार ने कुछ दिन पहले एक अध्यादेश जारी किया कि छात्र संघ अनिवार्य न रहकर ऐच्छिक होंगे, और विद्यालयों की ओर से छात्र-संघ की फीस आदि नहीं इकट्ठा की जायगी। जो छात्र चाहे अपना संघ बनायें और धन इकट्ठा करें।

छात्रो ने सरकार के अध्यादेश को युवा शक्ति पर प्रहार माना, और प्रतिकार किया। कुछ राजनैतिक दलो ने छात्रो का समर्थन किया। कई नेता और छात्र जेल भी गये। अध्यादेश अशान्ति और तनाव का विषय बन गया।

आचार्यकुल ने अध्यादेश तथा छात्र-सघो की अनिवायता और वैकल्पिकता के प्रश्न पर विचार करने के लिए वाराणसी म १९ २० २१ सितम्बर को एक मिली-जुली गोष्ठी और अलग अपनी बैठक बुलायी। गोष्ठी मे कई दलो के नेता, छात्र, आचार्य और सामाजिक कायकर्ता शरीक हुए और दो दिन तक विचारो का—परस्पर विरोधी विचारों का—भरपूर *मथन हुआ। आचायकुल के सिवाय* दूसरे किसी मच पर ऐसा होना सम्भव नहीं था।

गोष्ठी के बाद आचार्यकुल ने अपना जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उससे उसकी तटस्थता और पक्ष मुक्ति तो झलकती ही है साथ ही विद्यालय सरकार, सरकार-छात्र सघ, शिक्षक विद्यार्थी आदि के परस्पर सम्बन्धों पर एक नयी भूमिका मिलती है। हर प्रश्न पर तटस्थ भूमिका प्रस्तुत करना आचायकुल का काम है जिसे उसने एक तात्कालिक समस्या के अनुबन्ध म पूरा किया है।

आचायकुल को विद्यालय के जीवन म सुधार की दष्टि से सरकार का हस्तक्षेप अमान्य है। अगर विद्यालय शिक्षक शिक्षार्थी अभिभावक का सम्मिलित उत्तरदायित्व है—निस्सन्देह वह है—तो उन्हे विद्यालय का हर प्रश्न आपस म मिलकर तय करना चाहिए। सब विद्यार्थियो के लिए एक सघ रखना है तो वे आपस म तय करें कि एक संघ रखेंगे, अगर एक से अधिक सघ रखना है तो ऐसा निर्णय करें। किसी भी हालत में विद्यार्थी अपने सघ के लिए सरकार की शक्ति के मुहताज क्यों हो?

लोकतन्त्र और विज्ञान की दृष्टि से सर्वोदय आन्दोलन ने शिक्षण की स्वायत्तता को अपनी क्रान्ति का एक बुनियादी तत्व घोषित किया है। यह स्वायत्तता विद्यालय तक पहुँचकर समाप्त नही हो जाती बल्कि हर शिक्षक और विद्यार्थी तक पहुँचती है। स्वायत्तता आत्मानुशासन की बात है। इस शर्त की पूर्ति की अपेक्षा तभी की जा सकती है जब विद्यालयों म सरकार का हस्तक्षेप और नियन्त्रण समाप्त हो। सरकार का ही नही, राजनैतिक दलो का भी। राजनैतिक दल विद्यालयों मे खुला खेल खेलें, और उनके प्रभाव के विद्यार्थी वहाँ जो चाहे करें, और सरकार स्वायत्तता के नाम म असहाय होकर बाहर खडी देखती रहे यह स्थिति समाज को बर्दाश्त नहीं हो सकती। इसलिए आचार्यकुल

ने हर प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप के विरुद्ध आवाज उठाकर उचित और आवश्यक काम किया है।

छात्र संघों के संगठन का प्रश्न शिक्षण-क्षेत्र के अनेक प्रश्नों में से एक है। एक प्रश्न दूसरे प्रश्न के साथ जुड़ा हुआ है। शिक्षण की स्थिति बिगड़ते बिगड़ते यहाँ तक बिगड़ गयी है कि एक एक प्रश्न को अलग अलग हल करना सम्भव नहीं दीखता। पूरे शिक्षण को जड़ से बदलने की जरूरत है। स्वतंत्रता के बाईस वर्ष बीत गये और शिक्षण वह ही रह गया जो अंग्रेजी राज्य में था इसे देशद्रोह भी कहा जाय तो भी थोड़ा है।

हमारे विद्यालय शिक्षण की दृष्टि से चाहे जितने निकम्मे हों देश के लाखों तरुण और युवक उनमें पड़े हुए हैं। वे हताशा के शिकार हैं। मैट्रीकुलेशन के बाद विद्यालय के जीवन का हर दिन याद दिलाता है कि विद्यालय से निकलने के बाद समाज में उनके लिए स्थान नहीं है। हमारा विद्यार्थी आज तक इस स्थिति को स्वीकार करता रहा है लेकिन अब उसके अन्दर से अस्वीकार का स्वर निकलने लगा है। वह परिवर्तन की माँग कर रहा है। वह विद्रोह करने पर उतारू हो रहा है। जब कि बड़े यथास्थिति (स्टेटसको) से चिपके रहना चाहते हैं युवकों की यह विद्रोह भावना देश के भविष्य के लिए आशा का एक चिह्न है। इस युवा शक्ति और विद्रोह भावना की रक्षा होनी चाहिए। वह राष्ट्र की पूंजी है जिससे समाज परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू होगी। आचार्यकुल इस सत्य को स्वीकार करता है और युवकों से आशा रखता है कि वे देश के जीवन की मुख्य धारा के साथ जुड़ेंगे और अपनी समस्याओं को व्यापक राष्ट्रीय और मानवीय संदर्भ में देखेंगे। आयु के आधार पर पैदा होनेवाला नये और पुराने के बीच का दुराव भी बहुत कुछ दूर हो जायेगा।

विद्यालयों में जो अनीति होती है उसका विरोध उचित है। अनाचार का प्रतिकार होना ही चाहिए। लेकिन समाज परिवर्तन के व्यापक संदर्भ में विरोध और विद्रोह में बुनियादी भेद है। हमारे युवक जिस दलगत राजनीति से विरोधवाद की प्रेरणा ले रहे हैं उसमें विद्रोह शक्ति नहीं है। हमारी राजनीति वस्तुतः सत्तावादी और यथा स्थितिवादी है। हमें आशा है कि विद्रोही युवक इस भ्रम को समझेंगे, और समझकर क्रान्ति का सही रास्ता अपनायेंगे।

विद्यालयों में अनेक विषय हैं जिनकी पढ़ाई और परीक्षा होती है—जैसी भी होती हो। कहा जाता है कि छात्र संघों से लोकतंत्र का शिक्षण प्रशिक्षण

होना है। क्या राजनैतिक तिकड़म ही लोकतन्त्र मे एक चीज है जो सीखने लायक है? लोकतन्त्र की आत्मा इस बात म है कि नागरिक जाने कि वह आत्मानुशासित होते हुए अवसर आने पर विरोध कैसे करेगा, और अगर विरोध करने से काम न चला तो विद्रोह कैसे करेगा। गाधीजी ने देश को सत्याग्रह की दीक्षा दी थी। वह दीक्षा आज किस विश्वविद्यालय और महाविद्यालय म दी जा रही है? लोकतन्त्र जिस विद्रोह के लिए अवसर देता है, और विज्ञान जिसकी माँग कर रहा है, उसकी उचित दीक्षा हमारे विद्यालयो के जीवन का अग न हो तो मानना चाहिए कि ये विद्यालय लोकतन्त्र और विज्ञान से कोसो कोसों दूर हैं। लोकतन्त्र और विज्ञान के सदभ म समग्र शिक्षा के प्रश्न पर समाज को आचार्यकुल से नये प्रकाश की अपेक्षा है।•

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष १९
अक ३
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

अक्तूबर ७०

o

निवेदन

- नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छ रुपये हैं और एक अक के ५० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित अमलकुमार बसु
इण्डियन प्रेस प्रा० लि० वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : अक्तूबर, '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य

निवेदन

२ अक्तूबर १९६९ से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जन्म-शताब्दी चालू है। गांधीजी की वाणी घर घर में पहुँचे, इस दृष्टि से गांधीजी की अमर जीवनी, कार्य तथा विचारों से सम्बद्ध लगभग १५०० पृष्ठों का उच्चकोटि का चोर चुना हुआ साहित्य-सेट केवल रु० ७-०० में देने का निश्चय किया गया है तथा लगभग १००० पृष्ठों का रु० ५-०० में।

सेट नं० २, पृष्ठ १५००, रु० ७-००

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१-आत्मकथा १८६९-१९१९	गांधीजी	१-००
२-बापू कथा १९२०-१९४८	हरिभाऊजी	२-५०
३-तीसरी शक्ति १९४८-१९६९	विनोबा	२-५०
४-गीता-बोध व मंगल प्रभात	गांधीजी	१-००
५-मेरे सपनों का भारत संक्षिप्त	गांधीजी	१-५०
६ गीता प्रवचन	विनोबा	२-००
७-सघ प्रकाशन की एक पुस्तक		१-००
		११-५०

यह पूरा साहित्य सेट केवल रु० ७-०० में प्राप्त होगा। एक साथ २८ सेट लेने पर फ्री डिलीवरी मिलेगा

सेट नं० १, पृष्ठ १०००, रु० ५-००

उपर की प्रथम पांच किताबों का पृष्ठ १००० का साहित्य सेट केवल रु० ५ ०० में प्राप्त होगा। एक साथ ४० सेट लेने पर फ्री डिलवरी जायगा। अन्य कमीशन नहीं।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन-राजघाट, वाराणसी १

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस मानमन्दिर वाराणसी

वर्ष : १९
अंक : ४

गांधीजी के शैक्षिक चिन्तन की प्रासंगिकता
गणित शिक्षण कुछ व्यावहारिक सुझाव
७० करोड विस्मृत मस्तिष्क
निरक्षरता निवारण

नवम्बर, १९७०

वर्ष : १६ अंक : ४

शिक्षकों का गौरव

विनोबा

भगवद्‌गीता में कहा है :

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन ।'

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, उसे देखकर दूसरे लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं। श्रेष्ठ पुरुषों का व्यवहार ज्ञानपूर्वक हुआ करता है, पर अन्य लोगों का व्यवहार श्रद्धापूर्वक होता है। श्रेष्ठ पुरुष ज्ञानपूर्वक जहाँ पहुँचा है, वहीं श्रद्धापूर्वक काम करनेवाला भी पहुँचेगा। जो कार्य राम कर सकते हैं, वही हनुमान भी। इसी दृष्टि से सामान्य शिक्षक श्रद्धापूर्वक काम करें, पर आप 'शिक्षकों के शिक्षक' कहे जानेवाले लोगों पर विशेष जिम्मेदारी आती है। आप कोई काम ज्ञानपूर्वक करेंगे, जब कि शेष शिक्षक आपका अनुकरण करेंगे।

कभी-कभी श्रद्धावान् पुरुष तर जाता है और ज्ञानवान् डूबता है। एक ज्ञानी पुरुष थे। उन पर किसीने अत्यन्त श्रद्धा रखी। एक दिन उस ज्ञानी ने उपदेश दिया कि 'यदि मानव में श्रद्धा हो तो वह पैदल नदी पार कर सकता है।' एक बार नदी में बाढ़ आयी तो वह श्रद्धालु पुरुष श्रद्धा रखकर पैदल ही नदी पार कर गया। उसे तनिक भी शंका नहीं हुई कि हमें पानी डुबा देगा। ज्ञानी को इसका पता चला। उसे भी एक दिन नदी पार जाना था। वह भी पैदल नदी पार करने लगा। कुछ दूर चलने पर ज्यों ही उसके मन में शंका आयी कि पानी का गुण तो डुबोना है, त्यों ही वह डूब गया! श्रद्धालु के मन में वैसी शंका आयी ही नहीं इसलिए वह नदी पार हो गया, तर गया।

और एक बात है। आप जिन बच्चों को शिक्षा देंगे, उनके प्रति आपके मन में माता सा प्रेम और आचार्य-सा ज्ञान का भण्डार भी होना चाहिए। माता के पास ज्ञान नहीं होता, प्रेम होता है। किन्तु आपमें दोनों हों। बच्चा माँ का प्रेम पा सकता है पर उससे सलाह नहीं ले सकता। पर आपसे वह सलाह भी लेगा। इसलिए वात्सल्य भावना से सिखलाना आपका धर्म है। इसे आप भली-

भाँति मिला पाये, तो आपमें प्राचीन काल के गुरु का दर्शन होगा। जरा कुछ भी सकट पड़ा, तो प्राचीन काल का विद्यार्थी गुरु के पास सलाह लेने जाया करता था।

इस तरह शिक्षक गुरु के सलाह-मशविरे से भारत प्रगति के पथ पर रहा। मीराबाई पर जब सकट आया, तो उसे किसी भले आदमी की सलाह लेने की इच्छा हुई। उसने तुलसीदासजी से सलाह लेने का तय किया। कारण, उन दिनों तुलसीदास की अखिल भारत मे ख्याति थी। वह एक अतिप्रसिद्ध पत्र है। तुलसीदासजी ने उसे सलाह दी

> जाके प्रिय न राम-वैदेही।
> तजिये ताहि कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही॥ ..

और अन्त मे लिखा ये मतो हमारो। सारांश, आपको यह पसन्द पड़े तो करें। आखिर तुलसीदास की सलाह मानकर मीराबाई ने घर त्याग दिया। लोगों मे यह बात प्रसिद्ध है। भारत में जब ऐसे गुरु थे, तभी भारत उन्नति के शिखर पर था। वे समाज को शिक्षा देते और निरपेक्ष भाव से सलाह भी दिया करते थे। शकराचार्य, वल्लभाचार्य आदि सन्त सर्वत्र विचरण किया करते। बाबा की आज जो महिमा है, वह भी उसके विचरण के ही कारण।•

गांधीजी के शैक्षिक चिंतन की प्रासंगिकता

श्री के० श्रीनिवास आचार्लू

सामान्य रूप से नये युग के लिए और विशेष रूप से शिक्षा के लिए गांधी-विचार की सामयिक उपयोगिता क्या है, इस विषय पर भारतीय विश्वविद्यालयों ने गांधी-शताब्दी वर्ष के दौरान कई विचार-गोष्ठियों का आयोजन किया। मैं अपने इस लेख में इस बात की परख करना चाहता हूँ कि गांधी के शैक्षिक विचारों के अनुसार विश्वविद्यालयी शिक्षा को किस हद तक नया रूप दिया जा सकता है।

इस सन्दर्भ में नीचे लिखे मुद्दे विचारणीय हैं—

१ विश्वविद्यालयी शिक्षा के उद्देश्य और कार्यक्रमों का निर्धारण करते समय अहिंसा और सत्य को बुनियादी मूल्यों के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। इसका अर्थ यह होता है कि विश्वविद्यालय में एकाधिकारमूलक सत्ता, केन्द्रीकरण, चिंतन के क्षेत्र की एकरूपता, प्रतिद्वन्द्विता की भावना, एकांगीपन, सम्प्रदायवाद, शानशौकत तथा चमकदमक की उपासना और हिंसा के प्रति तनिक भी पक्षपात नहीं दिखाया जायेगा। विश्वविद्यालय को सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर अडिग रूप से स्थिर रहना होगा, चाहे इसके जो भी परिणाम भुगतने पड़ें।

२ पाठ्यक्रम वह साधन है जिसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप प्राप्त होता है। शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी ने जीवन-केंद्रित पाठ्यक्रम, सामयिक शरीरश्रम, सामुदायिक जीवन और सामाजिक वातावरण का सुझाव दिया था। प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर की शिक्षा में गांधीजी की पद्धति असाधारण रूप में व्यावहारिक है, लेकिन विश्वविद्यालयी स्तर की शिक्षा में कुछ कठिनाइयाँ आ सकती हैं, क्योंकि विश्वविद्यालय की शिक्षा के ज्ञान के कुछ ऐसे दायरे हैं जिनका जीवन की परिस्थितियों से उतना सम्बन्ध नहीं है जितना शुद्ध चिंतन-मनन से है। किन्तु विश्वविद्यालय के विषयों में ऐसे अनेक विषय हैं जिन्हें समुदाय पास-पड़ोस और देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन से गहरे रूप में अनुबन्धित होना चाहिए। उदाहरण के लिए कृषि, प्रायोगिकी तथा चिकित्सा विज्ञान के सकाय परिपूर्ण रूप से व्यावहारिक तथा जीवन-केन्द्रित बनाये जा सकते हैं। लेकिन यह आवश्यक है कि प्रचलित पाठ्यपुस्तकें स्थानीय परिस्थिति की दृष्टि से नये सिरे से लिखी जानी चाहिए। जैसी पाठ्यपुस्तकें आज चल रही हैं वे तो पश्चिम में प्रचलित पुस्तकों से मिलती-जुलती सी हैं। मेरा सुझाव यह है कि पाठ्यपुस्तकों में न केवल विवरणात्मक उदाहरण भारत के जीवन, वातावरण और

परिस्थितियों में से लिये जायें, बल्कि विषय के प्रतिपादन और बुनियादी सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति में भी विशिष्ट भारतीय दृष्टिकोण की झलक रहनी चाहिए। उदाहरण के लिए कृषिशास्त्र को लें। सभी कृषि महाविद्यालयों में कृषि को उत्पादन, उपभोक्ता, बाजार तथा यांत्रिकी का अंग माना जाता है। लेकिन भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार कृषि व्यावसायिक क्रियाकलाप न होकर एक जीवन-पद्धति है, मनुष्य को मुक्त करने की अनेक पद्धतियों में से एक पद्धति है। हम इस बात को नहीं भूलेंगे कि आधुनिक यंत्रों से कृषि का अधिक उत्पादन बढ़ता है और मानवीय आवश्यकताओं की अधिक आपूर्ति होती है, लेकिन इसके साथ ही भारतीय उपनिषदों से ध्वनित अन्य प्राणियों के प्रति आत्मीयता की भावना के प्रति भी हम आँखें नहीं मूँदेंगे जिसने सारे 'संसार को ईश्वर का आवास' माना है।

वैज्ञानिक यांत्रिकी का मानवीय वातावरण पर जो विनाशकारी प्रभाव पड़ रहा है उसके लिए प्राध्यापक लियन व्हाइट ने पश्चिम के धार्मिक विचारों को उत्तरदायी माना है। उन्होंने प्रकृति के प्रति एक नये धर्म की आवश्यकता पर जोर दिया है, जो संत फ्रांसिस के धार्मिक विचारों से साम्य रखता है। जो लोग मानते हैं कि अर्थशास्त्र में गांधीवादी दृष्टिकोण जैसी कोई बात नहीं है, उन्हें हम नम्रता-पूर्वक डा० शूमाखर द्वारा लिखित 'माध्यमिक प्राद्योगिकी तथा 'बौद्ध अर्थशास्त्र' का अध्ययन करने का सुझाव देंगे। यहाँ पर विनोबा की इस मान्यता का स्मरण दिलाना भी प्रासंगिक है जिसके अनुसार दर्शन, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के दायरे में हमारी परम्परा पश्चिम से बहुत आगे पहुँची हुई है।

पाठ्यक्रम के बारे में एक बात और कहनी है। आज हमारे देश में विज्ञान और यांत्रिकी की महिमा का गुणगान करने और परम्परा से प्राप्त ज्ञानार्जन के प्रति हीनता की भावना पैदा करने की व्यापक प्रवृत्ति पायी जाती है। इसका परिणाम यह है कि हम लोग मानवीय मूल्यों तथा मानवीय विषयों के अध्ययन के प्रति अपनी आस्था बड़ी तेजी से समाप्त करते जा रहे हैं, और जैसा कि गेराल्ड साइक्स ने कहा है, अब स्थिति यह आ गयी है कि जो लोग अपनी रक्षा के लिए यांत्रिकी की ओर दौड़ते थे वे ही भगवान से प्रार्थना करने लगे हैं कि वह उनकी यांत्रिकी से रक्षा करें। डाक्टर कोठारी ने अपने हाल ही के एक भाषण में कहा है कि आज विवेक, करुणा और आत्मशान्ति के लिए युग को विज्ञान और गांधी की आत्यंतिक आवश्यकता है। हमें इस चेतावनी को समझना चाहिए।

३ कार्यानुभव को आज शैक्षिक दृष्टि से एक ऐसा अपरिहार्य सिद्धांत माना जा चुका है जिसे प्राथमिक से विश्वविद्यालय-स्तर तक के पाठ्यक्रम का अविभाज्य

अंग बनना चाहिए। प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर की शिक्षा में खेतो, कारखानों और कमशालाओं का अनुभव दिलाने के अतिरिक्त कुछ उपयुक्त उत्पादक उद्योगों की जानकारी भी दी जानी चाहिए। कार्यानुभव के मामले मे वास्तविक कठिनाई विश्वविद्यालय-स्तर की शिक्षा के प्रसग म सामने आती है जहा समय की बहुत कमी रहती है ज्ञान का क्षेत्र बराबर बढता जाता है और छात्रों की सख्या भी सदैव बढती जाती है। ऐसी स्थिति मे विश्वविद्यालय मे किसी प्रकार के उत्पादक-काय की शिक्षा देना कठिन हो सकता है। किन्तु वहाँ भी कृषि, अभियान्त्रिकी, चिकित्सा और वाणिज्य सकायों म कार्यानुभव का समावेश अच्छी तरह हो सकता है। खेत और बाग-बगीचो मे विद्यार्थी व्यवस्थित रूप से श्रमिकों की तरह काम कर सकते हैं। इस तरीके से स्वावलम्बन के सिद्धात का बहुत हद तक पालन हो सकता है। अभियांत्रिकी के छात्रों को हर प्रकार की मशीनें चलाने, मरम्मत करने और नयी मशीनें बनाने को कुशलता प्राप्त करनी चाहिए। इसके साथ ही उत्पादन की प्रक्रियाओं का प्रारम्भ से अंत तक का परिचय होना चाहिए। चिकित्सा-विज्ञान के छात्रो का कार्यानुभव महाविद्यालय के निजी चिकित्सालय से प्रारम्भ होकर पास-पडोस के बीमार लोगों की देख भाल और पडोसी इलाके के चुने हुए गाँवों में सफाई के कार्यक्रम पूरे करने तक व्याप्त रहेगा। सफाई-सम्बधी कार्यक्रम स्थानीय आवश्यकता को ध्यान मे रखकर पूरे किये जायेंगे। छात्र साधारण चिकित्सा के काम मे आनेवाली वनस्पतियों और जडी बूटियो का छोटा-सा बगीचा लगवाने और लोगों मे बाँटने के लिए साधारण दवाएँ तैयार करने का काम भी करा सकेंगे।

वाणिज्य के छात्रों का कार्यानुभव अपने महाविद्यालय के पत्र-व्यवहार, हिसाब-किताब और हिसाब की जाँच से सम्बद्ध होगा। वे अपने महाविद्यालय के दूसरे सकायों का हिसाब सम्बन्धी कार्यानुभव भी प्राप्त करेंगे। इसके अतिरिक्त वे सहकारी समितियों और बैंको के काम का व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त करेंगे। अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र के छात्र पास-पडोस का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे, स्थानीय परिस्थिति के बारे मे प्रतिवेदन तैयार करेंगे, स्थानीय समुदाय के लोगों से उनके विकास की योजनाओ के बारे मे चर्चा करेंगे और उनका सहयोग प्राप्त करके विकास की अन्य सस्थाओ के साथ स्थानीय विकास कार्यक्रमो को कार्यान्वित करेंगे।

४ कोठारी-आयाग ने सस्तुति की थी कि बुनियादी शालाओं ने सामुदायिक जीवन की जिस परम्परा का प्रारम्भ किया था उसे सभी विद्यालय और महाविद्यालयों में प्रतिष्ठित करना चाहिए। विद्यालय और महाविद्यालय के प्रांगण में छात्र जो सामुदायिक जीवन बिताते हैं उसकी शिक्षा के माध्यम के रूप मे विशेष

महत्ता है यह नयी तालीम जोर के साथ कहती है। शिक्षा-शास्त्री मानते हैं कि पारस्परिक प्रेम, पड़ोसीपन और आत्मानुशासन के गुण और सामाजिक कार्यकुशलता बढ़ानेवाले ऐसे कार्यक्रम जो किशोरों म उत्तरदायित्व की भावना बढ़ाते हैं स्वस्थ शिक्षण के लिए बड़ी अनुकूल परिस्थिति का निर्माण करते हैं। लेकिन हमे यह स्मरण रखना होगा कि महाविद्यालयो को वास्तविक समुदाय के रूप म विकसित करने से ही ऐसा सम्भव होगा। *विद्यार्थी स्वायत्त-शासन एक दिखावा या नाटक* का गणतन्त्र नहीं होना चाहिए। वह वस्तुत वास्तविक उत्तरदायित्वपूर्ण और सहकारमूलक समुदाय होना चाहिए। आजकल विश्वविद्यालयो के क्रियाकलापो मे वहाँ के छात्रो का कोई वास्तविक उत्तरदायित्व नही है इसीलिए आज के विश्वविद्यालय छात्र असतोष के आवास-गृह बने हुए हैं। महाविद्यालयो के सामुदायिक जीवन मे छात्रों को सहभागी बनाकर उनकी दबी और उद्दाम भावना, गाली-गलौज तथा मारपीट की आदत को स्वस्थ और परस्पर-सहायक प्रवृत्तियो म परिवर्तित किया जा सकता है।

५ कोठारी शिक्षा-आयोग ने संस्तुति की है कि शिक्षा सस्थाएँ पड़ोसी समुदाय की सेवा मे शिक्षण के अनिवार्य कार्यक्रम के रूप मे भाग लें। शिक्षा-आयोग ने कहा है कि शिक्षण-सस्थाओं द्वारा ऐसे कार्यक्रमो के कार्यान्वयन से शिक्षितो और समाज के बाकी लोगो के बीच परस्पर सहायक भावना पदा होने मे सहायता मिलती है। इससे छात्रो मे सामाजिकता और आत्म विश्वास की प्रतीति जगेगी और छात्रो को यह अनुभूति प्राप्त होगी कि वे समुदाय के जीवन और कार्यक्रमों म सहभागी हैं। शिक्षा आयोग ने यह भी सस्तुति की है कि महाविद्यालय के छात्रों को स्नातक का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के पूव निश्चित रूप स किसी राष्ट्रीय सेवा के कार्यक्रम मे ६० दिन का समय देना चाहिए।

गांधीजी ने कहा था कि शिक्षा अपरिहार्य सामाजिक सेवा है। आज के युग की यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है कि महाविद्यालय के लोग समुदाय से अपने को बिलकुल अलग मानते हैं। आमतौर से महाविद्यालय के लोग अपने को और लोगों से अलग रखते हैं। वे यह मानते हैं कि उन्हें अपने विचार भावना और कार्यक्रम के दायरे के बाहर हर्गिज नहीं जाना चाहिए। उनके इस रवये के कारण गैर जिम्मेदारी निष्क्रियता और आत्मवचना बढी है और सामाजिक कार्यक्रम इन सबका एक ही इलाज है। आज से अनेक वष पूव १३ अक्तूबर १९३७ को गांधीजी ने लिखा था कि शिक्षा का समापन सेवा मे होना चाहिए और यदि अध्ययन काल मे छात्रा को सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हो तो उन्हे उस अवसर को एक ऐसा दुलभ अवसर मानना चाहिए जो उनकी शिक्षा के लिए बाधक होकर

पूरक है। गांधीजी की शिक्षा-योजना पड़ोस के समुदाय की ओर उसीके लिए थी। उनके लिए सामाजिक सेवा शिक्षा की आकांक्षापूर्ति थी।

६. गांधीजी चाहते थे कि धर्म की शिक्षा युवकों के प्रशिक्षण के अनिवार्य अंग के रूप में रहे। अपनी समझ बढ़ाने के लिए छात्रों को अपने तथा दूसरे धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए। छात्रों के मानस में यह भाव आना चाहिए कि वे सभी धर्मों के प्रति आदर रखें। चूंकि सत्य और अहिंसा धर्म का मुख्य तत्त्व है, अतः जो भी वस्तु इन दोनों गुणों को बढ़ावा देती है वह धर्म शिक्षा का साधन है। गांधीजी मानते थे कि बुद्धि और हृदय का शिक्षण पूर्णतया शिक्षक के जीवन और चरित्र पर निर्भर करता है।

हमारे विद्यालय तथा महाविद्यालय न केवल सभी धर्मों के बुनियादी सिद्धान्तों की पुनीत भावना के साथ शिक्षा दें, बल्कि संस्था की चहारदीवारी के भीतर धार्मिक वातावरण बनायें। सब धर्म उपासना, मौन प्रार्थना और ध्यान, समस्याओं का अध्ययन और चर्चा, जीवन की उलझनों को सुलझाने में सहायता, सभी धर्मों के मुख्य त्योहारों को मनाना, दार्शनिक चर्चाएँ करना, रहस्यवादी विचारधारा के महापुरुषों और युगद्रष्टाओं के जीवन का अध्ययन आदि कुछ ऐसे उपाय हैं जिनके द्वारा संस्था के भीतर धार्मिक वातावरण बनाया जा सकता है। संस्था के भीतर सादगी और आत्मानुशासन के वातावरण का होना नैतिक वातावरण के बढ़ावे का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू है। यह याद रखना होगा कि सादगी का अर्थ गरीबी नहीं है। जैसा कि श्री शंकरराव देव ने एक बार इशारा किया था, सादगी चेतना की सुगन्ध है। अच्छे शिक्षकों के जीवन का दृष्टान्त धार्मिक शिक्षण का एक अमोघ उपाय है। चरित्र पुस्तकों के पृष्ठों में नहीं, बल्कि उन शिक्षकों के सजीव सम्पर्क और प्रेरणा में निहित होता है जो धर्म का आदर करते हैं। हम कौतुक के साथ देखते हैं कि विश्वविद्यालय के लोग अपने पहरावे, रोजमर्रा के जीवन रहनसहन और आमोदप्रमोद की आदतों में इस हद तक विदेशियों की नकल करते हैं कि उनसे कम भाग्यशाली लोगों को उनसे ईर्ष्या होती है। यदि छात्रगण शिक्षकों का मखौल उड़ाते हैं तो हम शिकायत क्यों होनी चाहिए? इस प्रसंग में यह सुझाना अप्रासंगिक न होगा कि यदि छात्र-गण प्रतिदिन सूत्रयज्ञ का अभ्यास करें तो यह उनके लिए एक आदर्श आध्यात्मिक कार्यक्रम होगा जिसके द्वारा उनका आत्मानुशासन दृढ़ होगा।

विश्वविद्यालय के प्रांगण में स्वस्थ नैतिक वातावरण बनाये रखने में इस बात का भी महत्त्व है कि वह कहाँ पर बना है। विनोबा सोचते हैं विश्वविद्यालयों की स्थापना के लिए गाँव बहुत उपयुक्त स्थान हैं। यह भी एक समस्या है कि क्या

ऐसे विश्वविद्यालय से पूर्णत संतुलित व्यक्तित्ववाले व्यक्ति तैयार हो सकते हैं जिसके स्नातको मे मिट्टी की नैतिकता के लिए आदर-भावना का विकास नहीं हो पाया है। आल्डो लियोपाल्ड ने इसे 'भूमि की नैतिकता' की संज्ञा दी है जिससे उनका आशय मिट्टी, पेड़-पौधे और पशुओं से है। प्राचीन काल के विश्वविद्यालयों की स्थापना तपोवन मे बिना कारण के नही होती थी। क्या प्राचीन काल मे अयोध्या और हस्तिनापुर मे बड़े-बड़े भवन नहीं थे जिनमे आश्रम विश्वविद्यालयों की स्थापना होती? विश्वविद्यालयों मे विज्ञान-प्रदत्त वैभव के समावेश का भ्रष्ट-कारक प्रभाव पडता है।

हमे यह देखकर आश्चर्य होता है कि विश्वविद्यालय का दीक्षांत समारोह स्नातको के साधारण समारोह के रूप मे न मनाया जाकर सजावट और तड़कभड़क वातावरण मे क्यो सम्पन्न होता है?

७ अन्त मे विश्वविद्यालय को इस बात की चिन्ता रखनी चाहिए कि प्राध्यापकों और छात्रो के लिए स्वतंत्रता का वातावरण बने। स्वतंत्रता अपने आप मे एक साध्य है। स्वतंत्रता जीवन की सिद्धि का एकमात्र मार्ग है। लेकिन हमारा शिक्षा-तंत्र ऐसे ढग से बना है कि प्राध्यापको और छात्रो को स्वतंत्रता प्राप्त करने का बहुत कम अवसर मिलता है। उनका पूरा-का-पूरा समय पूर्वनिर्धारित कार्य-क्रमों-वर्ग शिक्षण जाँच, प्रश्नपत्रों के बनाने और जाँचने, गृहकार्य आदि मे समाप्त हो जाता है। उनके लिए समय ही नही बचता कि वे अपने आप सोचकर अपने प्रश्न तैयार करें और स्वयप्रेरित दिशा मे आगे बढने का प्रयास कर सकें। जब एक छात्र अपने महाविद्यालय से बाहर आता है तो उसके पास आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक क्षेत्र मे कोई चीज ऐसी नहीं होती जिसे वह अपनी कह सके। वह अनुभव करता है कि उसे बने-बनाये मार्ग पर चलने और निर्भर रहने मात्र की शिक्षा मिली है। गाधीजी विश्वविद्यालय से जिस प्रकार के छात्र की अपेक्षा रखते थे यह उस प्रकार का छात्र नहीं है। विनोबाजी के स्वावलम्बन के विचार मे विचार और मूल्यो के क्षेत्र की आत्मनिर्भरता समाविष्ट है।

हमारे शिक्षक और छात्रो को सत्य पर आरूढ रहने मे मदद मिलनी चाहिए, चाहे उसके लिए जो भुगतना पडे। जो विश्वविद्यालय सोचता है कि दूसरे लोग उसके लिए चिन्तन करें और इस प्रकार उधार लिये गये सत्य पर सन्तुष्ट हो जाता है वह एक मौन क्रान्ति के स्रोत के रूप मे प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकता। विश्वविद्यालय को स्वतंत्र चिंतन करने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए संकल्पित होना चाहिए।

लंदन में गांधी शताब्दी वर्ष के उपलक्ष मे भाषण करते हुए होरेस एलेक्जेंडर ने गांधीजी का उद्धरण देते हुए कहा कि जब सन् १९३१ मे गांधीजी से पूछा गया कि वे भारत के करोड़ों मूक लोगों का प्रतिनिधि होने का कैसे दावा करते थे, तो उन्होंने सीधेसादे ढंग से उत्तर दिया था—"लोगो की सेवा करने के अधिकार से'।–जो विश्वविद्यालय गांधीजी के कदमो पर चलना चाहता है उसके लिए यह एक उत्तम वाक्य हो सकता है। सत्ता के लिए नही, ज्ञान के लिए नहीं, समृद्धि के लिए नहीं, बस सेवा के लिए। जिस प्रकार गांधीजी ने राजनीति पर अध्यात्म का रंग चढाने की कोशिश की उसी तरह हमे शिक्षा को अध्यात्मोन्मुख बनाना है। प्राचीन काल मे इसकी *आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उस समय शिक्षा और* नीति एक-दूसरे मे गुंथे हुए थे, लेकिन आज जब कि शिक्षा पर भौतिक शक्तियों का प्रहार हो रहा है उस समय गम्भीर नव-चिंतन की आवश्यकता है। जब तक दूसरे विश्वविद्यालय आगे नही आते तब तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नही है। जिस प्रकार हमने अणुशक्तिसम्पन्न राष्ट्रों की प्रतीक्षा न करके आणविक नि शस्त्रीकरण की नीति की एकतरफा घोषणा की उसी प्रकार हमे जीवन के नये दृष्टिकोण के प्रवाह मे भी कूद पडना होगा। अकेली आवाज अपने आप मे एक नैतिक शक्ति और विशिष्टता का स्रोत है। अंग्रेजी से भाषान्तर—रुद्रभान

श्री के० एस० आचार्लू, मन्त्री—नयी तालीम समिति, न० ८०, टेम्पल रोड, मल्लेश्वरम्, बगलोर–३

गणित-शिक्षण : कुछ व्यावहारिक सुझाव

श्याममनोहर व्यास

विद्यालय में भिन्न-भिन्न विषयों का पठन पाठन होता है; प्रत्येक विषय का अपना-अपना अस्तित्व तथा महत्त्व होता है। इसके साथ-ही-साथ प्रत्येक विषय को पाठ्यक्रम में रखने का एक ध्येय होता है।

विषय का महत्त्व उसके द्वारा प्राप्त किये जानेवाले सामान्य उद्देश्यों व विशिष्ट उद्देश्यो से जाना जा सकता है।

प्रत्येक उद्देश्य के अन्तर्गत कुछ प्राप्य उद्देश्य (objectives) भी आते हैं; विषय को पढाने का एक लक्ष्य होता है, जिसकी परीक्षा बालकों के विद्यालय छोड़ने के पश्चात् होती है। यह सामान्य अनुभव है कि अधिकतर विद्यार्थी गणित मे रुचि कम लेते हैं। अन्य विषयों की अपेक्षा इस विषय मे उनकी उदासीनता स्पष्ट दिखाई देती है। इसके परिणामस्वरूप अध्यापन से जिन उद्देश्यों की प्राप्ति की अपेक्षा की जाती है वे प्राप्त नही हो पाते।

बोर्ड की परीक्षाओं में भी छात्र अधिकतर गणित विषय मे ही असफल होते हैं।

इसका मुख्य कारण स्वय विषय नहीं है, वरन् उचित पाठ्यक्रम व उपयुक्त शिक्षण-विधियों का अभाव है।

प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री वैलर्ड महोदय के कथनानुसार गणित का शिक्षण जो एक सुखदायक प्रक्रिया होनी चाहिए थी, एक भयानक स्वप्न बन गयी है। जब कभी अध्यापक किसी एक प्रश्न का हल छात्रों को देता है तो वे समझते हैं कि यह कार्य उन पर एक भारस्वरूप है और जबरन् थोपा हुआ है। एक बार मैं ग्यारहवीं कक्षा में बीजगणित के अन्तर्गत द्विपद प्रमेय (Binomial Theorem) पढा रहा था।

छात्रों को सूत्र समझने में कठिनाई हो रही थी।

एक छात्र पूछ बैठा—"सर! इस प्रमेय का हमारे जीवन में क्या उपयोग है? इतनी माथा-पच्ची करने पर भी यह हमारी समझ मे ठीक से नहीं आ रहा है, तो ऐसे प्रकरण को विषय मे रखने से क्या लाभ है?"

छात्र का यह प्रश्न वास्तव मे विचारणीय है। जब तक गणित का पाठ्यक्रम जीवनोपयोगी नहीं होगा, यह विषय रुचिकर नही बन सकता। अभी तक गणित केवल प्रतिभाशाली छात्रों तक ही रुचि का विषय रहा है।

यहाँ यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि कई ऐसे प्रकरण भी विषय के अन्तर्गत आते हैं, जिनके अध्ययन में छात्र रुचि व आनन्द का अनुभव करते हैं।

उदाहरण के लिए, ग्यारहवीं कक्षा की बीज गणित (Higher Algebra) का "क्रमचय एवं संचय" (Permutations and Combinations) का अध्याय लें।

यह प्रकरण (Topic) छात्रों के व्यावहारिक जीवन से काफी सम्बन्धित है।

जैसे, तीन कुर्सियो पर तीन छात्र कितने प्रकार से बैठाये जा सकते हैं—

यथा—$3P_3 = \angle^3 = 3 \times 2 \times 1 = 6$ प्रकार से।

प्रयोगात्मक रूप से मैंने तीन कुर्सियाँ लीं और तीन छात्रों को उन पर बिठा दिया।

फिर उन्हें कहा गया कि वे स्थान-परिवर्तन कर कितनी प्रकार से उन पर बैठ सकते हैं।

थोड़ी देर के उपरान्त छात्रो ने स्वयं इस प्रश्न का हल निकाल लिया।

यह भी सत्य है कि प्रश्न के हल करने की विधि बदल देने से भी छात्र अवश्य विषय मे रुचि लेने लगते हैं।

अध्यापक को सामान्य व प्राप्य उद्देश्य सामने रखकर अध्यापन-कार्य प्रारम्भ करना चाहिए।

सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति

गणित-शिक्षण के लिए निम्न सामान्य उद्देश्य हैं :

(१) सांस्कृतिक (Cultural)

(२) अनुशासनिक (Disciplinary)

(३) उपयोगिता (Utilitarian)

गणित के अध्ययन से छात्रों में एकाग्रता, तर्कशक्ति, चिन्तन, समस्याओं को हल करने की क्षमता, आत्मविश्वास की भावना, निश्चय-कथन, सम्बन्धों के सामान्यीकरण की क्षमता एवं स्पष्टवादिता आदि गुणों का विकास होता है। शिक्षा के स्थानान्तरण (Transfer of Training) द्वारा उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव है।

गणित का प्रयोगात्मक उद्देश्य बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आधुनिक विज्ञान का आधार गणित ही है।

विज्ञान के प्रत्येक प्रयोगात्मक कार्य में नापने, तौलने आदि का बोध गणित के ही ज्ञान के द्वारा सम्भव है।

गणित-शिक्षण के प्राप्य उद्देश्य

प्रत्येक उद्देश्य के प्राप्त करने में बहुत-से प्राप्य उद्देश्यों की आवश्यकता होती है।

अध्यापक को किसी विशेष उद्देश्य (Aim) हेतु कुछ प्राप्य उद्देश्य (Objectives) को ध्यान में रखना चाहिए। कक्षा में किसी उप-विषय को पढाते समय अध्यापक को एक प्राप्य उद्देश्य सम्मुख रखना पड़ता है।

प्रत्येक प्राप्य उद्देश्य की परीक्षा के लिए हमको पाठ्य-वस्तु तथा बालक के व्यवहार मे परिवर्तन को ध्यान मे रखना होता है।

परीक्षा लिखित और मौखिक, दोनों रूप से ली जा सकती है।

यदि बालक को इकाई का ज्ञान है तो वह उसे दैनिक जीवन मे प्रयोग मे ला सकता है।

व्यवहार-परिवर्तन

गणित अध्ययन से छात्रों मे निम्न व्यवहार-परिवर्तन की अपेक्षा की जा सकती है—

(१) बालक सही रूप मे लम्बाई, भार, आयतन एवं क्षेत्रफल को माप सकता है।

(२) वह एक ही प्रकार की वस्तुओं तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं के मूल्य की तुलना कर सकता है।

(३) लाभ-हानि, औसत, ब्याज, प्रतिशत, साझा एवं पारिवारिक बजट आदि अंकगणित के प्रकरणों का दैनिक जीवन में छात्र उपयोग कर सकता है।

(४) समस्याओं को हल करने की क्षमता छात्र मे उत्पन्न होती है।

(५) रेखाचित्रों द्वारा कई प्रकार के आंकड़े वह एकत्रित कर सकता है। तापक्रम, कक्षा के छात्रों की लम्बाई-भार एवं विद्यालय के परीक्षाफल का रेखाचित्र खींचकर अपनी दक्षता (Skill) को विकसित कर सकता है।

स्तर के अनुसार शिक्षण

थार्नडाइक महोदय का कथन है कि एक ही कक्षा मे उच्चकोटि तथा निम्न-कोटि के बालकों मे अन्तर होता है। उच्चकोटि के बालक एक ही समय में निम्न-कोटि के बालकों से ६ गुना अधिक सीखते हैं या एक ही कार्य को उच्च बालक निम्न की अपेक्षा $\frac{1}{6}$ समय में सीख सकते हैं।

इसलिए शिक्षक के पढाने की विधि इस तरह की होनी चाहिए, कि उससे बालकों की शक्ति का विकास किया जा सके।

इसके साथ-साथ यह बात भी ध्यान देने की है कि एक ही विधि द्वारा सम्पूर्ण विषय को समान दक्षता (Efficiency) से नहीं पढ़ाया जा सकता है।

गणित-अध्यापन में भिन्न भिन्न स्तर के बालकों पर भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

कक्षा १ से ८वी तक आगमन विधि (Inductive method) व माध्यमिक कक्षाओं के लिए निगमन विधि (Deductive method) उपयुक्त रहती है।

आगमन विधि मे विशेष से सामान्य की ओर तथा स्थूल (Concrete) से सूक्ष्म (Abstract) की ओर चला जाता है।

इसमे छात्रों की ही सहायता से शिक्षक कोई नियम निकालता है। जैसे, त्रिभुज के तीनो कोणों का योग १८० अशो के बराबर होता है।

छोटी कक्षा के छात्र स्वय अपनी पुस्तिकाओ मे त्रिभुज बनायेंगे और उनके तीनों कोणो को नापकर यह निष्कर्ष निकालेंगे कि उनका योग १८० अंश के बराबर होता है। निगमन-विधि आगमन विधि के ठीक विपरीत है।

इसमें शिक्षक कोई सूत्र छात्रों को बता देता है और छात्र उस सूत्र की सहायता से गणित के प्रश्न हल करते हैं। शिक्षक यदि सूत्र बालको की सहायता से ही निकालें तो यह विधि माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

जैसे •

$$\text{साधारण ब्याज} = \frac{\text{दर} \times \text{समय} \times \text{मूलधन}}{१००}$$

वैसे, छोटी कक्षाओं में ऐकिक नियम से भी साधारण ब्याज प्राप्त किया जाता है, पर छात्र के व्यावहारिक जीवन मे उसका उपयोग नहीं होगा।

पोस्टआफिस, बैंक या अन्यत्र कहीं यदि वह ऐकिक नियम से ब्याज निकालने बैठेगा तो अव्यावहारिक होगा। इसके लिए सूत्र का उपयोग ही उचित है।

समय और कार्य के प्रश्नों मे भी अव्यावहारिकता नहीं होनी चाहिए।

गणित-शिक्षक प्राय· लिखते हैं

२ पुरुष = ३ स्त्रियों के।

इस वाक्य को देखकर कोमल बुद्धि बालक एक बार चकरा-सा जाता है। भला पुरुष स्त्री के बराबर कैसे हो सकता है ? अध्यापक को पूरी तरह से समझाकर श्यामपट्ट पर इस प्रकार लिखना चाहिए---

२ पुरुषों के कार्य की क्षमता = ३ स्त्रियों के कार्य की क्षमता के। बीजगणित के उपयोग का ज्ञान भी छात्रों को दिया जाना चाहिए। समीकरण को समस्या के रूप में लेकर ही हल किया जाना चाहिए।

चिह्न का ज्ञान भी उदाहरण देकर छात्रों को समझाना चाहिए।

+ × + = +

− × − = +

ऋण को ऋण से गुणा करने पर धनात्मक राशि क्यों हो जाती है? यह प्रश्न अक्सर छात्र अध्यापक से पूछ बैठते हैं। शिक्षक यह कहकर उसकी जिज्ञासा शान्त कर देते हैं कि यह बीजगणित का नियम है।

यदि शिक्षक थोड़ा घर पर विषय का अध्ययन करें तो इसे उदाहरण देकर बालकों को समझा सकते हैं।

रेखाचित्र के खींचने में छात्र काफी रुचि लेते हैं। इसके द्वारा छात्र समीकरण सम्बन्धी कई प्रश्न भी आसानी से हल कर सकते हैं। छात्रों के दैनिक जीवन में भी रेखाचित्रों को खींचने का बड़ा महत्व है।

रेखागणित के अध्ययन में विश्लेषण-विधि (Analytic Method) अधिक उपयुक्त है।

सेकण्डरी के ऐच्छिक गणित के छात्रों को ५४ प्रमेय व उन पर आधारित अनेक उपप्रमेय सिद्ध करने होते हैं।

यदि छात्र स्वयं के तर्क से किसी प्रमेय को हल करते हैं तो वह प्रमेय उन्हें याद भी हो जाता है और उनकी तर्कशक्ति (Reasoning Power) भी विकसित होती है।

प्रमेय (Theorem) को रटाने की जो परिपाटी विद्यालयों में चल रही है वह छात्रों में रेखागणित के प्रति अरुचि ही उत्पन्न करती है।

यह सही है कि विश्लेषण-विधि को काम में लाने से पाठ्यक्रम पूरा करने में समय अधिक लगेगा; पर विषय को उपयोगी बनाने के लिए यह करना ही होगा।

त्रिभुज के प्रमेयों की सहायता से पेड़ की ऊँचाई नापकर; नदी की चौड़ाई मापकर एवं विद्यालय की दीवारों का क्षेत्रफल निकालकर विषय को रुचिकर बनाया जा सकता है।

त्रिकोणमिति के अन्तर्गत 'ऊँचाई और दूरी' का अध्याय भी छात्रों को प्रयोगात्मक कार्य में लगा सकता है।

आवश्यकता पड़ने पर आगमन-विधि (Inductive method) का भी बड़ी कक्षाओं में उपयोग किया जाना चाहिए।

कुछ अन्य सुझाव

शालाओं में गणित-अध्यापन के लिए वांछनीय सामग्री पूरी तरह से उपलब्ध होना चाहिए।

रंगीन चाक, स्केच, ज्यामितीय मॉडल, अच्छे श्यामपट्ट आदि इस विषय के लिए आवश्यक सामग्री मानी जाती है। गणित विषय की पर्याप्त पुस्तकें व पत्रिकाएँ पुस्तकालय मे उपलब्ध होनी चाहिए।

S M S G (School Mathematics Study Group) की गणित की पुस्तकों का होना प्रत्येक विद्यालय मे आवश्यक है।

परीक्षा में प्रश्नपत्र भी इस प्रकार का निर्मित किया जाना चाहिए कि औसत छात्र २½ या ३ घण्टे मे सभी प्रश्नो को हल कर सके।

तीस मिनट के समय मे २४ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हल करने होते हैं। गणित के छात्रों को प्रश्न हल करके फिर सही उत्तर खोजना होता है, इसलिए प्रश्न ऐसे दिये जाने चाहिए जो निर्धारित समय मे हल किये जा सकें। शिक्षा-आयोग के विचार गणित के अध्ययन तथा अध्यापन के बारे मे काफी आशाजनक एव उत्साहवर्द्धक है। आयोग ने लिखा है :

"आज के वैज्ञानिक युग मे गणित का महत्त्व बढ़ गया है तथा यह आवश्यक है कि इस विषय की आधारशिक्षा विद्यालयो मे ठीक तरह से रखी जाय।

शालाओं मे गणित को अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यॉमिति के विभागो मे न पढ़ाया जाय। ऐसा करने से अध्यापन मे अनावश्यक आवृत्ति होती है।

अतएव यह आवश्यक है कि इन विषयो को "संश्लिष्ट (Integrated) रूप से पढ़ाया जाय।"

आयोग का विचार है कि सम्पूर्ण अंकगणित का पाठ्यक्रम प्राइमरी शिक्षा-स्तर पर समाप्त हो जाना चाहिए।

नवीन पद्धतियों से गणित का अध्ययन किया जाना चाहिए।

S M S G द्वारा प्रतिपादित पद्धतियाँ अमेरिका के विद्यालयो मे काफी उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

पाठ्य-पुस्तकें भी इसी पद्धति पर लिखी जानी चाहिए। ज्यॉमिति तथा संख्याओं की क्रियाओ मे यह पद्धति काफी उपयोगी सिद्ध हुई है।

गणित का नया पाठ्यक्रम बनाकर गणित के अध्यापन के स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है।

शिक्षा-विभाग के अधिकारीगण गणित विषय के विशेषज्ञों की एक समिति बनाकर यह कार्य सम्पन्न कर सकते हैं।

गणित के नये आयामो को दृष्टिगत रखते हुए पाठ्यक्रम मे पर्याप्त परिवर्तन करना होगा।

अन्तरिक्ष-यात्रा, राकेट-गति एव नवीन आविष्कारो को भी गणित के पाठ्यक्रम से सम्बन्धित करना होगा।

विज्ञान व गणित के अध्यापन के लिए आवश्यक सभी सामग्री विद्यालयों म जुटायी जानी चाहिए।

इन विषयों का महत्त्व राष्ट्रीय स्तर पर सोचा जाना चाहिए।

आयोग ने लिखा है

We lay great emphasis on making science an important element in school curriculum We therefore recommend that science and mathematics should be taught on a compulsory basis to all pupils as a part of general education during the first ten years of schooling

विश्व मे विज्ञान की जो अभूतपूर्व उन्नति हुई है उसका बहुत कुछ श्रेय गणित को ही दिया जा सकता है।

गणित के माध्यम से ही गुणात्मक तथ्यो को परिमाणात्मक रूप देना सम्भव हो सका है।

तकनीकी उन्नति मुख्यत गणित पर ही निर्भर है।

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की पुरानी शिक्षण विधियाँ अब उपयोगी नहीं रह गयी हैं उनमे आमूल परिवतन भी आवश्यक है। यदि गणित मे भी विज्ञान की अन्य शाखाओ के समान प्रयोगात्मक परीक्षा हो तो विषय का महत्त्व काफी बढ सकता है और विषय छात्रो के लिए रुचिकर हो सकता है। गणित मे लिखित कार्य का बडा महत्त्व है उस ओर भी पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। शिक्षक द्वारा उचित रूप से छात्रों की अशुद्धियो का सशोधन किया जाना चाहिए।

गणित के पाठ्यक्रम मे सुधार व नवीन अध्यापन प्रणालियों से इस विषय को रुचिप्रद बनाया जा सकता है और गिरते हुए बोड के परीक्षा फल को रोका जा सकता है।■

श्री श्यामनमनोहर व्यास, वरिष्ठ अध्यापक (गणित) १७ पचवटी, उदयपुर (राजस्थान)

निरक्षरता निवारण

रमेशचन्द्र पन्त

१४-४५ आयुवर्ग के बीच भारत में निरक्षर व्यक्तियों की संख्या पन्द्रह करोड़ आँकी जा रही है। हाल ही में साक्षरता प्रसार के सम्बन्ध में बोलते हुए केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री वी० के० आर० वी० राव ने देश के शिक्षित समाज को सलाह दी कि हर पढ़ा लिखा व्यक्ति एक निरक्षर को साक्षर करे। आदर्श के लिए यह उत्तम है। निरक्षरता के निवारण में ही भारत की समृद्धि व शान्ति निहित है। कुछ महीने पहले भारतीय सांख्यिकी ने प्रसारित किया था कि देश में लगभग ३५ करोड़ अशिक्षित हैं। इस संख्या में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की परिधि में न आ पानेवाले बच्चे व ४५ वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्तियों को भी सम्मिलित किया गया था। इस प्रकार हमारे देश में श्रमयोग्य १५ करोड़ व बालक वृद्ध २० करोड़ निरक्षरों को साक्षर करने की समस्या है। इस उद्देश्य में कृतकार्य होने के लिए युद्धस्तर पर प्रयास करने की बात बहुत से समाचार-पत्रों ने उठायी है। बात मौके की है। निरक्षरता निवारण की समस्या के कुछ समाधान प्रस्तुत हैं।

सा विद्या या विमुक्तये

विद्या वह जो विमुक्त करती है। विमुक्ति किससे? अज्ञान अन्धकार, गरीबी संशय और रोग से। जिजीविषा को सातत्य देने और उत्साहपूर्ण जीवन जीने के लिए विद्या एक कारगर साधन है। इस कलात्मक साधन का देश, काल व समाज के अनुकूल उपयोग समसामयिक मेधावियों का कार्य है। विश्व इतिहास की एक झलक विद्या के विविध स्वरूपों और विद्यार्जन की शैलियों का एक विशाल संग्रहालय है। प्रकृति विद्यार्जन का प्रथम पद है। प्रकृति से ही प्राणी जिजीविषा की प्रेरणा लेता है। यही प्रेरणा उसे आगे बढ़ने को प्रेरित करती है वह नूतन ज्ञानकोष का आविष्कार करता है। अनुभूतियों का संचय और उनका सामयिक उपयोग विद्या व ज्ञानार्जन के क्षेत्र की सबसे बड़ी धरोहर है। भारत में ज्ञान विज्ञान व विद्या का प्रसार कोई नया काम व नया आविष्कार नहीं है। सृष्टि के प्रारम्भ से मनुष्य विद्यार्जन के नये-नये आयाम विविध कलाओं में खोजता रहा है। विगत ५ हजार वर्षों का भारतीय ज्ञात इतिहास परम्पराओं व उत्थान पतनों का जीवन्त उदाहरण है। इस अवधि में भारत को उत्थान-पतनों का एक सिलसिलेवार अनुभव हुआ, जिसने इस देश के ऐतिहासिक अनुशीलन को भी विविध आयाम

दिये हैं। राजनैतिक व सामाजिक झंझावातों से निरन्तर लोहा लेनेवाला भारत पिछले हजारों वर्षों से अपने अस्तित्व की सांस्कृतिक थाती को संजोये हुए है। विदेशी आक्रमणों के बावजूद भारत ने समग्र सांस्कृतिकता का परिवेश बनाये रखा है। सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिलाचार्य का देश भारत, सांस्कृतिक विरासत में एक तर्कवान और संशोधन व मिश्रणप्रधान संस्कृति के प्रति सदैव तर्कगम्य बुद्धि अपनाता रहा है। वर्तानी राज ने भारत की इस पारम्परिक सात्विकता को शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करके इसे पूर्ण औपनिवेशिक बनाना चाहा। उनका विचार था कि भारत की पारम्परिकता नूतन शिक्षा के क्रमबद्ध विकास के अपग्रह में स्वयं ही मृतप्राय हो जायेगी, परन्तु स्रोत परम्परावाले भारत ने अपनी परम्परा से आक्रांताओं को भी प्रभावित किया, यद्यपि संघर्ष की इस कहानी में भारतीय बहुश्रुत पारम्पर्य को एक जबरदस्त धक्का लगा, परन्तु भारतीय मनीषा ने अपना बहुश्रुत पारम्पर्य पूर्ण निस्तेज न होने दिया, वह बावजूद बाधाओं के आज भी अस्तित्ववान है।

निरक्षर बहुश्रुत

इस देश का पारम्पर्य स्रोत शिक्षण का रहा है। दो-तिहाई आबादी के निरक्षर रहने के बावजूद भारतीय लोकतंत्र ने पिछले दो दशकों में पंचायती लोकराज की भूमिका एक सम्मानजनक तरीके से निबाही है। यदि भारत का पारम्परिक पंचायत तंत्र वर्तानी राज के दो सौ वर्षों में विश्रृङ्खलित न हो गया होता तो भारतीय गणतंत्र को सातत्य खंडन का दोष नहीं व्यापता, सातत्य-खंडन के बावजूद देश को बहुश्रुत परम्परा को नैरन्तरावृत करना सम्भव नहीं था। आजादी के उपरान्त उस सातत्य-स्रोत परम्परा को एक प्रभावशाली पोषण मिलना चाहिए था, जो आर्थिक विकास के नाम पर सतत उपेक्षित रहा। स्रोत परम्परा सदैव राष्ट्र या समाज की ऊर्जा होती है। इस ऊर्जा के बिना इतिहास का चक्र गतिमान नहीं हो पाता। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय इतिहास-चक्र कुंठाओं के वातावरण में रहने का आदी बनता गया है, देश में समाजवाद व धर्म-निरपेक्षता की अलख तो जगायी गयी परन्तु उसे शाश्वत सामाजिक मूल्य दिये जाने के बारे में देश का नेतृत्व-समाज लगभग असफल रहा। समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त ने देश में पारम्पर्य विमुख विचारधारा को बढ़ावा तो दिया, परन्तु पारम्पर्य निवृत्ति से हुई रिक्ति को भरने का कोई कारगर उपाय नहीं हो सका। परम्परागत समाज में नयी आकांक्षाएँ जागृत होने से देश के समग्र समाज में नवचेतना तो जरूर आयी, पर उस चेतना का क्रमबद्ध और सांगोपांग विस्तार होना अभी भी शेष रह गया।

स्वातन्त्र्योत्तर विराममान अनिश्चय ने देश में नवआकांक्षाओं के साथ राजनैतिक बढ़ावों और पद प्रतिष्ठा की होड़ को बढ़ावा दिया है। इस होड़ में देश के औपनिवेशिक शासनतन्त्र के ढाँचे ने वैषम्य अग्नि में घी की आहुति का काम किया। लोक-आकांक्षाओं के नवजागरण के उपरान्त तत्परिवर्तन की एक गतिशील प्रक्रिया को उपयोग में लाया जाना चाहिए था। नियम उपनियमों आदि की बाढ़ ने राजतन्त्र व समाजतन्त्र को इतना कस डाला है कि स्वेच्छित संगठन और विचार स्वातन्त्र्य के क्षेत्र में भयावह रिक्ति प्रवेश कर गयी है। यही रिक्ति हमारे सारे राष्ट्र को घुन की तरह खाये जा रही है। जीवनस्तर के उठने की आकांक्षा ने आर्थिक, सामाजिक व नैतिक मूल्यों को ताक में रख दिया है। परिणाम स्वरूप आज देश में निष्करुण, क्षीण और क्षुधित तृषित वर्ग का बोलबाला हो रहा है। व्यक्ति सामाजिक एवं मानवीय मर्यादाओं का उल्लेख अपने प्रतिद्वन्द्वी के लिए जिस ऊँचे स्तर से करता है, जब उसको स्वयं पहल करनी होती है वह उन सारे सामाजिक दोषों को अंगीकार करता है जिनकी आलोचना करते वह थकता नहीं। यही देश की समग्र बीमारी का मूल स्रोत है इस पर पूरे वेग से प्रहार करना आज की महत्तम आवश्यकता है।

देश में काम-धन्धों और उनके लिए उपलब्ध कच्चे माल की कोई कमी नहीं है। भारत की रत्नगर्भा वसुन्धरा अपने लालों का भरण-पोषण करने की क्षमता रखती है। भारतजननी के लालों की ही यह अकमण्यता है कि वे आसन्न कर्म को न देखते हुए स्वर्गलोक में नक्षत्रवासी जीवन-यापन के दिवास्वप्न देखते हैं। हमारे देश में आज वैभव का आदर्श अमरीकी समाज माना जाता है। उद्यमशीलता के नाम पर हम दीर्घसूत्रिता व आलस्य की साक्षात मूर्ति हैं। दूसरी ओर आलीशान महलों और जीवन की समस्त उपलब्ध सुविधाओं का उपभोग करके हम यह कल्पना करते हैं कि जिस तरह रूस में लेनिन ने बोल्शेविक क्रान्ति की, उसी किस्म की क्रान्ति से हम अपने देश में एक सुखद व समृद्ध समाज-तन्त्र कायम करेंगे। पर हम यह भूल जाते हैं कि हरेक देश में परिस्थिति व इतिहास-चक्र के अनुकूल ही सुधारकों व महापुरुषों का उद्भव होता है। भारत में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में देश को स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद व महात्मा गांधी के रूप में तीन विभूतियाँ मिलीं। इन विभूतियों ने अपने शरीरयात्रा काल में निदिध्यासन व अनवरत श्रम से इस देश को एक जागृत राष्ट्र बनाने का जीवंत प्रयास किया। हम उनके उपदेशों का अनुसरण करने के बजाय मार्क्स दर्शन और लेनिन के कर्तृत्व-चलित समाजवाद का आदर्श निश्चित किये हुए हैं। हम यह भूल गये हैं कि

क्रांतिवीर लेनिन ने बोलशेविक क्राति के लिए किस सक्रियता से काम किया और मार्क्स-दर्शन को स्वभूमि के अनुकूल क्रियान्वित किया। लेनिन ने स्वधर्म का शानदार निर्वाह किया, पर भारत के अनेक मनीषी लेनिन का नाम तो जपते हैं, पर लेनिन की क्रियाविधि अपनाने म कतराते हैं तथा लेनिन की सफलता का मूल रहस्य जानने के बजाय उस क्रांतिजनित लाभो का ही उल्लेख करते हैं। उन्हे भारत की धारा के परिप्रेक्ष्य म नहीं आंकते।

बेरोजगारी आज भारत की तीन बडी समस्याओ मे से एक है। दूसरी दो हैं— निरक्षरता व बढती हुई आबादी। ये तीनों समस्याएँ एक दूसरे से जुडी हुई हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग मे जो हास्यास्पद स्थिति हुई है वह नौकरीमूलक मन स्थिति और व्यावसायिक तथा उद्यम के क्षेत्र मे मांग मूलक ट्रेड यूनियनवाद का जन्म व उत्कर्ष है। देश की बहुसख्य जनता का मानस उद्यम व परिश्रमरहित उपलब्धियों की ओर शनै शनै खिंचता जा रहा है। राज्य सरकारें एक के बाद एक नियंत्रित लाटरियाँ सचालित कर लोक आकाक्षा को मुखरित कर रही हैं। कम-से-कम लागत पर बिना मेहनत किये ज्यादा-से-ज्यादा अर्जित करना आज का आर्थिक लक्ष्य रह गया है। दूसरे शब्दो मे आज हमारा सारा समाजतत्र ताश के पत्तों का महल और धूर्त-बाजीगरी का प्रदर्शन स्थल मात्र रह गया है। नाई धोबी, गडेरिया चमकार, किसान, पुरोहित व गाँव के बनिया आदि सभी के बच्चे डिग्रियों के पीछे हैं। प्रत्येक माता पिता अपने बच्चों को ऊँची-से-ऊची शिक्षा व डिग्री दिलाकर उसे उच्च पदवी पर आसीन देखना चाहता है। शिक्षित युवको की नजर सरकारी नौकरियो की ओर है। सरकारी नौकरी आज सोने के अंडे देनेवाली मुर्गी की तरह मानी जाती है। देश के शासकों (राजनीतिज्ञों व नौकरशाहों) की पद प्रतिष्ठा व विशेषाधिकार जनसामान्य से बहुत ऊँची श्रणी में हैं। जनसामान्य की अधिकारहीन उत्तरदायिता का विवरण व जनसामान्य की हीनता का उद्घोष महाराष्ट्र के भूतपूर्व राज्यपाल व भारत के प्रथम प्रधानमत्री के अभिन्न मित्र श्रीप्रकाशजी ने अपने कतिपय लेखो मे व्यक्त किया है। देश मे बढ रही अव्यवस्था व सामाजिक सामजस्यहीनता का कारण ही शासक व शासितो मे भयावह अलगाव है। यही लोकतत्र की दुखती रग है। इसका निवारण तभी हो सकता है जब देश के विपन्न सम्पन्न व अभिजात्य-निरक्षर मे एक कारगर सवाद कायम किया जाय। आज शासक पूंजीवान और दूसरे विशेषाधिकारवाले वर्ग जनसमान्य व विपन्न की उपेक्षा कर रहे हैं उसे ललचा रहे हैं परिणामस्वरूप शिक्षित व निरक्षर बेरोजगारो के संगम से एक नया वर्ग उदय हो रहा है नक्सालवादियो का। नक्सालवाद का उदय ही

मौजूदा समाज-व्यवस्था म आयी विकृति की परिणति है। जरूरत इस बात की है कि शिक्षित निरक्षर के इस मिलन को भारतीय परिवेश मे सजोया जाय और देश मे एक *देहाती सामाजिक उत्कर्ष दल कायम किया जाय।*

साधारिक साक्षरता

हमारे विश्वविद्यालय, तकनीकी शिक्षा सस्थान और विद्यामदिर आज स्नातको व तकनीशियनो को तैयार करके समाज को सौंप रहे हैं। विद्या-केन्द्रो व समाज के बीच सम्यक् सामजस्य न होने से समाज उन नौनिहालो का सही व सोद्देश्य उपयोग नही कर पा रहा है। नतीजा यह है कि हमारे यहाँ जीवन के सभी क्षेत्रों मे आपाधापी है। इस आपाधापी स विपन्न व कमजोर स्वयं को उपेक्षित महसूस कर रहा है। शिक्षा के केन्द्र भी अपरोक्ष रूप से सामाजिक विपन्नता और परमुखापेक्षिता की ही वृद्धि कर रहे हैं। समितियों व आयोगो के इतने प्रतिवेदन भारत मे हैं कि विश्वविद्यालयपर्यन्त, शिक्षा मे आधारिक सशोधन केवल सगोष्ठी के विषय हैं, क्रियान्वयन करने की उत्सुकता किसी भी क्षेत्र *में नहीं है। यदि मौजूदा उपलब्ध शिक्षित, तकनीशियनो और डिप्लोमा डिग्री* धारियो का सामयिक उपयोग नही किया गया तो बेरोजगारी का दावानल भारत के ढहते हुए औपनिवेशिक शासन-तन्त्र के अस्थिपंजर को लील जायेगा। स्वातन्त्र्योत्तर दो दशाब्दियो म *यथास्थिति को भंजन करने के जो भी उपक्रम जानकारी* अथवा अज्ञान मे हुए उन्होंने यथास्थिति को ही सम्वर्द्धन दिया। लोकतंत्र ने लोक-आकाक्षाओ को जागृत किया, पर विकास व अर्थतंत्र से जागृत लोक-आकाक्षाओं को नये सन्दर्भों व मूल्यो मे वह अपेक्षित परिवर्तन न पाकर कमोवेश पूर्वस्वातन्त्र्य-युग का औपनिवेशिक यथास्थितिवाद ही कायम रहने का उपक्रम हुआ है। परिणामस्वरूप आज भारत के विकास प्रशासन म वे समस्त खामियाँ हैं जो किसी औपनिवेशिक मामलतदारी पुलिस प्रशासन मे होती हैं, साथ ही द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त औपनिवेशिक शासन तत्र मे घुसी हुई अदक्ष वृत्तियो का सारे समाज व शासन-तंत्र में व्यापक प्रभाव है। शासन-तन्त्र में एक विदेशी भाषा का उपयोग जहाँ उच्चस्थ पदाधिकारियो को लाभाश दिलाता है वहीं उसका सम्बन्ध जनसामान्य से टूटता हुआ नजर आ रहा है।

ऐसी विषम परिस्थितियो मे एक ही आशा की किरण दीखती है वह है समाज के विपन्न व कगाल के लिए स्थानीय तौर पर रोजी रोटी की व्यवस्था और भारत के बेकार शिक्षितो व तकनीशियनों को गाँव-समाज को साक्षर करनेवाला आधुनिकतम तात्कालिक या सापेक्ष रोजगार देने का प्रयास करना। हमारे देश में परिवार नियोजन, *साधारिक साक्षरता और ग्रामोद्योगीकरण का*

जिहरा आयोजन एक मूर्त स्वरूप धारण कर सकता है इसके लिए गाँवों के शिक्षित युवक-युवतियो को गाँवा के ही आसपास उपयुक्त रोजगार देने होंगे। इस समय देश समानतंत्र के तानेबाने को कायम रखने के लिए जरूरी है कि देश के निरक्षर बहुश्रुतपारम्पर्य का लाभार्जन किया जाय। इस लाभार्जन-उपलब्धि के लिए समाज, धर्म खेती-वाडी, परेलू व देहाती उद्योगधंधों और लोककथाओ तथा लोकनृत्य सम्बन्धी प्रौढ साहित्य के द्वारा ग्रामवासी निरक्षरो को साक्षर करना होगा। साक्षरता के कालक्रम में मौजूदा विश्व का नूतन ज्ञान व तकनालाजी सुबोध व सरल भाषा के माध्यम से देहाती दस्तकारो को हृदयगम करानी होगी। यह तभी सम्भव है जब निरक्षरता से जूझने के लिए राष्ट्रीय व प्रादेशिक स्तर पर सम्यक् तालमेल बैठाया जाय। इस प्रकार सर्वोदय और देहाती उद्योगो के कार्यकर्ताओ व ग्रामसेवा के कार्यक्रमो म लगे कार्यकर्ताओ के माध्यम से देश मे साक्षरता-अभियान की पार्श्व सज्जा खड़ी की जा सकती है।

मूर्द्धन्य पार्श्व सज्जा

आज भारत का देहात मेधा के अभाव के दौर-दौरे से गुजर रहा है। गाँव का शिक्षित युवा तो गाँव से खिसक रहा ही है पर निरक्षर ग्रामीण भी मजदूरी की तलाश मे शहरो की तरफ भाग रहा है। शहर मे उसे अन्यावधि प्रसार कार्यक्रमों के तहत मजदूरी जीविका मिल तो जाती है, पर उसम एक नैराश्य व ईर्ष्या का वातावरण उदय होता है। शहर की जिन्दगी उसे गाँव की गरीबी के समानान्तर असमानता, सुलभ जीवन हीनभाव और आर्थिक पगुता के चक्के मे दल देती है। उसका तन ही नहीं, मन भी बीमार हो जाता है। यह बीमारी भारत के शहरो मे रिक्शा खीचनेवाले विपन्न से लेकर फैक्टरियो व मिलों मे काम करनेवाले मजदूरो मे देखी जा सकती है। वे अपना स्वच्छ हवा-पानीवाला गाँव का घर छोडकर 'स्लम' मे रहने शहरो मे आते हैं। देश मे बढ़ रही अराजकता के पौदघर इन झुग्गी-झोपडियो के अन्दर ही छिपे हुए हैं। जरूरत इस बात की है कि इन सत्रस्त मानवों से एक सोद्देश्य सवाद सामाजिक सरक्षण के परिवेश मे प्रारम्भ किया जाय। ऐसे उद्देश्यपूर्ण सार्वविक सवाद के माध्यम से ही वह सगठन सज्जा खडी हो सकती है जो भारतीय विपन्न को देश के लिए वह उद्घोष दे सके जो महात्मा गाधी ने १९वी सदी के पूर्वार्द्ध मे दिया। विनोबा ने सन् १९५१ से १९६९ तक लगातार अठारह वर्ष दिया।

भारतीय देहात को आज पार्श्व सज्जा की अतीव आवश्यकता है। इस सज्जा को सगठित करने के लिए देहाती इजीनियर कोर की स्थापना करनी होगी। यह

इंजीनियर कोर सोशल इंजीनियर, मशीनटूल, संचार-इंजीनियर, जल-विद्युत इंजीनियर, नागरिक-सुविधा इंजीनियर और खेती बागवानी इंजीनियर सेवाओं का देहातीकरण करके की जा सकती है। देश के तमाम बेकार इंजीनियरों को ऐसे प्रादेशिक व सार्वदेशिक स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से ग्रामाभिमुख किया जा सकता है जो इस समय रोजगार की खोज में हैं। देश के हर जिले में एक देहाती इंजीनियरी सेवा-क्षेत्र कायम किया जाकर प्रत्येक गाँव के लिए धीरे-धीरे इंजीनियरी सेवाएँ स्थानीय शिक्षण के माध्यम से की जा सकती हैं। ऐसी मानविकी संगठन सज्जा से सोद्देश्य साक्षरता के प्रसार के साथ साथ देश के देहातों से मानव प्रव्रजन को रोका जा सकता है। गाँवों की मेधा का उपयोग गाँवों के उत्थान में किया जा सकता है। इस प्रकार के आयोजन से देश में साक्षरता व नैतिकता का वह वातावरण बन सकता है, जो देश को क्रमिक विकास को पक्तिबद्ध गति दे सकेगा। जरूरत केवल इतनी है कि देश के विकास की प्राथमिकताएँ तय की जायें। साक्षरता-प्रसार निवास स्थान के निकटस्थ स्थान में ही आंशिक या अर्द्धरोजगार का महत्त्व भारत के शिक्षितों, अर्धशिक्षितों व तकनीशियनों को हृदयंगम कराया जाय।

विश्वविद्यालयों का योगदान

देश के विश्व विद्यालय तभी छात्रों को डिप्लोमा या डिग्री दें जब कि स्नातकार्थी एक वर्ष का समाजसेवा-प्रशिक्षण ले। इस अवधि में वह ग्रामीण साक्षरता, ग्रामीण इंजीनियरी आदि जो भी उसका विषय हो उस ज्ञान को गाँववासियों तक पहुँचाने का श्रेयस कार्य करे। विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग की सहायता से देश की निरक्षरता निवारण का एक राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया जाय। ऐसे कार्यक्रम के सम्पादन के लिए ग्रामपंचायतों, क्षेत्र-समितियों व जिला परिषदों का सहयोग लिया जाय। आज जो अतिरिक्त मनुष्य शक्ति अनुत्पादक कार्यों में लगी है उसे निरक्षरता-निवारण के महत्तर कार्य में जोड़ा जाय। पंचायत से पार्लमेंट तक निरक्षरता-निवारण फोरम कायम किये जायें। यह लक्ष्य तय किया जाय कि आगामी २५ वर्षों में ५ वर्ष से छोटी उम्र वर्ग के अलावा एक भी निरक्षर देश में न रहे। साक्षरता का यह लक्ष्य ही भारत की समृद्धि का स्रोत प्राप्त करायेगा इसके लिए पहल यथाशीघ्र की जानी चाहिए।

दूरदर्शी प्रेस

भारतीय प्रेस (अंग्रेजी समाचारपत्रों सहित) साक्षरता-प्रसार में श्रव्य-दृश्य शिक्षण के समानान्तर एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। साक्षरता-प्रसार एवं शिक्षा जहाँ राज्य के उत्तरदायित्व हैं, समाचारपत्र एवं प्रेस अपेक्षाकृत स्वतन्त्र

प्रौढ़ शिक्षा की मशाल कौन थामे ?

नियाज बेग मिर्जा

हमारे देश मे अब तक अनिवार्य शिक्षा का पूर्ण रूप से प्रसार नही हो पाया है। फलस्वरूप अनेक बच्चे शिक्षा के लाभ से वंचित रह जाते हैं। वयस्क होने पर भी उन्हे लिखने, पढने तथा सामान्य गणित का कोई ज्ञान नही होता है, जिससे उनका मानसिक विकास सदैव के *लिए* अवरुद्ध हो जाता है। भारतीय सविधान ने देश के सभी नागरिको को समानता तथा स्वतत्रता के समान अधिकार प्रदान किये हैं, परन्तु अशिक्षित वयस्क उनका समुचित उपयोग नही कर पाते हैं। अशिक्षित वयस्को की इन सभी आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर 'प्रौढ शिक्षा' की व्यवस्था की गयी है जिसका मुख्य उद्देश्य निरक्षर वयस्कों को साक्षर बनाना है।

श्री हुमायूँ कबीर ने भारत म प्रौढ शिक्षा के दो पहलू बताये हैं (१) प्रौढ *साक्षरता, अर्थात् उन प्रौढो की शिक्षा, जिनको विद्यालयों मे कभी भी किसी* प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है, और (२) साक्षर प्रौढो की अनवरत शिक्षा।

निरक्षरता की समस्या

ससार के सबसे घनी जनसख्यावाले देशों मे भारत का स्थान दूसरा है। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसख्या ४३,९०,७२,५८५ थी। १९६७ मे यह सख्या ५१,११,१४,९०० तक पहुंच गयी है। इस विशाल जनसख्या के केवल २३ ७ प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं। पुरुषो मे साक्षरता का *प्रतिशत २४ ९ और स्त्रियो मे साक्षरता का प्रतिशत केवल ७ ९ है। नगरीय* क्षेत्रो मे साक्षरता ३४ ६ प्रतिशत है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों मे यह साक्षरता केवल १२ १ प्रतिशत है।

राजस्थान राज्य की जनसख्या १९६७ मे २,४१,५९,४०० हो गयी जिसमे से ३०,६५,५६८ जनसख्या ही साक्षर है, अर्थात् १५ २ प्रतिशत साक्षरता है। राज्य मे पुरुषों म साक्षरता २३ ७ एवं महिलाओ मे ५.८ प्रतिशत ही है, जो कि वास्तव मे चिन्ता का विषय है।

इन आँकडो से सिद्ध हो जाता है कि हमारे राज्य मे ८४.८ प्रतिशत व्यक्ति अज्ञानता के अन्धकार मे अपना मार्ग टटोल रहे हैं। इस विशाल जनसख्या को किस प्रकार शिक्षा के आलोक मे लाया जाय, यह एक जटिल समस्या है।

कोठारी शिक्षा आयोग १९६४ ६६ ने अपने प्रतिवेदन के १६ वें अनुच्छेद म प्रौढ शिक्षा के महत्व एव आवश्यकता पर बल देते हुए १० वर्ष मे समूल निरक्षरतानिवारण करने हेतु सचेत किया है। उक्त प्रतिवेदन म यह स्पष्ट किया है कि १९७१ तक राष्ट्रीय साक्षरता ६० प्रतिशत एव १९७६ तक ८० प्रतिशत हो जानी चाहिए।

प्रौढ शिक्षा

अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा कार्यक्रम के रूप म कोठारी आयोग ने यह सिफारिश की है कि निरक्षरतारूपी शत्रु से लडने के लिए एक सशक्त, सुनियोजित एव सतर्क सेना को सगठित करने की आवश्यकता है जिसम सभी शिक्षण संस्थाओं के शिक्षक एव विद्यार्थी सम्मिलित हो। अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा कार्यक्रम के अन्तर्गत उच्चतर माध्यमिक, प्राथमिक एव व्यावसायिक विद्यालयो तथा स्नातकोत्तर कक्षाओ तक के छात्रो द्वारा प्रौढो को पढाना आवश्यक रखा जाय। प्रत्येक शिक्षण सस्था को एक सुनिश्चित क्षेत्र मे समूल निरक्षरता निवारण करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाय। उपरोक्त सिफारिशो म यह स्पष्ट किया गया है कि समूल निरक्षरता निवारण कार्यक्रम बहुत ही सुनियोजित ढंग एव पूर्ण तैयारी के साथ प्रारम्भ किया जाय।

अब तक की प्रगति

समाचारपत्रों में कभी-कभी पढने को मिलता है कि आज गढी मे साक्षरता अभियान चलाया गया, भीलूडा और बोलडी मे सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम चला, चला अवश्य परन्तु प्रगति क्या हुई ? जानकारी नहीं मिली है। का फिर झालावाड एवं कोटा जिले मे एक लहर उठी और समूल निरक्षरता निवारण-परियोजना की चहल पहल सुनाई दी। भीलवाडा जिले मे भी प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम काफी धूमधाम के साथ प्रारम्भ किये जाने के समाचार मिले। अभी-अभी समाचार पढने को मिले कि डा० मोहनसिंह मेहता के सचालन एव साक्षरता निकेतन, लखनऊ के सहयोग से सेवा मन्दिर उदयपुर के तत्वावधान मे पचायत समिति बडगाँव के गाँवो के प्रौढो को साक्षर किये जाने की विशाल योजना का शुभारम्भ श्रीमती फिशर द्वारा किया गया है।

लेकिन ये शुभ समाचार तो केवल कुछ ही पचायत समितियों के हैं। राजस्थान मे तो कुल २३२ पंचायत समितियाँ हैं शेष इस कायक्रम के सम्बध मे क्या योजनाएँ बना रही हैं ?

साक्षरता अभियान की जो मशाल डा० मेहता ने बडगाँव पचायत समिति मे

प्रज्वलित की है, इसी तरह सभी पंचायत समितियों में यदि कार्य प्रारम्भ किया जाय तो निःसन्देह कुछ वर्षों में हम साक्षरता के लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं।

लेकिन ऐसा क्यों नहीं हो पा रहा है ?

इस 'क्यों' का उत्तर प्राप्त करने के लिए एवं कारणों की खोज के लिए राजकीय अभिनव प्रशिक्षण केन्द्र, राजसमन्द में आये हुए प्राथमिक विद्यालयों के ७३ अध्यापकों से एक प्रश्नावली भरवाकर अध्ययन किया गया।

जिन शिक्षकों पर अध्ययन किया गया उनमें से ४७.९४ प्र० श० २६-३० आयुवर्ग, ३२.८६ प्र० श० २०-२५ आयुवर्ग १२.३२ प्र० श० ३१-३९ आयुवर्ग एवं ६.८३ प्र० श० ४०-५१ आयुवर्ग के थे। अर्थात् २० से ३० आयुवर्ग के ८०.८० प्र० श० युवक शिक्षक थे जिनमें प्रौढ़ शिक्षा जैसे राष्ट्रीय कार्य करने में रुचि, आस्था एवं निष्ठा होना स्वाभाविक ही है।

प्रौढ़ शिक्षा-कार्य में रुचि

अध्ययन से ज्ञात हुआ कि ९३.१५ प्र० श० अध्यापक प्रौढ़ शिक्षा का कार्य करना चाहते हैं। जब इनसे पूछा गया कि इस कार्य को वे किस प्रकार का कार्य समझते हैं ? जो उत्तर प्राप्त हुए उसमें ४५.२० प्र० श० कर्तव्य, ३०.१३ प्र० श० पुण्य कार्य, १३.६९ प्र० श० भलाई का कार्य एवं १०.९५ प्र० श० ने इसे अतिरिक्त कार्य बताया।।

प्रौढ़ शिक्षण के लिए आवश्यक है कि शिक्षकों को इस कार्यक्रम, शिक्षण पद्धति एवं पाठ्यक्रम के विषय में प्रशिक्षित किया जाय। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि ९७.२१ प्र० श० शिक्षक प्रौढ़ शिक्षण पद्धति में अप्रशिक्षित हैं एवं ९१.७७ प्र० श० अध्यापक प्रौढ़ों के शिक्षण हेतु प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस करते हैं।

प्रौढ़ों को प्रेरित कैसे किया जाय ?

अब तक के अनुभव से ज्ञात होता है कि प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्रों पर प्रौढ़ों की उपस्थिति औसतन १०.१५ की रही है जिसके लिए अध्यापक प्रौढ़ों को, पंचायत समिति पंचायतों को एवं प्रौढ़ समय की अनुकूलता को दोषी ठहराते आये हैं। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि प्रौढ़ शिक्षा हेतु प्रौढ़ों को प्रेरित करने हेतु ५६.१६ प्र० श० सम्पर्क, २६.०२ प्र० श० समझाइश १६.४४ प्र० श० अनिवार्यता एवं १.३८ प्र० श० दण्डित करने के पक्ष में हैं। अतः प्रौढ़ों को प्रेरित करने का सबसे अच्छा तरीका है प्रौढ़ शिक्षा के महत्त्व, आवश्यकता एवं उससे होनेवाले लाभ की जानकारी, सम्पर्क एवं समझाइश से करने पर हमें इकाफी सफलता मिल सकती है।

प्रौढ शिक्षा-केन्द्र हेतु उपयुक्त स्थान, आवश्यक सामग्री एव मार्गदर्शन का होना बहुत आवश्यक है। ५३·४२ प्र० श० शिक्षकों ने राय दी कि शालाभवन प्रौढ शिक्षा केन्द्र हेतु उपयुक्त स्थान है एवं ३८·३५ प्र० श० ने चौपाल एव शेष ८.२३ प्र० श० ने पचायत घर को उचित स्थान माना है। स्थान ऐसा हो जहाँ सभी सुविधा से आ सकें सभी सामग्री सुरक्षित रखी जा सके। इस दृष्टि से विद्यालय-भवन ही उपयुक्त स्थान रहता है।

अध्ययन से ज्ञात हुआ कि ७७·६३ प्र० श० शिक्षको को प्रौढ शिक्षण हेतु सामग्री उपलब्ध करायी जाती है जिनमे स्लेटें, पुस्तकें एवं लालटेनें सम्मिलित हैं। इनमे से स्लेटें व पुस्तकें छात्रों मे वितरित कर दी गयी हैं और अनेक टूट-फूट गयी। लालटेनें मरम्मत के मुन्तजिर हैं। घासलेट हेतु नटिजे सी प्रौढ़ों की परीक्षा होने के बाद चुकाई जाती है या शिक्षा विभाग द्वारा धनराशि प्राप्त होने पर मार्च अथवा अगले वर्ष चुकायी जाती है। वास्तव म इस व्यवस्था मे सुधार होना चाहिए। सभी सामग्री प्रर्याप्त मात्रा म एवं यथासमय देने पर ही हम वांछित उपलब्धि की आशा कर सकते है।

मुख्य समस्या

शिक्षको मे यह भावना घर कर गयी है कि प्रौढ़ शिक्षा का कार्य करने का उत्तरदायित्व केवल पचायत समितियो के शिक्षको पर ही है। इस कार्यक्रम मे सभी स्तर के विद्यालयो के शिक्षको को सम्मिलित किया जाना चाहिए एवं विभाग को इस ओर विशेष रूप से जागरूक रहने की आवश्यकता है।

दूसरी बात है इस आर्थिक युग की, हर कार्य अर्थ के पलड़े मे तौला जाता है, जैसा कि कुछ वर्षों पहले प्रौढ शिक्षा कार्य करनेवालो को १५ प्रतिशत रुपया प्रतिमाह उपवेतन दिया जाता था, अब भी दिये जाने के लिए ४५·२० प्र० श० शिक्षको ने सम्मति व्यक्त की है। २१·९१ प्रतिशत पारितोषिक, १९·१६ प्र०श० एक वेतन वृद्धि, ८·२१ प्र० श० प्रमाण पत्र एव ५·४७ प्र० श० कुछ नहीं लेना है।

राज्य भर मे बडे पैमाने पर साक्षरता अभियान चलाने के लिए यदि उपवेतन दिया जाय तो वित्तीय दृष्टि से यह बहुत कठिन है एव जब उपवेतन देकर प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र चलाये गये तो उसके परिणाम भी ज्यादा अच्छे नही निकले। अत शिक्षको को प्रोत्साहन देने के लिए पारितोषिक, अग्रिम वेतन वृद्धियाँ, विशेष प्रमाण पत्र एवं अन्य सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

सन् १९१७ में रूस की अवस्था उतनी ही शोचनीय थी जितनी आज भारत में है। जिस प्रकार से वहाँ जनसहयोग से निरक्षरता का उन्मूलन किया गया वैसे ही भगीरथ प्रयत्नों की हमारे देश में भी आवश्यकता है। इसके लिए लगन, आस्था, अध्यवसाय और पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है। अन्य शब्दों में एक ग्रामीण शिक्षक के लिए एक योग्य शिक्षक होने के साथ साथ ग्राम-कल्याण-कार्य में प्रशिक्षित होना भी आवश्यक है, तिसपर भी कागजी कार्य जैसे सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार करने आदि में प्रशिक्षित होने से काम नहीं चलेगा, बल्कि उसका ग्रामीणों के शिक्षा-मार्ग में आनेवाली वास्तविक कठिनाइयों से अवगत होना आवश्यक है।

जनजागृति ही किसी देश की शक्ति का वास्तविक आधार होती है। कोई देश उसी समय सशक्त होता है जब उसकी जनता जागरूक हो उसे हर बात का ज्ञान हो। जनसाधारण हर बात के बारे में अपना विचार बनाने की क्षमता रखते हो और जो काम करते हो, समझकर करते हो। अत जनशिक्षा के कार्यक्रम की सफलता के लिए जनता एवं जनप्रतिनिधियों का सहयोग होना अत्यन्त आवश्यक है।

राजस्थान में जहाँ प्रौढ शिक्षण आन्दोलन विशेष तौर पर शिक्षा-विभाग के प्रयासों के बावजूद अभी भी प्रारम्भिक अवस्था में ही है, सेवा मन्दिर द्वारा बडगाँव पंचायत समिति में प्रयास राज्य के लिए आदर्श रूप हो सकता है। यदि प्रौढ-शिक्षण आन्दोलन को राज्य में पाँव जमाने हैं, ग्रामीण जनता का लोकप्रिय समर्थन एवं प्रोत्साहन हासिल करना है तो ग्रामीणों में शिक्षा के प्रति दिलचस्पी जाग्रत करने का एक तरीका होगा—सेवा मन्दिर के अनुरूप राज्य के विभिन्न जिलों में शुरुआत के तौर पर कम-से-कम एक एक पचायत समिति में प्रौढ शिक्षणकार्य प्रारम्भ करना। अत आवश्यकता इस बात की है कि हम सब मिलकर साक्षरता का राज्यव्यापी आन्दोलन शुरू करें।

श्री नियाज बेग मिर्जा, राजकीय अभिनवन प्रशिक्षण केन्द्र, राजसमन्द (राजस्थान)

७० करोड विस्मृत मस्तिष्क

रेने मेलू यूनस्को के महानिदेशक

अनुमानत ७० करोड वयस्क या दुनिया की कुल जनसख्या के ⅖ से भी अधिक व्यक्ति अशिक्षित है। कम विकसित राज्यों मे ही ये अधिकाश अशिक्षित वयस्क दिखाई देते हैं।

बच्चों के मामले म लटिन अमरीका अफ्रीका मध्य पूर्व तथा एशिया मे सन १९६० के दौरान ४७ प्रतिशत बच्चे स्कूल नही जाते थे। अगर हम इस सख्या में उन बच्चों की सख्या को भी मिला दें जो आजकल स्कूल जाते हैं किन्तु अच्छी तरह पढ लिख सकने के पहले ही अपनी शिक्षा बन्द करेंगे और इसलिए अशिक्षित बन जायेंगे तो इन राज्यो म आज भविष्य के १५ करोड अशिक्षित रहते हैं तथा आगामी ६ या ७ वर्षों मे दुनिया की वयस्क आबादी मे दो से ढाई करोड अशिक्षित जोड दिये जायेंगे।

शिक्षितो तथा अशिक्षितो मे अन्तर का परिणाम

ये हजारो लाखो अशिक्षित मन शक्ति की कितनी डरावनी हानि का प्रतिनिधित्व करते हैं। कौन कह सकता है कि इन परित्यक्त वयस्कों तथा अज्ञान की छाया में जन्मे इन बच्चो मे सम्भवत कितने वैज्ञानिक, इन्जिनियर, तथा तकनीशियन विद्यमान हैं।

कोई भी अशिक्षित व्यक्ति अपने नैसर्गिक गौरव तथा सामर्थ्य से सम्पन्न एक मानव कभी नही बनता। फिर भी, निरक्षरता वास्तविक रूप म विज्ञान तथा तकनीक को एक बन्द पुस्तक बनाती है आधुनिक सस्कृत में सृजनात्मक सहयोग को असम्भव बनाती है।

जिस राज्य म अशिक्षिता का प्रतिशत काफी ज्यादा होता है वह अपव्ययी मानव तथा मन शक्ति के रूप मे आन्तरिक हानि मात्र ही सहन नही करता अपितु जनता के शिक्षित विभाग की प्रगति भी समानरूप से गिरती जाती है। जैसे दुर्भाग्य से कई विकासशील राज्यों म होती है, एक पीढी से दूसरी पीढी को यानी आधुनिक शिक्षा पानेवालो को अशिक्षितो से अलग करनेवाली विशाल खाइ

हम काफी समय तक बर्दाश्त नही कर सकते। यह राज्य के सन्तुलन तथा एकता को तोड देती है और पूर्ण रूप से वैज्ञानिक विवेचन तथा शिल्प ज्ञान के प्रति जिसके बिना विकास नही हो सकता, एक विश्वव्यापक वास्तविक मनोवृत्ति उत्पन्न करने के किसी भी प्रयत्न को परास्त करती है।

अशिक्षा दूर करने के अन्तरराष्ट्रीय प्रयत्न

सम्भवत तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र म ही विस्तार एव सुधार की सबसे बडी अपेक्षा रहती है, विशेषकर माध्यमिक स्कूली स्तर पर काम करना, और इस क्षेत्र म सीधी आर्थिक सहायता देना।

हाल ही के वर्षों म यूनेस्को ने विकासोन्मुख राज्यो की सहायता करने के लिए दो विभिन्न तरीको से पर्याप्त प्रयत्न किये हैं। तकनीकी शिक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तरो पर काम करना, स्कूल के हर स्तर पर विज्ञान सिखाना चाहिए।

विकास का सच्चा आधार वैज्ञानिक सस्कृति

अल्पविकसित राज्यो म, अपने परिवर्तन के लिए अपने प्राकृतिक व मानवीय स्रोतों का पूर्ण उपयोग करो म केवल आयातित तकनीक अपने आप सहायक नहीं होगी।

विकासशील राज्यो मे विज्ञान की शिक्षा मे अनेक त्रुटियाँ होती हैं। अक्सर स्कूलो म विश्वविद्यालयो म प्रयोगशाला के उपकरणो की अत्यधिक कमी रहती है।

अनेक मामलो में पाठ्यक्रम अविवेकपूर्ण है पाठ्यपुस्तकें तथा अध्यापको की पुस्तिकाएँ स्थानीय स्थितियो के अनुकूल नहीं रहतीं, और अध्यापको का प्रशिक्षण अपर्याप्त है।

इन सभी क्षेत्रों मे, यूनेस्को अपने अग राज्यो के प्रयासो की प्रगति तथा प्रोत्साहन के लिए मदद कर रहा है। प्रगति के प्रति इस अनिवार्य अंशदान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहायता द्वारा, और भी अधिक सबल की सुव्यवस्था करती है।

मुझे विश्वास नहीं है कि आधुनिक सगठन और तरीको से युक्त शिक्षा-पद्धति विकसित राज्यो मे, सिर्फ विकासशील क्षेत्रो मे आनेवालो को ही लें, हमारी सभ्यता की बढती माँगों को पूरा कर सकती है।

जब तक शिक्षा अपने आप सशक्त रूप से अपने निजी शिल्पविज्ञान को, जो कई कारणों से पुराना बन गया है, पूरा सुधार नहीं करती, तब तक वह शिल्प-वैज्ञानिक परिवर्तन को, जो कम विकसित राज्यो मे अवश्य होना है, अपने पूर्ण तथा निर्णायक योगदान नहीं दे सकती।

हम सब जानते हैं कि अध्यापकों का प्रशिक्षण, चाहे किसी भी स्तर का क्यों न हो, कितनी लम्बी तथा महँगी प्रक्रिया है। इस अनिवार्य क्षेत्र में मितव्यय का कोई सवाल ही नहीं उठता है, किन्तु अनुभव ने दिखाया है कि कतिपय कार्यों के लिए, बहुत ही कम विकसित प्रशिक्षण के सहायक बिलकुल पर्याप्त है। इस तरीके से बिलकुल पर्याप्त बचत निकाली जा सकती है।

योजनाबद्ध शिक्षा के लिए प्रयुक्त आज की मशीनें, अध्यापकों द्वारा व्यक्तिगत शिक्षण की आवश्यकता को कम करती हैं।

सिनेमा, रेडियो तथा टेलिविजन ने—फिल्म तथा ग्रामोफोन की उपेक्षा न करते हुए—बार-बार यह सिद्ध किया है कि विचारों को व्यक्त करने में, ज्ञान को प्रदान करने में, और मनोभावों तथा विकारों तक को अभिव्यक्त करने में, वे कितने प्रभावशाली हैं। शिक्षकों को यह सीखना चाहिए कि दूसरे क्षेत्रों में पेशेवर कलाकारों तथा राजनीतिक प्रचारकों ने क्या ढूँढ निकाला है, विकासशील राज्यों में शिक्षा को उन्नत बनाने में इन साधनों द्वारा एक महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है।

वैज्ञानिक व तकनीकी शिक्षा के केन्द्र

वैज्ञानिक शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण का नवीकरण या विस्तार स्कूलों या विश्वविद्यालयों में नहीं किया जा सकता। जहाँ कहीं भी किसी वयस्क के जीवन का मुख्य भाग—कार्य में या अवकाश में बीतता जाता है, वहीं इसकी शुरुआत होनी चाहिए। अनवरत आधार पर विशिष्टीकृत वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा के लिए कर्मशालाएँ ही आदर्श केन्द्र होती हैं। उद्योग अपनी इस शैक्षिक जिम्मेदारी के बारे में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त कर रहा है। यह सम्पूर्ण आधुनिक समाज के अनुकूल एक व्यापक कार्य है।

बड़ी-बड़ी औद्योगिक तथा वाणिज्यिक संस्थाएँ, स्कूलों व विश्वविद्यालयों के काम को संपूर्ण बनानेवाली विशिष्टीकृत प्रशिक्षण संस्थाओं की सिफारिश को अधिकाधिक स्वीकार करने को तैयार हैं। उनको प्रोत्साहित तथा नेतृत्व से उत्तेजित करने के लिए विश्वविद्यालयों को, अवगणन या उनके साथ प्रतिस्पर्धा से कहीं दूर, उनसे निकटतम सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए, क्योंकि ये उसका वास्तविक विस्तार हैं।

उद्योगीकरण से प्राप्त अवकाश की पर्याप्त मात्रा, सार्वजनिक संचार-साधन के द्वारा अपव्यय की जाती है। इन्हीं साधनों के द्वारा ही अधिकांश वयस्क, और स्कूल

तथा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का एक अनुपात भी, अपनी वैज्ञानिक और तकनीकी सम्यता पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करते हैं।

कम विकसित राज्यों को उद्योगीकृत राज्यों से अलग करनेवाली परिस्थितियों की विकृतियों के कारण, विकास की समस्याओं पर विभिन्न दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। किन्तु उन समस्याओं के लिए स्वीकृत सुझाव को लागू करने के लिए कम विकसित राज्यों के पास कोई उपयोगी नूतन या आधुनिक तरीका और माध्यम नहीं है। इसलिए ही उनके लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण अत्यन्त जरूरी है। समकालीन घटना में उनका कोई वास्तविक अंशदान होगा कि नहीं, यह इन्हीं कार्यकर्ताओं पर आधारित है।

(यूनेस्को कूरियर के संग्रह विशेषांक से पुनर्मुद्रित)

ग्रामभारती आश्रम, टपलाई का
कुमार-मन्दिर

१ जून, '७० से विद्यालय के नये सत्र का प्रारम्भ हुआ। कुमार-मन्दिर और बालवाड़ी में कुल मिलाकर ७ शिक्षक हैं।

सामूहिक प्रवास

विद्यालय शहर से बहुत दूर होने के कारण बच्चो की अपनी इच्छा शहर देखने की थी। इसके लिए हमने अप्रैल, '७० से ही प्रवास की पूर्व तैयारी शुरू कर दी थी। १ से ७ जून तक बच्चो ने इन्दौर का प्रवास किया। प्रवास में ११ बच्चे कुमार-मन्दिर के छात्रावास के और १३ छात्र तथा छात्राएं विद्यालय की सम्मिलित हुई। विद्यालय की ओर से सर्वश्री रामचन्द्रजी जैन और गोपाल प्रसाद शर्मा बालको के साथ इन्दौर गये थे। पंचायती-राज-विद्यालय के भाई श्री धर्मपालजी सैनी हमारे अनुरोध को मानकर प्रवास में पूरे समय बच्चों के साथ रहे। इन्दौर जाते हुए रास्ते मे महू रुककर बालकों ने वहाँ का स्वर्ग-मन्दिर देखा। इन्दौर में उन्होंने रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डा, मालवा मिल, आकाशवाणी-केन्द्र, शीशमन्दिर, गीताभवन, राजबाड़ा, अन्नपूर्णा मन्दिर और नेहरू-पार्क आदि अनेक स्थानों की यात्रा की। महू इन्दौर तक की यात्रा बच्चों ने रेल द्वारा की। कई बच्चों के लिए रेलयात्रा का यह पहला अनुभव था। कुछ बच्चे हवाई जहाज मे भी बैठे और उड़े। 'नयी दुनिया' का प्रेस देखकर बच्चे बहुत प्रभावित हुए। इस यात्रा के कारण उनका ज्ञान बढा और उनमे कुतूहल जागा। प्रवास से लौटने के बाद अब ऊँची कक्षाओ के कई बच्चे निबन्ध के रूप मे अपने अनुभव लिख रहे हैं। इस प्रवास मे कुल रु० ५००) खर्च हुए। इनमें से रु० १४०) बच्चों ने जमा किये थे। रु० २८५) तक का भोजन खर्च इन्दौर की विविध संस्थाओ ने उठाया और कुमार-मन्दिर पर कुल रु० ७५) का ही भार पड़ा।

(२) पहली कक्षा के बच्चे हरियाली देखने जंगल में गये।

(३) कुमार-मन्दिर के आचार्य ने छात्रालय और विद्यालय के काम से धार का प्रवास किया।

जून अन्त तक कुमार-मन्दिर मे छात्रो की सख्या १११ तक पहुँची है। बालवाडी सहित यह सख्या १५१ हुई है। १० छात्र नये भरती किये गये हैं। छात्रावास में छठों कक्षा के चार नये छात्रों को प्रवेश दिया गया है। छात्रावास के दो बडे छात्रों को अपने घर की खेती का काम संभालने के लिए २० दिन का विशेष अवकाश दिया गया है।

बालवाडी

बालवाडी की शिक्षिका श्रीमती गायत्रीबहन शर्मा गुजरात मे २ महीनो का प्रशिक्षण और बालवाडी-सचालन का अनुभव लेकर लौटी हैं। उन्होंने इस महीने म बालवाडी का काम विधिवत् सभाल लिया है। इस समय बालवाडी में नियमित आनेवाले बच्चों की सख्या ४० है। इस महीने में एक दिन बालवाडी के बच्चो ने गाँव का भ्रमण किया।

उद्योग

बरसात की वजह से धुनाई मशीन ने ठीक से काम नही किया, फिर भी बच्चों ने कुल ४ किलो २०० ग्राम पूनियाँ बनायी। पूनी बनाने से पहले कपास की सफाई ओटाई, और धुनाई की क्रियाएँ भी बालको ने ही कीं। कुल १३ किलो २०० ग्राम कपास की ओटाई की गयी। इस महीने मे छात्रो ने कुल ३५००० मीटर सूत काता।

कृषि

ऐसा लगता है कि जब तक हमारे विद्यालयों मे श्रमनिष्ठ और श्रम मे रुचि लेनेवाले विद्यार्थी तैयार नही होंगे तब तक देश का भविष्य सुन्दर और सुखद नही हो सकेगा। इसलिए इस वर्ष से मैंने शिक्षको और छात्रों को खेती मे किसानो की तरह काम करने के लिए प्रवृत्त किया है। बच्चों को समझाया गया है कि उन्हें अच्छा कृषि पण्डित बनना है। मुझे खुशी है कि बच्चो ने खेती के काम को प्रसन्नतापूर्वक उठा लिया है। इस महीने मे १६ बच्चो ने आश्रम की बाडी के खेतों मे ३०-३० घन्टे काम किये। रस्सी डालकर पाँच एकड जमीन मे बिनौले बोये। कुल ४५० घन्टो का काम हुआ। कम्पोस्ट के गड्ढे मे से खाद उठाकर उसे तगारियो द्वारा दो एकड खेत मे बिछाया। १७ विद्यार्थियो ने इस पर पाँच घन्टे काम किया, इस प्रकार कुल ८५ घन्टो का काम हुआ।

१६ बच्चों ने १२॥ घन्टों में दो क्विन्टल और ७५ किलो मूँगफली फोड़ी। कुल १७३ किलो मूँगफली के दाने निकले। २०० घंटों का काम हुआ। इस प्रकार इस महीने में आश्रम की खेती में कुमारमन्दिर की ओर से कुल ७७५ घंटों का काम किया गया।

विद्यालय की कृषि

आश्रम के भीतर की दो एकड़ भूमि इस वर्ष विद्यालय की कृषि के लिए ली गयी है। एक एकड़ में कपास बोई गयी है और वह उग निकली है। इस काम में १५ बच्चों ने अपने चार-चार घंटे दिये, यानी कुल ६० घंटों का काम हुआ। एक क्यारी में भिण्डी बोयी है। लौकी के ३२ बीज बोये गये हैं। बीच में वारिश के बन्द रहने के कारण साग-सब्जी बोने का काम रुक गया था। एक खेत में बच्चों ने कम्पोस्ट के दो गड्ढों की खाद फैलायी। इस काम में १७ बच्चों ने अपने ६८ घंटे खर्च किये। पपीते के बगीचे के खरपतवार की सफाई की।

छात्रावास के पपीते की बगिया से ११ किलो पक्का पपीता रु० ३.३० पैसों का और ४ किलो कच्चा पपीता ८० पैसों का यों कुल रु० ४.१० पैसों का उत्पादन हुआ। पौधे अभी छोटे हैं। आशा है, अगली फसल से उत्पादन बढ़ सकेगा।

बाल-भण्डार में ७५) की पाठ्य-सामग्री बिकी।

स्वाध्याय

सुबह-शाम की सामूहिक प्रार्थना के बाद स्वाध्याय की दृष्टि से 'ईशावास्य उपनिषद्' 'स्त्री अबला नहीं, सबला है' और 'भगवान का काम' नामक पुस्तिकाएँ पढ़ी गयीं। आजकल 'विनोबा चिन्तन' और 'विराट् दर्शन' नामक पुस्तकों का स्वाध्याय चल रहा है। इनके अलावा सर्वोदय विचार-धारा की पत्रिकाओं के लेखों का सामूहिक वाचन भी होता रहता है।

'साम्प्रदायिकता देश के लिए हानिकर है', विषय पर एक परिसंवाद का आयोजन किया गया। इन सभी कामों में विद्यालय के शिक्षकों ने पूरा सहयोग दिया है।

विनीत
गोपालदत्त भट्ट

उत्तरप्रदेश में पूर्व माध्यमिक शिक्षा की प्रगति

वर्ष सन् १९६८-६९ में पूर्व माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की संख्या ७,३७८ थी जिनमें ५,९०१ विद्यालय बालकों के तथा १,४७७ विद्यालय बालिकाओं के लिए थे। प्रसार के लिए स्कूलों को अनुदान देने की नीति पर बल दिया गया। तृतीय योजना-काल में कुल १,००५ गैरसरकारी विद्यालय अनुदान-सूची पर लाये गये। विगत तीन वार्षिक योजना काल में ६५४ स्कूलों को अनुदान सूची पर लाया गया तथा चतुर्थ योजना के प्रथम वर्ष में ऐसे २०० विद्यालयों को अनुदान सूची पर लाया जायगा। प्रदेश के उन क्षेत्रों में स्थित ५० सीनियर बेसिक स्कूलों को ऐडहाक अनुदान दिया जायगा जहाँ शिक्षण की पर्याप्त सुविधाएँ नहीं हैं। वर्ष १९६६-६७ से १९६८-६९ तक तीन वार्षिक योजना काल में ३३४ बालकों के तथा १२७ बालिकाओं के नये सीनियर बेसिक स्कूल खोले गये। इस वर्ष सन १९६९-७० में ग्रामीण क्षेत्रों में बालकों के २१० तथा बालिकाओं के ११६ तथा नगर क्षेत्र में बालिकाओं के ५० वर्तमान जूनियर बेसिक स्कूलों का उच्चीकरण करके सीनियर बेसिक स्कूल में परिणत करने अथवा नवीन सीनियर बेसिक स्कूल खोलने के हेतु प्राविधान किया गया है। इसके अतिरिक्त वर्ष १९६७-६८ में बालिकाओं के १२ सीनियर बेसिक स्कूल शासन द्वारा खोले गये थे। इस वर्ष ऐसे ५ स्कूलों की शासन द्वारा स्थापना की गयी है। विगत तीन वार्षिक योजना काल में इस स्तर पर छात्र-संख्या में निरन्तर वृद्धि के कारण छात्र एवं अध्यापकों में १,६०४ अतिरिक्त अध्यापकों की नियुक्ति की जा रही है।

सीनियर बेसिक स्तर पर निर्धन बालिकाओं के लिए पाठ्य पुस्तकालयों की व्यवस्था की जा रही है।

ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में जहाँ बालिकाओं के लिए पूर्व माध्यमिक शिक्षा की सुविधाएँ नहीं हैं अथवा जहाँ सिनियर बेसिक विद्यालय खोलना सम्भव नहीं है वहाँ क्रमोत्तर (कन्टीन्युएशन) कक्षाएँ खोली गयी हैं। यह योजना इस प्रदेश में इतनी सफल हुई है कि तृतीय योजना-काल में ३०० के स्थान पर ९७५ कक्षाएं खोली गयी। विगत तीन वार्षिक योजनान्तर्गत ऐसी २२५ क्रमोत्तर कक्षाएं और इस वर्ष ५० क्रमोत्तर कक्षाएँ खोली गयी हैं।

विज्ञान की शिक्षा की नींव दृढ़ करने के लिए इस स्तर पर सामान्य विज्ञान की शिक्षा प्रारम्भ करने की योजना बनायी गयी थी। द्वितीय पंच-

वर्षीय योजना में ३१० विद्यालयों मे विज्ञान का समावेश किया जा चुका था। तृतीय योजना-काल मे ७०० विद्यालयो मे विज्ञान-शिक्षण की व्यवस्था की गयी। वर्ष १९६६-६७ से १९६८-६९ तक तीन वार्षिक योजना-काल में ४०७ विद्यालयों को सामान्य विज्ञान प्रारम्भ करने के लिए अनुदान दिया गया।

इस ७५ २९६ सीनियर बेसिक विद्यालयों को इस हेतु अनुदान दिया जायगा। इस स्तर पर शिक्षा के सुधार हेतु सन् १९६६-६७ मे ५० विद्यालयों को भवन तथा सज्जा तथा १० विद्यालयों को वर्कशाप आदि के लिए अनुदान दिया गया। वर्ष १९६७-६८ मे ९ विद्यालयो को वर्कशाप, निर्माणादि के लिए अनुदान दिया गया।

अध्यापकों को उच्च योग्यता-प्राप्त करने पर नकद पुरस्कार दिया जाता है।

इस स्तर पर विद्यालयो मे पुस्तकालयो का अभाव दूर करने के लिए तृतीय पचवर्षीय योजना-काल मे १,३९९ गैर-सरकारी विद्यालयों को ७,००,००० रुपये का पुस्तकालय-अनुदान दिया गया था।

गैर-सरकारी सीनियर बेसिक विद्यालयो को भवन-सज्जा एव काष्ठोपकरण के अनुदान द्वारा सुधारा जा रहा है। तृतीय योजना-काल मे ३९४ विद्यालयो को भवन एव ६६ विद्यालयो को सज्जा एव कोष्ठोपकरण के लिए १२,३३,६०० रुपये का अनुदान दिया गया था। जूनियर बेसिक और सीनियर बेसिक स्कूल साधारणत पृथक-पृथक सचालित हैं। शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजनान्तर्गत ऐसे २८६ स्कूल एकीकृत किये जा चुके हैं। अनुदान तथा सघन निरीक्षण से इन स्कूलो के स्तर मे सुधार हुआ है। ये विद्यालय एक ही प्रधानाध्यापक की देख-रेख मे काम करते हैं और इनमे शिल्पों और सामान्य-विज्ञान की शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया जाता है और प्रयत्न किया जा रहा है कि ये विद्यालय आदर्श सीनियर बेसिक स्कूलों के रूप मे कार्य कर सकें।

अनुदान को शीघ्र उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से मडलीय उप शिक्षा निदेशकों को निम्नांकित अधिकार प्रदान किये गये हैं :

(क) बालकों के लिए सीनियर बेसिक स्कूलों में अनुपालन अनुदानों का निर्धारण तथा स्वीकृत करना।

(ख) पाँच हजार रुपये से नीचे के सभी अनावर्तक अनुदानों की स्वीकृति देना।

[आगे

शासन के आदेशानुसार जूनियर हाईस्कूल की कक्षा ८ की हिन्दी, अंक-गणित तथा बीजगणित और रेखागणित व अपयो, की पुस्तको को राष्ट्रीयकृत किया गया जो अब प्रयोग मे लायी जा रही है।

प्रशिक्षण

इस स्तर पर शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए तृतीय योजना-काल के अन्त मे प्रदेश में ८१ जूनियर ट्रेनिग कालेज थे, जिनमें १७ राजकीय (१२ बालको के और ५ बालिकाओ के) और ६४ अशासकीय मान्यताप्राप्त (५६ बालकों के और ८ बालिकाओं के) थे। वर्ष १९६७-६८ से चमोली राजकीय जूनियर ट्रेनिग विद्यालय समाप्त हो गया है तथा राजकीय महिला जूनियर ट्रेनिग कालेज झांसी सी० टी० कालेज में उच्चीकृत होने के कारण अब पुरुषों के केवल ११ तथा महिलाओं के ४ जूनियर ट्रेनिग कालेज हैं। एडवास एक्शन प्रोग्राम के अन्तर्गत उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के साथ वर्ष १९५९-६६ में ३० जे० टी० सी० इकाइयाँ (२१ बालको की तथा ९ बालिकाओ की) भी सलग्न की गयी थीं, किन्तु प्रारम्भिक स्तर पर बी० टी० सी० प्रशिक्षित अध्यापकों का उत्पादन अधिक होने के कारण २० इकाइयाँ महिलाओ की जुलाई १९६९ से बन्द कर दी गयीं। इसमें छात्रों की वार्षिक प्रवेश सख्या ३० रखी गयी थी। इसके अतिरिक्त ५ राजकीय जे० टी० सी० विद्यालयों मे वार्षिक प्रवेश सख्या ४० से बढाकर ८० कर दी गयी है। वर्ष १९६६-६७ से जे० टी० सी० तथा एच० टी० सी० कोर्स के स्थान पर एक नवीन एक-वर्षीय बी० टी० सी० कोर्स आरम्भ किया गया है जिसके फलस्वरूप अब सभी प्रशिक्षण-सस्थाओ म बी० टी० सी० का प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है। इनमें प्रवेशार्थ योग्यता हाईस्कूल उत्तीर्ण रखी गयी है। वर्ष सन् १९६६-६७ म ११ अराजकीय सस्थाओं को बी० टी० सी० कक्षाएं चलाने के लिए अस्थायी मान्यता प्रदान की गयी है। इसके अतिरिक्त बालकों के ४ राजकीय तथा एक अशासकीय जूनियर बेसिक ट्रेनिग कालेज हैं। महिलाओं के लिए सी० टी० स्तर पर तीन राजकीय (एक लखनऊ और दूसरा मोदीनगर, मेरठ तथा तीसरा झांसी मे) और दो मान्यता प्राप्त (एक आगरा और एक देहरादून मे) *सी० टी० प्रशिक्षण महाविद्यालय हैं।* गृह विज्ञान प्रशिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद मे इस स्तर पर की शिक्षिकाओ को गृह विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने के लिए उक्त प्रशिक्षण मे इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण अभ्यर्थिनियों को वरीयता दी जाती है। परीक्षाओं में प्राप्त श्रेणियो के आधार पर प्रवेश के

लिए चुनाव किया जाता है। इधर विज्ञान शिक्षा की बढी हुई माँग की पूर्ति के उद्देश्य से उक्त प्रशिक्षण मे प्रवेश के लिए ६५ प्रतिशत तक विज्ञान के अभ्यर्थियो को वरीयता दी गयी है। ग्रामीण क्षेत्रो मे बालिका विद्यालयों के लिए अधिक सख्या मे अध्यापिकाएँ प्रशिक्षित करने के दृष्टिकोण से ग्रामीण क्षेत्रो की अर्हता प्राप्त अभ्यर्थिनियो को भी प्रवेश मे वरीयता दी गयी है।

सी० टी० स्तर की सभी प्रशिक्षण-सस्थाओ मे (बालक एव बालिकाओ) अभ्यर्थियो के प्रवेशार्थ इण्टरमीडिएट अथवा उसके समकक्ष कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण करना अनिवार्य है। वर्ष १९६९ मे सी० टी० स्तर के उत्तीर्ण होनेवाले परीक्षार्थियो की सख्या ३६७ है।

शिक्षा-पुनर्व्यवस्था योजना

सीनियर बेसिक विद्यालयो के स्तर पर पूर्व वर्षों की भाँति शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना का सचालन किया जा रहा है। इन विद्यालयो मे अपनाये गये शिल्पो की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के सम्बन्ध मे विशेष रूप से विभाग की ओर से कदम उठाये गये हैं जिसके परिणामस्वरूप शिल्पों की उत्पादन-क्षमता में वृद्धि हुई है। विशेष रूप मे कृषि व्यवस्थित विद्यालयो के उत्पादन का विवरण निम्नवत है :—

वर्ष	उपज की आय का मूल्यांकन
१९६५-६६	१८,२३,११५
१९६९-७०	३१,००,०००

गुणात्मक महत्व की दृष्टि से उल्लेखनीय है कि पुनर्व्यवस्थित विद्यालयो मे प्राप्त २१,००० एकड भूमि मे लगभग १५,००० एकड भूमि कृषि के अन्तर्गत आ चुकी है। इस भूमि मे ८,००० एकड मे सिचाई के साधन पहले ही दिये जा चुके थे। वर्ष १९६९-७० मे चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विद्यालयो को सिचाई की सुविधा प्रदान करने के सम्बन्ध मे पंपिंग सेट तथा रहट आदि प्रदान करने की विशिष्ट योजनाएँ रखी गयी हैं। वर्ष १९६९-७० मे १० विद्यालयों को पंपिंग सेट के लिए प्रति विद्यालय रुपये ६,००० तथा १४ विद्यालयों के प्रति विद्यालय रु० ७०० के हिसाब से सिंचाई अनुदान दिया जायेगा।

पुनर्व्यवस्थित विद्यालय स्थानीय सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे सहयोग देते हैं। २,२०० युवक मगल दलो तथा ५०० सामुदायिक केन्द्रों के सचालन द्वारा ये विद्यालय ग्रामीण जीवन के अधिकाधिक निकट आ सके हैं।०

('उत्तरप्रदेश में शिक्षा की प्रगति' से)

'नहीं, हम यह काम नहीं करते !'

इन्दिरा राही

'इस कमरे की सफाई कौन करेगा ? यह प्रश्न पूछते ही बालवाडी के सब बच्चे कहने लगते हैं 'दीदी हम हम ' और तुरन्त दौड जाते हैं झाड़ू लेने के लिए। जो पहले तैयार नहीं होता है वह भी सब बच्चो को सफाई करते देखकर थोडी ही देर मे आकर मुझसे कहता है, दीदी, हमे भी झाड़ू चाहिए।' लेकिन किशोर ऐसे कामो के लिए न तो कभी पहले उत्साह दिखाता है न बाद मे ही तैयार होता है। उसके खडे-खडे देखते रहने पर मैं पूछती हूँ, क्यों किशोर, तुम सफाई नहीं करोगे ?' वह तुरन्त बडी दृढता के साथ जवाब देता है, 'नहीं, हम नहीं करते !' उसका यह जवाब अक्सर इस तरह के सभी कामो के लिए मिलता है। चाहे बालवाडी के आँगन के सामने छोटी-छोटी खुरपियाँ लेकर घास निकालनी हो या नाली सफाई करने के लिए पानी डालना हो वह एक ही जवाब दे देता है, 'नहीं हम नहीं करते !' तरह तरह से प्रोत्साहित करने पर भी वह कभी कभी ही ऐसे कामो के लिए तैयार होता है।

मेरे मन मे यह सवाल बना रहता है कि क्या कारण है, जिससे किशोर को काम मे इतनी अरुचि है। इसके साथ साथ उसकी दूसरी विशेषता यह है कि वह हमेशा हवाई जहाज और मोटरगाडी की बातें बडे आनन्द और रुचि के साथ करता है। कभी कहता है, 'दीदी, हवाई जहाज मे दिल्ली जायेंगे, कभी कहता है, 'हमारे पापा हवाई जहाज मे गये हैं हमारे पास भी हवाई जहाज है !' (तितली को उडती देखकर भी उसे हवाई जहाज की ही याद आती है।) 'हम मोटरगाडी मे बैठकर सारनाथ जायेंगे।'—ऐसी ही उसके मन की बातें होती हैं। वैसे तो सब बच्चों को मोटरगाडी, हवाई जहाज आदि में बैठना, सफर करना अच्छा ही लगता है, लेकिन किशोर की बातो का विषय अक्सर यही रहता है। लगता है कि ये चीजें हमेशा उसके दिल दिमाग पर छायी रहती हैं।

मैंने उसके इस तरह के व्यवहार के कारणों को जानने की थोडी कोशिश की तो मालूम हुआ कि किशोर के घर मे दो तीन नौकर चाकर हैं, घर का सारा काम वे ही करते हैं। किशोर रोज देखता है कि उसकी मम्मी झाड़ू नहीं लगाती है दूसरे काम भी नहीं करती है, तो उसके संस्कार मे भी शायद वेही बातें बैठ गयी हैं कि ये सब काम हमको नहीं करने चाहिए। पैसेवाले

बेटा होने के कारण पहनने ओढने मे खान पान मे तथा उसके मनोरजन के लिए खिलौने आदि मे और बच्चो की तुलना मे विशेषता रहती है। इसके कारण इन बातो म भी उसका और उसके घरवालों का एक विशेष रुख रहता है। उसकी माँ उसके लिए बालवाडी मे विशेष नाश्ता भेजना चाहती है उसको हमेशा दो-चार खिलौने हाथ मे देकर भेजना पसन्द करती है कभी पसे भिजवाकर चाहती है कि किशोर के लिए नाश्ते की विशेष व्यवस्था की जाय। हालाकि ऐसी विशेष सुविधा के लिए बालवाडी मे जहाँ समूह जीवन की शिक्षा है और कोई भी चीज बाँटकर खाने का संस्कार दिया जाता है वहाँ उसके लिए कोई स्थान नही रहता। परन्तु उसकी माँ की इच्छा इस तरह की बनी रहती है, जिसके कारण किशोर अपने को और कुछ विशेष मानने लगा है। लेकिन किशोर के संस्कार मे अभी से जो विशेषता और अलगपन की भावना भर रही है वह क्या उसके भविष्य के लिए हितकर होगी ? सारी दुनिया मे समाजवाद की हवा बह रही है। भारत मे भी जोरो से बराबरी और सब जन एक समान के आदोलन चल रहे हैं ऐसी हालत मे बच्चा के हित मे तो यही होगा कि उ हे सबके साथ मिल्जुलकर रहने, सबके समान रहने का सस्कार और शिक्षा मिलें।

हो सकता है कि किशोर बडा होकर मोटरवाला बने हवाई जहाज म मुसाफिरी करे उसके पास खूब दौल्त हो नौकर चाकर हो लेकिन यह भी तो हो सकता है कि वह इतनी दौलतवाला न बन सके या समाज की स्थिति बदल जाय। उसे सामान्य आदमी की तरह रहना पडे। इसलिए क्या माँ बाप की यह जिम्मदारी नही है कि वे बच्चो के गुणो के विकास मे सहायक बनें। उसे बाजार की वस्तुओ से लादकर उसके दिल दिमाग के विकास को न रोकें ?

आज समाज म मालिक पूजीपति तथा बुद्धिशाली लोगों द्वारा मजदूरो, गरीबो और अनपढो का जो शोषण हो रहा है उसका सिल्सिला आखिर कब तक चालू रखा जा सकेगा ? दौल्तवाला बनने और नौकर चाकर से ही काम कराने की लालसा अगर केवल सुखी समृद्ध लोगो म ही होती तो बहुत चिन्ता की बात नही होती परन्तु गरीब लोग भी अब यही इच्छा रखने लगे हैं। वे भी सोचते हैं कि हमारा बेटा पढेगा तो पैसा कमायगा और मेहनत के काम नहीं करेगा। ऐसी हालत म वह दिन दूर नहीं, जब मेहनत करनेवाले भी बुद्धिशाली होंगे और बुद्धिशाली लोगों को भी मेहनत करना पड़ेगा। अगर ऐसा नहीं हागा तो समाज म टक्कर होगी और तब क्या होगा हमारा भविष्य ?

बोया पेड़ बबूल का......!

नियमित रूप से समय पर आनेवाली मीरा आज बालवाडी में कुछ देर से आयी। आकर तुरन्त खेलने लग जाना उसकी आदत है, लेकिन आज वह कुछ उदास बनकर बैठी रही। कई बार पूछने के बाद भी आज उसे क्या हुआ है यह जानना मुश्किल हो गया। थोडे-से प्रयत्न के बाद उसने मोती की माला बनाने में अपनी रुचि दिखायी। उसके बाद भी कुछ-कुछ करती रही, लेकिन पता नहीं उस चार साल की नन्हीं-सी मीरा पर ऐसी कौनसी आफत आ गयी थी कि उसकी सहज चचलता मस्ती आज नजर नही आ रही थी। सब बच्चे गोल घेरा बनाकर बैठे थे, गाना गाने की तैयारी चल रही थी, इतने मे मीरा ने उठकर मुझसे कहा, 'दीदी, रात को मेरे पिताजी ने मेरी अम्मा को खूब पीटा।" मैंने मीरा से पूछा "तुमने अपने पापा से पूछा नहीं कि अम्मा को क्यो पीटते हो ?" उसने सिर हिलाकर 'नहीं" कहा। मैंने फिर पूछा, "तुम उस समय कहाँ थी।" बोली "दीदी, अम्मा ने मुझको कमरे मे बन्द कर दिया था। मैं खूब रोने लगी तब भी दरवाजा नहीं खोला। मेरी अम्मा भी खूब रो रही थी।"

यह सारी बातचीत मेरी बगल मे बैठा हुआ सजय सुन रहा था। उसने बीच में ही मीरा से पूछा "मीरा तेरे पिताजी ने रात को शराब पी थी न ?" मैं तो इस प्रश्न से चौंक पडी। मीरा सजय के प्रश्न से और भी उदास हो गयी। वह एक भी शब्द बोल नहीं पायी। सिर हिलाकर ही जवाब मे उसने 'हाँ' कह दिया। मीरा के दुःखी चेहरे के कारण उस समय वह अपनी उम्र से भी बहुत बडी लगने लगी थी। उसका भोला भाला बचपन उसकी उदासी मे खो गया था। मेरी समझ मे नही आता था कि मीरा की उदासी कैसे दूर करूं ? उसकी उदासी का कारण तो उसके शराबी पिता बने हुए थे, जिनके क्रूर व्यवहार की याद उसे दुःखी बनाये हुई थी।

इस तरह के वातावरण मे पलनेवाले बच्चे अगर आगे चलकर विद्रोही हिंसक, दुराचारी हों तो इसमें उनका क्या दोष है ? वे उपद्रव करेंगे, हिंसा करेंगे, शराब पीयेंगे, तो हम उन्हे कोसेंगे, लेकिन हमारे हिंसा से भरे हुए परिवारों मे आखिर कैसे बच्चे तैयार होगे ? बचपन मे परिवार की ओर से जो कुशिक्षा, कुसस्कार और कुकर्म के बीज बच्चों के छोटे से दिमाग में बोये जाते हैं, क्या वे बीज अंकुरित होकर बचों के विकास को सही दिशा मे जाने देंगे ? बबूल का पेड बोकर आम के फल की उम्मीद करना कैसी बात मानी जायगी ? —इरा

प्रस्तावित

नयी तालीम समिति का संविधान

सब प्रकार की राष्ट्रीय प्रगति अन्ततोगत्वा उस शिक्षा की सकल्पना, लक्ष्य और पद्धति पर निर्भर करती है, जो किसी राष्ट्र के नागरिक को उपलब्ध होती है। अत देश की राष्ट्रीय शिक्षण प्रणाली को नये नींव पर निर्मित करना है। इस विश्वास के साथ भारतीय कांग्रेस कमेटी ने गाधीजी के मार्गदर्शन मे एक अखिल भारतीय शिक्षा परिषद की स्थापना की और तदनुसार सन १९३८ मे डा० जाकिर हुसेन की अध्यक्षता मे और श्री ई० डब्लू० आर्यनायकम् के सयोजकत्व मे हिन्दुस्तानी तालीमी सघ का सगठन हुआ। हिन्दुस्तानी तालीमी सघ निरन्तर २२ वर्षो तक नयी तालीम की नीति, कार्यक्रम और योजना के प्रचार प्रसार का, अध्यापकों के प्रशिक्षण का, प्रायोगिक स्कूलों को चलाने और उनके मूल्याकन का और नयी तालीम का वार्षिक अधिवेशन बुलाने का कार्य करता रहा। सघ को गाधीजी के मार्गदर्शन मे काम करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ और गाधीजी ने हर कदम पर इसका पथ निर्देशन किया।

सन् १९५९ का वर्ष हिंदुस्तानी तालीमी सघ के इतिहास मे एक नये मोड का वर्ष था। इस समय तक भूदान-आन्दोलन अपने पूरे जोर पर था और नयी तालीम उस आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन से अलग नहीं रह सकती थी, जो देश मे हो रह थे। अत हिन्दुस्तानी तालीमी सघ ने जब यह अनुभव किया कि देश के रचनात्मक कार्यक्रमों के प्रति एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण की जरूरत है, तो उसने प्रस्ताव किया कि मात्र नयी तालीम के प्रचार और सगठन के लिए एक अलग सगठन की आवश्यकता नही है। अत सन् १९५९ मे सघ का सर्व सेवा सघ की मुख्य धारा के साथ विलयन हो गया। इस बीच मे भूदान-आन्दोलन ग्रामदान की क्रांति मे विकसित हो गया और इसका लक्ष्य हुआ ग्राम-स्वराज्य की स्थापना—ग्रामस्वराज्य जिसकी कल्पना गाधीजी ने की थी और विनोबाजी जिसको अमली रूप देने की चेष्टा कर रहे हैं, जो नयी तालीम का भी लक्ष्य रहा है। इसी अवधि में ग्रामदान-तूफान मे सर्वोदय के सारे कार्यकर्ताओं और नेताओ का समय और शक्ति लगी रही और इसका परिणाम यह हुआ कि डेढ लाख से अधिक ग्रामदान, हजारो प्रखण्डदान और सैकडों जिलादान और दो राज्यदान भी प्राप्त हुए।

सन् १९६५ मे सर्व सेवा सघ ने नयी दिल्ली म नयी तालीम का एक 'कन्वेंशन' (सम्मेलन) बुलाया और सर्वसम्मति से नयी तालीम के लिए पहले की भाँति ही अलग स्वतत्र सगठन के पुनर्गठन की सस्तुति की। इस प्रस्ताव के आधार पर सर्व सेवा सघ ने एक 'नयी तालीम समिति' की नियुक्ति की, जो उन व्यक्तियों और सस्थाओ से सम्पर्क रखे, जो बेसिक शिक्षा के काम मे लगे हैं और जो गोष्ठियों, और कान्फ्रेंसों के माध्यम से जनमत का शिक्षण करें। लेकिन ग्रामदान आन्दोलन की आशातीत सफलता के कारण यह आवश्यक समझा गया कि ग्रामदानी क्षेत्रो मे निर्माण-कार्य पर अवधान केन्द्रित किया जाय और इसीलिए आवश्यक समझा गया कि

(१) नयी तालीम के विचारो और निर्माण के प्रयोगो के प्रचार प्रसार के लिए विशेष समिति बनायी जाय, जो सर्व सेवा सघ के लक्ष्यो के अनुकूल, उस सस्था के अभिन्न अग के रूप मे, कार्यकारी सगठन का काम करे।

(२) नाम

इस सगठन का नाम नयी तालीम समिति' होगा।

(३) मुख्य कार्यालय

समिति का कार्यालय सेवाग्राम अथवा उससे स्वीकृत किसी दूसरे स्थान पर होगा।

(४) लक्ष्य .

(क) नयी तालीम की इस सकल्पना का प्रचार करना कि नयी तालीम जीवन के माध्यम से, जीवन के लिए, जीवन भर की शिक्षा है और समुदाय की सेवा और सहयोग पर आधारित शोषणविहीन अहिंसक समाज के माध्यम से, व्यक्ति का सतुलित विकास उसका लक्ष्य है।

(ख) शिक्षा-सस्थाओं को इस विचार के कार्यान्वयन में सहायता करना।

(ग) उपर्युक्त लक्ष्यों के सदर्भ मे शैक्षिक अभ्यासों का मूल्यांकन।

(५) कार्य ·

(क) ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के कार्यक्रम मे सर्व सेवा सघ की सहायता करना और विशेषत ग्रामदानी क्षेत्रो के बच्चो, युवकों और प्रौढ़ों को नयी तालीम के लाइन पर शिक्षण देना और इन क्षेत्रो के विकास के अनुकूल शैक्षिक योजना और कार्यक्रमो पर शोध करना।

(ख) नयी तालीम के काम मे लगे हुए व्यक्तियों और संस्थाओ से सम्पर्क रखना।

(ग) नयी तालीम-सम्बन्धी सूचनाओं, अनुभवों के प्रचार-प्रसार के लिए 'क्लियरिंग हाउस' का काम करना।

(घ) नयी तालीम से मिलते-जुलते दूसरे शैक्षिक प्रयोगों का गहन अध्ययन।

(ङ) न्यूज लेटर, बुलेटिन और पत्र पत्रिका छापना।

(च) उपर्युक्त लक्ष्य रखनेवाली सस्थाओं से सम्पर्क रखना और पारस्परिक सम्बन्ध को प्रोत्साहन देना।

(छ) नयी तालीम की लाइन पर शिक्षा के लिए 'गाइड लाइन' तैयार करना।

(ज) कान्फ्रेंस, गोष्ठियाँ, वर्कशाप, आदि प्रवृत्तियों के द्वारा नयी तालीम के पक्ष में जनमत तैयार करना।

(झ) नयी तालीम के कार्यक्रमों के लिए अग्रगामी योजनाएँ चलाना और नयी तालीम विचारों का मूल्यांकन और नयी खोजों को प्रोत्साहन देना।

(ञ) अध्यापकों और छात्रों की सहायता के उपयोगी साहित्य का प्रकाशन करना और नयी तालीम के विविध क्षेत्रों के गाइड बुक्स—निर्देशिका, सदर्शिका तैयार करना।

(ट) नयी तालीम के सम्बन्ध में जनता का शिक्षण करना, जिससे लोकशक्ति की प्रगति के लिए उपयुक्त वातावरण का सृजन हो सके और जो शिक्षा में क्रांति की माँग करे।

(६) नयी तालीम समिति का विधान

(१) नयी तालीम समिति में कम से कम १५ और अधिक-से अधिक २१ सदस्य रहेंगे और इसका सगठन पहली बार सर्व सेवा सघ द्वारा होगा।

(२) नयी तालीम समिति के एक-तिहाई सदस्य तीन साल के बाद 'रिटायर' हो जायेंगे और इस प्रकार जो स्थान रिक्त होंगे उसे नयी तालीम समिति भरेगी, 'रिटायर' होनेवाले सदस्यों का पुनर्निर्वाचन हो सकता है।

(३) समिति की बैठक साल में कम से-कम दो बार अथवा अध्यक्ष और मन्त्री जब चाहें, अथवा समिति के दस सदस्य जब अध्यक्ष से विशेष बैठक की माँग करें, होगी।

(४) सात सदस्यों से समिति का 'कोरम' पूरा होगा।

(५) मन्त्री सदस्यों में कोई भी प्रस्ताव 'सर्कुलेट' करेगा और यदि दो तिहाई सदस्य उससे सहमत हुए और बाकी सदस्यों का अगर किसी प्रकार का विशेष विरोध नहीं है तो उसे समिति की बैठक में पास हुए प्रस्ताव का ही दर्जा मिलेगा। (विल हैव दी फोर्स)

(६) नयी तालीम के लक्ष्यों को छोड़कर समिति को सर्वसम्मति से विधान

के किसी भी प्राविधान को संशोधित करने अथवा परिवर्द्धन करने अथवा परिवर्तन (एड) करने का अधिकार होगा बशर्ते कि उपस्थित सदस्यों की संख्या ११ से कम न हो।

(७) समिति के हिसाब की प्रतिवर्ष नियमित 'आडिट' होगी।

(७) समिति के पदाधिकारी

(१) सर्व सेवा संघ के संगठित होने के बाद समिति एक अध्यक्ष, दो उपाध्यक्षों और एक मंत्री की नियुक्ति करेगी।

(२) सभी पदाधिकारी तीन वर्ष तक अपने पदों पर रहेंगे। 'रिटायर' होनेवाले पदाधिकारियों को पुनर्निर्वाचन का अधिकार होगा।

(३) पदाधिकारियों के रिक्त स्थान की पूर्ति, जो समिति के सदस्यों की मृत्यु, अथवा इस्तीफे के कारण होगी, समिति के सदस्यों में से ही कर ली जायगी।

(४) समिति की सभी बैठकों की अध्यक्षता समिति के अध्यक्ष करेंगे, और उनकी अनुपस्थिति में दोनों उपाध्यक्षों में से कोई एक और उनकी अनुपस्थिति में समिति के सदस्यों में से कोई भी अध्यक्षता करेगा।

(५) मंत्री नयी तालीम समिति का प्रमुख एक्जीक्यूटिव आफीसर है। वह कार्यालय का प्रबन्ध करेगा, 'स्टाफ' की नियुक्ति करेगा, सभी प्रकार के पत्र-व्यवहार करेगा, आय-व्यय का हिसाब रखेगा, फाइल आदि कागजों को ढंग से रखेगा, बैठकों की सूचनाएँ देगा, 'एजेण्डा' तैयार करके सदस्यों के पास भेजेगा, बैठक की कार्यवाही का लेखा रखेगा। और समति के प्रस्तावों के कार्यान्वयन के लिए और उसके लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कार्यवाही करेगा। वह उचित स्थान पर वार्षिक सम्मेलन करेगा और सम्मेलन के प्रबन्ध के लिए स्थानीय समिति नियुक्त करेगा।

वह समिति की कार्यदक्षता, सम्मान और गौरव के लिए उत्तरदायी होगा। वह सभी प्रकार के चन्दे प्राप्त करेगा और उन्हें किसी समिति के नाम पर शेड्यूल बैंक में रखेगा। खर्च समिति के प्रस्ताव और आदेश के अनुसार किया जायगा।

८—जब आवश्यक होगा, समिति तदर्थ उपसमितियाँ नियुक्त करेगी, और उन्हें आवश्यकतानुसार पावर डेलिगेट कर देगी। किसी विशेष कार्य के लिए व्यक्तियों को इस प्रकार के पावर डेलिगेट किये जा सकते हैं।

९—अर्थ : अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए नयी तालीम समिति चन्दा, अनुदान, अथवा कर्ज आदि से अर्थ एकत्र कर सकती है।●

वर्ष : १९
अंक : ४
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

नवम्बर, '७०

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा ६ रुपये है।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

'आचार्य' का और सारे आचार्यों का चाहे वे छोटे विद्यालय मे हों, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय मे हो, एक समान, सम्मिलित परिवार है। अगर उनकी कोई जाति है तो एक ही— आचार्य की। आचार्य वह है जिसका विचार की शक्ति मे विश्वास हो। इस नाते शिक्षक, साहित्यकार कलाकार, पत्रकार, समाज-सेवक, सभी, अगर वे विचार की शक्ति म विश्वास रखते हैं तो आचार्य कहलाने के अधिकारी हैं और आचार्यकुल का सदस्य बनने के। पेशे के हितों की रक्षा के लिए हर एक के अलग-अलग सगठन और सदस्यता हो सकती है लेकिन आचार्यकुल मे हर एक की एक ही भूमिका है— आचार्य की।

आचार्यकुल विज्ञान और लोकतत्र का प्रतिनिधि है। विज्ञान विचार की सत्ता को मानता है, और लोकतन्त्र तो खडा ही है इस आधार पर कि मनुष्य विचार से बनता है, बदलता है। भले ही आज दुनिया मे विज्ञान और लोकतत्र का बोलबाला दिखायी देता हो, लेकिन अन्दर देखन पर मालूम होता है कि विद्वानो और जन नायको दोनो का विचार की शक्ति पर से भरोसा उठ रहा है नहीं तो विज्ञान इस तरह शस्त्र और पूँजी की शक्तियो के साथ जुडा दिखायी देता, और लोकतन्त्र के 'लोक' के सीने पर तत्र' सवार हो जाता!

अपने देश मे स्थिति अत्यन्त गम्भीर है। हमारे विद्यालय-महा विद्यालय और विश्वविद्यालय—दोहरे प्रहार के शिकार हो रहे है। एक ओर विद्रोही' का प्रहार है, दूसरी ओर पुलिस का प्रवेश। दोनो के हाथ मे एक ही हथियार है—बन्दूक। विद्यालय का लय बन्दूक से किया जा सकता है, लेकिन बन्दूक से उस विदयालय की रक्षा कब तक होगी, और होकर भी क्या करेगी, जब विचार शक्ति से अपने को सुरक्षित रखने मे वह असमर्थ हो चुका हो?

अगर बन्दूक की शक्ति से आज के प्रतिष्ठानो को रक्षा हो, और बन्दूक की ही शक्ति से समाज के परिवर्तन का प्रयास हो तो खुलकर बन्दूक की सत्ता को स्वीकार करना चाहिए। विवश होकर उसकी सत्ता स्वीकार करनी पडे, यह स्थिति क्यो आये? आज सभ्यता विचार बनाम बन्दूक के 'युद्ध' मे पडी हुई है। किसकी विजय होती

है इस पर आगे की कई सदियो का विकास निर्भर करेगा। इस 'युद्ध' मे आचार्य पहली पक्ति का सिपाही है।

भारत मे विचार-शक्ति से समाज-परिवर्तन का अभियान शुरू हो चुका है। जनता अपने निर्णय और सकल्प से समाज परिवर्तन का क्रम शुरू करे, यह सन्देश ग्रामदान गाँवो मे पहुँचा रहा है, अनेक गाँवो मे पहुँचा चुका है। ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य आन्दोलन ने विचार-शक्ति की जो सम्भावनाएँ प्रकट की हैं वे सब आचार्यकुल के शोध और प्रयोग के लिए खुली हुई हैं। ये प्रयोग शिक्षण और सगठन के हैं। आचार्यकुल इन्हे समझे, परखे, और अपना 'रोल' अदा करे।

सर्वोदय आन्दोलन को ही नही, देश को आचार्यकुल से नेतृत्व *की अपेक्षा है। आचार्यकुल सत्य की वाणी है, दल की नही, लोक की* वाणी है, तत्र की नही, विज्ञान की वाणी है, मतवाद की नही। अब समय आ गया है कि हर छोटे बडे विद्यालय मे आचार्यकुल और तरुण-शान्तिसेना का गठन हो और हर कोने से एकसाथ विद्या और विद्रोह का स्वर सुनायी दे।

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार - प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १६
अंक : ५
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

दिसम्बर'७०

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

आचार्यकुल

पिछले महीने की २९, ३० तारीखो को वाराणसी मे उत्तर-प्रदेश के आचार्यकुल का राज्य-स्तरीय सम्मेलन हुआ। इस महीने के अन्तिम सप्ताह मे बिहार का सम्मेलन होनेवाला है। अभी १६-१७ नवम्बर को देवरिया जिले के आचार्यकुल ने कुशीनगर मे अपनी दो दिन की गोष्ठी की थी, जिसमे तीन विद्यालयो के आचार्यकुल ने तय किया कि वे अपने अपने विद्यालय मे तरुण-शान्ति सेना भी स्थापित करेंगे और दोनो मिलकर विद्यालय के दो मील की सीमा मे पडनेवाले गाँवो का प्रयोग-क्षेत्र बनायेंगे, जहाँ वे अपनी सम्मिलित शक्ति से ग्रामदानमूलक शिक्षण और सगठन का कार्य करेंगे।

वर्ष : १९
अंक : ५

आचार्यकुल के सम्बन्ध मे इन खबरो से यह स्पष्ट होता है कि आचार्यकुल शिक्षक-समुदाय की कल्पना को स्पर्श करने लगा है तथा कुछ ऐसे शिक्षक भी हैं जो मानने लगे है कि उनके पेशे की जो स्थिति है उसके अलावा उनकी एक और स्थिति भी है--वह है नागरिक की। और, वह स्थिति सामान्य नागरिक की नही है। शिक्षक की स्थिति मे एक विशिष्टिता है। वह 'सत्य' का आदर करता है, और उसीके माध्यम से नयी पीढी को सत्य का स्पर्श होता है, समाज को सत्य का प्रकाश मिलता है। वह वास्तव म विचार की शक्ति का प्रतिनिधि है, ठीक जैसे सिपाही बन्दूक की शक्ति का प्रतिनिधि होता है। यह प्रतीति कुछ शिक्षक मित्रो मे जगने लगी है। जो बच गये हैं उनमे कल जगेगी, क्योकि शिक्षक की वास्तविक स्थिति यही है।

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार - प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १६
अंक : ५
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

दिसम्बर'७०

वर्ष : १९
अंक :

उत्तर प्रदेश आचार्यकुल सम्मेलन अंक

दिसम्बर १९७०

नयी तालीम : नवम्बर, '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल० १७२३

आवरण मुद्रक मनोहरलाल प्रेस मानमंदिर वाराणसी

वर्ष : १९
अंक : ५

उत्तर प्रदेश आचार्यकुल
सम्मेलन अंक

दिसम्बर १९७०

'आचार्य' का और सारे आचार्यों का चाहे वे छोटे विद्यालय मे हों, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय मे हो, एक समान, सम्मिलित परिवार है। अगर उनकी कोई जाति है तो एक ही— आचार्य की। आचार्य वह है जिसका विचार की शक्ति मे विश्वास हो। इस नाते शिक्षक, साहित्यकार कलाकार, पत्रकार, समाज-सेवक, सभी, अगर वे विचार की शक्ति मे विश्वास रखते हैं तो आचार्य कहलाने के अधिकारी हैं और आचार्यकुल का सदस्य बनने के। पेशे के हितो की रक्षा के लिए हर एक के अलग-अलग सगठन और सदस्यता हो सकती है लेकिन आचार्यकुल मे हर एक की एक ही भूमिका है— आचार्य की।

आचार्यकुल विज्ञान और लोकतत्र का प्रतिनिधि है। विज्ञान विचार की सत्ता को मानता है, और लोकतत्र तो खडा ही है इस आधार पर कि मनुष्य विचार से बनता है, बदलता है। भले हो आज दुनिया मे विज्ञान और लोकतत्र का बोलबाला दिखायी देता हो, लेकिन अन्दर देखने पर मालूम होता है कि विद्वानो और जन-नायको, दोनो का विचार की शक्ति पर से भरोसा उठ रहा है, नहो तो विज्ञान इस तरह शस्त्र और पूंजी की शक्तियो के साथ जुडा दिखायी देता, और लोकतत्र के 'लोक' के सीने पर तत्र' सवार हो जाता !

अपने देश मे स्थिति अत्यन्त गम्भीर है। हमारे विद्यालय-महा-विद्यालय और विश्वविद्यालय—दोहरे प्रहार के शिकार हो रहे है। एक ओर विद्रोही' का प्रहार है, दूसरी ओर पुलिस का प्रवेश। दोनो के हाथ मे एक ही हथियार है—बन्दूक। विद्यालय का लय बन्दूक से किया जा सकता है, लेकिन बन्दूक से उस विद्यालय की रक्षा कब तक होगी, और होकर भी क्या करेगी, जब विचार शक्ति से अपने को सुरक्षित रखने मे वह असमर्थ हो चुका हो ?

अगर बन्दूक की शक्ति से आज के प्रतिष्ठानो की रक्षा हो, और बन्दूक की ही शक्ति से समाज के परिवर्तन का प्रयास हो, तो खुलकर बन्दूक की सत्ता को स्वीकार करना चाहिए। विवश होकर उसकी सत्ता स्वीकार करनी पडे, यह स्थिति क्यो आये ? आज सभ्यता विचार बनाम बन्दूक के 'युद्ध' मे पडी हुई है। किसकी विजय होती

है इस पर आगे की कई सदियों का विकास निर्भर करेगा। इस 'युद्ध' में आचार्य पहली पंक्ति का सिपाही है।

भारत में विचार-शक्ति से समाज-परिवर्तन का अभियान शुरू हो चुका है। जनता अपने निर्णय और संकल्प से समाज-परिवर्तन का क्रम शुरू करे, यह सन्देश ग्रामदान गाँवों में पहुँचा रहा है, अनेक गाँवों में पहुँचा चुका है। ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य आन्दोलन ने विचार-शक्ति की जो सम्भावनाएँ प्रकट की हैं वे सब आचार्यकुल के शोध और प्रयोग के लिए खुली हुई हैं। ये प्रयोग शिक्षण और सगठन के हैं। आचार्यकुल इन्हे समझे, परखे, और अपना 'रोल' अदा करे।

सर्वोदय आन्दोलन को ही नहीं, देश को आचार्यकुल से नेतृत्व की अपेक्षा है। *आचार्यकुल सत्य की वाणी है, दल की नहीं; लोक की वाणी है, तन्त्र की नहीं; विज्ञान की वाणी है, मतवाद की नहीं।* अब समय आ गया है कि हर छोटे-वडे विद्यालय मे आचार्यकुल और तरुण-शान्तिसेना का गठन हो और हर कोने से एकसाथ विद्या और विद्रोह का स्वर सुनायी दे।

उत्तर प्रदेश आचार्यकुल सम्मेलन की कार्यवाही

२८ नवम्बर, १९७० को साय ४ से ६ बजे तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति के समिति-कक्ष मे कार्यकारिणी की बैठक हुई। डा० कालूलाल श्रीमाली, उपकुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने बैठक की अध्यक्षता की। उत्तरप्रदेश आचार्यकुल के सयोजक श्री शीतल प्रसादजी, उपकुलपति आगरा विश्वविद्यालय, अचानक यातायात की गडबडी के कारण बैठक मे उपस्थित नही हो सके। निम्नाकित सदस्य उपस्थित थे :—

१ डाक्टर कालूलाल श्रीमाली, अध्यक्ष		२ श्री राजाराम शास्त्री,	सदस्य
३. श्री रोहित मेहता	सदस्य	४ आचार्य केशवचन्द्रजी मिश्र	"
५. श्री रामवचन सिहजी	"	६ श्री व्रजनन्दन स्वरूप सक्सेना	"
७. श्री पी० के० जेना	"	८ श्रीमती शुभदा तैलग	"
९. डाक्टर विश्वम्भरनाथ टण्डन	"	१० श्रीमती लीला शर्मा	"

११ श्री वशीधर श्रीवास्तव, आमन्त्रित

श्री शीतल प्रसादजी की अनुपस्थिति मे श्री वशीधर श्रीवास्तव, ने उत्तर-प्रदेश मे आचार्यकुल आन्दोलन की प्रगति की जानकारी दी और बतलाया कि प्रदेश के पूर्वी जिलो म आचायकुल का काम अधिक सघन रूप से हुआ है। इन जिलो के सदस्यो की दो आचलिक गोष्ठियाँ भी आयोजित हुई हैं। इनकी कार्यवाही प्रदेश के सभी सदस्यो के पास भेजी जा चुकी है।

आचार्यकुल का अधिक गति से काम करने की दृष्टि से सयोजक की ओर से ५००० रु० का एक बजट भी समिति के सामने रखा गया। समिति ने यह निश्चय किया कि जितना धन सदस्यता-शुल्क से प्राप्त हो जाय उससे अतिरिक्त धन के लिए सर्व सेवा सघ से प्रार्थना की जाय। केन्द्रीय आचार्यकुल के सयो-जक सर्व सेवा सघ की अगली प्रबन्ध समिति में इस धनराशि की माँग करे।

सगठन के सम्बन्ध मे कार्यकारिणी ने निश्चय किया कि आचार्यकुल का सगठन अत्यन्त सरल हो और वह सगठन से अधिक बिरादरी रहे।

कार्यकारिणी ने निम्नाकित सदस्यो को 'कोआप्ट' किया :—

१. डा० सीताराम जायसवाल, रीडर, लखनऊ विश्वविद्यालय

२. डा० गोपाल त्रिपाठी, अध्यक्ष, टेक्निकल विभाग, का० हि० विश्वविद्यालय

३ श्री नारायण देसाई, मन्त्री, अ० भा० शातिसेना मण्डल

४. श्री वशीधर श्रीवास्तव, सर्व सेवा सघ, राजघाट, वाराणसी

उ० प्र० आचार्यकुल का प्रथम सम्मेलन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे धातुकी विभाग के लेक्चर हाल न० २ मे दिनांक २९ तथा ३० नवम्बर १९७० को हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने विश्वविद्यालय के कला महा-विद्यालय के 'प्रेक्षागृह' मे २९ नवम्बर को प्रात वेला म किया। उद्घाटन-समारोह की अध्यक्षता उत्तरप्रदेश आचार्यकुल के सदस्य डा० कालूलाल श्रीमाली ने की। समारोह का आरम्भ विश्वविद्यालय के कुलगीत से और समापन राष्ट्रगान के साथ हुआ। समारोह के आरम्भ मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्यकुल के सयोजक डा० प्रफुल्लकुमार जेना ने तथा स्वागत-समिति के अध्यक्ष डा० गोपाल त्रिपाठी ने सम्मेलन के प्रतिनिधियो एव अन्य अतिथियों का, विशेषत महादेवीजी का स्वागत किया।

केन्द्रीय आचार्यकुल के सयोजक श्री वशीधर श्रीवास्तव ने देश म हो रहे आचार्यकुल के काम का सर्वेक्षण और समीक्षा प्रस्तुत करते हुए कहा कि अब तक उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा महाराष्ट्र मे आचार्यकुल के सगठन का काम हुआ है और शेष प्रदेशो म इसकी इकाइयाँ गठित करने का प्रयास हो रहा है। दक्षिण मे आचार्यकुल के विचार-प्रचार करने की दृष्टि से श्री रोहित मेहता शीघ्र ही दक्षिणी प्रदेशो का दौरा आरम्भ करनेवाले है। इसके बाद उत्तरप्रदेश आचार्यकुल के सयोजक श्री शीतल प्रसादजी ने प्रदेश मे हुए आचार्यकुल के कार्य का विवरण प्रस्तुत किया। उन्होने बताया कि उत्तर-प्रदेश के लगभग ३० जिलो मे आचार्यकुल के विचार-प्रचार का काम हुआ है, परन्तु पूर्वी अचल के देवरिया, गोरखपुर, बस्ती, आजमगढ और बलिया मे अधिक सघन काम हुआ है।

अपने उद्घाटन भाषण मे श्रीमती महादेवी वर्मा ने कहा कि मनुष्य कैसे मनुष्य की भाँति रहे इसका मार्गदर्शन शिक्षक को करना है। समाज को नये मूल्य देना, तरुणो को ध्वस-मार्ग से विरत कर उनकी विधायक शक्ति का विकास करना और आवेश के स्थान पर विवेक का बोध कराना अध्यापक-वर्ग का कर्तव्य है। आज समाज मे जो अभावात्मक आया है उसका एक कारण यह भी है कि अध्यापक अपने कर्तव्य को भूलकर अधिकार पर जोर देने लगा है। विनोबाजी ने आचार्यकुल की स्थापना अध्यापको के कर्तव्य बोध के जागरण के लिए की है। दलगत राजनीति और हर प्रकार की साम्प्रदायिकता से अलग रहकर अध्यापक-वर्ग को अपनी नैतिक शक्ति जागृत करना चाहिए।[1]

१. पूरा उद्घाटन भाषण पृष्ठ २१४ पर देखें।

अधिवेशन का दूसरा सत्र

सम्मेलन का दूसरा सत्र धातुकी विभाग के लेक्चर हाल न० २ मे उत्तर-प्रदेशीय आचार्यकुल के सयोजक तथा आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री शीतल प्रसाद की अध्यक्षता मे आरम्भ हुआ। इस सत्र का मुख्य विचारणीय विषय था— 'आचार्यकुल की सरचना और कार्यक्षेत्र', जिसे प्रसिद्ध सर्वोदय-विचारक आचार्य राममूर्तिजी ने प्रस्तुत किया। उन्होने कहा कि अध्यापको और आचार्यों की इस गोष्ठी मे मुझे कुछ सुझाने का अधिकार तो नही है, फिर भी एक सामाजिक कार्यकर्ता आचार्यकुल और शिक्षा की समस्याओ पर जिस निगाह से देखता है वह आचार्यों के विचारार्थ निवेदित किया है।[1]

विषय पर चर्चा मे भाग लेते हुए आगरा के डा० हरिहर नाथ टडन ने कहा कि हम आचार्यकुल का सगठन ढीला रख परन्तु निष्ठाओ मे कोई ढिलाई न करें। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डा० शर्मा, डीन आफ स्टूडेन्ट्स ने कहा कि केवल निष्ठावान और समर्पित अध्यापक ही आचार्यकुल के सदस्य बनें जो अपने आचरण से अपने छात्रो के आग आदर्श उपस्थित कर सकें। कानपुर के श्री शिवसागरजी ने कहा कि जो लोग सर्वोदय विचार तथा कार्यक्रम मे विश्वास करते हैं वे ही इसके सदस्य बनने चाहिए। वाराणसी के हरिश्चन्द्र कालेज के श्री शुक्लाजी ने कहा कि आचार्यकुल म प्राथमिक और विश्वविद्यालय के अध्यापको को समान माना गया है। परन्तु जब तक वेतन मे इतनी अधिक असमानता रहती है, जितनी आज है, तब बराबरी का, भाईचारे का, लक्ष्य पूरा नही होगा। अत तुल्य पारिश्रमिक आचार्यकुल का लक्ष्य होना चाहिए। आह डिग्री कालेज, आगरा के प्राचार्य श्री बनवारीलालजी ने कहा कि आचार्यकुल की सरचना यदि सर्वोदय के आदर्शों से शासित रही तभी यह सम्भव होगा। केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के सदस्य श्री रामवचन सिंहजी ने कहा कि आशा और विश्वास ही हमारा सम्बल है और हम अधिक से अधिक अच्छाइयो को लेकर चलें। फर्रुखाबाद के श्री सत्येन्द्र भोंतो ने कहा कि आचार्यकुल के सदस्य के लिए अहिंसा की शर्त रखी गयी है, किन्तु जब छात्र या दूसरे लोग पहले से ही किन्हीं आग्रहो पर जोर दें तथा हिंसात्मक उपद्रव करें, तब हम उन्हें क्या उत्तर दें? छात्र-आक्रोश कानून और व्यवस्था का प्रश्न है, इसे केवल अहिंसा से ही नहीं सुलझाया जा सकता। बलिया के श्री शिवकुमार मिश्र

---

१ पूरा निबन्ध पृष्ठ २१६ पर देखें।

ने कहा कि आचार्यकुल की संरचना ढीली होनी चाहिए और क्रांति में इसका 'इन्वाल्वमेन्ट' तो हो, किन्तु इतना नहीं कि वह एक मतवाद बन जाय।

भाटपाररानी डिग्री कालेज के प्राचार्य तथा देवरिया आचार्यकुल के संयोजक श्री केशवचन्द्र मिश्र ने कहा कि परिवर्तन का क्रम नीचे से ऊपर की ओर होना चाहिए। शिक्षकों को यह तय करना होगा कि हम कहाँ पर छात्रों से सख्यभाव रखें और कहाँ पर पितृ-भाव रखें। का० हि० वि० वि० के चीफ प्राक्टर डा० रतूड़ी ने कहा कि आज छात्रों के 'प्रोटेस्ट' करने के जो तरीके हैं, उनसे हम पृथक् नहीं रह सकते। देवरिया के भागवत त्रिपाठी ने कहा कि छात्रों के दोषों के लिए अध्यापकों में ग्लानि और शर्म पैदा होनी चाहिए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्यकुल के सदस्य डा० चेलम ने कहा कि आज अध्यापकों के पास वांछित क्रान्ति करने की शक्ति नहीं है और हमें समाज को भी ऐसा करने या कहने का कोई हक नहीं है। आचार्यकुल ट्रेडयूनियन बनने से बचे, यही बहुत है।

केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के सदस्य श्री रोहित मेहता ने कहा कि समय की माँग 'शक्ति' की ही है और यह शक्ति केवल कर्म से ही प्राप्त की जा सकती है। 'अध्यापकों तथा समाज में कुछ करना चाहिए', की चाह तो है किन्तु 'कुछ नहीं हो सकता' की निराशा भी है। आचार्यकुल का काम इस व्यापक निराशा को समाप्त करना है और कर्म का संकल्प लेना है।

चर्चा के बीच जितनी शंकाएँ उठायी गयीं उनका स्पष्टीकरण सत्र के प्रमुख वक्ता आचार्य राममूर्तिजी ने किया।[1]

अधिवेशन का तीसरा सत्र

(३० नवम्बर, प्रातः ९ से १२)

तृतीय सत्र की अध्यक्षता डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी करनेवाले थे, किन्तु कुछ कारणवश वे नहीं आ सके, अतः इसकी अध्यक्षता के लिए श्री शीतल प्रसादजी से निवेदन किया गया और उन्होंने अध्यक्षता की। सत्र में विचारार्थ मुख्य विषय श्री रोहित मेहता द्वारा प्रस्तुत निबन्ध "अध्यापकों का पुनर्संस्थापन" था[2]।

---

१. पूरा भाषण पृष्ठ २२१ पर देखें।
२. पूरा निबन्ध पृष्ठ २२९ पर देखें।

प्रबन्ध मे उठायी गयी स्थापनाओ पर बहस करते हुए लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० सीताराम जायसवालजी ने श्री मेहताजी से सहमति प्रकट करते हुए कहा कि आज हमारा कोई शिक्षा दर्शन नही है, क्योंकि हमारा कोई जीवन-दर्शन ही नही है। हमारा अब तक का जीवन समझौता का जीवन रहा है, किन्तु अब समझौतो का आधार छोडकर जीवन दर्शन का विकास करना आवश्यक है। आचार्यकुल शिक्षक की समता का आन्दोलन है अत शिक्षको मे पदो का 'रोटेसन' होना चाहिए। का० हि० वि० वि० के वशिष्ठ ने कहा कि हमे बौद्धिक स्वातन्त्र्य पर जोर देना चाहिए और इस दिशा मे सब सेवा सघ से प्रकाशित होनेवाली शिक्षा सम्बन्धी पत्रिका 'नयी तालीम' का व्यापक प्रचार करना चाहिए। सुदिष्ट बाबा इण्टर कालेज, बलिया के प्राचार्य श्री जगत नारायण सिंह ने कहा कि शिक्षा मे स्वायत्तता तथा प्रशासन से उसके सम्बन्ध को हम स्पष्ट करना चाहिए। बलिया के श्री पाण्डेय ने कहा कि अध्यापको को केवल पढाने का ही काम सौंपना चाहिए और प्रबन्ध का काम, प्रशासन का काम किसी और को सौंप देना चाहिए। इलाहाबाद के सहायक शिक्षा निदेशक श्री ब्रजनन्दन स्वरूपजी ने कहा कि हमारी कठिनाई आदर्श तक पहुँचने की है, और यह कठिनाई केवल शक्ति से ही दूर होगी। हमारी शक्ति का स्रोत छात्र ही हैं और छात्र के प्रति अपने कर्तव्यों के पालन से ही अध्यापक शक्ति प्राप्त कर सकता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डा० भडारी ने कहा कि हम शिक्षा को न्यायपालिका की जैसी प्रतिष्ठा तो अवश्य दिलायें, किन्तु न्यायपालिका मे भी जो 'हायरारकी' असमानता व्याप्त है उससे आचार्यकुल बचे तो ही ठीक होगा। डा० रतूडी ने कहा कि हमे नियमित परिवर्तन की रूपरेखा बनानी होगी। श्री बनवारीलाल तिवारी ने कहा कि हमे अच्छे श्रमिक व अच्छे कृषक को भी आचार्य मानना होगा और उसे भी आचार्यकुल म शामिल करना चाहिए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ही डा० जैना ने कहा कि हमें आचार्यकुल के आदर्श तक पहुँचने के लिए प्राथमिक और माध्यमिक स्तर से आरम्भ करना चाहिए और आचार्यकुल को रामकृष्णमिशन की तरह आदर्श विद्यालयो की स्थापना करनी चाहिए। ये विद्यालय आचार्यकुल के प्रयोग-स्थल होगे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ही श्री डा० के. एस शिवरामन् ने कहा कि लगता है, हमारे सामने शिक्षा की वही प्राचीनकालीन मूर्ति है, पर अब प्राचीन की पुनरावृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। हमे अपनी सीमा समझनी होगी। विज्ञान और अध्यात्म मे कोई विरोध नही है। न्यूटन और आइनस्टीन जैसे आध्यात्मिक पुरुष कहाँ मिलेंगे? अलीगढ मे श्री विन्ध्यवासिनी सिंह ने कहा कि आत्मशोध ही आचार्य

के लिए मुख्य बात है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के श्री राधेश्याम शर्मा ने कहा कि शिक्षा का सुधार केवल आचार्य ही नहीं कर सकते, यह सबका काम है। छात्रों की तोड़ फोड़ तो जीवन का लक्षण है और आचार्यकुल का काम उनके इस जोश को दिशा देना है। विज्ञान का उपयोग तो हम करना होगा, क्योंकि विज्ञान मे अधिक ईमानदारी होती है। वैज्ञानिक अन्य लोगों की अपेक्षा ईमानदार होते हैं। काशी विद्यापीठ के श्री खुशालचन्द गोरावाला ने कहा कि आचार्यकुल समान वेतन और शिक्षा के स्वरूप को आमूल बदलने का काम करेगा तो ही वह सफल होगा।

बहस का समापन करते हुए श्री रोहित मेहता ने कहा कि मेरे 'वर्किङ्ग पेपर' पर जो चर्चा हुई है, उसका स्पष्टीकरण करते हुए मुझे दो-चार बातें ही कहनी हैं। कहा गया है कि मेरे विचार बहुत कुछ स्वप्न हैं और उनको धरती पर उतारना कठिन होगा। मेरा कहना है कि आचार्यकुल को स्वप्न देखने से डरना नहीं चाहिए। स्वप्न देखना भी एक साहस का काम है। आचार्यकुल मे स्वप्न देखने का साहस हो, वह स्वप्न देखे और स्वप्नों को कार्यरूप मे परिणत करे। मैंने तो इतना ही कहा है कि स्वप्न देखना और उन कार्यरूप मे परिणत करना, दोनो कार्य आचार्य के ही हों. कोई दूसरा उसके लिए यह काम न करे।

दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि आज शिक्षा-जगत् की सबसे बडी समस्या यह है कि अध्यापक मे एक निराशा व्याप्त हो गयी है। "कुछ नहीं हो सकता', वह ऐसा सोचने लगा है। मेरा कहना है कि आज "कुछ किया जाना चाहिए" के मनोभाव के साथ, बल्कि अधिक प्रबल रूप में "कुछ नही किया जा सकता है' के मनोभाव को समाप्त करना है। आचार्यकुल का मुख्य काम शिक्षकों और बुद्धिजीवियों म व्याप्त इस नैराश्य को समाप्त करना है।

अपने सदर्भ-लेख मे मैंने शिक्षा विभाग के लिए न्याय विभाग की भाँति स्वायत्तता की माँग की है। उसका अर्थ यह लगाया गया है कि मैं उस विभाग को 'हायरारकी' से परिचित होता तो यह बात नहीं कहता। विनोबाजी के साथ मैंने तो इतना ही कहा है कि जैसे न्याय विभाग सरकार से स्वतंत्र होकर निर्णय ले सकता है, वैसे ही शिक्षक ही यह तय करे कि वह क्या पढायेगा, कैसे पढायेगा, परीक्षा-पद्धति क्या होगी आदि। आचार्यकुल शिक्षक की ममता का आन्दोलन है। यहाँ 'हायरारकी' का प्रश्न नहीं उठता।

मैंने अपने 'वर्किङ्ग पेपर' में विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय की बात कही है। मैंने यह कहा है कि आज हमारे यहाँ केवल विज्ञान और तकनीकी की शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है और कला-विषयक (ह्यूमैनिटीज) शिक्षा की अवहेलना हो रही है। इस प्रकार की शिक्षा एकांगी है और इससे बचना चाहिए। विज्ञान से मुझे किसी प्रकार की चिढ़ नहीं है। मुझे एतराज तो विज्ञान की एकांगिता से है। एक विद्वान ने वैज्ञानिक की तुलना एक मछुवाहे से की है। उसके जाल में जितनी मछलियाँ आ गयी हैं, उन्हीं को वह समुद्र भर की मछलियाँ समझता है। यह दृष्टिकोण गलत है। विज्ञान को अपनी शक्ति के साथ सीमा का भी ज्ञान होना चाहिए। विज्ञान विषय नहीं है, एक दृष्टिकोण है। आचार्यकुल इस दृष्टिकोण का सृजन करे, यही मेरा निवेदन है।

यह भी कहा गया है कि वैज्ञानिक अधिक उदार होता है और न्यूटन और आइन्स्टाइन का उदाहरण दिया गया है, मैं उसे मानता हूँ। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि न्यूटन और आइन्स्टाइन विज्ञान के अध्यापक नहीं थे, वे वैज्ञानिक थे। आचार्यकुल की शिक्षा नीति में विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय द्वारा एक उदार दृष्टिकोण का सृजन करें, इतना ही मैंने कहा है और वह आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

एक दूसरी बात मैंने जेनेरेशन गैप के बारे में कही है। अब दो पीढ़ियों के बीच की दूरी पश्चिमी जगत में ही नहीं, यहाँ भी बढ़ रही है। आचार्यकुल को इस दूरी को पाटना होगा। और यह वह तभी कर सकता है जब वह शिक्षा के एक ऐसे वातावरण की कल्पना करे, जो बिल्कुल भय मुक्त हो। विद्यार्थी के साथ अध्यापक का सम्बन्ध, सहकार का हो। प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक 'पार्टीसिपेशन' का यह भाव भय मुक्ति के लिए आवश्यक है। उपनिषद् काल में भी यह भाव था। वहाँ भी गुरु शिष्य के साथ साथ ज्ञान-प्राप्ति के प्रयास की बात करता है। मैं कोई नयी बात नहीं कह रहा हूँ।

आचार्यकुल को नये प्रयोगों से डरना नहीं चाहिए। पाण्डिचेरी के नये प्रयोग के बारे में जहाँ छात्र अध्यापक, छात्राएँ साथ रहती हैं, जहाँ कोई घण्टा नहीं बजता, कोई कक्षा नहीं ली जाती। सिवाय भारत के संसार ने इनकी परीक्षाओं को मान्यता प्रदान किया है।

मुझे अन्त में सिर्फ एक बात कहनी है—आप आचार्यों में जो आत्म तुष्टि की भावना है, उससे बचना होगा। आपका घर जल रहा है। जो आग बंगाल तक आयी है, उसे आपके यहाँ आने में कितनी देर लगेगी ? उस समय आपको

यह कालेज के चहारदीवारी की सुरक्षा बचा सकेगी क्या ? युवा के इस विद्रोह को यदि आपन रचनात्मक दिशा नही दी, तो आप बच नही सकेंगे। आचार्यकुल इस प्रकार की दिशा के लिए ही बना है। जब तक शिक्षक का क्रान्तिकारी रूप प्रकट नही होता, जब तक वह वस्तुस्थिति के खिलाफ लडने के लिए स्वय तैयार नही होना, तब तक वह युवक विद्रोह को भी दिशा नहीं दे सकता।'

चतुर्थ सत्र (२।१ से ५ तक)

सम्मेलन का अतिम तथा चौथा सत्र काशी विद्यापीठ के उपकुलपति श्री राजाराम शास्त्री जी की अध्यक्षता मे आरम्भ हुआ। पहले दो सत्रो मे हुई चर्चाओंके निष्कर्षों की दृष्टि से इस द्वितीय सत्र मे श्री राममूर्तिजी द्वारा प्रस्थापितविषय के निष्कर्षों पर विचार करने के लिए सात सदस्यो की एक समिति बनायी गयी १ आचार्य राममूर्तिजी, २ श्री सिहासन सिहजी, ३. श्री हरिहर नाथ टण्डन, ४ श्री शिवकुमार मिश्र, ५. श्री केशवचन्द मिश्र, ६ डा० पी० के० जैन और ७ श्री वशीधर श्रीवास्तव।

इस समिति की ओर से श्री केशवचन्द्र मिश्र ने आचार्यकुल की सरचना, सगठन तथा कार्यक्षेत्र के बारे में समिति के निष्कर्षों का निम्नाकित नोट प्रस्तुत किया —

१. सदस्यता

(क) प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक के सभी आचार्य आचार्यकुल के सदस्य हो सकते हैं।

(ख) ऐसे लोक शिक्षक, साहित्यिक, पत्रकार, चिन्तक और समाज-सेवक भी, जिनका विश्वास आचायकुल की निष्ठाओं म है, आचार्यकुल के सदस्य हो सकेंगे।

(ग) सदस्यता के लिए निम्नाकित सकल्प अनिवार्य होगे

१ सत्ता, दलगत राजनीति और गुटबन्दी से अलग रहना।

२ हिंसा के माध्यम के स्थान पर विचार के माध्यम और हृदय परिवर्तन क माग का अवलम्बन।

३ लोक सेवा, लोक शिक्षण, और लोकशक्ति निर्माण का कुछ न कुछ काम अवश्य करना।

४ अधिकार के स्थान पर कर्तव्य को प्रमुखता देना।

५. आचार्यकुल के सचालन के निमित्त कम से कम एक पैसा दैनिक के रूप में ३ ६५ रु० वार्षिक अशदान करना।

२ सगठन

(क) प्राचायकुल प्राचार्यो का एक स्वायत्त सगठन है जो किसी भी दूसरी सस्था के साथ अपने सम्बन्ध निर्धारण की नीति स्वय तय करेगा।

(ख) प्रारम्भिक विद्यालय से विश्वविद्यालय तक की सस्था प्राचार्यकुल की प्राथमिक इकाई होगी। इन इकाइयो के सदस्य सस्था के अध्यक्ष अथवा सयोजक का चुनाव करेंगे। एक प्रखण्ड के अन्तर्गत की इकाइयाँ क्षत्रीय आचायकुल का निर्माण करेंगी। एक जनपद के समस्त प्रखण्ड के सयोजक जनपदीय सयोजक प्रादेशिक सयोजक केन्द्रीय सयोजक और कार्यकारिणी का निर्वाचन करेंगे।

(ग) चुनाव और समितियो के निर्णय सब सम्मति से होंगे।

(घ) पदाधिकारियो एव समितियो की अवधि एक वर्ष की होगी। परन्तु एक व्यक्ति किसी पद या समिति के लिए एक से अधिक बार भी चुना जा सकता है।

३ सदस्यता शुल्क का विनियोग

सदस्यता शुल्क से प्राप्त धनराशि का ५ प्रतिशत केन्द्रीय आचायकुल और १० प्रतिशत प्रादेशिक प्राचार्यकुल को भेज दिया जायगा। शेष ८५ प्रतिशत के विनियोग का निणय, जनपदीय प्राचार्यकुल करेगा।

४. काय क्षेत्र

(क) शिक्षा की स्वायत्तता के लिए गोष्ठियाँ और परिषदें आयोजित करना और कार्यक्रम बनाना।

(ख) सदस्यो में अध्ययन अध्यापन की प्रवृत्ति जगाने के लिए सत्-साहित्य और आचायकुल-मुखपत्र का प्रकाशन।

(ग) बौद्धिक सामाजिक, राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए गोष्ठियाँ और परिषदें आयोजित करना और आचायकुल का निष्पक्ष अभिमत निवेदन करना।

(घ) लोक सेवा लोक शिक्षण लोकशक्ति निर्माण और लोकनीति विकास का काम करना।

(च) दुखी छात्रा और शिक्षको के कल्याण के लिए काम करना।

(छ) अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अन्य प्रयोग करना।

सम्मेलन ने आचार्यकुल की शिक्षा-नीति पर एक घोषणा-पत्र का प्रारूप तैयार करने के लिए निम्नांकित शिक्षाविदों की एक समिति गठित की :

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, भूतपूर्व रेक्टर, काशी हि० विश्वविद्यालय
२. श्री राजाराम शास्त्री, उपकुलपति, काशी विद्यापीठ
३. श्री रोहित मेहता, सदस्य, केन्द्रीय आचार्यकुल समिति, वाराणसी
४. श्री शीतल प्रसादजी, उपकुलपति आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
५ डा० सीताराम जायसवाल, रीडर, प्रशिक्षण-विभाग लखनऊ वि० वि०
६ श्री व्रजनन्दन स्वरूप, उपशिक्षानिदेशक, इलाहाबाद
७. श्री केशवचन्द्र मिश्र, प्राचार्य, मदनमोहन मालवीय डिग्री कालेज, भाटपाररानी, देवरिया
८ श्री शिवकुमार मिश्र, प्राध्यापक, सुदिष्टपुरी इण्टर कालेज, बलिया
९ श्री पी० के० जेना, सयोजक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आचार्यकुल
१० डा० आर० मिश्र डीन आफ साइन्स, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
११ आचार्य राममूर्तिजी, सर्व सेवा सघ, राजघाट, वाराणसी
१२ श्री वशीधर श्रीवास्तव, सर्व सेवा सघ, वाराणसी

श्री वशीधर श्रीवास्तव, इस समिति के योजक बनाये गये।

सम्मेलन ने यह भी प्रस्तावित किया कि यही समिति आचार्यकुल की सरचना और कार्यक्षेत्र सम्बन्धी प्रस्तुत मसविदे को शाब्दिक सशोधनो के साथ सम्मेलन की ओर से स्वीकृति प्रदान करे।

इस सत्र के बीच मे डा० हजारी प्रसादजी द्विवेदी आ गये थे, अत. उनसे भी *आचार्यकुल को मार्गदर्शन की प्रार्थना की गयी।* *उन्होंने* अपने उद्बोधन मे आचार्यकुल के आदर्शों की सराहना तथा उसके प्रयासो की सफलता की कामना की। उन्होने कहा कि श्री रोहित मेहता का प्रबन्ध वर्तमान शिक्षा के प्रति एक विद्रोह है। आज की शिक्षा एक जड-यत्र हो गयी है और उसमे शिक्षक की पहल समाप्त हो गयी है। गाधीजी ने जब नयी तालीम का नारा दिया था तो वे शिक्षा की इस जडता को ही तोडना चाहते थे।

सम्मेलन का समारोप भाषण करते हुए डा० श्रीमाली ने आचार्यकुल की सफलता की कामना करते हुए कहा कि आचार्यकुल का विचार अच्छा है, किन्तु काम कठिन है। हमे विचार तथा कथनी और करनी मे ऐक्य साधना होगा तभी कुछ हो सकेगा।

डा० आर० मिश्रा ने आभार प्रकट किया तथा श्री शीतल प्रसादजी ने प्रतिनिधियों और सभी भाग लेनेवालो को धन्यवाद दिया। ३० नवम्बर की साय साढ़े पाँच बजे सम्मेलन समाप्त हुआ।

—श्री शीतल प्रसाद, सयोजक, आचार्यकुल उत्तरप्रदेश

आचार्यकुल-आन्दोलन : सर्वेक्षण और समीक्षा

वंशीधर श्रीवास्तव

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

उत्तर स्वातन्त्र्य-काल के भारत की शिक्षा-जगत् की समस्याओं का अध्ययन किया जाय तो नीचे लिखी बातें सामने आती हैं :

(१) सरकार द्वारा शिक्षा-संस्थाओं की स्वायत्तता मे हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति बढी है, जिससे शिक्षा-संस्थाओं की स्वायत्तता मे ह्रास हुआ है।

(२) शिक्षण-संस्थाओं के राष्ट्रीयकरण की माँग बढ़ी है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाओं का राष्ट्रीयकरण किया जाय, ऐसी माँग शिक्षक-संघो की ओर से अनेक बार की गयी है, और आज भी की जा रही है। राष्ट्रीयकरण केन्द्रीयकरण को जन्म देता है और अगर शिक्षा का केन्द्रीयकरण हुआ तो विचारो के रेजिमेन्टेशन से और अधिनायकवाद से बचा नहीं जा सकेगा। यही लोकतंत्र का सबसे बडा संकट है।

(३) शिक्षा-संस्थाओं मे दलगत राजनीति का प्रवेश हुआ है। एक-एक विद्यालय मे अलग-अलग राजनीतिक दलो के गुट बन गये हैं, जो अपने निहित स्वार्थों के लिए छात्र और अध्यापक दोनों का शोषण करते है। हर दल अपने ही दल की बात को 'पूर्ण सत्य' मानकर उसका प्रचार करता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारी शिक्षा-संस्थाओं मे दलगत 'खण्डित सत्य' से ऊपर उठकर पूर्ण सत्य की बात सोचने और कहने की प्रवृत्ति कम होती जा रही है। अतः अगर दलगत राजनीति को शिक्षा-संस्थाओ मे खुलकर खेलने का अवसर मिला तो लोकतांत्रिक मूल्यों के शिक्षण की स्थायी क्षति होगी।

(४) शिक्षा प्रणाली के अनुत्पादक होने के कारण छात्रो मे विक्षोभ बढा है, जिसकी अभिव्यक्ति हिंसात्मक ढग से हो रही है। नक्सलवाद की दिशा में बढ़ती हुई तरुण छात्र की यह प्रवृत्ति हमारे लोकतंत्र को बहुत बड़ी चुनौती है।

(५) शिक्षा-प्रणाली के जन-जीवन से असम्बन्धित होने के कारण हमारे अध्यापक राष्ट्र की प्रमुख जीवन-धारा से पहले भी अलग थे। स्वतंत्रता के बाद लोक-जीवन के अधिक निकट आने के स्थान पर ये शिक्षक अपनी शिक्षा-संस्थाओं के शीशमहल मे और भी अधिक सिमट गये हैं।

(६) हमारे अध्यापक-वर्ग में अधिकार के लिए मांग की प्रवृत्ति बढ़ी है और अध्ययन अध्यापन में निष्ठा कम हुई है। शिक्षा के स्तर में गिरावट की सबसे अधिक जिम्मेदारी इसी प्रवृत्ति की है।

सन् १९६७ मे जब स्वर्गीय डाक्टर जाकिर हुसैन विनोबाजी से मिले तो उन्होंने शिक्षा जगत् की इन्ही समस्याओं की चर्चा की और उनसे मार्गदर्शन की अपेक्षा की। उन दिनों विनोबाजी पूसा रोड (बिहार) में रह रहे थे। अत वहाँ बिहार के विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों एव प्रमुख शिक्षा विशारदों के एक विद्वत् परिषद् का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन तत्कालीन शिक्षा मत्री श्री त्रिगुण सेन ने किया।

परिषद् को उद्बोधित करते हुए विनोबाजी ने शिक्षकों को अपनी स्वतत्र शक्ति खड़ी करने के लिए कृत-सकल्प होने की प्रेरणा दी। उन्होने कहा यह शिक्षा जगत् का दुर्भाग्य है कि जो स्वायत्तता इस देश मे न्याय विभाग को है उतनी स्वायत्तता भी शिक्षा विभाग को नही प्राप्त है। न्याय विभाग की सरकार के ऊपर एक स्वतत्र हस्ती है। यद्यपि उसको तनख्वाह सरकार की ओर से मिलती है तो भी वह सरकार के आदेशों के खिलाफ फैसला दे सकता है और उस फैसले पर सरकार को अमल करना पड़ता है। वैसे ही शिक्षक की भी स्वतत्र हस्ती होनी चाहिए। वह क्या पढावे कैसे पढावे परीक्षा की पद्धति क्या हो यह निर्णय आचार्य का होना चाहिए न कि सरकार का। परन्तु इस स्वायत्तता को प्राप्त करने के लिए और उसे ठीक ढग से कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षक सत्ता के पीछे न भागकर स्वय अपनी स्वतत्र शक्ति का विकास करे। यह तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक शिक्षक सत्ता एव सघर्ष की दलगत राजनीति से मुक्त होकर सकीर्ण मतवादों से ऊपर नहीं उठते और जन शक्ति पर आधारित लोकनीति को नही अपनाते। दलगत राजनीति से अलग हुए बिना शिक्षक राजनीति पर प्रभाव नहीं डाल सकते। परन्तु राजनीति से अलग हो जाने मात्र से काम नही चलेगा। अगर शिक्षक ऐसा मानते हैं कि हमने स्कूलों-कालेजों में पढ़ा दिया तो अब हमारा दूसरा कोई कर्तव्य नहीं है तो चलेगा नहीं। शिक्षकों का जन सेवा के माध्यम से जनता से सम्पर्क होना चाहिए। जनता के साथ सम्पर्क नहीं होगा उसके दुख-दारिद्रय के साथ करुणामूलक सहकार नहीं होगा और लोक शक्ति के निर्माण का प्रयास नही होगा तो राजनीति पर असर नहा पड़ेगा और शिक्षकों की स्वतत्र शक्ति नहीं खड़ी होगी।'

इस प्रकार की स्वतन्त्र शक्ति खड़ी करने के लिए विनोबा ने आचार्यों के एक संगठन की बात सुझायी। उन्होंने कहा—"हम सभी आचार्यों का एक ही परिवार होना चाहिए, ज्ञान की उपासना करना, अपनी चित्त-शुद्धि के लिए प्रयत्न करना, विद्यार्थियों के लिए वात्सल्य भाव रखकर उनके विकास के लिए सतत प्रयास करते रहना, सारे समाज के सामने जो समस्याएँ आती हैं, उनका तटस्थ भाव से चिन्तन करके सर्वसम्मति या निष्पक्ष निर्णय समाज के सामने रखना, और उनके अहिंसक निराकरण के लिए समाज का मार्गदर्शन करना।"

प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक के वे सभी शिक्षक इस परिवार के सदस्य होंगे जो इस बात का संकल्प करेंगे कि (१) न तो वे किसी राजनीतिक दल का सदस्य बनेंगे और न अपनी संस्था में किसी गुटबन्दी का समर्थन करेंगे, (२) वे सारे देश को शिक्षा का क्षेत्र मानकर विचार द्वारा अशान्ति के शमन का प्रयास करेंगे और किसी भी समस्या के समाधान के लिए हिंसात्मक मार्ग का न तो अवलम्बन करेंगे, न समर्थन करेंगे और (३) वे लोक-सेवा और लोक शक्ति-निर्माण का कुछ न-कुछ काम अवश्य करेंगे। (४) वे अधिकार को नहीं कर्तव्य को प्रमुखता देंगे।

विनोबाजी ने इस परिवार का नाम रखा 'आचार्यकुल' और उसकी स्थापना की घोषणा की प्राचीन विक्रमशिला विश्वविद्यालय के समीप के कहलगाँव (भागलपुर) में, जहाँ कभी उपनिषदों में प्रसिद्ध कहोल मुनि रहते थे। यह ८ मार्च, १९६८ की बात है।

प्रगति

तीन वर्ष की इस छोटी-सी अवधि में आचार्यकुल आन्दोलन देश के पाँच बड़े-बड़े राज्यों में—बिहार, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और राजस्थान में—फैला है। दिल्ली और उड़ीसा में भी कुछ चर्चा हुई है। परन्तु शेष प्रदेशों में अभी विशेष कुछ भी नहीं हुआ है।

जिन पाँच प्रदेशों में काम हो रहा है, उनमें बिहार, उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र की व्यक्तिगत शिक्षा संस्थाओं में आचार्यकुल स्थापित करने के अलावा जिला के संस्थागत आचार्यकुलों का संयोजन कर जिला स्तर के आचार्यकुल भी कायम हुए हैं। बिहार में मुजफ्फरपुर, मुंगेर और भागलपुर में, उत्तर प्रदेश में गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, आजमगढ़, फैजाबाद, फतेहगढ़ और कानपुर में जिला स्तर के संगठन बने हैं। उत्तरप्रदेश में इन जिलों के

अतिरिक्त २४-२५ और जिले हैं, जहाँ आचार्यकुल के विचार-प्रचार का काम हुआ है। महाराष्ट्र मे कुल २६ जिले हैं। इनमें से ९ जिलो मे जिला-स्तरीय आचार्यकुल स्थापित हुए हैं और ११ जिलों मे आचार्यकुल के विचार-प्रचार का काम हुआ है। अब तक जो सूचना प्राप्त हुई है, उसके अनुसार उत्तरप्रदेश मे सदस्यों की सख्या लगभग १०००, महाराष्ट्र मे २२५ हैं और बिहार मे लगभग १२०० हैं। मध्यप्रदेश और राजस्थान से सूचना नही मिली है।

अपने लक्ष्यो की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रदेशो मे आचार्यकुल ने नीचे लिखे काम किये हैं

(१) आचार्यकुल के विचार को समझने समझाने के लिए और सगठन को कार्यकारी रूप देने के लिए आचार्यों और शिक्षको की सभाएँ और गोष्ठियाँ आयोजित की गयी हैं। अभी अधिकाश स्थानो मे विचार प्रचार का यही काम हुआ है।

(२) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्यकुल ने छात्रो के विश्व-विद्यालयी जीवन को सुविधाजनक और सपन्न बनाने के लिए और इस सम्बन्ध मे उनका मार्गदर्शन करने के लिए आचार्यकुल के सदस्यो की कई उपसमितियाँ बनायी हैं। आचार्यकुल के लक्ष्यों को दृष्टि में रखते हुए सर्वोत्तम छात्रावास को 'आचार्यकुल शील्ड' देने का भी आयोजन किया गया है।

(३) परिसवाद द्वारा सामाजिक और शैक्षिक समस्याओ का निष्पक्ष हल प्रस्तुत करने की दिशा मे वाराणसी मे 'उत्तरप्रदेश छात्र सघ अध्यादेश' पर एक सेमिनार का आयोजन किया गया है, जिस पर पहली बार आचार्यकुल के पक्षमुक्त मच से विभिन्न राजनैतिक दलो के प्रतिनिधियो के अलावा शिक्षा-सस्थाओ और छात्रो के प्रतिनिधियो ने अपनी बात कही और सबकी बात सुनकर आचार्यकुल ने अपनी निष्पक्ष राय दी। उस राय की कितनी कदर होती है, यह महत्त्व की बात नहीं है। महत्त्व की बात है समाज की समस्याओं पर विचार करने के लिए पक्षमुक्त समान मच की स्थापना और परिसवाद द्वारा निष्पक्ष हल प्रस्तुत करने का प्रयास।

(४) महाराष्ट्र मे तरुण शक्ति को रचनात्मक मोड देने के लिए आचार्यों और छात्रो के दो सह शिविर आयोजित हुए हैं, जिनमे उपस्थित रहनेवाले की सख्या क्रमश ८० और १२५ थी। इन शिविरो में इस बात को व्यावहारिक रूप देने की चेष्टा की गयी कि शिक्षकों और छात्रो के बीच में किसी प्रकार का

वग-विग्रह नहीं है। बिहार मे भी आचार्यकुल और तरुण शान्तिसेना के कुछ सह शिविर हुए हैं और एक दूसरा सह शिविर २७-२८ दिसम्बर, १९७० को आयोजित हो रहा है।

(५) लोकशक्ति के निर्माण के लिए ग्रामदान ग्राम स्वराज्य की प्रक्रिया में सक्रिय सहयोग करने के विचार से कुशीनगर मे देवरिया जनपद के २० विभिन्न संस्थाओं के आचार्यकुल के संयोजकों और सदस्यों की एक बैठक हुई है, जिसमें यह निश्चय किया गया है कि उन तीन कालेजों में आचार्यकुल (इनमें एक डिग्री कालेज और दो इन्टर कालेज हैं) जहाँ ग्रामदान प्राप्ति की घोषणा हो चुकी है, अपनी संस्थाओं के ढाई मील की परिधि के भीतर आनेवाले ग्रामदानी गाँवों मे ग्रामदान ग्रामस्वराज्य का दर्शन समझने समझाने, ग्रामदान मे सकल्पित भूमि के वितरण और ग्रामसभा के निर्माण, का काम अपनी छुट्टी के समय करेंगे। इस प्रयोग का बहुत अधिक महत्त्व है, क्योंकि जब तक आचार्यकुल ग्राम शक्ति के निर्माण मे सहायक नहीं होता तब तक वह लोकशक्ति का निर्देशन नहीं कर पायेगा, जो उसका प्रमुख लक्ष्य है।

(६) सर्व सेवा संघ, वाराणसी मे (जून १९७० मे) उत्तरप्रदेश के पूर्वी अंचल के ५ जिलों के आचार्यकुल के सदस्यों की एक गोष्ठी का आयोजन हुआ है, जिसमे अन्य मुद्दों के अलावा विशेषतः शिक्षा की स्वायत्तता और आचार्यकुल के संगठन पर विचार हुआ। शिक्षा की स्वायत्तता के सम्बन्ध में उस गोष्ठी का यह निर्णय कि "पूरा पैसा सरकार का और पूरी स्वायत्तता आचार्य की'-एक सही कदम है। लोकतन्त्र की रक्षा के लिए शिक्षा को शासन-मुक्त होना चाहिए, क्योंकि शिक्षा अगर शासन के अधीन हुई तो विचारों के 'रेजिमेन्टेशन' और अन्ततोगत्वा अधिनायकवाद को जन्म देगी।

संगठन के विषय मे उस गोष्ठी ने निर्णय किया है कि यद्यपि आचार्यकुल के लिए किसी प्रकार के जटिल संगठन की आवश्यकता नहीं है फिर भी आचार्यकुल की इकाइयों को लेकर प्रादेशिक आचार्यकुल और प्रादेशिक आचार्यकुल को मिलाकर एक केन्द्रीय आचार्यकुल बनाने के लिए विधान बना लेना चाहिए। आगरा विश्वविद्यालय मे आयोजित केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की दूसरी बैठक मे विधान बनाने के लिए एक उपसमिति बनायी गयी थी, जिसने विधान का प्रारूप तैयार कर लिया है, परन्तु अभी उसे केन्द्रीय समिति की स्वीकृति नहीं मिली है।

(७) सदस्यता शुल्क के सम्बन्ध मे विनोबाजी ने सुझाव दिया था कि आचार्यकुल का सदस्य अपने वेतन का कम-से कम एक प्रतिशत दे, जिससे सगठन के सचालन के लिए समय देनेवाले कार्यकर्ताओ का वेतन दिया जा सके और गोष्ठियो, शिविरो और परिषदो का आयोजन हो सके। लेकिन यह कही भी नहीं हुआ है। अधिकाश लोग इस पक्ष मे हैं कि सस्थागत आचार्य-कुल जो भी सदस्यता-शुल्क निश्चय करे, वह मान्य हो, परन्तु यह शुल्क १ पैसा रोज अर्थात् ३-६५ पैसे से कम न हो।

(८) आचार्यकुल की स्थापना के बाद डेढ वर्ष तक आचार्यकुल आन्दोलन म किसी प्रकार की विशेष प्रगति न होती देखकर सर्व सेवा सघ ने अक्तूबर, १९६९ मे राजगीर सर्वोदय-सम्मेलन के समय एक केन्द्रीय आचार्यकुल समिति का निर्माण किया। इस समिति की पहली बैठक इलाहाबाद मे श्रीमती महादेवी वर्मा के निवास स्थान पर हुई थी, जिसमे यह निश्चय किया गया कि प्रादेशिक आचार्यकुल क अध्यक्ष और सयोजक केन्द्रीय समिति के सदस्य रहे। दूसरी बैठक आगरा विश्वविद्यालय मे हुई, जिसमे अन्य मुद्दो के अतिरिक्त दो मुद्दो पर विशेष रूप से चर्चा हुई—(१) सर्व सेवा सघ से आचार्यकुल का क्या सम्बन्ध रहे और (२) यह है कि ग्रामस्वराज्य की प्रक्रिया म आचार्यकुल का 'इन्वाल्वमेन्ट' कितना हो।

१ सगठन के सम्बन्ध मे मात्र इतना निवेदन है कि आज देश मे सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए जो प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, उन प्रवृत्तियो को चलानेवाली संस्थाओं का समुच्चय ही सर्व सेवा सघ है। 'आचार्यकुल' भी 'सर्व' के उदय के लिए चलनेवाली ही एक प्रवृत्ति है, और इस दृष्टि से सर्व सेवा सघ से उसका वैचारिक सम्बन्ध है और रहेगा। परन्तु इस समय स्थिति यह है कि आचार्यकुल की केन्द्रीय समिति का निर्माण भी प्रथम बार सर्व सेवा सघ की प्रबन्ध समिति ने ही किया है और आचार्यकुल आन्दोलन के लिए धन भी सघ से ही मिलता है। यह 'धन' बन्धन न बन जाय, यह आचार्यकुल के चिन्तन का विषय है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी से पूछा गया है कि आचार्यकुल का सर्व सेवा सघ से क्या सम्बन्ध रहे, तो उन्होंने उत्तर दिया कि आचार्यकुल जैसा भी चाहे सम्बन्ध रखे अर्थात् अगर आचार्यकुल चाहता है कि सर्व सेवा सघ उसकी आर्थिक सहायता करे, परन्तु दखल बिलकुल न दे तो वैसा सम्बन्ध रखे। और यह ठीक है कि आचार्यकुल की स्वायत्तता में कहीं किसी प्रकार का दखल न हो। परन्तु आचार्यकुल को यह तय करना है कि विनोबाजी ने जिस समय

क्रान्ति की कल्पना की है, आचार्यकुल सर्व सेवा सघ के साथ उसे शेयर करना चाहता है, या नहीं। वह बुनियादी क्रान्ति का शिक्षण करना चाहता है या केवल एक 'पामस ब्रदरहुड' बनना चाहता है। उत्तरप्रदेश का यह सम्मेलन इस सम्बन्ध मे अपनी राय व्यक्त करे।

२. जहाँ तक आचार्यकुल आन्दोलन का ग्राम स्वराज्य की प्रक्रिया मे 'इन्वाल्वमेंट' का सम्बन्ध है, विनोबाजी का कहना है कि आचार्यकुल को ग्रामदान आन्दोलन को उठा लेना चाहिए और आचार्यकुल का सक्रिय सहकार ग्रामदान आन्दोलन को मिलना चाहिए। शिक्षक ग्रामदान-प्राप्ति करे, भूमि-वितरण करे और ग्रामसभा को मार्गदर्शन दे। वे गाँवो के 'फ्रेण्ड फिलासफर' और 'गाइड' बनें। आचार्यों के हाथ मे विद्यार्थी हैं, ग्रामीण हैं, और शिक्षित लोग भी हैं। यह त्रिविध शक्ति खडी हो सकती है। अपना काम छोडकर करें, ऐसा नही, अपने काम के साथ करें। आचार्यकुल से विनोबा ने लोकनीति के निर्देशन की अपेक्षा की है, बिना इस 'इन्वाल्वमेंट' के यह निर्देशन सम्भव नही होगा। इस सम्बन्ध मे भी सम्मेलन को अपनी राय देनी है।

(९) एक दूसरी बात और है, जिसकी चर्चा वाराणसी और देवरिया, दोनो गोष्ठियों मे हुई है। आज सभी राज्यो मे शिक्षक सघ है, जो अपने सदस्य अध्यापको के अधिकार के लिए सरकार से या मैनेजर से लडते हैं। इन सस्थाओ के कुछ सदस्य आचार्यकुल के आन्दोलन को विरोधी मच स्थापित करने के प्रयास के रूप मे देखते हैं। हम उनसे कहते हैं कि आचार्यकुल इन सस्थाओ का विरोधी नहीं पूरक है। आचार्यकुल उनकी 'प्रोफेसनल' एकता को तोडने का नहीं, उनकी नागरिक हैसियत को बढ़ाने का कार्यक्रम है। उनकी एकता अगर टूटी तो दलगत राजनीति के प्रवेश से टूटेगी। आचार्यकुल तो इससे रक्षा का कार्यक्रम है। जहाँ तक अधिकारो का प्रश्न है, आचार्यकुल अधिकारों की माँग के लिए नही है, कर्तव्य की जागृति के लिए है, परन्तु अगर किसी भी समस्या के समाधान के लिए शिक्षक-सघो की माँग न्यायपूर्ण है और मार्ग शान्ति और अहिंसा का है तो आचार्यकुल उनका समर्थन करेगा। जो भी हो, आचार्यकुल का शिक्षक-सघ से क्या सम्बन्ध हो, इस पर भी विचार करना होगा।

[उत्तरप्रदेश आचार्यकुल सम्मेलन में श्री वशीधर श्रीवास्तव, सयोजक, केन्द्रीय आचार्यकुल समिति द्वारा प्रस्तुत आचार्यकुल आन्दोलन का प्रगति-विवरण]

शिक्षक आत्मशोधन करें

महादेवी वर्मा

शाश्वत ज्ञानपीठ और मोक्षदायिनी काशी नगरी मे स्थित महामना की इस तपोभूमि मे हम आज मानसिक मुक्ति के चिन्तन के लिए एकत्र हुए है। हमारी संस्कृति सदा से ही शासन और समाज दोनों की मार्गदर्शिका रही है। किन्तु जब पिछले २०० सालों से शासकों ने शिक्षा पर काबू करने का प्रयास किया, तब से ही हमारा मनोबल गिरने लगा, और शिक्षा शासनपरक बनती गयी। आज हमारे देश में एक दिशाभ्रम की स्थिति है। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा है कि किधर जायें और क्या करें। जीवन के हर क्षेत्र में, और शिक्षा म भी, राष्ट्रीयकरण का नारा व्याप्त है, किन्तु इस राष्ट्रीयकरण का अर्थ केवल 'सरकारीकरण' है। यह शाश्वत दासता की माँग है। जब बन्दी खुद ही कहने लगे कि मेरे पैरो म बेडियाँ डाल दो, तब उसका उद्धार कौन कर सकता है?

हम आज भी अंग्रेजों के द्वारा चालू की गयी शिक्षा-पद्धति को चला रहे हैं। स्वतन्त्रता के बाद भी शिक्षा नही बदली। पुराना चौखटा आज भी कायम है। नतीजा यह हुआ कि आज स्वतंत्र भारत का तरुण हमसे कुछ प्राप्त नहीं कर पा रहा है। वह बुद्धि से बौना और जीवन के सम्बल से वंचित होता जा रहा है। जिन युगों मे 'ज्ञान' 'मुक्त' रहा है, उन दिनो मानव भी 'मुक्त' रहा है। हमारी प्राचीन शिक्षा-पद्धति न शासनपरक थी न समाजपरक थी। वह तटस्थ रहकर दोनों को मूल्य प्रदान करती थी, और दोनों का मार्गदर्शन करती थी। हमारी परम्परा में गुरु तथा शिष्य दोनों का लक्ष्य आत्मशोधन के लिए विद्या देना तथा विद्या प्राप्त करना था, और यही कारण था कि उस वक्त का तरुण आत्म विश्वास से भरा होता था। वह ऐसा जमाना था जब 'सर्टीफिकेट' की जरूरत नहीं पडती थी। गुरुओ का नाम ही प्रमाण होता था। 'वसिष्ठ के आश्रम का विद्यार्थी हूँ, उनका शिष्य हूँ, इतना बताने पर विद्यार्थी कितनी क्षमतावाला होगा, यह जाना जाता था।

आज का तरुण विक्षुब्ध है। उससे सबसे अधिक खतरा आज स्वयं शिक्षक को ही है, क्योंकि वह उसे कुछ नही दे पाता, जिसके लिए छात्र उसके पास आता है। वह अपने जीवन की रिक्तता को भरने आरम्भ है, लेकिन शिक्षक के आने से, जाने से, उसके होने से, या न होने से विद्यार्थी के जीवन पर कोई असर

नही पडता। वह पास से गुजरता है तो रिक्तता भरती नहीं है, बल्कि उस सूखी धरती म जैसे दरारें पड जाती हैं। आज तरुण प्यार और सम्वेदना का प्यासा है, उस अमृत के लिए प्यासा है, जिसे केवल आचार्य ही दे सकता है। हम मेघ बनकर बरस जायें, सब दरारें, सब विषमताएँ पाट दें। समस्याओं का समाधान अगर नही हुआ तो ध्वस होगा। और तब नयी पीढ़ी हमे क्षमा नही करेगी।

यदि आज का छात्र विध्वस के मार्ग पर जाता है तो उसका दायित्व हम शिक्षको पर है। तरुण के आवेश को विवेक की शक्ति देकर उसका सर्जनात्मक विकास करना शिक्षकों का कर्तव्य है। आज की समस्याएँ विद्यार्थियों की नही, शिक्षकों की हैं; लेकिन इस ओर शिक्षको का ध्यान नही गया है। उनके सगठन अधिक वेतन तथा ग्रेड आदि की माँग तक सीमित हैं। समस्याओं का समाधान हो, शिक्षा सरकार से मुक्त हो, शिक्षको का वर्चस्व अखण्डित रहे ऐसी माँग कोई नही करता। विनोबाजी ने जब आचार्यकुल का विचार सुझाया तो उनके मन मे शिक्षा की स्वायत्तता और शिक्षको के अखण्डित वर्चस्व की ही बात थी। आचार्यकुल का काम आत्मशोधन तथा आत्ममथन की प्रेरणा देना है। अपने मनोबल और तपस्या के द्वारा नागरिक तथा समाज के वर्चस्व को कायम रखना तथा नयी पीढी के मार्ग को आलोकित करना हम शिक्षको का कर्तव्य होना चाहिए। यह हम तभी कर सकेंगे जब हमारा चरित्र उज्ज्वल हो, भावनाएँ उदात्त हों, और हम आज की राजनैतिक दलदल से बचे रहें। हमारी राजनीति तो विक्षिप्तों का एक मेला है। विक्षिप्तो के इस मेले मे, जहाँ साँझ सवेरे सत्ता के लिए दल-बदल होता है, कुर्सियाँ खींची और उल्टी जाती हैं, कोई नही यह जानता कि कल क्या होगा ? इस राजनीति ने शिक्षको का मनोबल दुर्बल किया है और समाज को तोडा है। इस राजनीति के फेर मे पडकर आज का वृद्ध और तरुण दोनो ही विक्षिप्त हो गये हैं।

और, हम शिक्षको ने तो छात्र को वात्सल्य तथा ज्ञान देने के बजाय उसे उत्तरपुस्तिकाओ मे कैद कर दिया है। ये उत्तरपुस्तिकाएँ ही उसके लिए कैवल्यदायिनी बन गयी हैं। शिक्षक एक जड यत्र जैसे बन गये हैं। इतने बडे समृद्ध ज्ञान के इस समृद्ध देश मे शिक्षक क्या यत्र बनकर ही रह जाना चाहते हैं ? वास्तव मे ज्ञान के सप्रेषण मे ही हम अपनी कीमत बना सकते हैं। शिक्षको का काम प्रतिदान का नही आत्मदान का सौदा है। हमे याद रखना चाहिए कि अधिकार माँगने से नहीं मिलता है। लेकिन कर्तव्य करने से जो अधिकार

मिलता है उसका इन्कार कोई नहीं कर सकता। वह कर्तव्य से स्वत प्राप्त हो जाता है। दीपक जब जलने लगता है तो अपने आप अँधेरे पर अपना अधिकार जमा लेता है। उसके जलने से ही एक प्रभामडल पैदा हो जाता है। वैसे ही बगिया मे फूल खिलने का कर्तव्य करता है तो उसकी खुशबू को तौल तौल कर बाँटने की जरूरत नही रहती है। खिलने से ही फैल जाने का अधिकार उसको प्राप्त हो जाता है।

आज पश्चिम की दुनिया मे साधनों का वैभव है, बुद्धि का वैभव है, लेकिन अन्तर से वे खाली हैं। जब बुद्धि का वैभव अपनी मर्यादा छोड देता है, तब जीवन का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। जैसे सागर का वैभव अपार है, लेकिन वह अपनी मर्यादा नहीं तोडता, अगर वह अपनी मर्यादा तोड दे, तो धरती का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाय। हमारे आदर्श और मूल्य पुरातत्व विभाग की कौतूहलवाली वस्तुएँ नहीं हैं। हर युग में यथार्थ तो बदलता है, लेकिन सत्य नहीं बदलता, जीवन के तथ्य तो बदलते हैं, लेकिन तत्त्व नही बदलते। हमारी सस्कृति के कुछ तत्त्व शाश्वत हैं। इस देश के चिन्तन मे कुछ ऐसे मूल्य हैं, जो सनातन हैं। हमे जो सत्य और तत्त्व उत्तराधिकार म मिले हैं, उन्हे सुरक्षित रखना और विकसित करना आचार्यकुल का कर्तव्य है। मनुष्य मनुष्य कैसे रहे, यह काम शिक्षकों को करना है।

हम यहाँ विचार करने बैठे हैं। विचार एक यज्ञ है, सकल्प भी एक यज्ञ है। लेकिन इतने से काम नहीं चलेगा। अँधेरे मे बैठकर दीपक की माला जपने से प्रकाश नहीं आयेगा, उसके लिए तो दीपक ही जलाना पडेगा। आचार्यकुल का हर सदस्य सकल्प करे, और स्वय दीपक बनकर जले, तभी वह नयी पीढी को और समाज को आलोकित कर सकेगा।

आज एक आँधी आयी है, और इतिहास मे आँधियाँ आती ही रहती हैं। परन्तु कोई ऐसी आँधी नही, जो जीवन की साँस बन सके। अगर आचार्यकुल तरुणों को, समाज को, प्राणदायिनी साँस दे सके, तो आँधी और झझावात गुजर जायेंगे, लेकिन जीवन कायम रहेगा। जीवन की ऋतु मे पतझड भी आते हैं, लेकिन पतझड पल्लवों और टहनियो मे आता है, वृक्ष की जड मे नही आता। अगर जड में भी पतझड आ जाय तो वृक्ष का जीवन ही समाप्त हो जाय। शिक्षकों का स्थान समाज रूपी वृक्ष की जड मे है। इसीलिए शिक्षको को शाश्वत मूल्यों और तत्त्वों से युक्त होना है।

[शेष पृष्ठ २४० पर]

आचार्यकुल : संरचना और कार्यक्षेत्र

रामभूर्ति

१. विशिष्टजन की दृष्टि से नहीं, सर्वजन की दृष्टि से देखें तो हमारे देश का पिछले तेईस वर्षों का इतिहास त्रिविध विफलता का इतिहास है।

इस लम्बी अवधि म फुटकर रूप से अनेक अच्छे काम हुए, एक के बाद दूसरी राष्ट्रीय योजनाएँ चलीं, विविध मतवादो के नाम मे अनेक राजनैतिक दल बने, सरकार और संस्थाओ का भरपूर विस्तार हुआ, लेकिन सर्वजन को दो प्रारम्भिक चीजें आज तक नहीं मिल सकीं—एक, समाज का समान सरक्षण दूसरी, तुल्य पारिश्रमिक। विशिष्टजन से आगे बढकर स्वतन्त्रता अभी तक सर्वजन के जीवन मे नहीं पहुँची। जन जन के जीवन मे स्वतन्त्रता को चरितार्थ करने में लोक-कल्याण की शासन नीति विफल हुई है विरोधवाद की *राजनीति विफल हुई है राहत की सेवा-नीति विफल हुई है। यह त्रिविध* विफलता देश की एक एक चीज म झलक रही है। जैसे जैसे दिन बीत रहे हैं, यह त्रिविध विफलता घनी होती जा रही है, यहाँ तक कि समाज अपनी मूलभूत समस्याओ की प्रतीति भी खोता जा रहा है, उनके शान्तिपूर्ण समाधान के सब रास्ते बद होते जा रहे हैं। सत्ता की राजनीति विरोधवाद, विरोधवाद के बाद सघर्षवाद की मंजिलें पार करती हुई सहारवाद के बिन्दु तक पहुँच गयी है। लोकतत्र का 'लोक' तत्र के भ्रमजाल मे फँसकर खो गया है। लोकतत्र वस्तुत दलतत्र होकर रह गया है। सरकारवाद को ही समाजवाद का नाम दिया जा रहा है। सेवा सत्ता की दासी हो गयी है, और सत्ता स्वय शस्त्र और सम्पत्ति के साथ जुड गयी है। ऐसी स्थिति मे शासक-सेठ सिपाही की सत्ता के नीचे नागरिक की बची खुची सत्ता भी समाप्त होती दिखायी दे, तो आश्चर्य क्या है ?

२ इस त्रिविध विफलता के कारण क्या हैं ? कारणो की विस्तार के साथ विभिन्न दृष्टियो से, छान बीन की जा सकती है, और उनके बारे मे ईमानदारी के साथ मतभेद भी हो सकते हैं, लेकिन एक बात साफ है वह यह कि स्वतत्र भारत के निर्माण म देश के लोक की शक्ति जान-बूझकर अलग रखी गयी। जिन शक्तियो से शासक सेठ और सिपाही काम करते हैं, यानी कानून, पूजी और शस्त्र, वे लोक' की शक्तियाँ नहीं हैं। हमारी राजनीति ने पिछले तेईस वर्षों म इन्हीं शक्तियो का इस्तेमाल किया। दूसरी शक्तियाँ

नहीं उभरीं। लोक की शक्ति के प्रकट होने के दो ही माध्यम हैं—बुद्धि और श्रम। दूसरी चीजों से कहीं अधिक, सत्यनिष्ठ बुद्धि के प्रकाश तथा कुशल उँगलियों के विधायक पुरुषार्थ के मेल से ही कोई पिछड़ा, गरीब, कमजोर समाज बदलता है, बनता है, बढ़ता है। हमने दूसरा बहुत कुछ किया, किन्तु इन शक्तियों की ओर ध्यान भी नहीं दिया, उलटे हमने अंग्रेजी राज की ही छोड़ी हुई बुनियादों पर एक विशाल पुराना-नया मिलाकर प्रतिष्ठान (इस्टे-ब्लिशमेंट) खड़ा कर लिया। इस राजनैतिक, आर्थिक और शैक्षणिक प्रतिष्ठान ने साइनबोर्ड तो सर्वजन का लगाया, लेकिन यह चलाया गया विशिष्टजन द्वारा, विशिष्टजन के लिए। इतने वर्षों के बाद वह भी अब टूट रहा है—अपने बोझ से, अन्तर्विरोध से। वह खुद भी टूट रहा है और समाज को भी तोड़ रहा है। जिस प्रतिष्ठान की जड़ें देश की परम्परा में, प्रतिभा में और परिस्थिति में न हों, वह कितने दिन तक चलेगा ?

३ प्रश्न है इस स्थिति में से निकलने का कोई उपाय है ? क्या राजनीति के पास कोई उपाय है ? व्यवसाय के पास है ? सेना के पास है ? विशेषज्ञों और विद्वानों के पास है ? दिखायी नहीं देता कि इनके पास है। तो किसके पास है ? हम कुछ भी कहें, उपाय विशिष्टजन के पास नहीं है, है सामान्यजन के पास, लेकिन उन्हें मालूम नहीं है कि उनके पास है। वे खुद इसी भ्रम में पड़े हुए हैं कि उनके प्रश्नों का उत्तर विशिष्टजन के पास है। इस भ्रम के कारण जो कुछ चल रहा है, उसे वे अस्वीकार नहीं कर पा रहे हैं, और जो होना चाहिए उसे समझ नहीं पा रहे हैं। इस व्यापक भ्रम और प्रमाद को कौन तोड़ेगा ? जिसमें होश होगा वही दूसरों में होश पैदा करेगा। नयी लोक-चेतना के आधार पर नयी लोक शक्ति का संगठन कौन करेगा ? जिसमें जोश होगा, वह करेगा।

इस चिंतन में से आचार्यकुल का जन्म हुआ है। होश की तलाश में आचार्यकुल मिला है, और जोश की तलाश में तरुण-शांतिसेना मिली है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, परस्पर पूरक हैं। ये सिक्के हमारे विद्यालयों में भरे पड़े हैं। हमारे विद्यालयों में विद्या का चाहे जितना लय होता हो, फिर भी उनमें ऐसे लोग हैं जिनके पास होश भी है, जोश भी है। वे अगर सामने निकल आयें तो देखते देखते हवा बदल जायगी। प्रचलित प्रतिष्ठान की—उसकी राजनीति, उसकी अर्थनीति और उसकी शिक्षण नीति, तीनों की—जड़ें हिल चुकी हैं। प्रतिष्ठान प्रतिष्ठा खो चुका है। परिस्थिति में परिवर्तन की माँग है, लोक मानस में एक बेचैनी है, जो प्रकट होना चाहती

के अनुसार चलने की पाबन्दी क्यों हो ? ये सभी आयाम हैं, जो आचार्यकुल के चिंतन के विषय बन सकते हैं, बनने चाहिए भी। शुरुआत स्थानीय या राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्नों पर पक्षमुक्त, वस्तुनिष्ठ, अभिमत से की जा सकती है। उ०प्र० आचार्यकुल द्वारा छात्र संघों के अध्यादेश पर विचार और अभिमत एक शुभ प्रयास था।

६ आचार्यकुल विचार की शक्ति में विश्वास रखनेवालों की समान बिरादरी है, इसलिए उसकी सदस्यता शिक्षक, विद्वान, साहित्यकार, कलाकार, पत्रकार, समाज सेवक, आदि सबके लिए खुली हुई है। विचार की शक्ति कैसे जगे, कैसे संगठित हो, और समाज के जीवन में कैसे निर्णायक बने, यह प्रश्न है। सर्वोदय आन्दोलन विचार की शक्ति द्वारा समाज परिवर्तन का एक व्यापक प्रयोग कर रहा है। ग्रामस्वराज्य में नये स्वामित्व और नये नेतृत्व की कल्पना ही नहीं, योजना भी प्रस्तुत हो चुकी है। 'ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य' के कई सघन क्षेत्रों में विकास की प्रक्रिया लागू हो चुकी है। आचार्यकुल इन प्रयोगों से जुड़कर विचार-शक्ति का सबसे यशस्वी माध्यम बन सकता है। एक एक प्राइमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक उसकी इकाइयाँ गठित हो सकती हैं। ये गठित इकाइयाँ अपने पड़ोस के गाँवों या मुहल्लों में शिक्षण और संगठन के अपने प्रयोग क्षेत्र अलग भी बना सकती हैं जिनमें आचार्यकुल और तरुण-शांतिसेना का सम्मिलित पुरुषार्थ प्रकट हो सकता है।

७ आज देश का सवजन जिस नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रहा है, वह उसे आचार्यकुल से ही प्राप्त हो सकता है लेकिन यह पात्रता उसमें तब आयेगी जब वह हितों को टकराने और वादों के विवाद की नहीं विज्ञान की, तन्त्र की नहीं लोक की, प्रतिष्ठान की नहीं नागरिक की, वाणी बनेगा। आचार्यकुल तथा तरुण शांतिसेना के सम्मिलित पुरुषार्थ से वह नयी 'जीवन नीति' (डिजाइन फार न्यू लिविंग) विकसित होगी जिसका मेल भारत की परम्परा, प्रतिभा और परिस्थिति से होगा। वह 'डिजाइन' विद्या और विद्रोह के ताने बाने से बनेगी।

---

* उ० प्र० आचार्यकुल सम्मेलन में प्रस्तुत निवेदन

आचार्यकुल और शिक्षक

राममूर्ति

[सम्मेलन में चर्चा के लिए प्रस्तुत निबन्ध पर चर्चा होने के बाद चर्चा का समापन करते हुए आचार्य राममूर्तिजी ने जो भाषण दिया, वह यहाँ दिया जा रहा है। स०]

शिक्षकों के हित

आचार्यकुल के आन्दोलन ने यह माँग की है कि आज जो शिक्षक की यह दुर्गति हो रही है, जिसकी वजह से उसे तरह-तरह के उलाहने सुनने पड़ रहे हैं, उनसे वह मुक्त हो। शिक्षक आज नौकर की स्थिति में है। आचार्यकुल उसे शिक्षक के रूप में देखना चाहता है, नौकर के रूप में नहीं। आज हम लोग अपनी आँखों से देख रहे हैं कि क्या विद्यार्थी, क्या श्रमिक और क्या शिक्षक, जहाँ कहीं भी दलों का प्रवेश हुआ वहाँ दलों के दल दल में उनकी समस्याएँ उलझ गयी। मजदूर ट्रेड यूनियनों का क्या हाल हुआ? एक दल के मजदूर एक तरफ, दूसरे दल के मजदूर दूसरी तरफ, वे भूल जाते हैं कि हम दोनों एक हैं। वे पार्टी के झंडे लेकर आपस में लड़ते हैं। शिक्षक भी जहाँ कहीं दलों में बँटे हैं, वहाँ वे शिक्षक नहीं रह जाते, वे दल के आदमी बन जाते हैं और उन्हींके इशारे पर सारे काम करते हैं। एक दल का शिक्षक दूसरे दल के शिक्षक के मुकाबिले खड़ा होता है। मुजफ्फरपुर में नगरपालिका का चुनाव हुआ। एक ही कालेज के दो प्रोफेसर एक ही चुनाव क्षेत्र से खड़े हुए और दोनों की तरफ से विद्यार्थी लट्ठ लेकर अपने-अपने गुरुओं की सेवा के लिए तत्पर हुए। यह चीज शिक्षक की ताकत को बढ़ानेवाली है या विद्यार्थी की ताकत को बढ़ानेवाली है? इससे हमारी पेशे की एकता भी नहीं रहेगी, और बातें तो जाने दीजिए। इसलिए इस आन्दोलन ने मान्य किया है कि अपने पेशे, अपने व्यवसाय, के हितों की रक्षा के लिए शिक्षक अपना कोई संगठन बनाता है तो जरूर बनाये। वह अपने हितों की रक्षा करे। आज के समाज में यह कोई नहीं कहेगा कि ऐसा वह न करे। अपने हितों को लेकर वह कोई लड़ाई छेड़ता है और आचार्यकुल यह समझता है कि यह लड़ाई उचित है तो वह उस लड़ाई का समर्थन करेगा, लेकिन आचार्यकुल अगर यह समझता है कि शिक्षक-संघ ने जो लड़ाई छेड़ी है वह उचित नहीं है तो वह समर्थन नहीं करेगा। आप यह तो नहीं कहेंगे कि शिक्षक संघ की छेड़ी हुई लड़ाई उचित ही होगी? आचार्यकुल निडर होकर,

है, कुछ करना चाहती है। अगर परिस्थिति में परिवर्तन का संकेत है तो लोक-मानस में परिवर्तन की रुझान है। हाँ, लोगों के सामने परिवर्तन का चित्र अभी स्पष्ट नहीं है। स्पष्ट हो भी कैसे ? दलों के अपने-अपने 'सत्यों' के कोलाहल में सत्य—पक्ष-मुक्त, आग्रह-मुक्त सत्य—की वाणी बोलता कौन है ? विज्ञान और लोकतंत्र के इस युग में अगर सत्य पक्ष और आग्रह से मुक्त न हो, और अगर वह सत्य 'सर्व' का न हो, तो उसकी शक्ति क्या होगी, और उसका मूल्य क्या होगा ?

४. क्या आचार्यकुल मतवादों और पक्षों के 'सत्य' से ऊपर उठकर विज्ञान के सत्य की वाणी बन सकेगा ? क्या वह अपने सीमित दायरे से निकलकर सर्व की बात कह सकेगा ? विज्ञान और लोकतंत्र के मूल्यों को माननेवाली वाणी दूसरी क्या बात कहेगी ?

विनोबा ने आचार्यकुल से यही अपेक्षा रखी है। आचार्यकुल और तरुण-शांतिसेना में उन्होंने विद्वान और जवान की शक्तियों का मेल देखा है। अगर ये शक्तियाँ सामान्यजन की शक्ति के साथ जुड़ जायँ तो 'सर्व' के उदय का रास्ता खुल जायेगा। सर्वोदय-आन्दोलन ने ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य की योजना इसी दृष्टि से देश के सामने प्रस्तुत की है।

लोक-शक्ति का काम शिक्षण और संगठन का है, दलबन्दी और संघर्ष का नहीं। लोक-शिक्षण और लोक-संगठन के क्रम में अन्याय और अनीति का प्रतिकार हो सकता है, और होना भी चाहिए। किन्तु लोक-शक्ति और सत्ता के संघर्ष में मेल नहीं है। अगर लोकतंत्र में दलों की सत्ता से आगे जाकर लोकसत्ता कायम करनी हो तो लोक-जीवन को दलों से मुक्त कर उसे स्वायत्त, सहकारी इकाइयों में संगठित करने के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं है। यदि लोक-शिक्षण द्वारा यह स्थिति पैदा करनी हो तो स्वभावतः स्वयं शिक्षण को अपनी लक्ष्मण-रेखा से बाहर निकलना पड़ेगा। तभी शिक्षण एक सामाजिक शक्ति (सोशल फोर्स) बन सकेगा। आज शिक्षण 'स्टेटस् को' (यथास्थिति) का अंग है; वह राजनीति और व्यवसाय की शिक्षण-विरोधी शक्तियों का पिछलग्गू बना हुआ है।

५. शिक्षण को सामाजिक शक्ति के रूप में देखा जाय तो उसके तीन आयाम प्रस्तुत होते हैं :

एक, समाज-परिवर्तन की गत्यात्मकता (डाइनेमिक्स आव सोशल चेंज);
दो, निर्माण की प्रक्रिया (प्रोसेस आव डेवलपमेन्ट);
तीन, क्रमिक पाठन की पद्धति (मेथड आव टीचिंग)।

इमें इन तीनों आयामों को सामने रखकर सोचने की जरूरत है। तीसरे आयाम पर गांधीजी के जमाने से लेकर आज तक काफी नया चिंतन, शोध और प्रयोग हुआ है, लेकिन पहले और दूसरे आयाम अछूते पड़े हुए हैं। जब राजनीति अपनी गत्यात्मकता खो चुकी हो तो शिक्षण की गत्यात्मकता का *शोध और प्रयोग समाज के विकास के लिए अत्यन्त और तत्काल आवश्यक* है। विचार को पक्ष और आग्रह से मुक्त कर उसकी शक्ति प्रकट करने का प्रयास, हितों के संघर्ष के धरातल से ऊपर उठाकर समान हित की भूमिका का विकास, संघर्षों के शान्तिपूर्ण हल के मार्गों की शोध व्यावसायिकता में अलग हर व्यक्ति की नागरिकता की प्रतिष्ठा, आदि प्रश्न शिक्षण की 'डाइनेमिक्स' के अन्तर्गत हैं। इसके अन्तर्गत तरुणों का विद्रोह शिक्षण भी है। विधायक विद्रोह का पूरा शास्त्र और उसकी कार्य पद्धति विकसित करने की जरूरत है, नहीं तो जिस तरह विज्ञान शास्त्र में, लोकतंत्र दल में, समाजवाद सरकार में उलझकर रह गया है, उसी तरह विद्रोह-भावना भी गुस्से, प्रहार और निष्प्रयोजन संघर्ष में खत्म हो जायगी, जब कि जरूरत यह है कि विद्रोह भावना को नवनिर्माण की रचनात्मक शक्ति के रूप में विकसित किया जाय। यह काम शिक्षण ही कर सकता है। आज दुनिया के विद्रोही युवकों की माँग भी है कि उन्हें ऐसा शिक्षण नहीं चाहिए जो राजनीति और व्यवसाय का गुलाम हो।

देश में निर्माण के कार्यों की कमी नहीं है, लेकिन निर्माण की कोई क्रिया *शैक्षणिक ढंग से नहीं चलायी जाती। अगर शैक्षणिक ढंग से चलायी जाय तो* काम अच्छा हो, युवक श्रमिक का कौशल बढ़े। उसकी बुद्धि जगे, उसका सांस्कृतिक स्तर ऊँचा हो, और उसके अन्दर सम्मानपूर्ण नागरिक बनने की आकांक्षा पैदा हो। इस भूमिका में एक पूरे गांव को विद्यालय मानकर शिक्षण का सर्वांग सम्पूर्ण प्रयोग किया जा सकता है। निर्माण के किसी कार्य को शिक्षण का 'प्रोजेक्ट' तो माना ही जा सकता है।

शिक्षण के नये आयामों को सामने रखने से शिक्षक की अपने व्यवसाय के प्रति सारी दृष्टि बदल जाती है। *शिक्षण और विद्यार्थी, शिक्षण और समाज,* तथा शिक्षण और सरकार के बीच सम्बन्धों की भूमिका भी बदल जाती है। विद्यालय किसी बाहरी शक्ति द्वारा संचालित होनेवाला मात्र 'विभाग' नहीं रह जाता, बल्कि शिक्षक-शिक्षार्थी अभिभावक के अभिक्रम और निर्णय से चलनेवाला एक 'ज्वाइंट इन्टरप्राइज' बन जाता है। साधनों की सहायता समाज और सरकार दोनों से प्राप्त हो, लेकिन समाज की 'कन्फर्मिटी' और सरकार के हुक्म

है, कुछ करना चाहती है। अगर परिस्थिति में परिवर्तन का संकेत है तो लोक-मानस में परिवर्तन की रुझान है। हाँ, लोगों के सामने परिवर्तन का चित्र अभी स्पष्ट नहीं है। स्पष्ट हो भी कैसे ? दलों के अपने-अपने 'सत्यों' के कोलाहल में सत्य—पक्ष-मुक्त, आग्रह-मुक्त सत्य—की वाणी बोलता कौन है ? विज्ञान और लोकतन्त्र के इस युग में अगर सत्य पक्ष और आग्रह से मुक्त न हो, और अगर वह सत्य 'सर्व' का न हो, तो उसकी शक्ति क्या होगी, और उसका मूल्य क्या होगा ?

४. क्या आचार्यकुल मतवादों और पक्षों के 'सत्य' से ऊपर उठकर विज्ञान के सत्य की वाणी बन सकेगा ? क्या वह अपने सीमित दायरे से निकलकर सर्व की बात कह सकेगा ? विज्ञान और लोकतन्त्र के मूल्यों को माननेवाली वाणी दूसरी क्या बात कहेगी ?

विनोबा ने आचार्यकुल से यही अपेक्षा रखी है। आचार्यकुल और तरुण-शान्तिसेना में उन्होंने विद्वान और जवान की शक्तियों का मेल देखा है। अगर ये शक्तियाँ सामान्यजन की शक्ति के साथ जुड़ जायँ तो 'सर्व' के उदय का रास्ता खुल जायेगा। सर्वोदय-आन्दोलन ने ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य की योजना इसी दृष्टि से देश के सामने प्रस्तुत की है।

लोक-शक्ति का काम शिक्षण और संगठन का है, दलबन्दी और संघर्ष का नहीं। लोक-शिक्षण और लोक-संगठन के क्रम में अन्याय और अनीति का प्रतिकार हो सकता है, और होना भी चाहिए। किन्तु लोक-शक्ति और सत्ता के संघर्ष में मेल नहीं है। अगर लोकतंत्र में दलों की सत्ता से आगे जाकर लोकसत्ता कायम करनी हो तो लोक-जीवन को दलों से मुक्त कर उसे स्वायत्त, सहकारी इकाइयों में संगठित करने के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं है। यदि लोक-शिक्षण द्वारा यह स्थिति पैदा करनी हो तो स्वभावतः स्वयं शिक्षण को अपनी लक्ष्मण-रेखा से बाहर निकलना पड़ेगा। तभी शिक्षण एक सामाजिक शक्ति (सोशल फोर्स) बन सकेगा। आज शिक्षण 'स्टेटस् को' (यथास्थिति) का अंग है, वह राजनीति और व्यवसाय की शिक्षण-विरोधी शक्तियों का पिछलग्गू बना हुआ है।

५. शिक्षण को सामाजिक शक्ति के रूप में देखा जाय तो उसके तीन आयाम प्रस्तुत होते हैं :

एक, समाज-परिवर्तन की गत्यात्मकता (डाइनेमिक्स ऑव सोशल चेंज);
दो, निर्माण की प्रक्रिया (प्रोसेस ऑव डेवलपमेन्ट);
तीन, क्रमिक पाठन की पद्धति (मेथड ऑव टीचिंग)।

आचार्यकुल और शिक्षक

राममूर्ति

[सम्मेलन में चर्चा के लिए प्रस्तुत निबन्ध पर चर्चा होने के बाद चर्चा का समापन करते हुए आचार्य राममूर्तिजी ने जो भाषण दिया, वह यहाँ दिया जा रहा है। स०]

शिक्षकों के हित

आचार्यकुल के आन्दोलन ने यह माँग की है कि आज जो शिक्षक की यह दुर्गति हो रही है, जिसकी वजह से उसे तरह-तरह के उलाहने सुनने पड रहे हैं, उनसे वह मुक्त हो। शिक्षक आज नौकर की स्थिति में है। आचार्यकुल उसे शिक्षक के रूप में देखना चाहता है, नौकर के रूप में नहीं। आज हम लोग अपनी आँखों से देख रहे हैं कि क्या विद्यार्थी, क्या श्रमिक और क्या शिक्षक, जहाँ कहीं भी दलों का प्रवेश हुआ वहाँ दलों के दल दल में उनकी समस्याएँ उलझ गयी। मजदूर ट्रेड यूनियनों का क्या हाल हुआ ? एक दल के मजदूर एक तरफ, दूसरे दल के मजदूर दूसरी तरफ, वे भूल जाते हैं कि हम दोनों एक हैं। वे पार्टी के झडे लेकर आपस मे लडते हैं। शिक्षक भी जहाँ कहीं दलो में बँटे हैं, वहाँ वे शिक्षक नही रह जाते, वे दल के आदमी बन जाते हैं और उन्हींके इशारे पर सारे काम करते हैं। एक दल का शिक्षक दूसरे दल के शिक्षक के मुकाबिले खडा होता है। मुजफ्फरपुर मे नगरपालिका का चुनाव हुआ। एक ही कालेज के दो प्रोफेसर एक ही चुनाव क्षेत्र से खडे हुए और दोनों की तरफ से विद्यार्थी लट्ठ लेकर अपने-अपने गुरुओं की सेवा के लिए तत्पर हुए। यह चीज शिक्षक की ताकत को बढानेवाली है या विद्यार्थी की ताकत को बढानेवाली है ? इससे हमारी पेशे की एकता भी नहीं रहेगी, और बातें तो जाने दीजिए। इसलिए इस आन्दोलन ने मान्य किया है कि अपने पेशे, अपने व्यवसाय, के हितों की रक्षा के लिए शिक्षक अपना कोई सगठन बनाता है तो जरूर बनाये। वह अपने हितों की रक्षा करे। आज के समाज में यह कोई नहीं कहेगा कि ऐसा वह न करे। अपने हितों को लेकर वह कोई लडाई छेडता है और आचार्य कुल यह समझता है कि यह लडाई उचित है तो वह उस लडाई का समर्थन करेगा, लेकिन आचार्यकुल अगर यह समझता है कि शिक्षक-सघ ने जो लडाई छेडी है वह उचित नहीं है तो वह समर्थन नही करेगा। आप यह तो नहीं कहेग कि शिक्षक सघ की छेडी हुई लडाई उचित ही होगी ? आचार्यकुल निडर होकर,

है हो, तबीयत भरी है कि आपके करीब बैठूं हो सकता है कि आज मैं झूठा हूँ तो आपके पास बैठने से मेरा झूठ निकल जाय। आज मैं शराबी हूँ, आज कुछ थोडी-सी पी है, हो सकता है कल से छोड दू। आखिर आप कहेंगे क्या? इस तरह से अगर मनुष्य को हम पापो की सूची बनाकर अलग करते चले जायेंगे तो यही क्या गारटी रह जायेगी कि हम पापो से बचे रह जायेंगे? हमको भी दूसरे लोग कह देंगे कि तुम्हारे अन्दर भी १०१ पाप होगे, तुमने देखा ही नहीं अपने पापो को इसीलिए पुण्यात्मा बने हुए हो। आज के लोकतन्त्र में समान वोट का अधिकार हरेक व्यक्ति को मिला है। मान लीजिए कि किसी भी तरह, सिफारिश से, नकल करके, इम्तहान पास किया और शिक्षक बन गया तो उसको आचार्यकुल का सदस्य बनने का अवसर मिलना चाहिए। अपनी बिरादरी मे उसको जगह दीजिए। वह खोटा सिक्का होगा तो दस हाथो मे जाने के बाद बाजार से निकल जायेगा। और अगर खरा होगा तो अपनी जगह कायम रहेगा और मुमकिन है कि आज नही तो कल उसके गुण विकसित हो। लेकिन 'एक्सिमिनेशन का प्रासेस मत चलाइए। बहिष्कार की प्रक्रिया कायम करके जातिवाद को हम फिर से नये रूप म प्रतिष्ठित न करें। बहुत अनुभव किया हमारे देश ने जातिवाद का। किसीको शूद्र कहा किसीको चाण्डाल कहा। हमारा पावित्र्यवादी हिन्दू समाज कहाँ से कहा गया! उसके हम मुक्तभोगी हैं, प्रत्यक्षदर्शी हैं। इसलिए पावित्र्यवाद के नाम मे नयी जातियां न कायम की जायँ। जो हमारे साथ मिलना चाहता है उसको हम स्वीकार करें और यह भरोसा रखें कि किसीकी छूत से हम अपवित्र नही होंगे। आचार्यकुल की सदस्यता ऐच्छिक है और ऐच्छिक ही रहनी चाहिए।

जिस किसी विद्यालय मे कुछ मित्र होंगे वहाँ आचायकुल की एक इकाई होगी। जबर्दस्ती किसी विद्यालय म इकाई बनाने की बात है नही। लेकिन यह बात जरूर है कि आचार्यकुल मे प्राइमरी स्कूल का शिक्षक डिग्री कालेज के प्रोफेसर के साथ बैठेगा। अगर हमारे अन्तरमन म किसी गरीब रिश्तेदार के लिए दुराव हो तो उसे निकाल देना चाहिए। मान लीजिए एक ब्लाक है जिसमे दस-बीस प्राइमरी स्कूल हैं। उन प्राइमरी स्कूलो मे से पांच मे आचार्यकुल की इकाइयां हैं। उनम २-२, ३-३ शिक्षक हैं। तो कोई तो आपको एक मच बनाना होगा जहाँ आप प्राइमरी स्कूल के शिक्षक को बुलायेंगे। सस्था मे एक इकाई होगी। ब्लाक स्तर पर हर इकाई के प्रतिनिधियो से ब्लाकस्तरीय इकाई बनेगी। ब्लाक इकाइयों से जिलास्तर की इकाई होगी। जिला इकाइयो से से प्रान्तीय, और प्रान्तीय इकाइयो से राष्ट्रीय इकाई बनेगी। प्राइमरी इकाइयो

से ऊपर उठते हुए राष्ट्रीय स्तर तक की इकाइयों तक पहुँचना होगा। इस तरह हमारी बराबरी संगठित होगी। बिरादरी ऐच्छिक होगी, लेकिन असंगठित नहीं होगी। अगर हमें अन्याय और अनीति का प्रतिकार करना है तो हमारी बिरादरी में प्रतिकार की सामर्थ्य होनी चाहिए। हमारी राष्ट्रीय आवाज होनी चाहिए। हमारी जोरदार आवाज नहीं होगी तो हम क्या करेंगे? हम यह दावा करते हैं कि हर स्थानीय, या राष्ट्रीय प्रश्न पर हम बिलकुल निष्पक्ष होकर, वैज्ञानिक रीति से, आब्जेक्टिव दृष्टि से, विचार करेंगे और अपनी राय समाज के सामने प्रस्तुत करेंगे। अगर राष्ट्रीय प्रश्न है तो राष्ट्रीय इकाई उस पर अपना राष्ट्रीय मत प्रकट करेगी। जब राज्य का प्रश्न होगा तो राज्य स्तर की इकाई अपना मत प्रकट करेगी। जिले के प्रश्न पर जिले की इकाई करेगी। इस तरह अपनी आवाज को प्रभावशाली बनाना पड़ेगा। सहकार शक्ति के विकास के लिए, प्रतिकार-शक्ति के विकास के लिए, हम बिरादरी की इतनी ताकत तो पैदा करनी ही होगी कि जरूरत पड़ने पर बोल सकें और कुछ कर सकें। उतनी ताकत की रक्षा करते हुए इस बिरादरी को जितनी ढीली-ढाली रखनी हो रखिए। संगठन शब्द में कठोरता की ध्वनि है। उस कठोरता की पहचान यह है कि हमारे ऊपर किसी दूसरे का आदेश लादा जा रहा है। हमारे ऊपर दूसरे का अनुशासन चल रहा है। आचार्यकुल में ऐसी बात नहीं है। उसमें किसी भी ऊपर की इकाई का आदेश नीचे की इकाई पर नहीं है, और न कोई शासन है। इसकी शक्ति आत्मानुशासन में है।

सर्वोदय आन्दोलन और आचार्यकुल

संगठन के संदर्भ में एक भाई ने यह सवाल उठाया है कि आज सर्व सेवा संघ की तरफ से सर्वोदय आन्दोलन चल रहा है, आचार्यकुल भी उसकी एक प्रवृत्ति है। जरूर विनोबाजी ने इस प्रवृत्ति को प्रेरणा दी है। लेकिन आपको सर्व सेवा संघ की दुम में बाँधने की कहीं कोशिश नहीं की गयी है। उलटे यह कहा गया है कि अगर आपको मदद की जरूरत हो, और आप समझते हों कि सर्व सेवा संघ से मदद मिल सकती है तो आप उसके हकदार हैं, लेकिन सर्व सेवा संघ इस बात का हकदार नहीं है कि जबर्दस्ती आपको घसीटकर अपने साथ ले चले। आपकी पूरी स्वायत्तता कायम है। आचार्यकुल जो भी सम्बन्ध रखना चाहे सर्वोदय आन्दोलन से रख सकता है। उसको यह भी छूट है कि अगर किसी वक्त वह महसूस करे कि सर्वोदय आन्दोलन से देश का अहित हो रहा है तो अपनी राष्ट्रीय इकाई में विचार करके उसे देश के नाम यह घोषणा करनी चाहिए कि देश में सर्वोदय के नाम से यह जो आन्दोलन

चल रहा है उससे देश को नुकसान हो रहा है, उससे देश की जनता को होशियार रखना चाहिए। इससे बढकर स्वायत्तता का आश्वासन क्या हो सकता है? यह आश्वासन आचार्यकुल को मिला हुआ है। इस आन्दोलन ने आचार्यों की बुद्धि पर भरोसा किया है। समय बतायेगा कि इस आन्दोलन का यह विश्वास कितना सही है। सर्वोदय आन्दोलन ने माना है कि आचार्यकुल सत्य की वाणी है। वह जिसे सत्य समझेगा, कहेगा। आचार्यकुल किसीका 'मास्टर्स वायस' नहीं है। वह अपने 'कान्शस' की बात कहेगा। इस आन्दोलन ने स्वायत्तता की बात यहाँ तक कही है।

स्वतन्त्र शिक्षा

आचार्यकुल के तमाम कामों में एक बहुत मुख्य काम है शिक्षा को सरकार के नियन्त्रण से मुक्त करना। आज माँग होती है राष्ट्रीयकरण की। शिक्षक अपने वेतन आदि को लेकर परेशान है। इस आन्दोलन ने यह कहा है कि जैसे न्याय विभाग को सरकार पैसा देती है, लेकिन किसी जज से यह नहीं कहती कि वह कानून को छोडकर मामले का फैसला करे। जो जज कानून के खिलाफ फैसला करता है वह बेईमान कहा जाता है। इसलिए सरकार साधन तो दे शिक्षा को लेकिन अपना नियन्त्रण उसके ऊपर न लादे। आचार्यकुल हर शिक्षा-संस्था को शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक के सम्मिलित 'इन्टरप्राइज' के रूप में देखता है। शिक्षा को वह 'स्टेट इन्टरप्राइज' के रूप में नहीं देखता। विद्यालय 'पब्लिक सेक्टर' का कारखाना नहीं है, 'ज्वाइन्ट इन्टरप्राइज' है इन तीन तत्त्वों की—शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक।

आचार्यकुल के कार्य

इसीलिए जब आचार्यकुल के कृत्यों (फंक्शन्स) की बात होती है तो तीन-चार बातें उभरकर सामने आती हैं। उसका सबसे बडा काम है सत्य की वाणी बनना। दल सत्य नहीं, जाति सत्य नहीं, धर्म-सत्य नहीं, सम्प्रदाय सत्य नहीं, सत्य, केवल सत्य। जो भी आज हमारी तटस्थ बुद्धि को सत्य मालूम होता है उसे आचार्यकुल समाज के सामने प्रस्तुत करेगा। साम्प्रदायिक प्रश्न है, सरकार के भ्रष्टाचार का प्रश्न है, जोर-जुल्म है समाज में कोई भी चीज है जिसकी तरफ आपका ध्यान जाता है तो आप उसके बारे में अपना तटस्थ मत समाज के सामने रख दें। ऐसा उत्तरप्रदेश के आचार्यकुल ने किया है मध्यादेश के बारे में। उसने ठीक समझा कि शिक्षण संस्था के जीवन में सरकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए तो उसने ऐसा कहा। उसने ठीक समझा कि छात्रसंघ ऐच्छिक

होना चाहिए तो उसने यह भी कहा। इसके लिए कुछ शाबाशी भी मिली, कुछ गाली भी मिली। यह नहीं सोचा आचार्यकुल ने कि हमारे विचार का क्या असर होगा। उसने अपनी बात कही। यह उसका एक बहुत बड़ा 'फंक्शन' है। आज समाज में सत्य की वाणी समाप्त हो गयी है। सारा सत्य पार्टी सत्य बन गया है। जनता भ्रम में है कि सचमुच सत्य क्या है। कोई तो हो जो सच बात कहे। यह आचार्यकुल का एक बड़ा फंक्शन है।

दूसरा काम उसका यह है कि एक विद्यालय शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक का इन्टरप्राइज कैसे बनता? इन तीनों की सम्मिलित निर्णय शक्ति कैसे विकसित होगी? तीसरा काम है शिक्षा को सरकार से स्वतंत्र करने का उपाय सोचना। चौथा काम है कि विचार की शक्ति का प्रवेश समाज में कैसे होगा? आज तो समाज तरह-तरह की मिथ्या धारणाओं और पक्षपातपूर्ण आग्रहों पर चल रहा है। यही कारण है कि किसी प्रश्न का कोई उचित हल नहीं निकलता। देवरिया के मित्रों ने यह तय किया है कि जहाँ जहाँ आचार्यकुल की स्थापना हुई है वहाँ हम २ ३ मील की सीमा में अपना प्रयोग क्षेत्र बनायेंगे और उन गाँवों में हम लोकशक्ति के संगठन का प्रयत्न करेंगे। गाँवों में सम्पत्ति के स्वामित्व का प्रश्न, झगड़ों का प्रश्न है, गरीबी से निपटने का प्रश्न है, और जुल्म से बचने का प्रश्न है, सरकार में गाँवों का प्रतिनिधित्व का प्रश्न है। ये ही प्रश्न ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन के सामने भी है। ये प्रश्न ऐसे हैं जो गाँवों के जीवन को गहराई से प्रभावित कर रहे हैं। देवरिया के मित्र एक सघन क्षेत्र में यह प्रयोग करके देखेंगे कि विचार समाज-परिवर्तन की 'डाइनेमिक्स' बन सकता है या नहीं। इसी तरह का एक क्षेत्र, देहात में या नगर में, यह विश्वविद्यालय ले सकता है। यहाँ का आचार्यकुल तय कर सकता है कि दो मील का यह क्षेत्र हमारा प्रयोग-क्षेत्र होगा—लोकतंत्र को जगाना और लोकशक्ति का संगठन करना ताकि वह इतनी सक्रिय हो जाय कि जनता में समस्याओं की सही प्रतीति हो और उनमें समस्याओं को हल करने की शक्ति पैदा हो। यह काम कैसे होगा? यह आप विद्वानों को दूसरा कौन बतायेगा? अर्थशास्त्र के विद्वान को, राजनीति के विद्वान को कौन बतायेगा? आपसे अलग दूसरा कौन व्यावहारिक कार्यक्रम देगा? आचार्यकुल की एक इकाई स्वयं सोचे कि उसके पड़ोस में १०० परिवारों का गाँव है, तो उसकी समस्याएँ कैसे हल होंगी। इस तरह की प्रतिभा आचार्यकुल में है, उसे अब प्रकट होना चाहिए।

तरुण शांतिसेना आचार्यकुल के साथ लगी हुई है। श्रम का पक्ष तरुण पूरा करें। बुद्धि का पक्ष आप पूरा करें। दोनों मिलकर समस्याओं का हल ढूँढ़ें।

समस्याओं का हल इस देश को कौन देगा ? देश मे तो ऐसा लगता है कि जैसे सवालों के जवाब ढूंढने की शक्ति ही खत्म हो गयी हो। सरकार ने खुद यह ठीकेदारी ली थी कि सारे सवाल हमारे पास भेजो हमारे ही जवाब देश के जवाब होंगे। उस ठीकेदारी का पता चल गया, लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि समाज ने भी अपनी शक्ति खो दी अब उस शक्ति को नये सिरे से जगाने का काम है। ये दिशाएँ हैं जिनमे हम अपने लिए व्यावहारिक कार्यक्रम खोज सकते हैं।

शिक्षा का घोषणा-पत्र

सारी शिक्षा के प्रश्न पर एक नयी दृष्टि रखने की बात है। शिक्षा की नयी पद्धति क्या होगी, उसकी नयी तकनीक क्या होगी ? ये सवाल तो हैं ही, लेकिन इन सवालो से कहीं ज्यादा महत्व इस सवाल का है कि आज शिक्षा की बुनियादें क्या होंगी ? शिक्षा का शिक्षक से क्या सम्बन्ध होगा ? शिक्षक विद्यार्थी का क्या सम्बन्ध होगा ? एक शिक्षक का दूसरे शिक्षक से क्या सम्बन्ध होगा ? शिक्षक और विद्यार्थी का समाज के साथ क्या सम्बन्ध होगा ? पूरे विद्यालय का समाज के साथ क्या सम्बन्ध होगा ? नयी शिक्षा मे हम कहाँ तक परम्परा को लेकर चलेंगे, और कहाँ तक आधुनिकता को स्वीकार करेंगे। ये तमाम प्रश्न शिक्षा के साथ जुड़े हुए हैं। आचार्यकुल इस बात पर जोर दे रहा है कि शिक्षण के पूरे प्रश्न पर एक नयी दृष्टि डाली जाय। इसलिए कल रोहितजी आपके सामने एक 'एजूकेशन मेनिफस्टो' की बात रखेंगे। जरूरत है कि शिक्षा का एक नया घोषणा-पत्र बने जिससे आप सहमत हों, और जिसके आधार पर समाज का लोकमत तैयार किया जाय। एक प्रेशर जेनरेट किया जाय। समाज से बातें मनवायी जायें, सरकार से भी मनवायी जायें शिक्षा-सस्थाओं से भी मनवायी जायें। क्या पद्धति होगी मनवाने की, यह भी सोचा जाय। अब आगे बढ़कर कुछ करना चाहिए। बैठने से काम नहीं चलेगा।

'रिसर्च' नहीं, 'सर्च'

यह बात तो ठीक है कि २३ वर्षों मे शिक्षा मे कोई बुनियादी सुधार नहीं हुआ, बल्कि कुछ पुरानी अच्छी चीजें भी खत्म हो गयी। दूसरे क्षेत्रों मे तो कुछ हुआ भी है, लेकिन शिक्षा मे कुछ नहीं हुआ। 'रिसर्च' बहुत हुई लेकिन 'सर्च' नहीं हुई, जब कि जरूरत आज के समाज को 'रिसर्च' से ज्यादा 'सर्च' की है। एक बात बिलकुल स्पष्ट है कि हमारा देश स्वतंत्र होने के बाद भी पश्चिम के ही पीछे चलता रहा—राजनीति मे, अर्थनीति मे, शिक्षा-नीति में, सबमे। पीछे

चलते चलते २३ वर्ष के बाद अब हम लोग एक-दूसरे का मुँह देख रहे हैं और पूछ रहे हैं कि हम कहाँ पहुँचे हैं, जैसे अंधेरे में कोई एक दूसरे से पूछे भाई तुम कहाँ हो ? यह हालत आज हम सबकी हो गयी है।

इस बात की जरूरत निर्विवाद है कि अब 'सच' होनी चाहिए—नय तरीकों की, नयी राजनीति की नयी अर्थ नीति की, नयी शिक्षा-नीति की। अगर 'सच' नहीं होगी तो रिसच' किस बात की होगी ? विनोबा ने और कुछ किया हो या न किया हो इतना तो किया ही है कि एक नयी दिशा सोचने के लिए प्रस्तुत की है। न्यूटन का सारा विज्ञान आज 'आउट आफ डेट' हो जाय, किन्तु उसने दुनिया के सामने एक नया सिद्धान्त तो प्रस्तुत किया ही था, जिसने विज्ञान को आगे बढाया। विनोबा ने देश को शोध की नयी दिशा दी है कि हमारे देश के लिए उपयुक्त कौनसा लोकतंत्र होगा, विकास की कौनसी रीति नीति होगी, शिक्षण कैसा होगा जिसका मेल हमारी परम्परा से हो, आज की परिस्थिति से हो हमारी 'नेशनल जीनियस' से हो। हम स्वतंत्र हुए, लेकिन हमने अपने लिए नया रास्ता नहीं ढूढा। इसके लिए हमारे नेता जिम्मेदार हैं। क्या आचार्यकुल मानेगा कि नये रास्ते खोजने का काम उसका है ? हमारे विद्यालयों से एक नयी विद्या निकले, नया प्रकाश निकले जिसमे देश की समस्याएँ देखी और हल की जायँ।

जितने लोग आचायकुल मे । व रिसर्च नहीं कर सकते, क्योंकि सुनते हैं कि वह बहुत टेक्नीकल काम हो गया है। हम मिठाई नही बना सकते, लेकिन जायका तो ले ही सकते हैं। मिठाई बनाना हलवाई का काम और जायका लेना ममज्ञ का काम जो रस पहचान सकता है। आचायकुल दोनों काम कर सकता है—समाज की परिस्थितियों मे शोध के नय रास्ते सोचना, निकालना, और दूसरे देशों के रास्ते को 'स्क्रीनिंग' करके समाज के सामने प्रस्तुत करना। अगर हमारे पास ऐसी कोई व्यवस्था होती तो हम पश्चिम से आनेवाले हर नमूने की 'स्क्रीनिंग करते। पश्चिम का प्रवाह हमारे देश को बहाता चला जा रहा है, उसकी छान-बीन कौन करेगा ? हम कुप मंडूक नहीं बनना चाहते। हम दिमाग की खिडकियाँ खुली रखना चाहते हैं लेकिन बिना पेंदी का लोटा भी नहीं बनना चाहते। हम इस वक्त बे-पेंदी के लोटे बन गये हैं।

आज की चर्चाओं की जो प्रतिक्रिया मेरे मन पर हुई उसे आपके सामने प्रस्तुत कर दी है, आप विचार करें।•

आचार्यकुल का शिक्षा-नीति : शिक्षक का पुनर्नुस्थापन

रोहित महता

आचार्यकुल की स्थापना के दोहरे लक्ष्य हैं—एक है इस देश के तरुणों को दी जानेवाली शिक्षा के मूल्यों और पद्धतियों में आमूल क्रांति और दूसरा है जनता की सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन प्रक्रिया के साथ शैक्षणिक प्रक्रिया का सामंजस्य। ये दोनों ही लक्ष्य शिक्षक-समुदाय से अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका की अपेक्षा करते हैं।

शिक्षा में विप्लव की आवश्यकता

आज संसार भर में शिक्षा विप्लव की स्थिति में है। लेकिन भारत में वह एक ऐसी राष्ट्रीय क्रांति के साथ उलझ गयी है जिसमें राजनीतिक स्वतंत्रता के कारण अचानक अवरोध आ गया था। सन् १९४७ में भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। परन्तु अभाग्यवश देश के नेताओं ने इसको क्रांति और संघर्ष का अन्त मान लिया। इस भ्रम का ही परिणाम है कि स्वतंत्रता के तेईस वर्ष बाद भी देश को अनेक खामियाँ ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं। वस्तुतः राजनीतिक स्वतंत्रता राष्ट्रीय क्रांति का अन्त नहीं थी—अधिक से-अधिक उसे कुछ क्षणों का विश्राम समझकर अवकाश के इन क्षणों में देश के साधनों का उस अधूरी क्रांति को पूरी करने के लिए उपयोग करना चाहिए था और लोक की क्रांतिकारी शक्ति को आर्थिक सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्रों में आमूल परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करना चाहिए था। परन्तु यह नहीं हुआ और इस बीच में लोक-शक्ति का संकीर्ण विषयों पर अपव्यय हुआ जिसका फल यह हुआ है कि राष्ट्र आज विघटन और हताशा की समस्याओं से घिर गया है।

कुछ लोग भले ही यह स्वीकार कर लें कि सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में कुछ हो रहा है, परन्तु जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है इस क्षेत्र की पूर्ण अवहेलना हुई है। देश की शिक्षा में सुधार करने के लिए राज्यों और केन्द्र द्वारा अनेक आयोग और समितियाँ नियुक्त की गयी हैं और उन्होंने शिक्षण-पद्धति पाठ्यक्रम परीक्षा प्रणाली एवं छात्रों के अनुशासन आदि विषयों पर भारी भरकम रिपोर्टें भी प्रस्तुत की हैं परन्तु शिक्षा की मौलिक समस्याओं पर कम ही विचार हुआ है। समय समय पर राज्य की सरकारों ने शिक्षा में सुधार भी किये हैं और केन्द्र ने शिक्षा के पटन में परिवर्तन करने के लिए सुझाव भी दिये हैं। परन्तु यह सब पैबन्द लगाने से अधिक कुछ नहीं है। वस्तुतः हमारी शैक्षिक समस्याएं इतनी

विशाल और जटिल हैं कि उनके समाधान के लिए पैवन्द लगाना अपर्याप्त ही नही, हानिकर भी होगा—हानिकर इस दृष्टि से कि इससे मुख्य मुद्दों पर से ध्यान हट जायगा और राष्ट्र मे एक झूठी सुरक्षा के भ्रम का सृजन होगा। लेकिन आज समय की माँग है कि हम अपनी शैक्षिक समस्याओ के विषय मे गहराई और गम्भीरता-पूर्वक सोचें केवल शिक्षण के पैटन के ही सम्बन्ध मे नही, शिक्षण-विषयक वस्तु के सम्बन्ध मे भी। और इस प्रकार का विचार प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के सम्बन्ध मे होना चाहिए। आवश्यकता समग्र शिक्षा के सम्बन्ध मे समग्र रूप से सोचने की है।

प्रश्न यह है कि भारत मे शिक्षा की मूल समस्या क्या है? आश्चर्य तो इस बात का है कि जब हम देश की शिक्षा का विशाल और भीमकाय भवन बनाने जा रहे हैं तो यह जानने की चेष्टा भी नही करते कि जिस नींव पर यह विशाल भवन बनाया जा रहा है, उस नींव की प्रकृति क्या है। अबतक हमारा सारा प्रयास 'गति-वृद्धि' का रहा है और हमने 'दिशा' की ओर ध्यान ही नहीं दिया है—उस दिशा की ओर, जिधर हमको जाना है। हम लोगो ने अपनी शिक्षा के जहाज को राष्ट्रीय जीवन के समुद्र मे बिना दिग्दर्शक, यत्र के छोड दिया है। इसलिए हम लोगो को आश्चर्य नहीं होना चाहिए, यदि हमारे सारे शैक्षिक प्रयास दिशाहीन होने के कारण असफल होते हैं। हमारे पास कोठारी-आयोग की भारी-भरकम रिपोर्ट है, जिसकी अनेक संस्तुतियाँ नि सदेह बहुमूल्य हैं, परन्तु जो हमारे शैक्षिक प्रयासो के लिए 'दिशा' बताने म असमर्थ रही हैं। स्वर्गीय डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने रिपोर्ट की दिशा-हीनता के विरुद्ध आवाज उठायी थी। वस्तुत कोठारी-आयोग यह बताने म असमर्थ रहा है कि हमारे देश की शिक्षा का दर्शन क्या हो। शिक्षा-दर्शन के अभाव मे भी हम शिक्षा का विशाल भवन बनाते जा रहे हैं और हमको स्वीकार करना चाहिए कि शिक्षा के क्षेत्र मे केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा जो प्रयास हो रहे हैं वे दिशाहीन, लक्ष्यहीन ही हैं। एक स्पष्ट शिक्षा-दर्शन के अभाव मे शिक्षा की इमारत बनाते जाना राष्ट्र के लिए हानिकर सिद्ध होगा। अत शिक्षा-जगत् के सामने मूल प्रश्न यह है कि हमारा शिक्षा-दर्शन क्या हो। मेरा निवेदन है कि आचार्यकुल का एक प्रमुख कार्य इस प्रश्न का उत्तर देना होना चाहिए।

शिक्षा-दर्शन शब्द अधिक शास्त्रीय लग सकता है, इसलिए दूसरे शब्दो मे हम कहेंगे कि आचार्यकुल का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण (अप्रोच) क्या हो। शिक्षा का यह दृष्टिकोण प्रारम्भिक स्तर से उच्चतम स्तर तक हमारे सारे शैक्षिक प्रयासों के मूल में व्याप्त होना चाहिए। दृष्टिकोण का सम्बन्ध विज्ञान या कला से नहीं है। कला और विज्ञान के लिए दो दृष्टिकोण आवश्यक नहीं हैं। दृष्टिकोण की दृष्टि

से ही हम पूछना चाहेंगे कि आज जब हम शिक्षा का इतना मात्रात्मक विस्तार करने जा रहे हैं तो हम इससे क्या प्राप्त करना चाहते हैं। हमारा कोई लक्ष्य भी है क्या ? और अगर हम प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर के अपने शैक्षिक प्रयासों का विश्लेषण करें तो देखेंगे कि हमारी पूरी शैक्षिक प्रक्रिया का एकमात्र लक्ष्य परीक्षा है। हमारे शैक्षिक प्रयासों की सफलता असफलता का मापदंड परीक्षा में सफलता या असफलता ही है। हमारी सारी शिक्षा प्रणाली परीक्षा मूलक है। किसी-न किसी प्रकार की परीक्षा तो सभी प्रकार की शिक्षा का अंग रहेगी। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या परीक्षा ही वह दिशा है जिस ओर हमारी शिक्षा की गाड़ी को जाना है या परीक्षा को शिक्षा की प्रक्रिया में केवल एक आकस्मिक घटना होना चाहिए। हमको स्वीकार करना चाहिए कि आज परीक्षा ही प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर के हमारे शैक्षिक प्रयासों का सब कुछ हो गयी है। परीक्षा पर आवश्यकता से अधिक बल देने के कारण ही शिक्षा की हमारी अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। 'ज्ञान' को इसने गौण और 'रटने' को ही मुख्य बना दिया है। इससे हमारी पूरी शैक्षिक प्रक्रिया यंत्रवत् बन गयी है। शिक्षण जब यंत्रवत् हो जाता है तो छात्र की शिक्षण में रुचि नहीं रह जाती और उसकी रचनात्मक प्रकाशन की क्षमता का ह्रास हो जाता है। और इसीलिए आज हमारी शैक्षिक प्रक्रिया हमारे तरुणों की शक्ति का उपयोग नहीं कर पा रही है। आज के तरुणों के निरर्थक उपद्रवों के मूल में उनकी शक्ति का सम्यक उपयोग न होना ही है। वस्तुतः शिक्षा की इस यंत्रवत् प्रकृति ने शिक्षण की प्रक्रिया को लक्ष्यहीन बना दिया है और जितनी जल्दी इस परीक्षा-प्रणाली से छुटकारा मिले उतना ही सबके लिए शुभ है।

थोड़े दिनों से हम लोगों ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नया नारा लगाना आरम्भ किया है। नारा है—रोजगार के लिए शिक्षा। लेकिन इस नारे में नया कुछ भी नहीं है। एक दृष्टि से देखा जाय तो अंग्रेजों ने भारत में जो शिक्षा प्रारम्भ की थी वह एक तरह से रोजगार के लिए (नौकरी के लिए) ही शिक्षा थी। यह शिक्षा तरुणों को उस नौकरी के लिए तैयार करती थी जिसकी आवश्यकता अंग्रेजी साम्राज्य को चलाने के लिए थी। यह सच है कि आज रोजगार की शिक्षा का अर्थ अधिक व्यापक है और आज की परिस्थिति में उसका महत्व और मूल्य है। लेकिन यह व्यापक अर्थ तभी काम का हो सकेगा जब माध्यमिक शिक्षा में आमूल परिवर्तन किया जाय जिससे वह लगभग पूरी तौर पर स्वावलम्बन की शिक्षा हो और माध्यमिक विद्यालयों से निकलनेवाले छात्र जीवन के विविध व्यवसायों में अपने को खपा सकें। इससे स्वभावतः वे छात्र, जिनमें शास्त्रीय उच्च शिक्षा के लिए रुचि

या क्षमता नहीं है, छँट जायेंगे और कालेजो और विश्वविद्यालयो का बोझ कम हो जायगा। फिर भी इससे शिक्षा की समस्या का आंशिक हल ही होगा। हमको समझ लेना चाहिए कि अगर सामाजिक मूल्यो मे मौलिक परिवर्तन नही होता तो व्यवसायपरक शिक्षा बिल्कुल निरर्थक हो जायगी। आज के सामाजिक मूल्य की सकल्पना ही तरुणो के लिए हाथ से नये-नये काम प्रारम्भ करने के मार्ग मे बाधा बन रही है। हाथ के काम की जिस समाज म प्रतिष्ठा नही है उसमे हाथ के नये काम प्रारम्भ करने का कोई अर्थ नही रह जाता। तो फिर प्रश्न उठता है कि सामाजिक मूल्यो मे परिवर्तन कैसे किया जाय, और शिक्षक समुदाय इस परिवर्तन के काम मे किस प्रकार सहयोग करे? अगर शिक्षा को सामाजिक मूल्यो के परिवर्तन मे प्रभावपूर्ण ढग से सहायक होना है तो हम लोगो को अपनी शिक्षा की सकल्पना मे परिवर्तन करना होगा। दूसरे शब्दो मे, हमको शिक्षा के लक्ष्यो के बुनियादी विषय पर ही पुन. विचार करना होगा।

शिक्षा की प्रमुख समस्या

क्या शिक्षण-प्रक्रिया का एकमात्र लक्ष्य तरुणो को किसी समाजोपयोगी व्यवसाय मे क्षमता प्रदान करना ही है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमको पश्चिम के देशों की ओर देखना होगा। पश्चिम मे व्यवसायपरकता शिक्षा की विशेष समस्या नही है, वह तो शिक्षा का अग ही है। परन्तु उन देशो के तरुणो मे विक्षोभ और विद्रोह वर्तमान है। आज हमारे देश म टेकनिकल और वैज्ञानिक शिक्षा पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जा रहा है जिससे हमारी शिक्षा मे पुन एकागिता के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। हम समझते हैं कि टेकनालोजी और विज्ञान से हमारी समस्त शैक्षिक और सामाजिक समस्याओ का समाधान हो जायगा। परन्तु कुछ पाश्चात्य देशों मे वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा के विषय का यह विभ्रम समाप्त हो रहा है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देश मे टेकनालोजी और विज्ञान की शिक्षा पर बल देना आवश्यक हो जाता है, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कला विषयों की अवहेलना न हो जाय। वस्तुत विज्ञान और कला के समन्वय की समस्या दूसरे देशो की भाँति भारत की शिक्षा की भी प्रमुख समस्या है और इस प्रकार के सामंजस्य का अभाव आज की नयी पीढ़ी के लिए बहुत बडी समस्या है। इस समस्या का सम्बन्ध भी शिक्षा के बुनियादी प्रश्नो से शिक्षा के लक्ष्य और प्रयोजन से है, जिसके विषय मे आज हम विचार करना है।

हम लोगों को समझना चाहिए कि हमारी आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा ही सब कुछ नहीं है। आदमी को इससे अधिक किसी दूसरे वस्तु की भी आवश्यकता है। अगर आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा ही सब कुछ हो तो आज संसार मे

हिप्पी की मनोरंजक समस्या न होती। ये हिप्पी अपनी उस सभ्यता के विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं जो उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है। हिप्पी-समस्या आज सार्वभौमिक समस्या है और वह सिद्ध कर रही है कि व्यक्ति के जीवन में कुछ मनोवैज्ञानिक तत्त्व भी हैं जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। आधुनिक पाश्चात्य तरुण की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का असमाधान ही वह तत्त्व है जिसने पाश्चात्य जगत् के टेकनालाजिकल और विज्ञानपरक शिक्षा की जड़ें हिला दी हैं। अपनी शिक्षा के प्रयोजन और लक्ष्य का निर्धारण करते समय हम इस वस्तुस्थिति की ओर से आँखें नहीं बन्द कर सकते। संसार इतना छोटा हो गया है कि कोई भी देश अपनी समस्या के विषय में बिलकुल पृथक् होकर नहीं सोच सकता। हमारे देश में किसी भी समय हिप्पी-समस्या का भारतीय संस्करण देखा जा सकता है। और संसार की गति इतनी तेज है कि हम अपनी समस्याओं के *समाधान में प्रमाद से काम नहीं ले सकते। यह ठीक है कि पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली* में यह गतिरोध बहुत दिनों के बाद आया है, परन्तु यह सोचकर कि अभी हमें उस बिन्दु तक पहुँचने में, जहाँ तक पाश्चात्य सभ्यता पहुँची है, बहुत दिन लगेंगे, हम विश्राम नहीं कर सकते। हमें समझना चाहिए कि तीव्र गति से बदलते हुए आधुनिक जीवन में हमारी आशा से बहुत पहले ही घटनाएँ घट सकती हैं। अतः हमारे लिए अपनी शिक्षा के प्रयोजन और लक्ष्य के विषय में स्पष्ट विचार करना आवश्यक हो जाता है। तभी हम ऐसी शिक्षा-नीति और शैक्षिक कार्यक्रम निर्धारित कर *सकेंगे, जिससे आधुनिक तकनीकी सभ्यता के अन्धकूप में गिरने से बच सकेंगे।* इसमें सन्देह नहीं कि व्यवसायपरक तकनीकी शिक्षा सही दिशा में उठे हुए कदम हैं, परन्तु ये अपने में हमारी शिक्षा की मौलिक समस्याओं के उत्तर नहीं हैं। अधिक सत्य तो यह है हमारी शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य के स्पष्ट पृष्ठभूमि में ही व्यवसायपरक और तकनीकी शिक्षा को उचित स्थान मिल सकेगा।

विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय शिक्षा का मूलाधार

सन् १९४८ में भारत सरकार ने डाक्टर राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में एक *शिक्षा आयोग की नियुक्ति की थी। अगर हम अपनी शिक्षा-नीति और शैक्षिक* कार्यक्रम को ठीक दिशा देना चाहते हैं तो हमें आयोग की रिपोर्ट के ६६ वें पृष्ठ पर दिये हुए बयान को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। बयान में लिखा है :

'किसी देश की महानता उसकी लम्बाई-चौड़ाई अथवा उसकी मौलिक सम्पदा अथवा उसके परिवहन की विशालता पर, यद्यपि उनका अपना महत्त्व है, निर्भर नहीं करती। अगर हम अपने देश में ऐसा विप्लव चाहते हैं जिससे रामराज आ जाय तो हमें इतना ही करना है कि हम लोगों को औद्योगिक और टेकनिकल शिक्षा

दें और उनकी आत्मा को भूखा छोड दें। हमारे पास ऐसे अनेक वैज्ञानिक होंगे जिनके आत्मा नहीं होगी और ऐसे अनेक टैकनिशियन होंगे जिनमे कलात्मक रुचि नही होगी और जो अपनी आत्मा को रिक्त पायेंगे, एक नैतिक शून्य की अवस्था म जिसमे वह अनुभव करेंगे कि उनके विफल प्रयास के स्थान पर लोगों को कुछ भी दिया जा सकता है। समाज जिस योग्य होगा उसे वह मिलेगा।"

ये प्रजा के स्वर हैं—जो हमे सावधान कर रहे हैं। अगर आज को अपनी शैक्षिक प्रयासो की अस्त-व्यस्तता मे हमने आवाज पर ध्यान नही दिया तो हम बहुत बडे खतरे मे पडेंगे। आचार्य विनोबा भावे, जिनकी प्रेरणा स आचार्यकुल कीस्थापना हुई है बार-बार जिस बात पर बल देते हैं वह यह है—विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय। अगर इन दोनो का समन्वय नही हुआ तो मानवता विनाश की ओर बढेगी। और हमने भी अगर अपनी शिक्षा नीति मे विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय नही किया तो हम भी विघटन और विनाश की ओर ही बढेंगे। हमारा शैक्षिक पुनर्संस्थापन इसी विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय चाहता है। आज हमारे शैक्षिक कार्यक्रम मे इस प्रकार का कोई प्रयास नही दिखाई पडता। यह आचार्यकुल का काम होगा कि वह शिक्षा के लक्ष्यो का इस प्रकार निर्धारण करे कि विज्ञान और अध्यात्म का मेल हो और यह समन्वय हमारे सारे शैक्षिक कार्यक्रम और प्रयोग के मूल मे स्थापित हो।

प्रश्न यह है कि इस प्रकार का समन्वय कैसे किया जाय? विज्ञान और अध्यात्म का मेल हमारी समन्वित शिक्षा की बुनियादी नीति होगी। इस प्रकार की समन्वित शिक्षा आज के युग की सबसे बडी आवश्यकता है और आचार्यकुल को इस विषय मे मार्गदर्शन करना चाहिए। आज समन्वित शिक्षा के विषय म बडी ढिलाई से विचार किया जाता है। कहा जाता है कि अगर विज्ञान और तकनिकी के छात्र को कुछ कला-विषयक व्याख्यान दे दिये जायें और कला-विषयक छात्रो को विज्ञान के व्याख्यान दे दिये जायें तो समन्वय का कार्य हो जायगा। हमारी शिक्षा-संस्थाओ म आज यह हो रहा है। यह समन्वय की विडम्बना है। समन्वय का यह अर्थ नही है। विज्ञान और कला को साथ-साथ रखने से ही समन्वय नहीं हो जाता। दोनों का साथ साथ नही रखना है, दोनो का मेल करना है। ऐसा होगा तभी समन्वय का कार्य सम्पादित होगा। विज्ञान के अध्यापन मे ही कला-विषयक मूल्यो की प्रतिस्थापना होनी चाहिए। इसी प्रकार कला के विषयो को पढाने म हमारे लिए यह दिखलाना सम्भव हो सके कि किस प्रकार विज्ञान और कला एक-दूसरे के पूरक हैं। लेकिन इसके लिए अध्यापको के पुनर्संस्थापन की

आवश्यकता है। उन्हें विषयों के शिक्षण को ही नहीं, पूरे जीवन को एक नये दृष्टिकोण से देखना होगा।

तरुणों की मनोदशा मे शिक्षा का लक्ष्य

यह समन्वय आज अत्यन्त आवश्यक हो गया है। क्योंकि आज की आधुनिक सस्कृति समाज और व्यक्ति को एक-दूसरे से दूर करती जा रही है। जीवन के वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ घटकों मे दिन-दिन अन्तर बढता जा रहा है। मानव का आध्यात्मिक घटक शीघ्र परिवर्तित होनी हुई वस्तुनिष्ठ परिस्थितियो के साथ चल नही पा रहा है। मानव की आन्तरिक सज्जा आधुनिक जीवन की बाह्य परिस्थितियों के साथ, जो इतनी शीघ्रता स बदल रही है जैसा इतिहास मे पहले कभी नही हुआ, चलने मे अपने को अत्यधिक मंद और प्राय जड अनुभव करने लगी है। पहले भी मनुष्य के जीवन के वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ घटकों मे अन्तर था, परन्तु अन्तराल कम था। और उस अन्तराल को धर्म और शिक्षा से पाटना कठिन नहीं होता था। आज का अन्तर बहुत बडा है और उसे हम 'पीढी का अन्तर' कहते हैं। अन्तर इतना बडा है कि पुरानी पीढी के हम लोग आज की पीढी से प्रभावपूर्ण सम्वाद भी नही कर सकते। परन्तु इतना ही नहीं है। आज की तरुण पीढी के आन्तरिक और बाह्य घटको मे भी सम्वाद-शून्यता है। पुरानी पीढी से मार्गदर्शन के अभाव मे और स्वय अपने से सवाद शून्यता के कारण आज तरुण भीषण आन्तरिक सघर्ष की स्थिति मे है। इस सघर्ष की माँग को पूरी करने के लिए वह भले-बुरे सभी प्रकार के काम करता है। वह उत्तेजना का जीवन बिताता है। यह उत्तेजना उसके अशान्त मन का प्रकटीकरण मात्र है। पुरानी पीढी के हम उसको समझ नही पाते और उससे एक ऐसी भाषा में सम्वाद करते हैं, जिसे वह नहीं समझता। हम इसे तरुण का पुरानी पीढी के लिए अनादर मानते हैं और उसे अविनीत, छिछला और 'न्यूरोटिक' समझते हैं। हम उसके भीषण अन्तर्द्वन्द्व को समझ नही पाते। हमारी शिक्षा तरुण के इस अन्तर्द्वन्द्व को समझने और उसके आन्तरिक और बाह्य परिस्थिति के अन्तराल को भरने की क्षमता प्रदान करने मे पूर्णत असफल रही है।

इसी सदर्भ मे आचार्यकुल को अपनी शिक्षा-नीति और शिक्षा के लक्ष्य और प्रयोजन का निर्धारण करना होगा तथा इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए कार्यक्रम सुझाने होगे। अब तक समस्या का जो विश्लेषण किया गया है उसकी पृष्ठभूमि मे शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए—"आज के छात्र मे इस प्रकार की योग्यता उत्पन्न करना जिससे वह अपनी आन्तरिक साधनो की खोज कर अपनी आत्मिक क्षमताओ का इतना विकास कर ले जिससे वह जीवन की

(एप्रोच) में अध्यापक के सम्पूर्ण नैतिक साहस और शक्ति की आवश्यकता सबसे पहले है। अध्यापक सभी प्रकार के भ्रष्टाचारों से ही मुक्त न हो, वह उनसे परे हो। अध्यापक की नैतिकता छात्र में एक नये प्रकार की नैतिकता को उत्पन्न (इवोक) करेगी। अध्यापक और छात्र के बीच जहाँ भय का तनिक भी अंश रहता है वहाँ स्वतन्त्रता नहीं टिकती। और जहाँ अध्यापक और छात्र का सम्बन्ध 'भयमुक्त' होगा वहाँ वे राज्य अथवा समाज के किसी भ्रष्ट करनेवाले प्रभाव से अपनी रक्षा कर सकेंगे।

३ शिक्षण-संस्था की स्वतन्त्रता और निर्भयता के लिए नये प्रकार की शिक्षण-पद्धति भी आवश्यक होगी, जो अध्यापक और छात्र के नये गत्यात्मक सम्बन्ध के अनुकूल हो। यह शिक्षण-पद्धति ऐसी हो जिसमें अध्यापक पृष्ठभूमि में रहे और छात्र सामने रहे। छात्र शिक्षण की प्रक्रिया में अधिक से अधिक सक्रिय सहयोग करें। अध्यापक इस प्रकार का अध्यापन करें जिससे छात्र को यह भान हो न हो कि उसे पढ़ाया जा रहा है। उसे ऐसा लगे कि वह स्वयं अपने को शिक्षित कर रहा है। शिक्षा की सबसे प्रभावपूर्ण पद्धति आत्म-शिक्षण ही है। और शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर आत्म शिक्षण की इस क्रिया का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए।

४. अध्यापक-छात्र सम्बन्ध की तरह अध्यापक अध्यापक के बीच भी नया सम्बन्ध बनना चाहिए। शिक्षण-संस्था के प्रधान का सम्बन्ध अपने सहकारियों से समता का हो। शिक्षण संस्था एक ऐसा लोकतंत्र होना चाहिए जहाँ कर्तव्य के साथ किसी प्रकार के 'स्टेटस' का सम्बन्ध न हो। शिक्षण संस्था में सब समान हों जिससे अध्यापक शैक्षणिक अथवा प्रशासकीय मामलों में बातचीत करते समय मुक्तता का अनुभव करें। ऐसा होगा तभी शिक्षण संस्थाओं में नये गत्यात्मक वातावरण का सृजन सम्भव होगा। स्वतन्त्रता के इसी वातावरण में, जहाँ भय का लेशमात्र भी न रहे शिक्षक जो सर्वश्रेष्ठ है प्राप्त किया जा सकता है। छात्र और अध्यापक ही नहीं, अध्यापक और अधिकारी के बीच भी पारितोषिक और दंड की प्रथा बन्द होनी चाहिए। शिक्षण-संस्था एक ऐसा समुदाय बन जाय जहाँ समुदाय का प्रमुख अध्यापक और छात्र, मुक्तता और समानता के वातावरण में काम कर सकें। इसी वातावरण में सच्ची समझदारी का भाव उदय होगा।

५. शिक्षा की इस प्रगतिशील संकल्पना में, पाठ्यक्रम की संकल्पना में भी परिवर्तन वांछित होगा। शिक्षण की प्रक्रिया के साथ विभिन्न विषयों का पारस्परिक अनुबन्धन होना चाहिए। इस प्रकार का अनुबन्धन ही विषय-शिक्षण को प्राणवान बना सकेगा। इसके बिना शिक्षण निर्जीव ही रहेगा—अध्यापक चाहे कितना ही दक्ष क्यों न हो।

६. शिक्षा के इस नये 'एप्रोच' मे पूरी परीक्षा प्रणाली का पुनर्निरीक्षण करना होगा। छात्र की परीक्षा इस प्रकार लेनी चाहिए जब उसे इस बात का कम-से कम बोध हो कि उसकी परीक्षा ली जा रही है। ऐसा होगा तभी परीक्षा शिक्षण की प्रक्रिया से अलग नहीं रहेगी। अगर शिक्षा को भयमुक्त बनाना है तो पूरी परीक्षा-पद्धति को बदलना होगा।

७. शिक्षा जीवन से अलग नहीं हो सकती, अलग नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक शिक्षण-संस्था के छात्र और अध्यापक को उस बड़े समुदाय के जीवन से सम्पर्क रखना चाहिए जिसमे वह संस्था स्थित है। उस समुदाय के लोगों के कल्याण का उत्तरदायित्व इन छात्रो और अध्यापको का होना चाहिए। एक नये समाज का निर्माण, ऐसे समाज का, जिसमे हिंसा और शोषण न हो, इस शिक्षण-समुदाय का कर्तव्य होना चाहिए। अगर शिक्षण-संस्था गाँव मे स्थित हो तो उसका कर्तव्य ग्राम-स्वराज्य आन्दोलन को, जिसका लक्ष्य लोकतंत्र कायम करना है, सबल बनाना होना चाहिए। अगर शिक्षण-संस्थाएँ नगरों मे स्थित हैं तो उनका लक्ष्य ऐसी परिस्थिति का निर्माण होना चाहिए जिसमे लोग बिना सरकार का मुँह देखते हुए अपने आप अपनी समस्याओं का हल करना सीखें। समुदाय के साथ इस प्रकार सक्रिय सहकार शिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रम का अंग होना चाहिए। वस्तुतः प्रत्येक स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय को सामुदायिक कार्य की योजना बनाना और उसका कार्यान्वियन करना चाहिए। इस प्रकार की व्यावहारिक योजनाएँ (प्रोजेक्ट्स) के माध्यम से शिक्षण-संस्थाओं का समुदाय और राष्ट्र के जीवन के साथ 'इन्वाल्वमेंट' बढ़ेगा और परिणामस्वरूप शिक्षा अधिक यथार्थ हो सकेगी।

८. शिक्षा की यह प्रगतिशील सकल्पना लोक और राष्ट्र को नया नेतृत्व प्रदान कर सकेगी। इस नेतृत्व का कर्तव्य होगा लोगों का लोकतंत्र के मूल्यो और पद्धतियो मे शिक्षण करना। लोकतंत्र जीवन का एक अंग है। और राष्ट्र मे लोकतंत्र के सर्वश्रेष्ठ मूल्यो का निर्माण और स्थापन हो, यह देखना इस नये नेतृत्व का काम होना चाहिए।

नये समाज के निर्माण के लिए शिक्षा और शिक्षक के इस पुनर्स्थापन की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः आचार्यकुल की एक छोटी, किन्तु प्रभावशाली समिति बना देनी चाहिए, जो शिक्षा के इस नये दृष्टिकोण का अध्ययन करके अध्यापको के सामने शिक्षा का एक व्यापक कार्यक्रम रखे, जिससे राष्ट्र मौलिक शैक्षिक क्रान्ति की ओर दृढ़तापूर्वक अग्रसर हो सके।

अध्यापक इस शैक्षिक क्रान्ति का पूरा उत्तरदायित्व संभाले। आचार्यकुल के मार्ग मे सबसे बड़ा विघ्न अध्यापक का हीनभाव और उदासीनता है। यदि यह

बाह्य परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना कर सके।" निश्चय रूप से शिक्षा का प्रयोजन ऐसी पीढ़ी का सृजन नहीं हो सकता जो चुपचाप अपने को वस्तुस्थिति को समर्पण कर दे और न ऐसे तरुणों का निर्माण ही हो सकता है जो सतत अशान्त और विक्षुब्ध रहकर असामाजिक प्रवृत्तियों के केन्द्र बने रहें। शिक्षा का प्रयोजन न तो ऐसे व्यक्तियों का निर्माण है जो सदा अपने सामाजिक जीवन से असंतुष्ट रहें और न ऐसे व्यक्तियों का सृजन है जो किसी भी परिस्थिति में पूर्णतया संतुष्ट रहें। क्योंकि जैसे आत्मसंतोष से सामाजिक जड़ता उत्पन्न होती है, वैसे ही सतत असंतोष की प्रवृत्ति सामाजिक ध्वंस और अर्थहीन विद्रोह को जन्म देती है। शिक्षा का लक्ष्य तरुणों को सामाजिक जड़ता और विक्षोभ-जनित सामाजिक ध्वंस के इन दोनों खतरों से बचकर निकल जाने की दक्षता प्रदान करना होना चाहिए। संक्षेप में शिक्षा का कार्य यह होना चाहिए कि तरुणों की विद्रोह-भावना कम न हो और असंतोष की दीप्ति मलिन न पड़े, लेकिन विद्रोह की भावना निरर्थक विरोधों और ध्वंसात्मक असामाजिक कृत्यों में न बदल जाय।

अस्तु, सामाजिक एकता और साम्य के लिए काम करते हुए भी देश के तरुणों का रचनात्मक व्यक्तित्व अक्षुण्ण रहे ऐसा प्रयास शिक्षा का होना चाहिए। अर्नल्ड टायनबी ने अपनी 'स्टडी आफ हिस्ट्री' नाम की पुस्तक में इसे ही 'रचनात्मक अस्थैर्य (क्रिएटिव इन्स्टेबिलिटी) कहा है। शिक्षा का लक्ष्य ऐसे व्यक्ति का निर्माण होना चाहिए जो अपनी व्यक्तिगत विशेषता को अक्षुण्ण रखते हुए न तो सामाजिक विघटन का केन्द्र बने और न यथास्थिति के पोषण का। अतः अगर हम इस सिद्धान्त को शिक्षा का लक्ष्य स्वीकार करते हैं और आचार्यकुल को इसके अतिरिक्त कोई दूसरा लक्ष्य स्वीकार भी नहीं करना चाहिए, तो हमें अपने समस्त शैक्षिक प्रयासों को नया रूप देना होगा और हम मात्र व्यवसायपरक और तकनीकीमूलक शिक्षण से दूर और निरर्थक परीक्षामूलक शिक्षण से तो बहुत दूर हटना होगा।

शिक्षा की पद्धति तथा कार्यक्रम

अस्तु, शिक्षा का लक्ष्य अगर छात्र को अपने आन्तरिक साधनों की खोज की क्षमता प्रदान करना है जिससे वह अपनी आत्मिक क्षमताओं का विकास कर जीवन की बाह्य परिस्थितियों का सामना कर सके तो स्वाभाविक रूप से दूसरा प्रश्न यह उठता है कि इस शिक्षा का 'पैटर्न' और कार्यक्रम क्या हो। मेरा निवेदन है कि शिक्षा के इस लक्ष्य से स्वतः शिक्षा का रूप और कार्यक्रम विस्तृत होता है। शिक्षा के इस लक्ष्य के दो अंग हैं—(१) छात्रों को अपने आन्तरिक साधनों की खोज की क्षमता प्रदान करना और (२) इन साधनों के बल पर बाह्य परिस्थितियों

६. शिक्षा के इस नये 'एप्रोच' मे पूरी परीक्षा-प्रणाली का पुनर्निरीक्षण करना होगा। छात्र की परीक्षा इस प्रकार लेनी चाहिए जब उसे इस बात का कम-से कम बोध हो कि उसकी परीक्षा ली जा रही है। ऐसा होगा तभी परीक्षा शिक्षण की प्रक्रिया से अलग नही रहेगी। अगर शिक्षा को अर्थमुक्त बनाना है तो पूरी परीक्षा-पद्धति को बदलना होगा।

७. शिक्षा जीवन से अलग नही हो सकती, अलग नही होनी चाहिए। प्रत्येक शिक्षण-सस्था के छात्र और अध्यापक को उस बडे समुदाय के जीवन से सम्पर्क रखना चाहिए जिसमे वह सस्था स्थित है। उस समुदाय के लोगो के कल्याण का उत्तरदायित्व इन छात्रो और अध्यापको का होना चाहिए। एक नये समाज का निर्माण, ऐसे समाज का, जिसमे हिंसा और शोषण न हों, इस शिक्षण-समुदाय का कर्तव्य होना चाहिए। अगर शिक्षण-सस्था गाँव मे स्थित हो तो उसका कर्तव्य ग्राम-स्वराज्य आन्दोलन को, जिसका लक्ष्य लोकतन्त्र कायम करना है, सबल बनाना होना चाहिए। अगर शिक्षण-सस्थाएँ नगरो मे स्थित हैं तो उनका लक्ष्य ऐसी परिस्थिति का निर्माण होना चाहिए जिसमें लोग बिना सरकार का मुँह देखते हुए अपने आप अपनी समस्याओं का हल करना सीखें। समुदाय के साथ इस प्रकार सक्रिय सहकार शिक्षण सस्थाओ के कार्यक्रम का अंग होना चाहिए। वस्तुत प्रत्येक स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय को सामुदायिक कार्य की योजना बनाना और उसका कार्यान्वियन करना चाहिए। इस प्रकार की व्यावहारिक योजनाएँ (प्रोजेक्ट्स) के माध्यम से शिक्षण-सस्थाओ का समुदाय और राष्ट्र के जीवन के साथ 'इन्वाल्वमेंट' बढेगा और परिणामस्वरूप शिक्षा अधिक यथार्थ हो सकेगी।

८ शिक्षा की यह प्रगतिशील संकल्पना लोक श्रीय राष्ट्र को नया नेतृत्व प्रदान कर सकेगी। इस नेतृत्व का कर्तव्य होगा लोगो का लोकतंत्र के मूल्यो और पद्धतियो मे शिक्षण करना। लोकतंत्र जीवन का एक अंग है। और राष्ट्र मे लोकतंत्र के सर्वश्रेष्ठ मूल्यों का निर्माण और स्थापन हो, यह देखना इस नये नेतृत्व का काम होना चाहिए।

नये समाज के निर्माण के लिए शिक्षा और शिक्षक के इस पुनर्नुस्थापन की अत्यन्त आवश्यकता है। अत आचार्यकुल की एक छोटी, किन्तु प्रभावशाली समिति बना देनी चाहिए, जो शिक्षा के इस नये दृष्टिकोण का अध्ययन करके अध्यापको के सामने शिक्षा का एक व्यापक कार्यक्रम रखे, जिससे राष्ट्र मौलिक शैक्षिक क्रान्ति की ओर दृढतापूर्वक अग्रसर हो सके।

अध्यापक इस शैक्षिक क्रान्ति का पूरा उत्तरदायित्व सँभाले। आचार्यकुल के मार्ग मे सबसे बडा विघ्न अध्यापक का हीनभाव और उदासीनता है। यदि यह

(एप्रोच) म अध्यापक के सम्पूर्ण नैतिक साहस और शक्ति की आवश्यकता सबसे पहले है। अध्यापक सभी प्रकार के भ्रष्टाचारो से ही मुक्त न हो, वह उनसे परे हो। अध्यापक की नैतिकता छात्र मे एक नये प्रकार की नैतिकता को उत्पन्न (इवोक) करेगी। अध्यापक और छात्र के बीच जहाँ भय का तनिक भी अश रहता है वहाँ स्वतत्रता नही टिकती। और जहाँ अध्यापक और छात्र का सम्बन्ध 'भयमुक्त' होगा वहाँ वे राज्य अथवा समाज के किसी भ्रष्ट करनेवाले प्रभाव से अपनी रक्षा कर सकेंगे।

३ शिक्षण-सस्था की स्वतत्रता और निर्भयता के लिए नये प्रकार की शिक्षण-पद्धति भी आवश्यक होगी, जो अध्यापक और छात्र के नये गत्यात्मक सम्बन्ध के अनुकूल हो। यह शिक्षण-पद्धति ऐसी हो जिसमे अध्यापक पृष्ठभूमि मे रहे और छात्र सामने रहे। छात्र शिक्षण की प्रक्रिया मे अधिक-से-अधिक सक्रिय सहयोग करें। अध्यापक इस प्रकार का अध्यापन करें जिससे छात्र को यह भान ही न हो कि उसे पढाया जा रहा है। उसे ऐसा लगे कि वह स्वय अपने को शिक्षित कर रहा है। शिक्षा की सबसे प्रभावपूर्ण पद्धति आत्म-शिक्षण ही है। और शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर आत्म-शिक्षण की इस क्रिया का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए।

४. अध्यापक-छात्र सम्बन्ध की तरह अध्यापक-अध्यापक के बीच भी नया सम्बन्ध बनना चाहिए। शिक्षण-सस्था के प्रधान का सम्बन्ध अपने सहकारियो से समता का हो। शिक्षण-सस्था एक ऐसा लोकतत्र होना चाहिए जहाँ कर्तव्य के साथ किसी प्रकार के 'स्टेटस' का सम्बन्ध न हो। शिक्षण-संस्था मे सब समान हो जिससे अध्यापक शैक्षणिक अथवा प्रशासकीय मामलो मे बातचीत करते समय मुक्तता का अनुभव करें। ऐसा होगा तभी शिक्षण-सस्थाओं मे नये गत्यात्मक वातावरण का सृजन सम्भव होगा। स्वतंत्रता के इसी वातावरण मे, जहाँ भय का लेशमात्र भी न रहे, शिक्षक जो सर्वश्रेष्ठ है प्राप्त किया जा सकता है। छात्र और अध्यापक ही नहीं, अध्यापक और अधिकारी के बीच भी पारितोषिक और दड की प्रथा बन्द होनी चाहिए। शिक्षण-सस्था एक ऐसा समुदाय बन जाय जहाँ समुदाय का प्रमुख अध्यापक और छात्र, मुक्तता और समानता के वातावरण मे काम कर सकें। इसी वातावरण मे सच्ची समझदारी का भाव उदय होगा।

५. शिक्षा की इस प्रगतिशील सकल्पना मे, पाठ्यक्रम की संकल्पना मे भी परिवर्तन वांछित होगा। शिक्षण की प्रक्रिया के साथ विभिन्न विषयो का पारस्परिक अनुबन्धन होना चाहिए। इस प्रकार का अनुबन्धन ही विषय-शिक्षण को प्राणवान बना सकेगा। इसके बिना शिक्षण निर्जीव ही रहेगा—अध्यापक चाहे कितना ही दक्ष क्यों न हो।

६ शिक्षा के इस नये 'एप्रोच' मे पूरी परीक्षा प्रणाली का पुनर्निरीक्षण करना होगा। छात्र की परीक्षा इस प्रकार लेनी चाहिए जब उसे इस बात का कम-से कम बोध हो कि उसकी परीक्षा ली जा रही है। ऐसा होगा तभी परीक्षा शिक्षण की प्रक्रिया से अलग नही रहेगी। अगर शिक्षा को भयमुक्त बनाना है तो पूरी परीक्षा-पद्धति को बदलना होगा।

७ शिक्षा जीवन से अलग नही हो सकती, अलग नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक शिक्षण-संस्था के छात्र और अध्यापक को उस बडे समुदाय के जीवन से सम्पर्क रखना चाहिए जिसमे वह सस्था स्थित है। उस समुदाय के लोगो के कल्याण का उत्तरदायित्व इन छात्रो और अध्यापकों का होना चाहिए। एक नये समाज का निर्माण, ऐसे समाज का, जिसमे हिंसा और शोषण न हो, इस शिक्षण-समुदाय का कर्तव्य होना चाहिए। अगर शिक्षण-सस्था गाँव मे स्थित हो तो उसका कर्तव्य ग्राम-स्वराज्य आन्दोलन को, जिसका लक्ष्य लोकतत्र कायम करना है, सबल बनाना होना चाहिए। अगर शिक्षण-सस्थाएँ नगरो मे स्थित हैं तो उनका लक्ष्य ऐसी परिस्थिति का निर्माण होना चाहिए जिसमे लोग बिना सरकार का मुँह देखते हुए अपने आप अपनी समस्याओ का हल करना सीखें। समुदाय के साथ इस प्रकार सक्रिय सहकार शिक्षण सस्थाओं के कार्यक्रम का अंग होना चाहिए। वस्तुत प्रत्येक स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय को सामुदायिक कार्य की योजना बनाना और उसका कार्यान्वयन करना चाहिए। इस प्रकार की व्यावहारिक योजनाएँ (प्रोजेक्ट्स) के माध्यम से शिक्षण सस्थाओ का समुदाय और राष्ट्र के जीवन के साथ 'इन्वाल्वमेंट' बढेगा और परिणामस्वरूप शिक्षा अधिक यथार्थ हो सकेगी।

८ शिक्षा की यह प्रगतिशील सकल्पना लोकतत्रीय राष्ट्र को नया नेतृत्व प्रदान कर सकेगी। इस नेतृत्व का कर्तव्य होगा लोगो का लोकतत्र के मूल्यो और पद्धतियों मे शिक्षण करना। लोकतत्र जीवन का एक अंग है। और राष्ट्र मे लोकतत्र के सर्वश्रेष्ठ मूल्यो का निर्माण और स्थापन हो, यह देखना इस नये नेतृत्व का काम होना चाहिए।

नये समाज के निर्माण के लिए शिक्षा और शिक्षक के इस पुनर्स्थापन की अत्यन्त आवश्यकता है। अत आचार्यकुल की एक छोटी, किन्तु प्रभावशाली समिति बना देनी चाहिए, जो शिक्षा के इस नये दृष्टिकोण का अध्ययन करके अध्यापकों के सामने शिक्षा का एक व्यापक कार्यक्रम रखे, जिससे राष्ट्र मौलिक शैक्षिक क्रान्ति की ओर दृढतापूर्वक अग्रसर हो सके।

अध्यापक इस शैक्षिक क्रान्ति का पूरा उत्तरदायित्व संभाले। आचार्यकुल के मार्ग मे सबसे बडा विघ्न अध्यापक का हीनभाव और उदासीनता है। यदि यह

सम्मेलन अध्यापको मे आत्मविश्वास का सृजन कर सके तो एक बहुत बडा विघ्न दूर हो सकेगा। अक्सर लोग पूछते हैं कि आचार्यकुल के सामने व्यावहारिक कार्यक्रम क्या है? सबसे व्यावहारिक कार्यक्रम होगा—अध्यापको के चिंतन की दिशा मे परिवर्तन। राष्ट्र की आज सबसे अधिक आवश्यकता यह सोचने की है कि हमारी शिक्षा की मूल समस्याएँ क्या हैं। चीन के नेता सनयात सेन ने कहा था—"काम करना आसान है, सोचना कठिन है।" आचार्यकुल को सोचने के इस कठिन कार्य का प्रारम्भ करना है और अध्यापको म स्पष्ट विचार की आदत डालनी है। स्पष्ट विचार से ही व्यावहारिक कार्य उत्पन्न होगा और इस देश के अध्यापक और छात्र शिक्षा म मौलिक क्रान्ति कर अग्रदूत बन सकेंगे और इसके साथ देश राष्ट्र निर्माण की अधूरी क्रान्ति को पूरी करने के मार्ग पर अग्रसर होगा और ऐसे नये भारत का सृजन कर सकेगा जो भौतिक सम्पदा से ही नही, आध्यात्मिक गौरव से भी पूर्ण होगा। •

[पृष्ठ २१५ का शेषांश]

विनोबा ने आचार्यकुल की स्थापना इसलिए की, कि शिक्षक भौतिक और आर्थिक स्तर पर ही संघर्ष न करे, वह जीवन के मूल्यो के लिए आत्मशोधन व मंथन करे। यदि शिक्षक आत्मशोधन म लगे तो वह परमुखापेक्षी नही रहेगा। उसका वर्चस्व, उसकी स्वायत्तता अखण्डित रहेगी। वह जीवन की इस ऋतु का बदल देगा।

हम विनोबा के इस स्वप्न को सार्थक कर दें अपने आपको सार्थक कर दें, जीवन को सार्थक कर दें। यदि हम मनोबल के साथ खडे हो तो ऐसा कर सकते हैं। वह शिक्षक भी क्या है जो तपे और धरती म दरारें पड जायें। हम मेघ की तरह उमडें, और बरस जायें धरती को तृप्त कर दें। आकाश की बातें जानें, परन्तु धरती पर पाँव धर कर चलें।

[२९ नवम्बर '७० को वाराणसी मे हुआ आचार्यकुल सम्मेलन का उद्घाटन-भाषण]

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

	जनवरी					फरवरी					मार्च				
रविवार	३१	३	१०	१७	२४		७	१४	२१	२८		७	१४	२१	२८
सोमवार		४	११	१८	२५	१	८	१५	२२		१	८	१५	२२	२९
मगलवार		५	१२	१९	२६	२	९	१६	२३		२	९	१६	२३	३०
बुधवार		६	१३	२०	२७	३	१०	१७	२४		३	१०	१७	२४	३१
गुरुवार		७	१४	२१	२८	४	११	१८	२५		४	११	१८	२५	
शुक्रवार	१	८	१५	२२	२९	५	१२	१९	२६		५	१२	१९	२६	
शनिवार	२	९	१६	२३	३०	६	१३	२०	२७		६	१३	२०	२७	

	अप्रैल					मई					जून				
रविवार		४	११	१८	२५	३०	२	९	१६	२३		६	१३	२०	२७
सोमवार		५	१२	१९	२६	३१	३	१०	१७	२४		७	१४	२१	२८
मगलवार		६	१३	२०	२७		४	११	१८	२५	१	८	१५	२२	२९
बुधवार		७	१४	२१	२८		५	१२	१९	२६	२	९	१६	२३	३०
गुरुवार	१	८	१५	२२	२९		६	१३	२०	२७	३	१०	१७	२४	
शुक्रवार	२	९	१६	२३	३०		७	१४	२१	२८	४	११	१८	२५	
शनिवार	३	१०	१७	२४		१	८	१५	२२	२९	५	१२	१९	२६	

	जुलाई					अगस्त					सितम्बर				
रविवार		४	११	१८	२५	१	८	१५	२२	२९		५	१२	१९	२६
सोमवार		५	१२	१९	२६	२	९	१६	२३	३०		६	१३	२०	२७
मंगलवार		६	१३	२०	२७	३	१०	१७	२४	३१		७	१४	२१	२८
बुधवार		७	१४	२१	२८	४	११	१८	२५		१	८	१५	२२	२९
गुरुवार	१	८	१५	२२	२९	५	१२	१९	२६		२	९	१६	२३	३०
शुक्रवार	२	९	१६	२३	३०	६	१३	२०	२७		३	१०	१७	२४	
शनिवार	३	१०	१७	२४	३१	७	१४	२१	२८		४	११	१८	२५	

	अक्तूबर					नवम्बर					दिसम्बर				
रविवार	३१	३	१०	१७	२४		७	१४	२१	२८		५	१२	१९	२६
सामवार		४	११	१८	२५	१	८	१५	२२	२९		६	१३	२०	२७
मगलवार		५	१२	१९	२६	२	९	१६	२३	३०		७	१४	२१	२८
बुधवार		६	१३	२०	२७	३	१०	१७	२४		१	८	१५	२२	२९
गुरुवार		७	१४	२१	२८	४	११	१८	२५		२	९	१६	२३	३०
शुक्रवार	१	८	१५	२२	२९	५	१२	१९	२६		३	१०	१७	२४	३१
शनिवार	२	९	१६	२३	३०	६	१३	२०	२७		४	११	१८	२५	

नयी तालीम : दिसम्बर, '७०
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य

निवेदन

२ अक्तूबर १९६९ से राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की जन्म-शताब्दी चालू है। गाधीजी की वाणी घर-घर मे पहुँचे, इस दृष्टि से गाधीजी की अमर जीवनी, कार्य तथा विचारो से सम्बद्ध लगभग १५०० पृष्ठों का उच्च कोटि का और चुना हुआ साहित्य-सेट केवल रु० ७-०० मे देने का निश्चय किया गया है तथा लगभग १००० पृष्ठों का रु० ५-०० मे।

सेट न० २, पृष्ठ १५००, रु० ७-००

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१-आत्मकथा १८६९-१९१९ :	गाधीजी	१-००
२-बापू-कथा . १९२०-१९४८ :	हरिभाऊजी	२-५०
३-तीसरी शक्ति . १९४८-१९६९ :	विनोबा	२-५०
४-गीता-बोध व मगल प्रभात	गाधीजी	१-००
५-मेरे सपनो का भारत सक्षिप्त	गाधीजी	१-५०
६-गीता प्रवचन	विनोबा	२-००
७-सघ प्रकाशन की एक पुस्तक		१-००
		११-५०

यह पूरा साहित्य सेट केवल रु० ७-०० मे प्राप्त होगा। एकसाथ २८ सेट लेने पर फ्री डिलावरी मिलेगा .

सेट न० १, पृष्ठ १०००, रु० ५-००

उपर की प्रथम पांच किताबों का पृष्ठ १००० का साहित्य सेट केवल रु० ५-०० में प्राप्त होगा। एक साथ ४० सेट लेने पर फ्री डिलवरी जायगा। अन्य कमीशन नहीं।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी-१

भारत भूषण प्रेस मुद्रक ... प्रेस, मानमंदिर, वाराणसी

वर्ष : १९
अंक : ६

भाषा-शिक्षकों के निर्माण की आवश्यकता
नयी तालीम की तीर्थ स्थली : एक भ्रमण
पुरानी शैली : नये सपने
शिक्षक और मजदूर-सगठन

जनवरी, १९७१

नयी तालीम परिवार

की ओर से

पाठकों को नये वर्ष की

हार्दिक शुभकामनाएँ

शिक्षकों अभिभावकों एवं समाज सेवियों के लिए

शिक्षा में क्रान्ति

दिसम्बर १९७० के अन्तिम सप्ताह मे पटना मे जिस ४५वें अखिल भारतीय शिक्षक सघ का आयोजन किया गया था उसमे देश के अनेक शिक्षा शास्त्रियो ने भाग लिया था। अपनी वक्तृताओ मे सबने समान रूप से एक बात कही है, 'आज की शिक्षा-पद्धति दूषित है और उसमे आमूल परिवर्तन होना चाहिए।' नवम्बर मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय म उत्तरप्रदेश आचार्यकुल का सम्मेलन हुआ था उसमे भी शिक्षा मे क्रान्ति करने के रास्ते को तलाश की माँग की गयी है। इन्दौर मे भी कुछ दिन पहले अखिल भारतीय तरुण शान्तिसेना का सम्मेलन हुआ था। सम्मेलन में तरुणों ने आवाज उठायी है— देश की शिक्षा में आमूल परिवर्तन किया जाय।' नक्सालवादी तरुण तो इस शिक्षा को बेकार समझकर शिक्षा के प्रतिष्ठान पर ही प्रहार कर रहे हैं। पर कैसे होगी यह क्रान्ति, कोई साफ बताता नही। और सुधार की बात की भी जाती है तो वर्तमान शिक्षा पद्धति के चौखटे के भीतर रहकर ही।

वर्ष : १९
अंक : ६

शिक्षा म क्रान्ति की यह आवाज नयी नही है। अगर पहले की बात छोड भी दें, तो जब से देश स्वतत्र हुआ है, तब से तो यह माँग बराबर की जा रही है। सब कहते हैं कि हमारी शिक्षा अनुत्पादक है, उसका कोई सम्बन्ध देश के जीवन से नही है, वह छात्रों का सर्वांगीण विकास नही करती, आदि आदि। अत उसमे आमूल परिवर्तन होना चाहिए। कहते सब हैं, परन्तु करता कोई कुछ नही। अगर कभी कोई वास्तविक क्रान्ति

और परिवर्तन की बात करता भी है तो रक्षित स्वार्थ उसे सुनते नही। सुनते भी हैं तो उसकी गलत व्याख्या करते हैं, और कार्यान्वयन भी करते हैं तो इस ढग से कि विनायक का बानर बन जाता है।

शिक्षा मे आमूल क्रान्ति के गुणात्मक परिवर्तन की बात सबसे पहले गाधीजी ने की थी। उनकी बात शिक्षा की बुनियाद को बदलने की ही थी। उन्होने साफ कहा था कि देश की शास्त्रीय एकागी शिक्षा से बालक के जिस व्यक्तित्व का विकास होता है, वह अनुत्पादक, शोषक व्यक्तित्व है। लोकतन्त्र मे इस प्रकार का व्यक्तित्व अवाछनीय है। शिक्षा मे क्रान्ति तभी होगी जबकि इस शोषक व्यक्तित्व' के स्थान पर 'स्वावलम्बी व्यक्तित्व' का निर्माण होगा। और इस प्रकार का व्यक्तित्व तभी विकसित होगा जब विद्यार्थी का सारा शिक्षण किसी समाजोपयोगी उत्पादक दस्तकारी के माध्यम से होगा। विद्यार्थी जिस दिन से विद्यालय मे पढने जाता है, उस दिन से स्नातकोत्तर स्तर तक वह कोई न-कोई समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग अवश्य करे और वैज्ञानिक ढग से करे, उसके क्यो और कैसे को समझकर करे। यही गाधीजी की बुनियादी शिक्षा है। स्वतत्र देश ने उनकी इस बात को नही सुना और शिक्षा की गाडी पुरानी लीक पर ही चलती रही। समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग को खेल और क्रिया से 'कन्फ्यूज' न किया जाय, यह बात गाधीजी ने साफ कर दी थी। फिर भी कार्यान्वयन करनेवालो ने बुनियादी शिक्षा के उद्योग को कही खेल से (प्ले वे) और कहीं 'एक्टिविटी स्कूल' से 'इक्वेट' किया और फलत देश की शिक्षा से, तथाकथित बुनियादी कही जानेवाली शिक्षा से भी, उत्पादक और अशोषक व्यक्तित्व का विकास नही हुआ। जो बना वह विनायक नही, बानर बना और तब यह कह करके सन्तोष कर लिया गया कि बुनियादी शिक्षा सफल नही रही है। अत अगर शिक्षा मे क्रान्ति करनी है, और जिसका केवल एक ही अर्थ है कि अगर लोकतान्त्रिक समाजवाद के योग्य उत्पादक अशोषक व्यक्तित्व का विकास करना है, तो बुनियादी शिक्षा को अपनाना होगा। यह प्रबन्ध करना होगा कि प्रत्येक बालक को प्रारम्भ से ही समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग को वैज्ञानिक ढग से सिखाने का प्रबन्ध किया जाय। उसके लिए योग्य अध्यापक दिये जायँ, औजार दिये जायँ,

कारखाने दिये जायँ, जमीन दी जाय। सक्षेप मे सभी साधन दिये जायँ, जो वैज्ञानिक ढग से किसी भी उत्पादक काम के सीखने के लिए आवश्यक हैं। आज जो क्रान्ति की माँग कर रहे हैं वे मजबूती से इसकी माँग करें। जिस दिन यह हो जायगा, शिक्षा मे क्रान्ति हो जायगी।

क्रान्ति की दूसरी बात कोठारी-आयोग ने की है। अपनी रिपोर्ट मे उसने सस्तुति की है कि नेबरहुड स्कूल' (पडोसी विद्यालय) खोले जायँ। पडोसी स्कूल का अर्थ है कि एक पडोस के रहनेवाले सब बच्चे एक-सी सस्था मे ही शिक्षा पाय। श्रीमान् का बच्चा नर्सरी स्कूल मे या पब्लिक स्कूल मे जाय और मजदूर का बच्चा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या म्युनिसिपैलिटी के बेसिक स्कूल म जाय ऐसा न हो। कोठारी-आयोग की यह सस्तुति वास्तव म एक क्रान्तिकारी सस्तुति है। इसीलिए रिपोर्ट के प्रकाशित होने के लगभग चार वर्ष बाद भी उसका कार्यान्वयन नही हुआ है, और आज भी देश मे आयोग की सकल्पना का एक भी पडोसी स्कूल नही है। कहा गया है कि यह सस्तुति तो हमारे मूलाधिकार पर ही प्रहार करती है। यह अधिकार तो हमको सविधान ने दिया है कि हम व्यक्तिगत स्कूल खोलें और अपने लडके को चाहे जिस स्कूल मे भेजें। परन्तु यदि ऐसा हुआ तो कभी भी इस देश में समाजवाद की स्थापना नही होगी। समता के मूल मे शिक्षण की सुविधा की समानता है। जब तक यह समानता प्राप्त नही होती, समाजवाद अथवा लोकतत्र की बात बेकार है। पडोसी विद्यालय की माँग क्रान्ति की माँग करनेवालो को करना चाहिए।

क्रान्ति की तीसरी बात विनोबा ने की है। उन्होंने कहा है कि न्याय विभाग की भाँति शिक्षा-विभाग भी स्वायत्त हो। जैसे न्याय-विभाग पैसा सरकार से लेता हुआ भी सरकार के निर्णय के विरुद्ध फैसला कर सकता है और सरकार को उस फैसले को मानना पडता है, वैसे ही शिक्षा विभाग सरकार से पूरा वेतन ले, परन्तु क्या पढाया जाय, कैसे पढाया जाय, परीक्षा-पद्धति क्या हो, व्यवस्था कैसे हो, यह सब निर्णय शिक्षा विभाग का हो, आचार्य का हो और सरकार उस मान्यता दे। सक्षेप मे शिक्षा शासन-मुक्त हो। शिक्षा मे परिवर्तन *करनेवाले को यह समझना चाहिए कि समाजवादी देश मे*

यदि शिक्षा शासन-मुक्त नही रही तो प्रतिक्षण 'रेजीमेन्टेशन' का खतरा है, जो लोकतंत्र का सबसे बडा खतरा है।

क्रान्ति की एक दूसरी बात उन्होंने और कही है, प्रमाण-पत्र को सेवा से अलग करने की बात। वे कहते हैं कि नौकरी के लिए शैक्षणिक योग्यता का कोई प्रमाण पत्र न मॉगा जाय। यह न कहा जाय कि *अमुक नौकरी के लिए अमुक प्रमाण पत्र* आवश्यक है। जिसे नौकरी देनी है, वह स्वय परीक्षा ले ले। विनोबा की यह बात मान ली जाय तो आज की परीक्षा पद्धति मे आमूल परिवर्तन हो जायगा। हमारी आज की सारी शिक्षा परीक्षापरक (एक्जामिनेशन ओरिऐण्टेड) है। अगर परीक्षा-पद्धति बदल जाय तो शिक्षा भी बदल जायगी। यह बात उन्होने सन् १९५६ मे ही प० जवाहरलाल नेहरू से कही थी। उन्होने इसे बहुत पसन्द भी किया था। परन्तु कुछ हुआ नही। आज भी हम वही हैं, जहाँ पन्द्रह साल पहले थे।

इस प्रकार की शासन-मुक्त शिक्षा अभिभावक, शिक्षक और छात्र के सम्मिलित उत्तरदायित्व का विषय होगी। इनकी मिलीजुली समितियाँ ही शिक्षा के प्रशासनिक और शैक्षणिक व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होगी। यह माँग भी क्रान्तिकारियो को करनी चाहिए।

अत मैं तो कहूँगा कि अगर शिक्षा मे क्रान्ति करनी है, तो हमारे विद्वान, हमारे आचार्य, हमारे तरुण शान्तिसैनिक और हमारा नक्सालवादी युवक, सब इन तीन परिवर्तनो की माँग करें। तब उनकी माँग ठोस होगी और उनका कदम जमीन पर होगा। जिस दिन यह होगा उसी दिन शिक्षा मे क्रान्ति हो जायगी।

—वशीधर श्रीवास्तव

एक टिप्पणी

१६७० के दशक में शिक्षा

राममूर्ति

जाडे के दिन गाँव मे धान काटने-दँवाने, रबी बोने-सींचने, गन्ना पेरने और गुड बनाने के हैं। शहरो मे, इन दिनो काम की कमी रहती है, तो बडे लोग भरपूर बात का भात पकाते हैं, और बात की दाल से खाकर असली दाल भात का मजा लेते हैं।

दीक्षान्त भाषण, परिसंवाद, गोष्ठी, सभा, सम्मेलन, आदि के नाम से जहाँ देखिए 'बात के मेले' सजे मिलेंगे। राजधानियों मे तो बात की पूरी बहार आ जाती है। टैक्सीवालो, होटलवालो, और अखबारवालो के पौ बारह हो जाते हैं। मनचाही कमाई होती है। अखबारवालो को मैटर की कमी कम-से-कम जाडे मे नहीं पडती।

इन समारोहो मे होता क्या है? किन बातो को लेकर बात के फव्वारे छूटते हैं? जो बडे नेता, विद्वान, उद्योगपति, मन्त्री, इन आयोजनो की शोभा बढाते हैं वे कहते क्या हैं? सब लम्बे-लम्बे भाषण लिखकर लाते हैं। सबमे लगभग एक ही बात होती है कि इस देश की महान परम्परा है, उसकी महान समस्याएँ हैं, और उन समस्याओ को शीघ्र राष्ट्रीय स्तर पर हल होना चाहिए। जिन बडे लोगों के, विशेष रूप से हमारे मन्त्रियो के, भाषण दूसरो द्वारा लिखे जाते हैं, उनके लिखनेवाले बेचारे सोच नही पाते कि आखिर कौनसी नयी बात कहें जो दूसरो ने नही कही है। बस, भाषण में कोई लच्छेदार बात होनी चाहिए, वह सही भी है, इसकी चिंता क्यो की जाय, क्योकि उस बात के लागू होने की नौबत तो कभी आनेवाली है नही। हमारे देश की समस्याओ का कुछ ऐसा स्वभाव हो गया है कि वे कभी हल नहीं होतीं, हमारे नेताओ और विद्वानों का यह हाल हो गया है कि वे कभी समस्याओ से बँधते नही। वे ऐसी बात कहना चाहते हैं जो काल और परिस्थिति से मर्यादित न हो। उनके भाषण कालम के-कालम अखबार मे छपते हैं, और दूसरे दिन उन अखबारो मे बनिया बीडी के बडल बाँधता है। जो हाल अखबार का वह उसमे छपी बातों का। बात हुई और धुआँ बनकर उड गयी!

अभी दिसम्बर के अन्त में पटना मे शिक्षकों का एक बहुत बडा सम्मेलन हुआ था। दिल्ली के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर डा० आदित्यनाथ झा अध्यक्ष होकर

आये थे। उद्घाटन डा० त्रिगुण सेन करनेवाले थे लेकिन वह नहीं आये, उनका भाषण आया। आजकल शिक्षकों को शासकों की जरूरत अधिक रहती है। अब हमारे देश की शिक्षा में एक ही समस्या रह गयी है—प्रमोशन। शिक्षक चाहते हैं कि पढ़ाई हो या न हो उन्हें प्रमोशन मिले; विद्यार्थी कहते हैं कि परीक्षा मत लो, प्रमोशन दो। कम से कम इस एक प्रश्न पर शिक्षक और विद्यार्थी एक हैं। बहुत दिनों के बाद शिक्षक शिक्षणार्थी में एकता का एक दृढ़ आधार मिला है।

पटना में क्या हुआ? डा० आदित्यनाथ झा ने अत्यन्त सुन्दर भाषण दिया। वह मैथिल हैं, हिन्दी संस्कृत के जानकार हैं, अंग्रेजी के विद्वान हैं, देश के बड़े से बड़े अधिकारियों में हैं। उनका भाषण अंग्रेजी में था। हमारे शासकों का यह दृढ़ मत रहा है कि समस्या देशी हो तो उसे समझने समझाने की भाषा और भूमिका देशी हर्गिज नहीं होनी चाहिए, अंग्रेजी होनी चाहिए। स्वतन्त्रता के बाद भारत की कोई समस्या भारतीय भूमिका में न समझी गयी है न हल की गयी है। इसीलिए हल भी नहीं हुई है। डा० झा ने शिक्षा का दार्शनिक पहलू प्रस्तुत करते हुए कहा कि वह शिक्षा क्या जो मानवीय मूल्यों की रक्षा न करे? भला इस ऊँचे विचार से कौन असहमत हो सकता है? पटना का यह सम्मेलन '१९७० के दशक में शिक्षा' पर विचार करने के लिए हुआ था। यह निर्विवाद है कि १९७० से १९७९ तक के दस वर्षों में दुनिया की सबसे बड़ी समस्या है मानवीय मूल्यों की रक्षा। रक्षा किस चीज से? उस सभ्यता और संस्कृति से जिसे यान्त्रिकी की मदद से हमने बनाया है। इसलिए डा० झा ने कहा कि मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए शिक्षा काफी नहीं है, उसके लिए नयी संस्कृति (कल्चर) चाहिए। उन्होंने बड़ी बात कही, लेकिन यह क्यों नहीं कहा कि मानवीय मूल्यों को सबसे अधिक खतरा है आज की शिक्षा से। दुनिया को जाने दें, हमारे देश में मानव का सबसे बड़ा शत्रु है देश की शिक्षा। करोड़ों बच्चों, तरुणों और तरुणियों का गला कौन घोट रहा है? बीमारियाँ कितने होनहारों को मार सकती हैं, लेकिन यह शिक्षा तो किसीको भी नहीं छोड़ रही है! हमारे शासक और शिक्षक दोनों इतना तो मानते हैं कि शिक्षा बुरी है, गला फाड़कर भाषण भी देते हैं, किन्तु बदलने के लिए आगे क्यों नहीं बढ़ते? शिक्षकों की हड़तालें कम नहीं होतीं, लेकिन कभी यह नहीं सुना गया कि कोई हड़ताल इस प्रश्न पर भी होगी कि जब तक यह हत्यारी शिक्षा बदली नहीं जायगी, वे विद्यालयों में नहीं आयेंगे। सारा समाज उनका साथ देता, उनकी जय-जयकार करता। बात यह है कि शिक्षा भी एक जबरदस्त निहित स्वार्थ

बन गयी है। दुर्भाग्य है कि हमारा शिक्षक भी स्वार्थ के त्रिगुट में नेता और प्रशासक के साथ शामिल हो गया है। वह भी परिवर्तन से डरता है। परिवर्तन को वह 'प्रमोशन' की तराजू में तौलता है। नेताओं और प्रशासकों की तरह उसे भी दरिद्र नारायण का भय हो गया है। इसीलिए परिवर्तन की बड़ी-बड़ी बातें करनेवाले भी दिल से परिवर्तन नहीं चाहते। परिवर्तन की बातें सिर्फ नीचेवालों को भुलावे में रखकर अपने विशेषाधिकारों को कायम रखने के लिए की जाती हैं। पटना में यही हुआ। यही हर जगह हो रहा है।

पटना सम्मेलन के विशेषज्ञों ने शिक्षा के सुधार के लिए क्या तय किया? एक तो यह कि हर विद्यार्थी को तीन भाषाएँ पढ़ायी जायँ। भाषाओं के अलावा इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, गणित और सामान्य विज्ञान भी पढ़ाये जायँ। कोई इन सज्जनों से पूछे कि इन विषयों को कौन पढ़ायेगा, और कौन पढ़ेगा? इनके विद्यालयों में पढ़ने-पढ़ाने का अब कितना काम होता है? इनकी परीक्षाएँ कौन देता है? क्या उनकी जरा भी प्रामाणिकता रह गयी है? यह पढ़ाओ वह पढ़ाओ, की लम्बी-चौड़ी बातें करके ये नामधारी विद्वान किसकी आँखों में धूल झोंकना चाहते हैं, यह तो बतायें? अगर कोई संदेह रह गया था तो पटना में सिद्ध हो गया कि इस देश के शिक्षक शिक्षा में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं चाहते। वे मूलतः उसी शिक्षा के समर्थक हैं, उसी सामाजिक आर्थिक-राजनैतिक व्यवस्था के समर्थक है, जिससे आज के बड़े लोग बड़े बने हुए हैं और जिसके द्वारा वे भी बड़े बनने का मौका ढूंढ रहे हैं।

हमारे देश की दुनिया अजीब है। एक दुनिया है बड़ों की, दूसरी है छोटों की, तीसरी है 'नीचों' की। हमारी शिक्षा बड़ों के लिए थी, लेकिन इससे उनका भी काम नहीं चल रहा है। अब शिक्षा बड़ों से उठकर बहुत बड़ों के लिए हो गयी है! अच्छा हुआ कि यह बात पटना में खुलकर सामने आ गयी। इस अर्थ में शिक्षक सम्मेलन बहुत सफल रहा। छोटों और 'नीचों' की आँखें अब तक न खुली हों तो अब खुल जानी चाहिए। तरुणों और तरुणियों को तो समझ ही लेना चाहिए कि उन्हें आग के दस वर्षों में भी बात ही का भात खिलाकर रखने की 'योजना' बन रही है। एक पीढ़ी और चली जायगी। बड़ों की दुनिया की बड़ी बड़ी बातें हैं। उसमें रहनेवाले छोटों की और नीचों की दुनिया में रहनेवालों से बहुत दूर हैं। वे दूरी रखना चाहते हैं, हम दूरी मिटाना चाहते हैं। हमारे लिए अगले दशक की शिक्षा में यही काम है। यही हमारी क्रांति होगी।•

शिक्षक और मजदूर-संगठन

के० एस० आचार्लू

अपनी शिकायतों को प्रकट करने के लिए हमारा देश आज जोर-जबरदस्तीवाला आन्दोलन चलाने की अवांछनीय परिस्थिति में से गुजर रहा है। ऐसे हर आन्दोलन के बाद नागरिक-जीवन में प्रायः हिंसात्मक घटनाओं की लहर उठती है, सम्पत्ति को हानि पहुँचायी जाती है और सामान्य जीवन का क्रम अस्त-व्यस्त हो जाता है। मजदूर-संगठन का मुख्य लक्ष्य है गलत कामों को दुरुस्त करने और अपनी उचित माँगों को प्राप्त करने के लिए सबका सम्मिलित मोर्चा बनाना। अकसर मजदूर-संगठन प्रबन्धकों, या समाज से अपनी मुँहमाँगी माँग मंजूर कराने के लिए अपनी माँगों के साथ क्रोध और विद्वेष-भावना का समावेश भी करता है। कारखाने में काम करनेवाले मजदूरों और सफेदपोश कर्मचारियों के दबाव डालनेवाले प्रदर्शनों के परिणामस्वरूप उन्हें प्रसन्न होने लायक फल प्राप्त हुए। मजदूरों और सफेदपोश कर्मचारियों के परिणाम ने विद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के भीतर आशा के बीज बो दिये हैं। अब वे भी उनके पीछे-पीछे चलकर अपनी लक्ष्यपूर्ति करना चाहते हैं। शिक्षक-समुदाय के जिम्मेदार नेताओं तक ने शिक्षक-संघ को मजदूर-संगठन के ढंग पर संगठित होकर अपनी उचित माँगों की प्राप्ति हेतु दबाव और जोर-जबरदस्तीवाला तरीका अपनाने के लिए हरी झंडी दिखा दी है। वे जिस दिशा में सोचते हैं वह यह है—कारखाने में काम करनेवाले श्रमिकों और रेल-कर्मचारियों ने दबावपूर्ण प्रदर्शन के द्वारा खूब सफलता प्राप्त कर ली है तो फिर हम क्यों न वैसा ही करें? आज का ऐसा युग है कि मीठी-मीठी बातों के कहने से कुछ लाभ नहीं होनेवाला है। कक्षा में पढ़ाते समय मानसिक और नैतिक पहलू अपनी जगह पर ठीक है, लेकिन जब प्रबन्धकों और प्रशासकों से सभा-सम्मेलन में निबटना हो तो इससे काम नहीं चलेगा।

शिक्षक सोचें

मजदूर-संगठनों की 'टेकनिक' से प्रेरणा ग्रहण करके अपनाया गया शिक्षा-शास्त्रियों का यह प्रदर्शनकारी रुख शैक्षिक मूल्यों और समाज के प्रति शिक्षकों के 'रोल' से सम्बन्धित कुछ बुनियादी प्रश्न खड़े करता है। शिक्षक-संगठन के कट्टर समर्थक शिक्षा-शास्त्रियों को भी यह स्वीकार करना होगा कि किसी शिक्षा-शास्त्री की शिक्षण-कला और विशिष्टता इस बात में निहित है कि वह मनुष्य-जीवन में पूर्णता का आशय किस हद तक ग्रहण कर पाया है, वस्तुतः शिक्षण का उद्देश्य यह नहीं है कि छात्र को एक खाली बर्तन माना जाय जिसे भरना

है बल्कि वह एक दीया है जिसे आलोकित करना है, छात्र के साथ शिक्षक का सम्बन्ध 'मैं और तुम' का है 'मैं और वह' का नहीं। यहाँ यह प्रश्न उठाना अत्यन्त प्रासंगिक है कि क्या मनुष्य और शिक्षक होने के नाते अपना और अपने छात्रों का जीवन संचालित करने के हमारे रुख में कोई परिवर्तन आया है? क्या हमने अपने जीवन के उद्देश्य अपने अन्तिम लक्ष्य की पवित्रता और आनेवाली भविष्य की दुनिया के अग्रदूत होने के प्रति अपनी आस्था खो दी है? चैतन्य की शान्ति के प्रति अपनी अडिग धारणा को क्या हम तेजी के साथ खोते चले जा रहे हैं? प्राध्यापक जेम्स बिलिंगटन ने लिखा है--हमारे जीवन के लिए व्यवसायीकरण, प्रतिस्पर्द्धा की वृत्ति, शान-शौकत दिखाने की प्रवंचना और संचित धन के ह्रासोन्मुख प्रभाव मानवीय सम्बन्ध बनाने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। श्री जयप्रकाशजी ने अपने हाल के एक दीक्षांत भाषण में पूछा है कि क्या बुराई के सामने अच्छाई ने पराजय स्वीकार कर ली? क्या हमने अपने आपको ठीके पर काम करनेवाले विशेषज्ञों में बदल लिया है जो केवल अपनी प्रतिभा को ऊँची कीमत पर बेचने में रुचि रखते हैं?

हम लोगों ने जिन्हें अपने आदर्शों के प्रति बलिष्ठ निष्ठा और आत्म-शक्ति में अडिग विश्वास था, ऐसा प्रतीत होता है कि अब, अपने को नैराश्य भावना के हवाले कर दिया है और हम शक्ति संगठनों के साथ शिक्षा विरोधी घनिष्टता बढ़ाने की बात सोचने लगे हैं। यह कितनी पीडादायक घटना है कि दो-तीन दशक पहले जो समुदाय समाज की मलाई जैसा था वह विकृत होकर दुर्गन्ध से भर गया है। जिन मूल्यों को हम प्रिय और पुनीत मानते थे वे हमारी ही आँखों के सामने घुलते दिखायी दे रहे हैं। प्राचीन काल के उच्च आदर्शों के प्रति हमारी उपेक्षा ने हमारे सामने ऐसे नये नमूने खडे होने दिये हैं जो संदिग्ध और उत्तेजक हैं। जब लोगों का अपने आप पर से और अपने आदर्शों से विश्वास उठ जाता है तब उनके लिए किसी 'बाहरी व्यवस्था' पर अपना सारा उत्तरदायित्व सौंप देना सरल हो जाता है। हमारे पड़ोसी की कार्य-पद्धति की सफलता हमारे लिए तत्काल बडी आकर्षक प्रतीत हो सकती है, लेकिन बाद में हमें भगवान से प्रार्थना करनी होगी कि वे उससे हमारी रक्षा करें। मजदूर-संगठन के नेतृत्व की सफलता ने हमारी नजरों से हमारी वास्तविक कामनाओं को ओझल कर दिया है। यह दुर्भाग्य की बात है कि प्रचलित शब्दावली में कृत्य का अर्थ राजनैतिक प्रदर्शन के अतिरिक्त कुछ होता ही नहीं और सभी समुदाय के शिक्षक नैतिक सिद्धान्तों को अव्यावहारिक और बेस्वाद मानते हैं। यदि

शिक्षकगण प्रदर्शनात्मक रवैया ग्रहण करना स्वीकार कर लेते हैं तो श्रौर सुन्दर संसार बनने की कोई व्यावहारिक आशा नहीं रहेगी।

शिक्षक और मजदूर

एक शिक्षक तथा किसी कारखाने मे काम करनेवाले मजदूर या रेल चलानेवाले इंजिन के ड्राइवर मे एक अत्यन्त नाजुक अन्तर है। उपरोक्त कोटि के कर्मचारियो का सम्बन्ध निर्जीव वस्तुश्रो से श्राता है जब कि शिक्षकों को सजीव प्राणियो से निबाहना होता है। शिक्षक द्वारा बोले जानेवाले शब्द, उसकी वाणी की ध्वनि, उसका स्कूल और अपने घर पर रहने का ढंग, उसका दूसरो से सम्बन्ध, उसके पहनने और खाने-पीने के तौर-तरीके—इन सबका उन लोगो पर सीधा श्रौर परोक्ष प्रभाव पडता है जिनके साथ वह घंटों रहता है। कारखाने का मजदूर किसी चीज को बना या बिगाड सकता है, उसे छोडकर कारखाने से बाहर चला जा सकता है। उसका कोई अपना रचनात्मक व्यक्तित्व नहीं है। विशालकाय यन्त्रो के उत्पादन और वितरण मे उसका अपना व्यक्तित्व खो चुका है। इसके विपरीत एक शिक्षक अपने छात्रों के साथ रहता है श्रौर अपने निजी व्यक्तित्व के उदाहरण के द्वारा अपना कार्य करता है। शिक्षक मजदूर से एकदम भिन्न प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध मे कार्यरत रहता है। इसीलिए यह निश्चित-सा है कि यदि शिक्षक मजदूर-संगठनो का शोर-गुलवाला तकनीक अंगीकार करते है तो श्राज से श्रौर अच्छी दुनिया बनने की कोई व्यावहारिक श्राशा नही रह जाती। शिक्षा एक ऐसी उच्च सामाजिक प्रवृत्ति है कि यदि वह बाजारू अक्लमन्दो से प्रेरणा लेती है तो अपना महत्त्व घटायेगी। अवांछनीय तरीकों के परिणाम भी अवांछनीय होते हैं। आप बबूल या गूलर के पेड से अंगूर नहीं प्राप्त कर सकते।

शिक्षकों की यदि एक समुदाय के रूप में छात्रों की नयी पीढ़ी के नैतिक, आध्यात्मिक श्रौर मानसिक उत्थान की नैतिक व आध्यात्मिक जिम्मेदारी है तो उनके विरोध-प्रदर्शन की पद्धति निश्चित रूप से उन लोगों से भिन्न प्रकार की उदात्त श्रौर उच्चस्तरीय होगी जो इंजिन चालक या यन्त्रो पर काम करनेवाले हैं। जनता मे भाषण देते समय वक्ता बीच-बीच मे शिक्षकों के कार्य की महत्ता, महानता श्रौर उदात्तता को ऊँचा उठाने के लिए जो कुछ कहा करते हैं उसमे हमें मूर्ख नहीं बनाया जा सकता। पिछले कुछ वर्षों का इतिहास निश्चय ही हमारे लिए दुखदायी रहा है। वेतन पानेवाले ऊँचे स्तर के अफसरों श्रौर नीचे स्तर के कर्मचारियो के बीच जितनी विषमता मौजूद है वह इस युग का एक ऐसा नग्न मजाक है जो हमारी स्मृति म आसानी से नहीं भूलेगा। एक तरफ

ऊँचा वेतन पानेवालों को सरकारी खर्च से ऐसी सुविधाएँ मिली हुई हैं जिनका उन्हें अपनी जेब से कोई खर्च नहीं देना पड़ता। वे महल-जैसे भव्य प्रासादों में रहते हैं जिनमें अच्छे रख-रखाववाले उद्यान, और बगीचे हैं, तथा उनकी सुख-सुविधा के लिए वैभव और तड़क-भड़कवाला वातावरण है जब कि निचले वेतन-मानवाले लोगों को दरबे जैसे मकानों और तकलीफदेह रहन-सहन के वातावरण में दिन बिताना पड़ता है। दिल को ठेस पहुँचानेवाली इस परिस्थिति और तुलना की इस उत्तेजक वस्तुस्थिति के होते हुए भी हमें अपने पैर नहीं उखड़ने देना चाहिए। यदि हमें किसी नयी दिशा, किसी नये दर्शन, किसी नयी आशा की आवश्यकता है तो वह इसी समय है। हमें अपनी आवश्यकताओं को ऐच्छिक निर्धनता के द्वारा सरल-से-सरल बनाकर 'गरीब न होते हुए भी सरल' (रवि ठाकुर) बनना सीखना चाहिए। हमारे देश की जो गरिमा और आदर्श हैं उनसे हम अपने को किसी भी कीमत पर अलग न करें। अपना न्याय-पूर्ण हक प्राप्त करने के लिए हम जो कुछ सोचें, हम जिस नयी शब्दावली को सीखें उसका सम्बन्ध मनुष्य की चेतना और शालीनता से होना चाहिए।

शिक्षक का उत्तरदायित्व

छात्रों में इन दिनों जो हिंसा, घृणा और अनुशासनहीनता की लहर उठती दिखायी दे रही है उससे हमारी आँखें खुलनी चाहिए और यह दीखना चाहिए कि शैक्षिक दायरे की क्या परिस्थिति है। इससे हमें आत्म-परीक्षण की उत्प्रेरणा मिलनी चाहिए। यह सही है कि छात्रों के व्यक्तित्व और व्यवहार पर हजारों शक्तियों और प्रभावों का असर पड़ता है लेकिन छात्रों पर हमारा जो मुख्य प्रभाव पड़ता है उसकी जिम्मेदारी से हम अपने आपको अलग नहीं कर सकते। इसी नाते आज की दुखद स्थिति के प्रति हमारा गहरा उत्तरदायित्व है। विद्यालय और महाविद्यालय के छात्र खुल्लम खुल्ला यह घोषणा करते हैं कि हम कार्य-सम्पादन के लिए अयोग्य, बौद्धिक दृष्टि से कुंठित और नैतिक दृष्टि से शून्य हैं। उनकी यह घोषणा हमारे चरित्र और व्यक्तित्व के लिए सम्मानदायी तो नहीं ही है।

हमारे किशोर जिन लोगों को अपने लिए नमूना मानते हैं—खिलाड़ी, ड्राइवर, विक्रेता, फिल्मी सितारे, अर्धनग्न तारिकाएँ आदि—वे इस बात के प्रमाण हैं कि शिक्षा में किस हद तक नैतिक मूल्यों की अवहेलना हुई है और उनको प्रतिष्ठित करने में हम कहाँ तक विफल हुए हैं। मूल्यों की इस व्याधि में मजदूर संगठन की नैतिकता का समावेश हो जाता है तो इसका एक ही परिणाम

होगा कि हम अपने छात्रों को विद्रोह करने का रास्ता तो बता देंगे, लेकिन मानव-जीवन विज्ञान का नहीं।

सच्चाई यह है कि शिक्षा म कोई भी रचनात्मक काम उन्हीं लोगो द्वारा हो सकता है जो शिक्षा का जीवन जीते हैं। एक ऐसी सामाजिक परिस्थिति के निमाण के लिए, जिसमें शुद्ध शिक्षा परिलक्षित हो, यह आवश्यक होगा कि आत्मसम्मानवाले शिक्षा शास्त्री राजनैतिक या शक्ति केन्द्रित सगठनों से उत्पीडित हुए बिना, सच्चाई की राह पर दृढता से आगे बढें। शायद समाज म हम शिक्षको का ही एक समुदाय है, जो यदि सकलित होकर आगे बढे तो 'वीरो की अहिंसा' का नमूना पेश कर सकता है। इस सन्दर्भ मे ही विनोबाजी के आचार्यकुल का गहरा महत्व है। आचार्यकुल शिक्षकों का एक सगठन है, जो शैक्षिक आदर्शों से सम्बद्ध है।

इग्लैण्ड के महायुद्ध के बाद के शिक्षा मत्री जार्ज टॉमलिन्सन ने जब कहा था कि 'आप बिना मद्यालय के काम कर सकते हैं, आप लोकसेवा-प्रशासन के बिना भी काम चला सकते हैं लेकिन यदि शिक्षक न होंगे तो पीढियो के बाद ससार बर्बरता के युग मे लौट जायेगा, तो उनके मानस मे शिक्षक था प्रदत्तान-कारी नहीं।

(मूल अग्रेजी से)

भूल-सुधार

'नयी तालीम' के नवम्बर '७० के अक में निरक्षरता निवारण' शीर्षक लेख म पृष्ठसख्या १६२ पर दूसरे परिच्छेद की पहली पक्ति मे 'स्रोत शिक्षण' के स्थान पर 'श्रौत शिक्षण' पढें। इसी पृष्ठ मे 'श्रौत शिक्षण' की जगह 'स्रोत परम्परा' छप गया है।

पृष्ठ १६६ मे नीचे से चौथी पक्ति में '१६ वीं सदी' के बजाय '२० वीं सदी' चाहिए। इसी पृष्ठ की तीसरी पक्ति म 'देश' के बजाय 'देशज' शब्द होना चाहिए। भूल के लिए क्षमा करें।—स०

उत्तर प्रदेश में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की प्रगति

प्रदेश मे माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे जनता ने बहुत योगदान दिया है और प्राइवेट स्कूलो के अधिक सख्या मे होने से इस स्तर पर शिक्षा के प्रसार को बहुत बल मिला है। किन्तु अधिकांश प्राइवेट स्कूलो की आर्थिक दशा अच्छी नही है। अतः माध्यमिक शिक्षा के स्तर को उन्नत करने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि ऐसी नीति अपनायी जाय जिसके फलस्वरूप उन सभी मान्यताप्राप्त विद्यालयो को अनुदान मिलने लगे जिनको अभी तक अनुदान नही मिल सका है। तृतीय योजना-काल में ६३७ गैर-सरकारी मान्यताप्राप्त विद्यालय अनुदान-सूची पर लाये गये। वर्ष १९६६-६७ से १९६८-६९ तक गत तीन वार्षिक योजना-काल मे ३३३ विद्यालयो को अनुदान सूची पर लाया गया। इस वर्ष १०० ऐसे विद्यालयो को अनुदान सूची पर लाया जायगा।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों मे जहाँ छात्र-सख्या अधिक है, सज्जा, काष्ठोपकरण एव भवन की बडी कमी है। शासन ने इसको दूर करने के लिए आर्थिक सहायता देना निर्धारित किया है। तृतीय योजना-काल मे ८१० विद्यालयो को दो कमरो के निर्माणार्थ ४३,९०,००० रु० का भवन-अनुदान, १,१८६ विद्यालयों को १५,४८,०२५ रुपये का सज्जा एव काष्ठोपकरण अनुदान तथा वाहन-सुविधा हेतु बसो के लिए ३० विद्यालयो को ३,७०,००० रु० का अनुदान अर्थात कुल ६३,०८,०२५ रुपये का अनुदान इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रदान किया गया। गैर-सरकारी सहायताप्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लिए भवन-निर्माण सम्बन्धी एक दूसरी योजना के अन्तर्गत ४ शिक्षण-कक्षा निर्माण हेतु तृतीय योजना-काल मे ३३९ विद्यालयो को १९,४०,००० रु० स्वीकृत किये गये।

शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने में पुस्तकालयो का बडा महत्त्व है। गैर-सरकारी स्कूलो म पुस्तकालयों की दशा अच्छी नहीं है। उसको सुधारने के लिए तृतीय योजना-काल मे ७५८ विद्यालयो को २०,९८,००० रुपये का अनुदान स्वीकृत किया गया। वर्ष १९६६-६७ से १९६८-६९ तक तीन योजना-काल मे १६७ विद्यालयो को ४,९०,००० रुपये का पुस्तकालय-अनुदान दिया गया। इस काल मे ७५ राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के पुस्तकालयों के सुधार हेतु भी १,८७,५००० रु० का अनुदान स्वीकृत किया। इस वर्ष २० अराजकीय तथा २० राजकीय विद्यालयों के सुधार हेतु क्रमशः ८०,००० रु० तथा ५०,००० रु० की सहायता दी जायगी।

कुछ गैर सरकारी विद्यालयो मे बहुधा समुचित क्रीडागन का अभाव रहता है। उनमे बच्चो के खेलकूद के लिए स्थान नही होता है। ऐसे स्कूलो के इस अभाव को दूर करने के लिए तृतीय योजना काल मे २३० विद्यालयो को १३,००,००० रु० का अनुदान दिया गया। वर्ष १९६८-६९ मे ३ विद्यालयो को खेल के मैदान की व्यवस्था हेतु १७,५०० रु० का अनुदान दिया गया था। इस वर्ष भी तीन विद्यालयो मे क्रीडा स्थल को व्यवस्था हेतु १८,००० रु० का प्राविधान है। प्रदेश के उच्चकोटि के विद्यालयो मे अध्यापक स्तर एव अनुशासन को उत्तरोत्तर सुदृढ करने के विचार से तृतीय योजना-काल के अन्तिम वर्ष से एक नयी योजना कार्यान्वित की गयी है। इसके अनुसार वर्ष १९६५-६६ मे प्रदेश के ५० उच्चकोटि के विद्यालयों को दक्षता अनुदान देकर प्रोत्साहित किया गया। वर्ष १९६६-६७ से १९६८-६९ तक गत तीन वार्षिक योजनान्तर्गत १२० उच्चकोटि के विद्यालयो को रु० २,५० ००० का अनुदान स्वीकृत किया गया है। इस वर्ष भी ऐसे ६० विद्यालयो को दक्षता अनुदान देने हेतु रु० १,००,००० का प्राविधान है। इसके अतिरिक्त विज्ञान शिक्षण को प्रोत्साहित देने के लिए अनेक प्रकार की सहायता प्रदान की जा रही है।

वर्ष १९६६-६७ मे सहायताप्राप्त गैर-सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे कार्य करनेवाले अध्यापको को उच्चतर शैक्षणिक योग्यता प्राप्त करने पर नकद पुरस्कार देने की नीति अपनायी गयी। विगत तीन वार्षिक योजना-काल मे 'उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के ९४ अध्यापको को विभिन्न दरो से रु० २०,६७५ के नकद पुरस्कार दिये गये।

अब इन्टर कक्षा उत्तीर्ण ऐसे जे० टी० सी० अध्यापक, जिन्हे पाँच वर्ष का शैक्षिक अनुभव है, गैर सरकारी स्कूलो मे सी० टी० वेतन क्रम मे सीधी नियुक्ति हेतु योग्य समझे जायेंगे।

अनेक कारणो से निर्धन छात्र पाठ्य पुस्तक के अभाव मे अपना अध्ययन जारी नही रख पाते। अत यह नितान्त आवश्यक है कि अराजकीय तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के पुस्तकालयो मे पर्याप्त सख्या मे पाठ्य-पुस्तकों की कई प्रतियाँ उपलब्ध हो जिनसे निर्धन छात्र लाभ उठा सकें। इस वर्ष ३५ राजकीय एवं अराजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों मे पाठ्य-पुस्तकालयों की व्यवस्था हेतु रु० २६,००० का प्राविधान है।

प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा में जो अभूतपूर्व प्रसार हुआ है उसका प्रभाव माध्यमिक स्तर पर भी पड़ा है। फलस्वरूप माध्यमिक विद्यालयों म छात्र-

सख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। इन अतिरिक्त छात्रो के अध्ययन की सुविधा हेतु अतिरिक्त कक्ष तथा सज्जा एव काष्ठोपकरण की आवश्यकता है। सहायताप्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक न होने के कारण वे स्वय इस अतिरिक्त व्यय को वहन करने मे असमर्थ है। अस्तु ऐसे ९० विद्यालयो को अनुदान देने के लिए इस वर्ष रु० २,६०,००० का प्राविधान है। इस हेतु प्रदेश के १५ राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को भी रु० २०,००० प्रति विद्यालय की दर से रु० ३,००,००० स्वीकृत किये गये।

कुछ क्षेत्रो मे बालिका विद्यालयो की अभी भी समुचित व्यवस्था नही है। ऐसे क्षेत्र म बालकों के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे बालिकाएं भी पढती हैं, इस प्रकार सह शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यालयो मे बालिकाओ की सुविधा के लिए एक पृथक कामन रूम एव शौचालय तथा स्नानागार-निर्माण के लिए ऐसे ११ विद्यालयो को अनुदान देने हेतु रु० ५१,००० का इस वर्ष प्राविधान है।

वर्ष १९६८-६९ म प्रदेश के पहाडी जिलो तथा पिछडे क्षेत्रो मे सहायताप्राप्त गैर सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो को उदारतापूर्वक रु० ४९,९२७ का अनुदान दिया गया है। इस वर्ष ऐसे ५० विद्यालयो को रु० १,००,००० का अनुदान देने का प्राविधान है।

तृतीय योजना-काल मे २ बालकों तथा ४३ बालिकाओ के राजकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों का हाईस्कूल तक उच्चीकरण किया गया, जिनमे से दो राजकीय कन्या पूर्व माध्यमिक विद्यालयो का हाईस्कूल-स्तर तक द्रुत विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत उच्चीकरण किया गया था। विगत तीन वार्षिक योजनान्तर्गत ६ राजकीय सीनियर बेसिक स्कूल हाईस्कूलो के रूप मे उच्चीकृत किये गये। इस वर्ष ६ सीनियर बेसिक स्कूलों को हाईस्कूल स्तर पर उच्चीकृत किया गया, तृतीय योजना-काल मे ३४ राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो का इन्टर कक्षा तक साहित्यिक और विज्ञान विषयो मे उच्चीकरण किया गया था। विगत तीन वार्षिक योजनान्तर्गत १० राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का इन्टरमीडिएट स्तर पर उच्चीकरण किया गया। इस वर्ष ३ राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो को इन्टर स्तर पर उच्चीकृत करने का प्रस्ताव है। तृतीय योजना काल मे १६८ विद्यालयों मे अतिरिक्त कक्षाएं खोली गयीं तथा १२६ विद्यालयो मे अतिरिक्त विषयों का समावेश किया गया था। तीन वार्षिक योजनान्तर्गत ८१ विद्यालयों मे

अतिरिक्त कक्षाएँ खोली गयीं तथा ४४ विद्यालयो मे नवीन विषयो का समावेश किया गया। इस वर्ष २५ विद्यालयो में अतिरिक्त अनुभाग खोले गये और १७ विद्यालयो में नवीन विषयो का समावेश किया गया है।

तृतीय योजना-काल मे विज्ञान विषय के अध्ययन हेतु २९ विद्यालयों मे सुविधाएँ प्रदान की गयी थीं। वर्ष १९६६-६७ से वर्ष १९६८-६९ तक मे ८ राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे विज्ञान विषय पढाने की सुविधाएँ प्रदान की गयी। राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे विज्ञान प्रयोग-शालाओ के रख-रखाव के लिए आवर्तक अनुदान देने के निमित्त एक अन्य योजनान्तर्गत वर्ष १९६८-६९ के ५५ विद्यालयो को रु० ७०,००० स्वीकृत किये गये। इस वर्ष २५ राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे विज्ञान-सामग्री हेतु रु० ३,१५,००० की व्यवस्था की गयी है।

प्रदेश के ९२२ उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो को बहुधन्धी विद्यालयो के रूप मे केन्द्रीय सहायता से विशेष रूप से सुदृढ किये गये हैं। जनवरी, १९६५ से बालिकाओं की शिक्षा कक्षा १० तक निःशुल्क कर दी गयी है, इससे बालिकाओ में शिक्षा के प्रति उत्साह बढेगा।

जिन १६ जिलो मे उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो की सख्या अधिक थी, उनमे गत वर्ष सह जिला विद्यालय निरीक्षकों के पद सृजित हुए हैं।

इस वर्ष प्रदेश के चार राजकीय कन्या विद्यालयो मे वाहन-सुविधा प्रदान करने हेतु चार बसें क्रय की जा रही हैं।

विज्ञान शिक्षा

विज्ञान शिक्षा की बढती हुई मॉग की पूर्ति के लिए अधिक प्रयोगशालाओ के निर्माण, वैज्ञानिक उपकरणो के प्रबन्ध और वैज्ञानिक पुस्तको के सुलभ होने की व्यवस्था अनिवार्य थी। गैर-सरकारी मान्यताप्राप्त साहाय्यिक उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को अपने आर्थिक साधनो से यह व्यवस्था करना सहज न था। अत उनकी सहायता हेतु अनुदान का प्राविधान किया गया है। तृतीय पचवर्षीय योजना-काल मे ५९२ स्कूलो को विज्ञान शिक्षा की सुव्यवस्था तथा प्रयोगशाला निर्माणार्थ रुपये ४९,७५,००० का अनावर्तक अनुदान दिया गया है। विगत तीन वार्षिक योजनान्तर्गत वर्ष १९६७ ६७ से १९६८-६९ तक में विज्ञान प्रयोगशाला एव प्रचुर मात्रा मे उपकरण हेतु २८३ उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को ३४,०९,००० का अनुदान स्वीकृत किया गया तथा २३१ विद्यालयों मे विज्ञान को अधिक सुव्यवस्थित करने हेतु रु० १०,८२,५०० का अनुदान स्वीकृत किया गया। विज्ञान कक्ष का अनुरक्षण भलीभाँति न

होने से पठन-पाठन मे बाधा उत्पन्न होती है, अतः विज्ञान के अध्ययन मे दक्षता हेतु वर्ष १९६६-६७ से १९६८-६९ तक तीन वार्षिक योजना-काल मे १९१५ विद्यालयो को रु० ८,४६,५१० अतिरिक्त आकस्मिक व्यय हेतु स्वीकृत किये गये।

इस वर्ष सहायता-प्राप्त ७१ उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे विज्ञान-अध्ययन की सुविधाओ के विस्तार हेतु रु० ५,१४,७००.का अनुदान स्वीकृत किया जायगा।

क्रैश प्रोग्राम

तृतीय योजना-काल मे विज्ञान शिक्षा की प्रगति की गति और अधिक तीव्र करने के लिए केन्द्रीय शासन की सहायता से एक 'क्रैश प्रोग्राम' प्रारम्भ किया गया था। हाईस्कूल और इन्टरमीडिएट स्तरों पर भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, और जीव-विज्ञान विषय के शिक्षण को सफल बनाने के लिए उपकरण की प्रचुर मात्रा मे आवश्यकता थी। अस्तु, एक ऐसी भी योजना बनायी गयी जिससे स्कूलों में उपकरण के भी निर्माण की शिक्षा-दीक्षा दी जा सके। 'क्रैश प्रोग्राम' के अन्तर्गत तृतीय योजना-काल मे प्रयोगशाला तथा उपकरण व्यवस्था के लिए रु० ३३,३१,००० तथा पुस्तकालय की सज्जा हेतु रुपये २,००,००० स्वीकृत किये गये। वर्ष १९६६-६७ मे ३१३ तथा वर्ष १९६७-६८ मे ३५ विद्यालयो को क्रमशः रु० १९,८२,९७३ तथा रु० १,९८,००० विज्ञान उपकरण हेतु स्वीकृत किये गये। 'क्रैश प्रोग्राम' के अन्य कार्यक्रम के अन्तर्गत शासन द्वारा १०५ गैर-सरकारी कृषि वर्ग सहित बहुधन्धी उच्चतर माध्यमिक स्कलो को कृषि वर्ग की कक्षाओ की उन्नति हेतु अनुदान दिया गया था। १९६६-६७ मे १०७ विद्यालयो को रु० ८,१९,८७० का अनुदान दिया गया।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण की सुविधाओं के सुधार और प्रसार के लिए सगठित प्रयास जारी है। विज्ञान-शिक्षण की सामान्य योजनाओं के अतिरिक्त उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विज्ञान के सुधार और प्रसार की एक विशेष योजना सन् १९६३ से चलायी गयी। इस योजना का लक्ष्य विज्ञान-अध्यापकों के सख्यात्मक और गुणात्मक अभावो की पूर्ति करके विज्ञान-शिक्षण की स्थिति को सुदृढ़ करना है। पोस्ट ग्रेजुएट विज्ञान-शिक्षकों के अभाव मे अनेक सहायता-प्राप्त विद्यालयों की विज्ञान की इन्टरमीडिएट कक्षाओ को पढ़ाने के लिए अनेक ग्रेजुएट विज्ञान-अध्यापको की नियुक्ति करनी पड़ी थी। बी० एस-सी० अध्यापकों के शास्त्रीय ज्ञान के सुधार के लिए एक

पोस्ट ग्रेजुएट कन्डेन्स्ड डिप्लोमा कोर्स प्रचलित किया गया। १९६४-६५ तक इस कोर्स की ९ इकाइयों (३ रसायन-शास्त्र, ५ भौतिक शास्त्र तथा १ जीव-विज्ञान) की स्थापना की गयी। कुल मिलाकर अब १२ इकाइयाँ (४ रसायन-शास्त्र, ६ भौतिक शास्त्र, १ वनस्पति-शास्त्र, १ जन्तु-विज्ञान) वर्ष १९६९-७० में भी चल रही हैं। इन शिक्षकों की शिक्षण विधि सम्बन्धी उचित इकाइयाँ प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं डिग्री कालेजों में चल रही हैं। विज्ञान के प्रशिक्षित अध्यापकों के अभाव में सहायताप्राप्त स्कूलों में अप्रशिक्षित शिक्षकों के शिक्षण विधि सम्बन्धी ज्ञानवर्धन के लिए वर्ष १९६३-६४ में सेवाकालीन प्रशिक्षण-कोर्स केन्द्र (रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लखनऊ और सेन्ट्रल पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद में) प्रारम्भ किये गये जो इस वर्ष भी सफलतापूर्वक चल रहे हैं। इसके अतिरिक्त १० सप्ताह के रिफ्रेशर कोर्स की विशेष व्यवस्था भी की गयी है जिसके लिए १९६५-६६ में दो केन्द्रों की स्थापना की गयी है जो १९६६-६७ तक चालू रहे। किन्तु अप्रैल, १९६७ से एक केन्द्र समाप्त हो गया, दूसरा केन्द्र जुलाई, '६७ तक चालू रहा। उसके पश्चात् अब यह कोर्स राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान द्वारा चलाया जा रहा है और इस कोर्स की अवधि १० से सप्ताह घटाकर ६ सप्ताह कर दी गयी है।

प्रशिक्षित विज्ञान-अध्यापकों की कमी को दूर करने की दिशा में एक एल० टी० साइन्स कोर्स भी सन् १९६३-६४ से राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लखनऊ में चालू किया गया, जिसमें ३० अभ्यर्थियों को प्रत्येक वर्ष प्रविष्ट किया जाता है। विज्ञान-अध्यापकों को शिक्षण-व्यवसाय में आकृष्ट करने और बनाये रखने के लिए प्रदेश की सहायताप्राप्त माध्यमिक संस्थाओं में आठ वेतन-वृद्धि तक देने की स्वीकृति दे दी गयी है। विज्ञान-शिक्षकों के अवकाश प्राप्त करने की आयु भी बढ़ा दी गयी है और अवकाश-प्राप्त शिक्षकों की पुनर्नियुक्ति की स्वीकृति दे दी गयी है। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में सेवापूर्व प्रशिक्षण प्राप्त करनेवाले विज्ञान स्नातकों के लिए सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालयों में २६ छात्रवृत्तियाँ एवं गैर-सरकारी महाविद्यालयों में २६ छात्रवृत्तियाँ और नि शुल्कताएँ भी स्वीकृत की गयी हैं।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विज्ञान की उचित रूप से देखभाल एवं उसमें विशेष प्रगति लाने के लिए भारत सरकार की शत-प्रतिशत सहायता से प्रदेश में एक विज्ञान संस्थान (स्टेट इन्स्टीट्यूट आफ साइन्स एजूकेशन) की भी स्थापना वर्ष १९६४-६५ के अन्त में की गयी है। स्कूलों में विज्ञान क्लब

स्थापित किये गये हैं। वैज्ञानिक प्रदर्शिनियों का भी आयोजन किया जाता है। १९६८-६९ मे उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के छात्रो के लिए सौ सौ रुपये के ९ पुरस्कार और बी० एस सी० तथा समकक्ष कक्षाओ के लिए दो-दो सौ रुपयों के सात पुरस्कार उत्तम सैद्धान्तिक या व्यावहारिक कृतियो, जैसे आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारो के क्रियाशील माडल, वैज्ञानिक विषयो पर मौलिक चिन्तन से युक्त लेख, मूल्यवान और दुर्लभ वैज्ञानिक यत्रो के सस्ते प्रतिमान, प्राविधिक विषयों पर लोकप्रिय शैली मे लिखे हुए और वैज्ञानिक ज्ञान का लोकप्रिय ढग से प्रसार करनेवाले निबन्ध, चार्ट, माडल आदि, के लिए दिये हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के साथ इस प्रदेश मे भी 'साइन्स टैलेन्ट सर्वे' की एक योजना चालू की गयी थी जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण भारत के स्तर पर एक परीक्षा का आयोजन किया था। इस परीक्षा में केवल उन्ही छात्र और छात्राओ को बैठने का अवसर प्राप्त था जो हाईस्कूल या समकक्ष परीक्षा साइन्स विषय को लेकर दे रहे हो। १९६९ में भारतवर्ष भर मे उत्तरप्रदेश से परीक्षा मे जो छात्र सम्मिलित हुए थे उनमे से २४ छात्रवृत्ति तथा योग्यता प्रमाण-पत्र देने के लिए चुने गये थे। इस वर्ष यह परीक्षा ७ जनवरी को सम्पन्न हुई।

प्रशिक्षण

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिए प्रशिक्षित स्नातक अध्यापक तैयार करने के उद्देश्य से शिक्षा-विभाग द्वारा स्नातक स्तर पर चार राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय सचालित हैं जिनमे से एक महिलाओ के लिए है। वर्ष १९६६-६७ मे इन चारो प्रशिक्षण महाविद्यालयों मे कुल १७० स्थानों की वृद्धि की गयी अर्थात् राजकीय केन्द्रीय पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद तथा राजकीय महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद में ४० अतिरिक्त छात्र और राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लखनऊ मे ५० तथा राजकीय बेसिक प्रशिक्षण महाविद्यालय, वाराणसी मे क्रमश ८० अतिरिक्त छात्र। इस प्रकार १९६६-६७ से राजकीय केन्द्रीय पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद, राजकीय महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद, राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लखनऊ, प्रत्येक में १०० एव राजकीय बेसिक प्रशिक्षण महाविद्यालय, वाराणसी मे सख्या १२० हो गयी है। इसके अतिरिक्त ४ मान्यताप्राप्त एल० टी० प्रशिक्षण महाविद्यालय भी हैं। अलीगढ़, इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ और गोरखपुर विश्वविद्यालयों के अपने शिक्षा-विभाग हैं और आगरा, मेरठ तथा कानपुर विश्वविद्यालय से

सम्बद्ध डिग्री कालेजों में भी शिक्षा विभाग हैं जो बी० टी० एव बी० एड० की उपाधि प्रदान करते हैं।

सेवारत अप्रशिक्षित अध्यापको को प्रशिक्षण देने के लिए विभाग द्वारा पाँच प्रशिक्षण केन्द्रो पर (१ शासकीय और ४ अशासकीय महाविद्यालयो से सलग्न) तीन-तीन महीनो के दो फेरो मे दो वर्ष मे एल० टी० (जनरल) और एल० टी० (हिन्दी) सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था है।

राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के अनेक स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षाप्राप्त, परन्तु अप्रशिक्षित अध्यापक हाईस्कूल और इन्टर की कक्षाओ को हिन्दी पढा रहे थे, अत इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई कि उनको भी एल० टी० स्तर का सेवारत प्रशिक्षण दिया जाय। फलतः इस उद्देश्य से उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था सन् १९६३ ६४ से कर दी गयी है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के शिक्षको को पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण भी दिया जाता है, जिससे उनको शिक्षा विज्ञान और प्रशिक्षण विधियो के नवीनतम विचारो का ज्ञान हो जाय और उनके अध्ययन-कौशल मे वृद्धि हो। वर्ष १९६९ मे एल० टी० स्तर पर उत्तीर्ण होनेवाले परीक्षार्थियो की कुल सख्या १११६ थी।

शिक्षको के अध्यापन सम्बन्धी ज्ञानवर्द्धन के उद्देश्य से शिक्षण महाविद्यालयों के साथ सेवा विस्तार विभाग सलग्न किये गये थे। यह प्रयोग बहुत सफल हुआ। इस समय ८ सेवा विस्तार विभाग सचालित हैं और ४ प्रशिक्षण महाविद्यालयो के साथ सेवा विस्तार की एक-एक इकाई सचालित है।

आंग्ल भाषा शिक्षण-संस्थान

अग्रेजी के शिक्षको को नवीनतम शिक्षण-विधियो का ज्ञान कराने के लिए इलाहाबाद मे एक आंग्ल भाषा शिक्षण-सस्थान, ब्रिटिश-काउसिल के द्वारा, नफील्ड फाउन्डेशन की आर्थिक सहायता से, सचालित था। इसका पूर्ण नियन्त्रण शिक्षा विभाग ने सन् १९६३-६४ से ग्रहण कर लिया। सस्थान द्वारा आंग्ल भाषा शिक्षण-डिप्लोमा के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रति वर्ष मसूरी में एक ग्रीष्मकालीन कोर्स भी आयोजित किया जाता है जिसका उद्देश्य अध्यापकों, प्रशासकों, निरीक्षकों आदि के लिए आंग्ल भाषा शिक्षण की नवीनतम विधियों का ज्ञान कराना है। इस सस्था द्वारा १९६९-७० के अन्त तक २६ डिप्लोमा कोर्स और १६ ग्रीष्मकालीन कोर्स आयोजित किये गये। इन कोर्सेज से अब तक लाभान्वित होनेवालों की संख्या क्रमानुसार ९३५ और ७७८ है।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर हिन्दी का शिक्षण उत्कृष्ट करने की दृष्टि से एक हिन्दी-सस्थान की स्थापना शासन द्वारा १९६९-७० में की गयी है। यह सस्थान उसी प्रकार व्यवस्थित किया जा रहा है जिस प्रकार वसमान आंग्ल भाषा शिक्षा-सस्थान व्यवस्थित है। इस सस्थान के मुख्य कार्यों की तालिका निम्नवत् है

१ जूनियर व हायर सेकेन्डरी स्कूलो के हिन्दी अध्यापकों का प्रशिक्षण।
२ उक्त अध्यापको के लिए रिफ्रेशर कोर्स का सचालन।
३ उचित पाठ्य-सामग्री तैयार करना।

रामपुर और इलाहाबाद स्थित राजकीय शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय और समोधपुर (जोनपुर) और लखनऊ के गैर सरकारी मान्यताप्राप्त प्रशिक्षण महाविद्यालय तथा राजकीय गृह विज्ञान प्रशिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद, अपने अपने विषयो के अध्यापकों अध्यापिकाओं को प्रशिक्षण प्रदान करते हैं।

केन्द्रीय शासन की पुरस्कार योजना मे इस वष उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के ३ तथा सीनियर बेसिक विद्यालयों के २ अध्यापकों को राष्ट्रीय पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। प्रदेशीय शासन द्वारा भी इस वर्ष माध्यमिक स्तर के ५ अध्यापको को प्रदेशीय पुरस्कार देकर सम्मानित करने का प्रस्ताव है।

(शिक्षा निदेशक कार्यालय, उ० प्र० इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित 'शिक्षा की प्रगति १९६९-७० से।)

भाषा-शिक्षकों के निर्माण की आवश्यकता

डा० जो चौरस्या

भारत मे भाषा-शिक्षकों के समुचित प्रशिक्षण पर पर्याप्त ध्यान नही दिया गया है । विद्यालयो मे प्रयोग की जानेवाली भाषा-शिक्षण की विधियाँ पुरानी पड चुकी हैं । आज भाषा-शिक्षण जिस स्तर पर विकसित होकर पहुँच चुका है, हमारे यहाँ उसके समानान्तर भाषा-शिक्षको का निर्माण नहीं हो सका है। पर्याप्त भाषा-योग्यता की कमी के कारण ही विद्यालयीन पाठ्यक्रम के अन्य विषयो के अध्ययन पर भी बुरा असर हुआ है । यहाँ तक ही नही, सम्पूर्ण शैक्षणिक स्तर को नीचे गिराने मे भाषा-योग्यता की कमी ही वह एकमात्र कारण रही है जो मूलत हर विद्यार्थी की शिक्षा की मुख्य वाहिका है । शिक्षा के गिरे हुए स्तर को लेकर चारो ओर एक गहरा असन्तोष व्याप्त हो रहा है । इस गिरे हुए स्तर को सुधारने के लिए कई उपाय सुझाये भी गये हैं । शिक्षा-आयोग ने भी इस सम्बन्ध मे कितने ही महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये हैं। किन्तु भाषा-शिक्षको के निर्माण की दिशा मे पर्याप्त ध्यान अभी तक नही दिया गया ।

शिक्षण-सस्थाओ मे हमारा प्रतिदिन का अनुभव यह है कि विद्यार्थी अपने पाठ्यक्रम के बहुत-से विषय भाषा-योग्यता की कमी के कारण पूरी तरह नहीं पढ़ पाते हैं । यही पर्याप्त भाषा-कुशलता का अभाव उन्हे ज्ञान के कई क्षेत्रों से वचित रखता है । परिणामत शैक्षणिक स्तर गिरता जा रहा है । भोपाल के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय का हमारा यह हमेशा का अनुभव रहा है कि जो विद्यार्थी चार-वर्षीय कोर्स मे प्रवेश प्राप्त करते हैं उनमे न तो अग्रेजी की पर्याप्त भाषा-योग्यता होती है और न क्षेत्रीय भाषाओ की । (इस कमी को दूर करने के लिए चार-वर्षीय कोर्स के प्रारम्भ मे ही उन्हे समुचित शिक्षण प्रदान करने की हमारी योजना है ।) अन्य महाविद्यालयो मे भी इस असन्तोषजनक स्थिति के सकेत प्राप्त हुए हैं । पर्याप्त भाषा-योग्यता की कमी के कारण जो हानि हुई है वह शैक्षणिक स्तर गिरावट तक ही सीमित नही है । जब एक विद्यार्थी कक्षा मे पढाये जानेवाले विषय को पूरी तरह नहीं समझता तो उसमे शिक्षा के प्रति ही अरुचि उत्पन्न होने लगती है । परिणाम यह होता है कि धीरे-धीरे विद्यार्थियो मे गहरा असन्तोष व्य है । इस भीषण समस्या का

सामना करने के लिए हमे अपने देश मे भाषा-शिक्षण के आधुनिकीकरण पर ध्यान देना चाहिए।

पुरानी पड चुकी भाषा-शिक्षण विधियो के कारण ही हमे विद्यालयीन पाठ्यक्रम मे विद्यार्थी मे भाषा-योग्यता लाने के लिए तीन से चार वर्ष तक का समय लगाना पडता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि कुछ प्रगतिशील देशो मे यह समय एक या दो वर्षों तक ले आया गया है, क्योकि वे भाषा-शिक्षण की नवीनतम विधियो का प्रयोग करते हैं। भाषा-शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए विदेशों मे, टेप रिकार्डर, लिग्वाफोन, रिकार्ड्स फिल्म तथा स्ट्रिप्स का प्रयोग किया जाता है। हमारे देश मे इन साधनो का प्रयोग बडे पैमाने पर अभी नहीं किया गया है। जितने शीघ्र हम भाषा-शिक्षण के नवीन साधनो का प्रयोग प्रारम्भ कर देंगे उतने ही शीघ्र हम देश के शैक्षणिक स्तर को सुधारने मे सफल होंगे।

उपर्युक्त सफलता प्राप्त करने के लिए हम भाषा-शिक्षकों के निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। आज प्राथमिक स्तर तक के भाषा शिक्षको के प्रशिक्षण का कार्य अधिकतर देश की १४०० प्रशिक्षण-सस्थाओ द्वारा ही किया जाता है। ये सस्थाएँ पुरानी घिसी-पिटी विधियो को ही आज भी अपनाती हैं। वे भाषा शिक्षकों के निर्माण के नवीन विकास से आज भी परिचित नही है। यह देखकर दुःख होता है कि ये सस्थाएँ आज भी उन्ही पुरानी विधियो का प्रचार करने मे लगी हुई हैं। यही हाल अग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओ के शिक्षको के निर्माण का भी है। कुछ प्रदेशों मे अग्रेजी भाषा के अध्ययन एव अध्यापन मे सुधार लाने के लिए 'अग्रेजी भाषा-शिक्षण सस्थाओ की भी स्थापना की गयी है, किन्तु उनके द्वारा भी इस दिशा मे प्रशसनीय कार्य नही हुआ है।

भारत सरकार ने हैदराबाद मे एक केन्द्रीय अग्रेजी भाषा शिक्षण सस्थान की स्थापना अवश्य की है जो कि विभिन्न प्रदेशों के अग्रेजी भाषा के अध्यापको को प्रशिक्षित करती रही है, किन्तु अधिकाश माध्यमिक प्रशिक्षण महाविद्यालय आराम से उसी पुरानी ढर्रे पर चल रहे हैं। उनके बी० एड० के पाठ्यक्रम मे अग्रेजी भाषा शिक्षण भी अध्ययन का एक भाग है किन्तु वह अग्रेजी भाषा-शिक्षण भी अध्ययन का एक भाग है किन्तु वह अग्रेजी भाषा-शिक्षण की कुछ पुरानी पुस्तको के अध्ययन तक ही सीमित है।

भारत सरकार ने आगरा मे राष्ट्रीय हिन्दी सस्थान की भी स्थापना की है। इस सस्थान ने निश्चित ही महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं।

भाषा-शिक्षकों के निर्माण की दिशा मे, एन० सी० ई० आर० टी० ने माध्यमिक स्तर के लिए अंग्रेजी शिक्षको को तैयार करने हेतु चार-वर्षीय बी० ए०, बी० एड० कोर्स (स्वीकृत) की स्थापना द्वारा प्रथम साहसिक कदम उठाया है। किन्तु यह कदम अंग्रेजी भाषा-शिक्षको के निर्माण तक ही सीमित है। वास्तव में 'राष्ट्रीय हिन्दी सस्थान आगरा,' जैसी संस्थाओं को चाहिए कि वे ऐसी ही हिन्दी शिक्षको के निर्माण की योजना तैयार करें तथा उन्हें क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयो म लागू करवाने का प्रयास करें। निश्चय ही इस प्रकार के चार वर्षीय कोर्स द्वारा जो हिन्दी भाषा-शिक्षक तैयार होंगे वे शैक्षणिक स्तर को ऊपर उठाने मे एक बड़ी भूमिका अदा कर सकेंगे। बाद मे भी इसी प्रकार की योजनाएँ अन्य क्षेत्रीय भाषाओ मे भी लागू की जा सकती हैं। क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयो द्वारा जिस पैमाने और स्तर पर आज अंग्रेजी भाषा-शिक्षकों के निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है, उसी पैमाने पर और सभवत अधिक सम्भावनाओंवाला हिन्दी क्षेत्र अभी अछूता पड़ा है।

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय की ऐसी योजना है कि वह विक्रम विश्व-विद्यालय के सहयोग मे भाषा शिक्षको के निर्माण मे रचनात्मक कार्य करने के लिए भाषा शिक्षण की एक राष्ट्रीय सगोष्ठी का आयोजन करे, जिसमे भाषा-शिक्षको के निर्माण के प्रश्न को प्रत्यक पहलू से परखा जा सके। विक्रम विश्व-विद्यालय को तो कम-से कम इस दिशा मे कुछ विचार करना ही चाहिए।

["इण्डियन कौंसिल आव बेसिक एजुकेशन बुलेटिन से साभार"]

पुरानी शैली : नये सपने

योगेशचन्द्र बहुगुणा

साध्य-साधन की एकरूपता के बारे में पुस्तकों में कई बार विभिन्न सदर्भों मे पढ़ा था, कई गुरुजनों से सुना था, मैं स्वयं भी इस बात का शिक्षक बन गया था कि साधनों में ही साध्य छिपा रहता है, हम सम्यक् साधनों की चिन्ता करते जायें, सावधानी बरतते जायें, तो चरम साध्य तक पहुँचा जा सकेगा, क्योंकि साधन का अपनी पूर्णता में विकास ही तो साध्य है। बुद्ध ने यही कहा था, विवेकानन्द ने यही सिखाया, और गाधी ने इसीके प्रत्यक्ष प्रयोग करके दिखाया।

यह बात मैं समझता था लेकिन जानता नहीं था। जो समझता था वह सब बाहर से था, शास्त्र का था, स्वय के अनुभव मे से वह जाना हुआ नहीं था। और सत्य तो सदैव स्वय ही जाना जा सकता है। सत्य मे तो हुआ जाता है, दूसरा कोई बाहरी साधन नहीं है—न गुरु, न ग्रन्थ, न पुरोहित और न साधु-सन्यासी' जिसके मार्फत हम सत्य को पकड सकें। सत्य के अज्ञात सागर की महायात्रा स्वय ही, और अकेले ही हो सकती है। और एक दिन मैंने भी इस सत्य को जाना कि साधन और साध्य मे साधर्म्य होना चाहिए।

सन् १९६६ के दिसम्बर महीने में अल्मोड़ा के तत्त्व प्रचार केन्द्र को छोडकर चम्पा गाँव आ गया था। आगे क्या करना है इसका कोई स्पष्ट चित्र मेरे सामने नहीं था, लेकिन कुछ करना है, इसकी भूख तो थी ही। अक्सर होता यह है कि क्रान्ति की अधीरता हमसे कुछ का कुछ करवाने लगती है। क्रान्ति का सम्बन्ध विचार से और गहरे किन्हीं अज्ञात केन्द्रों से होता है। ये केन्द्र जब सक्रिय होकर विचार के साथ जुड जाते हैं, तब क्रान्ति की तीव्रता और भी कसमसाने लगती है। क्रान्तिकारियों की श्रेणी मे बहुत कम ऐसे लोग होते हैं जो विचार के निराकार रूप को पकडकर लम्बे समय तक धीरज के साथ उसकी सम्भावनाओं की प्रतीक्षा करते रहते हैं, बाकी लोग तो सगुण-साकार रूप को ही तुरन्त देखना चाहते हैं।

यही स्थिति प्रारम्भ में मेरी थी। बादशाही थौल की देशी शराब की दूकान जन आन्दोलन के परिणामस्वरूप बन्द हो चुकी थी, और हम सब साथी आगे का रास्ता ढूंढ रहे थे। तलाश करते-करते हमने पाया कि रानीचौरी मे बच्चों की पढ़ाई की समस्या है। पाँचवीं तक के स्कूल तो आस-पास काफी हैं, परन्तु उसके बाद आगे पढ़ने के लिए सबको ३ मील चम्पा जाना पडता है।

आजकल छोटी उम्र मे ही बच्चे पाँचवी पास कर लेते हैं। सरकारी शिक्षा का पाठ्यक्रम इतना बोझिल है, कि बच्चों को काफी भारी बस्ता साथ मे स्कूल मे ले जाना पड़ता है। एक तो कच्ची उम्र, रोज ६ मील आना-जाना और साथ में एक भारी बोझ, बड़ी समस्या थी! और हमने सोचा कि जिस क्रान्ति का सम्बन्ध हमारी समस्याओ से न हो वह धरती पर उतरेगी कैसे ?

यही सब सोचकर हम लोगो ने तय किया कि राणीचौरी मे पाँचवीं कक्षा स आगे की पढाई की व्यवस्था हो। यह हम पहले से ही जानते थे कि हमारे विद्यालय के साइनबोर्ड पर अगर लिखा होगा कि "यहाँ सर्टिफिकेट नहीं मिलता है' तो कोई क्यो नाहक अपने बच्चो को वहाँ भेजेगा। हम सर्वोदय के लोगो द्वारा यह विद्यालय शुरू हो, यह सुनकर हमारे कुछ हितैषियो ने इस तरह का प्रचार प्रारम्भ भी किया कि यहाँ 'सर्टिफिकेट' नहीं मिलेगा, डोम बीठ (हरिजन सवर्ण) सब एक हो जायेंगे वह तो आश्रम बन जायेगा, बच्चो का भविष्य बरबाद हो जायगा, आदि आदि।" हम यह भली भाँति जानते थे कि समाज की माँग सनद की है, परन्तु हम यह अवश्य सोचते थे कि अगर विद्यालय के शिक्षक जाग्रत, सचेत, सृजनात्मक दृष्टिवाले होंगे तो विद्यालय ग्रामस्वराज्य की अहिंसक क्रान्ति के साथ जुडा रहेगा, और इस तरह वह ग्रामस्वराज्य के प्रयोगो का केन्द्र ही होगा।

उत्साह था, लेकिन क्रान्ति के लिए

यही कल्पना हमने स्थानीय लोगों के सामने रखी। कुछ लोगो ने कुछ नही समझा, कुछ ने अधूरा समझा, पूरा शायद ही किसीने समझा हो। फिर भी लोग राजी हो गये। ग्रामस्वराज्य सघ की ओर से ही विद्यालय चले, इस पर सब सहमत हुए। सहमत होनेवाले लोगो ने ग्रामस्वराज्य का विचार समझकर ऐसा निर्णय लिया हो, ऐसी बात नही थी, इसका कारण यह था कि शराबबन्दी आन्दोलन की सफलता के कारण हमारी कुछ साख बन गयी थी, और लोग समझने लगे थे कि हम कुछ कर सकते हैं, इसलिए हमारे बार-बार यह कहने पर भी कि, 'आप लोग विद्यालय को चलाने के लिए स्वतत्र कमेटी बनायें', वे लोग यही आग्रह करते रहे कि, नहीं, ग्रामस्वराज्य सघ ही इसको चलाये।

काम की सुविधा के लिए आसपास के लोगों की हमने एक कामचलाऊ कमेटी बना ली, और काम भी प्रारम्भ हो गया। चन्दा इकट्ठा होने लगा, मकान बनने लगा, जमीन मिल गयी। लोगो मे अपार उत्साह दिखायी दे रहा था। जिन लोगों ने कभी पाँच अगुलियाँ भी मिट्टी मे नहीं रखी, वे सीमेंट बजरी के तसले सिर पर ढोये थे। विद्यालय की इमारत की छत तो लोगो ने

दिन-भर खेती का काम करने के बाद रात को गैस की रोशनी में डाली। उस दिन पूरी रात हम काम करते रहे। जनशक्ति का यह उभाड देखकर मेरे मन में भी अपार उत्साह था। घर में हमारा मकान बन रहा था। ७० वर्ष के मेरे बूढ़े पिताजी घर में पत्थर तोड़ते, परन्तु जेठ के महीने की कड़ी धूप में भी मैं और भाई अमरदेवजी गाँव-गाँव घूमकर चन्दा इकट्ठा करते।

मकान बन गया। जो विद्यालय अपनी तीन कक्षाओं के साथ पंचायत-घर के सिर्फ एक ही कमरे में चलता था, कमरा भी ऐसा कि बरसात में बाहर-भीतर सब समान ही हो जाता था, वहाँ अब पक्की सीमेंट की इमारत हमारे पास थी। शिक्षक थे, शिक्षार्थी थे, प्रकृति का सौंदर्य था, लोगों की वाहवाही साथ थी।

और उस दिन मेरी आँखें खुलीं

लेकिन एक चमत्कार जैसा हुआ, और लोगों में फिर जड़ता आने लगी। अब हम स्कूल की चर्चा करते तो लोगों के चेहरों पर कोई रौनक नहीं दिखायी देती थी। कामचलाऊ कमेटी जो बनी थी—विद्यालय सम्बन्धी सभी कामों में यह कमेटी ही अन्तिम सत्ता थी और संघ सीधे-सीधे इसमें दखल नहीं करता था—उसके कुछ सदस्य तो हमारे परोक्ष में ग्रामस्वराज्य सर्वोदय का मजाक और उसकी आलोचना भी किया करते थे। लोगों को हमारी आवश्यकता ग्रामस्वराज्य की सम ‍ योजना के बजाय स्कूल के लिए थी, और स्कूल तो बन चुका था!

अब यदि शिक्षक छात्रों से श्रमदान करवाते या सम्पर्क के लिए उन्हें गाँव में ले जाते तो शिकायतें आतीं। लोग अपनी नाराजगी कभी कभी मुझसे भी प्रकट करते, फिर भी मैं आशावान था कि हम शिक्षण के क्षेत्र में तो कम से-कम कुछ नया कर पायेंगे। इसी उद्देश्य से हमने विद्यालय के प्रधानाध्यापक को एक महीने के लिए नयी तालीम के साधक श्री जुगतराम काका के पास वेडछी भेजा।

लेकिन उस झटके ने अचानक मेरी गहरी नींद को तोड दिया, जिस दिन कार्यकर्ताओं की बैठक में विद्यालय के शिक्षकों का अनपेक्षित व्यवहार सामने आया। उनकी माँगें थी :

(१) हमारा वेतन बढ़ाया जाय,
(२) हमें स्थायी किया जाय,
(३ हमारे लिए एक विश्राम कक्ष की अलग से व्यवस्था हो।

(४) जिस जमीन पर विद्यालय है, उस भूमि पर ग्रामस्वराज्य संघ का कोई अधिकार नहीं रहे।

इन मांगों पर जब बहस होने लगी, तो विद्यालय के प्रधानाध्यापक इतने उत्तेजित हुए कि उन्हें यह भी सुध न रही कि वे क्या कह रहे हैं। मुझ पर तो उनका गुस्सा इतना बरसा कि जो कुछ शिष्टाचारवश नहीं भी कहना चाहते हों,—मन में भले ही वैसा पहले से सोचते रहे हों—वह सब कह बैठे। उनके शब्द थे—"आज तक मैं व्यक्ति के रूप में तुम्हारी पूजा करता था, तुम्हारी कथनी-करनी में कोई समानता नहीं, लच्छेदार भाषा में भाषण कोई भी दे सकता है, इसी कारण यह विद्यालय सामुदायिक केन्द्र नहीं बन पा रहा है, इस विकास-क्षेत्र से सर्वोदय का नामोनिशान मिट जायेगा आदि''।" दूसरे एक शिक्षक भी संघ की प्रबन्ध समिति के एक सदस्य की बोलने की स्वतन्त्रता तक को स्वीकार करने को राजी नहीं थे। वे बार बार कह रहे थे, "चुप रहो जी, तुम नहीं कह सकते हो।"

उस दिन मैं सोचता रहा, सोचता रहा, कि आखिर ऐसा क्यों होता है? लेकिन कल्पना चाहे कितनी क्रान्तिकारी क्यों न हो, कार्यक्रम यदि प्रतिगामी या यथास्थिति वाला है तो इससे भिन्न क्या परिणाम हो सकते हैं? विद्यालय चाहे क्रान्तिकारी संगठन ग्रामस्वराज्य संघ द्वारा चलाया जाय या किसी दूसरी कमेटी द्वारा, सरकारी मान्यता का लेबुल जब तक उस पर लगा हुआ है, तब तक शिक्षक पैसा, पुस्तक, परीक्षा, पाठ्यक्रम, पदवी और पदोन्नति से भिन्न सोच भी क्या सकते हैं? उस दिन मैं रोया भी बहुत, क्योंकि अनासक्त कर्मयोग की साधना अभी चालू ही है। पूरी निष्ठा, समर्पण व लगन से मैंने विद्यालय के लिए काम किया था, लेकिन इस परिणाम से ही मेरी आँखें सदा सदा के लिए खुल गयीं, और मैं विद्यालय के प्रबन्ध की जिम्मेदारी से मुक्त हो गया। महर्षि वाल्मीकि का वह सूत्र बार-बार मन में रहने लगा है—'विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यकर्ता विनश्यति' विधिहीन यज्ञकर्ता जल्दी ही नष्ट हो जाता है। इस अनुभव ने सिखा दिया, कि हम सही पद्धति की चिन्ता करें, अहिंसक क्रान्ति तो हमारे चारों ओर घिरी हुई है ही।●

नयी तालीम की तीर्थ-स्थली एक भ्रमण

शम्भू प्रसाद बहुगुणा

सन् १९६६ मे जब चम्पा ग्रामस्वराज्य सघ की स्थापना की गयी थी, तो उसके अनेक उद्देश्यों मे से एक उद्देश्य यह भी रहा है कि शिक्षण के माध्यम से समाज के पुनर्निर्माण के लिए सस्था कुछ काम करे।

इस दिशा मे गाधीजी द्वारा प्रतिपादित नयी तालीम का विचार उसकी मुख्य प्रेरणा रहा है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु सघ के अन्तर्गत ग्रामभारती विद्यामन्दिर की स्थापना की गयी, जिसमे उत्तर बुनियादी की तीन कक्षाएँ, ६ ७, ८ के लिए शिक्षण व्यवस्था की गयी है। यद्यपि इसमे हमने राजकीय पाठ्यक्रम को ही स्वीकार किया है क्योकि उसके अलावा अन्य कोई विकल्प नही है, परन्तु शिक्षण की परिपाटी एव वातावरण नयी तालीम के अनुरूप हो ऐसा हमारा प्रयत्न है।

नयी तालीम के क्षेत्र म देश मे सबसे अधिक सुन्दर, सुव्यवस्थित और प्रभावपूण काय जितना गुजरात मे हुआ उतना अन्यत्र कही नही हुआ तथा इसका सारा श्रेय स्व० नाना भाई भट्ट व श्री जुगतरामजी दवे जैसे कमठ और दूरदर्शी लोगो को है। हम लोगो के लिए उनके काम करने की शैली हमेशा प्ररणा का कारण रही है। क्योकि आदिवासी क्षेत्रों मे जिस ढग से उन्होंने काय किया है, हमारी समस्याएँ भी कुछ ऐसी ही हैं कि हम भी उनसे बहुत कुछ लाभ ले सकते हैं।

मैंने जब पिछले दो सालों से विद्यामन्दिर का काम सभाला तब से सघ ने और मैंने, दोनों ने ही यह अनुभव किया कि एक बार गुजरात की नयी तालीम की संस्थाओ का निकट से जाकर अवलोकन व अध्ययन किया जाय। इस उद्देश्य के लिए ही मैंने १४ जनवरी से १ फरवरी तक वेडछी मे श्री जुगतराम भाई के द्वारा संचालित उत्तर बुनियादी आश्रम वेडछी, गांधी विद्यापीठ, वेडछी, दोलवन, पचोल, गडत, व्यारा, बेडकुआंदूर, वात्सल्यधाम की बुनियादी शालाएँ, एव कन्या आश्रम मढी का अवलोकन और अध्ययन किया। विभिन्न शालाओ मे जाकर वहाँ के आचार्य और शिक्षक बन्धुओ से चर्चाएँ की कक्षाओ मे पठन पाठन काय होते देखा, कुछ शालाओं मे अलग बैठकर चर्चाएँ और प्रश्नोत्तर भी किये। वेडछी विद्यापीठ मे ठहराव के दौरान श्री जुगतराम भाई की मैत्रीपूण मुलाकात के अतिरिक्त लोकभारती के भूतपूव कमठ आचाय श्री मोरभाकर भट्टजी से भी इस सदभ में भेंट हुई।

संक्षिप्त में इस अवलोकन का विवरण निम्नांकित है।

गांधी विद्यापीठ वेड़छी

वेडछी गाँव से विद्यापीठ १ मील दूर है। यह विद्यापीठ शिक्षा के क्षेत्र में कर्म और उद्योग को महत्त्व देते हुए २ घंटे की शैक्षिक प्रवृत्ति को चलाता है। लक्ष्य यह है कि कर्म के मार्फत ज्ञान दिया जाय, कक्षा ११ से बी० ए० तक एवं (बी० एड०) कक्षाएँ विद्यापीठ में चलती हैं। संस्था के कुलपति काका कालेलकर हैं एवं उपकुलपति भाई जुगतराम दवे हैं। शिक्षण का ३ प्रकार से वर्गीकरण किया गया है।

१ सामान्य शिक्षण —पद्धति और दृष्टि यह है कि भविष्य में लडके का लक्ष्य और कर्म स्पष्ट हो जाय।

२ समाज शिक्षण —यह यहाँ की ४ वर्षीय ग्रेजुयेशन डिग्री है। प्रथम वर्ष में निर्धारित सभी विषयों को छात्र अनिवार्य रूप से लेते हैं। द्वितीय वर्ष विज्ञान, गणित, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, भूगोल, इतिहास आदि विषय ऐच्छिक विषयों में विभक्त हो जाते हैं। गुजराती मातृभाषा है। द्वितीय वर्ष तक सभी छात्र छात्राएँ साथ ही अध्ययन करते हैं, परन्तु तीसरे वर्ष दो विभागों में चले जाते हैं।

(अ) शिक्षण विभाग, (ब) समाज-सेवी विभाग।

पाठ्यक्रम

प्रथम वर्ष १—उद्योग-अम्बर। २—गांधी-विचार। ३—इतिहास। ४—प्रारंभिक समाजशास्त्र। ५—गुजराती। ६—हिन्दी। ७—अंग्रेजी। ८—एकाउन्टिंग।

द्वितीय वर्ष १—कृषि, २—ग्राम यंत्र विज्ञान, गृह विज्ञान ३—गांधी-विचार, ४—राजशास्त्र, ५—गुजराती, ६—हिन्दी, ७—अंग्रेजी, ८—समाज-सेवक, समाज सेविका।

तृतीय वर्ष

१—शैक्षणिक विभाग—समाज-सेवक

२—हिन्दी, गुजराती—लोकसेवक

३—गुजराती, हिन्दी

४—इतिहास, राजशास्त्र

५—समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र

६—गणित, विज्ञान

७—गांधी विचार (आदिवासी समाज)

जे० बी० टी० सी० कक्षाओं का कार्य और ढंग शैक्षणिक क्षेत्र राजकीय ट्रेनिंग कक्षाओं की तरह है। केवल इस काल मे प्रशिक्षार्थियो को 'समाज सेवा' एक अतिरिक्त विषय पढना होता है।

दैनिक समय विभाग चक्र :

४.४५ प्रातः	से	५ ३० प्रातः शौच, व्यक्तिगत सफाई
५.३० "	से	६.३० " प्रार्थना
६.३० "	से	९ " श्रम
९ "	से	१० " स्नान, सफाई
१० "	से	११½ भोजन व विश्राम
११½	से	१२ सभा सम्मेलन
१२	से	२ अपराह्न शिक्षण कार्य (वर्ग)
२	से	४ " स्वाध्याय
४ सायं	से	६ तक भोजनादि कार्य
६ सायं	से	७ भोजन, घूमना
७	से	८ प्रार्थना आदि
८	से	१० स्वाध्याय
१०	से	विश्राम, शयन

दैनिक कार्यक्रम करीब करीब प्रत्येक संस्थाओं का एक समान ही चलता है।

सभी बुनियादी शालाओं की कार्य परिपाटी लगभग एक जैसी है। सम्मेलनों मे कहीं-कहीं ज्ञान-विज्ञान की चर्चाएँ देखने को मिलीं, दैनिक खबरें भी छात्र-छात्राओं को सुनायी जाती हैं। शालाओं में चतुर्मुखी शिक्षा का अभ्यास चलाने का प्रयास किया जाता है। संगीत और नृत्य का अभ्यास गांधी विद्यापीठ मे अच्छा चलता है। उत्तर-बुनियादी वेडछी मे बालकों की कलात्मक प्रवृत्ति को विकसित करने का प्रयत्न सराहनीय है। प्राकृतिक, स्थानीय पेड़-पौधों की जड़ो, शाखाओं को इस प्रकार एकत्र किया गया है कि कहीं वे सर्प जैसी, कहीं पक्षियों की आकृतियों मे आभासित होती हैं।

बालक खेल द्वारा भित्तियों को चित्रित करते पाये गये हैं। विज्ञान सम्बन्धी कार्य भी उत्तम है। उत्तर बुनियादी वेडछी एक आदर्श संस्था है। आदरणीय जुगतराम भाई इसी संस्था मे स्थायी तौर पर रहते हैं।

सभी अवलोकित संस्थाओं मे बालको की नैतिक, बौद्धिक, शारीरिक, व्यावहारिक शिक्षा के लिए सामूहिक प्रार्थना, छात्रावास, छात्र पंचायत, सरस-

व्यायाम, सफाई, स्वय भोजन बनाना आदि कार्य भली प्रकार सम्पादित किये जाते हैं।

फलतः शिक्षण व सुसस्कृति का आपस मे अच्छा मेल है। आज के आम प्रचलित शिक्षण की कमी को यहाँ काफी कुछ हटा दिया गया है। हर शिक्षण-शाला मे खादी का आम प्रचलन है। भडकीले वस्त्र एव आभूषणो पर रोक बतायी गयी है, ताकि हीनग्रन्थि न बनने पाये। सैन्य-सस्कारो को हटाने के लिए अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रायः हर शाला से हटाया गया है।

उद्योग

कन्या आश्रम मढी को छोडकर हर शाला मे ३० एकड से कम जमीन नहीं है। कुछ सस्थाओ मे सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध है। चावल, गेहूँ, ज्वार, तरह-तरह की सब्जियाँ छात्र छात्राओ की सहायता से तैयार की जाती हैं।

उत्पादन का भावी लक्ष्य आत्मनिर्भर होना है, ताकि भविष्य मे सरकारी सहयोग की आवश्यकता न रहे। उद्योग के क्षेत्र मे पचोल उत्तर-बुनियादी का कार्य बहुत आगे है। बताया गया कि गत साल इस सस्था को १७ हजार रु० का खेती से मुनाफा प्राप्त हुआ है। गडत मे शाला द्वारा बनाया एक छोटा बाध सराहनीय है। कन्या बुनियादी शालाओ में वात्सल्यधाम विकास पर है।

मूल्यांकन

गाधीजी ने जिस प्रकार की समाज-रचना की कल्पना की थी, और जिसके माध्यम के रूप मे उन्होने नयी तालीम का विचार सामने रखा था, वह देश मे कही भी कार्यरत नहीं दीखता। इसका कारण उस विचार की अक्षमता अथवा अपूर्णता नहीं है, अपितु आज शिक्षा पर सत्ता हावी होने से समाज मे जो दोष पैदा होते हैं, वे ही इसके मूल कारण हैं।

यह कहना बिलकुल उचित होगा कि देश मे सभी राजनैतिक दल, नेता, सरकारें, तथा अन्य अनेक सामाजिक सगठन अपने दैनिक क्रियाकलापो में गाधीजी का नाम लेते नहीं थकते हैं, फिर भी गांधीजी ने जितने विचार देश के समक्ष प्रस्तुत किये, इन्होंने उनमे से किसी एक पर भी बुद्धि व ईमानदारी से कभी विचार व अमल नही किया।

नयी तालीम का भी यही हाल हुआ। गुजरात के एक सीमित दायरे मे इसका अपवाद पाया जाता है। सूरत जिले की जिन नयी तालीम की संस्थाओं का ऊपर जिक्र आया, इनकी जो कुछ भी आंशिक सफलता है उसका श्रेय सस्थाओं के कार्यकर्ताओं को तो है ही, जिन्होने बलपूर्वक अनेक प्रकार के प्रलोभनों को तिलाजलि देकर नयी तालीम के लिए निष्ठापूर्वक स्वसमर्पण

कर दिया है। किन्तु इसका श्रेय गुजरात सरकार को भी है। यह कहा जा सकता है कि गुजरात सरकार ने नयी तालीम के लिए सबसे अधिक ईमानदारी दिखलाई है। भारत सरकार और अन्य प्रान्तीय सरकारो मे इस प्रकार की ईमानदारी का नितांत अभाव है। यह बात निर्विवाद है कि आज हम छात्र अथवा युवा आक्रोश के रूप मे जिस भयानक राष्ट्रव्यापी सकट का सामना कर रहे हैं उसका कारण देश की बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र म शर्मनाक असफलता है क्योंकि जब बालक की बुनियादी शिक्षा ही दोषपूर्ण हो तो विश्व विद्यालयो का कुशितयों का अखाडा बन जाना स्वाभाविक है। शिक्षा न केवल अर्थकरी होनी चाहिए, अपितु उद्देश्य मूलक भी होनी चाहिए।

नयी तालीम ऐसी ही शिक्षा है, यदि देश ने अन्य बातो की तरह गाधी की नयी तालीम को ठुकराया न होता तो देश मे गैर जिम्मेदारी, खुदगर्जी, सत्तालोलुपता तथा राजनैतिक तथा सामाजिक पाखण्ड का वर्तमान जैसा बोलबाला न होता आज नयी तालीम के क्षेत्र मे जो भी किंचित प्रयास चल रहे हैं वे चारों तरफ विपरीत परिस्थितियो से आवृत्त हैं, इसलिए उसका सहज तेज भी दिखाई नही दे रहा है। फिर ऐसी विपरीत परिस्थिति मे वे प्रयास न केवल चल रहे हैं, बल्कि धीरे धीरे बढ भी रहे हैं। यह अपने आप मे नयी तालीम की जीवनी शक्ति का प्रमाण है।

गुजरात की जिन सस्थाओं का ऊपर उल्लेख हुआ है, उन्हे देश से हर प्रकार की मदद और समर्थन पाने का हक है किन्तु उनमे खुद भी कुछ और बातें मान्य हो जायें तो उनकी शक्ति और भी बढेगी। नयी तालीम शिक्षा को श्रमनिष्ठ बनाती है श्रमजीवी नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रम के स्तर पर छात्र व शिक्षक का भेद मिटकर सहकर्मियो का हो जाता है। छात्रो के साथ शिक्षको को खेत पर काम करते आज भी नहीं पाया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि छात्र श्रम म निष्ठा नहीं रख पाते तथा शिक्षणक्रम मे किये गये अपने श्रम को व अपनी बेबसी का पर्याय मान लेते हैं। इससे नयी तालीम का सम्पूर्ण शौर्य और तेज तिरोहित हो जाता है। यह न केवल इन सस्थाओं की बल्कि शायद नयी तालीम की देशव्यापी समस्या है। इसका हल केवल नयी तालीम के निष्ठावान श्रमनिष्ठ शिक्षक ही दे सकते हैं।

द्वितीय बात यह है कि पाठन-पद्धति के रूप मे समवाय का जो महत्व है, हमारी नयी तालीम की संस्थाओं ने उसे शायद या तो ठीक ढग से समझा नहीं है अथवा वे उसे पूर्ण रूप से अपनाने मे असमर्थ हैं, जब हम पाठ्यक्रम व दैनिक समय चक्र को कक्षा (वर्ग, कमरे) मे, खेत अथवा उद्योग में बाँट देते

हैं, तब समवाय से सम्बन्धित हमारी उपर्युक्त असमर्थता स्पष्ट हो जाती है। मैं जानता हूँ कि इसका मूल कारण साधन और धन का अभाव भी है, फिर भी वर्तमान स्थितियों के होते हुए भी समवाय का अधिक सम्यक् उपयोग सम्भव है।

कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि नयी तालीम की सस्थाओ मे हमारे छात्र एक प्रकार की मुसहीन ग्रन्थि से भी ग्रस्त हैं उनमे वर्तमान प्रचलित शिक्षा पद्धति के लिए आकर्षण कम नही हुआ है अपितु वे वेबसो के लिए नयी तालीम मानने लगे हैं। इस हीन भाव का ही यह असर देखने म आया है कि हमारे छात्रो मे बौद्धिक विषयों यथा गणित, विज्ञान अग्रेजी आदि की तरफ अरुचि पायी जाती है। अग्रेजी भाषा की बात छोड दें तो भी विज्ञान व गणित का महत्त्व तो किसी भी हालत मे कम नही है। हमे यह सावधानी रखनी होगी कि हम खादी विचार के विज्ञान से शून्य केवल एक अच्छे कत्तिन या बुनकर मात्र बनकर न रह जायें। मुझे भय है कि अभी इस प्रकार की सम्भावनाएँ व स्थितियाँ हमारी सस्थाओ मे व्यापक रूप से मौजूद हैं। हमे, जो नयी तालीम के शिक्षक के रूप मे जीवन यापन करना चाहते हैं, और भी सावधान रहना होगा। हममे श्रम व विचार निष्ठा पहली योग्यता मानी जानी चाहिए, इसका प्रमाण हमारे विचार नहीं, हमारे दैनिक क्रियाकलाप, वेश भूषा, रहन-सहन का ढग व परस्पर व्यवहार ही होंगे।

जहाँ तक हमारे पर्वतीय क्षेत्र का सम्बन्ध है, उसके लिए तो नयी तालीम ही एकमात्र रास्ता है। क्योंकि प्रकृति के साथ जीवन-यापन करने की सारी कठिनाइयाँ हमारे सामने होती हैं और उन्हें हम नयी तालीम के माध्यम से ही हल कर सकेंगे। किन्तु इस क्षेत्र म हमारी कठिनाइयाँ देश के अन्य हिस्सो के मुकाबले कहीं अधिक जटिल व व्यापक हैं। हमारे पास शालाओ के लिए जमीनों का नितान्त अभाव है। जगलो से सम्बन्धित उद्योगो को शिक्षण का माध्यम बनाना चाहें तो उसके लिए साधन व धन का भी अभाव है। हमारी सबसे बडी कठिनाई यह भी है कि सरकार नयी तालीम के विचार को मान्य नहीं करती और इसलिए हमे उसमे किसी प्रकार की आर्थिक मदद नहीं मिल पाती। हमारा समाज भी गरीब है, जिसके पास शरीर श्रम के अलावा अन्य कोई पूँजी नहीं है। अत समाज से भी धन प्राप्ति की कोई आशा नही की जा सकती है।

फिर भी इन कठिनाइयो के बावजूद हमम अगर निष्ठा, लगन तथा ईमानदारी हो तो हम नयी तालीम को लेकर कुछ काम कर ही सकते हैं। राजकीय पाठ्यक्रम स्वीकार करना कोई हानिकारक वस्तु नही है। वास्तविक चीज यह है

कि उसके पठन-पाठन के लिए स्थितियाँ तैयार करना है। स्थितियाँ तैयार करने के काम में हमें जनता की प्रत्यक्ष सहायता अपेक्षित है।

इसके लिए हमें लोक शिक्षण का व्यापक कार्यक्रम हाथ म लेना होगा। हमारी शालाओं का सचालन प्रत्यक्ष ग्रामीण सहयोग से ही होना चाहिए। चूंकि यह एक विशिष्ट शिक्षण सस्था है, अत इसका सम्बन्ध १० मील के घेरे म प्रत्येक गाँव से ही होना चाहिए, हर ग्राम सभा अथवा ग्राम पचायत का एक प्रतिनिधि लेकर सचालन समिति बने, जिसके जिम्मे नयी तालीम के लिए जन-समर्थन प्राप्त करना रहे। हम अगर सहकारी सस्थाओ और जगल कामगार समितियों के गठन का कार्य हाथ में लें तो यह लोक शिक्षण के साथ साथ सस्था के लिए आय का स्रोत भी बन सकेगा। अपनी शाला के कार्यक्रम मे भी अनेक छोटे-मोटे परिवर्तन-परिवर्द्धन करने होगे। किन्तु ये सब बातें एक ही बात पर निर्भर करती हैं कि शाला को चलाने मे सचालकों को कितनी स्वतत्रता व सहयोग तथा शिक्षकों को कितनी स्वतत्रता, सहयोग एव निश्चिन्तता प्राप्त रहती है।

—प्र० अ० ग्रामभारती विद्या मन्दिर, जुनियर हाईस्कूल
रानीचौरी, टिहरी गढवाल

सूचना

वाराणसी शहर मे गोलीकाण्ड के कारण एक सप्ताह तक कर्फ्यू रहा, इसीलिए यह अक इतना विलम्ब से पाठक के पास पहुँच रहा है। पाठक क्षमा करने की कृपा करेंगे।—स०

युवा-असंतोष

राजेन्द्र प्रसाद राजगुरु

युवा-असतोष की बात चलते ही कई रोमाचकारी व धुंधली तस्वीरें हमारी आँखों के सामने उभर आती हैं।

जलती हुई रेलगाडियाँ तथा बसें, अश्रुगैस के कोहरे मे भागता हुआ विद्यार्थी और पीछे डडे लेकर खदेडती हुई पुलिस, सरकारी और गैर-सरकारी इमारतो के टूटे हुए कांच एव छविगृहो के सिसकते हुए फरनीचर आज भी भारतभाग्य निर्माता पीढी के विध्वस की कहानी सुनाते हैं। प्रश्न है कि वह कौनसी मनोव्यथा है, वह कौनसा आक्रोश है जो कल के इस भारत को सडको और चोराहों पर महमूद गजनवी की तरह लूट खसोट करता है।

सत्तारूढ सरकार इसे विरोधी दलो की करतूति कहती है, विरोधी दल इस सरकारी दमन का विरोध कहते हैं शिक्षा-शास्त्री इसे विद्यार्थियो की अनुशासनहीनता कहते हैं, दार्शनिक इसे असतोष कहते हैं, बुजुर्ग इसे बदमाशी और आवारागर्दी कहते हैं। जो कुछ भी हो, ये सब के सब एक ही प्रतिक्रिया की कहानी है जिसका प्रारम्भ सरस्वती की देहरी लांघने से होता है।

आज जीवन की प्रत्येक दिशा से केवल एक ही बात उभरकर सामने आती है और वह है असुरक्षा सीमाओ की असुरक्षा राष्ट्र की असुरक्षा, आपकी और हमारी असुरक्षा एव युवा वर्ग की असुरक्षा, तो कौनसी चीज है जो आज इस देश में सुरक्षित है? बाजारो मे इस युवा-वर्ग को काला बाजारी और भ्रष्टाचारी करनेवालो से सामना करना पडता है, सरकारी दफ्तरो मे रिश्वतखोरी और जी हुजूरी का सामना करना पडता है। कभी-कभी विद्यालयों और महाविद्यालयों मे उसे दायित्वहीन अध्यापको का सामना करना पडता है और इस सारी अव्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने पर उसे पुलिस के डडो का सामना करना पडता है। समाज के हर मोर्चे पर उसे पीडा और आत्मग्लानि के अलावा कुछ नहीं मिलता इस पीडा और आत्मग्लानि मे सिमटा हुआ यह युवा वर्ग जब अपने अधिकारो और सामाजिक सुरक्षा के लिए सघर्ष करने को एक कदम भी आगे बढ़ाता है तो देश की सत्तारूढ पार्टी से लगाकर सरकारी अखबार तक हल्ला उठत हैं और कहते हैं कि छात्रो मे अनुशासनहीनता बढ गयी है। इस देश के युवा वर्ग के साथ इससे बढ़कर मजाक और क्या होगा कि जब युवा-वर्ग असतोष मे घुटकर जीता है तब कहा जाता है कि छात्रो मे अनुशासनहीनता बढ़ गयी है। हम यह देखते हैं कि युवा-वर्ग असतोष में है। न

कि युवा असंतुष्ट है। अतः समाज-निर्मित सामाजिक असंतोष ही नौजवानों में फैली हुई अनुशासनहीनता, हिंसा, विद्रोह का कारण है।

आर्थिक एवं सामाजिक असमानता

युवा असंतोष एवं अनुशासनहीनता का दायित्व इस देश के गतिहीन समाज पर है। बीसवीं सदी का कोई भी जागरूक नवयुवक इस सामाजिक शोषण मे अपनी आंख नही मूंद सकता, जिसमे किसान बाप जो अपने खून पसीने से सींचकर इस देश की धरती को सजाता है सँवारता है उसके साथ न्याय नही होता, उसका मजदूर भाई जो किसी मील मे इस्पात को पानी की तरह साँचे मे ढाल रहा होता है उसके साथ न्याय नहीं होता। इस देश का विद्यार्थी उस कड़वाहट को भी नहीं पचा सकता जिसमे उसकी माँ की बीमारी और बहन की दम तोडती हुई जवानी मे घुट वातावरण मे उसे अपनी शिक्षा जारी रखनी पडती है। असंतोष तब झलकता है जब किसी विद्यार्थी को अपनी परीक्षा की फीस भरने के लिए अपनी माँ के कंगन बचने पडते हैं। ऐसी आर्थिक और सामाजिक विषमता के वातावरण मे युवा वर्ग की धमनियों में आक्रोश एवं असंतोष स्वाभाविक ही है।

राजनैतिक असमानता

सत्तापिपासु राजनैतिक दल अपने निहित स्वार्थ के लिए भारत के भावी नागरिक एवं सरस्वती के पुजारी को प्रभावित करते हैं। और यही कारण है कि विद्यालय एवं महाविद्यालयो म राजनैतिक दलो के अनुकूल विद्यार्थियो के विभिन्न दल बन जाते हैं। छात्र-परिषदों के चुनाव मे राजनैतिक दलों के नेता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। वर्ष भर एक छात्र समूह यदि महाविद्यालयीन गतिविधियो मे सक्रिय रहते हैं तो दूसरे दल विरोधी दल के रूप मे उनके रचनात्मक कार्यों का विरोध करने मे ही अपने उद्देश्य की पूर्ति समझते हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व एवं सहयोग का अभाव उनम इस तरह असंतोष के रूप मे बढता है।

यह बात नहीं कि युवक का कोई दोष ही नहीं है। अपने असंतोष के लिए वह स्वयं भी दोषी है। अन्य देशों के युवक आन्दोलनो से उसने यह तो सीख लिया कि उसे हिंसा किस तरह अपनानी चाहिए, आन्दोलन अपनी क्षोभ प्रकट करने के तरीके उसके जान लिये, लेकिन उन विदेशी युवक आन्दोलनों की गहराई उसने नही ली। पहली बात तो यह है कि वह किसी भी स्तर पर संगठित नहीं है (सिनेमा पर हमला करनेवाले युवकों को छोड़कर), हर स्थान पर उसे अपने ही विरोधी गुटो का सामना करना पडता है, एवं सहमति के

मुद्दे पर भी वे मुक्का तानकर सहमत हैं। उनके अनेकानेक गुट हैं। बड़े गुटो मे छोटे गुट हैं, और यही कारण है कि आज के युवको की कार्यवाही को हम युवा असतोष कह रहे हैं, युवक क्राति नहीं।

युवक देखता है कि आज देश का राजनैतिक वातावरण गम्भीर अस्थिरता की दौर से गुजर रहा है और देश के राजनैतिक मच पर घटिया किस्म के नौटकी नाटको का प्रदर्शन हो रहा है। तब वह उस मच के कलाकारो का घेराव करता है, अण्डे, टमाटर और पत्थर फेंककर अपना आन्तरिक असतोष प्रकट करने का दुस्साहस करता है। अपनी नेतृत्व की भावना की पूर्ति वह इस प्रकार करता है, लेकिन आज देश के नवयुवकों को देश की नीव पुराने खडहरो पर निर्माण करना सम्भव नही है। आज हिन्दुस्तान मे युवक एक लक्ष्यहीन नौका की तरह इधर-उधर भटक रहे हैं। नेतृत्व और राजनैतिक लिप्सा की परिधि मे वे अपनी आकाक्षाओ के केन्द्र-बिन्दु की तलाश कर रहे हैं। लेकिन उन्हे मालूम नही है कि अनुभव, सामाजिक त्याग एव रचनात्मक कार्यों के केन्द्र से ही समस्त राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एव नैतिक मूल्यो के लम्ब, उस ठोस नीव के पत्थरो की भाँति सुख, शान्ति एव विकास की परिधि पर पडेंगे। राजनीति मे छात्र गतिहीन समाज की प्रशासकीय व्यवस्थाओं से असतुष्ट होकर राजनीति मे भाग लेता है, राजनीति मे राज करने की चेष्टा से भाग लेता है, सुख की आकाक्षा से भाग लेता है और नीति को ताक मे रखकर अवसरवादिता का शिकार हो जाता है, तब देश के राजनीतिक शरीर पर चेचक का प्रकोप होता है।

शैक्षणिक एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास

प्रसिद्ध राजनैतिक दार्शनिक प्लेटो ने शिक्षा-शास्त्र पर लिखे अपने महत्व-पूर्ण ग्रन्थ 'रिपब्लिक' मे कहा है कि शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य दो प्रकार के गुणो का निर्माण करना होता है १—व्यवसायिक गुण, २—चारित्रिक गुण। दूसरे शब्दो मे हम कहना चाहे तो कह सकते हैं कि यदि कोई मेडिकल कालेज का विद्यार्थी है तो उसे अपनी शिक्षा के उपरान्त दो गुणो से सम्पन्न होना चाहिए। एक, वह डाक्टर हो और दूसरा, वह एक अच्छा इन्सान भी। इनमे से एक भी गुण के अभाव मे उसकी शिक्षा अधूरी है, परन्तु आप उस शिक्षा-पद्धति को क्या कहेगें, जिसमे बीस वर्षों तक अध्ययन करने के उपरान्त आज के विद्यार्थी न तो अच्छे डाक्टर, न अच्छे इन्सान, न अच्छे इजीनियर, और न ही अच्छे मनुष्य बन पाते हैं। प्लेटो ने तो कहा था कि इन दो गुणों मे से

किसी एक भी गुण के अभाव मे शिक्षा बगडी है, परन्तु आप उस शिक्षा पद्धति को क्या कहगे, जिसकी दोनों ही टाँगें टूटी हो।

शाला मे असतोष के कारण

१—शाला की उदासीन जीवनचर्या।
२—विद्यार्थी की प्रतिभा का सदुपयोग नही हो पाता।
३—मनोनुकूल मनोरजक पुस्तको का अभाव।
४—अत्यधिक अवकाश दिवस।
५—विद्यार्थी थकान अधिक महसूस करते हैं।
६—खेलकूद के लिए अधिक समय नही दिया जाता।

इसके अतिरिक्त अध्यापको की ओर स भी कुछ असतोष के कारण दिखलाई पड़ते हैं।

१—अत्यधिक गृह काय।
२—कई मासिक परीक्षाएं।
३—अत्यधिक व्यक्तिगत स्पर्धा।
४—चतुर छात्रों की ओर अधिक झुकाव।
५—पाठ्य विषय और अन्य गतिविधियो मे सह-सम्बन्ध नही है।

नैतिकता विरोधी शैक्षणिक वातावरण का एक और पहलू यह है कि आज का युवक छात्र यह देखता है कि वह मेहनत करता है तो फेल होता है, नकल करता है तो पास हो जाता है। वह देखता है कि गुरु द्रोणाचार्य को मिनिस्टर के पुत्र अर्जुन को ही प्रथम स्थान (फर्स्ट पोजीशन) देना है और बतौर बावजूद उसकी सारी मेहनत के एकलव्य को अपना अगूठा काटकर देने के बाद भी तृतीय श्रेणी ही मिलती है। आज का सारा छात्र असतोष एकलव्य की इस व्यथा का जलता हुआ प्रतीक है। लेकिन एकलव्य अब बागी होता जा रहा है, वह समझता है कि गुरु को अगूठा काटकर देने से अगूठा दिखाने मे ज्यादा लाभ है। इसलिए आज वह उत्पात मचाता है, उसमे असतोष है।

जिस शिक्षा प्रणाली में योग्यता का मापदण्ड केवल परीक्षा मे सफलता अर्जित करना हो वहाँ किसी भी ऊँचे मूल्यों की अपेक्षा करना बेकार है। राष्ट्रीय स्तर पर हमारी शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों मे आत्मनिर्भता की भावना को जन्म देने मे असफल रही है और आज हमारे शिक्षा प्रतिष्ठानो के शैक्षणिक मूल्य सरकारी दफ्तरों की फाइलो तथा सस्ती नौकरियों की चौखट पर सिसक रहे हैं।

लेकिन हम यह नहीं कह सकते हैं कि युवा-असतोष का कारण मात्र राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक या शैक्षणिक है। ऐसा नही है, क्योकि दक्षिण अफ्रीका की छात्राओं को चेतावनी दी गयी कि वे पाश्चात्य परिधानो का त्याग करें। फ्रास के विश्वविद्यालय के नवयुवक डीगाल साम्राज्य को समाप्त करने सडकों पर आये। इग्लैण्ड के कतिपय विश्वविद्यालयो मे छात्र-असतोष का कारण है कि वहाँ छात्रो की माँग है कि सह शिक्षा के साथ साथ सह-निवास भी दिया जाये। इगलैण्ड व अमेरिका मे हिप्पियो के रूप मे पागल व दीवानें छात्रों के दल क्यो घुमते हैं ? अत हम देखते हैं कि युवा-असतोष का एक महत्वपूर्ण कारण नैतिक मूल्यो का अवमूल्यन भी है।

असंतोष के निदान के तरीके

१—समस्या का हल करने के लिए बौद्धिक गुटो का उपयोग · युवा वर्ग की विकसित बुद्धि का सही उपयोग होना चाहिए। परम्परागत प्रणालियों का बहिष्कार कर उन्हे नवनिर्माण की ओर उन्मुख होना चाहिए। उनकी स्वतत्र विचारक बुद्धि का अन्य बौद्धिक जनो से समन्वयात्मक ढग से उपयोगी और रचनात्मक प्रकार से सामाजिक उपलब्धि की ओर अग्रसर हों। उनमे यह आदत डाली जाय कि अपने विषय के गूढ़ अध्ययन के लिए एव जीवन का वास्तविक आनन्द लेने के लिए घटों किसी पुस्तकालय मे बैठें। अनुसंधान मे उतरकर इस देश को सुखी व समृद्ध बनाने के लिए आविष्कारो के नये यत्न सोचें।

२ जीवन पर्यन्त अन्य उपयोगी गतिविधियों की आदत डालें : उसे इस ओर प्रोत्साहित किया जाय कि वह अपने अध्ययन के अतिरिक्त के समय मे साहित्य-सृजन, सगीत, कला-कौशल एव किसी व्यवसाय का भी अभ्यास एव प्रशिक्षण प्राप्त करता रहे, जो उसे जीवन मे अभाव एव हीनता नहीं अनुभव होने देंगे।

३ राष्ट्रीय भावना का विकास 'राष्ट्र देवो भव' के सिद्धान्त को अपने जीवन का एक अभिन्न अग मानकर उनकी सतत आराधना करता रहे। अध्यापक-वर्ग उसके सामने ऐसा आदर्श रखें, जिससे युवको मे राष्ट्रीय भावना का विकास हो और उन्हें यह बात प्रेरणा दे कि उसे भूखे प्यासे एव फटे वस्त्रो मे भी रहकर इस देश को महान् बनाने का महायज्ञ प्रारम्भ करना है।

४—बेकारी के निदान का उपाय प्रतिभावान विश्वविद्यालयीन, बेरोजगार छात्रों को किसी सामूहिक उपयोगी उपकरण के निर्माण मे लगाकर सामाजिक उपयोगी उपलब्धि की जाय। इसका उदाहरण मद्रास के बेकार

इजीनियरो ने अपने परिश्रम अध्यवसाय एव कौशल से एक नवीन स्कूटर का निर्माण किया। हर युवक ने उसमे उत्साह से भाग लिया एव अपने-अपने व्यावसायिक क्षेत्र मे नवीन ढग से पदार्पण किया।

५—अवकाश के समय को अन्य रचनात्मक कार्यों मे लगाया जाय अवकाश के समय का सदुपयोग युवको की महत्वाकाक्षा प्रदर्शन एव आत्मतुष्टि की भावना का समाधान करेगा। इसके अन्तगत हम निम्नलिखित बातो को ले सकते हैं। १—खेल-कूद मे भाग लेना २—सद् एव उपयोगी पुस्तको का अध्ययन ३—गरीब तबकों के लोगो को अपनी योग्यतानुसार शारीरिक, मानसिक आर्थिक एव कलात्मक उपलब्धियो से सहायता देकर उन्हे जीवन माग पर अग्रसर करने का प्रयास। ४—अन्य कलाओं का अजन सास्कृतिक उपलब्धियाँ।

६—नेतृत्व की भावना का विकास करना। आज का युवक ही कल का देश का नेता होगा समाज सुधारक होगा देश की अखण्ड एकता की एव समृद्धि की बागडोर को अपने हाथो मे लेनेवाला होगा। अत उसमे स्वस्थ एव नैतिक आधार पर नेतृत्व की भावना का विकास हो जिसमे वह मैनमेकिंग एक्टविटीज को ही अपना नेतृत्व समझता हो।

७—समाचार पत्रो का सही उपयोग युवा असन्तोष के निदान मे समाचार पत्रों व एव पत्रिकाओ का सहयोग भी अत्यन्त आवश्यक है। समाचार पत्रो को विध्वसात्मक कायवाही पर स्वस्थ एव सुधारात्मक टिप्पणी करना चाहिए। देश के किसी कोने म किये गये छात्र युवको द्वारा की गयी सामाजिक आर्थिक, नैतिक एवं अनुसन्धानात्मक उपलब्धि को प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे युवा असन्तोष मे आन्तरिक सुधारात्मक प्रवृत्ति का विकास होगा।

श्री राजेन्द्र प्रसाद राजगुरु छात्राध्यापक शासकीय शिक्षा महाविद्यालय देवास (मध्य प्रदेश)

शांति-दिवस : ३० जनवरी

शाति-दिवस के मुख्य कार्यक्रम नीचे लिखे तीन माने हैं

१ शाति जुलूस
२ प्रार्थना सभा और
३ शाति बिल्लो की बिक्री

हर साल हम ३० जनवरी को शान्तिसैनिको की रैली करते थे। उसके बजाय इस साल हम शान्ति जुलूस का कायक्रम सुझा रहे हैं। शाति जुलूस मे रैली को विशाल रूप मिलेगा। उसम नगर के शाति-सैनिका के अलावा नगर के सारे शाति प्रेमी नागरिक छात्र मजदूर, महिलाएँ आदि भी शरीक होगें। शाति जुलूस ही नगर के किसी प्रमुख मैदान मे जाकर प्राथना सभा मे परिणत हो, ऐसी कल्पना की गयी है। जुलूस मे नागरिका स यह प्रायना की जाय कि वे यथासभव सफेद कपड पहनकर ही हिस्सा लें। शरीक होनेवाले लोगो की सख्या को देखते हुए ३ ३ ४ ४ या ६ ६ की कतारें की जायें। हर २५ लाइन के पीछे एक एक घोप फलक (प्लेकाड) रखा जाय। हर प्लेकाड और उसे लगाये जानेवाले डडे का नाप बराबर हो। प्लेकार्डों पर कुछ निश्चित सूत्र ही लिखे हो। (सुझाव के लिए कुछ सूत्र दिय जा रहे हैं लेकिन आप लोग चाहे तो अन्य सूत्र भी लिख सकते हैं।) जुलूस मे जो उद्घोष करवाये जायें वे भी पहले से निश्चित होने चाहिए। जुलूस में गाने हो तो उनका आरभ अच्छा जोरदार गानेवालो से करवाया जाय। यदि सभव हो तो माइक्रोफोन का उपयोग किया जाय। हिन्दी समझनेवाले प्रातो के लिए कुछ नमूने के शाति गीत भी दे रहे हैं। जुलूस बीच-बीच मे बिलकुल मौन रहे तो भी अच्छा है। यदि अच्छे गाने की व्यवस्था न हो सके तो मौन जुलूस करना ही अच्छा होगा। जुलूस का माग पहले से ठीक करके घोषित कर देना चाहिए।

प्रार्थना ५ मिनट की मौन प्रार्थना या सवधम प्रार्थना हो। प्रार्थना के बाद प्रमुख नागरिकों के व्याख्यान भी रखे जा सकते हैं। किन्तु यह ध्यान रहे कि प्रायना-सभा एक घटे से अधिक लम्बी न चले।

शाति दिवस के बिल्ले हमारे पास छपे हुए तैयार हैं। हर बिल्ला १० पैसे में बचा जाता है। लेकिन २०० से अधिक बिल्ले मँगवानेवालो को हम ७ पैसे म एक के हिसाब से बिल्ले देते हैं। नगद पैसे देनेवाले या वी० पी० से मँगवाने वाले को ही यहाँ से बिल्ले भेजे जाते हैं। इस बार बिल्लो पर तारीख नहीं लिखी जा रही है, इसलिए उसे ३० जनवरी के बाद भी वेचा जा सकेगा।

यह हम एक विशेष जिम्मेवारी सुपुर्द करने के लिए लिख रहे हैं। हम चाहते हैं कि भारत के सभी प्रमुख नगरों में शांति-दिवस का कार्यक्रम शानदार ढंग से मनाया जाय। आपके नगर का कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा करने में हम आपसे सहयोग चाहते हैं। आपसे हमारी प्रार्थना है कि :

(अ) आप अपने नगर के प्रमुख लोगों को इस कार्यक्रम की सूचना दीजिए।

(आ) उनसे मिलकर काम की योजना बनाइए तथा काम का बँटवारा कर लीजिए।

(इ) इस काम के लिए आवश्यक हो तो पूर्वतैयारी की सभा भी कीजिए।

(ई) स्थानीय अखबारों में इस कार्यक्रम की सूचना निकलवाइए। आवश्यक और शक्य मालूम हो तो इस कार्यक्रम की सूचना पत्रिका या लाउडस्पीकर द्वारा भी शहर में दीजिए।

३० जनवरी, १९७१, विश्व-शान्ति दिवस के अवसर पर घोष-फलक-प्लेकार्ड पर कुछ इस प्रकार के वाक्य लिखे जा सकते हैं :

१—विश्वशान्ति दिवस	२—जय गांधी—जय शान्ति
३—शान्ति अमर रहे	४—हमें शान्ति चाहिए
५—सत्य, प्रेम, करुणा	६—सत्य-अहिंसा
७—शान्ति से स्वराज्य पाया, शान्ति से उसे टिकायेंगे।	८—हिंसा से कोई मसला हल नहीं होता।

जुलूस में उदघोष (नारे-सूत्र) निम्न प्रकार के हों :

१—महात्मा गांधी की—	जय।
२—शान्ति शहीद—	अमर रहे।
३—हमारा मंत्र—	जय-जगत्।
४—हमारा तंत्र—	ग्रामदान।
५—हमारा ध्येय—	विश्व शान्ति।
६—हमारा साधन—	शान्तिमय क्रान्ति।
७—जय जय गांधी—	जय जय शान्ति।

शान्ति-जुलूस में गाने लायक गाने .

शान्ति के सिपाही

शान्ति के सिपाही चले, शान्ति के सिपाही चले।
लेके खैरख्वाही चले, रोकने तबाही चले॥
वैर-भाव तोडने, दिल को दिल से जोडने।
काम को सँवारने, जान अपनी वारने॥
रोकने तबाही चले।

विश्व के ये पासवां, लेके सेवा का निशां।
भीरुता से सावधां, चल पडे हैं बेगुमां॥
रोकने तबाही चले।
सत्य की सभाल ढाल, अहिंसा की ले मशाल।
धरती मां के नौनिहाल हैं निकल पडे सुचाल॥
रोकने तबाही चले।
जय जगत पुकारते बढ रहे बिना रुके।
लेके दिल के बलबले, अपने ध्येय को चले॥
रोकने तबाही चले।

जाग हे!

जाग हे! शांति की पुकार शीघ्र जाग हे!
विश्व के फलक पे आज,
युद्ध सज रहा है साज,
जाग, आये करुणा राज,
जाग हे!
मन के बीच आंधी घोर,
उलझने हैं चारों ओर,
शांति से ही हो विभोर।
जाग हे!
स्वार्थ से तू आज जाग,
सब तरह की जडता त्याग,
दैन्य दास्य जाय भाग।
जाग हे!

धन्य धन्य हो गांधी बापू

धन्य धन्य हो गांधी बापू धन्य तेरी कुरबानी,
भूल नहीं सकती है दुनिया तेरी अमर कहानी।।धन्य तेरी०।।
यह तेरा ही खून नहीं है खून है मानवता का,
खून अमन का आजादी का दुखियारी जनता का,
सबके मुख पर आंसू है, सबके मुख पर वीरानी।।धन्य तेरी०।।
हम सब तेरे कातिल हैं हम खूनी तेरे बापू
दाग कभी यह धो न सकेंगे, सारी कौम के आंसू,
पाप कभी यह धो न सकेगा, गंगा का भी पानी।।धन्य तेरी०।।

तूने सीना तानके शाही, ताकत को ललकारा,
छोडो भारत, छोडो भारत, गूँज रहा था नारा,
जेलो मे बन गयी बुढापा तेरी वीर जवानी ।।धन्य तेरी०।।
तू अँधियारे भारत मे उजियाला बनकर आया,
घर-घर जाकर तूने, आजादी का दिया जलाया,
तुझसे ही हमने अपनी कीमत है पहचानी ।।धन्य तेरी०।।
तेरी कीमत पूछे कोई, आज नोआखाली से,
कैसा फूल है टूटा अपनी, गुलशन की डाली से,
तूने सबका सुख-दुःख बाँटा, सबकी पीडा जानी ।।धन्य तेरी०।।
अमर रहेगा, अमर रहेगा मौत से जो लडता है,
आजादी के नाम पें मरनेवाला कब मरता है,
जब तक दुनिया है, गूँजेगी तेरी अमृत वाणी ।।धन्य तेरी०।।

प्रार्थना सभा मे क्या हो ?

१—५ मिनट का मौन

या/और

२—नाम-माला

ओम् तत् सत् श्री नारायण तू, पुरुषोत्तम, गुरु तू,
सिद्ध बुद्ध तू, स्कन्द, विनायक, सविता पावक तू ।
ब्रह्म, मज्द तू, यह्व, शक्ति तू, ईशु-पिता, प्रभु तू
रुद्र विष्णु तू, राम-कृष्ण तू, रहीम, ताओ तू ।
वासुदेव, गो विश्वरूप तू चिदानन्द, हरि तू,
अद्वितीय तू, अकाल, निर्भय, आत्मलिंग, शिव तू ।।

या/और

३—सर्व धर्म प्रार्थना,

—नारायण देसाई,
मन्त्री, अ० भा० शांतिसेना मंडल
राजघाट, वाराणसी-१

बापू और उनकी दिनचर्या

लेखक : श्री गौरीशंकर गुप्त, भूमिका-लेखक : श्री काका साहब कालेलकर,
प्रकाशक राष्ट्रपिता प्रकाशन, गायघाट, वाराणसी-१ मूल्य : चार रुपये।

यह सारी सृष्टि नित्य परिवर्तनशील है, सदा, प्रतिक्षण, विकसित और उन्नत होती रहती है। परन्तु कभी-कभी दिशाच्युत भी हो जाया करती है। इसे फिर से दिशा बद्ध और सत्पथ पर आरूढ करने कराने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। इस महत्व कार्य का उत्तरदायित्व वहन करने के लिए ही महापुरुषो का, सतो का, पैगम्बरो का, समय समय पर अवतरण होता रहता है। इसी स्थिति का उद्घोष भगवान कृष्ण ने गीता मे किया है : "यदा यदा हि धर्मस्य ।"

राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद और गाधी का महत्व मानव मात्र के लिए इसीलिए है कि उन्होने दिशाभ्रष्ट मानवता के पतनोन्मुख प्रवाह को उन्नति और उत्थान की ओर मोड दिया। परन्तु होता यह है कि लोग उन्हे भगवान् या अवतारी पुरुष मानकर आदर्श के ताखो मे, अपने व्यक्तिगत आचरण के प्रकोष्ठो मे बिलकुल अलग रख देते हैं। ऐसा ही हो तो इन महापुरुषो का कोई निर्माणकारी मूल्य भी नही हो सकता। उनका मूल्य तभी हो सकता है जब हम उनके जीवन का, उनकी दिनचर्या का अनुसरण कर सकें, अपने जीवन मे ढाल सकें।

गाधीजी से पूछा गया कि आपका धर्म क्या है, तो उन्होने कहा—"मेरी जिन्दगी को गौर से देखो। मै कैसे खाता हूँ, कैसे सोता और जागता हूँ, कैसे चलता-फिरता और बोलता हूँ, कैसे व्यवहार करता हूँ, और कुल का जो तुम्हारे ऊपर प्रभाव पडे, वही मेरा धर्म है।"

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गाधी को जानने समझने के लिए, उनका अनुसरण करने के लिए, गाधी की, जैसे किसी भी महापुरुष की, दिनचर्या का आधारभूत महत्व है। इस दृष्टि से श्री गौरीशकरजी ने 'बापू और उनकी दिनचर्या पुस्तक' की रचना करके बडा उपयोगी कार्य किया है।

अपने विषय की यह एक मूल्यवान और प्रामाणिक रचना है। यह नवयुवकों के लिए विशेष महत्व रखती है, गाधी और सर्वोदय के कार्यकर्ताओ एव सस्थाओ मे, सभी आश्रमो और छात्रावासो मे, इसका विशेष रूप से प्रचार और प्रसार होना चाहिए।

— रामकृष्ण शर्मा

सर्व सेवा संघ के नये प्रकाशन

गांधी : जैसा देखा समझा विनोबा ने

पृष्ठ २००, मूल्य ३–००; सजिल्द : ५–००

प्रस्तुत पुस्तक मे विनोबाजी के शब्दो मे सम्पूर्ण गाधी-दर्शन मीठी, मधुर भाषा मे प्रस्तुत है। विनोबाजी के सैकडो प्रवचनो, लेखो, भाषणो आदि मे से बीन-गूंथकर २१ प्रकरणो मे गाधी-विचार को एक श्रद्धाजलि और एक उच्च कोटि की समीक्षा के रूप मे रखा गया है।

पुस्तक विषय की दृष्टि से गभीर और मननीय है, लेकिन भाषा इतनी प्रवाहमयी और हृदय को स्पर्श करनेवाली है कि एक बार हाथ मे लेने पर छोडने को जी नही करता।

विनोबा और सर्वोदय-क्रान्ति

लेखक . काकासाहब कालेलकर पृष्ठ २२५, मूल्य –५००

विनोबा के जीवन, उनके आन्दोलन, उनके विचार, प्रवृत्तियो तथा प्रयोगो के विषय मे सुदीर्घकालीन तथा गाधी-परिवार मे एक आत्मीय कुटुम्बी की लेखनी का यह प्रसाद सचमुच विनोबाजी तथा सर्वोदय-क्रान्ति को समझने मे बहुत मददगार होगा।

बुनियादी तालीम और समाज-व्यवस्था

लेखक : विल्फ्रेड वेलाक, पृष्ठ : ४०, मूल्य ०–५०

इंग्लैड के सुप्रसिद्ध सर्वोदयी विचारक की इस छोटी-सी पुस्तिका मे तालीम और समाज-व्यवस्था का अच्छा विवेचन है।

दमा का प्राकृतिक इलाज

लेखक : धर्मचन्द्र सरावगी, मूल्य . दो रुपये

पुस्तक मे निर्देशित सुझावो के अनुसार चलने पर दमा जैसे कठिन रोग से छुटकारा मिल सकता है, इसमे सन्देह नही। प्राकृतिक उपचार का मतलब है प्रकृति के अनुरूप जीवन-चर्या का अगीकार करना और आहार-विहार मे सादगी और सात्विकता लाना।

रोग की जड खाँसी मानी जाती है। शरीर की गन्दगी निकालकर उसे शुद्ध सोने की तरह निर्मल बनाने की दृष्टि से यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १९
अंक ६
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

जनवरी, '७१

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है ।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे ।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक सख्या का उल्लेख अवश्य करें ।
- रचनाओं मे व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है ।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित ।

नयी तालीम : जनवरी, '७१
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० स० एल० १७२३

सर्वोदय-साहित्य-सेट (१९७१—१९७२)

[अप्रैल १९७१ से चालू]

रु० ७) मे १२०० पृष्ठ

१–आत्मकथा : १८६९–१९२० :	गाधीजी	१)
२–बापू-कथा १९२०–१९४८ .	हरिभाऊजी	३)
३–तीसरी शक्ति : १९४८–१९६६ :	विनोबा	३)
४–गीता-प्रवचन	विनोबा	२)
५–मेरे सपनो का भारत	गाधीजी	२)
६–सघ प्रकाशन की एक पुस्तक		)५०
		११)५०

लगभग १२०० पृष्ठों का यह साहित्य-सेट रु० ७) मे मिलेगा। २८ सेटो का पूरा बण्डल काशी से मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसे कमीशन।

रु० ५) मे ८०० पृष्ठ

राज्य सरकारें, पंचायतें, शिक्षण संस्थाएं आदि के लिए थोक खरीदी की दृष्टि से छोटा सेट भी चालू रहेगा, जिसकी पृष्ठ-संख्या लगभग ८०० होगी। यह सेट रुपये ५) मे दिया जायगा। इसमे निम्न पुस्तकें रहेंगी

१ आत्मकथा	– गाधीजी	१)
२ बापूकथा या गाधी जैसा देखा-समझा विनोबा ने	– हरिभाऊजी	३)
३ तीसरी शक्ति	– विनोबा	३)
४ गीता-बोध व मंगल प्रभात	– गाधीजी	१)
		८)

पाँच रुपयेवाले ४० सेटो का पूरा बण्डल काशी से मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसा कमीशन और फ्री डिलीवरी।

केवल एक ही सेट मँगाने पर डाक-खर्च के लिए रु० २–०० अधिक भेजना चाहिए। यदि ५ रु० वाले सेट अथवा ७ रु० वाले ७ सेट एक साथ मंगाये जायेंगे तो रेलवे पार्सल से फ्री डिलीवरी भेजे जा सकेंगे।

नावरम २२८ सन्केबाम प्रेस, मानमंदिर, वाराणसी

नयी तालीम

सर्व-सेवा-संघ की मासिकी

वर्ष : १९
अंक : ७

- औद्योगिकी करण में सर्वोदय-सत्याग्रह तत्व
- खाद्य-प्राप्ति की अभिनव पद्धति
- चुनाव घोषणा-पत्रोंमें शिक्षा
- भारतीय सांस्कृतिक क्रान्ति
- आचार्यकुल का आचार

फरवरी, १९७१

वर्ष : १६
अंक : ७

अध्यापकों की हड़ताल

आज १५ फरवरी १९७० को उत्तरप्रदेश के गैरसरकारी माध्यमिक शिक्षा-सस्थाओ के अध्यापको की हडताल का बीसवाँ दिन है और अभी उसका अन्त नजर नही आता है। माध्यमिक शिक्षक सघ ने, जो इन अध्यापको की प्रतिनिधि सस्था है, एलान किया है कि अगर २७ ता० तक सरकार उनकी शर्तें स्वीकार नही करती तो वे सत्याग्रह करेंगे। अगर वे अपनी बात पर कायम रहे तो यह देखते हुए कि मार्च के पहले सप्ताह मे लोकसभा का चुनाव है, सत्याग्रह की भीषणता बहुत बढ जाती है।

माध्यमिक शिक्षक सघ की माँग है कि उनको वेतन सरकारी खजाने से मिले, जैसे सरकारी नौकरो को मिलता है। ऐसा होगा तो उनको प्रति मास नियम से वेतन मिल जाया करेगा, जो अभी नही मिलता। उनकी दूसरी माँग है कि उनका महँगाई-भत्ता राज्य कर्मचारियो के महँगाई-भत्ते के समान हो। एक ही काम करनेवाले सरकारी स्कूलो के अध्यापको को जो महँगाई-भत्ता मिलता है वही उनको मिलना चाहिए। उनकी तीसरी माँग है 'अन्डरग्रेजुएट' शिक्षको के लिए सी० टी० वेतनक्रम की माँग और उनकी अन्तिम माँग है शिक्षा का राष्ट्रीयकरण हो।

इस बात से कौन इन्कार करेगा कि जो शिक्षक महीने भर काम करता है, (और हम मानते हैं कि वह अपना काम ईमानदारी से करता है), उसे हर महीने नियम से वेतन मिलना चाहिए और नही

मिलता है तो इस अन्याय के खिलाफ उसको आवाज उठानी चाहिए। इससे भी कौन इन्कार करेगा कि जिस प्रणाली के अन्तर्गत कागज पर वेतन कुछ और हो और दिया कुछ और जाता हो उस भ्रष्ट प्रणाली को समाप्त करने के लिए यदि अध्यापक कोई कदम उठाता है, तो वह न्यायसगत कदम है (और सरकारी खजाने से वेतन पाने की माँग इसीलिए है।) समान काम के लिए समान महँगाई-भत्ता मिले इस न्यायपूर्ण बात से भी कौन इन्कार करेगा? समान काम के लिए सरकारी स्कूलो म काम करनेवालो को अधिक वेतन मिले, अधिक महँगाई-भत्ता मिले और गैरसरकारी स्कूलो मे कम, इस अन्याय को सहन नही करना चाहिए और एक कल्याणकारी राज्य मे, ऐसे राज्य मे जो अपने को लोकतत्र कहता है, तो इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए और यदि माध्यमिक शिक्षक सघ इन अन्यायो के प्रतिकार के लिए आगे आया है तो प्रत्येक न्यायप्रेमी व्यक्ति का समथन सघ को मिलना चाहिए।

आज के जमाने मे पे प्रमोशन और पेन्शन' के लिए सगठित आवाज उठानेवाला शिक्षक अपने स्वधर्म से च्युत हुआ यह जो सोचता है वह ठीक नहीं सोचता। आश्रमो और गुरुकुलोवाले इस देश की पृष्ठभूमि मे भी आज शिक्षक के लिए जो लगोटी पहनकर आत्म-सतोष के साथ अध्ययन अध्यापन की बात करता है वह दिवा-स्वप्न देखता है। कर्तव्य का ध्यान रखते हुए वेतनक्रम बढाने की माँग का भी सर्वत्र समर्थन होना चाहिए, क्योकि इस देश मे हम शिक्षक को दे ही क्या रहे है विशेषत, अन्डरग्रेजुएट अध्यापको को। अपने व्यवसाय के हितो की रक्षा के लिए उठाये हुए माध्यमिक शिक्षक सघ के कदम को 'ट्रेड यूनियनिज्म' कहकर हिकारत की निगाह से देखने का युग नही है। शिक्षको की अधिकाश माँगें न्याय-सगत हैं और यदि उनका मार्ग अहिंसा का रहे तो उसका समर्थन सभी वर्गों को करना चाहिए। परन्तु इन माँगो मे जो माँग शिक्षक और शिक्षा दोनो के हित मे नही है और जो लोकतत्र के हित मे भी नहीं है वह है शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग। (सरकारी खजाने से वेतन पाने की जिद इस राष्ट्रीयकरण का एक रूप ही है) इस माँग को हम शिक्षा के अहित मे इसलिए कह रहे हैं कि लोकतत्र जिन कुछ बुनियादी तत्वो पर टिका हुआ है उनमे से एक है शिक्षा-सस्थाओ की स्वायत्तता।

न्याय विभाग की भाँति शिक्षा विभाग भी स्वायत्त हो और न्याय-विभाग जैसे सरकार से वेतन लेता हुआ भी सरकार के निर्णयों के विरुद्ध फैसला दे सकता है वैसे ही शिक्षा-सस्थाएँ सरकार से वेतन लेती हुई भी इस विषय मे स्वतत्र रहे कि वे क्या पढायेंगी, पढाने की पद्धति क्या होगी ग्रादि। ग्रादि परन्तु शिक्षा के राष्ट्रीयकरण से शिक्षा की स्वायत्तता समाप्त हो जायेगी।

इसलिए राष्ट्रीयकरण की माँग को छोडकर ही सोचना होगा। शिक्षक सघ की यह माँग ठीक है कि सरकार द्वारा दिये हुए ग्रनुदान ग्रौर शिक्षक के बीच मे कोई मध्यस्थ न रहे। प्रबन्धक (मैनेजर) से शिक्षक को मुक्ति मिलनी ही चाहिए। परन्तु, प्रबन्धक से मुक्ति पाकर शासन की दासता स्वीकार करना शिक्षक के मुक्ति की विडम्बना होगी। माँग करनी है तो यह माँग की जाय कि प्रशासन के विषय मे शिक्षा 'शिक्षक, छात्र ग्रौर ग्रभिभावक' का सम्मिलित उत्तरदायित्व हो, ग्रौर मिलीजुली समितियाँ शैक्षणिक ग्रौर प्रशासनिक सभी प्रकार की इन्हीकी व्यवस्थाग्रो का उत्तरदायित्व वहन करेगी।

राष्ट्रीयकरण की बात इसलिए भी नही सोचनी चाहिए कि राष्ट्रीयकरण केन्द्रीयकरण को जन्म देता है ग्रौर किसी भी प्रकार का केन्द्रीयकरण चाहे वह सत्ता का हो, चाहे सम्पत्ति का हो, समाजवाद ग्रौर लोकतत्र की सकल्पना का विरोधी तत्त्व है। वास्तव में शिक्षा का राष्ट्रीयकरण लोकतत्र का सबसे बडा सकट सिद्ध होगा। वह इसलिए कि शिक्षा का राष्ट्रीयकरण विचारो के 'रेजिमेन्टेन्शन' को जन्म देगा। ग्रौर ग्रगर विचारो का 'रेजिमेन्टेन्शन' हुग्रा तो ग्रधिनायकवाद से बचना ग्रसम्भव होगा। सच तो यह है कि लोकतत्र के लिए जितना सकट पूँजीवादी शोषण से है, उससे बडा सकट साम्यवादी ग्रधिनायकवाद से है ग्रौर हम शिक्षक बन्धुग्रो से प्रार्थना करेंगे कि वे इस सकट को निमत्रण न दें। शिक्षा का ग्रगर कोई उद्देश्य है तो वह है बुद्धि को उन्मुक्त चिन्तन का ग्रौर वाणी को उन्मुक्त प्रकाशन का ग्रवसर देना। राष्ट्रीयकरण से शिक्षा का यह मगल लक्ष्य समाप्त हो जायेगा। शिक्षा मुक्त रहेगी तभी तो वह शासन ग्रौर समाज दोनो को मूल्य दे सकेगी। इसीलिए जाने-ग्रनजाने हम शिक्षको को ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे शिक्षा जितनी बन्दी ग्राज है उससे ग्रधिक बन्दिनी हो जाय।

—वंशीधर श्रीवास्तव

भारतीय सांस्कृतिक क्रांति

नारायण देसाई

[श्री नारायण देसाई मत्री अखिल भारतीय शान्ति सेना मडल ने भारतीय सास्कृतिक क्राति पर एक मसविदा तरुणो के विचारार्थ और उनका अभिप्राय जानने के लिए तैयार किया है। उस मसविदे के एक भाग का सम्बन्ध शिक्षा से है। उसे ही नयी तालीम' के पाठको के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठक इस सम्बन्ध मे अपनी प्रतिक्रियाएँ भजने की कृपा करें।–स०]

प्रस्तावना

भारतीय सास्कृतिक क्राति का सम्बन्ध भारतीय क्राति तथा सास्कृतिक क्राति से है। क्राति हर देश मे अपना विशेष रूप लिये आती है। भारत मे अगर क्राति होगी तो वह दूसरे किसी देश के जैसी नही होगी, वह अपने मे अनूठी होगी। क्रातियो की प्रक्रिया भी देश और काल के अनुसार बदलती है। जीवन के विकास के साथ क्राति की प्रक्रिया भ भी विकास होता है। क्राति विकसित होते हुए आज इस अवस्था तक पहुँच गयी है कि वह सांस्कृतिक ही हो सकती है, असास्कृतिक नही। क्राति की दिशा क्रूरता से हटते-हटते सरकारिता की ओर बढ रही है। इसीलिए यह आशा की जा सकती है कि भारत म जो क्राति होगी वह क्रूरता के आधार पर नहीं, करुणा के आधार पर होगी। इसी अर्थ मे यहा भारतीय सास्कृतिक क्राति शब्द प्रयोग किया गया है।

भारतीय सास्कृतिक क्राति से हमारा मतलब स्वार्थ से परार्थ और वहाँ से परमार्थ की ओर जाने का है। यह ऐसी क्राति होगी जहाँ व्यक्ति अपना व्यक्तित्व रखते हुए भी समष्टि को अपनी सेवाएँ समर्पण करेगा, जहाँ व्यक्ति और समष्टि के बीच सघर्ष नही सामजस्य होगा।

कार्यक्रम

१—स्वतत्र भारत मे शिक्षा स्वतत्र होनी चाहिए।

२—स्वतत्र शिक्षा माने आत्म निर्भर शिक्षा, शासन मुक्त शिक्षा, शोषण मुक्त शिक्षा।

३—गुलामी की शिक्षा वही है जो नौकर बनाती है—फिर वह चाहे जितनी बडी नौकरी क्यों न हो।

४—अग्रेजों ने भारत में अपना जो साम्राज्यवाद चलाया उसके साधनो म स एक प्रमुख साधन शिक्षा-व्यवस्था थी। इस देश म अग्रेजी शिक्षा ब्रिटिश सल्तनत की जडें मजबूत करने के लिए ही दाखिल की गयी थी।

५—स्वराज्य के बाद तुरन्त ही इस शिक्षा-पद्धति मे क्रान्तिकारी परिवर्तन होने चाहिए थे, लेकिन वैसा नहीं हुआ। गुलामी की शिक्षा ज्यो की त्यो कायम रही।

६—स्वराज्य के बाद शिक्षा म कुछ विस्तार जरूर हुआ, किन्तु उसमे गुणात्मक परिवर्तन नही हुए। फलत गुलामी की शिक्षा म जो दोष थे उसका भी विस्तार ही हुआ।

७ भारतीय सास्कृतिक क्राति शिक्षा के क्षेत्र म ग्रामूलभूत क्राति का कार्यक्रम देती है।

८—भारतीय सास्कृतिक क्राति का ग्राज के तरुणो को यह ग्राह्वान है कि इस देश म गुलामी, बेकारी ग्रौर वगभदो को बनाय रखनेवाली शिक्षा को छोडो।

९—ग्राज भी शिक्षा पद्धति की ग्रालोचना राष्ट्रपति से लेकर राह चलते व्यक्ति तक हर कोई करता है। किन्तु यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र म हर नये मत्रि-मण्डल के साथ एक नया ग्रायोग बनाया जाता है तो भी हमारी शिक्षा-पद्धति वही की-वही दकियानूस क्यो बनी हुई है? इसका प्रमुख कारण है, इस पद्धति से जिस सबसे ग्रधिक नुकसान होना है उस छात्र वर्ग ने इस पद्धति के खिलाफ विद्रोह नही किया है।

१०—पुरानी शिक्षा पाये हुए लोगो का इस देश मे एक बहुत छोटा लेकिन बहुत मजबूत स्थापित हित बना हुआ है। इस शिक्षा-पद्धति को बदलने से उसे नुकसान है क्योंकि उसके कारण उस वर्ग को ग्रपने जीवन-परिवर्तन के लिए तैयार होना पडेगा। वह स्वय परिवर्तन नही चाहता ग्रौर इसलिए ग्रानेवाली नयी पीढियो को भी इसी लीक पर चलाना चाहता है।

११ शिक्षा से स्थापित हितो की इस जमात को ग्रौर स्थापित हितो का समर्थन मिलता है। क्योंकि ये भी यथास्थिति को बनाय रखना चाहते हैं।

१२—हमारे ग्रध्यापक, शिक्षा विभाग के ग्रधिकारी शिक्षा मत्रालय के कर्मचारी ग्रौर मत्री जाने ग्रनजाने इन्हीं स्थापित हितों की कक्षा मे बैठते हैं। उन्हे समर्थन मिलता है हमारे पूँजीपतियों का सरकारी नौकरो का ग्रौर राजनीतिज्ञो का, जिनम से ग्रधिकाश लोग इस देश म व्यापक मुक्त शिक्षण को फैलाने देना नही चाहते। ग्रशिक्षा के ग्रन्धेरे मे ही इनके सितारे चमकते हैं। ग्रगर लोग ग्राजादी की शिक्षा पा जायें तो ये कदम फीके पड जायेंगे। इसलिए वे बराबर गुलामी की शिक्षा को बनाये रखने का यत्न करते हैं। ग्रौर उस शिक्षा से शिक्षित होकर जो युवक निकलते हैं वे भी इसी गुलामी के चक्कर को चलाने-वाले पुर्जे बन जाते हैं।

१३—भारतीय सांस्कृतिक क्रान्ति का शिक्षा-क्षेत्र मे प्रथम कार्यक्रम यह होगा कि शिक्षा पानेवाले तरुणो को इस विषय मे जागृत करें और उनसे यह आह्वान करें कि देश को गुलामी की जंजीरो मे रखनेवाली इस शिक्षा-पद्धति के खिलाफ विद्रोह करें।

१४—तरुणो को यह समझना होगा कि वे जिन विद्यालयों मे जाने के लिए लालायित हैं, जिनमे भर्ती होने के लिए वे लम्बी-लम्बी कतारें लगाते हैं, जिसकी नयी-नयी शाखाओ के निर्माण के लिए वे दगे करते हैं वे सारे विद्यालय तो शिक्षित बेकार बढानेवाले कारखाने हैं। उनके लिए इतनी दौड-धूप करना मौत के मुँह मे धँसना है।

१५—इस देश मे तरुणो के द्वारा अनेक हडतालें होती हैं, आन्दोलन होते हैं, अभियान होते हैं। लेकिन उनमे से कोई भी इस शिक्षा पद्धति को खतम करने या जडमूल से बदलने के लिए नही होता। ये आन्दोलन अधिक-से अधिक कुछ सुधार या सुविधाओ के लिए होते हैं। इनसे क्रान्ति नहीं होगी, वर्तमान समाज-व्यवस्था ही दृढतर होगी।

१६—अगर इस देश म लाखो विद्यार्थी एक साथ इसी बात के लिए आन्दोलन करें कि शिक्षा व्यवस्था मे क्रान्ति हो तो न केवल शिक्षा-व्यवस्था को लेकिन इस देश के इतिहास को ही नया मोड मिलेगा। शिक्षा मे क्रान्ति अन्य क्षेत्रो की क्रान्ति की जननी बनेगी।

१७—शिक्षा के क्षेत्र मे क्रान्ति, यह आज के तरुणों का प्रथम कर्तव्य है। उस क्रान्ति के लिए वातावरण बनाने के लिए कुछ तरुण तो फौरन ही विद्यालयो को छोड कर व्यापक प्रचार के कामो मे लग जायें। जो तरुण इस समय विद्यालय छोडने की तैयारी न रखते हो वे विद्यालयों मे रहकर ही क्रान्ति के लिए वातावरण बनाना अपना प्रमुख कर्तव्य मानें।

१८—जो तरुण विद्यालय छोडेंगे, वे क्रान्ति के लिए कम-से-कम एक साल देने का सकल्प करेंगे।

१९—जो तरुण विद्यालयो मे रहेंगे वे स्नातक बनने के बाद कम से-कम एक साल इसी क्रान्तिकारी काम के लिए देने का सकल्प करेंगे।

२०—जो तरुण विद्यालय छोड चुके होंगे वे क्रान्ति को सफल करने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम करेंगे। वे देशव्यापी पदयात्राएँ करेंगे, वे नगर-नगर में प्रसग प्रसग पर शिक्षा मे क्रान्ति के लिए आवश्यक शान्तिमय प्रदर्शनों के कार्यक्रम करेंगे, उनम से जो शिक्षा के क्षेत्र मे गहरी दिलचस्पी लेते होंगे, वे क्रान्तिकारी शिक्षा के नये केन्द्र खोलेंगे।

२१—जो तरुण विद्यालयों में होंगे, वे शिक्षा-पद्धति में तात्कालिक परिवर्तनों के लिए सारे शान्तिमय प्रयत्न करेंगे। इन प्रयत्नों का आरम्भ वे अपने ही जीवन-क्रम में परिवर्तन लाने से करेंगे।

२२—क्रांतिकारी छात्र विद्यालयों में अपने काम आप करेंगे। अपने निजी कामों के लिए वे नौकर, मजदूर या व्यावसायिक लोगों पर आधार नहीं रखेंगे।

२३—क्रांतिकारी छात्र अपने सामाजिक जीवन में अपने आपको राजनैतिक दलबंदियों के शिकार नहीं बनने देंगे। हर विचारधारा पर विचार कर अपना स्वतंत्र मत बनाना यह हरएक विद्यार्थी का अधिकार है। किसी भी वाद का वह गुलाम नहीं बनेगा।

२४—क्रांतिकारी छात्र यदि आन्दोलन करेगा तो वह ऐसी पद्धति से करेगा जो शांतिमय हो और रचनात्मक हो। तोडफोड की प्रवृत्ति जहाँ एक ओर से राष्ट्र को नुकसान करती है, वहाँ दूसरी ओर से वह प्रवृत्ति करनेवाले को भी नुकसान करती है। हिंसक तोडफोड के कार्यक्रम सर्व सामान्य कार्यक्रम नहीं बन सकते। उनसे उन्हीं छात्रों का सवस्व बढ़ता है जो अधिक खुराफाती हैं। यदि हम सर्वसाधारण छात्र की प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं तो हमारी पद्धति शांतिमय ही हो सकती है।

२५—परीक्षाओं में, प्रवेश में और शिक्षा से सम्बन्धित हर क्षेत्र में क्रांतिकारी छात्र भ्रष्टाचार से स्वय बचेंगे और उसे रोकेंगे। जहाँ छात्र स्वय भ्रष्टाचार करते होंगे, वहाँ वे उन्हें रोकेंगे और जहाँ वरिष्ठ अधिकारी ऐसा करते होंगे, उन्हें भी वैसा न करने को नम्रता किन्तु दृढ़ता से समझायेंगे।

२६—शिक्षा की जो त्रुटियाँ हैं, उन्हें क्रांतिकारी छात्र अन्य समय में पूरी करने की कोशिश करेंगे। शिक्षा में श्रम की प्रतिष्ठा नहीं है। हम श्रम को प्रतिष्ठित करेंगे, शिक्षा में जीवनोपयोगी विषयों का समावेश नहीं है, हम उनको अपने अध्ययन में स्थान देंगे, शिक्षा में भारतीय क्रांतिकारी नागरिक बनने की प्रेरणा नहीं है, हम अपने आचरण द्वारा वैसा बनने का प्रयास करेंगे।

२७—छुट्टियों के दिनों का उपयोग क्रांतिकारी छात्र अपना अध्ययन बढ़ाने के, देश दर्शन के तथा नैमित्तिक सेवाओं के कार्य में करेंगे।

२८—भारतीय सांस्कृतिक क्रांति शिक्षा के हर क्षेत्र में छात्रों, अभिभावकों तथा अध्यापकों के प्रतिनिधित्व रखने की जगत व्यापी माँग का समर्थन करती है। वह शिक्षा को इन तीनों घटकों का सम्मिलित उत्तरदायित्व मानती है।•

चुनाव-घोषणापत्रों में शिक्षा

अब तक विभिन्न राजनैतिक दल जो अपने घोषणापत्र जारी करते रहे हैं, लोकसभा अथवा विधानसभाओं में विजयी होकर पहुँचने पर उन्होंने इन घोषणापत्रों में वर्णित नीतियों के कार्यान्वयन की इतनी कम चेष्टा की है कि अब इन घोषणापत्रों की घोषणाओं में जनता का विश्वास नहीं रह गया है। पहले तो निरक्षर मतदाता उन्हें पढ नहीं सकते। जो पढ सकते हैं, वे भी पढ़ते नहीं और भूत में जो भी मत दिये गये हैं वे चाहे और दूसरे किन्हीं बातों को ध्यान में रखकर दिये गये हों इन घोषणापत्रों की घोषणाओं के आधार पर तो कदापि नहीं दिये गये हैं। मत देने के पीछे जाति, सम्प्रदाय, धर्म, चाहे जो कारण रहे हों, परन्तु राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों पर ध्यान रखकर, इन संकुचित बातों से ऊपर उठकर बहुत ही कम मतदाताओं ने वोट दिये हैं। इस समय पहली बार लोकसभा का चुनाव कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दों को सामने रखकर हो रहा है। अतः इन घोषणापत्रों का महत्व कुछ-न-कुछ तो बढ ही जाता है और इतनी आशा तो की ही जा सकती है कि लोग इस बार इन घोषणा-पत्रों को पढ़ेंगे नहीं तो कम से कम इनके द्वारा पहले से कुछ अधिक तो निर्देशित होंगे ही। इस भूमिका में विभिन्न दलों के चुनाव पत्रों के घोषणापत्रों का मूल्य बढ जाता है और स्वभावतः यह जानने की उत्कंठा होती है कि इन घोषणापत्रों ने शिक्षा-नीति के सम्बन्ध में क्या कहा है।

जब से ब्रिटेन के हेराल्ड लास्की ने यह कहा कि चुनाव के घोषणापत्रों में शिक्षा नीति का पूरा स्पष्टीकरण होना चाहिए तभी से विदेशों में राजनैतिक दल अपने घोषणापत्रों में शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी नीति का विस्तृत वर्णन करते हैं। सन् १९५१ के चुनाव से ही भारत के प्रमुख राजनैतिक दलों ने भी अपने घोषणापत्रों में शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी शिक्षा-नीति का उल्लेख किया है। इनका अध्ययन और विश्लेषण इस बात पर प्रकाश डालता है कि उत्तर स्वातंत्र्यकाल में देश के प्रमुख राजनैतिक दलों की शिक्षा-नीति का किस ढंग से विकास हुआ है।

शिक्षा के प्रमुख सात मुद्दों पर इन घोषणापत्रों में विचार किया गया है—(१) अध्यापकों का वेतन और स्टेटस (२) विश्वविद्यालय के प्रबन्ध में छात्रों का भाग, (३) शिक्षालयों में राजनीति और पुलिस का प्रवेश, (४) वैज्ञानिक और प्राविधिक (टेकनिकल) शिक्षा (५) लोक साक्षरता, (६) राजभाषा का प्रश्न।

चुनाव के घोषणापत्र और कोठारी-आयोग

आश्चर्य की बात है कि इस वर्ष के चुनाव मे जो घोषणापत्र जारी किये गये हैं उनमे किसीने बहुचर्चित कोठारी आयोग की सस्तुतियो की कोई चर्चा नही की है। इस कमीशन की सस्तुतियो को अगर ईमानदारी से कार्यान्वित किया जाय तो भले ही शिक्षा मे क्रांति न हो, परन्तु शिक्षा मे अनेक गुणात्मक सुधार हो जायेंगे। 'पडोसी-स्कूल' (नेबरहुड स्कूल) और क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से स्नातक स्तर तक की शिक्षा देने के सुझाव तो सचमुच क्रांतिकारी हैं—उसी प्रकार परीक्षा और प्रशासन और निरीक्षण सम्बन्धी सुझाव व्यावहारिक और प्रगतिशील है। कमीशन ने शिक्षा के हर स्तर पर व्यापक अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अध्यापको के वेतन और स्टेटस पर उसके सुझाव अत्यन्त उदार हैं। परन्तु किसी भी राजनैतिक दल ने कमीशन का उल्लेख नहीं किया है। तीन साल पहले जिस सरकार ने कमीशन की सस्तुति को अपनी शिक्षा-नीति का आधार बताया था और उसके कार्यान्वयन का प्रोग्राम बनाया था उस सत्तारूढ़ कांग्रेस के दल ने भी कमीशन की सस्तुतियों का कोई उल्लेख नहीं किया है। (यह केवल इस बात की ओर सकेत करता है कि अपने घोषणापत्रों मे शिक्षा-नीति का उल्लेख करते समय घोषणापत्र ड्राफ्ट करनेवाले लोगो ने कितनी गहराई से शिक्षा की वर्तमान गतिविधियो का अध्ययन किया है।—प्र०)

सामान्य शिक्षा निति

वैसे सभी दलो ने देश की शिक्षाप्रणाली को दोषपूर्ण बताया है और देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसमे सुधार की जरूरत बतायी है। सत्तारूढ कांग्रेस ने अपने घोषणापत्र मे शिक्षा प्रणाली को इस प्रकार पुनर्व्यवस्थित करने की घोषणा की है, जिससे शिक्षा के द्वारा इतना आर्थिक विकास हो कि जनता का जीवनमान बढाया जा सके। जनसघ शिक्षा मे इस प्रकार सुधार करना चाहता है जिससे राष्ट्रीय मूल्य दृढ बनें और आधुनिक भारत की आवश्यकताएँ पूरी हों। भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी देश के सेक्युलर और टेक्नालाजिकल आधार को दृढ करने के लिए शिक्षा मे सुधार करेगी। स्वतत्र पार्टी शिक्षा द्वारा मानवीय मूल्यों और राष्ट्रीय एकता का पर्याप्त पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए शिक्षा मे सुधार करेगी। ससोपा शिक्षा को देश की आवश्यकताओं से विद्यार्थियों के ज्ञान को जोडेगी। प्रजा-समाजवादी दल शिक्षा को इस प्रकार पुनर्व्यवस्थित करेगा जिससे वह तरुणों की आकाक्षाओ और आवश्यकताओं के अनुरूप बन सके।

अध्यापकों का वेतन

जहाँ तक अध्यापकों के वेतन का सम्बन्ध है १९६७ ईस्वी में चुनाव से कांग्रेस ने अध्यापकों के पर्याप्त वेतनक्रम और प्रतिष्ठा देने की बात कही थी, परन्तु इस बार के घोषणापत्र में उसकी कोई चर्चा नहीं है। जनसंघ ने भी, जिसके पर्याप्त सदस्य अध्यापक हैं, शिक्षकों को जीने भर आजीविका मिले इसकी कोई चर्चा नहीं की है, यद्यपि इसके पहले के चुनाव में उसने घोषित किया था कि उसकी नीति होगी कि अध्यापकों का न्यूनतम वेतन १५०) प्रतिमाह हो। इन दोनों प्रमुख राजनैतिक दलों के रुख में इस परिवर्तन का क्या अर्थ लगाया जाय, बल्कि प्रसोपा ने अध्यापकों को इसलिए अधिक अच्छा वेतन-क्रम देने की बात कही है, जिससे प्रतिभासम्पन्न युवक इस पेशे की ओर आकृष्ट हों। ससोपा ने घोषणा की है एक ही काम को करनेवाले समान दक्षता के लोगों को समान वेतन दिया जाय चाहे वे विश्वविद्यालय में हों, किसी प्राइवेट संस्था में हों अथवा किसी सरकारी स्कूल में हों। वह यह घोषणा करता है कि प्रारम्भिक स्कूल के अध्यापक और उच्च शिक्षा में लगे अध्यापक के वेतन समान हों। मार्क्सवादी साम्यवादी दल शिक्षक वर्ग की सम्पूर्ण न्यायसंगत माँगों को पूर्ण करने की इच्छा प्रकट करता है जिससे शिक्षा में गुणात्मक सुधार हो और शिक्षक के पेशे की प्रतिष्ठा में वृद्धि हो। भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी अध्यापकों को आवश्यकतानुकूल वेतन देने की घोषणा करती है। स्वतन्त्र पार्टी भी अध्यापकों का वेतन और स्टेटस बढ़ाना चाहता है।

विद्यार्थियों के अधिकार

भारतीय कम्यूनिस्ट दल, ससोपा, और प्रजा समाजवादी दल छात्रों की इस माँग का समर्थन करते हैं कि छात्रों का शिक्षालयों के संगठन और प्रबन्ध में पूरा हाथ हो। ससोपा तो अपना दृष्टिकोण और भी स्पष्ट करते हुए कहता है कि विश्वविद्यालय के प्रशासन में छात्रों और अध्यापकों, दोनों का भाग रहे। (जो भी हो किसीने यह दृष्टिकोण नहीं अपनाया है कि शिक्षालय के प्रतिष्ठान का पूरा प्रशासन अभिभावक, छात्र और अध्यापक का सम्मिलित उत्तरदायित्व हो और इसमें शासन अथवा कोई तथाकथित प्रबन्धक किसी प्रकार का दखल न दे। अर्थात् शिक्षालयों के पूर्ण स्वायत्तता की बात किसीने नहीं की है।—स०) हाँ, विश्वविद्यालय-स्तर पर स्वतन्त्र पार्टी और मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने पूर्ण स्वायत्तता की घोषणा की है। आश्चर्य तो यह है कि सी० पी० आई० ने सन् १९६७ के चुनाव के अपने घोषणापत्र में तो विश्वविद्यालय की स्वायत्तता की

बात की थी, परन्तु इस बार वह इस बिन्दु पर चुप ही है। कांग्रेस (सगठन), कांग्रेस (सत्तारुढ), जनसंघ, ससोपा, और प्रजा समाजवादी दल भी इस विषय पर मौन ही हैं।

साक्षरता

जहाँ तक साक्षरता का सम्बन्ध है ससोपा ही ऐसा दल है जिसने साफ घोषणा की है कि अगर वह केन्द्र मे सत्तारूढ हुआ तो दस वर्ष के भीतर शत-प्रतिशत साक्षरता के लिए प्रयास करेगा और इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए शिक्षित बेकारो का इस्तेमाल करेगा।

प्रारम्भिक शिक्षा

जनसघ महसूस करता है कि अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया जाय तो शिक्षित बेकारो की समस्या भी हल होगी। कांग्रेस, (सत्तारुढ), कांग्रेस (सगठन) ने भी प्रारम्भिक शिक्षा के प्रसार की घोषणा की है, यद्यपि इनके घोषणापत्रों में इस शिक्षा का क्या रूप होगा यह स्पष्ट नही किया गया है। ससोपा ने तो एक कदम आगे बढकर माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा को अनिवार्य करने की बात की है (परन्तु यह माध्यमिक शिक्षा कार्यमूलक, व्यवसायमूलक होगी इसकी कोई चर्चा नही है-अनु०)। प्रजा समाजवादी दल ने कम से-कम समय मे प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य कर देने का सकल्प किया है और मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने सात वर्ष की नि शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा और माध्यमिक स्तर तक नि शुल्क शिक्षा की घोषणा की है।

विज्ञान और टकनालोजी

केवल कांग्रेस (सत्तारूढ) और सी० पी० आई० ने विज्ञान और टेकनालोजी की तरक्की पर स्पष्ट नीति की घोषणा की है। कांग्रेस (सत्तारूढ) दल ने घोषणा की है कि वह विज्ञान और टेकनालोजी का प्रसार करेगा और उसे जनता की कृषि और उद्योग-सम्बन्धी आवश्यकताओं से जोडेगा। दल एक राष्ट्रीय स्तर की वैज्ञानिक और टेकनालाजिकल योजना प्रस्तुत करेगा जिसका समन्वय देश की आर्थिक योजना से किया जायगा। इस दल ने योजना का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि देश के वैज्ञानिक और तकनीकी स्रोतो का बडा हिस्सा प्राथमिकता की दृष्टि से पूर्वनिर्धारित क्षेत्रों पर केन्द्रित किया जायगा। राष्ट्र के वैज्ञानिक और प्राविधिक विशेषज्ञो को प्रतिष्ठा और उत्तरदायित्व के पद दिए जायँगे और सरकार के निर्णयो मे उनके मत का आदर किया जायगा। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी वैज्ञानिक शोधों का देश के

आर्थिक विकास के साथ उद्देश्यपूर्ण समन्वय चाहती है। वह विज्ञान की सस्थाओं में नौकरशाही को समाप्त करना चाहती है और पूर्ण स्वायत्तता के आधार पर लोकतान्त्रिक पद्धतियों का अनुसरण किया जायगा, ऐसी घोषणा करती है। विज्ञान और टेकनालोजी के विकास के लिए अधिक धन की माँग की जायगी जिससे भारत आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके। देश की जनता को विज्ञान परक और तकनीकपरक बनाने के लिए स्वतन्त्र दल प्रारम्भिक शिक्षा मे ही बच्चो को विज्ञान और तकनीक पढ़ाना प्रारम्भ कर देगा।

राजभाषा

राजभाषा का प्रश्न शिक्षा से जुड़ा हुआ है। अत राजनैतिक दल इस सम्बन्ध म भी अपनी नीति की घोषणा करेंगे ऐसी आशा करनी चाहिए। विशेषत दक्षिण के मतदाता इस विवादग्रस्त विषय पर विभिन्न दलो की स्पष्ट राय जानना चाहेंगे। काग्रेस (शासन) क्षेत्रीय भाषाओ के उन्मुक्त विकास के पक्ष मे है। उसने इस बार उर्दू पर कुछ अधिक बल दिया है। संगठन काग्रेस का भी यही रुख है। सी० पी० आई० ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर कुछ कहा ही नहीं है। जनसघ देश के उन भागो पर, जो हिन्दी नहीं चाहते, अब हिन्दी थोपने के लिए तैयार नही है। वह विगत पाँच वर्षों से हिन्दी को सम्पर्क-भाषा के रूप मे विकसित करने की बात कहकर ही रुक गया है। दक्षिण मे अपने विचार को स्वीकार कराने की दृष्टि से जनसघ ने हिन्दी के सम्बन्ध मे अपने पहले स्टैण्ड म हट गया है। सन् १९६२ के चुनाव म जनसघ ने कहा था कि केन्द्र मे अग्रेजी का स्थान हिन्दी और राज्यो मे क्षेत्रीय भाषाएँ ग्रहण करेंगी और सस्कृत स्कूलो को अनिवार्य होनी चाहिए। सन् १९६७ में जनसघ के घोषणापत्र मे सस्कृत को सास्कृतिक राष्ट्रीय भाषा बनाने की माँग थी, जिसका प्रयोग महत्वपूर्ण समारोहो में किया जाय। लेकिन इस घोषणा-पत्र मे इस बात की चर्चा नही है। केवल सयुक्त समाजवादी पार्टी ही है जो अभी भी अपने अग्रेजी हटाओ के माँग पर डटी हुई है।

प्रस्तुतकर्ता वशीधर श्रीवास्तव

(साभार 'इण्डियन नेशन' मे प्रकाशित प्रोफेसर सी०आर० राठी के लेख के आधार पर प्रस्तुत।)

खाद्य-प्राप्ति की अभिनव पद्धति

बनवारीलाल चौधरी

मनुष्य अपना भोजन अभी तक प्रकृति से प्राप्त करता आ रहा है। निरामिष और सामिष दोनों ही खाद्य-पदार्थ का उत्पादन प्रकृति से हुआ है। प्रकृति द्वारा उत्पादित खाद्य-पदार्थ का एक निश्चित स्वाद होता है साथ ही उसकी उत्पादन-क्षमता भी सीमित है और उत्पादन की गति की रफ्तार भी एक हद से अधिक नहीं बढ़ायी जा सकती। समय पाय तरुवर फलें केतुक सींचो नीर।

खेती और पशुपालन की झझट से बचने और बढ़ती आबादी की भोजन की माँग पूरी करने के लिए प्रकृति की क्रियाओं का अध्ययन कर मनुष्य ने फैक्टरी म खाद्य पदार्थ बनाना आरभ कर दिया है। अमरीका और केनेडा मे *इसका उत्पादन और व्यवहारी रूप तेजी से बढ रहा है।*

दिन प्रतिदिन यहाँ के लोग अधिकाधिक मात्रा मे कारखाने में उत्पादित खाद्य-पदार्थों का भोजन कर रहे हैं। ये खाद्य-पदार्थ खेत पर नहीं उगाये गये हैं, इन्हे कारखानों मे तैयार किया गया है। विज्ञानशाला मे उनके निर्माण की विधि निश्चित की गयी है। कार्य-कुशलता के आधार पर उद्योगपति भोजन पैदा करने के लिए अर्थात् घास को दूध, मांस या अन्न मे परिवर्तित करने के लिए जानवरों को पालने की अपेक्षा मशीन लगाना अधिक पसन्द करते हैं। उनकी मान्यता है कि मवेशियों की तुलना म मशीन कई गुना अच्छा काम करती है।

कारखानो मे उत्पन्न किये हुए खाद्य पदार्थों को 'एनालोग' कहते हैं। 'सरूप' इसके लिए उपयुक्त हिन्दी शब्द होगा। दूध और मांस के 'सरूप' का बहुत प्रचार हो चुका है। अमरीका, केनेडा के दूध और मास दुनिया के एक-चौथाई भाग के बाजार पर छा गये हैं। भोजन मे उपयोग आनेवाला क्रीम का ८५% एव ऊपर से उपयोग मे आनेवाली मलाई का ३५% भाग गाय द्वारा उत्पादित नहीं है, 'सरूप' का है। इसका प्रभाव खेती की रूपरेखा और उगाई जानेवाली फसलों पर पड़ेगा। क्रमशः किसान अधिकाधिक मात्रा मे सोयाबीन और सरसो लगायेंगे।

अनायास ही इन देशों के लोग इस प्रकार के 'सरूप' पदार्थों का भोजन मे काफी मात्रा मे उपयोग करने लगे हैं। दूध की जगह जब 'काफी-मेट' का उपयोग करते हैं, तो उसका अर्थ है कि सोडियम केसीनेट, डाइपोटेसियम फास्फेट, सोडियम सिलिकोलूमिनेट, और मोनो तथा डाइग्लिसराइड ले रहे हैं। मारजरीन में

लेसिथिन पायसीकारक और सोडियममें बेंन्जोएट होते हैं। मिठाई के ऊपर डाले जानेवाला क्रीम भी कृत्रिम बना हुआ होता है। आज वहाँ के बाजार में निरामिष या सामिष ऐसा कोई भी डब्बा बन्द पदार्थ नही है जिसमें 'सरूपों' का समावेश न हो।

'सरूप' बनाने की दिशा मे सबसे अधिक प्रगति 'गोरसी' पदार्थों मे हुई है। दूध और मलाई के 'सरूपों' की बिक्री दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। मांस 'सरूप' पदार्थों को बनाने की होड चली है। बडे बडे कारखानेदार और शाकाहारी लोग इन प्रयोगों को उत्सुकता से देख रहे हैं। मांस 'सरूप' पदार्थ बनाने का उत्तम और सरल तरीका किसी दो दलीय–विशेषतया सोयाबीन–की प्रोटीन को अलग कर वानस्पतिक रेशो मे मिला कर मथ देना है। इससे उसका रूप मांस सदृश्य हो जाता है। इच्छानुसार यह रवेदार रूप मे भी बनाया जा सकता है। अमरीका की 'जनरल मिल्स' ने सुअर मांस के इस प्रकार के 'सरूप' का प्रचलन प्रारभ किया है और गो, मुर्गी आदि के मांस के सरूप भी बडी तेजी से तैयार किये जा रहे हैं। इस रीति से नये नये और अनगिनत 'सरूप' बनाये जा सकते हैं। सतरे का रस भी कृतिम रूप से बनाया जा रहा है। एक प्रयोगशाला मे इस प्रकार की डबलरोटी केक बनाने मे सफलता प्राप्त की जा चुकी है जिसमे न आटे का और न अण्डे का ही उपयोग किया जाता है। ऐसे लोग जिन्हे दूध रुचिकर नही होता या जिनकी प्रकृति को दूध प्रतिकूल पडता है, दूध 'सरूप' का उपयोग कर सकते हैं। हजारो बच्चो को दूध 'सरूप' ने जीवन दान दिया है। जल विश्लेषण पद्धति द्वारा निकाली गयी प्रोटीन पर अम्ल का समावेश करने से उसमे मांस के समान गध उत्पन्न हो जाती है। इसका उपयोग किसी भी 'सरूप' मे मास की गध देने मे किया जाता है।

मनुष्यो द्वारा बनाये जानेवाले खाद्य 'सरूपो' मे मूल आधार प्रोटीन है। सोयाबीन प्रोटीन अभी तक उत्तम माना गया है। मछली से भी प्रोटीन प्राप्त किया जाता है। प्रोटीन का एक बहुत बडा परन्तु उपेक्षित क्षेत्र समुद्र की सेवाल (काई) है। जापान मे इसका सदियो से प्रचलन है और अब वह बढ रहा है। ऐसा अनुमान है कि एक एकड सेवाल से दो हजार से चार हजार पौंड तक खाद्य उपयोगी प्रोटीन प्राप्त हो जाता है जब कि एक एकड मक्का से मवेशियो को चराकर केवल ७५ पौंड प्रोटीन ही मिलेगी।

खनिज तेलो से प्रोटीन प्राप्त करना भी एक अच्छा माध्यम प्रतीत होता है। फ्रांस मे एक अंग्रेजी पेट्रोलियम कम्पनी खनिज तेलो से प्रोटीन बनाने मे

व्यस्त है। कम्पनी के अधिकारी का दावा है कि भूतेल से बनी प्रोटीन किसी भी प्राकृतिक मुर्गी,-मछली, पौधा, ईस्ट की प्रोटीन से मूल रूप मे भिन्न नहीं है। भूतेल से प्रोटीन बनाने के लिए उपयोग मे आनेवाले जामन के जीवाणुग्रो की हर पांच घटे मे दुगनी बाढ हो जाती है। पशुओं द्वारा प्रोटीन बनाने की क्रिया से यह कई हजार गुना अधिक है। इनमे बहुत अधिक अनुपात में कोशविलायी (Lysin) होता है, जो कि तृणजातीय अनाजो का एक महत्त्वपूर्ण परिपूरक है। यह पाचक भी होता है। प्रतिवर्ष केवल चार करोड टन भूतेल मे दो करोड टन शुद्ध प्रोटीन प्राप्त किया जा सकता है। ससार मे खर्च किये जानेवाले भूतेल का यह अल्पाश मात्र है। केवल इसी एक स्रोत से समारभर में होनेवाले प्रोटीन का उत्पादन दुगना किया जा सकता है। प्रोटीन बना लेने पर भी भूतेल खराब नही होता और अभी के समान ही उसका उपयोग ऐंजिन मोटर आदि चलाने मे होता रहेगा।

पौष्टिक तत्त्व

इन 'सरूप' खाद्य-पदार्थों मे और फार्म पर उगाये खाद्य-पदार्थों के पोषक तत्त्वो मे कोई खास अन्तर नहीं होता। सरूप खाद्य-पदार्थों की एक विशेषता यह होगी कि उनमे इच्छानुसार पोषक तत्त्वो का अनुपात कम अधिक भी किया जा सकेगा। प्रयोगो मे ज्ञात हुआ है कि सोयाबीन द्वारा बनाये गये 'सरूपो' मे प्रोटीन की गुणवत्ता दूध की अपेक्षा–८० % अधिक होती है। बच्चे इसे रुचि से ग्रहण करते हैं और स्वास्थ्य पर इसका कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होता, प्रौढ व्यक्तियों पर किये गये प्रयोग से ज्ञात हुआ है कि सोयाबीनमूलक 'सरूपो' का भोजन स्वास्थ्य और शक्ति दोनो के लिए बहुत ही अनुकूल है। साथ ही इस प्रकार के खाद्य-पदार्थों में 'कोलेस्ट्राल' (घी में पाया जानेवाला वह भाग, जो कि हृदय की बीमारी का एक कारण माना जाता है) का अनुपात भी नगण्य हो जाता है।

आर्थिक पहलू

'सरूप' बनानेवालो का मत है कि कारखाने में खाद्य-पदार्थों का उत्पादन खेतो की तुलना मे बहुत कम खर्चीला होगा। प्राकृतिक रूप से तैयार किये गये खाद्य-पदार्थों की कीमत दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है। कारखानो मे जब माल बहुत अधिक तादाद–पूंजी-उत्पादन रूप–मे तैयार किया जाता है, तब वह सस्ता पडता है। कारखानों मे उत्पादन करना सरल, सुलभ और आरामदेह भी होता हैं। कारखाने मे बनाये इन खाद्य-पदार्थों का अधिकाधिक उपयोग करके सस्तेपन के कारण ही नही वरन् उनके उपयोग करने मे कई प्रकार की सहूलियतें एव

उनके अधिक समय तक बिना खराब हुए रखे रहने की क्षमता के कारण भी होगा। इन खाद्य पदार्थों मे रंग, सुगंध स्वाद आदि गृहिणी की रुचि के अनुसार दिये जा सकेंगे। उपभोक्ता अपनी पसन्द के अनुसार इन्हे बनवा सकेगा।

इन सरूपों' का बनाने के उपयोग मे आनेवाला कच्चा माल खेतो मे होगा। वैज्ञानिको का ऐसा खयाल है कि इस कच्चे माल का भी थोक प्रारूप तैयार करके रखा जा सकेगा (जैसे कि रबर को रखते हैं) और इनसे समयानुसार मॉंग को देखते हुए 'सरूप' बनाये जायेंगे। लोगों को अजीब लगेगा कि मक्खन, मलाई, दूध, मास आदि के नाम पर वे खोपरा का तेल, सोयाबीन, समुद्री घास और एलुमिनम के लवण उपयोग कर रहे हैं, पर यदि गहराई से सोचा जाय तो दूध आदि पशुजनित खाद्य पदार्थो मे भी तो ये ही तत्त्व हैं।

शीघ्र ही विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ, भोजन सामग्री बाजार मे आयेगी। इनमे से कई एक ऐसी भी होंगी जो न हमने कभी सुनी न देखी और न खायी ही है। इसका एक बहुत अच्छा प्रभाव यह होगा कि भेड, गाय, सूअर, बकरी, मुर्गी आदि को भोजन के लिए पालना बन्द हो जायेगा। हत्या बन्द होगी। साथ ही आज इनकी और आदमी की भोजन प्राप्त करने मे जो स्पर्धा है वह खत्म हो जायेगी। ताज्जुब नहीं ५०–१०० वर्षों मे ये पशु अजायब घर के प्राणी बन जायें।

इस दिशा मे दूसरा कदम होगा वायुमडल मे पायी जानेवाली कारबन-डाइ आक्साइड से सीधे सीधे कर्बोदजाय पदार्थ अर्थात आटा, शक्कर आदि बनाना। प्रकृति मे पौधे सूर्य के प्रकाश म वायुमडल की कार्बन-डाइ आक्साइड को ग्रहण कर कर्बोदज मे परिवर्तित करते हैं। छोटे रूप मे यह क्रिया विज्ञानशाला मे सफलतापूर्वक की जा चुकी है। इसका व्यवसायी और व्यवहारी रूप मालूम करना है। जिस दिन यह सब हो जायगा आदमी को अपने भोजन के लिए केवल जमीन पर ही निर्भर न रहना पडेगा। समुद्र और वायुमडल भी सहायक होंगे। उसकी विज्ञानशाला, और उसके कारखाने उसकी गोशाला, उसके शूकरगृह और मुर्गीघर का स्थान ले लेंगे। तब शाकाहारी लोग भी हिंसा बिना, जीव हत्या किये बिना ही (वर्तमान के) पशुजनित खाद्यो का स्वाद ले सकेंगे। मास पशु के पुट्ठे से नहीं मशीन के पट्टे से प्राप्त होगा। वह स्वर्णिम और सुखद दिन दूर नहीं है जब मनुष्य अपने भोजन के लिए जीवहत्या करना आवश्यक ही नहीं अव्यवहारी मानेगा।●

जूनियर हाईस्कूलो में कृषि-कार्य अनुभव की अल्पकालीन योजना

उन जूनियर हाईस्कूलो म कृषि काय अनुभव की अ पकालीन योजना को शीघ्र लागू कर देना चाहिए जहाँ कृषि क्राफ्ट के रूप म पढ़ाया जा हा है और कृषि योग्य भूमि भी उपलब्ध है। इसके अन्तगत निम्न कार्यो को करना है—

१ वर्षाकाल मे ही वष की पूरी योजना कागज पर इस प्रकार बना ली जाय जिससे वष मे अधिक मे अधिक उत्पादन के साथ सभी कृषि के छात्रों को काय अनुभव का भी यथोचित मौका मिले। योजना मे फाम की सुरक्षा कम्पोस्ट-तयारी सिंचाई तथा उत्तम बीजो के प्रयोग के साथ साथ बालको से रबी की बुवाई तथा फसलो की कटाई के समय मे स्थानीय निकटवर्ती क्षेत्रों मे कृषि-कार्यों मे काय अनुभव की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

२ फाम की सुरक्षा के लिए शीघ्र उगनेवाले पौधों तथा झाडियो को वर्षा अन्त से पूव ही लगा देना चाहिए इसके लिए करौंधा नागफनी सरपत जगल जलेबी तथा नील कांटे मे से किसी का प्रयोग किया जा सकता है। यदि छात्रो की सख्या अधिक है तो ये बाडे खाइयां खनाकर ही लगानी चाहिए।

३ फाम का विन्यास यदि आवश्यक नहीं है तो उसको आवश्यक बनाने के लिए मार्गों तथा पगडंडियो की व्यवस्था भी शीघ्र वाछनीय है।

४ उत्पादन की योजना इस प्रकार बनायी जाय कि फाम का लगभग ½ भाग व्यक्तिगत क्यारियो मे ½ सामूहिक क्यारियों मे तथा ½ भाग कक्षाओं मे वितरित हो। योजना की एक प्रति प्रत्येक कक्षा मे लगी रहनी चाहिए।

५ खरीफ की फसलो म अधिक बल सब्जियो पर देना चाहिए जिससे बालको को सब्जियाँ उगाने का व्यावहारिक ज्ञान हो। इसमे टमाटर, बगन बोडा मिच मूली तोरई लौकी सेम तथा भिंडी की सब्जिया उगायी जा सकती हैं। रबी की फसलो मे गेहूँ औ तथा चना की खेती सिंचाई की सुविधा नुसार की जाय तथा सब्जियों की खेती पर भी बल दिया जाय। रबी की फसलों म पालक मूली गाजर, फूलगोभी पातगोभी तथा शलजम की तरकारियाँ बोयी जाय।

६ जायद में मूग न० १ सकर मक्का प्याज, लौकी तथा बोडा की खेती पर विशेष रूप से बल दिया जाय यदि निकटवर्ती क्षेत्रो मे चना की खेती हो

रही हो तो कृषि फाम मे चना की खेती भी की जानी चाहिए। इससे बैलो को हरा चारा भी मिल जाता है और फाम की आय म कुछ वृद्धि भी होती है।

७ तरकारियो का उत्पादन व्यक्तिगत क्यारियो मे तथा खाद्यानों का सामूहिक क्यारियों मे करना चाहिए।

८ फाम फसलो की सुरक्षा के लिए व्यावहारिक कार्यों की ओर विशेष ध्यान देना होगा जिससे बालक अपने अनुभवो से आगे के जीवन मे लाभान्वित हो सकें। इसके लिए डी॰ डी॰ टी॰ अग्रोलन जी॰ एन॰ गैमेक्सीन बी॰ एच॰ सी॰ तथा एडीन कीट तथा रोग नाशी औषधियो का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य किया जाय।

यदि इनमे से कुछ कीट-नाशी औषधियों का प्रयोग फाम पर सम्भव न हो सके तो स्थानीय क्षेत्रो मे उनके प्रयोग के समय बालको को अवश्य दिखाया जाय।

९ हरे तथा पौष्टिक चारा म मक्का, बरसीम तथा जाइट नेपियर घासों को फाम मे बोकर पशुओ को खिलाया जाय जिससे बालक तथा स्थानीय लोग उन प्रयोगो से लाभान्वित हो सकें।

१० हल चलाने का अनुभव कक्षा ७ तथा ८ के बालको को भली प्रकार हो। इसके अतिरिक्त मिट्टी पलटनेवाले हलो तथा अन्य उपयोगी कृषि यन्त्रो का प्रयोग भी फाम पर किया जाना चाहिए जिससे बालक तथा समुदाय के लोग लाभान्वित हो सकें। अन्य कृषि यन्त्रो मे सिंह पटेला, कल्टीवेटर तथा हैण्ड हो का प्रयोग निश्चित रूप से होना चाहिए।

११ बालको से उवरको का सही प्रयोग कराया जाय। उन्हे उवरको के कूण्ड तथा खडी फसलो मे प्रयोग की विधियो का सही ज्ञान हो तथा वे उनके प्रभावो से भी अवगत होने चाहिए।

१२ वर्धी प्रवर्धन द्वारा नये पौध तैयार करने की विधियों का बालकों को व्यावहारिक सही ज्ञान देना चाहिए। वे स्वय उन विधियो से नये पौधे तैयार करें जिससे उनकी कमियो का उन्ह सही अनुमान हो सके। इसके लिए यदि विद्यालय मे सुविधा न हो तो पास पडोस के बगीचो मे ले जाकर प्रयोग कराने चाहिए। इसके लिए अच्छा हो कि बीजू पौधे अपने स्वय के ही ले जाये जायें। कमल लगाने, दावकलमा तथा चश्मा बन्दी के प्रयोग विद्यालय मे ही किये जा सकते हैं।

१३ विद्यालय-फाम मे एक छोटी नसरी अवश्य हो जिसमे स्थानीय सभी

प्रकार के पौध लगाये जाय। यह काय केवल थोडे से उत्साह से बडा सफल हो सकता है।

१४ पाठशाला के सामने की क्यारियो मे ऋतु अनुसार मौसमी पौध लगाकर प्रागण को आकषक बनाना चाहिए। भवन के भीतर तथा बाहर कुछ ऐसी कृषि उपयोगी कहावतें भी लिखी हो जिसमे आनेवाले लोग आकृष्ट हो सकें।

१५ फाम के भाग मे कुछ ऐसा स्थान रखा जाना चाहिए जिसमें अच्छे बीजो का प्रदर्शन किया जाय। इसमे बालको का ज्ञान वर्धन होता है तथा वह बाहरी लोगों के लिए आकषण का केन्द्र बनता है।

१६ विद्यालय म कुछ ऐसा स्थान भी हो जहाँ कृषि सम्बन्धी छोटी सी प्रदशनी का आयोजन किया जा सके। इसमे बालको द्वारा एकत्र विशेष वस्तुओ को भी स्थान देना चाहिए तथा उसे चाट माडलो तथा कृषि सम्बन्धी कहावतो से आकषक बनाना चाहिए।

जूनियर हाई स्कूलो मे कृषि काय अनुभव सम्बन्धी दीघ कालीन योजना

१ कृषि फाम का अभियास आकषक बनाया जाय। इसके लिए आवश्यकतानुसार एक वष से अधिक का भी समय लिया जा सकता है।

२ सिंचाई की व्यवस्था के लिए यदि पास पडोस मे नहर अथवा नलकूप हो तो फाम तक कच्ची नाली बनायी जाय।

३ फाम के उन भागो मे फलदार वृक्ष जसे अमरूद पपीता केला नीबू तथा आम के वृक्ष लगाये जाय जहाँ कृषि काय सम्भव नहीं है।

४ २ हेक्टर अथवा इससे अधिक भूमि पर बल पशुशाला कृषि रक्षक उसके आवास की व्यवस्था तथा अध्यापक के रहने की व्यवस्था भी की जाय।

५ पाठशाला म एक गोदाम का होना नितान्त आवश्यक है।

६ सिंचाई की उचित व्यवस्था न होने पर कुओ को बनाकर उस पर रहट की व्यवस्था की जानी चाहिए।

—राज्य शिक्षा-सस्थान से साभार

वक्तव्य

राष्ट्रीय एकता परिषद द्वारा आयोजित यह सर्वदलीय सम्मेलन राष्ट्रीय एकता परिषद की स्थायी समिति द्वारा १८ अक्तूबर, १९६९ को पारित वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए निम्न वक्तव्य पारित करता है :

संयुक्त प्रचार अभियान

साम्प्रदायिक झगड़ों और विघटनकारी प्रवृत्तियों का मुकाबला करने के लिए अत्यन्त प्रभावशाली उपाय यह है कि सभी राजनैतिक दल साम्प्रदायिक सद्भाव और एकता के लिए आपस में मिलकर एक जन-प्रचार अभियान चलायें। इस संयुक्त जन-प्रचार अभियान का एक उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि वह अनुसूचित जातियों और खासतौर पर ग्रामीण इलाकों में रहनेवाले पिछड़े वर्गों के प्रति होनेवाले अन्याय और हिंसा के विरोध में जनमत तैयार करे।

धर्मनिरपेक्ष राज्य

हमारे संविधान में नागरिकता को धर्मनिरपेक्ष माना गया है। अपने धर्म का अनुकरण करने के लिए प्रत्येक नागरिक स्वतंत्र है। इसी प्रकार, नागरिक के बुनियादी अधिकार और उनसे सम्बद्ध कर्तव्यों को भी समान रूप से धर्मनिरपेक्ष माना गया है और वे समस्त नागरिकों पर समान रूप से लागू भी होते हैं। यद्यपि धर्म जीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, फिर भी उसे संविधान में परिकल्पित आधुनिक समाज और धर्मनिरपेक्ष राज्य के निर्माण में बाधा के रूप में नहीं आना चाहिए।

अल्पसंख्यक वर्ग

यह सम्मेलन किसी अल्प समुदाय की निन्दा करने के इस विचार के सख्त खिलाफ है कि वह समुदाय देशद्रोही है या किसी विदेशी शक्ति की एजेंसी है। इसी प्रकार, हम इस विचार के प्रचार की भी निन्दा करते हैं, जिसमें कहा जाता है कि अमुक अल्पसंख्यक समुदाय का भारतीयकरण होना चाहिए अथवा ऐसा न होने पर उसे देश छोड़ने पर बाध्य किया जायेगा। कभी-कभी लोग साम्प्रदायिक पागलपन के दौरे में ऐसी गैरजिम्मेदार बातें करते हैं और कहते हैं हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान पाकिस्तान के साथ जनसंख्या के आदान-

प्रदान में है। ऐसे खतरनाक विचारों का मुकाबला किया जाना चाहिए, क्योंकि यह न केवल हमारी धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद की भावना के विरुद्ध है, बल्कि हमारे देश की एकता और सुरक्षा के लिए भी खतरनाक है। एक धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र में सभी अल्पसंख्यक समुदायों को चाहे वे किसी भी धर्म, जाति अथवा जनजाति पर आधारित हों उनके न्यायोचित हितों की रक्षा और उससे भी ज्यादा उनके जीवन, सम्पत्ति और सम्मान की सुरक्षा का विश्वास दिलाया जाना चाहिए। भारतीय संविधान तो स्वयं ही अल्पसंख्यक समुदायों के सांस्कृतिक और शिक्षात्मक अधिकारों की सुरक्षा की उचित गारन्टी प्रदान करता है। इस गारन्टी को सचाई में बदलने के लिए देशवासियों पर और खास तौर पर बहुसंख्यक वर्ग पर विशेष जिम्मेदारी है।

दोषी को सजा

कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि जब कोई व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का समूह कोई समाजविरोधी कार्य अथवा अपराध करता है तो कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो उन व्यक्तियों का धर्म अथवा जाति देखते हैं और उस व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा किये गये कार्यों का दोषारोपण उनके सम्प्रदाय या जाति पर करते हैं। ऐसे विचारों के विरोध में जनमत तैयार किया जाना चाहिए। हालांकि यह कर्तव्य सरकार का है कि वह उक्त व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के खिलाफ तुरन्त और प्रभावशाली कारवाई करे, लेकिन किसी भी हालत में उस व्यक्ति या व्यक्तियों के सम्प्रदाय या जाति पर सारा दोष हर्गिज नहीं मढ़ा जाना चाहिए।

हम इतिहास को—चाहे वह प्राचीन हो या वर्तमान और चाहे वह अखबारों और भाषणों के जरिये ही क्यों न प्रस्तुत किया जाता है—प्रस्तुत करने के ऐसे रूप का विरोध करते हैं, जिससे साम्प्रदायिक भावनाओं के भड़क उठने का अन्देशा हो।

यह सम्मेलन बड़ी आशा और विश्वास प्रकट करता है कि समाचारपत्र घटनाओं का विवरण देते समय उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखेंगे।

अफवाहें

अक्सर यह देखा गया है कि साम्प्रदायिक दंगों के शुरू होने से पहले या उनके साथ-साथ उत्तेजक साहित्य, इश्तहार और बे बुनियाद की अफवाहें बड़ा जोर पकड़ लेती हैं। सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि ऐसे इश्तहार तथा अफवाहों के उद्गमस्थल का पता लगाये और उसके लिए जिम्मेदार सभी व्यक्तियों को दण्डित करे। जन नेताओं का भी यह कर्तव्य हो जाता है कि वे

ऐसे प्रचार का शीघ्रता से खण्डन करें, ताकि जनता ऐसी शरारतों का शिकार होने से बच सके।

अल्पसंख्यक समुदायो मे साम्प्रदायिक भावनाओ एव विघटनकारी विचारो को उकसानेवाले साम्प्रदायिक तत्वों के प्रयासों का भी बडी पूरी ताकत से मुकाबला किया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसे तत्व न केवल धर्म-निरपेक्षता और देश की एकता के लिए खतरनाक है, बल्कि स्वय अल्पसंख्यक समुदाय के लिए भी घातक सिद्ध होते है। इस संदर्भ मे, अल्पसंख्यक समुदाय के शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्तियों को अपनी विशेष जिम्मेदारी को समझना चाहिए और धर्मनिरपेक्ष शक्तियों के साथ मिलकर ऐसी खतरनाक प्रवृत्ति का मुकाबला करना चाहिए।

यह सरकार का कर्तव्य है कि साम्प्रदायिक घृणा एव विद्वेष फैलानेवाले व्यक्ति के खिलाफ चाहे वह उसे भाषणो द्वारा अथवा अखबारो द्वारा फैलाता हो—सख्त कदम उठाये, भले ही उस व्यक्ति की सामाजिक हैसियत कितनी ही बडी क्यो न हो।

प्रशासन को चाहिए कि वह शीघ्रता और सख्ती से साम्प्रदायिक गडबड तथा उत्तेजना को—जो ज्यादातर साम्प्रदायिक दगो से पहले शुरू हो जाती है—दबा दे। यह तब तक नही हो सकता जब तक कि सरकार का गुप्तचर विभाग राष्ट्रीय और राज्य—दोनों स्तरों पर, पूरी निपुणता से कार्य न करे और गडबड फैलानेवालो की योजनाओ का पूर्वअनुमान लगाकर समय से पहले ही रोक थाम के कदम उठाने मे सरकार की मदद न करे।

हिंसा

सरकार को चाहिए कि वह साम्प्रदायिक हिंसा को दबाने के लिए शीघ्रता से पूरी ताकत का प्रयोग करे। इसके अलावा उसका यह भी कर्तव्य है कि साम्प्रदायिक दगो के दौरान आगजनी, लूट और हत्या की वारदातों मे हिस्सा लेनेवालो को सजा दे कि वे भविष्य मे ऐसे काम न करें। सम्मेलन को पूर्ण विश्वास है कि यह सोचना कि मुकदमो के वापिस लेने से साम्प्रदायिक समन्वय स्थापित करने मे आसानी हो सकती है बिलकुल गलत है, क्योंकि अपराधियों पर मुकदमा चलाने से साम्प्रदायिक समन्वय स्थापित करने में किसी प्रकार की अड़चन नही आती।

जनता का और विशेष रूप से सभी राजनैतिक पार्टियों का भी यह कर्तव्य हो जाता है कि वे साम्प्रदायिक दगो को दबाने म और इन दगो के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों को न्यायोचित दण्ड देने मे सरकार की पूरी-पूरी मदद करें। •

शक्तियों का सम्पूर्ण विकास। व्यक्ति सर्वोदय तक कब पहुँचेगा? जब उसका शरीर आरोग्यवान, बलवान और तेजस्वी बनेगा जब उसका हृदय शुद्ध होगा, प्रेम से और सत्यम शिवम सुन्दरम से सम्पन्न होगा, उसकी बुद्धि स्थिर, निर्मल और गुणग्रहणशील होगी और उसकी आत्मिक शक्ति का फैलाव इतना अधिक होगा कि समूची दुनिया उसमें समाविष्ट हो जायेगी। सर्वोदय की प्राप्ति यानी मानव जीवन की सफलता इस पृथ्वी पर के उसके अस्तित्व के उद्देश्य का ज्ञान। इसमें तथा मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति में, जिसे मुक्ति, निर्वाण, आत्मज्ञान ईश्वर का राज या साधो का राज कहते हैं, कोई फरक नहीं है। मानव अस्तित्व के इस उच्चतम हेतु की ओर बढ़े बिना कोई भी व्यक्ति शांति के मार्ग में असरकारक साधन नहीं बन सकता।

समाज के प्रत्येक सदस्य के परिपूर्ण विकास की संभावना सर्वोदय सूचित करता है। दूसरे शब्दों में, सर्वोदय प्रत्येक मानव के जीवन की पूर्ण सफलता-प्राप्ति का दावा करता है। इसलिए राष्ट्रीयत्व के रंग-जाति के भेद को या स्त्री पुरुष भेद को सर्वोदय समाज-व्यवस्था में स्थान नहीं रहेगा। सर्वोदय समाज व्यवस्था में व्यक्ति को या समूह को हिंसक दबाव का, शोषण या कर्ज में फँसे रहने का भय रखने का कारण ही नहीं रहेगा। जिस तरह शरीर का हर अवयव शरीर की भलाई के लिए सक्रिय रहता है वैसे ही समाज का हर घटक समाज के कल्याण के लिए सक्रिय रहेगा। शरीर के एकाध भाग को पूरा पोषण न मिले या एकाध भाग बिगड़ जाये, तो भी पूर्ण शरीर बीमार हो जाता है, वैसे ही समाज का एकाध सदस्य भी अपनी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूर्णतया प्राप्त न कर सके या समाज के काम में पूर्णतया सक्षम न हो तो समाज-व्यवस्था गड़बड़ायेगी। समाज का संतुलन कायम रखने के लिए परस्पर सहयोग अत्यन्त आवश्यक है।

व्यक्ति को या समूह को सर्वोदय के आदर्श तक पहुँचने के लिए महात्मा गांधी ने सत्याग्रह साधन को विकसित किया। सत्याग्रह की मानी क्या? जिनके साथ किसी प्रकार का समझौता हो नहीं सकता ऐसे बुनियादी उसूलों के—सत्य और प्रेम के—आधार पर किये हुए रचनात्मक प्रयत्न यानी सत्याग्रह। विनोबाजी कहते हैं कि सच्चे 'सत्याग्रही बनने के लिए प्रथम सत्यग्राही बनना होगा। सत्याग्रह पर अनेक प्रकार से चिंतन कर गांधीजी और विनोबाजी ने उसके कई उपसिद्धांत हमारे सामने पेश किये हैं।

(१) मनुष्य के हर प्रयत्न की आधारशिला होनी चाहिए सत्य, प्रेम, करुणा। (२) साध्य-साधन की शुचिता। मतलब, साध्य-साधन का आधार

सत्य प्रेम-अहिंसा हो। (३) भौतिक विज्ञान के तथा जीवन शास्त्र के क्षेत्र की हर शोध का बारीकी से अध्ययन हो तथा उसका विनियोग पूरे समाज की उन्नति के लिए ही हो। दूसरे शब्दों मे विज्ञान के और धर्म के अनुशासन मे विभाजित सब प्रकार के उपलब्ध ज्ञान का उपयोग व्यक्ति की तथा समाज की समस्याएँ हल करने के लिए ही हो। (४) अपने जीवन की सफलता के लिए रास्ता खोजने, तथा उस पर अमल करने का व्यक्ति को पूर्ण स्वातंत्र्य हो बल्कि समाज का संगठन ही इस प्रकार का हो कि उसमे हर व्यक्ति की गर्भित शक्ति को विकसित होने के लिए पूर्ण मौका मिले। इस विचार को प्रकट करने के लिए विनोबाजी ने एक सुन्दर शब्द का प्रयोग किया है—जनशक्ति। दंडशक्ति की यानी सेना और पुलिस की संगठित हिंसक शक्ति की जगह जनशक्ति यानी लोगों की शक्ति काम मे लगानी होगी। मनुष्य की सुप्त शक्तियों को जाग्रत करने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण अत्यन्त आवश्यक है। गांधीजी का कहना था कि स्टेट मे फिर वह किसी भी प्रकार का हो सत्ता की वृद्धि का भय है क्योंकि यद्यपि 'स्टेट' शोषक को कुछ हद तक खत्म करता है व्यक्ति के व्यक्तित्व की, जो सारे समाज की प्रगति का मूलाधार है, हानि करता है। ५) विज्ञान और तकनीकी ने दुनिया को आज एक बनाया है, इसलिए हर समस्या की ओर हम जागतिक दृष्टिकोण से देखना होगा। सर्वोदय समाज व्यवस्था मे संकुचित राष्ट्रवाद को स्थान नही रहेगा। (६) सर्वोदय के आदर्श पर पूर्ण और अटल श्रद्धा हो तथा तात्कालिक परिणामों को महत्त्व न देते हुए सत्याग्रह के साधन से उस आदर्श तक पहुँचने के लिए जीवन समर्पित हो।

सर्वोदय-सत्याग्रह तत्त्वज्ञान अगर परिपूर्ण और युगानुकूल हो तो आज मानव को पीड़ा देनेवाली वैयक्तिक कौटुंबिक, सामाजिक राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय आदि अनेकविध समस्याओं का हल उसके द्वारा मिलेगा। मेरी इस पर पूर्ण निष्ठा है कि सर्वोदय द्वारा हमारी समस्याओं का हल निश्चित मिल सकता है लेकिन उसके लिए प्रयत्नों की पराकाष्ठा करनी पड़ेगी—हमारे बुनियादी उसूलों पर अमल करने से लेकर तो किसी प्रश्न विशेष के अंतिम हल तक की पूरी प्रक्रिया मे प्रयत्नों की पराकाष्ठा करनी पड़ेगी। महात्मा गांधी ने तो अपने जीवन के द्वारा बता ही दिया है कि सत्य प्रेम अहिंसा के द्वारा किसी भी कठिन प्रश्न का हल मिल सकता है। वे यह भी जानते थे कि किसी भी समस्या का कोई निश्चित विशिष्ट उपचार सुझाया नहीं जा सकता क्योंकि उस उपचार पर स्थल काल, वातावरण तथा संदर्भ का परिणाम होता रहता है। हम धातु की ही मिसाल लें। वे जानते थे कि धातु और धातुओं का मिश्रण उष्णता के

द्वारा पिघलाया जा सकता है, उन्हे यह भी मालूम था कि धातु या मिश्रण का पिघलना, धातु या मिश्रण की किस्म, उस पर दबाव उष्णता का प्रमाण, आसपास का वातावरण आदि अनेक पहलुओ पर निर्भर रहता है।

आज के औद्योगिक समाज की बहुत सारी बुराइयों के मुख्य कारण है स्टेट या चद लोगों के हाथो मे सत्ता और सपत्ति का सग्रह, औद्योगिक प्रवृत्तियो मे उद्योगो से प्रत्यक्ष जुडे हुए बहुसख्यक लोगों की असली भागीदारी का अभाव और औद्योगिक वातावरण मे व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक अवकाश का अभाव। इन तीनों भयों मे से पहले के निराकरण के लिए ट्रस्टीशिप (थातीदारी) का विचार महात्मा गाधी ने हमारे सामने रखा। अगर उद्योगो का सचालन स्टेट के द्वारा होता हो, तो स्टेट या उद्योगपति ट्रस्टीशिप के सिद्धात का स्वीकार करता है और देखता है कि सपत्ति की वृद्धि सबके कल्याण के लिए—सर्वोदय के लिए ही हो रही है, न कि श्रीमानों को अधिक श्रीमान बनने के लिए तो गरीबो का अमीरो के प्रति द्वेष और कटुता बहुत सारी कम हो जायेगी। यह ठीक है कि ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का स्वीकार उद्योगपतियो के द्वारा होना चाहिए, लेकिन स्टेट भी उसका स्वीकार, प्रचार कर सकती है, उसको अपनी कानूनी मान्यता भी दे सकती है।

औद्योगिक जटिलता का दूसरा दोष है उद्योग मे भाग लेनेवालो मे—खास कर श्रमिकों मे सहकारी भावना का अभाव। गाधी विचार के अनुसार कम्पनियो का सहकारी सस्थाओ मे या सयुक्त मडलो म परिवर्तन ही इसका हल है। इग्लैड की एक फर्म ने इसका बहुत ही सुन्दर उदाहरण पेश किया है। उस मडल का नाम है 'बॅडर कामनवेल्थ'। ऐसे मडल के सभी सेवक फैक्टरी के मालिक होगे, उनके व्यापक कामो मे भाग लेंगे और मुनाफ का हिस्सा प्राप्त करेंगे। दस साल पहले, बॅडर कॉमनवेल्थ ने अपनी फैक्टरी सेवको के स्वाधीन की, उसके बाद उसका विकास द्रुत गति से हुआ, मुनाफा भी अधिक आया और असतर पैदा होनेवाली श्रमिको की समस्याएँ भी यो ही टल गयी। ऐसे मडलो मे सेवको को सामूहिक रूप से काम करना पडेगा। उसके लिए परस्पर परिचय और सहकार की तथा एकरूपता की भावना पैदा होना आवश्यक है। बहुत बडे पैमाने पर चलनेवाले उद्योग-धधो मे यह सभव नही होगा। इसलिए फैक्टरी का आकार और पैमाना एक विशिष्ट मर्यादा तक सीमित रखना होगा।

अगर फैक्टरी का पैमाना मर्यादित रहता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व पर उसका दबाव नहीं पड़ता है, तो सेवक मे व्यक्तित्व विकास के लिए कुछ मौका

मिलेगा और औद्योगिक संस्कृति का वह दोष कुछ हद तक तो टलेगा। लेकिन सेवक के सर्वांगीण विकास के लिए और भी कुछ चीजों की जरूरत पड़ेगी। सेवकों के काम में विविधता लानी होगी, यांत्रिक कामों के घंटे कम करने होंगे, और केवल उनके श्रम-परिहार के लिए ही नहीं, उनकी भावनात्मक, बौद्धिक, आत्मिक शक्तियों के विकास के लिए साधन उपलब्ध कर देने होंगे।

गांधी-विचारों के सिद्धान्तों का औद्योगिक समाज में अमल का मतलब है औद्योगीकीकरण के बुनियादी दृष्टिकोण में क्रान्ति। सर्वोदय, सत्याग्रह के तत्त्व पर आधारित शिक्षा व्यापक पैमाने पर दी जाये तो इसमें सफलता प्राप्त होगी। इसके लिए 'इंटरमिडिएट टेक्नॉलॉजी' के क्षेत्र में संशोधन के लिए प्रोत्साहन तथा मदद देनी चाहिए। मतलब, छोटे छोटे केन्द्रों द्वारा, आदर्श पैमाने पर चलनेवाले व्यवसायों में, जहाँ सौ से अधिक लोगों की जरूरत नहीं पड़ेगी ऐसे धंधों में, नयी-नयी खोजें होनी चाहिए। ऐसे धंधों को मदद भी मिलनी चाहिए।

सर्वोदय-क्रान्ति तो जीवन के सभी क्षेत्रों में होनी चाहिए, लेकिन जैसे कि आचार्य विनोबा भावे ने कहा है, वैज्ञानिक और यंत्रशास्त्रज्ञ इस क्रान्ति का सेनामुख बनें।●

भी मार्ग दिखाई पड़ने लगता है जिनका ध्यान इस ओर पहले कभी आकर्षित नहीं हुआ था। आचार्यकुल का आधारभूत उद्देश्य प्रत्येक अध्यापक के मन में अपने हृदयमंथन की प्रगाढ़ इच्छा पैदा करना है उस हृदय मंथन की, जिसके द्वारा आँख होते हुए भी न देख सकनेवाला देखने लगता है कान होने हुए भी न सुन सकनेवाला हल्की सी आवाज भी सुनने लगता है और उसको यह पता चल जाता है कि कैसे मैं अपनी कार्यशैली को बलशाली बनाऊं एवं देश को प्रशस्त मार्ग पर कार्यरत कैसे किया जा सके।

मुझे पूरा विश्वास है कि आचार्यकुल के द्वारा शिक्षा में शांति आयेगी और यह हमारा प्राचीन भारत आधुनिक समस्याओं के निराकरण करने में सफल होगा।

ईश्वर आप सबकी मदद करे—यही मेरी प्रार्थना है।

ह० शीतल प्रसाद
कुलपति आगरा विश्वविद्यालय'

तत्पश्चात् उत्तरप्रदेश आचार्यकुल समिति के सदस्य श्री रामबचन सिंह जी ने उत्तरप्रदेश में आचार्यकुल आयोजन की प्रगति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए इन जिलों में भी इस योजना के सक्रिय रूप में कार्यशील होने की आशा व्यक्त की।

इसके बाद अध्यक्ष डा० भगवती प्रसाद सिंह ने अपना अध्यक्षीय भाषण किया। इस भाषण में उन्होंने श्रावस्ती के ऐतिहासिक महत्त्व की पृष्ठभूमि में इस आयोजन की आवश्यकता के महत्त्व पर बल दिया। उन्होंने आचार्य शब्द की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए प्राचीन काल के आचार्यों के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया और वर्तमान युग में शिक्षकों की दयनीयता पर प्रकाश डालते हुए उनकी स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता बतलायी। तत्पश्चात आचार्य कुल प्रयोजन का परिचय और उसकी संक्षिप्त व्याख्या एवं विवेचन प्रस्तुत करते हुए इस सम्मेलन की सफलता की कामना की।

इस गोष्ठी की दूसरी बैठक में प्रसिद्ध सर्वोदयी चिन्तक श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने गोष्ठी का विधिवत उद्घाटन किया।*

तृतीय बैठक

सम्मेलन की तृतीय बैठक १६ जनवरी, '७१ को प्रातःकाल साढ़े नौ बजे प्रारम्भ हुई। इस बैठक की अध्यक्षता महारानी बालकुवरी बलरामपुर (गोंडा)

* श्री धीरेन्द्र मजूमदार का उद्घाटन भाषण पृष्ठ ३२२ पर दिया गया है।

के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० भोलानाथ ने की। इस बैठक मे सबसे पहले केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के सयोजक श्री वशीधर श्रीवास्तव, जो अपनी अकस्मात अस्वस्थता के कारण उपस्थित नही हो सके थे, का वह पत्र पढा गया, जिसमे उन्होने गोष्ठी के विचारार्थ निम्नाकित मुद्दे भेजे थे

१ सगठन और प्रवृत्ति

(क) आचार्यकुल सगठन के विषय मे एक बात बिलकुल साफ है कि आचार्यकुल स्वायत्त सस्था है और सर्व सेवा सघ अथवा किसी भी दूसरी सस्था के साथ वह चाहे जैसा सम्बन्ध रखे। सगठन न जटिल हो न जड, और उसमे भाईचारा और कौटुम्बिकता अधिक से अधिक रहे। परन्तु आचार्यकुल की प्रवृत्ति सर्व के उदय के लिए प्रयास हो। इसमे किसी प्रकार का मतभेद नही होना चाहिए। सर्व के उदय के लिए यथाशक्ति प्रयास करना, लोकशक्ति का निर्माण करना और लोकनीति का निर्देशन करना आचार्यकुल की प्रमुख प्रवृत्ति है और आचार्यकुल आदोलन का अभिन्न अग है। चाहे सगठन जैसा भी रखिए परन्तु सर्व के उदय की प्रवृत्ति को छोडकर आचार्यकुल केवल एक पवित्र बिरादरी (पायस ब्रदरहुड) रह जायगा। अत सगोष्ठी मे यह तय किया जाय कि सर्व के उदय के लिए आचार्यकुल किन किन प्रवृत्तियो को चलायेगा।

(ख) आचार्यकुल की सदस्यता की वृद्धि के लिए सगठित प्रयास होना चाहिए। कैसे यह काम प्रभावपूर्ण ढग से किया जायगा और इसके लिए क्या कदम उठाये जायँ यह सगोष्ठी को सोचना चाहिए।

२ आचार्यकुल की शिक्षा नीति

आचार्यकुल की शिक्षा-नीति क्या हो इसके लिए एक घोषणा पत्र तैयार करने के लिए उत्तर प्रदेश आचार्यकुल सम्मेलन ने एक समिति नियुक्त की है। नयी तालीम के सम्मेलन अक म आचार्य राममूर्तिजी और रोहितजी के जो लेख दिये गये हैं सगोष्ठी उनका अध्ययन करके इस सम्बन्ध म अपने सुझाव दे, जिससे घोषणा पत्र बनाने में सहायता मिले। सगोष्ठी इस सम्बन्ध मे नीचे लिखे तीन मुद्दो पर विचार करे

(क) शिक्षा को शासन मुक्त और मैनेजर मुक्त कर उसे शिक्षक अभिभावक और छात्र का सम्मिलित उत्तरदायित्व बनाने के लिए क्या-क्या कदम उठाये जायें?

(ख) शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की गत्यात्मक शक्ति (डायनेमिक्स) कैसे बनेगी ?

(ग) शिक्षा से प्रयोपक उत्पादक व्यक्तित्व का विकास हो इसके लिए प्राज की शिक्षा म क्या परिवर्तन करने होंगे ?

३ आचार्यकुल का दूसरे शिक्षक सगठनो से सम्बन्ध

अपने प्रदेश मे प्राथमिक शिक्षक सघ है माध्यमिक शिक्षक सघ हैं। इन सघो से आचार्यकुल का क्या सम्ब ध रहे ? इस बात पर विस्तृत चर्चा की जाय। कोई समाधान प्रस्तुत किया जाय।

४--लोकसभा के मध्यावधि चुनाव म आचार्यकुल का क्या रोल रहेगा ? इस सम्बन्ध मे सगोष्ठी अपना अभिमत व्यक्त करे।

इन्हीं मुद्दों को ध्यान मे रखकर इस गोष्ठी मे विचार विनिमय किया गया, जिसका निष्कर्ष आगे दिया है। इस बैठक मे निम्नलिखित सज्जन उपस्थित थे :

१ डा० जयनारायण लाल—सम्मेलन के सयोजक

२ डा० भोलानाथ 'भ्रमर'—इस बैठक के अध्यक्ष

३ श्री ईश्वर शरण मास्याना—अध्यक्ष, प्रशिक्षण विभाग किसान महाविद्यालय, बहराइच

४ ,, नन्द किशोर सिंह—प्राचार्य भगवती आदर्श विद्यालय, भगवतीगज, बलरामपुर

५. ,, राघवदास पाण्डेय--प्राचार्य बुद्ध हायर सेकेण्डी स्कूल, श्रावस्ती

६ ,, हरिशकरलाल विद्यार्थी--आचार्य शिक्षा विभाग किसान महाविद्यालय, बहराइच

विचार विमर्श मे लगभग १४ अन्य अध्यापकों ने भाग लिया। विचार-विमर्श मे श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने भी अनेक उपयोगी सुझाव दिये।

इन आयोजनो का सयोजन बडी लगन के साथ डा० जयनारायण लाल ने और इन आयोजनो का सम्पूर्ण व्यय ठाकुर नवरग सिंह ने बडी उदारता के साथ सभाला।

श्री धीरेन्द्र मजूमदार के आशीर्वाद के साथ इस सम्मेलन की यह तीसरी और अन्तिम बैठक समाप्त हुई।

सगठन के सम्बन्ध मे गोष्ठी मे निम्नांकित निर्णय लिये गये —

१—सरकारी तथा अर्द्धसरकारी प्राथमिक विद्यालय, प्राइवेट मान्टेसरी स्कूल, तथा जूनियर हाईस्कूल, हायर सेकेण्ड्री स्कूल तथा डिग्री कालेज स्तर पर प्रत्येक सस्था को एक स्वतत्र इकाई के रूप मे मान्यता दी जाय, यदि उसमे कम-से-कम ५ अध्यापक या अध्यापिका, आचार्यकुल के सदस्य बन जायें।

२—प्रत्येक यूनिट के लिए इकाई का गठन करने के लिए जिला संयोजक या अध्यक्ष एक संयोजक की नियुक्ति करेगा।

३—प्रत्येक इकाई के अध्यक्ष तथा मंत्री मिलकर जिले की साधारण सभा का निर्माण करेंगे जो अपने अध्यक्ष मंत्री तथा अन्य अधिकारियों का नियमानुसार चुनाव करेगी।

४—प्रत्येक जिले की इकाई के अध्यक्ष तथा मंत्री प्रान्तीय संगठन की साधारण सभा का निर्माण करें जो प्रान्तीय स्तर के कार्यकारिणी का गठन करे।

५—जब तक यूनिट का नियमित रूप से संगठन नहीं हो पाता आचार्यकुल की इकाइयों के संगठन में जो कुछ भी व्यय होगा उसे प्रान्तीय आचार्यकुल वहन करेगा।

६—प्रत्येक संयोजक को यह अधिकार होगा कि जब तक नियमित कार्यकारिणी का गठन नहीं हो जाता तब तक वह एक तदर्थ कार्य समिति बना सकता है।

७—उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इकाइयाँ, नियमों उपनियमों में आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन कर सकती है।

आचार्यकुल का काम

१—आचार्यकुल के सदस्यों को स्थानीय विद्यालयों में अशान्ति उत्पन्न होने की अवस्था में अशान्ति के कारणों को समझने और सद्भावपूर्ण ढंग से उनका समाधान निकालने के लिए संगठित रूप से यथासम्भव प्रयास करना चाहिए।

२—आचार्यकुल अपने उद्देश्यों के अनुकूल साहित्य के संग्रह की व्यवस्था और प्रति सप्ताह उसके सामूहिक अध्ययन का आयोजन करें। इस साहित्य में 'तरुण मन' 'भूदान यज्ञ' 'गाँव की आवाज' सर्वोदय, नयी तालीम तथा विनोबा एवं गांधीजी के साहित्य आदि आते हैं। इसके लिए सर्व सेवा संघ और नव जीवन से प्रकाशन सूची मँगवायी जाय। समय-समय पर वरिष्ठ आचार्यों के व्याख्यान आदि की व्यवस्था की जाय।

३—आचार्यकुल के सदस्य महीने में एक बार किसी तात्कालिक समस्या पर या आचार्यकुल की विचार धारा पर लोकशिक्षण के लिए बाहर निकलें। विशेष पर्वों और त्योहारों और दूसरे अवसरों पर आचार्यकुल के सदस्य आचार्यकुल के उद्देश्यों से सम्बन्ध रखनेवाले आयोजनों की व्यवस्था करें जैसे—काव्य गोष्ठी नाटक, निबन्ध, कीर्तन आदि।

४—सदस्यता-वृद्धि :

इसके लिए एक छपा हुआ पर्चा उनके प्रधानाचार्यों के पास पहले भेज दिया जाय, फिर उनके यहाँ पहुँचकर उन्हें सदस्य बनाया जाय।

छात्रों और अभिभावकों के संगठन :

१—छात्रों का एक सगठन बनाने का आयोजन किया जाय जिसका स्वरूप हमारे आदर्शों के अनुरूप हो।

२—इसी प्रकार का एक सगठन अभिभावकों का भी हो।

३—एक सगठन ऐसा हो जिसमें छात्र प्रतिनिधि, शिक्षक प्रतिनिधि और अभिभावक प्रतिनिधि भी हों जिसकी व्यवस्थित रूप से बैठकें हों और समस्याओं पर विचार-विनिमय हो।

४—(क) इन सभी शिक्षक सगठनों से आचार्यकुल का सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध हो।

(ख) उन सगठनों के सदस्य आचार्यकुल के और आचार्यकुल के सदस्य उनके भी सदस्य बन सकते हैं।

(ग) इन सगठनों के विचार विमर्शों और निष्कर्षों में आचार्यकुल के दृष्टिकोण को समाविष्ट करने का भी प्रयत्न करें।

मतदाता-शिक्षण

आचार्यकुल के सदस्यों से यह अपेक्षा है कि वे वोट देनेवालों से यथासभव यह आग्रह करें कि वे (१) धन की लालच, पद की लिप्सा या किसी भी प्रकार के दबाव में न आकर अपने विवेक के अनुसार वोट दें और (२) वोट देने के लिए चुनाव करते समय व्यक्ति के गुणों और दक्षताओं का ध्यान रखें—किसी और का नहीं।●

आचार्यकुल का आचार

धीरेन्द्र मजूमदार

आप जो सब आये हुए हैं, वे भिन्न-भिन्न स्थानों के शिक्षक हैं, आचार्य हैं। यह एक सौभाग्य की बात है कि हम जिस स्थान पर बैठे हैं, उसी जगह भगवान बुद्ध ने २४ साल तक लोक-शिक्षण का काम किया था। वे एक महान आचार्य थे। उनकी छत्रछाया में हम बैठे हुए हैं, लेकिन उस समय से आज का जमाना बहुत भिन्न है। यह एक अद्भुत जमाना है। पुराने जमाने में सैकड़ों वर्ष तक समाज की परिस्थिति एक-सी रहती थी, उस समय आचार्यों का काम सरल था। उनके पास अपने नीचे की पीढ़ी को मार्गदर्शन के लिए पैत्रिक और अनुभव की पूँजी थी जो अपने अनुभव से अधिक परिपुष्ट होती थी और उस पूँजी के आधार पर वे आगे की पीढ़ी का मार्गदर्शन करते थे। लेकिन आज वह स्थिति नहीं है। २ हजार वर्ष में विज्ञान और तकनीकी का जितना विकास हुआ था उससे कई गुना अधिक विकास दो सौ वर्ष में अधिक हुआ है, और इन दो सौ वर्ष में जितनी तरक्की हुई थी पिछले बीस साल में उससे कई गुना अधिक हुई है। विज्ञान और तकनीकी विकास ने समाज के आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तन के साथ-साथ मानव की जीवन-पद्धति, दृष्टिकोण तथा भावनाओं में आमूल परिवर्तन हो गया है। आज मनुष्य-समाज की परिस्थिति के परिवर्तन की गति इतनी तेज हो गयी है कि इस जमाने में वर्तमान की अवधि शून्य हो गयी है। मानव के सामने भविष्य ही भविष्य रह गया है।

शिक्षक द्रष्टा बनें

जमाने की ऐसी परिस्थिति के कारण शिक्षकों की, आचार्यों की जिम्मेदारियाँ अत्यन्त गम्भीर हो गयी हैं। आपके हाथ में जो छोटा बच्चा पहुँचता है उसे आप १६-१७ वर्ष तक अपने हाथ में रखकर उसके शिक्षण का संयोजन करते हैं। अगर यह संयोजन वर्तमान परिस्थिति के आधार पर किया गया तो १६-१७ वर्ष बाद जब वह बच्चा जीवन में प्रवेश करेगा तब परिस्थिति में इतना अधिक परिवर्तन हो जायेगा कि वह किंकर्तव्यविमूढ़ होगा। तब वह जीवन-संघर्ष में पूर्ण रूप से पराजित हो जायेगा। अतएव आज के शिक्षकों की दृष्टि अत्यन्त प्रखर बनाने की आवश्यकता है। क्योंकि उन्हें १६-१७ वर्ष बाद की परिस्थिति का अन्दाज कर उस भूमिका में शिक्षाक्रम का संयोजन करना होगा। इसके लिए उन्हें एक विशिष्ट स्थान पर पहुँचना होगा। उन्हें वर्तमान

राजनीतिक तथा सामाजिक हलचलों से बाहर रहना होगा। वे तटस्थ रहेंगे तब भी काम नहीं चलेगा। तटस्थ व्यक्ति तसवीर के एक ही तरफ देख सकता है, उन्हें वतमान से उदासीन' रहना होगा। मैंने उदासीन शब्द चालू अर्थ मे इस्तेमाल नहीं किया है—उत आसीन से उदासीन शब्द बनता है जिसका अर्थ है ऊपर अवस्थित। ऊपर रहकर ही वे वर्तमान के पूरे तसवीर पर विहगम दृष्टि रख सकेंगे तथा भविष्य के दूर तक दर्शन होता रहेगा। अर्थात इस जमाने के हर शिक्षक को द्रष्टा बनना पड़ेगा।

नेतृत्व-सकट

दूसरी परिस्थिति लोक चेतना की है। प्राचीन काल मे जब अन्धकार युग था और चेतन समाज का दायरा बहुत छोटा था, तब कुछ इनेगिने प्रतिभाशाली व्यक्ति समाज को गति देते थे। एक राजा, एक गुरु तथा एक पुरोहित पूरे समाज का फक्शन व्यक्तिगत रूप से कर लेता था।

मानव समाज के चैतन्य के विकास के साथ साथ चेतन समाज की परिधि काफी बढ गयी तब यह व्यक्ति उतने बडे दायरे के समाज को पहुँच नहीं सके थे। तब इन्सान ने व्यक्ति से बढ़कर संस्थाओं का निर्माण किया और संस्थाओं द्वारा पूरे समाज के काम चलाने की पद्धति निकाली यानी समाज व्यक्तिवाद से समाजवाद तक पहुँच गया।

लेकिन वर्तमान युग में तेजी से ब ती हुई प्रगति ने सवजन म चेतना का सचार कर दिया है। सार्वजनिक चेतना की परिधि ने सम्पूर्ण मानव समाज को घेर लिया है, अतएव आज संस्थावादी फक्शनिंग भी पूरे समाज को समाधान देने के लिए असमर्थ है। अतएव अब समाज का काम तभी चल सकता है जब समाज की फक्शनिंग सस्थावादी पद्धति से निकलकर समाजवादी पद्धति मे पहुँचेगी, यानी आज समाज अपने आप कैसे फक्शन करे इसका उपाय खोजना होगा।

यह तभी हो सकेगा जब कम्युनिटी के अन्दर नेतृत्व अन्तर्निहित हो। नेतृत्व समुदाय के आन्तरिक तत्त्व की स्थिति तो दूर की बात है, लोकतन्त्र के स्वधर्मच्युत बन जाने के कारण मानव समाज मे किसी भी स्तर पर नेतृत्व का अभाव हो गया है।

मैंने वर्तमान लोकतन्त्र को स्वधर्मच्युत लोकतन्त्र कहा है इसे भी समझ लेना चाहिए। पुराने जगत् मे मनुष्य एक ऐसा प्राणी था जो निरन्तर विकास की आकांक्षा रखता था। प्राथमिक स्तर पर जब वह जगली जिन्दगी बिताता था और एक-दूसरे को खा जाता था तो पुराण के कथा के अनुसार वह प्रजा-

पति के पास इस समस्या के समाधान के लिए पहुँचा था तो उन्होंने मनुष्य पर कृपा कर दण्डधारी राजा भेज दिया, ताकि उसके संचालन से समाज में शान्ति और शृंखला का अधिष्ठान हो सके। अर्थात् मनुष्य सभ्यता और संस्कृति के विकास के सिलसिले में इतना ही आगे बढ़ा कि वह जंगल के जानवर की स्थिति से सरकस के जानवर की स्थिति तक पहुँच गया। स्पष्ट है कि इंसान की आकांक्षा वहीं तक रुक नहीं सकती है। वह इस स्तर से भी आगे बढ़कर इंसानियत के स्तर पर पहुँचना चाहता है अर्थात् वह अब रिंगमास्टर के चाबुक से मुक्त होना चाहता है।

इसी चाह के कारण आज से दो सौ वर्ष पहले मनुष्य लोकतंत्र के विचार पर पहुँचा था। लोकतंत्र का अर्थ है कोअरसन के स्थान पर कनसेन्ट की स्थापना यानी दबाव के स्थान पर मनाव की स्थापना। लोकतंत्र कहता है कि मामला तय करने के लिए सर फोड़ना नहीं है, सर गिनना है अर्थात् लोकतंत्र दंड शक्ति के स्थान पर सम्मति शक्ति की स्थापना का विचार है। लेकिन लोकतंत्र के विचारक तथा नेता यह बात भूल गये कि हर चीज को चलने के लिए दो तत्वों की आवश्यकता होती है शक्ति और यंत्र। कोयले की शक्ति से चलने के लिए यंत्र की जो डिजाइन होगी, उसी डिजाइन के यंत्र में डीजल भरकर नहीं चलाया जा सकता है, लेकिन लोकतंत्र के नेताओं ने शक्ति को बदलना तो चाहा लेकिन राजतंत्र द्वारा संगठित तथा दंड शक्ति द्वारा संचालित तंत्र को बदलने की बात नहीं सोची। उन्होंने राजतंत्र के तंत्र को हूबहू उसी रूप में स्वीकार कर लिया, जिस रूप में दंड संचालन के लिए उसका संगठन हुआ था। नतीजा यह हुआ कि समाज के नेतृत्व का विघटन हो गया। जनता ने अपने नेताओं को चुनकर, अपना प्रतिनिधि बनाकर भेज दिया, अर्थात् समाज में नेतृत्व का विघटन हो गया।

प्रतिनिधि का स्वधर्म क्या है? उसका स्वधर्म जनमत के पीछे चलने का है, जबकि नेता का स्वधर्म जनमत से आगे चलने का होता है। क्योंकि उसे जनमत को जमाने के प्रवाह की गति के साथ कदम मिलाने के लिए, उसे मार्गदर्शन करना होता है। आप जानते हैं कि कालपुरुष निरन्तर प्रवाहमान है लेकिन जनमत रक्षणशील होता है वह रूढ़िग्रस्त होता है। अतएव नेतृत्व के अभाव में जब लोकमत को कोई मार्गदर्शन नहीं मिल रहा है और उस कारण वह व्यक्ति के साथ कदम नहीं मिला पा रहा है, समाज गतिहीन होकर सड़ रहा है।

यही कारण है कि विनोबा इतनी तीव्रता के साथ आचार्यकुल के गठन की

बात कर रहे हैं, क्योंकि नेतृत्व के उस शून्यता को तुरन्त समाप्त न किया जायेगा तो देश डूब जायेग। इस युग मे प्रति तीव्र काल-प्रवाह के बाढ़ के नीचे मानव-समाज डूब जायेगा और यह कमी आचार्यकुल ही पूरा कर सकता है।

आचार्यकुल की आवश्यकता

समाज-सचालन की शक्ति बदलने की आवश्यकता इन्सान की प्रगति के कल्पना के कारण नही, बल्कि जमाने की परिस्थिति के कारण अनिवार्य हो गयी है। इतिहास के प्रथम युग से ही मनुष्य ने भय-शक्ति को एकमात्र सामाजिक शक्ति के रूप मे माना है। भय शक्ति का साधन शस्त्र है। मनुष्य ने अपनी सुरक्षा के लिए सैनिक के हाथ का शस्त्र अनिवार्य माना है, समाज की शान्ति और शृ खला के लिए पुलिस के हाथ का शस्त्र, समाज के परिवर्तन के लिए क्रान्तिकारी के हाथ का शस्त्र. धर्म-संस्थापना के लिए अवतार के हाथ के शस्त्र को ही मान्यता दी है। इतना ही नही बल्कि यह मान्यता है कि अहिंसा की साधना के लिए भी शस्त्र चाहिए क्योकि यह माना गया है कि अहिंसा के लिए शान्तिमय समाज चाहिए और शान्ति और शृ खला के लिए शस्त्र चाहिए। लेकिन आज के युग मे शस्त्र-शक्ति 'आउट आफ डेट' हो गया है, बासी हो *गयी है। विज्ञान ने हाइड्रोजन बम के आविष्कार से सैनिक के हाथ के* शस्त्र को रक्षण शक्ति के स्थान पर विनाशक शक्ति का साधन बना दिया है। पुराने जमाने मे महावीर, बुद्ध, जीसस क्राइस्ट आदि अहिंसा के अवतार भी राजाओ के शस्त्रागार का निषेध नहीं कर सके थे। भगवान श्रीकृष्ण ने शस्त्र न इस्तेमाल करने का सकल्प *किया था*, न कि उसको फेंक देने का। सम्राट अशोक के ज्ञान होने पर उन्होने शस्त्र न इस्तेमाल करने की सोची थी, न कि शस्त्रागार खाली करने की। लेकिन आज की परिस्थिति मे ससार के साधारण राजनीतिक नेता भी नि शस्त्रीकरण की ही आवाज उठा रहे हैं। इस विज्ञान के युग मे सैनिक के हाथ का शस्त्र सुरक्षा का साधन नहीं है।

राजदण्ड का भी आज क्या हाल है ? माना गया था दण्ड शान्ति और शृ खला रक्षा का साधन है, इसलिए उसे यती के हाथ मे रखने का विधान बनाया गया था, लेकिन कालक्रम मे वह दड निरन्तर नीचे गिरता गया। यती के हाथ से गुरु के हाथ में, फिर *राजा* और नेताओ के हाथ मे पहुँचा और अब तो वह तेजी से गुडों के हाथ मे पहुँच रहा है। जिस अवांछनीय के हाथ मे दड शक्ति पहुँची हुई है,क्या आप उससे समाज की शान्ति और शृ खला की रक्षा की आशा करते हैं। उससे तो उद्दण्डता की ही अपेक्षा की जाती है। इसलिए भी *आज के युग मे सम्मति-शक्ति का विकास एकमात्र विकल्प रह गया है।*

दड-शक्ति का साधन शस्त्र है और साधक सैनिक, सम्मति शक्ति का साधन शिक्षण है और साधक शिक्षक।

अतएव आप समझ सकते हैं कि इस युग मे आचार्यों और शिक्षकों की क्या जिम्मेदारी है। दड शक्ति के लिए तत्र जहाँ सचालन पद्धति का होता है वहाँ सम्मति शक्ति का यत्र सहकारी पद्धति का ही हो सकता है और पूर्ण विकसित सहकारी समाज यानी स्वावलम्बी समाज का विकास तभी हो सकता है जब लोक शिक्षण की प्रक्रिया सर्वव्यापी और सार्वजनिक होगी। इस परिस्थिति को पैदा करने की जिम्मेदारी आप पर है।

आज देश और दुनिया के तरुण पीढियो मे और उत्कट उद्दडता और अनुशासनहीनता का लक्षण दिखाई दे रहा है। वह समस्त समाज को तोडफोड कर नष्ट करना चाहता है। उसका क्या कारण है? वह इसलिए हो रहा है कि आज लोकतन्त्र मे भी अधिकारवाद का निरन्तर विकास हो रहा है। दुनिया मे आज हर प्रकार की राज्य व्यवस्था डिक्टेटरशिप मे परिणित हो रही है। फासिस्ट डिक्टेटरशिप, कम्यूनिस्ट डिक्टेटरशिप, मिलीटरी डिक्टेटरशिप, मानर्किक डिक्टेटरशिप आदि तो हैं ही, लेकिन अब तो ससार में एक नये डिक्टेटरशिप का उदय हो रहा है और वह है डेमोक्रेटिक डिक्टेटरशिप। ससार मे सभी लोकतांत्रिक राज्य अपने को कल्याणकारी राज्य मे परिणित करते जा रहे हैं। कल्याणकारी राज्यवाद का अर्थ है एक आदमी भूखा रहेगा तो राज्य जिम्मेदार और तालाब म पानी भरने के लिए जाते समय किसीकी बिटिया के पैर मे काँटा चुभ जाय तो राज्य जिम्मेदार, क्योकि उसने सडक क्यों नहीं बनायी और बनायी तो साफ क्यों नही रखी! इस तरह जनता के समस्त समस्याओ के समाधान के लिए राज्य जिम्मेदार है ऐसा माना गया है। हर चीज किसी तर्क के अधीन होती है अत अगर जनता के समस्त समस्या का समाधान राज्य की जिम्मेदारी है तो इसका अनिवार्य तर्क यही है कि जनता के समस्त साधन पर राज्य को अधिकार दिया जाय। फिर सर्वाधिकारी राज्यवाद' किस चिडिया का नाम है? इसमें से यह कारोलरी निकलता है कि–'ए मोरो एण्ड इफिसिएण्ट स्टेट एज इक्वल टू टोटलीटेरियनस स्टेट'।

पिछले ढाई सौ वर्षों स दूसरे तरफ साम्य, मैत्री और स्वतत्रता का पाठ पढ़ाकर जनता के मानस को पूर्ण समतावादी और स्वतंत्रतावादी बना दिया गया है। इस तरह आज समाज मे एक उत्कट विसगति पैदा हो गयी है। परिस्थिति मजबूत अधिकारवादी और मन स्थिति पूर्ण स्वतत्रतावादी। स्पष्ट है,

स्वतन्त्रतावाद अधिकार को कभी स्वीकार नहीं कर सकता है और अधिकारवाद स्वतन्त्रता को बर्दाश्त नहीं कर सकता है। इन्ही सब कारणों ने सारे विश्व मे अत्यन्त खतरनाक अशान्ति फैला रखी है।

आज आप चाहे जितना प्रयास कीजिए, जनमानस को पालक नही बना सकते हैं। अतएव समाज की परिस्थिति और संगठन मे से अधिकार का 'लिक्विडेशन' करना होगा और यह तभी होगा जब आप शिक्षक-समुदाय अधिकारवाद के विकल्प मे सम्मतिवाद का अधिष्ठान कर सकेंगे। लेकिन आपके सामने कठिनाई यह है कि आप और आपका शिक्षण दोनो अधिकार-ग्रस्त है, इसलिए आचार्यकुल का प्रथम प्रयास यह होना चाहिए कि जिस तरह न्याय विभाग स्वतन्त्र है उसी तरह शिक्षण भी स्वतन्त्र हो। आचार्यकुल की जिम्मेदारी है कि वे शिक्षा-जगत् मे इस आवाज को उठाये और इस आन्दोलन को आगे बढ़ाये। मैं जब इस बात को कहता हूँ तो मेरे शिक्षक-मित्र कहते हैं कि वे सरकारी तन्त्र मे इतने बँधे हुए हैं कि वे इसके लिए सघर्ष करने को असमर्थ हैं, लेकिन शिक्षक-मित्र, अगर सगठित होकर सामान्य वेतन वृद्धि के लिए देश-व्यापी हड़ताल कर सकते हैं तो क्या जुडिसियरी का स्टेटस प्राप्त करने की इतनी बडी उपलब्धि के लिए लम्बे अरसे की हड़ताल नही कर सकते ? मैं मानता हूँ कि आपमे शक्ति और उत्साह और सगठन का बल है। आवश्यकता केवल इस बात के एहसास और सकल्प का है। •

सहरसा में आचार्यकुल : पिछला कार्य-विवरण

गत अक्तूबर मे सेवाग्राम मे सर्व सेवा सघ के अधिवेशन के निर्णयानुसार जब सहरसा मे सघन पुष्टि-अभियान चलाने का निश्चय हुआ तो अभियान के सचालक श्री कृष्णराज भाई ने सुझाव दिया कि वहाँ आचार्यकुल और तरुण-शांति-सेना के मोर्चों पर भी काम आरम्भ किया जाय। केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के सयोजक श्री वशीधर श्रीवास्तव ने उनके इस सुझाव को स्वीकार किया और गत नवम्बर के मध्य में मुझे सहरसा के काम का भार सौंपा गया। वहाँ आते ही शिक्षकों और अन्य लोगो से सपर्क हुआ। सुपौल मे एक शिक्षक-गोष्ठी हुई और उसीमें सुपौल प्रखण्ड आचार्यकुल समिति का गठन हुआ। जिला शिक्षा अधिकारी श्री रमेशचन्द्रजी ने, जो अब बिहार माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के सचिव हो गये हैं और भागलपुर अनुमण्डल के शिक्षा-अधिकारी ने इस कार्य मे अच्छी रुचि ली और अपनी एक विभागीय बैठक मे यह तय किया कि शिक्षा विभाग को यथासभव यह काम उठा लेना चाहिए। यह तय हुआ कि सारे जिले मे शिक्षक गोष्ठियाँ बुलायी जायँ और उनमे आचार्यकुल और तरुण-शांति-सेना का विचार रखा जाय। तदनुसार मेरा ७ जनवरी से ३१ जनवरी तक का सारे जिले में घूमने का कार्यक्रम बना। सारे जिले मे ३ अनुमण्डल (सब-डिवीजन) और २३ प्रखण्ड हैं। हर प्रखण्ड मे प्रखण्डस्तरीय शिक्षा-गोष्ठियाँ की गयीं। इनमे प्राथमिक शाला से लेकर हाईस्कूल तक के शिक्षकों ने भाग लिया। गोष्ठी का आयोजन स्थानीय शिक्षा-प्रसार अधिकारियो ने किया। गोष्ठी सामान्यतः २॥ से लेकर ३ घटे चलती थी। उसमे शिक्षकों के सामने आचार्यकुल और ग्राम-स्वराज्य तथा तरुण-शातिसेना आदि के विचार रखे गये और मुसहरी से लेकर सहरसा तक का सन्दर्भ उन्हे बताया गया। फिर इस पर शिक्षकों की प्रतिक्रियाएँ और शकाएँ आदि पूछी जाती थीं। विचार विमर्श के बाद जो लोग इस विचार और आंदोलन को मान्य करते उनसे आचार्यकुल का सदस्य बनने का निवेदन किया जाता था और वे आचार्यकुल के सकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर करते और इन बने सदस्यों मे से ही एक प्रखण्ड कार्य-समिति का गठन भी कर दिया जाता था।

इस प्रकार से २३ प्रखण्डो मे से १३ प्रखण्डो मे तो पूर्ण कार्य समितियों का और ८ प्रखण्डो मे तदर्थ समितियो का गठन हो गया है। अन्य अनेक प्रखण्डों की भाँति दो प्रखण्डो मे भी गोष्ठी की कोई सूचना नहीं पहुँच पायी थी और न स्थानीय शिक्षकों से ही सपर्क संभव हो सका। इसलिए वहाँ कोई काम

नहीं हुआ। इस प्रकार सारे जिले मे आचार्यकुल के ६७५ सदस्य बने हैं, जिनमे १७२ कार्यकारी या तदर्थ-समितियो के सदस्य हैं। इन सबकी सूचियाँ प्रखण्डवार बनाकर प्रांतीय और केन्द्रीय समितियो के सूचनार्थ भेज दी गयी हैं।

गोष्ठियों मे आचार्यकुल के सदस्यो से गाँवो मे चल रहे ग्राम स्वराज्य के कार्य मे प्रत्यक्ष योगदान करने की भी बात कही गयी और इसका बहुत अच्छा 'रिस्पान्स' हुआ। लगभग ६० अध्यापको ने अलग-अलग प्रखण्डो म अपने अपने गाँवो मे जहाँ वे रहते हैं या जहाँ वे काम करते हैं, एक निश्चित अवधि म ग्रामसभा बनाने, बीघा-कट्ठा बँटवाने, ग्राम शांतिसेना का निर्माण करने और ग्राम-कोष का आरम्भ करवाने का तथा खुद अपनी भूमि, यदि वे किसान हैं तो, बँटवाने की घोषणाएँ की। शिक्षकों ने यद्यपि ये अपेक्षाएँ प्रकट कीं कि मैं हर जगह उनके गाँवमें आकर काम करूँ और देखूँ, किन्तु कार्यक्रम के सिलसिले में यह संभव नहीं हो सका। फिर भी अगले पडाव के मार्ग म पडनेवाले किसी गाँव मे रात्रि का पडाव डालकर यह कोशिश अवश्य की गयी कि रात को वहाँ सभाएँ की जायें और ग्राम-स्वराज्य की दिशा मे कुछ काम हो। अपने साथ में हम ग्रामदान समर्पण-पत्र आदि रखते थे और कुछ जगहो पर सभाएँ करके य फार्म भरवाये गये। एक गाँव (बडगाँव) म तो तीन किसानो से ३२ कट्ठा भूमि का वितरण भी ४ भूमिहीन परिवारो मे किया गया। ५-६ अध्यापकों ने ११-१५ दिन का अवकाश लेकर ग्राम-स्वराज्य के काम में देने की तैयारी बनायी। इस प्रकार के लोगो का पता, सूची आदि मैं अभियान मे प्रखण्ड स्तरीय कार्यकर्ता मित्रो और कार्यकर्ताओं को देता रहा, ताकि वे अपने कार्य के दौरान उन उन स्थानो पर उन अध्यापको से सपर्क करके उनका सहयोग ले सकें या उन्हें काम पर लगा सकें। यदि हम इस तरह के सूत्रों को तुरत पकड-कर उन्ह पिरोने की क्षमता, चेतना और व्यूह रचना कर सकें तो इसमे से असीम संभावनाएँ प्रकट होगी। इस संदर्भ में सबसे अधिक उत्साहवर्द्धक बात तो यह है कि गाँवों में ग्राम-स्वराज्य का दायित्व ग्रहण करनेवाले न केवल अध्यापक ही आगे आये, वरन् तीन-चार प्रखण्डो में प्रखण्ड शिक्षा पदाधिकारी भी आगे आये। ऐसे लोगों में सुपौल, कुमार खण्ड और मधेपुरा पूर्व तथा पश्चिम, इन चार प्रखण्ड शिक्षा पदाधिकारियों ने क्रमश दो, एक तथा दो दो पंचायतों का दायित्व लिया है। निर्मली और मरौना प्रखण्ड मे जहाँ सहरसा जिला ग्राम स्वराज्य-समिति और सहरसा जिला सर्वोदय मण्डल संयुक्त रूप से सघन अभियान मे लगे हैं, वहाँ आचार्यकुल के लगभग १५ सदस्य अध्यापको ने अपनी अपनी पंचायतों और गाँवों मे काम करने का दायित्व लिया है। स्थानीय

कार्यकर्ता श्री तपेश्वर भाई से उनका सम्पर्क करा दिया गया और उम्मीद है कि वहाँ पर इस काम की अच्छी फलश्रुति होगी।

निर्मली, मरौना आचार्यकुल ने एक नया काम भी हाथ में लिया है। ग्राम-चुनाव के दौरान वह मतदाता शिक्षण का काम भी करेगा। लोकनीति निर्देशन का काम तो आचार्यकुल का ही काम है। इसके लिए वे लोग सर्वदलीय चों के माध्यम से सभाएँ करायेंगे और स्वयं भी गाँवों में सभाएँ करके मतदाता को उसका तात्कालिक और दीर्घकालिक कर्त्तव्य बतायेंगे। सर्व सेवा संघ ने इस सम्बन्ध में जो सूचनाएँ प्रकाशित की हैं, उनके आधार पर आचार्यकुल के जिले के सभी सदस्यों को प्रखण्ड आचार्यकुलों के माध्यम से एक विस्तृत नोट भी भेजा गया है।

आचार्यकुल और तरुण शान्तिसेना का कार्य एक ही सिक्के के दो पहलू जैसा कार्य है, अत जहाँ छात्र उपलब्ध रहे वहाँ तरुण-शान्तिसेना का विचार भी छात्रों के सामने रखा गया है। सहरसा में हमारे पास आचार्यकुल और तरुण-शान्तिसेना के सदस्यता-पत्र नहीं थे, किन्तु मेरे निवेदन करने पर जिले के विकास पदाधिकारी और जिला परिषद के कार्यकारी अधिकारी श्री ह्री॰ रामजी ने कृपा करके आचार्यकुल के छ हजार तथा तरुण-शान्तिसेना के दस हजार फार्म अपने प्रेस से उधार छपवा दिये थे। उनकी यह मदद हमारे लिए मूल्यवान सिद्ध हुई है और इसी बल पर हम तत्काल कुछ संगठन करने में सफल हो सके। त्रिवेणीगंज, छातापुर, और निर्मली, इन तीन हाईस्कूलों में तरुण-शान्तिसेना की इकाइयों का गठन किया गया है। करीब १३५ छात्रों ने तरुण शान्तिसेना के सदस्यता पत्र भरे हैं और अपनी-अपनी टोलियों और नायकों का चुनाव किया है। उनसे सम्पर्क करके उन्हें आगे सक्रिय बनाने का प्रयत्न जारी रहना चाहिए।

आचार्यकुल की दृष्टि से भी अभी कार्य पूरा नहीं हुआ है। अब तक केवल डेढ़-दो घण्टे के भाषणों से विचार का परिचय मात्र हो सका है, किन्तु वैचारिक स्पष्टता आये बिना सक्रियता नहीं आयेगी। इसलिए अब अनुमण्डलीय स्तर पर कार्य-समितियों के सभी सदस्यों के और जिला स्तर पर प्रखण्ड आचार्यकुलों के अध्यक्षों, मंत्रियों और जिला-समिति के प्रतिनिधियों के तीन-तीन दिन के शिविर लगाना आवश्यक होगा। इस सम्बन्ध में निर्मली और सिंहेश्वर में कुछ बातचीत चल रही है और आशा है बाकी दो स्थान भी तय हो जायेंगे। किन्तु तत्काल ग्रामचुनाव और फिर जनगणना का काम बीच में आ जाने से

अभी इन शिविरों का किया जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि अध्यापक लोग ही आमतौर पर इन कामों में लिए जाते हैं।

आन्दोलन से पिछले १८-२० सालों के सम्पर्क के दौरान मुझे बार बार यह लगता रहा है कि जन-मानस में इस आन्दोलन और विचार के प्रति जितनी जिज्ञासा और आकर्षण है, उस हिसाब से हमारा कार्य और संगठन समर्थ सिद्ध नहीं हो सका है। आचार्यकुल और शान्तिसेना की यह बात हमने यदि १५ साल पहले की होती, तो शायद आज स्थिति कुछ और होती। अध्यापकों के मन पर इस बात का गहरा असर पड़ा है कि कम से कम सर्वोदय ने तो उनकी प्रतिष्ठा और मूल्य को स्वीकार किया है। यह बात अनेक सभाओं में लोगों ने मुझसे कही है। अनेक तरह के शिक्षक संघों ने भी वर्षों तक काम करते रहने के बावजूद अध्यापकों के मन में वह आशा पैदा नहीं की है। इसका कारण यह है कि सभी बुद्धिवादियों की तरह (व्यावसायिक बुद्धिवादियों की बात मैं नहीं करता) अध्यापक लोग भी पैसे की बजाय प्रतिष्ठा की ही आकांक्षा करते हैं। इन संघों ने दुर्भाग्य से मजदूर संघों का रूप ग्रहण कर अध्यापकों को कभी-कभी अधिक वेतन तो अवश्य दिलाया है, किन्तु वे अध्यापकों को समाज में प्रतिष्ठा नहीं दिला पाये और अब तो वे स्वयं उनके ही छात्रों से उत्पन्न खतरे के विरुद्ध अध्यापकों की सुरक्षा करने में भी असमर्थ हैं। आचार्यकुल ऐसा कोई संघ तो नहीं है, वह तो परिवार है और परिवार के हर सदस्य को वेतन से भी अधिक वांछनीय वस्तु प्रतिष्ठा और सुरक्षा, दोनों का वचन देता है। यह बात अध्यापकों को बतानी आवश्यक हो गयी है। आचार्यकुल यह भूमिका अदा कर सकेगा, यदि वह समाज-जीवन का भागीदार बनने को तत्पर हो। ग्राम स्वराज्य के सन्दर्भ में यह बात महत्व की है और सहरसा में इसकी कुछ संभावनाएं और दिशाएं इंगित हुई हैं।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा
केन्द्रीय आचार्यकुल समिति, सर्व सेवा संघ,
राजघाट, वाराणसी–१

महाराष्ट्र में आचार्यकुल की प्रगति

एरडोल, जिला जलगांव म हुए सम्मेलन के बाद पिछले वर्ष, अगस्त '६९ से सितम्बर '७० के अंत तक निम्नलिखित ३० स्थानो मे प्रचार-दौरा किया गया १—यवतमाल, २—सागली, ३ ठाणे, ४—पालघर, ५—दादर, बम्बई, ६—नादगांव और ७—हिवसल, जिला नासिक, ८—चालीसगांव, ९—परभणी, १०—वसमत, ११—सेलू, १२—हिंगोली, १३—पुणे, १४—रत्नागिरी, १५—कोल्हापुर, १६—वर्धा, १७—अकोला, १८—मगरूलपीर, १९—माधान, २०—नागपुर, २१—उमरेड, २२—अजनगांव, २३—बोर्डी, २४—सोमनाथ, २५—जलगांव २६—अचलपुर, २७—रोहा, २८—पिपलगांव (हरेश्वर), २९—अमलनेर और ३०—वणी, जिला यवतमाल।

उपर्युक्त स्थानो पर पहले व्यक्तिगत मुलाकातें और बाद मे सामूहिक बैठको म शका समाधान का कार्यक्रम रहता था। सभी जगह अनुकूल ही प्रतिक्रिया नही होती थी, लेकिन जहाँ अनुकूलता हो, ऐसे स्थान मे लगभग ११ अध्यापको से संकल्पपत्र प्राप्त होन पर उन सबकी सम्मति से किसी सयोजक को नियुक्त कर आचार्यकुल के प्राथमिक केन्द्र की स्थापना करते हैं। अभी तक ऐसे ११ केन्द्र स्थापित हुए। प्राचार्य—१२, प्राध्यापक—३३ माध्यमिक १५१, प्राथमिक २९, इस तरह आचार्यकुल के कुल २२५ सदस्य हैं।

केन्द्र स्थापना के समय स्वभावत बहुत प्रश्नोत्तर होते हैं और सामान्यतया कुछ कार्यक्रमों का निर्देश भी किया जाता है, फिर भी ऊपर से या बाहर से कोई भी कार्यक्रम लादने की नीति आचार्यकुल की नही है। लेकिन ऊपर से प्राप्त आदेश के अनुसार काम करते रहने की आदत हो जाने के कारण सर्वत्र स्वयस्फूर्त कार्यक्रमो का अभाव तीव्रतापूर्वक अनुभव हो रहा है। इसलिए आचार्यकुल के सदस्यों की सख्या २२५ और ११ प्राथमिक केन्द्रो की स्थापना होने पर भी इनमे से कुछ ही सदस्यों और केन्द्रों द्वारा प्रत्यक्ष कार्य की दृष्टि से काम हो सका। फिर भी महाराष्ट्र म आचार्यकुल सम्बन्धी जो कुछ कार्य हुआ, उसका सक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे हैं।

१ यवतमाल म २७ से २९ सितम्बर '६९ तक श्रीमती मगलाबाई श्रीखण्डे के विशेष प्रयत्नो से लगभग ५० ग्रामीण महिलाओ का शिविर आयोजित किया गया।

२ उसी तरह श्री हरिभाऊबारपुते और प्रा० शुक्ला के प्रयत्नो से दीपावली की छुट्टी के पूर्व १-२ नवम्बर ६९ को यवतमाल के रामकृष्ण मिशन आश्रम ने सफाई और श्रमदान के कार्यक्रम मे लगभग ७० छात्रो ने भाग लिया।

३ पूना-समाज प्रबोधन सस्था की ओर से आचार्य श्री भरणे ने पुना के फर्ग्युसन कालेज मे 'शिक्षा का लोकशाहीकरण' विषय पर २७ २८ दिसम्बर '६९ को एक परिसवाद का' आयोजन किया था। पूना और पूना के बाहर के लगभग ३० अध्यापको ने इस परिसंवाद म भाग लिया था। २७ जुलाई ६९ को पूना मे हुए प्रथम आचार्यकुल गोष्ठी मे आचार्य श्री दाभोलकर द्वारा प्राप्त आश्वासन के अनुसार यह परिसवाद आयोजित किया गया था और इसमे आचार्यकुल की पूर्वतैयारी करने की दृष्टि थी।

४ गोपुरी, वर्धा मे २४ जनवरी ७० को आचार्यकुल के सदस्यो की एक बैठक पूज्य विनोबाजी की उपस्थिति मे हुई।

५ बसमतनगर जिला परभणी मे आचार्य डागे और प्राध्यापक पीलखाने ने महाराष्ट्र विधान सभा के सभापति श्री बालसाहेब भारदे की अध्यक्षता म २२ फरवरी '७० को आचार्यकुल विषय पर एक परिसवाद का आयोजन किया।

६. बाद मे ५ से ७ मई '७० तक बसमतनगर म आचार्यकुल का शिविर हुआ, जिसमे लगभग ६० अध्यापकों ने भाग लिया। शिविर को सर्वश्री गोविंदराव देशपाडे, अच्युतभाई देशपाडे, नासिक के श्री कृ द० बेदरकर, श्री मामा क्षीरसा र आदि का मार्ग-दर्शन मिला।

७ परभणी के प्राथमिक से लेकर महाविद्यालय स्तर तक के अध्यापको के लिए एक चर्चा-सत्र का ६ सितम्बर ७० को आयोजन किया। आचार्यकुल विद्या-सम्बन्धी व्यासपीठ और नवशिक्षण का विचार प्रवाह इस विषय पर श्री मामा क्षीरसागर, श्री पीलखाने और श्री गगा प्रसाद अग्रवाल के भाषण और प्रश्नोत्तर हुए।

८. मई माह मे बसमतनगर और जून मे जलगांव म शातिसेना शिविर के आयोजन अच्छे हुए।

९. अचलपुर, माधान, अजनगांव, दर्यापुर के ७ शिक्षण सस्थाओ ने २५ से २८ जुलाई ७० तक चार दिन अपने अपने स्कूल के कक्षा-नायको और सम्बन्धित शिक्षकों का एक शिविर अचलपुर मे आयोजित किया। स्कूल की दैनदिन

व्यवस्था मे कक्षा नायक का स्थान और पूरे शिक्षा वातावरण मे उच्च जीवन मूल्यो की वृद्धि, इस विषय पर मुख्यतया विचारो का आदान-प्रदान हुआ। श्री मामाक्षीरसागर और श्री कृष्णराव तारे ने शिविर का मार्ग-दर्शन किया। इस शिविर के कारण ही अमरावती जिले के आचार्य-कुल के प्राथमिक केन्द्र की स्थापना हुई।

१० ११ सितम्बर ७० को पूज्य विनोबाजी का अमृत-महोत्सव सर्वत्र सपन्न हुआ। लेकिन चालीसगाँव केन्द्र के सयोजक श्री नाना भागवत ने वह अभिनव पद्धति से मनाया। उसमे छात्र, शिक्षक अभिभावक, नागरिक, सघ का सहयोग मिला। गीताई पठन, सर्वधर्म समभाव प्रार्थना, मुहल्लो मे सफाई, विनोबा सेवा निधि (२५ पैसा) गरीबो को अन्नदान, मुहल्ले मे आम सभाएँ हुईं। सभा के अंत मे नागरिको द्वारा सकल्प की घोषणा होती थी कि १—हम अपने घर और गाँव साफ रखेंगे। २—हम एक और नेक रहेगे। ३—हमारे हाथ बरबादी के लिए नही निर्माण के लिए हैं।

आगामी योजनाएँ

१. आचार्यकुल की सदस्य सख्या कम से-कम एक हजार तक बढायी जाय।

२ पू० विनोबाजी के साथ विशिष्ट शिक्षणत ज्ञो की बैठक का आयोजन करना और उसके बाद महाराष्ट्र की प्रतिनिधि-स्वरूप आचार्यकुल परिषद पू० विनोबाजी की उपस्थिति म आयोजित करना।

३ महाराष्ट्र राज्य के स्तर पर आचार्यकुल मे से कुछ ज्येष्ठ व्यक्तियो का एक विचार शासन महल स्थापित करना।

४. उपर्युक्त ज्येष्ठ व्यक्तियो के मार्गदर्शन मे सामाजिक और शिक्षा-क्षेत्र की प्रमुख समस्याओ पर विभिन्न स्थानो मे चर्चा सत्रो का आयोजन कर उनके निष्कर्ष लोगो की जानकारी के लिए प्रसारित करना।

५ आचार्यकुल के मुखपत्र के तौर पर एक त्रैमासिक या मासिक पत्र प्रकाशित करना।

६ आचार्यकुल सम्बन्धी साहित्य-निर्माण करना और प्रकाशित करना। इस विभाग की जिम्मेदारी लेनेवाली स्वतन्त्र व्यक्ति उपलब्ध करना। अभी श्री चंद्राताई किर्लोस्कर और राजाभाऊ मगलवेढेकर ने 'आचार्यकुल' पुस्तक का दूसरा सस्करण और 'फोल्डर' प्रकाशित करने की जिम्मेदारी अच्छी तरह

निभायी है। लेकिन आचार्यकुल के काय के लिए ही उनकी सेवा उपलब्ध हो तो अच्छा होगा।

७ काम की गति बढाने की दृष्टि से प्रचार-कार्य के लिए कुछ सुयोग्य व्यक्तियों को खोजना आवश्यक है।

८. प्रत्यक्ष केंद्रो पर अध्यापकों और छात्रों के कम-से कम ५ दिन के श्रमदानवाले शिविरों का आयोजन करना।

—मामा क्षीरसागर
संयोजक, महाराष्ट्र राज्य आचार्यकुल

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष १९
अंक ७
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

फरवरी ७१

निवेदन

- नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित,
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : फरवरी, '७१
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

आवरण मुद्रक : वन्दकराल प्रेस, मानमंदिर वाराणसी

वर्ष : १९
अंक : ८

- समन्वय विद्यापीठ-बाघा
- आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षा
- नयी तालीम की दार्शनिक अवधारणा

मार्च, १९७१

वर्ष : १९
श्रंक : ८

स्वावलम्बन के लिए शिक्षा

इस अक म दो लेख दिये गये हैं—एक है तजानिया के राष्ट्रपति ज्यूलियस के० न्येरेरे की पुस्तक से, जिसका नाम है—'एजूकेशन फार सेल्फ रिलाएन्स, (स्वावलम्बन के लिए शिक्षा) श्रौर दूसरा है 'समन्वय विद्यापीठ', जिसके लेखक हैं समन्वय श्राश्रम, बोधगया (बिहार) के सचालक श्री द्वारिको सुन्दरानी। दोनो ने अँग्रेजो की चलायी हुई श्रौपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली से मुक्ति का एक ही मार्ग खोजा है—स्वावलम्बन के लिए शिक्षा का मार्ग। अँग्रेजो द्वारा चलायी हुई शिक्षा का, चाहे वह तजानिया मे हो, चाहे भारत मे, लक्ष्य था श्रौपनिवेशिक समाज के मूल्यो का विकास करना, पढा-लिखा कर दास्य भाव पनपाना। इन ब्रिटिश उपनिवेशो मे श्रग्रेजो ने शिक्षा इसलिए नही दी थी कि पढ-लिखकर युवक श्रपने देश की सेवा के लिए तैयार हो, बल्कि इसलिए दी थी कि छोटे बडे क्लर्क तैयार होकर उपनिवेशो का शासन करने मे अग्रेज प्रभुवों की सहायता करें।

जैसा न्येरेरे ने लिखा है यह शिक्षा एक श्रौपनिवेशिक श्रौर पूँजीवादी समाज की मान्यताश्रो पर श्राधारित होने के कारण विद्यार्थियो मे सामुदायिक प्रवृत्तियो को विकसित करने के बजाय व्यक्तिवादी प्रवृत्तियो को विकसित करती थी। परिणाम यह हुश्रा कि इस श्रौपनिवेशिक शिक्षा-पद्धति ने शिक्षित मनुष्यो मे श्रसमानता की वृत्ति को पनपाया श्रौर पढे-लिखो द्वारा बेपढे-लिखे कमजोरो की शोषण-प्रवृत्ति को उभारा। शिक्षित व्यक्ति ने समष्टि

के साथ एक होकर आत्मत्याग मे सतोष का अनुभव करना और समुदाय के लिए प्रसन्नतापूर्वक अपने स्वार्थों का त्याग कर अपने जीवन दृष्टि को व्यापक बनाकर मानव जीवन की समष्टि को आगे बढाने मे योगदान करना नही सीखा। दूसरे शब्दो मे उसके सामाजिक व्यक्तित्व का विकास नही हुआ। सामाजिक व्यक्तित्व के विकास के बिना व्यक्ति द्वारा समाज के शोषण का खतरा बना रहेगा। इसीलिए अगर हम ऐसा समाज बनाना चाहते हैं, जो सबकी समानता और मानव मात्र के लिए सम्मान की भावना पर आधारित हो और जिस समाज मे सब अपने परिश्रम से उत्पन्न साधनो में सहभागी हो और कोई किसी का शोषण न करे, तो हमें इस औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति को, जिसे हम स्वराज्य के २३ वर्ष बाद तक भी चलाये जा रहे हैं, छोडना चाहिए, और एक ऐसी शिक्षा-पद्धति अपनानी चाहिए जिससे लोकतात्रिक समाजवादी मूल्यो का सृजन हो। जाहिर है कि यह शिक्षा-पद्धति ऐसी होगी जो 'सर्व' के कल्याण के लिए साथ काम करने की भावना का पोषण करेगी जिससे छात्र के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास हो सके। यह शिक्षा पद्धति समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व की भावना जागृत करेगी, जिससे अतीत के सामन्तवादी समाज के मूल्यो को स्वीकार करने की क्षमता उत्पन्न हो। व्यक्ति की उन्नति के स्थान पर यह सहयोगी प्रयास पर जोर देगी। न्येरेरे की शिक्षा की सकल्पना और समन्वय विद्यापीठ की योजना मे छात्र के इसी सामाजिक व्यक्तित्व के विकास पर जोर दिया गया है। दोनो ने स्कूल की कल्पना एक लघु समाज के रूप मे की है—एक मिनिएचर सोसाइटी के रूप मे—जिसमे वही प्रवृत्तियाँ चलेंगी जो स्कूल के बाहर गाँव या पडोस मे चलती हैं। समाजवादी समाज के निर्माण के लिए जो स्कूल चलेंगे उन्हे स्वय मे लघु समाज ही होना चाहिए। ऐसा होगा तभी शिक्षा समाजवादी समाज का निर्माण करने मे सहायक हो सकेगी।

न्येरेर की शिक्षा की सकल्पना और समन्वय विद्यापीठ के आयोजन मे *एक और समानता है। तजानिया और भारत दोनो गाँवो मे* बसते हैं। अत जीवन मे सुधार भी गाँवो मे ही होना चाहिए जिससे गाँवो मे ही स्वस्थ और प्रसन्न जीवन व्यतीत किया जा सके। औपनिवेशिक शिक्षा ने गाँवो की बिलकुल अवहेलना की थी। राष्ट्रीय शिक्षा

पद्धति तभी पर्याप्त और अनुकूल समझी जायगी जब वह ग्राममूलक हो। इसीलिए गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा को (जो ग्राममूलक है) राष्ट्रीय शिक्षा कहा था। न्येरेरे जिस शिक्षा पद्धति की वकालत करते हैं और समन्वय विद्यापीठ में जो शैक्षिक आयोजन किया गया है, दोनों ही ग्राममूलक हैं इसीलिए वरेण्य हैं।

भारत की तरह तंजानिया भी एक ऐसा समाज बनाना चाहता है जिसमे मानव के लिए सम्मान तथा समता हो, जिसमे प्रत्येक हाथ के लिए काम हो और किसी के द्वारा किसी का शोषण न हो। ऐसे समाज के निर्माण के लिए जो शिक्षा-नीति विकसित की जायगी वह सैद्धान्तिक ज्ञान के बजाय हाथ से काम करने पर, उत्पादक और समाजोपयोगी काम करने पर बल देगी। शिक्षा की यह संकल्पना शिक्षा पाकर ऊँचे वेतन पाने और नगरो मे आरामदेह जीवन बिताने की कल्पना की विरोधी है। इस शिक्षा को पाकर छात्र अच्छा किसान बनेगा, अच्छा दस्तकार बनेगा अपने गाँवो मे रहेगा और गाँवो को ही समृद्ध बनायेगा। अंग्रेजो की चलायी हुई औपनिवेशिक शिक्षा जिससे हम आज चिपके हुए हैं व्यक्तिमूलक होने के कारण वर्गभेद का सृजन करती है। यह शिक्षा समाजमूलक होने के कारण वर्गभेद मिटायेगी। इसीलिए हम न्येरेरे की शिक्षा-पद्धति और समन्वय विद्यापीठ के शैक्षिक प्रयोग दोनो का स्वागत करते हैं।

न्येरेरे की पुस्तिका पढकर और समन्वय विद्यापीठ के प्रयोग को देखकर यह यकीन हो गया है कि गांधीजी की बुनियादी शिक्षा असफल नहीं हुई। बुनियादी शिक्षा-पद्धति का निर्माण जिन तत्त्वो से हुआ है वे लोकतात्रिक समाजवादी शिक्षा के शाश्वत मूल्य हैं और जब भी अशोषण और समता के आधार पर शिक्षा की योजना प्रस्तुत करने का प्रयास किया जायगा, बुनियादी शिक्षा फलवती हो उठेगी।

—वंशीधर श्रीवास्तव

समन्वय विद्यापीठ—बाधा (गया)

द्वारिको सुन्दरानी

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमने देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं प्रारम्भ की। तभी से प्रारम्भिक विद्यालय के अध्यापक से भारत के राष्ट्रपति तक भारत की शिक्षा-प्रणाली को दूषित बताते आय हैं। परन्तु योजनाओं के इन दोषों को दूर कर एक दोष रहित शिक्षा प्रणाली को चालू करने का कोई प्रयास नहीं हुआ है। और, आज तो साधारण आदमी भी शिक्षा में सुधार की माँग कर रहा है ऐसी शिक्षा पद्धति की माँग कर रहा है, जिससे समाज की आवश्यकताएँ पूरी हों।

मैं गत बीस वर्षों से ग्रामीण विकास के लिये कार्य कर रहा हूँ। सर्वोदय आन्दोलन समाज के निम्नतम स्तर से विकास का काम शुरू करता है, क्योंकि उसका लक्ष्य समाज के अन्तिम व्यक्ति का उदय है। अतः एक सर्वोदय कार्यकर्ता के नाते मुझे भी समाज के सबसे पिछड़े हुए वर्ग में ही काम करने का मौका मिला है। विकास के सम्बन्ध में सर्वोदय का दृष्टिकोण जनता को शिक्षित कर विकास के काम में 'इन्वाल्व' कर देना है जिससे अपने विकास का काम वह स्वयं करे। विकास का काम जनता के अभिक्रम से होगा तभी ठोस और यथार्थ होगा। ऊपर से बताया हुआ विकास का कार्यक्रम जब सरकारी अधिकारियों द्वारा कार्यान्वित होता है तो उसका वही परिणाम होता है, जो हमारी चार पंचवर्षीय योजनाओं का हुआ है। जनता का अभिक्रम न जगे और स्वयं वह अपने विकास का काम न करे तो विकास प्रक्रिया की गति बहुत धीमी होती है। परन्तु जनता अपने अभिक्रम से भी काम करे तो पुराने रस्म-रिवाज और परम्पराएँ बाधा डालती हैं और प्रगति रुकती है। अतः मैंने अनुभव किया, अगर इन बाधाओं से मुक्ति पानी है, तो एकमात्र मार्ग बच्चों को प्रारम्भ से ही एक नया जीवन जीना सिखाना है, जिससे वे भविष्य के भारत के—सबके लिए समता और सबके लिए सम्मान की संकल्पना पर आधारित, लोकतंत्र और समाजवाद के प्रति प्रतिश्रुत भारत के—अच्छे नागरिक बन सकें और समाज में उत्तरदायित्व वहन कर सकें। इस प्रकार मेरे मन में एक ऐसे विद्यालय की कल्पना आयी जिसमें प्रारम्भ से ही बालकों को कुछ घंटों तक पढ़ना-लिखना सिखाने के स्थान पर समग्र जीवन जीना सिखाया जाय। इसी प्रक्रिया से समन्वय विद्यापीठ का जन्म हुआ है।

हमारे देश की प्रमुख समस्या गरीबी और अज्ञान हैं जो अन्योन्याश्रित हैं। अगर हम गरीबी को मिटाना चाहते हैं तो 'अज्ञान' हमारी बाधा बनता है। अगर हम अज्ञान को समाप्त करना चाहते हैं तो गरीबी सबसे बड़ी बाधा बन जाती है। अत: हमे एक ऐसी 'योजना' बनानी है जिससे दोनो समस्याओ का एक साथ समाधान हो सके। गांधीजी की बेसिक शिक्षा के मूल मे, जो किसी बुनियादी उत्पादक उद्योग के माध्यम से शिक्षण का काम करना चाहती थी, यही दृष्टिकोण (एप्रोच) था। चूँकि गाँवों मे बसे हुए इस देश का प्रमुख उत्पादक उद्योग खेती–बागवानी है, अत हमने निश्चय किया कि हम समन्वय विद्यापीठ मे वैज्ञानिक खेती, बागवानी और उससे सम्बन्धित गोपालन और 'फूड प्रोसेसिंग' आदि विषयो की शिक्षा देंगे। शिक्षा क्या देंगे बालको को इन धन्धों को वैज्ञानिक ढग से करना सिखायेंगे, जिससे एक स्वावलम्बी उत्पादक व्यक्तित्व का विकास हो सके। अगर समाजवाद को टिकना है तो देश की शिक्षा को एक ऐसे व्यक्तित्व का विकास करना होगा जो उत्पादक हो, अशोषक हो और आत्म-निर्भर हो। इस प्रकार के व्यक्तित्व का विकास उत्पादक उद्योगों के इर्द गिर्द जीवन जीने से ही हो सकता है। इसलिए हमने निश्चय किया कि समन्वय विद्यापीठ मे बच्चे शाला मे इसी प्रकार का जीवन जीयेंगे।

हमारे देश की ८२ प्रतिशत जनसख्या गाँवो मे रहती है—अत देश का *विकास तो इन गाँवों के विकास से ही होगा।* इन गाँवों के विकास मे सबसे बड़ी बाधा जनशक्ति की कमी है। सरकारी और गैरसरकारी सभी एजेन्सियों ने इस बात का अनुभव किया है। गाँवो मे विकास का काम करने के लिए आदमी कहाँ से आयेंगे? नगर का आदमी गाँवो में जाकर रहना नहीं चाहता। रहता भी है तो वैसे ही जैसे आज के ग्राम सेवक और सेविकाएँ विकास के लिए बने ब्लाको पर नौकरी करने के लिए रहती हैं। इसीलिए गांधीजी ने कहा था कि गाँवो के विकास करने के लिए उन्हे भारत के प्रत्येक गाँव के लिए एक ऐसा सेवक चाहिए जो गाँवों मे ही रहे। आज तो स्थिति यह है कि गाँवो मे जो दो चार आदमी पढ़े लिखे हैं, वे भी गाँवों मे रहना नहीं चाहते और नौकरी और पैसे की तलाश मे बाहर चले जाते हैं। कहावत हो गयी है—थोड़ा पढा तो घर से गया, ज्यादा पढ़ा तो गाँव से गया। इसीलिए गाँव का बौद्धिक स्रोत नि य सूखता जा रहा है और ग्रामीण सस्कृति का निरन्तर विघटन हो रहा है जो देश के हित मे नहीं है। अत: हमने निश्चय किया कि समन्वय विद्यापीठ मे हम पडोस के हर गाँव से दो बच्चे लेंगे, बालकों को कृषि, गोपालन और फूड प्रोसेसिंग' की ओर बालिकाओं को नर्सिंग की वैज्ञानिक

शिक्षा देंगे और उन्हें उनके गाँवो मे ही सगठक और उन्नत किसान की हैसियत से बसायेंगे। वे अपने खेतो मे खेती करके जीविकोपार्जन करेंगे और गाँव के विकास के लिए काम भी करेंगे।

आज के विद्यालय सरकारी हैं जो सरकारी नहीं है वे भी सरकार के अनुदान से चलते हैं। अत ये सरकार की राजनीति से प्रभावित होने से बच नहीं सकते। चूंकि सरकार किसी न किसी पार्टी की होती है अत इन सस्थाओं मे 'पार्टी पालिटिक्स का, दलगत राजनीति का, प्रवेश होता है। स्वातन्त्र्योत्तर काल मे दलगत राजनीति का प्रवेश शिक्षा सस्थाओ की सबसे बडी समस्या बन गयी है। अगर समाज मे कही पार्टी के खडित सत्य के स्थान पर पूर्ण सत्य की स्थापना होनी चाहिए तो वह स्थान शिक्षालय है। यह तभी सम्भव है जब शिक्षा शासन मुक्त हो। अत हमने निश्चय किया है कि हम इस विद्यालय को बिना सरकार की सहायता और स्वीकृति (रिकगनिशन) के चलायेंगे। इसका सबसे बडा लाभ यह होगा कि बालकों के व्यक्तित्व का उनके परिसर मे स्वतत्र और मुक्त विकास सम्भव हो सकेगा।

हम जिन पिछड़े वर्ग के लोगो में, आदिवासियो और हरिजनो मे काम कर रहे हैं, उनमे शराब बनाना और पीना आम बात है। यहाँ हमको यह नहीं भूलना चाहिए कि शराब उनके सामाजिक व्यवस्था का एक अग ही नहीं उनके मन-बहलाव का भी एकमात्र साधन है। फिर भी शराब पीना उनके विकास मे एक बाधा है, यह हमको स्वीकार करना होगा। हम जब सरकार से शराबबन्दी करने को कहते हैं, तो हमको यही जवाब मिलता है कि वे ऐसा नहीं कर सकते क्योकि नशीली वस्तुओ की बिक्री से प्राप्त टैक्स से ही शिक्षा का खर्च चलता है। इसीलिए गांधीजी ने स्वावलम्बी स्कूलो की कल्पना की बात कही थी और इसीलिए हम भी एक ऐसा विद्यालय चलाना चाहते हैं जहाँ 'कमाओ और सीखो' के सिद्धान्त का कार्यान्वयन हो। समन्वय विद्यापीठ एक ऐसी ही सस्था होने जा रही है।

समन्वय विद्यापीठ म हम छात्र छात्राओं को ८ वर्षों तक रखेंगे। पहले ५ वर्षों म हम उनसे खेत और गोशाले म अथवा दूसरे उद्योगों मे काम करायेंगे परन्तु हम उन्हे कुछ छात्रवृत्ति भी देंगे। शेष ३ वर्षों तक उन्हें स्वय कमाना और सीखना होगा। दूसरे शब्दो म पहले ५ वर्षों की शिक्षा स्वावलम्बन के लिए होगी पर तु पिछले ३ वर्षों की शिक्षा स्वावलम्बन के माध्यम से होगी। इसका नतीजा यह होगा कि जब लडका स्कूल छोड़ेगा तब उसमें अपने जीविकोपार्जन की क्षमता आ जायगी।

विद्यापीठ के लिए हमने लगभग ७० एकड़ बंजर भूमि प्राप्त की है, जिसे हमने खेती योग्य बना लिया है और आजकल उसमें और भी सुधार कर रहे हैं। हम इस प्रकार नियोजन कर रहे हैं कि खेती और गोशाले में पैदा हुई वस्तुओं की बिक्री से विद्यापीठ का सारा खर्च चल जाय और हमको बाहर से सहायता न लेनी पड़े। हमारे इस प्रयास मे शिक्षा का एक नया आयाम शुरू होगा–आत्म निर्भरता का आयाम–जिसका सपना गांधीजी ने देखा था।

हम शिक्षा को *अभिभावक, शिक्षक और छात्र का सम्मिलित* उत्तरदायित्व मानते हैं और समय-समय पर इनकी बैठकें आयोजित करते हैं। अभिभावक आते हैं, विद्यापीठ की खेती और गोपालन का काम देखते हैं और दिन भर अपने बच्चों और शिक्षको के साथ रहते हैं। एवं शिक्षको और छात्रों के साथ बैठकर विद्यापीठ की समस्याओं और संस्था के विकास पर बातचीत करते हैं। इसका परिणाम होता है कि गाँव के लोग हमारी योजना को निकट से देख पाते हैं और हमारे प्रयास का एक अंग बन जाते हैं।

इस समय विदेशों से अनेक कृपालु सज्जन हमारी सहायता कर रहे हैं। विद्यापीठ के सभी १०० बच्चों को व्यक्तियो, वर्गो अथवा संस्थाओं ने 'अडाप्ट' कर लिया है (गोद ले लिया है)। इसके फलस्वरूप बच्चे नये लोगों के सम्पर्क में आये हैं। हम इन कृपालु व्यक्तियों के पास बच्चो की प्रगति की रिपोर्ट उनकी फोटो और स्कूल की जानकारी भेजते हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न देशो मे रहनेवालो से विचार परिवर्तन होता है और एक समन्वित दृष्टिकोण का विकास होता है। इसीलिए हमने अपने स्कूल का नाम समन्वय विद्यापीठ' रखा है।

समन्वय विद्यापीठ की क्रान्ति

समन्वय विद्यापीठ की योजना सफल होगी तो शिक्षा जगत मे एक क्रांति हो जायगी। बोधगया से लगभग २५ मील दूर बाघा नामक गाँव मे एक पहाड़ी इलाके में विद्यापीठ स्थित है। जैसा हमने ऊपर कहा है, विद्यापीठ को अन्तर्राष्ट्रीय सहकार और प्रेम खूब मिला है। बाघा के इस विद्यापीठ के प्रांगण मे एक छोटा सा अस्पताल है जिसका संचालन एक विदेशी महिला डाक्टर करती हैं। शुद्ध सेवाभाव उस बहन को इस जगली इलाके मे खींच लाया है। उसके साथ एक दूसरी विदेशी महिला है जो बच्चो को 'आर्ट' शिक्षा देती है। इटली की रहनेवाली गैब्रीला तो बाघा पहुँचकर रो पड़ी थी—इसलिए कि इतनी शान्ति का अनुभव उसने पहले कभी नहीं किया

था। कुछ दिन पहले यहाँ ब्रिटिश ग्रोवरसीज मिनिस्टर, श्रीमती हार्ट ग्रायी थी। विद्यालय को देखकर उन्होंने कहा था—"यहाँ ग्राज मैं नया भारत देख रही हूँ।" समाज के सबसे पिछड़े ग्रौर उपेक्षित वर्ग के इन बच्चो के सास्कृतिक विकास को देखकर उन्हे ग्रपनी ग्राँखो पर विश्वास नहीं हुग्रा था। ग्रभी दो साल पहले इन बच्चो को कपडा पहनना भी नहीं ग्राता था ग्रौर हजारो, वर्षो से उनके पूर्वजों मे किसी ने 'क, ख, ग' भी नही पढा था। प्लानिंग कमीशन के एक सदस्य ने समन्वय विद्यापीठ को देखकर कहा था, "मैंने भारतवर्ष के लगभग सभी पब्लिक स्कूलो को देखा है। समन्वय विद्यापीठ के विद्यार्थियो के विकास का ग्रनुपात इन स्कूलो के विद्यार्थियों से तीनगुना ग्रधिक है ग्रौर तब जब यहाँ केवल दो घटे ही पढाई होती है।"

बाबा के इस विद्यापीठ की शुरुग्रात की भी एक कहानी है। कुछ वर्ष पहले मैं इग्लैंड के एक सर्वोदय साथी डोनेल्ड ग्रूम को गया जिले का ही ग्राम-दानी गाँव, ममफर, दिखाने ले गया था। उस गाँव की खेती मे बडी तरक्की हुई थी। लेकिन गाँव के बच्चो की दशा दूसरे पडोसी गाँवो के बच्चो की तरह ही दयनीय थी। उनकी हालत देखकर ग्रूम ने कहा कि इन बच्चों के लिए कुछ करना चाहिए। मैंने कहा कि पैसा कहाँ है? जयप्रकाशजी ने भी जब एक दिन मुझसे कहा कि नयी पीढी की जिन्दगी मे सुधार होना चाहिए तो मैंने उनसे भी यही कहा कि पैसा कहाँ से ग्रायेगा।

परन्तु मैं स्कूल चलाने की बात सोचता रहा। इसी बीच बिहार मे ग्रकाल पडा ग्रौर मैं राहत के काम मे लग गया। राहत के इस काम के लिए बोध-गया के समन्वय ग्राश्रम मे ससार भर से स्वयसेवक ग्राये ग्रौर 'काम देकर भोजन देने की योजना' भी चली। इसी सिलसिले मे एक दिन ब्रिटिश हाई कमीश्नर की पत्नी श्रीमती फोगन ग्रौर प्रधान मत्री के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री राजेश्वर प्रसाद जी से भेंट हुई। मेरी विद्यापीठ की योजना की बात सुनकर उन्होंने ९००० रुपये दिये।

लेकिन विद्यालय के लिए जमीन कहाँ मिलेगी। एक मित्र ने बतलाया कि जगल में महन्त खाजावतीजी के पास बहुत सी बजर जमीन पडी है। मैं उनके पास गया ग्रौर महन्तजी ने मुझे, ६८ एकड जमीन दे दी। ग्रौर जब जमीन मिल गयी तो 'भोजन के लिए काम' की योजना के ग्रन्तर्गत जगली झाडियों को काटकर जमीन समतल की गयी ग्रौर तालाब खोदकर पानी एकत्र किया गया। फिर एक दाता ने एलवेस्टास के शीट दिये तो छोटे-छोटे मकान

भी बना लिये गये। ४ मई १९६८ को जगल की सफाई का काम प्रारम्भ हुआ था और १५ जून १९६८ को ठीक ४२ दिन के बाद दस बच्चों को लेकर समन्वय विद्यापीठ प्रारम्भ हुआ।

इस दस बच्चों को लेकर काम प्रारम्भ करने की भी एक कहानी है। १९६८ के बडे दिन की छुट्टियो म समन्वय आश्रम मे फ्रान्स से कुछ मित्र आये थे। विद्यापीठ की योजना सुनकर उन्होंने कहा, तुम्हारे विद्यापीठ के लिए पैसा आयेगा परन्तु तब तक हमलोग अपने जेबखर्च से दस विद्यार्थियों का खर्च देंगे। पैसा मिलने का इतमिनान हो जाने के बाद मैं गांव गांव गया और बच्चो के मां बाप से मिला। इनमे इतना अज्ञान था कि बच्चो की पढ़ाई-लिखाई से उनके अच्छे भविष्य की बात भी उनकी समझ मे नही आयी। वे अपने बच्चों को छोडने को तैयार नहीं थे। परन्तु १० ऐसे परिवारो ने, जिन्हे एक जून का भर पेट भोजन भी नहीं मिल रहा था अपने बच्चो को भेजा और इन्हीं दस बच्चों से समन्वय विद्यापीठ प्रारम्भ हुआ।

बच्चो के धर्म-पिता

इस समय समन्वय विद्यापीठ मे १०० लडके हैं। १ गांव से २ बच्चे लिये गये हैं जिन्हें देश विदेश के कृपालु दाताओ ने गोद लिया है। ये इन बच्चो के धर्म पिता और धर्म माता हैं और इनकी पढाई का सारा खर्च भेजते हैं। इनके पास बच्चों की नियमित रिपोट भेजी जाती है। सीता नाम की लडकी, जिसकी मां केवल पौधो की जड और अकेटियां खाकर ही रहती थी, की करुण कहानी सुनकर एक पारसी सज्जन रो पड़े थे और आज वह एक बालक के धर्म पिता हैं। इग्लैंड, फ्रान्स इटली लक्समबर्ग अमेरिका, स्वीडेन आदि देशों मे समन्वय विद्यापीठ के धर्म पिता फैले हैं और इनमे फ्रान्स के हाईस्कूल मे पढ़नेवाली ऐसी तीन लड़कियां भी हैं जो अपने जेब-खर्च से तीन बच्चों का खर्च चलाती हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय सद्‌भाव और प्रेम इस विद्यापीठ की विशेषता है।

बच्चो को इस शिक्षा से क्रान्ति

भूदान मे काम करते समय मैंने अनुभव किया कि भूमिहीनों को जमीन और खेती की सुविधाएँ देने से ही काम नहीं चलेगा। जब तक उनकी परम्पराएं नहीं बदलतीं तबतक स्थायी परिवतन सम्भव नहीं होगा। इनमें बहुत तो शराब पीने के लिए जमीन को बन्धक रख देते हैं। अत यह बहुत आवश्यक है इनकी परम्पराएं बदली जायें। परम्पराएँ तो बाल्यजीवन

के स्तर पर ही बदली जा सकती है। इसलिए मैंने विद्यापीठ आरम्भ करने की बात सोची।

जब मैंने विद्यापीठ प्रारम्भ किया तो समाज मे इसका बडा विरोध हुआ। समाज के सवर्ण और धनी आदमी इस विद्यापीठ के विरोधी थे। उन्होने कहा कि मजदूर वर्ग के लडके पढ-लिख जायेंगे तो उनके खेत मे और घर मे काम कौन करेगा। उन्होंने अफवाह फैला दी। इन बच्चो का बलिदान कर दिया जायगा, अथवा उन्हे अमेरिका भेज दिया जायगा। अत अभिभावक भयभीत हो गये। परन्तु धीरे-धीरे उनका डर जाता रहा है और अब सभी अपने बच्चो को स्कूल भेजने को तैयार हैं।

२ वर्ष पहले जब बच्चे यहाँ आये तो वे बहुत गदे थे। परन्तु धीरे-धीरे वे साफ रहना सीख गये हैं। ये हरिजन हिन्दुओ और आदिवासियो के बच्चे हैं, परन्तु विद्यापीठ मे आने के पहले उन्होने राम और कृष्ण का नाम भी नही सुना था। इस वर्ष कृष्ण जन्म के अवसर पर जब इन बच्चों ने कृष्णलीला का अभिनय किया और उनके माताओ-पिताओ ने नाटक देखा तो उन्होने भी जीवन में पहली बार कृष्ण का नाम सुना। हमने इन हरिजनो की इतनी अवहेलना की है।

विद्यापीठ की पढ़ाई-लिखाई

विद्यापीठ मे लडके काम करते है—एक सस्कारमय जीवन जीते हैं। प्रातः उठकर आध घटे तक बच्चे ध्यान और प्रार्थना करते हैं। फिर सफाई का काम करते हैं। इसके बाद खेती और गोशाले के काम मे लग जाते हैं—काम में क्या लग जाते हैं अपनी अवस्था के अनुसार इन कामो मे हमारी सहायता करते हैं। विद्यापीठ मे जो उत्पादक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं उनमे ये बालक अपनी शारीरिक और बौद्धिक क्षमता के अनुसार काम करें ऐसी चेष्टा हम करते हैं। इस प्रकार प्रारम्भ से ही हम इन बच्चों के उत्पादक व्यक्तित्व का विकास करते हैं। गीत और नृत्य भी उनके जीवन का अभिन्न अग है और इसकी शिक्षा भी इनको दी जाती है। लोककला तो इन बच्चो के खून मे है और बाहर से आने वालो ने इस दिशा मे इनकी जो प्रगति देखी है उस पर वे मुग्ध हो गये हैं। विदेशी बहनों की मदद से ये आर्ट का काम भी करते हैं और इनके बनाये हुए चित्रों और डिजाइनों मे जो छन्द और प्राण मिलता है उसे देखकर आश्चर्य होता है। पढ़ाई का काम तीसरे पहर दो घटा होता है और उसमें भी इन बच्चों ने आशातीत प्रगति की है। जो शिक्षा-शास्त्री समन्वय विद्यापीठ में आये हैं

उन्होंने बतलाया है कि इन बालकों के पढ़ने लिखने का स्तर भी काफी अच्छा है। समन्वय विद्यापीठ मे बच्चे पढ़ते नहीं जीवन जीते हैं। इस प्रकार के स्कूल गाँव गाँव मे खुले तो शिक्षा मे क्रान्ति होगी इसमे मुझे तनिक भी सदेह नहीं है।●

शेख मुजिबुर्रहमान

गलतफहमी के भय के कारण मैंने अबतक पाकिस्तान की घटनाओं के बारे म कुछ नही कहा था, लेकिन शेख मुजिबुरहमान ने दुनिया के स्वातत्र्य प्रेमियो के नाम जो अपील निकाली है उसे पढकर कुछ शब्द कहने की प्रेरणा हुई है।

सबसे पहिले, उन्होंने बगला देश की जनता को जो नेतृत्व प्रदान किया है उसके प्रति मैं अपनी गहरी प्रशसा के भाव प्रकट करना चाहता हूँ। सारे इतिहास मे दूसरे किसी नेता की मिसाल ढूंढना कठिन होगा जिसने शेख मुजिबुर्रहमान की तरह अपने नेतृत्व मे पूरी जनता को सगठित किया हो। इससे भी कठिन ऐसी मिसाल ढूंढना होगा जिसमे जनता का इतने सम्पूर्ण समर्थन का उपयोग, बावजूद विरोधी उत्तेजनाओ के, इतनी सहिष्णुता और विवेक के साथ किया गया हो। गांधीजी के बाद शेख मुजिबुरहमान ही हैं जिसने इतने बडे पैमाने पर अहिंसा की शक्ति का प्रदर्शन किया है। मेरा पक्का विश्वास है कि इस प्रेरणादायी उदाहरण का आज की परीशान, अस्त व्यस्त, दुनिया पर बडा विधायक प्रभाव पडेगा।

मैं स्पष्ट बना दूं कि जिस तरह मैं अपने देश की अखण्डता म विश्वास करता हूँ उसी तरह मैं नही चाहता कि पाकिस्तान की अखण्डता खण्डित हो। शेख मुजिबुर्रहमान ने खुद स्वायत्तता से अधिक की माँग नहीं की है, और यद्यपि पश्चिम पाकिस्तान के सैनिक शासन ने नरसहार के काम किये हैं, उन्होंने अलग हो जाने का अन्तिम कदम नही उठाया है। यह उनकी बुद्धिमत्ता है। लेकिन अगर उन्हे अपना सयम तोडकर आगे बढना पडा तो उसकी जिम्मेदारी पश्चिमी पाकिस्तान के सिविल और सैनिक अधिकारियो पर होगी। आशा है वे बुद्धि से काम लेंगे, और उन्हे सयम की सीमा से आगे जाने के लिए विवश नहीं करेंगे। तब तक दुनिया का हर नागरिक, और हर सरकार, जिन्हे जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों म विश्वास है, शेख मुजिबुर्रहमान का तथा बंगला देश की सरकार का, जिसका वह नेतृत्व कर रहे हैं, समर्थन करेगी।

—जयप्रकाश नारायण

आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षा

डा० ज्यूलियस के० न्येरेरे

(तंजानिया गणराज्य के राष्ट्रपति)

[अभी थोड़े ही दिन पहले तंजानिया के राष्ट्रपति डाक्टर जे०के० न्येरेरे भारत आये थे। डा० न्येरेरे कुशल प्रशासक ही नहीं अच्छे विचारक और शिक्षा शास्त्री भी हैं। शिक्षा पर उन्होंने जो लिखा है वह नयी तालीम के पाठकों के लिए ही नहीं इस देश के शिक्षा शास्त्रियों के लिए भी आँखें खोलनेवाला है। गांधीजी की जिस शिक्षा पद्धति को हमने असफल घोषित कर दिया है, उसी असफल शिक्षा के तत्वों से तंजानिया की शिक्षा नीति का निर्माण हो रहा है। न्येरेरे की यह पुस्तिका किसी भी उस देश की शिक्षा पद्धति के लिए नमूना हो सकती है जिसकी संस्कृति प्रमुखतः ग्राममूलक है, किसी भी विदेशी संस्कृति के प्रभाव से मुक्त होकर अपने देश में समाजवाद लाने के लिए तत्पर है। —संपादक]

इस देश (तंजानिया) में, तानु (तंजानिया की राष्ट्रीय सभा) के नेतृत्व में, स्वतंत्रता के बहुत पहले से ही लोग अपने बच्चों के लिए अधिक शिक्षा की माँग करते रहे हैं। हम शिक्षा के उद्देश्य तथा शिक्षा प्राप्त करने की अपनी आकांक्षाओं पर सदा से ही विचार करते रहे हैं। परन्तु स्कूलों में चालू पाठ्य-क्रम की समय समय पर कुछ टीका करने के अलावा हमने उस शिक्षा की जो हमें स्वतंत्रता के साथ मिली है, बुनियादों पर हमने अभी तक कोई गंभीर विचार नहीं किया है। हमने ऐसा इसलिए नहीं किया कि हमने शिक्षा का अर्थ केवल अध्यापक, इंजीनियर या प्रशासक प्राप्त करने तक ही सीमित रखा था। व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर भी, हमारे लिए शिक्षा का अब केवल अपनी चालू अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत ऊँचे सरकारी पदों के लिए आवश्यक प्रशिक्षण मात्र रहा है।

परन्तु अब समय आ गया है कि हम जैसे गरीब देश के साधनों का लगभग २० प्रतिशत अपने बालकों और युवकों की शिक्षा पर खर्च करने के औचित्य पर विचार करें। क्योंकि वर्तमान परिस्थितियों में, जो समाज हम बनाना चाहते हैं, उसके साथ शिक्षा का संदर्भ जुड़ जाने तक अपने चन्द बच्चों (काफी तो यह शिक्षा भी नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं) की शिक्षा पर प्रतिवर्ष लगभग १४,७३ १०,००० शिलिंग खर्च करते रहना हमारे लिए असंभव है।

ससार के विभिन्न समाजो मे शिक्षा के सगठन तथा विषय (कान्टेन्ट) भिन्न-भिन्न रहे हैं, इसका कारण समाजो की परस्पर भिन्नताएँ और शिक्षा का उद्देश्य परक होना है। शिक्षा का एक उद्देश्य समाज के सग्रहीत ज्ञान तथा कौशल को पीढी-दर-पीढ़ी हस्तातरित करते रहना और भावी समाज के सदस्य के रूप मे युवक-युवतियो को उस समाज के निर्माण तथा विकास मे प्रत्यक्ष भागीदार बनाना है। यह बात व्यक्त या अव्यक्त रूप से पश्चिमी पूँजीवादी समाज, पूर्वी साम्यवादी समाज या पूर्व-औपनिवेशिक अफ्रीकी समाज, सभी समाजो के बारे मे सत्य है।

यदि पूर्व-औपनिवेशिक अफ्रीकी समाज मे कबीली दीक्षा सस्कारों के अवसरो के सिवाय कोई पाठशाला व्यवस्था नहीं रही तो इसका अर्थ यह नही है कि तब बालक अशिक्षित रहते थे। वे काम करके और जीवन जीकर सीखते थे। अपने घरों और खेतों म उनको उन गुणो, कौशलो और व्यवहारो की सीख दी जाती थी जिनकी अपेक्षा समाज उनसे करता था। वे अपने बडों के साथ काम मे शरीक होकर कौन सी घास किस काम आती है, फसलो के बारे में कब क्या करना होता है, या पशुओ की देखभाल कैसे की जाती है, यह सब बातें सीख लेते थे। वे अपने बडो से कथा-कहानियों के रूप में अपने कबीले तथा दूसरे कबीलो से उसके सम्बन्ध के बारे मे सीखते थे। इन साधनों तथा उन रिवाजों के माध्यम से, जिन्हे मान्य करना युवकों को सिखाया जाता था, सामाजिक मूल्यों का पीढी दर-पीढी हस्तांतरण होता रहता था। यह अनौपचारिक शिक्षा थी, जिसमे हर प्रौढ कम अधिक एक अध्यापक था। शिक्षा के किसी औपचारिक ढाँचे के अभाव का अर्थ शिक्षा का अभाव नही था और न समाज मे शिक्षा को महत्व ही कम था। वास्तव मे इस प्रकार की क्षिक्षा का समाज से सीधा प्रासगिक सम्बन्ध रहता था। यूरोप मे काफी समय से शिक्षा का औपचारिक सगठन होता रहा है। किन्तु इस प्रक्रिया की गहरी परीक्षा करने से पता लगेगा कि इस शिक्षा के उद्देश्य भी पारम्परिक अफ्रीकी समाज के उद्देश्यों के ही समान थे। अर्थात् यूरोप की इस औपचारिक क्षिक्षा का उद्देश्य भी बालकों को देश विशेष की सामाजिक रीति-नीति मे दीक्षित करके उन्हे समाज मे अपना उचित स्थान प्राप्त करने के लिए तैयार करना ही रहा है। आज साम्यवादी देशो के बारे मे भी यही बात सही है। यह साम्यवादी शिक्षा पश्चिमी देशो से चाहे विषय (कान्टेन्ट) मे थोडी भिन्न भले ही हो, किन्तु उद्देश्य इसका भी वही है,—युवको को समाज मे रहने तथा उसकी सेवा करने

के लिए तैयार करना तथा समाज के ज्ञान कौशल, मूल्य तथा 'ज्ञान' का पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरण करना। जहाँ और जब भी शिक्षा अपने इन लक्ष्यो को प्राप्त करने म असफल हुई है, तब तब समाज की प्रगति मे बाधाएँ खडी हुई है, या लोगो मे एक अनिश्चित भविष्य की भावना के कारण असतोष पैदा हुआ है।

तजानिया की औपनिवेशिक शिक्षा और नये राज्य को प्राप्त उत्तराधिकार
तजानिया की औपनिवेशिक शिक्षा का उद्देश्य :

वतमान तजानिया का निर्माण करने वाले दो देशो मे औपनिवेशिक सरकारो के द्वारा प्रदत्त शिक्षा का उद्देश्य भिन्न था। इस शिक्षा का उद्देश्य देश के युवको को अपने देश की सेवा के लिए तैयार करना नही था। इसके विपरीत इसका उद्देश्य लोगो मे औपनिवेशिक समाज के मूल्यो का विकास करना तथा उनको औपनिवेशिक राज्य की सेवा करने के लिए तैयार करना था। अत इन देशो मे शिक्षा का उद्देश्य क्लक तथा छोटे छोटे स्थानीय अफसर पैदा करना था। इसके अतिरिक्त कुछ धार्मिक सगठन अपने धार्मिक कार्यों के लिए कुछ साक्षरता का प्रचार-कार्य करते रहते थे।

यह उन लोगो की आलोचना नही है, जिन्होंने अवसर कठिन परिस्थितियो मे भी शिक्षा प्रचार तथा सगठन के लिए कठोर श्रम किया है और इसका अर्थ यह भी नहीं है कि उन लोगो ने उस शिक्षा-प्रणाली के माध्यम स जो सामाजिक मूल्य बनाये वे सब गलत ही थे। इसका अर्थ इतना ही है कि तजानिया मे ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ही चलायी गयी जिसका अधिक बल तजानिया निवासियो में श्वेतागो के कौशल उत्पन्न करना तथा लोगो मे दास्य भाव पनपाने पर ही रहा है। यह शिक्षा अनिवायत एक औपनिवेशिक तथा पूँजीवादी समाज की मान्यताओ पर आधारित थी। इसने व्यक्ति मे सामुदायिक वृत्तियो के बजाय उसकी व्यक्तिवादी वृत्तियो पर ही जोर दिया और उन्ह ही बढ़ाया। इसने व्यक्तिगत भौतिक सम्पत्ति-सग्रह को सामाजिक प्रतिष्ठा और योग्यता का प्रमुख मापदंड बना दिया।

इसका अर्थ यह है कि औपनिवेशिक शिक्षा-पद्धति ने मनुष्यो मे असमानता की वृत्तियो को पनपाया है और व्यवहार म समर्थों द्वारा, खासकर आर्थिक क्षेत्र मे, कमजोरों के शोषण को प्रोत्साहन दिया है। इस प्रकार तजानिया मे यह औपनिवेशिक शिक्षा तजानिया समाज के मूल्यो और ज्ञान को हस्तातरित नहीं कर रही थी, वरन् उन मूल्यो को बदल कर उनके स्थान पर एक भिन्न समाज के मूल्यो का रखने का प्रयास कर रही थी। इस प्रकार यह शिक्षा-समाज के

एक प्रकार की क्रांति करने का प्रयास थी, जिससे देश एक औपनिवेशिक-समाज में परिवर्तित हो जाय और शासन करनेवाली शक्ति का प्रभावशाली सहायक बन जाय। यदि ये प्रयत्न असफल हो गये तो इसका अर्थ यह नहीं है कि इस शिक्षा में लोगों के रुझानो, विचारो तथा ज्ञान को प्रभावित नही किया। इस असफलता का यह अर्थ भी नहीं है कि औपनिवेशिक काल मे दी जानेवाली शिक्षा उन स्वतंत्र लोगो के अनुकूल है, जिनका लक्ष्य समता की प्राप्ति है।

वास्तव मे स्वतंत्र तंजानिया राज्य को विरासत में एक ऐसी शिक्षा-पद्धति मिली जो नये राज्य के लिए अपर्याप्त और प्रतिकूल थी। उसकी अपर्याप्तता तो तुरन्त स्पष्ट हो गयी। सन् १९६१ मे देश स्वतंत्र हुआ तो इतने कम लोग शिक्षित थे कि बडे-बडे सामाजिक और आर्थिक विकास योजनाओ को चलाने की बात तो दूर रही सामान्य शासन को चलाने के लिए भी हमारे पास बहुत कम लोग प्राप्त थे। इस वर्ष की स्कूल-जनसख्या भी इतनी नही थी कि उससे भी भविष्य मे स्थिति में कुछ सुधार की आशा की जा सकती थी। इसके अलावा यह शिक्षा जाति-भेद पर आधारित थी जबकि हमारे स्वातंत्र्य संग्राम की सारी नैतिक शक्ति जातीय भेदभावों के परित्याग पर आधारित थी।

स्वातंत्र्योत्तरकालीन कार्य

इस समय तक उत्तराधिकारी मे प्राप्त शिक्षा के तीन मुख्य दोषों का परिहार हो चुका है। सर्व प्रथम शिक्षा मे जातीय भेदभाव समाप्त किये गये। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद ही शिक्षा मे विभिन्न जातियो के बीच तालमेल बिठाने का कार्यक्रम शुरू किया गया और धर्म के आधार पर भेदभाव की नीति समाप्त कर दी गयी। अब तंजानिया का कोई भी बच्चा बिना किसी जातीय या धार्मिक भेदभाव के और बिना इस भय से कि उसे अपनी शिक्षा की कीमत के रूप मे किसी धर्म की दीक्षा लेनी होगी, किसी भी सरकारी या सहायता प्राप्त स्कूल मे प्रवेश पा सकता है।

दूसरे सेकन्डरी और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा-सुविधाओ मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। टँगानिका मे १९६१ मे ४९०००० बच्चे प्राथमिक शिक्षा पा रहे थे और इनमे से अधिकांश चौथा कक्षा तक ही जा पाते थे। १९६७ में इन स्कूलो मे बालकों की संख्या ८२५००० हो गयी और इन स्कूलो को शीघ्र ही ७ वर्षीय प्राथमिक शालाओं मे बदल दिया जावेगा। १९६१ मे सेकेन्डरी स्कूलो मे ११८३२ छात्र थे और नीचे छठीं में थो उनमें केवल १७६ बालक ही आये थे किन्तु अब इनकी संख्या क्रमशः २५००० और ८३० है।

यह हमारे नये राष्ट्र के लिए निःसंदेह ही गर्व की बात है। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि हमारी इन सफलताओं से ही हमारी खासकर प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी समस्याएँ पैदा हो रही है।

तीसरी बात, जो हमने की है वह शिक्षा का तंजानीकरण है। अब हमारे बालक ब्रिटिश या यूरोपियन इतिहास ही नहीं पढ़ते और संभावना से भी अधिक तीव्र गति से अब हमारे कालेजों में अफ्रीकी इतिहास का अध्ययन किया जा रहा है और अध्यापकों को उसके लिए सामग्री उपलब्ध करायी जा रही है। हमारे बालक पुनः अपने राष्ट्रगीत और नृत्य सीख रहे हैं और पाठ्यक्रम में राष्ट्रभाषा को उचित और आवश्यक स्थान मिल गया है। नागरिक शास्त्र की कक्षाओं मे भी लोगों को हमारे नवीन राष्ट्र के उद्देश्यों तथा संगठन की शिक्षा दी जा रही है।

फिर भी, जो कुछ मैंने ऊपर कहा है, वह प्राप्त शिक्षा-पद्धति मे कुछ हेरफेर मात्र है। अभी इनके नतीजों का आंकलन नहीं किया जा सकता क्योंकि शिक्षा मे कोई भी परिवर्तन अपना असार पैदा करने में समय लेता ही है। फिर भी १९६६ का अनुभव हमें बतलाता है कि जो शिक्षा हम दे रहे हैं उसका पूर्ण परीक्षण होना आवश्यक है। अब इस प्रश्न पर स्पष्ट विचार करने का समय आ गया है कि तंजानिया मे शिक्षा-प्रणाली से क्या आशा करनी है और उसका क्या प्रयोजन है? यह निश्चय कर लेने के बाद ही हम तंजानिया की वर्तमान शिक्षा की संरचना और विषय-वस्तु (कान्टेन्ट) की प्रासंगिकता के बारे मे सोच सकते हैं। इस दृष्टि से हमें तय करना होगा कि क्या हम अपनी शिक्षा में इधर-उधर हेरफेर ही करें या उसे पूर्णतया बदल डालें। -

हम किस तरह की समाज-रचना का प्रयास कर रहे हैं?

केवल, जब हमें यह पता हो कि हमें किस तरह का समाज बनाना है, तभी हम उसे प्राप्त करने के लिए शिक्षा-पद्धति का निर्धारण कर सकते हैं। किन्तु तंजानिया मे अब यह समस्या नहीं है। यद्यपि हम यह दावा नहीं करते कि हमारे पास भावी समाज की स्पष्ट तस्वीर है फिर भी हमने अपने समाज के मूल्यों और लक्ष्यों को बार-बार दोहराया है। हमने कहा है कि हम इन तीन सिद्धान्तों पर आधारित एक समाजवादी समाज बनाना चाहते हैं:—(१) मानव के लिए सम्मान तथा समानता। (२) अपने परिश्रम से उत्पन्न साधनों में सहभाग (शेयरिंग) तथा (३) प्रत्येक हाथ के लिए काम और किसी के द्वारा किसी का शोषण नहीं। हमने अपनी राष्ट्रनीति मे इन सिद्धान्तों को शामिल किया है और 'अरुशा-घोषणा' मे तथा अनेक पूर्ववर्ती दस्तावेजों मे

इन नीतियों और उद्देश्यों की घोषणा की है। हमने अनेक बार यह भी कहा है कि हमारा व्यापक उद्देश्य अफ्रीकी एकता प्राप्त करना है। हम अपने संयुक्त गणतंत्र की पूर्ण एकता तथा प्रभुसत्ता की रक्षा करते हुए इस व्यापक उद्देश्य के लिए कार्य करेंगे। सबसे अधिक हमारी सरकार और जनता ने सब नागरिकों की समानता पर जोर दिया है और यह निश्चय किया है कि इस समानता को प्राप्त करने के लिए ही हम अपनी आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक नीतियाँ निर्धारित करेंगे जिससे यह समानता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यथार्थ बन सके। दूसरे शब्दों में हम एक समाजवादी भविष्य के लिए प्रतिश्रुत हैं—ऐसे भविष्य के लिए जिसमें जनता स्वयं उन नीतियों को तय करेगी जिनका कार्यान्वयन ऐसी सरकार करेगी जो उसके प्रति उत्तरदायी होगी।

अतः यह स्पष्ट ही है कि यदि हमें इन उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में कई प्रगति करनी है तो हम तंजानिया की आज की बाहरी तथा भीतरी परिस्थितियों को ध्यान में रख करके इन्हें अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप बदलने का प्रयास करना होगा और सच्चाई तो यह है कि अभी तो हमारा यह नया संयुक्त गणतंत्र एक गरीब पिछड़ी तथा कृषि अर्थव्यवस्थावाला देश है। हमारे पास बड़े कारखानों या उद्योगों के लिए धन तथा कुशल और अनुभवी व्यक्तियों दोनों की बड़ी कमी है। इसके विपरीत हमारे पास काफी भूमि है और अपने विकास के लिए कठोर श्रम करनेवाले लोग हैं। इन्हीं साधनों के सम्यक उपयोग पर हमारा भविष्य निर्भर करेगा। यदि हम अपने विकास के लिए इनका उपयोग आत्म निर्भरता के आधार पर करते हैं तब हम धीरे धीरे किन्तु निश्चय ही प्रगति करेंगे और यही वास्तविक प्रगति होगी जो देश की सारी जनता के जीवन को प्रभावित करेगी और जो तंजानिया की वर्तमान गरीबी में रहनेवालों की उपेक्षा करके नगरों में तड़क भड़क की चन्द 'शो पीसेज' प्रस्तुत नहीं करेगी।

इस राह पर चलने का अर्थ है कि तंजानिया को अभी काफी लम्बे समय तक ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का ही सहारा लेना होगा। चूँकि लोग गाँवों में रहते और काम करते हैं अतः जीवन में सुधार भी गाँवों से ही होना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें भविष्य में बड़े उद्योगों की आवश्यकता नहीं होगी। अभी भी ऐसे कुछ बड़े उद्योग हमारे पास हैं और वे और बढ़ेंगे भी। किन्तु यह सोचना कि निकट भविष्य में ही हमारे देश के लोग शहरों में रहने लग जायेंगे और उन्हें बड़े उद्योगों में काम मिल जायेगा एक अस्वाभाविक चिन्तन होगा। अतः यही आवश्यक है कि गाँवों को ही लोगों के अच्छे जीवन

व्यतीत करने योग्य स्थान बनाया जाय और वहीं उन्हें उनके जीवन की आवश्यकताएँ और सतोष प्राप्त हो सके।

ग्रामीण जीवन मे यह परिवर्तन स्वत नही आ जायगा। यह तभी आयेगा जब हम इन साधनों का भूमि का और मानव शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग कर सकें। इसका अर्थ यह है कि लोग परिश्रम बुद्धिमानी और सहयोग से काम करें। हमारी ग्रामीण जनता और उसकी सरकार को सहकारिता के आधार पर सगठित होकर अपने समाज तथा देश के हित मे काम करना होगा। हमारे ग्राम जीवन तथा हमारी राष्ट्रीय सरकार को समाजवाद तथा समानता के सिद्धान्तों पर आधारित होना होगा।

इस समाजवाद के अनुरूप शिक्षा प्रणाली

इस प्रयास को ही हमारी शिक्षा प्रणाली को प्रोत्साहन देना है। इसे सबजन के कल्याण के लिए साथ रहने और साथ काम करने की भावना का पोषण करना है। इस शिक्षा प्रणाली को हमारे युवको को, एक ऐसे समाज का विकास करने के लिए जिसमें सभी सदस्य समाज के सुख दुख के समान भागीदार होंगे और जहाँ उन्नति का मापदड निजी या सार्वजनिक बड़ी-बड़ी इमारतें और कारें नही मानव कल्याण होगा गतिशील तथा रचनात्मक रोल अदा करने के लिए तयार करना होगा। इस तरह हमारी शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति मे समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करना और छात्रो मे औपनिवेशिक अतीत के मूल्यो के स्थान पर भावी समाजवादी समाज के मूल्यों को स्वीकार करने की क्षमता उत्पन्न करना होगा।

इसका अर्थ यह है कि तजानिया की शिक्षा प्रणाली को व्यक्तिगत उन्नति के बजाय सहयोगी प्रयासो पर जोर देना होगा। उसे समानता की सकल्पना पर बल देना होगा और उसे प्रत्येक प्रकार की दक्षता प्राप्त व्यक्तियो को सेवा प्रदान करने की जिम्मेवारी लेनी होगी, चाहे वह दक्षता बढईगिरी की हो या पशु पालन की हो अथवा किसी बौद्धिक व्यवसाय की हो। विशेषत हमारी शिक्षा प्रणाली को उस बौद्धिक दभ को समाप्त करना होगा जो पढ लिखे लोगो मे उत्पन्न हो जाता है और जिसके कारण पढ लिखे लोग बेपढे लिखो से घृणा करते हैं। समान अधिकारवाले नागरिको के समाज मे इस प्रकार के दभ का कोई स्थान नहीं है।

हमारी शिक्षा को केवल सामाजिक मूल्यो के क्षेत्र मे ही काम नही करना है वरन् इसे तजानिया के वर्तमान समाज मे जो ग्रामीण है और जहाँ लोगो

की उन्नति खेती तथा ग्राम विकास-सम्बन्धी कार्यों पर ही बहुत कुछ निर्भर करेगी। लोगो को काम करने के लिए तैयार करना होगा। इसका अर्थ यह नही है कि शिक्षा केवल ऊपर के आदेशो या निर्देशो पर चुपचाप अमल करनेवाले कम या अधिक कुशलतावाले कृषि कार्यकर्ता तैयार करेगी। इसे तो अच्छे किसान पैदा करने होंगे और एक जनतात्रिक तथा स्वतत्र समाज मे, अलबत्ता ग्रामीण समाज मे, उत्तरदायित्व वहन करने के लिए स्वतत्र तथा जिम्मेदार कार्यकर्ता और नागरिक तैयार करने का कार्य करना होगा। इस प्रकार के नागरिकों मे अपने लिए स्वय सोचने की योग्यता होगी, अपने से सम्बन्धित मामलो पर वे स्वय निर्णय लेंगे और स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार उन निर्णयों को कार्यान्वित करने के योग्य होगे।

इसका यह अर्थ लगाना गलत होगा कि हमारी शिक्षा प्रणाली को केवल ऐसे 'यात्रिक मानव' पैदा करना है जो सरकार के अधिकारियो अथवा 'तानु' के आदेशो और कार्यों पर बिना सोचे समझे अमल करें। असल मे जनता ही सरकार और 'तनु' है और होनी चाहिए। हमारी सरकार और पार्टी को सदा ही जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए और उसमे जनता का प्रतिनिधित्व रहना ही चाहिए। अत दी जानेवाली शिक्षा म प्रत्येक नागरिक मे तीन बातो के विकास की चेष्टा करनी चाहिए। (१) प्रथम है—एक जिज्ञासु मस्तिष्क, (२) दूसरा है—अनुभवों तथा कार्यों से सीखना या इन्कार करना और अपनी आवश्यकताओ के अनुरूप उनसे तालमेल बिठाना। (३) तीसरा है—एक स्वतत्र तथा समान अधिकारवाले ऐसे नागरिक के नाते अपनी स्थिति मे बुनियादी विश्वास, जो दूसरे को कदर करता है और जिसकी दूसरे कदर करते हैं, उसके लिए नही जो वह पाता है, बल्कि उसके लिए जो वह करता है।

य तत्त्व शिक्षा के व्यावसायिक तथा सामाजिक दोनो पहलुओं से महत्त्वपूर्ण हैं फिर भी कोई भी कृषि का छात्र चाहे वह जितना भी पुस्तकें पढ जाय कृषि-सम्बन्धी विस्तृत समस्याओ का जवाब किसी एक पुस्तक म नही पा सकता। उसे कृषि के आधुनिक ज्ञान के बुनियादी सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करके इस जानकारी का अपनी समस्याओ को हल करने म उपयोग करना होगा। इसी प्रकार त जानिया के स्वतत्र नागरिको को सामाजिक मामलों म खुद ही निर्णय करने होंगे, क्योकि ऐसी कोई राजनीतिक पवित्र पुस्तक या बाइबिल नही है और न हो सकती है, जो उन्हे देश के भविष्य की समस्त सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओ का पूरा पूरा और सही उत्तर दे सके। हमारे

पास अपने समाज के द्वारा स्वीकृत कुछ दर्शन तथा नीतियाँ हो सकती हैं किन्तु नागरिकों को अपने अनुभव तथा अभ्यास और ज्ञान के प्रकाश में ही उन पर विचार करना होगा। अगर तंजानिया के वर्तमान या भूतकाल के नेताओं की नीतियों तथा विश्वासों पर चिंतन मनन करने से तंजानिया के नागरिकों को रोका गया तो तंजानिया की शिक्षा प्रणाली से एक स्वतंत्र जनतांत्रिक तंजानिया समाज का हित सम्पादन नहीं हो सकेगा। केवल अपनी क्षमताओं और समान अधिकारों के प्रति चेतन तथा स्वतंत्र नागरिक ही स्वतंत्र समाज का निर्माण कर सकते हैं। (क्रमश:)

नयी तालीम की दार्शनिक अवधारणा

डा० सूर्यनाथ सिंह

बेसिक शिक्षा की मूल अवधारणा सम्बन्धी भ्रान्तियाँ दो कारणों से हैं। एक तो निष्पक्ष विवेचकों द्वारा इसकी व्याख्या नहीं की गयी, क्योंकि इसके भाष्यकार या तो गांधीजी के अंध भक्त या कटु आलोचक थे, और इनके दृष्टिकोण की अपनी सीमाएँ थीं, तो दूसरी ओर डा० श्रीमाली प्रोफेसर कबीर तथा डा० सैयदेन के अतिरिक्त किसी उच्चकोटि के शिक्षाशास्त्री ने इसे लेखनी उठाने योग्य ही नहीं समझा। ये तीनों शिक्षाशास्त्री भी अन्य धन्धों में इतना व्यस्त रहे कि उन्हें बेसिक शिक्षा योजना की दार्शनिक मीमांसा का अवसर ही नहीं मिला। फलत इसकी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि पर सम्यक प्रकाश नहीं पड़ा। वस्तुत अ यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के कारण भारत का शिक्षित समुदाय शारीरिक श्रम को हेय समझने लगा था। गांधीजी शिक्षा को व्यावहारिक रूप देकर इस दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहते थे।[1] किन्तु उनकी योजना को हमने हस्त शिल्प-केन्द्रित शिक्षा समझ कर उसका उपहास करना प्रारम्भ कर दिया। वस्तुत 'हस्त-शिल्प' तो शिक्षण का माध्यम मात्र था, चरम उद्देश्य नहीं। हस्त-शिल्प योजना में गांधीजी का शिक्षा दर्शन कुछ इस प्रकार छिप गया कि शिक्षाशास्त्री उसके गूढ़ तत्त्वों पर ध्यान ही नहीं दे पाये। प्रस्तुत निबंध का ध्येय बिना किसी मौलिकता का श्रेय लिये नयी तालीम का दार्शनिक अवधारणा का स्पष्टीकरण मात्र है।

गांधीजी के अनुसार शिक्षा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास है।[2] उनकी मूल अवधारणा तो इन शक्तियों की समरस अभिव्यक्ति है। किन्तु इस विकास तथा अभिव्यक्ति-प्रक्रिया को तभी ठीक से समझा जा सकता है जब हम इसे गांधी दर्शन तथा उसके सामाजिक परिप्रेक्ष्य में, जिसका स्रोत भगवद्गीता के नैतिक आदर्श हैं, समझें। शोषण-रहित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, जिसकी भित्ति, सत्य तथा अहिंसा पर आधारित हो गांधीजी का लक्ष्य था अत उनकी शिक्षा-योजना की व्याख्या इसी संदर्भ में करनी पड़ेगी अन्यथा अनर्थ की आशंका है।

शारीरिक विकास का लक्ष्य केवल स्वस्थ मात्र रहने से ही नहीं पूरा हो जाता है। इसके लिए बल, वीर्य, ओज, तेज तथा उत्साह की भी आवश्यकता है। इनके अभाव में स्वस्थ मनुष्य उपयोगी काम नहीं कर सकता। ... गुणों

की उपलब्धि गांधी-शिक्षा योजना में है ही, किन्तु उनकी दृष्टि इससे और आगे तक गयी है। उनका अभिप्राय तो शारीरिक विकास कर व्यक्ति को कर्तव्य-पालन की शिक्षा देना था। 'शरीरमात्र खलु धर्म साधन'। धर्म कर्त्तव्य का ही दूसरा नाम है—आचार: प्रथमो धर्म। मनुष्य का चरम लक्ष्य तो आत्मानुभूति प्राप्त करना है, जो समाज सेवा द्वारा ही प्राप्त होती है।[३] स्वस्थ शरीर समाज-सेवा के लिए आवश्यक है। इसीलिए तो मुण्डकोपनिषद् ने कहा है कि 'नाय-मात्मा बलहीनेन लभ्यो।'

सामान्यरूप से तो गांधीजी के शारीरिक विकास की अवधारणा मौलिक नहीं ज्ञात होती क्योंकि प्लेटो,[४] स्पेन्सर,[५] लाक,[६] तथा रसेल[७] आदि ने भी कुछ इसीसे मिलता जुलता विचार प्रकट किया है। प्लेटो नागरिकों को स्वस्थ बनाकर उन्हें आत्मरक्षा तथा यूनानी गणतन्त्रीय व्यवस्था की रक्षा करवाना चाहता था। लाक तथा रसेल शरीर को स्वस्थ बनाकर मनुष्य को उद्यमी तथा सुखी बनाना चाहते थे। स्पेन्सर व्यक्ति को सुख दुःख सहने की शक्ति प्रदान करना चाहता था। इन समस्त बातों को गांधीजी भी स्वीकार करते हैं, किन्तु उनके लक्ष्य की परिणति शारीरिक विकास मात्र में ही नहीं है।

यदि शारीरिक बल पर नैतिक नियन्त्रण न हो तो व्यक्ति दानव बनकर लोगों का अहित कर सकता है। इसीलिए गांधीजी शारीरिक बल पर नैतिक अनुशासन के पक्षपाती थे जिससे शरीर समाजसेवा के भी काम आ सके। शरीर का यही नैतिक अनुशासन गीता में 'शरीर के तप' की संज्ञा से विभूषित है।[८] इस तप द्वारा शरीर की शुद्धि होती है जिससे शरीर लोक कल्याण का माध्यम बनता है अथवा आत्मानुभूति प्राप्त होती है। गांधीजी की सामाजिक योजना का एक यह भी अभिप्राय था।

पुनः गांधीजी मानसिक तथा बौद्धिक शिक्षा की आयोजना करते हैं। मानव-मस्तिष्क अमोघ शक्तियों का भण्डार है। विवेक, तर्क, सश्लेषण, विश्लेषण तथा आलोचनात्मक शक्तियाँ बुद्धि के ही अंग हैं। इसका मुख्य कार्य ज्ञान-मीमासा है। ज्ञानात्मक प्रक्रिया की पूर्णता उसकी निरपेक्षता, वस्तुनिष्ठता, तटस्थता तथा अवैयक्तिकता पर निर्भर करती है। किन्तु यदि इन्हीं शक्तियों का विकास मूल लक्ष्य बन जाय तो मनुष्य झक्की, सनकी तथा मानव द्वेषी बन जाता है। इस स्थिति से हमें बचना चाहिए। अतः मानसिक शक्ति के भी अनुशासन की आवश्यकता है। इसीलिए गीता ने 'मानसिक तप' पर बल दिया है।[९] इस तप के अभाव में मानसिक शक्तियों पर व्यक्ति का नियन्त्रण नहीं

स्थापित हो पाता। मानसिक तप द्वारा बुद्धि की सशुद्धि होती है। उसकी क्रियात्मक तथा रचनात्मक शक्ति का विकास होता है। व्यक्ति का मानसिक सगठन होता है। उसकी एकाग्रता बढ़ती है। मनुष्य मानसिक स्वास्थ्य लाभ करता है। उसमे मानसिक समरसता श्राती है, तथा बौद्धिक सतुलन उत्पन्न होता है। मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने के लिए ये बातें अपरिहार्य हैं।

इसके बाद गाधीजी आध्यात्मिक विकास की चर्चा चलाते हैं। अध्यात्म का सम्बन्ध जीवन के भावनात्मक पक्ष से है। दया ममता, करुणा उदारता, तथा मैत्रीभावना आध्यात्मिक जीवन के विविध सोपान हैं। आध्यात्मिकता से ही मूल प्रवृत्तियो का दामन होता है। मनुष्य असुरत्व पर विजय प्राप्त करता है। यही शक्ति मनुष्य को लोकहित के कार्यों में सहर्ष, नि स्वाम भाव से बलिदान करने के लिए प्रेरित करती है।[१०] मनुष्य निर्लिप्त होकर मानव समाज तथा जगत् के भाग्य की चिन्ता करता है।[११] 'स्व' महत् मे परिणत हो जाता है। दूसरे का सुख-दु ख अपना सुख-दु ख बन जाता है। इसी आध्यात्मिकता के कारण ही कला तथा साहित्यिक कृतियो मे सौन्दय मूर्तिमान हो उठता है। मनुष्य मे श्रद्धा, सद्भाव, न्याय-भावना, तथा सम्यक् दृष्टि का विकास होता है। व्यक्ति स्वार्थ, आत्मरति तथा परद्वेष से बचता है।[१२]

गांधीजी इन शक्तियो का एकागी नहीं वरन् समन्वित विकास करना चाहते थे, क्योंकि एकागी विकास की अपनी सीमाएँ हैं। समन्वय के अभाव मे इन शक्तियों की सम्यक अभिव्यक्ति नहीं होती। ऐसी स्थिति मे ये शक्तियाँ या तो अन्तर्मुखी होकर मृतप्राय हो जाती हैं या मनुष्य उनका अनुचित कार्यों मे उपयोग करता है। शरीर तो शक्ति तथा बल का स्रोत है किन्तु यह स्थूल तथा मूर्त होने के कारण बन्धन मोह, तथा आत्मरति उत्पन्न करता है। अत इस पर बुद्धि तथा अध्यात्म का अकुश आवश्यक है। इसी अकुश से व्यक्ति की शारीरिक शक्ति मर्यादित होती है। जब शारीरिक तथा आध्यात्मिक शक्तियो की उपेक्षा कर मानसिक शक्तियों का विकास किया जाता है तो मनुष्य मे दुर्बुद्धि उत्पन्न होकर उससे विनाशात्मक तथा ध्वसात्मक काय कराती है। हमारे युग की अधिकांश समस्याएँ एकांगी बौद्धिक विकास के कारण भी उत्पन्न हुई हैं। आध्यात्मिक विकास इस दोष का परिहार करता है। इससे बुद्धि निर्मल होती है। मनुष्य हिंसा तथा क्रूरता के कुचक्र से मुक्ति पाता है। किन्तु जब शरीर तथा बुद्धि के मूल्य पर आध्यात्मिक विकास होता है तो भी परिणाम अच्छा नहीं होता। इससे व्यक्ति मे पाखण्ड, हठवाद, आडम्बर तथा आत्मप्रवचना की भावना उत्पन्न होती है। व्यक्ति निष्क्रिय जीवन व्यतीत करने लगता है।

यही कारण है कि गांधीजी ने शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के समरस विकास पर बल दिया है।

जब शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का समरस विकास होता है, तो व्यक्ति का शरीर उसे कार्य-संपादन की शक्ति प्रदान करता है। उसका आध्यात्मिक विकास उसके जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है। उसकी बुद्धि उस लक्ष्य की ओर उसकी शक्ति का नियोजन करती है। व्यक्ति जीवन के चरम लक्ष्यों की प्राप्ति करता है। जिस समाज में मनुष्य की इन शक्तियों का सम्यक् तथा समरसतापूर्ण विकास होगा वहाँ धरती पर ही स्वर्ग उतर आयेगा। व्यक्ति में देवत्व का आविर्भाव होगा। समाज में शान्ति रहेगी क्योंकि मनुष्य अहिंसक होगा। गांधीजी के सामाजिक दर्शन का यही उद्देश्य भी है।

दुर्भाग्यवश अब तक पश्चिमी शिक्षा ने इस समस्या पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। यदि स्पार्टा की शिक्षा ने बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा की उपेक्षा कर शारीरिक शिक्षा पर बल दिया, तो एथेन्स की शिक्षा-प्रणाली ने शारीरिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा की उपेक्षा कर बौद्धिक शिक्षा पर बल दिया। मध्यकालीन शिक्षा ने, जिस पर तत्कालीन धर्माचार्यों का प्रभुत्व था, शारीरिक तथा मानसिक विकास की अवहेलना कर आध्यात्मिक विकास पर बल दिया था। फलतः मनुष्य में आत्म-प्रवचना तथा आत्म निषेध की भावना उत्पन्न हुई थी। आज की शिक्षा शरीर तथा अध्यात्म की उपेक्षा कर बौद्धिक विकास करती है, जिससे अमानवीय व्यवहार, विनाशात्मक प्रवृत्तियाँ, हृदयहीनता तथा मानसिक रोगों की वृद्धि हो रही है। गांधीजी की शिक्षा-योजना ही इनसे त्राण दिला सकती है।

प्लेटो ने मनुष्य को प्रकृति, समाज तथा स्वयं अपने-आप से सामंजस्य स्थापित करने का उपदेश दिया था।[१३] प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का साधन शरीर है क्योंकि शरीर ही प्रकृति के सान्निध्य तथा सम्पर्क में रहता है। सामाजिक सामंजस्य बुद्धि स्थापित करती है क्योंकि बुद्धि द्वारा ही व्यक्ति को अपनी परिस्थिति, भूमिका तथा मर्यादा का ज्ञान होता है। अपने आप से सामंजस्य तो तभी स्थापित हो पाता है जब भावना तथा संवेगों का परिष्कार हो जाये, यह स्थिति आध्यात्मिक विकास से आती है। जब तक आध्यात्मिक चक्षु नहीं खुलते तब तक मन में शान्ति नहीं होती। जब तक मन अशान्त है तब तक सुख की प्राप्ति मृगतृष्णा है।[१४] इस त्रिकोणात्मक सामंजस्य तथा समरसता की चर्चा करने पर भी प्लेटो ने अपनी शिक्षा योजना

में इन पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला है। किन्तु इनमें समरसता की स्थिति लाना ही गांधीजी की शिक्षा-योजना की मुख्य विशेषता है। यदि उनकी शिक्षा-योजना को भलीभांति चरितार्थ कर दिया जाय तो इस त्रिपक्षीय सामजस्य की समस्या का समाधान होगा।

प्रत्ययत्रय-सत्य, शिव, सुन्दर—मानव के शाश्वत आदर्श हैं। विश्व के महान् दार्शनिकों ने इन्हें मानवीय जीवन में उतारने की चेष्टा की है। गांधीजी की शिक्षा-भावना को यदि उसके वास्तविक रूप में कार्यान्वित किया जाय तो इस लक्ष्य की उपलब्धि हो सकती है। इस शिक्षा योजना के अनुसार यदि व्यक्तित्व का निर्माण कर दिया जाय तो व्यक्ति अपनी शारीरिक शक्ति को लोकहित में लगायेगा। उसकी निर्मल बुद्धि सत्य का दर्शन करायेगी। उसके कार्यों से संसार की श्री वृद्धि होगी। सौन्दर्य के पुष्प खिल उठेंगे। शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के समरस एवं सम्यक् विकास से पृथ्वी पर ही सत्य, शिव, सुन्दर की सृष्टि होगी।

आज जब मानव जीवन चिन्ता, कुण्ठा, निराशा, आक्रोश, आत्मविरोध तथा अनेक ज्ञात एवं अज्ञात आपदाओं तथा आशंकाओं से त्रस्त है, सभ्यता स्वयं मनुष्य के ही कार्यों के कारण विनाश के द्वार पर खड़ी है, समस्त मानवता आणविक युद्ध से मुक्ति पाने के लिए त्राहि त्राहि कर रही है, गांधीजी की शिक्षा योजना निराशापूर्ण अन्धकार में प्रकाश की किरणें बिखेर रही है। आज के मानवीय सभ्यता के रोग की वह अमोघ औषधि है। हमें उसकी सतही बातों को भूलकर उसकी दार्शनिक भावना को क्रियात्मक रूप में परिणत करना चाहिए।

---

1. आचार्य कृपलानी, The Latest Fad and Basic Education, 8
2. Mahatma Gandhi, Basic Education, 30-31.
3 Ross Ground work of Educational Theory, 52
4 Rusk, The Doctrines of Great Educators, 18
5 Spencer Education 137
6 Locke, Some Thoughts on Education, 7
7 Russell, On Education, 35.
८. देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवं।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥
—गीता १७,१४
९. मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।

व्यावसायिक शिक्षा पर बल

डा० वी० के० आर० वी० राव

मैं हमेशा से इस बात पर बल देता रहा हूँ कि हमारी शिक्षा प्रणाली श्रमिकों की आवश्यकताओं और देश मे विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। सभी शैक्षिक कार्यक्रमो मे ऐसी शिक्षा दी जाय, जो बाद मे काम आये। हमारे देश की विकासशील आर्थिक व्यवस्था मे बहुत से कुशल कर्मचारियो की आवश्यकता है। हमारा प्रयत्न है कि हम ऐसी शिक्षा प्रदान करें, जिसमे निजी काम धधों मे लगनेवाले लोगों को मदद मिले तथा सभी सस्थानो को कुशल कर्मचारी उपलब्ध हो सकें।

इसलिए हमे शिक्षा के कार्यक्रमो के साथ साथ अनेक प्रकार के तकनीकी प्रशिक्षणों पर भी ध्यान देना है, जिसकी आज देश मे सबसे ज्यादा जरूरत है। इसके लिए यह जरूरी है कि शुरू से ही शिक्षा को रोजगार से सबधित किया जाय, ताकि वह देश के आर्थिक विकास में उपयोगी सिद्ध हो। उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे यह बात और जरूरी है। क्योकि उसी स्तर पर बेरोजगारी अधिक है। आगामी वर्षों मे लाखों, करोडो बच्चे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करेंगे। इसलिए इस स्तर पर भी व्यावसायिक प्रशिक्षण आवश्यक है। हमे पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों तथा प्राइमरी मिडिल और माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा के तरीको पर एक बार फिर विचार करना होगा कि इनमे किस हद तक व्यावसायिक शिक्षा देने की क्षमता है तथा शिक्षा का देश के विकास से सम्बन्ध है अथवा नहीं।

हमारी शिक्षा-प्रणाली मे मनुष्य के सर्वांगीण विकास के साथ सभी तरह के कामो के प्रति उनके दृष्टिकोण को विशाल व उदार बनाना होगा। जबतक यह नहीं होगा, तब तक हमारी विकास की योजनाओ की नीव मजबूत नहीं होगी और जब नीव मजबूत नहीं होगी, तब चाहे हम कितनी ही निपुणता और कुशलता से काम लें, हमारा उद्देश्य पूर्ण नही हो सकता।

शिक्षा आयोग की सिफारिशें

शिक्षा आयोग ने '६६ मे प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट मे यह सुझाव दिया था कि शिक्षा जीवन से सम्बद्धित होनी चाहिए अर्थात रोजगार और उत्पादन से सम्बद्ध होनी चाहिए। हर एक व्यक्ति को शिक्षा के साथ साथ कुछ न कुछ

काम का अनुभव भी होना चाहिए—चाहे वह किसी उत्पादन संस्थान मे हो या स्कूल मे, घर मे या किसी खेल मे अथवा किसी कारखाने मे।

शिक्षा आयोग ने इस बात पर भी जोर दिया था कि माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए, तभी शिक्षा उत्पादकता के करीब आ सकती है। विशेषकर यह भारत के लिए ज्यादा जरूरी है। क्योंकि यहाँ की शिक्षा ऐसी है, जो लोगो को सरकारी नौकरियो के लायक ही बनाती है और आदमी को सफेदपोश बना देती है। शिक्षा-आयोग ने भविष्य मे स्कूलो मे दी जानेवाली शिक्षा की रूपरेखा सामान्य शिक्षा और व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा के मिले जुले पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित की थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा को व्यावसायिक पुट देने के मेरे विचार की शिक्षा आयोग ने भी पुष्टि की थी। लेकिन रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद से अब तक शिक्षा के विकास कार्यक्रमों मे आयोग की सिफारिशों पर अमल करने के लिए कुछ भी नही किया गया है।

पूर्व जर्मनी का अनुभव

इसके लिए जरूरत है कुछ ठोस कार्यक्रम निर्धारित करने की। कार्यक्रम निर्धारित करने मे हम ऐसे दूसरे देशो के अनुभवों से मदद ले सकते हैं जहाँ व्यावहारिक तौर पर शिक्षा को व्यावसायिक या तकनीकी रूप दिया गया है।

इस तरह का एक देश पूर्व जर्मनी है। मैंने वहाँ के स्कूलो के पाठक्रमो का अध्ययन करवाया और इससे पता चला कि बहुधधी शिक्षा से देश मे शिक्षा के आधुनिकीकरण मे बडी मदद मिल सकती है। काम का अनुभव पूर्व जर्मनी के स्कूलो की शिक्षा मे अभिन्न अग बन गया है। यह बहुधधी शिक्षा देश के तकनीकी, औद्योगीकरण और खेती सहित सभी उत्पादन नियाओ मे विज्ञान के प्रयोग आदि राष्ट्रीय कार्यक्रमों से भलीभाँति सम्बद्ध है।

हमने सबसे बडी भूल की है कि हमने विभिन्न आयोगो और समितियो की सिफारिशो पर परीक्षा किये बिना ही उन्हें सब जगह लागू कर दिया। यह ठीक नही है। पहले इन सुझावों को कुछ चुने हुए क्षेत्रों में लागू करके देखना चाहिए कि वे किस हद तक उपयोगी हैं। इसीलिए मैंने अध्ययन दल बनाया था, जो शिक्षा को व्यावसायिक रूप देने के कार्यक्रम को देश की परिस्थितियो के सदर्भ मे स्कूल स्तर पर लागू करने के लिए योजनाएँ बनायेगा, जिन्हे कुछ चुने हुए क्षेत्रों मे पहले आजमाइशी तौर पर अमल मे लाया जायगा।

इस अध्ययन दल की रिपोर्ट जनवरी, १९७० में मिली थी और इसकी सिफारिशों को केन्द्र व सभी सरकारों ने मान लिया है। दल ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सभी पहलुओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके प्रायोगिक परियोजनाएँ लागू करने का कार्यक्रम निर्धारित किया है, जिसके निम्नलिखित दो पहलू हैं।

(१) प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों में वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा का प्रारम्भ।

(२) स्कूली शिक्षा प्राप्त न करनेवालों के लिए अनेक प्रकार के व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षणों का आयोजन।

प्रायोगिक परियोजनाएँ

इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए यह निश्चय किया गया है कि इसे कुछ चुने हुए क्षेत्रों की उन संस्थाओं में शुरू किया जाय, जहाँ आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हों। इस कार्यक्रम के साथ-साथ यह भी ध्यान रखा गया है कि प्रशिक्षण प्राप्त लोगों को रोजगार भी तुरन्त मिले। इसके लिए आर्थिक विकास की उन गतिविधियों पर नजर रखनी पड़ती है, जिनसे रोजगार के अवसर पैदा होते हैं। शिक्षा को व्यावसायिक रूप देने के लिए विभिन्न प्रकार के रोजगारों का भी सर्वेक्षण किया गया है।

हमें आशा है कि धीरे-धीरे व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार बढ़ने पर देश में उत्पादन भी बहुत बढ़ेगा।●

('प्रौढ़ शिक्षा' से साभार)

सुलेख

समस्या—(क) प्राइमरी कक्षाओं में लेख-सम्बन्धी त्रुटियाँ।

प्राइमरी कक्षाओं मे निम्नलिखित प्रकार की लेख-सम्बन्धी त्रुटियाँ पायी जाती हैं।

(१) अक्षरों की आकृति-सम्बन्धी त्रुटियाँ।

(२) पंक्ति के ऊपर, मध्य एव नीचे लिखे जानेवाले अक्षरों के आकार मे अशुद्धियाँ तथा असावधानियाँ।

(३) एक अक्षर से दूसरे अक्षर तथा एक शब्द से दूसरे शब्द के बीच में उचित स्थान न छोड़ना।

(४) अक्षर के विभिन्न अंग में आनुपातिक दोष।

(५) नयी लिपि के अनुसार ख, ध, भ आदि अक्षरों के उचित आकृति मे त्रुटियाँ।

(६) शिरोरेखा बनाने मे असावधानी।

(७) परिलेख करना।

(८) मात्रा, अनुस्वार विसर्ग एवं विभिन्न प्रकार के विराम-चिन्हों के बनाने मे त्रुटियाँ।

(९) सामाजिक चिन्हो के बनाने मे गलतियाँ।

(१०) अपठनीयता।

(११) स्वच्छता-शुद्धता एवं गति का अभाव।

(ख) लेख-सम्बन्धी त्रुटियों के सम्भावित कारण

इस दिशा मे निरीक्षित त्रुटियो का वर्गीकरण निम्नांकित रूप से किया जा सकता है—

(अ) अध्यापक से सम्बन्धित त्रुटियाँ।

(ब) लेखन-सामग्री-सम्बन्धी त्रुटियाँ।

(स) आसन-सम्बन्धी त्रुटियाँ।

(अ) अध्यापक से सम्बन्धित त्रुटियाँ—

१—पठनीयता को प्रभावित करनेवाले तत्त्वो से अध्यापक का अपरिचित होना।

२—दोषपूर्ण लेख।

३—लिपि सम्बन्धी त्रुटियों के प्रति संशोधन कार्य करते समय अध्यापकों की उपेक्षापूर्ण नीति एवं उदासीनता।

४—रफ अस्वच्छ (Rough) एवं स्वच्छ (Fair) कार्य का छात्र से अलग अलग कराया जाना।

५—लेखनी आदि के निरीक्षणों में उपेक्षा।

६—छात्रों को उचित आसन से बैठने के लिए आवश्यक निर्देश न देना।

७—सहायक सामग्री का पढ़ाते समय आवश्यकतानुसार प्रयोग न करना।

ग—लेखन-सामग्री-सम्बन्धी दोष

१—लेखन सामग्री—जैसे तख्ती कागज-लेखनी रोशनाई आदि का स्तर के उपयुक्त न होना।

२—फाउन्टेनपन का प्रारम्भिक कक्षाओं में प्रयोग।

घ—आसन से सम्बन्धित त्रुटियाँ

१—बच्चों का लेखासन में न बैठना।

२—कलम पकड़ने की विधि में दोष।

३—अध्यापक का दोषपूर्ण आदर्श।

ङ—लेखन सम्बन्धी त्रुटियों के निवारणार्थ कतिपय सुझाव

१—राजकीय दीक्षा विद्यालयों में तथा क्षेत्रीय प्रति उपविद्यालय निरीक्षकों के क्षेत्रों में त्रिदिवसीय सेवारत प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया जाय। इसमें प्रत्येक विद्यालय से कम से कम एक अध्यापक अवश्य भाग लें। अध्यापकों से लेखन सुधार' विषय के ऊपर चिन्तन कराकर आवश्यक कारण तथा निवारण हेतु सुझाव लेकर आवश्यक निर्देश दिये जायं। उन्हें उनकी कर्तव्य निष्ठा का ध्यान दिलाया जाय।

२—विद्यालयों में फाउन्टेनपन से लिखने का पूर्ण बहिष्कार किया जाय। किलिच, नरकट, सरकंडे की कलम का प्रयोग कराया जाय।

३—प्रारम्भिक कक्षाओं में लगभग आधे सेंटीमीटर खत वाली कलम से अक्षरों के अभ्यास का आरम्भ कराया जाय। साथ साथ यह भी ध्यान रहे कि दो समानान्तर रेखाओं की बीच की दूरी जिसमें अक्षर लिखे जायेंगे खत की पाँचगुनी होगी। कक्षा १ से कक्षा ५ तक खत की यह मोटाई क्रमशः कम होती जायेगी। समानान्तर रेखाओं के बीच जिनमें छात्र अक्षर लिखेंगे छात्र स्वयं अपनी पट्टी पर अंकित करेंगे।

४—अध्यापक उपर्युक्त लेख का आदर्श-रूप श्यामपट्ट पर खडिया की नोक की सहायता से आनुपातिक दूरी रखते हुए करेगा।

५—अध्यापक तख्ती पर व्यक्तिगत सशोधन कार्य छात्र की ही कलम से करेगा। यदि छात्र कोई गलती कर रहा है तो उसका सुधार वह उसी कलम से करके छात्र को दिखायेगा।

६—अध्यापक छात्रो की कलमे बनाने के लिए चाकू अवश्य रखें। कलम का निरीक्षण बार बार किया जाय।

७—श्यामपट्ट की पुताई सप्ताह मे दो दिन अवश्य करायी जाय। इससे छात्र भी अपनी पाटी की सफाई हेतु आवश्यक साख प्राप्त करेंगे।

८—पारम्भिक स्तर पर प्रारम्भ म ही छात्रों द्वारा मासपेशियों के सचालन तथा उनकी गति मे सामजस्य उत्पन्न करने हेतु निम्नाकित प्रयोगो मे छात्रों को पूर्ण अभ्यास दिया जाय।

१—हवा मे अक्षर लिखाये जायें। इसमे अध्यापक स्वय हाथ का सचालन करके छात्र को करना बताये। इससे मुक्तहस्त सचालन का अभ्यास होगा।

२—रेगमाल कागज के कटे हुए अक्षरो पर हाथ फेरकर स्पर्शेन्द्रिय द्वारा अक्षरो के शुद्धतम रूप का ज्ञान कराया जाय।

३—कंकड एव बीज की सहायता से फर्श पर अक्षरो की आकृतियाँ बनाकर तत्पश्चात् वैसा ही बनवाकर अभ्यास कराया जाय।

४—जमीन पर धूल म या बालू बिछाकर अंगुलियों की सहायता से अक्षर का अभ्यास कराया जाय।

५—खडिया, गेरू, रामरज के टुकडो से स्वतत्र भाव प्रकाशन कराकर छात्र द्वारा बनाये गए चित्र पर मौखिक-भाव प्रकाशन कराया जाय।

कक्षा २ में सुलेख का सुधार

१—समस्या का चुनाव—कक्षा २ मे सुलेख का सुधार

२—समस्या का परिभाषीकरण तथा सीमाकन—सुलेख का अर्थ है, सुन्दर लेख। कक्षा २ के बालक, भाषा लिखने का काम अशुद्ध एव अनियमित रूप से करते हैं। भाषा लेखन का काम कक्षा १ से ही आरम्भ हो जाता है और इसी कक्षा से सुलेख का काय आरम्भ करा दिया जाना चाहिए। अगर असुन्दर लेख की आदत छात्रो मे लेखन-कार्य करने के प्रारम्भ मे ही पड जायेगी, तो फिर उनका लेख हमेशा के लिए खराब हो जायेगा। अत कक्षा २ से ही प्रत्येक अध्यापक को छात्रो से सुलेख का कार्यारम्भ करा देना चाहिए।

३—शोध-कार्य की विधि का चयन—छात्रों के लेखन-कार्य में निम्नलिखित विकृतियाँ सामने आती हैं—

(क) अक्षरों का मोटा पतला होना।

(ख) अक्षरों का छोटा-बड़ा होना।

(ग) अक्षरों का सीधी पंक्तियों में न लिखा जाना।

(घ) अक्षरों में सुडौलता की कमी।

(ङ) अक्षरों में सुन्दरता की कमी।

(च) अक्षरों का तख्तियों, कापियों स्लेट आदि पर लिखे जाने के कारण उनमें एक-रूपता की कमी।

(छ) अक्षरों का पेंसिल, कलम, खड़िया या बत्ती फाउन्टेनपेन, स्लेट-बत्ती आदि द्वारा लिखे जाने के कारण समानता, एकरूपता और सुन्दरता की कमी।

(ज) अक्षरों के झुकाव में एकरूपता का अभाव।

(झ) अक्षरों और शब्दों के बीच समान अन्तर न होना।

विभिन्न स्कूलों की कक्षा २ के बालकों के लेखन कार्य का निरीक्षण करके भद्दे और कुरूप भाषा लेखन सम्बन्धी आंकड़े तैयार किये जायेंगे और यह देखा जायेगा कि बालकों में असुन्दर लेख की प्रवृत्ति क्यों और कैसे आ जाती है। उसके क्या कारण हैं? असुन्दर लेख के सम्भावित कारण ये हैं—

१—अक्षरों की आकृतियाँ कठिन होना।

२—अक्षरों की आकृतियों को बनाने का क्रम बालक को न आना।

३—लाइनें खींचकर लिखने का अभ्यास न करना।

४—लेखन-कार्य कलम से न करना।

५—लेखन कार्य पेंसिल, फाउन्टेनपेन आदि से करना।

६—लेखन कार्य तख्ती व कापी दोनों पर किसी नियमित ढंग से न करना।

७—अध्यापक द्वारा मार्ग-प्रदर्शन का अभाव।

८—बालकों की बार बार गलती करने की प्रवृत्ति।

९—कलम, खड़िया व स्याही का ठीक न होना।

१०—छात्र का गलत ढंग से कलम पकड़ना।

११—सुलेख कार्य में दैनिक अभ्यास की कमी।

१२—सुलेख में सुधार की कमी।

तथ्यों का संकलन एवं उनकी व्याख्या

४—असुन्दर लेखों के नमूनों का संकलन किया जायेगा और उनके कारणों

का स्पष्टीकरण खोजा जायेगा। प्रत्येक असुन्दर लेख बालकों के समक्ष रखा जायेगा। और उसकी तुलना सुन्दर लेखन से की जायेगी। छात्रों के सुन्दर लेख के नमूने प्रदर्शित किये जायेंगे और आवश्यकतानुसार दफ्ती पर श्यामपट्ठ पर सुन्दर लेख उनके समक्ष लिख दिये जायेंगे और छात्रों को उनका अनुसरण करने को कहा जायेगा। इस कार्य में सुलेख-कापियों की भी सहायता ली जायेगी। असुन्दर लेख के प्रत्येक नमूने का कारण स्पष्ट करके उसका निवारण किया जायेगा तथा बालकों को सुलेख की प्रेरणा दी जायेगी।

५—निष्कर्ष—सुलेख का अभ्यास प्रत्येक छात्र द्वारा नियमित रूप से कराया जाय। सुलेखकार्य कराते समय निम्नलिखित सावधानियाँ बरती जायेंगी।

(१) बालकों के बैठने का ढंग ठीक हो। वे सीधे बैठें, झुकें नहीं। लिखते समय उनकी रीढ़ की हड्डी सीधी रहे, झुके नहीं। चाहे बालक अपने आगे पड़ी चौकी पर कापी अथवा तख्ती रख कर लिखे, उसकी आँखें कापी अथवा तख्ती से एक फुट दूर रहे।

(२) लेखन-कार्य का काम कक्षा २ में तख्तियों पर ही कराया जाय, कापियों पर नहीं।

(३) लेखन-कार्य कराने से पहले तख्ती पर तीन समानान्तर रेखाएँ खिंचवा दी जायें। प्रथम दो रेखाएं $\frac{1}{4}$ इंच की दूरी पर, दूसरी और तीसरी रेखाओं के बीच में अक्षर रेखाएं $\frac{3}{4}$ इच की दूरी पर होनी चाहिए। दूसरी और तीसरी रेखाओं के बीच मे अक्षर तथा पहली और दूसरी रेखाओं के बीच मे मात्राएँ लिखवायी जायें।

(४) कक्षा २ में बालकों से सरकंडे की कलम से ही लिखवाना चाहिए। कलम या लेखनी ४५° से ६०° तक आवश्यकतानुसार कटी हुई होनी चाहिए।

(५) कलम पकड़ने के ढंग पर अवश्य ध्यान दिया जाय। बालक द्वारा कलम इस प्रकार पकड़ी जानी चाहिए कि कलम का खत तख्ती के पूरे धरातल को छूता चले। ऐसा न हो कि बालक कलम की नोक से ही अक्षर लिखे। लेख प्रारम्भ कराने से पहले बालक द्वारा सीधी, पड़ी और आड़ी रेखाएँ तथा गोले खिंचवाये जायें।

(६) सुन्दर तथा सुडौल अक्षर लिखने के अभ्यास की ओर छात्रों को प्रवृत्त किया जाना चाहिए। सुन्दर और सुडौल अक्षरों से तात्पर्य है अक्षर के प्रत्येक अंग का ठीक-ठीक अनुपात होना। अक्षर न बहुत छोटे और न बहुत बड़े और न बेढंगे रूप से लिखे जायें। लेख सुन्दर होना चाहिए।

(७) सुन्दर लेख के लिए नीचे लिखी बातें ध्यान में रखी जायें—दो शब्दों के बीच में कम-से-कम एक अक्षर के आकार का समान अन्तर छोड़ दिया जाय। दो पंक्तियों के बीच में भी कुछ अन्तर अवश्य होना चाहिए।

(८) सुलेख का कार्य कक्षा के बालकों द्वारा अध्यापक अपनी देख-रेख में कराये। वह प्रत्येक बालक की कापी की ओर ध्यान दे। वह बालकों के बैठने के ढंग, तख्ती रखने, कलम पकड़ने और अक्षर लिखने की ओर पूरा ध्यान दे। जो बालक गलती करे, वह उसे ठीक करता चले, ताकि बालक की गलती का निराकरण होता चले और बालक को तत्काल लाभ मिलता चले। अध्यापक की लापरवाही अथवा देख-रेख की कमी के कारण छात्र को कोई लाभ नहीं पहुँचेगा और उसके सुलेख-सुधार की संभावना कम हो जायेगी।

वर्तनी-सुधार

वर्तनी में निम्नलिखित प्रकार की अशुद्धियाँ पायी जाती हैं।

१ ह्रस्व व दीर्घ मात्राओं की अशुद्धियाँ।

२. श, ष, स के उच्चारण तथा संयुक्ताक्षर और प्रयोग की अशुद्धियाँ।

३. अर्ध, अर्द्ध, शब्द आह्वान आदि तथा बिना पाई वाले वर्ण जैसे ट, ठ, ड, ढ, द, ह और छ के संयुक्ताक्षर की अशुद्धियाँ।

४. र, क संयुक्ताक्षर की अशुद्धियाँ तथा हलन्त होने पर तथा अन्य वर्णों के हलन्त होने पर र के साथ संयुक्ताक्षर सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

५ ऋषि, रिषि, ग्रह, गृह, त्रिया, कृपा, कृपया आदि के संयुक्ताक्षर की अशुद्धियाँ।

६ अनुस्वार और विसर्गवाली अशुद्धियाँ।

७. समास और संधि-सम्बन्धी शब्दों की अशुद्धियाँ।

८. ड, ढ, ड़, ढ़ सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

९. अंतिम सानुनासिक वर्णों की संयुक्ताक्षर-सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

वर्तनिक अशुद्धियों के कारण

१. अध्यापकों के वर्तनी-नियमों के ज्ञान का अभाव तथा रुचि का अभाव।

२ अध्यापक द्वारा शब्दों का अशुद्ध उच्चारण करना।

३. शुद्ध उच्चारण का अभ्यास तथा अशुद्ध उच्चारण एवं लेखन के तात्कालिक संशोधन का नितांत अभाव।

४. छात्रों के सम्मुख पत्र, पत्रिकाएँ, साइन-बोर्ड, विज्ञापन, पुस्तकों में अशुद्ध प्रयोग के उदाहरण।

५ लिखित-कार्य, जैसे श्रुति-लेख, सुलेख अनुलेख आदि के अभ्यास का पर्याप्त अभाव।

६ पठन कार्य के अभ्यास का अभाव।

सुधारात्मक सुझाव

अल्पकालीन

१ अध्यापक पाठ मे आये हुए नवीन शब्दो को श्यामपट्ट पर लिखें तथा स्वय शुद्ध उच्चारण करें और छात्रो से शुद्ध उच्चारण करायें, कुछ छात्रों को श्यामपट्ट पर बुलाकर लिखवाने का अभ्यास करायें।

२ लिखित-कार्यों में पठित नवीन शब्दों का समावेश कर शुद्ध लिखवाने का अभ्यास कराया जाय।

३ अध्यापक को उच्चारण एव लेखन के तत्कालीन सशोधन के प्रति विशेष रूप से जागरुक होकर तत्परता के साथ सशोधन एव शुद्ध रूप का अभ्यास कराना चाहिए।

४ अध्यापक विद्यालय म शब्द-कोष का समुचित प्रयोग करे। छात्रों की क्षमता के अनुसार उन्हे भी शब्द कोष को प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करें।

५ भाषा विषय के अतिरिक्त अन्य विषय के अध्यापको को भी इस ओर विशेष रूप से जागरुक व सतर्क रहना चाहिए।

६ प्रधानाध्यापक एव निरीक्षक को भी इसके प्रति सदैव सतर्क रहना चाहिए और आवश्यकतानुसार निरीक्षण एव निर्देशन करना चाहिए।

७ अध्यापक को कक्षा मे प्रयोग किये गये अशुद्ध शब्दो की एक सूची बना कर व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से शुद्ध रूप का अभ्यास कराना चाहिए।

८ विद्यालय मे उत्सव के अवसरो पर छोटे प्रहसन द्वारा शुद्ध उच्चारण को प्रोत्साहन दिया जाय।

६ प्रधानाध्यापक एव निरीक्षण वग इस सूची का समय समय पर निरीक्षण करें। कक्षाध्यापक हर महीने इस कार्य की प्रगति पर ध्यान रखे।

१० छात्रो से कठिन तथा नवीन शब्दो की सूची बनवायी जाय।

११ छात्रो से अक्षर जोडकर शब्द बनाने के खेल करायें जायें तथा कक्षा को टोलियो मे बाँटकर वतनी प्रतियोगिता करायी जाय, और समय-समय पर अच्छे छात्रो को पुरस्कृत एव सम्मानित किया जाय।

१२ प्रतिदिन प्रार्थना के समय शुद्ध उच्चारण करनेवाले छात्रो से वाक्यांश पढवाकर शुद्ध उच्चारण का आदर्श प्रस्तुत कराया जाय।

१३. अध्यापक श्रुतिलेख तथा वस्तुनिष्ठ-परीक्षण का प्रयोग विशेष रूप से करें।

दीर्घकालीन :—(१) प्रशिक्षण-विद्यालयों में शुद्ध वर्तनी-सम्बन्धी प्रशिक्षण एवं परीक्षण की सम्भावनाओं पर विचार करना उचित होता है।

२. शिक्षकों के लिए वर्तनी प्रशिक्षण-शिविरों का आयोजन किया जाय।

३ विद्यालयों में पुस्तकालयों एवं वाचनालयों को प्रभावशाली बनाने का विशेष आयोजन किया जाय।

(१) ह्रस्व व दीर्घ मात्राओं की अशुद्धियाँ :—

शुद्ध शब्द	अशुद्ध शब्द
नीरोग	निरोग
शक्ति	शक्‍ति
इक्के	ईक्के
विद्या	वीद्या
दुकान	दूकान
रुपया	रूपया
सूर्य	सुर्य
झूला	झुला

(२) श, ष, स के उच्चारण तथा संयुक्ताक्षर और प्रयोग की अशुद्धियाँ

शुद्ध शब्द	अशुद्ध शब्द
तुषार	तुसार
रश्मि	रस्मि
वेष-भूषा	वेश भूसा
कष्ट	कस्ट
आशिष	आशिश
रिक्शा	रिक्सा
दृश्य	दृष्य
दृष्टि	दृश्टि

(३) बिना पाई वाले जैसे ट, ठ, ड, ढ, ह और ङ के संयुक्ताक्षर की अशुद्धियाँ

शुद्ध शब्द	अशुद्ध शब्द
अर्द्ध	अर्ध
शब्द	शब्द
आह्वान	आव्हान
विद्वान	विव्दान
चिट्ठियाँ	चिट्‌ठियाँ
उद्भव	उद्‌भव
पद्म	पदम
विद्यमान	वियमान

(४) र के संयुक्ताक्षर की अशुद्धियाँ तथा र हलन्त होने पर तथा अन्य वर्णों के हलन्त होने पर र के साथ संयुक्ताक्षर-सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

शुद्ध शब्द	अशुद्ध शब्द
पुर्तगाल	पुतर्गाल
कर्मचारी	कमर्चारी
पर्याप्त	प्रयाप्त
विधर्मी	विधरमी
वर्षा	बरसा
मूर्ख	मूरख
व्यर्थ	व्यथ
सर्व	सरव
गर्व	गरव

(५) ऋ अक्षर के संयुक्ताक्षर की अशुद्धियाँ।

शुद्ध शब्द	अशुद्ध शब्द
ऋषि	रिषि
गृह	ग्रिह
कृपा	क्रिपा
घृणा	घ्रिणा
शृगाल	स्रिगाल
मृत्यु	म्रित्यु

(६) अनुस्वार व विसर्ग वाली अशुद्धियाँ।

शुद्ध शब्द	अशुद्ध शब्द
अँधेरा	अधेरा
डाँवाडोल	डावाडोल
जलूँगी	जलूगी
बचूँगी	बचूगी
कुँअर	कुअर

शुद्ध	अशुद्ध
शासन केन्द्र	शासन केन्द्र
मुख्य मन्त्री	मुख्य मत्री
देश विदेश	देश विदेश
विधान परिषद्	विधान परिषद
कला कौशल	कला कोशल
अन्वेषण (अनु + एषण)	अनवेषण
अतस्तल (अत + तल)	अतस्थल
निष्कर्ष (निः + कर्ष)	निश्कर्ष

(८) ड, ड़, ढ, ढ़-सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

शुद्ध शब्द	अशुद्ध शब्द
पढ़ूँगी	पढूँगी
मेढक	मेढ़क
पढ़ना	पढना
गुड़िया	गडिया

२. परिभाषीकरण एव सीमाकन—हिन्दी की वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

हिन्दी वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ छात्रो मे प्रारम्भिक स्तर से ही आरम्भ हो जाती है। भाषा लेखन का काम बालक कक्षा १ और २ से आरम्भ कर देता है। परन्तु यह लेखन बिलकुल आरम्भ मात्र है। इस लेखन मे काफी अशुद्धियाँ रहती हैं। इन अशुद्धियों का निराकरण कक्षा ३ से ही शुरू हो जाना चाहिए। अगर इस कक्षा से अक्षर-सम्बन्धी अथवा भाषा-सम्बन्धी अशुद्धियो का निराकरण नही किया जायगा, तो बालक को अशुद्ध भाषा लिखने की आदत पड जायेगी और फिर उसे शुद्ध करने का काम अत्यन्त कठिन हो जायगा। अत यह परम आवश्यक है कि कक्षा ३ के बालको द्वारा की गयी वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियो को दूर करने का प्रयास किया जाय और उन्हे शुद्ध शब्द व शुद्ध भाषा लिखने की ओर प्रवृत्त किया जाय।

३. शोध कार्य की विधि का चयन

सर्व प्रथम शोध कर्त्ता विभिन्न विद्यालयो मे कक्षा ३ के बालको के लेखन का सकलन करके निरीक्षण करेगा और विभिन्न प्रकार की शब्द सम्बन्धी अशुद्धियो को एकत्र करेगा। वह यह देखेगा कि शब्द-लेखन मे छात्र किस प्रकार की अशुद्धियाँ करते हैं। अशुद्धियाँ-सम्बन्धी सामान्य निष्कर्ष निकालकर वह उनके निराकरण की विधि भी खोजेगा। सामान्यत वर्तनी-सम्बन्धी निम्न प्रकार की अशुद्धियाँ हमारे सामने आती हैं।

(क) मात्रा-सम्बन्धी अशुद्धियाँ—

शुद्ध	अशुद्ध
इमली	ईमली, इमलि, भिमली
इस	ईस
रुपया	रूपया
चतुर	चतूर

(ख) स्वर-सम्बन्धी अशुद्धियाँ—

जाति	जाती
शांति	शांती
कवि	कवी

(ग) व्यजन-सम्बन्धी अशुद्धियाँ—

पर्वत	परवत
ऋतु	रितु
श्रीमती	शिरीमती
प्रणाम	परनाम
मर्यादा	मरजादा
हिमालय	हिमालिया

(४) अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनि सम्बन्धी अशुद्धियाँ—

जगल	जन्गल
अदा	अन्दा
अक	अन्क
चचल	चन्चल

(५) सयुक्ताक्षर-सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

वंद्य	वंदय
निश्चय	निशचय

स्नान	असनान	मच्छर	मक्सर
अक्षर	अकक्षर		

प्राय. अनुभव किया गया है कि वर्तनी-सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की अशुद्धियाँ बालक गलत स्थानीय उच्चारण के कारण करते हैं। अशुद्ध उच्चारण का परिणाम होता है अशुद्ध वाणी विन्यास स और श के उच्चारण दोष के कारण अक्षर ज्ञान भी अशुद्ध हो जाता है। बंगाली लोग सुन्दर को शुन्दर बोलते हैं। नाक से उच्चारण करने वाले व्यक्ति अनावश्यक अनुस्वार लगाते हैं। फलत: भाषा अशुद्ध लिखी जाती है। इ के स्थान पर ई और उ के स्थान पर ऊ का प्रयोग अवसर देखने को मिलता है। लिपि—ज्ञान के अभाव के कारण भी बहुत-सी अशुद्धियाँ होती हैं। व तथा ब, स, श, ष का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण बहुत-सी त्रुटियाँ होती हैं। रेफ लगाने का उचित स्थान छात्रों को ज्ञात नहीं होता। वे दर्शन के स्थान पर दर्सन और संघर्ष के स्थान पर संघर्स लिखेंगे। इसी प्रकार अनुस्वार-सम्बन्धी भूलें बहुत होती हैं। अनुनासिक और अनुस्वार का भेद छात्रों के मन में स्पष्ट होना चाहिए। चाँद अनुनासिक है, चंदा में अनुस्वार लगाया गया है।

अन्य भाषाओं और विभिन्न प्रांतीय भाषाओं के कारण भी वर्ण-विन्यास में परिवर्तन आ गया है। जैसे हम राम को रामा कहते हैं।

उर्दू के शब्दों का ठीक उच्चारण करने के लिए अक्षरों के नीचे बिन्दी लगाकर काम चलाया जा रहा है। जैसे क ख ग ज फ आदि। सिंधी में ड को र उच्चारित करते हैं जैसे सड़क को सरक। पंजाबी में और को होर, समुद्र को 'समुन्दर' सुरेन्द्र को सुरेन्दर उच्चारण करते हैं। संयुक्ताक्षर लिखने में भी एक अक्षर बड़ी आसानी से छूट जाता है जैसे अध्ययन को अध्यन और उज्ज्वल को उज्वल।

४. तथ्यों का सकलन एवं उनकी व्याख्या—शोध-कर्ता कक्षा ३ के बालकों की लिखित भाषा से अशुद्ध लिखित शब्दों का संकलन करेगा और उनका कारण खोज निकालेगा। यह कारण उपरोक्त कारणों में से कोई भी हो सकता है। तब छात्रों के उच्चारण को ठीक करके वह उन्हें शुद्ध शब्द लिखने की ओर प्रवृत्त करेगा और इस प्रकार की अशुद्धियों का निराकरण करेगा।

५. निष्कर्ष :—छात्रों की वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों का निराकरण (१) सर्वप्रथम छात्रों को शुद्ध उच्चारण की शिक्षा देनी चाहिए। रायबर्न के अनुसार शुद्ध उच्चारण की शिक्षा बालकों को शुद्ध वर्णविन्यास सीखने में

अत्यधिक सहायता पहुँचायेगी। हिन्दी भाषा का प्रधान गुण ही यह है कि उसमे जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। अत बालको को पढने के लिए यथेष्ट अवसर दिये जायें। वह जितनी अधिक पुस्तकें पढ़ेगा उतना ही उसका वर्ण विन्यास स्थायी और व्यापक होगा।

(२) लिपि का पूर्ण ज्ञान देना अध्यापक का प्रमुख कर्त्तव्य है। रेफ कहाँ और कब लगती है र और ऋ जैसे ग्रह और गृह का अन्तर उसे स्पष्ट करना चाहिए।

(३) प्रतिलिपि यानी नकल करने के अवसर बालक को अधिक दिये जायें। बालक जितनी बार एक शब्द लिखेगा उतना ही उसे वह ठीक लिखेगा। बालक के नेत्र, मुख और हाथ एक साथ काम करेंगे।

(४) श्रुत लेख के द्वारा भी सीखे हुए शब्दों का लेखन पुष्ट होता है।

(५) अशुद्धियो का निर्देशन करके शब्दों के शुद्ध रूप फिर लिखाये जाने चाहिए। मौखिक कार्य द्वारा भी अशुद्धियो का निराकरण कराया जा सकता है, जिसे यांत्रिक-अभ्यास कहते हैं। यह अभ्यास पहले व्यक्तिगत रूप से फिर समवेत स्वर मे कराया जाय। अशुद्धियो को दूर करने के लिए श्यामपट्ट पर भी सहायता ली जा सकती हैं।

(६) छात्रों को एक शब्द-पुस्तिका बनवा दी जाय। छात्र इसम शब्दों के अशुद्ध रूप लिखे और उन्हे उनके शुद्ध रूप खोजने का प्रयास करे और अध्यापक उसकी सहायता करे।

(७) वर्ण विन्यास सम्बन्धी खेलो का प्रयोग।

अक्षर या वर्तनी प्रतियोगिता — कक्षा को दो भागो में विभाजित करके बारी-बारी से वर्ण विन्यास पूछा जाय। अधिक शुद्ध शब्द बतानेवाले को विजयी घोषित किया जाय। दोनों दलो का एक एक नेता भी होना चाहिए।

(८) समूह-खेल—(क) श्यामपट्ट पर एक-एक शब्द लिखकर अध्यापक उन्हें मिटाया जायगा। मिटाने के उपरान्त पूर्ण कक्षा उसे लिखेगी। अशुद्ध लिखनेवाला छात्र शुद्ध रूप को कई बार लिखेगा।

(ख) किसी भी सार्थक शब्दों के वर्णों को मिलाकर श्यामपट्ट पर लिख दिया जाय। बच्चे उनसे वास्तविक शब्द लिखेंगे।

(ग) एक बहुत लम्बा शब्द श्यामपट्ट पर लिख दिया जाय जिसके प्रत्येक अक्षर को लेकर बच्चे उतने शब्द लिखते चले जायँ, जितने उन्हें आते हो।

(घ) कुछ निरर्थक शब्द लिख दिये जायें जैसे "मगलप"। छात्रो को उनके शुद्ध शब्द बताने के लिए कहा जाय।

(ङ) शब्द के अंतिम अक्षर से नवीन शब्द का उच्चारण किया जाय जिसे अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता कहा जा सकता है।

प्राथमिक विद्यालयों में निम्नलिखित विषयों पर शोधकार्य तुरन्त आरम्भ किया जा सकता है। (१) उच्चारण का सुधार (२) व्यक्तिगत स्वच्छता (३) संशोधन-कार्य (४) छात्रों में शिष्टाचार का विकास। दीक्षा-विद्यालयों में निम्नलिखित विषयों पर शोध-कार्य करने की आवश्यकता है। (१) सहायक-सामग्री की तैयारी (२) पाठ-संकेत में सुधार (३) वृहत कक्षा-शिक्षण (४) बहु-कक्षा शिक्षण (५) वर्तनी का सुधार।

प्रारम्भिक पाठशाला में वर्तनी सुधारने का अभ्यास।

कक्षा ३

बालकों की अक्षर-विन्यास-सम्बन्धी त्रुटियों का उनके लिखित कार्य के आधार पर सर्वेक्षण तथा वर्गीकरण।

वर्गीकृत सूची प्रस्तुतीकरण

हृस्व तथा दीर्घ		रेफ रकार		दन्त एव मूर्धन्य		क+ष् मिश्रण		अन्य	
प्रचलित अशुद्ध	शुद्ध	प्रचलित अशुद्ध	शुद्ध	प्रचलित अशुद्ध	शुद्ध	प्रचलित अशुद्ध	शुद्ध	प्रचलित अशुद्ध	शुद्ध
परिक्षा	परीक्षा	आदर्णीय	आदरणीय	देस	देश	क्षात्र	छात्र	ग्रह	गृह
ठिक	ठीक	विर्धार्थी	विद्यार्थी	हमेसा	हमेशा	स्वक्ष	स्वच्छ	ब्रुज	ब्रज
दिजिए	दिजिए	आर्शीवाद	आशीर्वाद	पुस्प	पुष्प	इक्षा	इच्छा	क्रष्णा	कृष्ण

ख--परिकल्पनाएँ—

(१) यदि बालकों को पर्याप्त मौखिक अभ्यास शुद्ध उच्चारण द्वारा कराया जाय तो अक्षर विन्यास (वर्तनी) में सुधार सम्भावित है।

(२) यदि बालकों को पर्याप्त लिखित अभ्यास विशुद्ध रूप में कराया जाय तो अक्षर-विन्यास (वर्तनी) में सुधार हो सकता है।

(३) पर्याप्त श्रुत लेख अभ्यास-सम्बन्धी कार्य को समय-विभाजक-चक्र में सम्मिलित कर लिया जाय तो अक्षर-विन्यास (वर्तनी) में सुधार हो सकता है।

(४) लिखित तथा मौखिक रूप से अध्यापक द्वारा आदर्श-उच्चारण-प्रस्तुतीकरण तथा छात्रों द्वारा लिखित एवं मौखिक अनुकरण-उच्चारण-अभ्यास द्वारा अक्षर-विन्यास (वर्तनी) सम्बन्धी त्रुटियों का निवारण किया जा सकता है।

(५) पारस्परिक मूल्याङ्कन द्वारा त्रुटियो का निवारण सम्भावित है।

(जैसे—अध्यापक द्वारा श्यामपट्ट पर प्रस्तुत किये गये शब्दो के शुद्ध रूपों के आधार पर छात्रों द्वारा एक दूसरे के लेख का सशोधन)।

(ग) शोध कर्ता चतुर्थ परिकल्पना को प्राथमिकता देते हुए उसके स्थायीकरण हेतु लगभग एक माह पश्चात परीक्षा लेगा।

परीक्षा विधि—

(१) शुद्ध अशुद्ध शब्दों के प्रस्तुतीकरण द्वारा।

(२) रिक्त स्थानों की पूर्ति द्वारा।

(३) दिये गये शब्दो के आधार पर रिक्त स्थानों की पूर्ति कराना।

(घ) परीक्षा परिणाम के आधार पर सम्पूर्ण शब्दो में अशुद्ध शब्दो के प्रतिशत, अनुपात तथा पुन पुनरावृत्ति (Frequency) के स्वरूप की पहिचान।

प्रतिशत—अशुद्ध शब्दों की सख्या

तथा ———————————— × १००

अनुपात—सम्पूण शब्दों का योग

पुन – पुनरावृत्ति (Frequency)

तथा —कुल शब्दों का योग १८

अनुपात (Ratio) शुद्ध शब्दों का योग—८

अशुद्ध शब्दों का योग—१०

(क) दीर्घ

तथा

ह्रस्व सम्बन्धी—७

रेफ रकार सम्बन्धी—३

नोट उक्त परीक्षा के आधार पर तथ्यो का सकलन तथा परिकल्पना की सत्यता पर निष्कर्ष निकाला जायेगा। यदि परिकल्पना सत्य प्रमाणित होती है तो उसे अपनाया जायेगा अन्यथा अन्य उपर्युक्त परिकल्पनाओं की जाँच की जायेगी।

(ङ) परिणाम दीर्घ तथा ह्रस्व त्रुटियाँ अधिक तथा प्रचुर सख्या मे हैं। अत इसके सम्बन्ध मे वाञ्छनीय अभ्यास की आवश्यकता है।

निम्न विधियों को प्राथमिकता दी जाय।

सुधार विधियाँ—(१) शुद्ध शब्दों का चयन करना तथा चार्ट पर उल्लेख करना।

(२) कार्ड-बोर्ड के टुकड़ों पर अक्षरों को लिखना तथा बालकों द्वारा शुद्ध शब्द बनवाना।

(३) कार्ड बोर्ड के टुकड़ों पर शब्दों के शुद्ध रूप तथा अशुद्ध रूप को लिखना तथा बालक से पहचनवाना।

लिखने की ह्रस्व व दीर्घ त्रुटियों का निवारण

(अ) कक्षा में केवल खड़ी बोली के शब्द बोलने व लिखने में व्यवहार किये जायें। अध्यापक स्वयं बालकों से खड़ी बोली में बात करे, एवं तत्कालीन बालकों को एक दूसरे से खड़ी बोली में बात करने को कहे। उच्चारण में ह्रस्व व दीर्घ अक्षरों की पूर्ण शुद्धता का पालन करें।

(ब) पोस्ट-आफिसों, बस-स्टेशनों, रेलवे स्टेशनों, सड़कों, सार्वजनिक स्थानों पर लिखे व टाँगे जानेवाले पट्टों को लिखनेवालों की दीर्घकालीन योग्यता का प्रमाणित होना तथा पट्टों की जाँच की व्यवस्था एक आयोग द्वारा करवाने के पश्चात् ही उन्हें टाँगने की अनुमति दी जाय।

(स) व्यक्तिगत ढंग से त्रुटिपूर्ण उच्चारण की जानकारी तत्कालीन अध्यापक व बालकों को कराना तथा उसका शुद्ध अभ्यास कराना। आदर्श पाठ, कठिन शब्दों का उच्चारण दीक्षा काल में विशेष रूप से कराया जाय तथा विद्यालयों का निरीक्षण करते समय एक केन्द्र के अध्यापकों को बुलाकर सामूहिक रूप से सामान्य अशुद्धियों का निर्देश करना तथा उनका शुद्ध अभ्यास कराना।

(द) श्रुत लेख के संशोधन को बच्चों द्वारा सम्पन्न कराना, श्रुत लेख लिखाने के बाद कठिन शब्दों या त्रुटिपूर्ण तत्कालीन शब्दों को श्यामपट्ट में अंकित करके एक दूसरे बालकों से परस्पर त्रुटियों का संशोधन करवाना।

सामान्य त्रुटियों का चार्ट बनाना व शुद्ध रूपों का अभ्यास कराना।

(य) अध्यापकों की जानकारी हेतु विद्यालय में संदर्भ-ग्रन्थ दीर्घकाल के लिए उपलब्ध कराये जायें। इस हेतु प्रत्येक विद्यालय में उच्चस्तर का भाषा-कोष उपलब्ध कराना है। बालकों में भी शब्दों की शुद्धता-हेतु शब्द-कोषों के प्रयोग की आवश्यकता अनुभव कराना है।

(फ) पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य पुस्तकों का अध्यापक द्वारा दीर्घकालीन

अध्ययन करना। उनके अध्ययन द्वारा भाषा-शिक्षण को सक्षम बनाया जाय। कुंजियों का बहिष्कार कराया जाय।

(र) बालक की शारीरिक त्रुटियों के निवारण हेतु विशिष्ट परीक्षण करना तथा शारीरिक त्रुटियो की जानकारी हो जाने पर उन्हें मनोविज्ञान-शालाओं मे भेजना चाहिए। उनके परीक्षण एवं त्रुटि-निवारण हेतु अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करके बालकों को भिजवाना चाहिए।

(क) अध्यापक को इस बात के लिए सतर्क रहना चाहिए कि बालक के मन मे विषय या अध्यापक के प्रति कोई मानसिक ग्रन्थि न बनने पाये। और यदि घर मे कोई ग्रन्थि दीर्घकालीन बन गयी हो तो उसे दूर करने का मनोवैज्ञानिक प्रयत्न करना चाहिए। इस हेतु अध्यापकों को बालकों से स्नेह तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

वर्तनी सुधार-हेतु अभिमत —

१—प्रत्येक क्षेत्रीय प्रति-उप विद्यालय-निरीक्षक अपने विद्यालयों में तथा दीक्षा विद्यालय के प्रधानाचार्य अपने छात्राध्यापकों का वस्तुनिष्ठ सर्वेक्षण करके विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं मे प्रयुक्त होनेवाले ऐसे शब्दों की सूची बना ले जहाँ छात्र प्रायः भूल करते हुये पाये जाते हैं। अध्यापक एवं छात्राध्यापक का कर्तव्य होगा कि शब्दों के शुद्ध रूप से परिचित हो जायें।

२—प्रत्येक विद्यालय मे शब्द-कोष उपलब्ध कराया जाय।

३—अध्यापक एवं छात्राध्यापक द्वारा शब्दों के शुद्ध उच्चारण एवं शुद्ध वर्तनी पर बल दिया जाय।

४—शिक्षाधिकारी एवं अन्य लोगों का यह कर्त्तव्य होगा कि पाठ्य पुस्तकों एवं विज्ञापनों तथा सूचना-पट्ट (साइन बोर्ड) पर लिखी अशुद्ध वर्तनी छात्र के सम्मुख न आने पाये।

५—अध्यापक सूचीबद्ध शब्दों को स्वयं श्यामपट्ट पर लिखकर उनके शुद्ध उच्चारण का अभ्यास करायें।

६—अध्यापक श्रुत लेख, निबन्ध तथा अन्य लिखित कार्यों में नवीन कठिन शब्दों का प्रयोग करायें।

७—कक्षा मे समय-समय पर वस्तुनिष्ठ-परीक्षा द्वारा वर्तनी की परीक्षा ली जाय।

८—कठिन शब्दों के उदाहरण विभिन्न परिस्थितियों में जैसे द्रुत पाठ्य-पुस्तक, पत्र-पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, सूचना-पट्ट, बुलेटिन-बोर्ड द्वारा प्रस्तुत किये जायें।

९—छात्रों के लिखित-कार्य का संशोधन अत्यन्त सावधानी से किया जाय।

१०—छात्र शब्द पुस्तिका का अभ्यास करें, साथ ही-साथ शब्दकोष का भी प्रयोग किया जाय।

११—अध्यापक अपनी कक्षा में ऐसे शब्दों की एक सूची बना ले जिसकी वर्तनी में बालक अधिकांश त्रुटियाँ करते हों। इस सूची के आधार पर व्यक्तिगत अभ्यास कराया जाय तथा प्रगति देखी जाय।

१२—छात्रों में शब्द निर्माण, खेल तथा वर्तनी-प्रतियोगिता करायी जाय।

—राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तरप्रदेश

"नयी तालीम" मासिक का प्रकाशन-वक्तव्य

(न्यूजपेपर रजिस्ट्रेशन ऐक्ट (फार्म न० ४, नियम ८) के अनुसार हर अखबार के प्रकाशक को निम्न जानकारी प्रस्तुत करने के साथ साथ अखबार में भी वह प्रकाशित करनी होती है। तदनुसार यह प्रतिलिपि यहाँ दी जा रही है।—सं०)

(१) प्रकाशन का स्थान		वाराणसी
(२) प्रकाशन का समय		माह में एक बार
(३) मुद्रक का नाम		श्रीकृष्णदत्त भट्ट
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता		'नयी तालीम' मासिक, राजघाट, वाराणसी-१
(४) प्रकाशक का नाम		श्रीकृष्णदत्त भट्ट
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता	:	'नयी तालीम' मासिक, राजघाट, वाराणसी-१
(५) सम्पादक का नाम		धीरेन्द्र मजूमदार
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता		'नयी तालीम' मासिक, राजघाट, वाराणसी-१
(६) समाचार-पत्र के संचालकों का नाम-पता	:	सर्व सेवा संघ, गोपुरी, वर्धा (सन् १८६० के सोसायटी रजिस्ट्रेशन ऐक्ट २१ के अनुसार रजिस्टर्ड सार्वजनिक संस्था) रजिस्टर्ड न० ५२

मैं श्रीकृष्णदत्त भट्ट यह स्वीकार करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

वाराणसी, २८-२-'७१ —श्रीकृष्णदत्त भट्ट, प्रकाशक

सम्पादक मण्डल :
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १९
अंक : ८
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

मार्च, '७१

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : मार्च, '७१
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

सर्वोदय-साहित्य-सेट (१९७१—१९७२)

[अप्रैल १९७१ से चालू]

रु० ७) में १२०० पृष्ठ

१–आत्मकथा १८६९–१९२०	गांधीजी	१)
२–बापू कथा १९२०–१९४८	हरिभाऊजी	३)
३–तीसरी शक्ति १९४८–१९६९	विनोबा	३)
४–गीता प्रवचन	विनोबा	१)
५–मेरे सपनों का भारत	गांधीजी	१)
६–सघ प्रकाशन की एक पुस्तक		)५०
		११)५०

लगभग १२०० पृष्ठों का यह साहित्य सेट रु० ७) में मिलेगा। २८ सेटों का पूरा बण्डल काशी से मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसे कमीशन।

रु० ५) में ८०० पृष्ठ

राज्य सरकारें, पंचायतें, शिक्षण संस्थाएँ आदि के लिए थोक खरीदी की दृष्टि से छोटा सेट भी चालू रहेगा, जिसकी पृष्ठ संख्या लगभग ८०० होगी। यह सेट रुपये ५) में दिया जायगा। इसमें निम्न पुस्तकें रहेंगी

१ आत्मकथा	– गांधीजी	१)
२ बापूकथा या गांधी जैसा देखा समझा विनोबा ने	– हरिभाऊजी	३)
३ तीसरी शक्ति	– विनोबा	३)
४ गीता-बोध व मंगल प्रभात	– गांधीजी	१
		८)

पांच रुपयेवाले ४० सेटों का पूरा बण्डल काशी से मँगाने पर प्रति सेट ४० पैसा कमीशन और फ्री डिलीवरी।

केवल एक ही सेट मँगाने पर डाक खर्च के लिए रु० २–०० अधिक भेजना चाहिए। यदि ५ रु० वाले सेट अथवा ७ रु० वाले ७ सेट एक साथ मंगाये जायेंगे तो रेलवे पार्सल से फ्री डिलीवरी भेज जा सकेंगे।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी १

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

वर्ष : १९
अंक : ९

- आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षा
- शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्य
- भारतीय संस्कृति : विलम्बना और शिक्षा
- शैक्षिक आयोजना का प्रमुख आधार
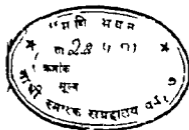
अप्रैल, १९७१

आजादी—दूसरी मंजिल

जीयगे तो स्वतत्र होकर मरेंगे तो स्वतन्त्रता के लिए। जिस दिन शेख मुजीबुरहमान और उनके देश-वासियो ने यह सकल्प कर लिया, उस दिन उन्होने दुनिया के इतिहास मे एक नया पन्ना जोड दिया। बगला देश के इस स्वातत्र्य सग्राम के बाद कम से कम एशिया का इतिहास वह नही रहेगा जो आज तक रहा है। और, न तो भारत पाकिस्तान के सम्बन्ध ही वे रहगे जो अब तक रहे हैं।

बगला देश की यह लडाई अब किन्ही नागरिक अधिकारो के लिए नही रह गयी है। स्वायत्तता की माँग भी पुरानी पड गयी। अब यह लडाई पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए है—ठीक वही स्वतन्त्रता जो भारत और पाकिस्तान को अगस्त १९४७ मे मिली थी। लगता है आजादी की पहली मजिल चौबीस साल पहिले पूरी हुई थी, दूसरी अब पूरी हो रही है। उस समय मुकाबिला था विदेशी साम्राज्यवाद से, इस वक्त है देशी सैनिकवाद राष्ट्रवाद उपनिवेश-वाद से। घर का दुश्मन बाहर के दुश्मन से कम जालिम नही होता, बल्कि ज्यादा। साम्राज्यवाद नही चाहता कि कोई राष्ट्र स्वतत्र रहे, सैनिकवादी राष्ट्रवाद नही चाहता कि जनता स्वतत्र हो।

वर्ष : १९
अक : ६

मुजीब पर यह आरोप है कि उनकी माँग से पाकिस्तान का सयुक्त राष्ट्र टूट जायगा। ब्रिटिश प्रधान मत्री, पाकिस्तान के सैनिक शासक और अति-राष्ट्रवादी नेता तथा भारत के भी कुछ लोग, ये सब ऐसे हैं जिनकी नजर मे याह्या खाँ का यह औचित्य है कि वह जो कुछ कर रहे हैं वह अपने

राष्ट्र को बचाने के लिए कर रहे है ! कितना विचित्र है यह तर्क ! मुजीब की मांग शुरू से स्वायत्तता की थी—पाकिस्तान के भीतर। लेकिन याह्या और उनके समर्थकों के षडयन्त्र ने पाकिस्तान के भावी प्रधान मन्त्री को 'बागी' बना दिया। मुजीब ने तो चुनाव का वही रास्ता पकडा था जो लोकतन्त्र मे मान्य है, लेकिन याह्या मे लोकतन्त्र की शर्तें पूरी करने का साहस नही हुआ। वास्तव मे शासको की राष्ट्रीयता कुछ और होती है, और जनता की राष्ट्रीयता कुछ और। शासको की राष्ट्रीयता दमन और शोषण से चलती है, जब कि जनता इससे मुक्ति चाहती है। बेशक बगला देश की जनता की लडाई पाकिस्तान और इस्लाम के नाम मे चलनेवाले पजाबी दमन और शोषण से मुक्ति के लिए है। मुक्ति मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है, उसे कायदे कानून या नारो मे बांधकर कम नही किया जा सकता। जनता की मुक्ति से अगर देश और धर्म को नुकसान पहुंचता हो—शासको की नजर मे—तो उसे अपनी मुक्ति की कीमत चुकानी पडती है। बगला देश की जनता लाखो की सख्या मे शहीद होकर जरूरत से कही ज्यादा कीमत चुका रही है। इतने पर भी अगर आज का पाकिस्तान टूटता है तो उसकी जिम्मेदारी दमन करनेवालो पर होगी, न कि मुक्ति चाहनेवालो पर।

अपनी आजादी की लडाई मे भारत की जनता को इतनी कीमत नही चुकानी पडी थी। आज बगला देश की निहत्थी जनता जिस एकता और सगठन का परिचय दे रही है वह बेमिसाल है। भारत की लडाई मे गाधी की अहिंसा-शक्ति अधिक थी, नागरिक शक्ति कम। बगला देश की लडाई पूरे तौर पर सैनिक-शक्ति बनाम नागरिक-शक्ति की लडाई है, इसलिए बन्दूको के होते हुए भी अहिंसा के अत्यन्त निकट है। असहयोग और अवज्ञा का प्रयोग जिस पैमाने पर, और जिस सफलता के साथ, बगला देश की जनता कर रही है, उस तरह उसका प्रयोग पहले कभी नही हुआ था। परायी सत्ता, देशी सरकार तथा पारम्परिक समाज, इन सबमे अलग ढग की अनीति और अन्याय होता है। हर एक के लिए अहिंसा के अस्त्रो का शोध होना अभी बाकी है।

भारत की ससद ने सर्व सम्मत प्रस्ताव पास कर यह आश्वासन दिया है कि भारत की जनता बगला देश की जनता के साथ है।

स्वतत्रता और लोकतत्र को माननेवाले कौन ऐसे लोग होगे या कौन ऐसी सरकार होगी जिसका समर्थन बगला देश की जनता को नही प्राप्त होगा ? हम आशा है कि शीघ्र वह स्थिति आ जायगी जिसमे दुनिया की अनेक सरकारो के लिए बगला देश की स्वतत्र सरकार को मान्यता देना आसान हो जायगा। भारत सबसे करीब का पडोसी है। वस्तुत भूगोल की दृष्टि से बगला देश भारत की गोद म है। गोद मे बठी बगला जनता को भारतीय हृदय के स्पदन की अनुभूति अवश्य होती होगी। कानून के कागज अपने समय और ढग से तयार होगे लेकिन हृदय हृदय की पुकार सुनने म देर क्यो करे ?

सकट की इस अत्यत नाजुक स्थिति म भारत को कठोर सयम बरतना पड रहा है। उसे भारत मुजीब षडयत्र के आरोप से बचना है, खुद बचना है और बगला देश की जनता को भी बचाना है। उसे दुनिया की सरकारो का सक्रिय सहयोग लेना है, लेकिन बगला देश और भारत के पूर्वाचल को दूसरा वियतनाम नही बनने देना है। इन स्थितियो को बचाते हुए बगला देश के मुक्ति अभियान को 'पराजय' से बचाना ह। भारत ने सनिक गुटबन्दी से अलग रहकर अतराष्ट्रीय शान्ति और सद्भावना के रास्ते पर चलने का प्रयत्न किया है। सर्वोदय आन्दोलन ने 'जय जगत्' का नारा लगाया है। क्या भारत सरकार क्या भारतीय जनता और क्या विभिन्न दल और सस्थाएँ और क्या स्वय सर्वोदय आन्दोलन, सबकी समान रूप से चिन्ता है और होना चाहिए कि हमारे पडोस म मुक्ति की आवाज डूबने न पाये। तब तक राहत और सहायता के रूप मे हम जो कुछ कर सकते हैं करें। —राममूर्ति

शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्य

ईश्वरभाई पटेल

किसी भी प्रजातान्त्रिक राष्ट्र के लिए सर्वोत्तम प्रकार का पूंजी निवेश शिक्षा या शिक्षण का माध्यम है। प्रजातन्त्र मे व्यक्ति स्वातन्त्र्य मूलभूत शिला है। व्यक्ति को अपनी शक्तियो के सर्वोत्तम विकास शिखर पर पहुँचने के स्वातन्त्र्य के परिणामस्वरूप प्रजातन्त्र की सर्वोत्तम सम्पत्ति, प्रजातन्त्र को रचनेवाली और आकार देनेवाली सम्पत्ति, मानव सम्पत्ति है। व्यक्तिगत मानव जितना समझदार जितना राष्ट्रप्रेमी जितना विकासशील होगा उतना ही उसका राष्ट्र शक्तिसम्पन्न तथा अनेक रूप से सुरक्षित रहेगा।

शिक्षण का सर्वोपरि राष्ट्रीय ध्येय व्यक्ति को समझदार बनाना है। जितनी जल्दी वह ध्येय को प्राप्त करेगा उतना ही शीघ्र राष्ट्र सुरक्षित सगठित और सुदृढ बनेगा।

भारत जैसे राष्ट्र के लिये तो यह एक चुनौती ही है। सुविख्यात इतिहासकार मैकाले ने स्वातन्त्र्योत्तर अमेरिकी प्रजातन्त्र की गति देखकर सन् १८५७ में अपने एक मित्र को पत्र मे लिखा था कि मुझे तो विश्वास हो गया है कि प्रजातान्त्रिक सस्थाएँ देर सवेर स्वतन्त्रता या सभ्यता या दोनो को खत्म कर देंगी—आपके सविधान रूपी जहाज के मस्तूल तो हैं पर लगर नहीं है या तो कोई सीजर या फिर कोई नेपोलियन सुदृढ हाथो से आपकी सरकार पर अधिकार कर लेगा अथवा आपके प्रजातन्त्र को, बीसवीं सदी मे कोई जगली प्रजा सफाया कर देगी। उसका इस प्रकार मानने का कारण यह था। राष्ट्र की सर्वोत्तम सत्ता अपने नागरिको के बहुमत को अर्थात् समाज के सबसे गरीब और सर्वाधिक अज्ञानी वर्गों को सौंप दी गयी है। उसका कथन था कि सम्पत्ति की सुरक्षा और कानून की व्यवस्था बनाये रखने म गहरा रस लेनेवाले किसी सशक्त वग के हाथों म यदि राज्य की लगाम न रही तो फिर चाहे कैसी ही सरकार हो अथवा कैसी ही व्यवस्था हो नष्ट हुए बिना नही रहती।

मैकाले का भय सत्य सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि उसी वष अमेरिका की काग्रेस ने लैण्डग्राण्ट कालेजों और यूनिवर्सिटियो की सस्थापना करनेवाले बिल की घोषणा की। इस बिल का उद्देश्य राष्ट्र के सभी राज्यो के नवयुवको को अनेकानेक धन्धों और प्रवृत्तियो के व्यावहारिक उदार दृष्टिवाली शिक्षा प्रदान करना था। आज इस राष्ट्र की ओर म परड्यू यूनिवर्सिटी के प्रमुख ने 'बायस

ग्राफ अमेरिका' के फोरम व्याख्यानों मे यह दावा किया है कि हमारे नागरिको का बहुत बडा बहुमत, मैकाले के शब्दो मे सम्पत्ति की सुरक्षा और कानून बनाय रखने मे गहरी रुचि रखता है।

अपने नवोदित प्रजातांत्रिक राष्ट्र के लिये यह एक महान् चुनौती और समस्या के समान है। यह भी सब कहते हैं कि इसके निदान मे ही राष्ट्रप्रगति की कुंजी निहित है।

हम लोगों के सामने जो सवाल है वह एक दूसरे ढग से भी नवीनतापूर्ण है: सदियो से गुलामी मे रही हुई प्रजा को नागरिक राजा के रूप मे जीवित रहना, व्यवहार करना किस प्रकार सिखाया जाय? प्रजा ही अन्तत राजा है–यदि यह गणतंत्र का सार है तो प्रजा ही अपना शासकवर्ग पसन्द करती है। हमारे नेताओ ने स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रता का नारा हमारे कानो मे गुंजाया है जिस प्रभु ने हमे जीवनदान दिया है उसी प्रभु ने हमे साथ-साथ स्वतंत्रता भी दी है।' 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है–इस कथन का अर्थ घटन यही तो है न?

हमारे स्वातंत्र्य-वीरो ने इस स्वाभाविक विश्वास का उच्चारण किया कि सभी लोग समान हैं। आज तो उनके और हमारे सामने सवाल केवल इतना ही है कि क्या परस्पर समान माने गये लोग स्वराज्य स्वशासन के कार्य मे भी समान हो सकते हैं? मनुष्य स्वाभाविक रूप मे जन्मत होशियार नहीं होता, किन्तु स्वतंत्र या मुक्त रहने की इच्छा रखनेवाला नागरिक राजा को होशियार तो होना ही पडेगा। इसका अर्थ हुआ कि यदि सभी के लिये स्वातंत्र्य को या प्रजातंत्र को अर्थवान बनाना हो तो सभी के लिये शिक्षा की अनिवार्यता समझनी पडेगी। अमेरिका के चौथे राष्ट्रपति और वहाँ के सविधान के पिता कहे जाने-वाले जेंम्स एडिसन ने इस भाव को अच्छी तरह इस प्रकार व्यक्त किया है: "सर्वव्यापी शिक्षा की अनुपस्थिति मे लोकप्रिय सरकार का अस्तित्व विडम्बना या करुण प्रहसन मे परिणत हो जाता है।" यह बात भी स्वीकार की जानी चाहिए कि कोई भी प्रजा स्वतंत्र तथा अज्ञानी–दोनों एकसाथ नहीं रह सकती। अत गणतंत्रात्मक राष्ट्र के इस प्रारम्भकाल मे उसके शिक्षा विषयक उद्देश्य या लक्ष्य उसके राजकीय आदर्शों के समर्थक और पुष्टिकर्ता होने चाहिए।

हमारे राष्ट्र नेताओ ने भी इसी धारणा से स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की माँग उठायी थी और इसीलिए भारतीय गणतंत्र के संविधान मे सात वर्ष तक अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को एक तात्कालिक आवश्यक नीति विषयक ध्येय के रूप मे स्वीकृत किया गया है। इसके अतिरिक्त माध्यमिक, उच्च

तथा यूनिवर्सिटी शिक्षा में भी, स्वातन्त्र्यपूर्व की अपेक्षा, अनेक गुना विस्तार स्वागत-योग्य दिखाई दिया है तथा उसे प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है।

प्रश्न केवल यही उठता है कि मात्र परीक्षा को लेकर चलनेवाली शिक्षा क्या इन राष्ट्रीय उद्देश्यों को पूरा करने में समर्थ भी है? शायद वह इन उद्देश्यों को पूरा करती हुई दिखाई भी नहीं देती। इस पर भी यह मूलभूत बात है कि परिस्थिति का समाधान शिक्षा की व्यापकता में निहित है। शिक्षा एक लम्बा समय चाहनेवाली प्रक्रिया है। इसका परिणाम तुरन्त दिखाई नहीं देता। इसका फल तो पीढ़ियों में उतरता है। सम्प्रति हम लोग भी पहली पीढ़ी की नौकरी से सयुक्त तथा परीक्षाभिमुखी शिक्षा पद्धति के परिणाम को प्राप्त कर रहे हैं, भोग रहे हैं।

फिर भी इस राष्ट्र में एक ध्येयलक्षी सूक्ष्म किन्तु प्रभावपूर्ण गहन प्रक्रिया क्रियान्वित हुई है। राष्ट्र की लाखों प्राथमिक शालाओं में हमारे बालक लिखना, पढ़ना और गिनना तो सीख ही रहे हैं। इससे भी बड़ी बात जो इसके पूर्व पहले कभी घटित नहीं हुई, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, शिक्षक के मित्र कामदार, अधिकारी, मिलमालिक, जुलाहा, बढ़ई लोहार शास्त्री आदि के सभी बच्चे स्कूल के दिनों में सुबह ग्यारह बजे से शाम के पाँच बजे तक साथ रहते, साथ खेलते और साथ पढ़ते हैं समान व्यवहार प्राप्त करते हैं और एक वर्ग-समूह के रूप में प्रवृत्ति में भाग लेते हैं। स्कूल के समय में ये बालक चाहे राजा के हों या रंक के, नीच वर्ण के हों या उच्च वर्ण के, समान महत्त्व प्राप्त करते हैं, समान अवगणना भी प्राप्त करते हैं। मताधिकार की समानता के अतिरिक्त मानव-समानता का एक नया ही पाठ स्वाभाविक साहचर्य के कारण नयी पीढ़ी को मिलता है और ज्यों ज्यों माध्यमिक और उच्च शिक्षा को कई प्रकार के प्रोत्साहन मिलेंगे, समाज के सभी वर्गों को मिलने लगेंगे, जो मिलने प्रारम्भ भी हो गये हैं, त्यों-त्यों यह समानता का श्रेय स्कूल और कालेज के शिक्षा कक्षों और क्रीड़ांगणों में स्वतः क्रियान्वित होता जायगा। शिक्षा का विस्तार बढ़ने से अन्तर्जातीय विवाह बढ़ते जाते हैं और जातिवर्ग सीमाएँ निर्विवाद रूप से नष्ट भ्रष्ट होती जाती हैं। गत पीढ़ी की नयी पीढ़ी से यही शिकायत है। वस्तुतः ये स्वातन्त्र्य की सहोदरा समानता की देवी के लिये अर्पित अर्घ्य पुष्प हैं।

भाषा और संस्कृति की दृष्टि से हीनता अनुभव करनेवाले तथा बातचीत का प्रसंग आने पर संकोच करनेवाले समाज के निम्न स्तर से सम्बद्ध बालक स्कूल में अपने वर्ग, अपने से उच्च वर्ग के सहपाठियों के साथ (अब पहली बार ही इतना साहसी हुआ है) प्रसन्नतापूर्वक वार्ताओं और खेलकूद में स्पर्धा

करने लगा है। वर्गकार्य की इस समानता से समाज मे पहली बार यह भाव जन्मा है कि जन्म नही, व्यक्ति के रूप मे बालक की शक्ति और गुण-लक्षण उसके उत्कर्ष के कारण हैं। महभारतकार ने कर्ण के मुख से जिस चुनौती को उपस्थित करवाया है दवायत्तम् कुले जन्म मदायत्तम् तु पौरषम्' उसका उत्तर यह नयी वर्ग व्यवस्था स्वय दे देती है। कालान्तर म इसके सुफल विशाल रूप मे देखने को मिलेंगे। इसी भाव को होरसमैन ने इन शब्दो म सुन्दरता से व्यक्त किया है: "मनुष्य की आविष्कृत सभी युक्तिया मे शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य की परिस्थिति को समान बनानेवाली शक्ति है अपने समाज के यत्र का सतुलन प्रेरक पहिया है।"

आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछडी जातियो को दी जानेवाली फीराहत और छात्रवृत्तियो के कारण समानता के इन अवसरो मे उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप सन १९५१ मे शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों की सख्या ढाई लाख के आसपास थी जा अब बढकर इस साल सत्रह लाख हो गयी है। इसी प्रकार की सख्यावृद्धि माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे भी हुई है। सख्यावृद्धि के कारण शिक्षा स्तर पर प्रभाव पडा है, इस प्रकार की लोक-भावना फैलती जा रही है, जो अशत स्वाभाविक भी है। किन्तु इतनी बडी सख्या मे विद्यार्थी शिक्षा के लिये अवसर ढूढते हैं या चाहते हैं यह इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज मे शिक्षा का मूल्य कितना ऊंचा है। दूसरे ढग से कहना चाह तो इस विशाल सख्या से यह प्रतीत होता है कि आधुनिक जीवन म शिक्षा कितनी सम्बन्धकर्त्ता प्रक्रिया है और उसके स्तर का मूल्य समाज के लिए कितना है। विकासशील राष्ट्र के लिए यह बढती हुई सख्या भय की जननी न होकर आशा की जननी होनी चाहिये। प्लेटो ने जो वर्षों पहले निर्देश किया था–'राष्ट्र मे जिसे आदर प्राप्त होता है वही विकसित होता है', उसके अनुसार लाखों की सख्या मे शिक्षा प्राप्ति के इच्छुक विद्यार्थी वर्ग, कालान्तर म शिक्षा के स्तर का आश्वासन अवश्य देंग।

शिक्षा को राष्ट्र की शक्तिवृद्धि सम्बन्धी एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य दृष्टिपथ मे रखना है। ऐसे प्रयास करना शिक्षा का राष्ट्रीय उद्देश्य होना चाहिए, जिससे मानवीय भौतिक तथा नतिक या आध्यात्मिक क्षेत्रो मे राष्ट्र की शक्ति उत्तरोत्तर विकसित होती रहे। सर्वप्रथम इसे नयी पीढी की मानवीय अर्थात् शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक क्षेत्रो म इस ताकत को बढ़ाना है। इसके बढने से राष्ट्र की भौतिक शक्ति अर्थात् भौतिक सम्पत्ति को खोजने और वृद्धिगत

करने की शक्ति बढेगी। गुजरात मे हम पीढियो से एक तेल के सरोवर पर स्थिर थे, इसका ज्ञान हमे वेधनकाय की शक्तिवृद्धि के कारण हुआ। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के कारण हमे अनेक प्रकार के खनिज और समुद्री द्रव्यो का ज्ञान होता जाता है। एक बार इस भौतिक सम्पत्ति का ज्ञान होने पर शिक्षा का यह दायित्व हो जाता है कि मनुष्य के सर्वाङ्गीण विकास के लिए वह इस भौतिक सम्पत्ति के विनियोग, उपयोग और सदुपयोग करने के लिये हम ज्ञान, युक्ति और शक्ति-व्यय के लिए वैज्ञानिक पद्धति प्रदान करे अग्रेजी मे। जिसे नाहेग' कहा गया है उसे हम प्रत्येक क्षेत्र मे विकसित करना चाहिये, जिससे इस शक्तिवृद्धि के द्वारा हम मनुष्य जाति को भूख रोग अज्ञान आदि से यथा शीघ्र मुक्त करने का विचार कर सके। किसी राष्ट के नैतिक बल का माप इससे किया जा सकता है कि वह इन प्रश्नो और उनके समाधान के लिए कितनी निश्चय बुद्धि या इच्छा शक्ति से अपनी पूरी ताकत का उपयोग करता है। यह सही है कि किसी भी राष्ट्र की शक्ति उसकी तोपो या बन्दूको उसके विमानो या जलयानो, उसके सैनिको की सख्या या सेना के आकार मे निहित नही है, यह सब अनिवार्यत उसकी शक्ति के अग है। दुनिया के सघर्षों का अनुभव सम्ब प राष्ट्र के स्कूलो की प्रयोगशालाओ मे, उसके वित्त बाजारो मे तथा सबसे अधिक मनुष्य के मन मे होता है। राष्ट्र की शक्ति का दर्शन उसकी सैनिक-शक्ति मे प्राप्त तो होता है किन्तु उसका सच्चा स्रोत लोगो मे तथा उपलब्ध साधनों को कायक्षम बनाने तथा प्रभावशाली ढग से उपयोग मे लाने की शक्ति लोगो मे सन्निहित है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रो मे शाति के लिये इस शक्ति का उपयोग सिखाना शिक्षा का चरम राष्ट्रीय उद्देश्य है। लिकन के शब्दों मे—अब किसी भी राष्ट्र या प्रजा के लिए किसी दूसरे राष्ट्र या प्रजा पर शासन करने अथवा जीने के दिन उठ गये। नये देश या नयी भूमियाँ जीतने अपना बनाने अथवा अपने राज्य की सीमा के विस्तार करने की बात अब सम्भव नही है। इन स्थितियों मे खुद को प्राप्त भूमि मे जीने—सुख से जीने—का मार्ग तथा मानसिक क्षितिजों को विकसित करने का मार्ग बताना शिक्षा का काम है। मानव मन मे इस अनन्त क्षितिज का कब विकास होगा? यह तभी सम्भव है जबकि राष्ट्र के सभी वर्गों के प्रजाजनों को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होंगे और उस समय शिक्षा के अर्थात् अपनी व्यक्तिगत तावतों को विकसित करने के अवसर सभी प्रजाजनो के लिए उन्मुक्त रखना, निर्बाधित रखना शिक्षा का राष्ट्रीय ध्येय होगा और रहेगा।

निस्सदेह स्कूल, कालेजों और यूनिवर्सिटियों म पहुँचने की स्वातन्त्र्योत्तर

सुविधा ने नये क्षितिज उत्पन्न किये हैं। यह सुविधा सभी को प्रदान करने में कदाचित् साधनों का दुर्व्यय होगा और अपात्र को प्रवेश मिलना सम्भव रहेगा, किन्तु इस आशय में भी एक अधिक विशाल और गम्भीर दुर्व्यय हम घटकाते हैं–यह है व्यक्ति के उसकी पूर्ण शक्ति के विकास तक पहुँचने की असफलता का। अत शिक्षा के इस क्षितिज पर हमें कभी भी संघर्ष का साहस अथवा ध्यान नहीं करना चाहिये; क्योंकि अन्ततः तो प्रजातन्त्र और अज्ञान की दोस्ती निभ नहीं सकती, वे साथ नहीं रह सकते। प्रजातन्त्र का विकास और उसकी सुदृढता शिक्षा का उत्तमोत्तम ध्येय सिद्ध हो सकता है, रह सकता है।

श्री ईश्वरभाई पटेल, भूतपूर्व उपकुलपति वल्लभ विद्यानगर यूनिवर्सिटी, गुजरात

आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षा : २ :

डा० ज्यूलियस के० न्येरेरे

(तंजानिया गणराज्य के राष्ट्रपति)

तंजानिया की वर्तमान शिक्षा-पद्धति जिन उद्देश्यों को प्रोत्साहन देती है उनसे हमारी शिक्षा के उद्देश्य नितांत भिन्न हैं, क्योंकि यह पद्धति छात्रों में असमानता का भाव, बौद्धिक दम्भ तथा तीव्र व्यक्तिवाद विकसित करती है और इस तरह उन्हें उस समाज से तादात्म्य स्थापित करने से रोकती है, जिसमें अततः उन्हें प्रवेश पाना है। सबसे पहली बात इस सन्दर्भ में यह है कि यह शिक्षा प्रणाली एक प्रकार की आभिजात्य शिक्षा है और केवल अत्यन्त अल्पसख्यक वर्ग के हितों का पोषण करती है। यद्यपि तंजानिया की प्राइमरी शालाओं से केवल १३ प्रतिशत छात्र ही आज हायर सेकेण्डरी स्कूल तक जाते हैं, किन्तु हमारी इन प्राइमरी शालाओं की बुनियाद हायर सेकेण्डरी के लिए छात्र तैयार करना मात्र ही है। इस प्रकार ८७ प्रतिशत छात्र जो प्राइमरी परीक्षा पास करते हैं, उनमें एक प्रकार की असफलता की भावना पलती है और वे यह अनुभव करते हैं कि उनके वाजिब आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो रही है। दूसरी ओर १३ प्रतिशत छात्रों के मन में एक पुरस्कार प्राप्त कर लेने की भावना जन्म लेती है। उनके और उनके अभिभावकों के मन मे ऊँची तनख्वाहें, कस्बों में आरामदेह नौकरियों तथा समाज मे एक उच्च प्रतिष्ठा की पुरस्कार-भावना रहती है। आगे विश्वविद्यालय के प्रवेश के समय पुन यह क्रम दुहराया जाता है। दूसरे शब्दों मे, यह शिक्षा उन्हीं कुछ लोगों के लिए है जिनका बौद्धिक स्तर ऊँचा है। जो सफल होते हैं उनमें यह शिक्षा एक प्रकार की उच्चता की भावना भर देती है और विशाल बहुसख्या को कभी न प्राप्त हो सकनेवाली वस्तु के लिए लालायित रहने को छोड देती है। इस प्रकार यह बहुसख्यक छात्रों में हीनता का एक ऐसा भाव पैदा कर देती है, जिससे हमारा वांछित समतावादी समाज कभी नहीं बन पायेगा और जो भाव समतावादी समाज बनाने के लिए आवश्यक है। इसके विपरीत यह शिक्षा हमारे समाज में वर्ग-रचना को ही प्रोत्साहन देती है।

दूसरी बात भी इतनी ही महत्त्वपूर्ण है। तंजानिया की शिक्षा-पद्धति छात्रों

-को उस समाज से पृथक कर देती है जिसके लिए तैयार करने की उससे अपेक्षा की जाती है। सेकेण्डरी स्कूलो के बारे मे जो पूणत भावासीम होते हैं तो यह बात खास तौर पर सही है, किन्तु पाठ्यक्रम मे हाल ही मे हुए चद सुधारो के बावजूद अधिकाश प्राइमरी शिक्षा के बारे म भी यही बात सही है। हम बालक को ७ साल उम्र से उसके माँ बाप से ले लेते हैं और लगातार साढ सात घटे रोज उन्हे कुछ बातें सिखाते हैं। अभी हाल ही म चाहे केवल सैद्धातिक स्तर पर ही सही इन बातों को हमने उस जीवन से जोड देने का प्रयास किया है जो बालक के परिसर मे पाया जाता है। किन्तु पाठशाला तो एक पृथक सस्था ही है और वह समाज का अग नही है। यह एक ऐसी जगह होती है जहाँ से निकलने के बाद बालक तथा उनके माता पिता आशा करते हैं बालक को गाँव म रहकर किसान का जीवन बिताना आवश्यक नही होगा।

वे चद छात्र जो सेकेण्डरी स्कूलो म जाते हैं वे भी अपने घरो से मीलो दूर चले जाते हैं और उस कस्बे या नगर के जीवन से सम्बन्धित हुए बिना ही कभी मनोरजन के लिए बाहर जाते हैं वरना एक प्रकार के बाड मे ही रहते हैं। इनमें से बहुत कम विश्वविद्यालय मे जाते हैं। यदि व दार उ स्सलाम विश्व विद्यालय मे प्रवेश पाने का भाग्य पा सकें तो फिर व बहुत अच्छे मकानो म रहते हैं अच्छा भोजन करते हैं और अपनी डिग्री के लिए कठोर मेहनत करते हैं। जब वह उन्हें मिल जाती है तब वे समझते हैं कि उन्हें तुरन्त ही ६६० पाउण्ड सालाना वतन मिल जायेगा। यही उनका उद्देश्य रहा है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हे प्रोत्साहित किया जाता रहा है। उनकी इच्छा समाज की सेवा करने की भी हो सकती है किन्तु सेवा की उनकी कल्पना पद और ऊँचे वतन से जुडी होती है जो विश्वविद्यालय की शिक्षा से सुलभ हो जाते हैं। यह ऊचा वतन तथा वैभव डिग्रियाँ प्राप्त करने के बाद एक स्वाभाविक अधिकार बन जाता है।

इस प्रकार के मनोभावो के लिए अपने युवकों को दोष देना गलत होगा हमारे विश्वविद्यालयों के नये स्नातक ने तँजानिया के समाज से अलग जीवन बिताया है। उसके माँ बाप गरीब हो सकते हैं, किन्तु उसने उस गरीबी मे कभी भाग नहीं लिया है। उसे गरीब किसान का जीवन जीने का कोई ज्ञान ही नही है और उसके लिए अपने माँ-बाप के साथ रहने के बजाय अपने जस पढ़ लिखे लोगों के बीच रहना अधिक सहज है। अवकाश के अवसरों पर जब वह अपने माँ-बाप के साथ रहने के लिए जाता है तब भी वह अपने माँ बाप या सम्बन्धियो में अपनी इस भिन्न स्थिति के प्रति एक प्रकार की स्वीकृति का भाव देखता है

और वे भी उसके साधारण मनुष्य की तरह, जो वह वास्तव में है, रहने और काम करने को गलत मानते हैं। क्योंकि सचाई यह है कि तजानिया मे लोग शिक्षा का अर्थ यह लगाते हैं कि पढा-लिखा व्यक्ति दूसरे लोगो की तरह जीवन जीने के लिए नहीं बनाया गया है।

तीसरी बात यह है कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति छात्रों के मन मे एक ऐसा विचार भर देती है कि केवल पढे-लिखे लोगो द्वारा दिया गया ज्ञान ही कीमती है। पुराने लोगो की बुद्धिमत्ता को वे हीन भाव से देखते हैं और उन्हें वे अज्ञानी और व्यर्थ मानते हैं। वास्तव मे केवल शिक्षा ने ही आज का यह भान पैदा नही किया है, वरन् पार्टी तथा सरकार भी लोगो को उनकी पढाई-लिखाई तथा डिग्रियो से नापती है। यदि किसी व्यक्ति के पास डिग्रियाँ हैं तो हम मानते है कि उसे नौकरियो मे स्थान दिया जा सकता है। परीक्षा पास करने के अलावा हम उसकी रुझान, चरित्र, और अन्य किसी योग्यता की बात भी नहीं सोचते। यदि किसी आदमी के पास ये डिग्रियाँ नही है तो हम मानते हैं कि वह किसी पद के योग्य नहीं है और हम उसके ज्ञान या अनुभव की उपेक्षा कर देते हैं। उदाहरण के लिए, एक जगह अभी हाल ही मे एक बहुत अच्छे तम्बाखू उत्पादक किसान से मेरी भेंट हुई। किन्तु यदि मैं उसे तम्बाखू विकास-अधिकारी बनाना चाहूँ तो मैं सरकारी कायदे के अनुसार ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि उसके पास ऐसी कोई कागजी डिग्री नहीं है। हमारा जोर केवल किताबी शिक्षण पर है और हम परम्परागत ज्ञान तथा बुद्धि की, जो जीवन जीने के क्रम मे अनपढ स्त्री-पुरुषों के द्वारा प्राप्त की जाती है, समाज के लिए कोई कीमत नहीं मानते।

इसका अर्थ यह नहीं है कोई भी व्यक्ति केवल बूढे या बुद्धिमान होने के नाते कोई भी कार्य कर सकता है या शैक्षणिक योग्यताएँ अनावश्यक हैं। हम लोग कभी-कभी किताबी विद्वानों के अहकार की प्रतिक्रिया के रूप में ऐसा सोचने की गलती कर बैठते हैं। कोई व्यक्ति केवल बूढ़ा होने से ही बुद्धिमान नही हो जाता, या कोई भी व्यक्ति चूँकि २० साल तक किसी फैक्ट्री मे मजदूर या भडारी के रूप मे काम करता रहा है इसलिए वह फैक्ट्री भी चला सकता है, यह आवश्यक नहीं है। किन्तु वह यह काम केवल वाणिज्य मे डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त करने मात्र से भी नहीं हो सकता। पहला व्यक्ति-व्यक्तियों की पहचान करने मे सक्षम तथा ईमानदार हो सकता है और दूसरा व्यक्ति लेन-देन करने मे पहल कर सकता है या उसका अर्थशास्त्र जान सकता है। किन्तु देश की सेवा करने योग्य सफल उद्योग बनने के लिए फैक्ट्री चलाने के लिए एक

ही व्यक्ति मे इन दोनो गुणों का होना आवश्यक है। किताबी ज्ञान को कम या ज्यादा आंकना वस्तुतः समान रूप से गलत है।

कृषि के ज्ञान पर भी यही बात लागू होती है। हमारे किसान बहुत लम्बे अर्से से खेती करते आ रहे हैं। प्रकृति के साथ अपने लम्बे सघर्ष के दौरान ही उनकी खेती करने की पद्धतियो का विकास हुआ है। परम्परागत किसान को पुराणपंथी कहकर दुत्कारना उचित नही है। वह कोई खास कार्य क्यों कर रहा है, हमें यह समझने का प्रयास करना चाहिए और उसे केवल मूर्ख नहीं मान लेना चाहिए। किन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं है कि ये बातें भविष्य के लिए काफी हैं। वे उस वक्त की अर्थव्यवस्था को दृष्टि से जब वे विकसित हुई थीं, या उस समय के तकनीकी ज्ञान की दृष्टि से उपयुक्त हो सकती थीं। किन्तु इस समय जब कृषि की भिन्न पद्धतियो तथा उपकरणो का उपयोग किया जा रहा है, और भूमि को पुन शक्ति प्राप्त करने के लिए एक या दो साल तक खेती करके पुन बीस साल तक बजर छोडने की आवश्यकता नहीं है एव कुदाल के बदले बैलयुक्त हल या ट्रैक्टर के प्रयोग का अर्थ केवल भूमि को भिन्न तरह पर जोतना मात्र नहीं है, बल्कि कार्य-सगठन मे ही परिवर्तन है, तब हमको यह देखना पडेगा कि हम इन उपकरणो से अधिकतम लाभ कैसे ले सकते हैं और यह भी इन नयी विधियों के कारण कही हमारी भूमि और हमारे समाज के समतावादी आधार का ही ह्रास न हो जाय। इसीलिए हमारे युवकों में पुराने अनपढ लोगो के अनुभवों के प्रति आदर-भाव के साथ-साथ नये नये तरीकों की जानकारी तथा उसके प्रति बौद्धिक सम्मान होना चाहिए।

हमारी वर्तमान शिक्षा के कारण हमारे युवकों में अपने बुजुर्गों को पुराण-पंथी तथा अज्ञानी मानने का भाव आया है, क्योकि यह शिक्षा उन्हें यह नहीं सिखाती कि अपने बडों से भी खेती आदि के बारे मे महत्वपूर्ण बातें सीखी जा सकती हैं। नतीजा यह है कि बालक स्कूल जाने से पूर्व ही जादू-टोना के विश्वास तो पाल लेता है, किन्तु स्थानीय जडी बूटियों का मूल्य वह नहीं जान पाता। वह अपने परिवार से अनेक प्रकार के निषेध तो सीखता है, किन्तु परम्परागत भोजनों को पौष्टिक बनाने का कोई तरीका नहीं सीखता और विद्यालय मे भी वह कृषक जीवन से असम्बद्ध ज्ञान ही प्राप्त करता है। इन दोनों पद्धतियों की बुरी-से बुरी बातें ही सीखता है।

अन्तत हमारा युवा और गरीब राष्ट्र हमारे स्वस्थतम तथा दृढ़तम युवको को उत्पादक कार्य से पृथक् कर देता है। वे न केवल राष्ट्र के लिए अत्यावश्यक

उत्पादन-वृद्धि मे कोई योगदान दे पाते हैं, वरन् वे स्वय कमजोर हो जाते हैं और वृद्धो के उत्पादन को भी खा जाते हैं। अभी हमारे सेकेण्डरी स्कूलों मे करीब २५००० छात्र हैं। वे काम करते हुए नही सीखते हैं। वे केवल सीखते हैं। इतना ही नही वे यह भी मानते हैं कि ऐसा होना ही चाहिए। जबकि अमेरिका जैसे सम्पन्न देश में युवको को काम करते हुए सीखना पडता है, किन्तु हमारे देश मे शिक्षा का ढाँचा हमे ऐसा नहीं करने देता। यहाँ तक कि हम मानने लगते हैं कि छुट्टियो मे भी इन पढे-लिखे युवक-युवतियो को कठोर काम से बचाना चाहिए। इस शिक्षा पद्धति ने देशवासियो का दृष्टिकोण ही ऐसा बना दिया है।

क्या इन दोषो को सुधारा जा सकता है ?

इस परिस्थिति मे अगर कोई परिवर्तन करना है तो पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु स्कूलो का सगठन तथा प्राथमिक विद्यालयो मे भर्ती की उम्र इन तीन बातो मे परिवर्तन करना होगा। यद्यपि अनेक दृष्टि से ये बातें परस्पर पृथक् पृथक भी हैं, किन्तु फिर भी ये परस्पर-सम्बद्ध भी हैं। चाहे जितना सुव्यवस्थित हो, फिर भी केवल सैद्धान्तिक शिक्षण के आधार पर हम छात्रों को भावी समाज से सग्रथित (इण्टिग्रेट) नहीं कर सकेगे। उसी तरह से उस शिक्षा से भी जो स्थानीय जीवन से पूर्णत सग्रथित भी हो परन्तु जो साक्षरता या गणित या विचारो के प्रति जिज्ञासा के बुनियादी कौशल नही सिखाती, कोई लाभ नही होगा। हम प्राइमरी शिक्षा पूर्ण किये हुई केवल १२-१३ साल के किशोर छात्रों से भी यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि वह उत्पादक नागरिक बन सकेगा।

शिक्षा के वर्तमान ढाँचे पर विचार करते समय हमे अपनी वर्तमान आर्थिक स्थिति के तथ्यो का भी सामना करना पडेगा। शिक्षा पर खर्च किया गया एक एक पैसा उत्तम स्वास्थ्य-सेवाओं या नागरिको के लिए अधिक भोजन तथा वस्त्र और आराम जैसी चीजों पर खर्च की जानेवाली रकमो में कटौती करने से ही प्राप्त होता है। और सचाई यह है कि राष्ट्रीय आय के शिक्षा पर व्यय किये जानेवाले अश मे कोई वृद्धि नही की जा सकती है, उलटे इसमे कमी ही की जानी चाहिए। अत आज से अधिक धन व्यय करने मात्र के प्रस्ताव से हम अपनी समस्याओ का कोई हल नही निकाल सकेंगे, खासकर प्राइमरी स्कूल छोडनेवालों की समस्या का हल सेकेण्डरी स्कूलो म वृद्धि करने से नहीं किया जा सकता है।

प्राइमरी स्कूल छोड़नेवालों की यह समस्या वास्तव में हमारी वर्तमान

शिक्षा प्रणाली की उपज है। अधिक-से अधिक संख्या म छात्र ६ या ५ साल की उम्र मे ही प्राइमरी स्कूल मे प्रवेश लेते हैं और नतीजा यह है कि स्कूल छोडते समय वे इतनी थोडी उम्र के होते हैं कि वे जिम्मेदार नागरिक और और कार्यकर्ता नही बन सकते। इसके अलावा यह भी तथ्य है कि जो शिक्षा उन्होंने प्राप्त की है, वह उनसे सरकारी दफ्तरों मे काम करने की ही अपेक्षा करती है। दूसरे शब्दों मे, उनको शिक्षा समाज में जो काम करने पडते हैं, उनसे सम्बद्ध नहीं रही है। अत इस समस्या का हल केवल प्राइमरी स्कूलो की विषयवस्तु मे परिवर्तन से तथा प्राइमरी स्कूल मे प्रवेश की आयु म वृद्धि करने से ही हो सकेगा, ताकि छात्र स्कूल छोडते समय कुछ वयस्क होकर निकलें तथा जब स्कूल मे हैं तब भी शीघ्रता से सीखने म समर्थ हो सकें।

प्राइमरी स्कूल छोडनेवालो की इस समस्या का अन्य कोई हल नहीं है। यह दु खद लग सकता है, किन्तु यह सही है कि तजानिया मे सर्वसाधारण को *प्राइमरी शिक्षा प्रदान करने में हम बहुत लम्बा समय लगेगा* और तब भी ऐसी सुविधा पानेवालों की विशाल सख्या केवल वर्तमान ७ साल शिक्षण तक ही सीमित रहेगी। सेकेण्डरी स्कूलों तक बहुत अल्प सख्या ही पहुँच पायेगी और माध्यमिक छात्रों का अश मात्र ही विश्वविद्यालय तक पहुँच सकेगा। यही हमारे देश के आर्थिक जीवन के तथ्य हैं और यही हमारी दरिद्रता का व्यावहारिक अर्थ भी है। हमें केवल इतना देखना है कि हम केवल चन्द लोगों के शैक्षणिक स्वार्थों पर ही जोर देते हैं या फिर सारे समाज की सेवा करनेवाली शिक्षा-व्यवस्था लागू करते हैं। समाजवादी समाज कायम करने के लिए तो हम दूसरा विकल्प ही स्वीकार करना होगा।

तात्पर्य यह है कि हमारी प्राइमरी शिक्षा को अपने आप मे ही 'पूर्ण शिक्षा' होना चाहिए। इसे सेकेण्डरी स्कूल के लिए तैयारी मात्र नही होना चाहिए। प्राइमरी स्कूलों को, चन्द लोगो के लिए सेकेण्टरी तक पहुँचने की होड बनने के बजाय, अधिकांश बालकों के लिए उस जीवन की तैयारी होनी चाहिए, जो समाज में जीयेंगे उसी तरह सेकेण्डरी स्कूलों को केवल विश्वविद्यालय या कालेज तक पहुँचने की प्रक्रिया मात्र नहीं बनना चाहिए। इसे इस देश के गांवों म सेवामय जीवन बिताने के लिए लोगों को तैयार करना चाहिए, क्योंकि तजानिया जैसे देश मे चन्द लोगों का बहुतो की सेवा ही सेकेण्डरी स्कूलो या विश्वविद्यालयों का एकमात्र औचित्य हो सकता है।

यह कहना तो आसान है कि प्राइमरी तथा सेकेण्डरी शिक्षा को लोगों को जीवन की वास्तविकताओ या देश की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार करना

चाहिए। किन्तु इसे करने के लिए हमे न केवल शिक्षा के ढांचे मे ही वरन् हमारे वर्तमान सामुदायिक रुझानों (ऐटिच्यूड्स) में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन करने होंगे। खासकर हमे सरकारी तथा सार्वजनिक दृष्टि से परीक्षाओ का मूल्य कम करना होगा। हमे यह स्वीकार करना होगा कि यद्यपि इस परीक्षाओ मे कुछ लाभ अवश्य है, जैसे कि चुनाव करने की प्रक्रिया मे पक्षपात से बचना, किन्तु उनसे अनेक हानियाँ भी हैं। साधारणत: वे मनुष्य की योग्यता को, तथ्य स्मरण करने तथा एक निश्चित समय मे अन्दर उन्हें पेश कर देने से नापती हैं। उनमें तर्क करने की क्षमता, चरित्र या सेवाभाव को नापने की कोई क्षमता नहीं है।

अभी हमारा पाठ्यक्रम केवल परीक्षा-केन्द्रित है। अध्यापक सात वर्षों के प्रश्नोत्तरो का ही अध्ययन करके आगे आनेवाले प्रश्नो के अनुमान पर अपने छात्रों को तैयार करता है, उन्हीं प्रश्नो पर उसका सारा ध्यान रहता है और समझता है कि वह ऐसा करके सेकेण्डरी या विश्वविद्यालय तक पहुँचने मे अपने छात्रों की सर्वोत्तम सहायता कर रहा है। ये परीक्षाएँ भी हमारी स्थानीय आवश्यकताओ को ध्यान मे रखे बिना एक अन्तर्राष्ट्रीय मानदड के अनुसार चलायी जाती है। अत: सबसे पहले जो शिक्षा हम चाहते हैं उसकी तरफ ध्यान देना होगा और उसके बाद ही हम सोचेंगे कि एक शिक्षा-सत्र की समाप्ति पर क्या परीक्षाएँ आवश्यक हैं। हमे अपनी शिक्षा प्रणाली के अनुकूल ही परीक्षाएँ विकसित करनी होंगी।

सबसे महत्त्व की बात यह है कि हम अपने स्कूलों से जो अपेक्षा करते हैं, उस भाव मे भी परिवर्तन करना होगा। हमे किसी डाक्टर, अध्यापक, इजीनियर अर्थशास्त्री या प्रशासक के जानने योग्य बातों से ही प्राइमरी स्कूल के छात्रों के जानने योग्य बातों का निर्धारण नहीं करना चाहिए। हमारे अधिकांश छात्र कभी भी इनमें से कुछ भी नहीं बनेंगे। हमें अपने प्राइमरी स्कूलों मे पढ़ायी जानेवाली बातों का निर्धारण केवल हमारे बालको को जानने योग्य बातों से ही तय करना होगा। अगर उन्हें एक समाजवादी और मुख्यतया ग्रामीण समाज मे प्रसन्नतापूर्वक रहना है और उसमे सुधार के लिए ही काम करना है तो उन्हे उन्ही गुणो को सीखना है और उन्हीं मूल्यो का आदर करना है, जो इस समाज के लिए आवश्यक है। हमारा ध्यान बहुसख्या पर रहना चाहिए और उन्हें भी ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम आदि तय करना चाहिए। उच्च शिक्षा के लिए उपयुक्त लोगों की तो आवश्यकता रहेगी ही और उन्हें भी हानि नहीं होनी चाहिए, क्योंकि आज जो शिक्षा मिल रही है उससे निम्न कोटि की

शिक्षा देने का तो प्रश्न ही नहीं है। हमारा उद्देश्य एक भिन्न प्रकार की ऐसी शिक्षा देना है जो तन्जानिया की विशिष्ट सामाजिक परिस्थिति के उद्देश्यों को पूरा कर सके। उत्तर प्राइमरी स्कूलों पर भी यही बात लागू होती है। शिक्षण का उद्देश्य छात्रों का एक विकासशील और परिवर्तनशील समाज मे रहने और कार्य करने के लिए उपयुक्त ज्ञान, कौशल तथा रुझान प्रदान करना है, न कि विश्वविद्यालयों में प्रवेश दिलाना।

पाठ्यक्रम के प्रति दृष्टिकोण सम्बन्धी इन परिवर्तनों के साथ साथ हमे अपने स्कूल चलाने के तौर-तरीको म इस तरह के परिवर्तन करने होंगे जिससे वे तथा उनके बाशिन्दे हमारे समाज और अर्थव्यवस्था के अंग बन सकें। वास्तव में स्कूलो को समुदाय बन जाना चाहिए और समुदाय भी ऐसे जो आत्मनिर्भरता का अभ्यास करें। अध्यापक अभिभावक तथा छात्रों को उसी प्रकार एक, सामाजिक इकाई मे परिवर्तित हो जाना चाहिए, जैसे परिवार हैं। स्कूल मे छात्र तथा अध्यापक का सम्बन्ध गाँव मे पिता पुत्र जैसा हो जाना चाहिए और पिता पुत्र के समुदाय जैसे ही छात्र अध्यापक समुदाय को भी यह समझना चाहिए कि उनका जीवन तथा योगक्षेम भी खेती या अन्य धधों में किये गये इनके परिश्रम पर ही निर्भर करता है। इसका अर्थ यह है कि सब स्कूलों को और खासकर सेकेण्डरी स्कूलो तथा उच्च शिक्षा की, दूसरी सस्थाओं को अपने रखरखाव की पूरी व्यवस्था खुद करनी चाहिए और उन्ह शैक्षणिक तथा सामाजिक समुदाय के साथ आर्थिक समुदाय भी बनाना चाहिए। प्रत्येक स्कूल के पास अपने एक अतरग भाग के रूप मे एक खेत या वर्कशाला होनी चाहिए जो कि उस समुदाय के लिए भोजन तथा सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय मे कुछ योगदान कर सकें।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हर स्कूल मे प्रशिक्षण के लिए एक खेत या कर्मशाला जोड दी जाय, वरन् इसका अर्थ इतना ही है कि हर स्कूल एक फार्म भी हो तथा वह एक ऐसा समुदाय बन जाय जहाँ पर छात्र तथा अध्यापक साथ साथ कृषक भी हो। स्पष्ट है, यदि स्कूल के पास फार्म भी हो तो छात्र उन पर काम करते हुए खेती के तरीके भी सीखेंगे। किन्तु यह खेत स्कूल का अतरग भाग होगा और खेतों पर जैसे किसानों का योगक्षेम निर्भर करता है वैसे ही इस स्कूल के उत्पादन पर छात्रों का योगक्षेम निर्भर करेगा। जब यह योजना कार्यशील होगी तब स्कूल के आय-खातों मे वर्तमान ढग पर "सरकार से सहायता", "स्वैच्छिक सस्थाओं से सहायता" जैसे वाक्यों के स्थान पर, रुई-बिक्री मे प्रमुक आय (या अन्य जो भी अनाज पैदा हों उनसे आय), 'उत्पादन

और उपभोग का मूल्य', 'नयी ईमारतों तथा मरम्मत पर छात्रों की मेहनत का मूल्य या सरकारी मदद या ऐसे ही वाक्य होंग।

हमारा यह प्रयास हमारी शिक्षा परम्परा से एक प्रकार की विदाई है। अत यदि अध्यापकों तथा छात्रों ने इसके उद्देश्यों और सभावनाओं को सही ढग से नही समझा तो यह भी सभव है कि प्रारम्भ में इसका विरोध हो। किन्तु सच्चाई यह है कि यह कोई प्रतिगामी कदम या छात्रों और अध्यापकों को सजा देनेवाला काम नही है। यह एक वास्तविकता है कि तजानिया म हमे गरीबी का निराकरण करना है और हम एक ही समाज के परस्पर निर्भर करनेवाले समान अधिकार के सदस्य हैं। पहले पहल इन बातो मे क्रियान्वित करने म कठिनाई होगी। उदाहरण के लिए, अभी हमारे पास स्कूल फार्मो की योजना बनानेवाले अनुभवी व्यवस्थापको और अध्यापको की कमी है, किन्तु यह न की जा सकनेवाली कठिनाई नही है और न ऐसे व्यवस्थापको के मिल जाने तक तजानिया का काम ही रुका रहेगा। जीवन और खेती शिक्षण साथ साथ चलेंगे। निश्चय ही विशिष्ट कामो के लिए अधीक्षको या अध्यापको के रूप मे अच्छे स्थानीय किसानो की नियुक्ति करने और कृषि अधिकारियो और उनके सहायको की सेवाएँ लेकर के हम इस मान्यता का खात्मा कर सकते हैं कि केवल किताबी ज्ञान ही मूल्यवान् होता है। यह हमारे समाजवादी विकास म महत्त्व का तत्त्व है।

स्कूल स्वय अपने रखरखाव की व्यवस्था करे, इस विचार का अर्थ यह भी नही है कि हम छात्रो को परम्परागत तरीको पर काम करनेवाले मजदूर बनाना चाहते हैं। इसके विपरीत स्कूल फार्म पर छात्र क्रिया द्वारा सीखेंगे। तभी खुरपी तथा अन्य सामान्य उपकरणो और उन्नत बीज हल तथा पशुपालन के उचित तरीको का महत्त्व भी स्पष्ट हो सकेगा और छात्र यह सीख सकेंगे कि इन चीजो का सर्वोत्तम लाभदायी उपयोग कैसे किया जा सकता है। खेत के कार्य और उत्पादन का स्कूल जीवन से सम्बन्ध जुड जाना चाहिए। और इसी प्रकार छात्रों को अपनी विज्ञान कक्षाओ मे खादो के गुणो की जानकारी दी जा सकेगी और उन्हे उपयोग मे लाकर छात्र खादो की सीमाओ से भी परिचित हो सकेंगे। उचित चरागाहों की सभावनो और मिट्टी के सरक्षण तथा मेडबदी आदि का ज्ञान सैद्धान्तिक स्तरों पर दिया जा सकता है और साथ ही छात्र क्या और क्यों कर रहे हैं, यह समझने के साथ-साथ वे अपनी असफलताओं और सुधार की सभावनाओं का विश्लेषण भी कर सकेंगे।

किन्तु स्कूल-फार्म उच्चस्तरीय यन्त्रीकृत फार्म नहीं हो सकते और न ही

उन्हें ऐसा होना चाहिए। हमारे पास ऐसा करने के लिए काफी धन भी नहीं है और न इससे छात्रों को जो जीवन जीना है उस बारे मे ही कोई सीख मिलेगी। स्कूल-फार्म, झाडियो या अन्य चीजो को साफ करके स्वय स्कूल समुदायों को ही बनाने पड़ेंगे और यह भी वे आपस मे सहयोग से करेंगे। उन्हे अन्य साधारण सहकारी फार्म से अधिक की मदद नही दी जानी चाहिए। इससे ही छात्र सहयोगी प्रयत्नों के लाभों को सीख सकेंगे, चाहे बाहर से काफी धन न भी मिलता हो। पुन सहकारिता के फायदों का कक्षाओ मे भी अध्ययन हो सकेगा। और फार्म पर उसका प्रदर्शन होगा।

सबसे अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि छात्रों को यह समझना चाहिए कि यह उनका फार्म है और इस पर ही उनका जीवन स्तर भी निर्भर करता है। छात्रों को कई आवश्यक निर्णय करने का अवसर देना चाहिए। उदाहरण के लिए यह कि वे अपने धन का उपयोग नया ट्रैक्टर खरीदने में करें या फार्म पर किसी और कार्य मे करें और खुद ऐसे कठोर कार्य स्वय के शरीरश्रम से करें। इस प्रकार से कक्षा और खेत के काम के सम्मिश्रण से हमारे छात्र यह अनुभव कर सकेंगे कि अपने छात्रावासो, मनोरजन कक्षो का अन्य जगहो पर अधिक आरामदायी सुविधाएँ उन्ह केवल अपनी मेहनत के बल पर मिल सकेंगी। यदि वे अच्छे ढग से काम नहीं कर सकगे तो वे खुद उठायेंगे। इस प्रक्रिया मे सरकार को कठोर नीति, नियमादि बनाने से बचना चाहिए और स्कूलों को काफी हद तक काम की स्वतत्रता रहनी चाहिए। केवल तभी क्षेत्र विशेष के उत्तमोत्तम का लाभ उठाया जा सकेगा और कार्यकर्ता केवल तभी प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का अभ्यास तथा शिक्षण प्राप्त कर सकेंगे। (क्रमशः)

भारतीय संस्कृति : विलम्बना और शिक्षा

कु० उमा वार्ष्णेय, एम० ए०, एम० एड०

सस्कृति और शिक्षा मे आज हमे कही विरोधाभास की विचित्र चर्चाएँ सुनाई देती हैं तो कही दोनो के मध्य विलम्बन की। इस प्रकार की चर्चाओ का स्रोत मानव मन की अवधारणाएँ हैं। सस्कृति और शिक्षा में विरोध की बात सोचना स्वय को एक भुलावे मे डालना है चूकि सस्कृति और शिक्षा परस्पर एक दूसरे के रक्षक वधक और पोषक हैं। दोनो मिलकर ही व्यक्ति को सामाजिक जीवन प्रदान करती हैं। अत फिर विरोध कैसा ?

जहा सस्कृति का निरूपण शिक्षा द्वारा होता है वहाँ सस्कृति शिक्षा का सवहन एक पीढी से दूसरी पीढ़ी को करती है और इस प्रकार दोनो एकरस होकर सामाजिक जीवन मे समरसता का सचार करती है। फिर भी हम दोनों के पृथक अस्तित्व की अवहेलना नही कर सकते। दोनो की निजी सत्ता है।

'सस्कृति' शब्द अत्यन्त व्यापक है। इसका अर्थ और अभिप्राय परिवेश एव पृष्ठभूमि के अनुरूप बदलता रहा है। प्रचलित भाषा मे 'संस्कृति' शब्द का अर्थ शालीनता, सुशीलता, शिष्टाचार एव सुरुचि से लिया जाता रहा है। ई० एम० टेलर के अनुसार सस्कृति एक जटिल समग्र है जिसमे ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता कानून और परम्पराएँ आदि सम्मिलित रहती हैं, जिन्हे व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप मे ग्रहण करता है। वस्तुत सस्कृति विभिन्न तत्वो का सम्मुचय मात्र है जिसे व्यक्ति सामाजिक वशानुक्रम के रूप में अपने समाज, परिवार, देश, जाति और वश से सहज रूप म प्राप्त करता है।

सस्कृति का सवहन सामाजिक ससग और सम्भाषण द्वारा होता है और धीरे धीरे फिर वह समूह परम्पराओं का रूप धारण कर लेती है। इसके अन्दर व्यक्ति की आत्म नियन्त्रण की शक्ति निहित रहती है। सस्कृति मे जहाँ एक ओर मानव की सम्पूर्ण भौतिक सम्यता—अस्त्र शस्त्र, वस्त्र, आवास, प्रवास, मशीन एव उद्योग का समावेश रहता है वहाँ दूसरी ओर अभौतिक सम्यता—भाषा, साहित्य, कला, धर्म, नैतिकता, कानून और सरकार का भी।

व्यक्ति के काय कलाप, आचार विचार एव वशभूषा उसकी सस्कृति का अवबोध कराते हैं। सस्कृति के विषय मे विद्वानो म दृष्टिकोण भेद होते हुए

श्री मेरिल, मेलिग्रानवस्की आदि विद्वान संस्कृति सम्बन्धी कुछ प्रमुख तथ्यों पर मतैक्य रखते हैं। वे इस बात से सहमत हैं कि संस्कृति मानव जन्य सामाजिक अनुवांशिकता है, यह अर्जित है, यह शारीरिक और सामाजिक आवश्यकताओं को समाज द्वारा स्वीकार्य तरीकों से पूर्ण करने पर बल देती है। उसका भाषा, आदत, विचार, आत्मनियंत्रण और परिष्कार से घनिष्ट सम्बन्ध है और वह संग्रहात्मक और संकेतात्मक है जिसे व्यक्ति अपने विकास क्रम के साथ सीखता है। भौतिक सभ्यता का विकास कार्यप्रणाली, कला, साहित्य, विधि और संस्कार सभी का सौजन्य हमें संस्कृति म दिखाई देता है।

संस्कृति हमारे अन्तरंग और बहिरंग दोनों को प्रभावित करती है। यह गतिशील होती है। निरन्तर परिवर्तन उसका स्वभाव है। समाज का ह्रास, विकास, अनुसंधान, आवागमन, यातायात देशों से व्यापार-सम्बन्ध युद्ध एवं तत्कालीन और भावी आवश्यकताएँ निरन्तर संस्कृति को प्रभावित करती रहती हैं। संस्कृति की भाँति ही शिक्षा-प्रक्रिया भी निरन्तर विकसित और परिवर्तित होती रहती है। संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण ही शिक्षा है, फलतः संस्कृति और शिक्षा परस्पर एक-दूसरे का अनुशीलन करती रहती है। परन्तु अपने निजत्व का त्याग न कर पाने के कारण जहाँ शिक्षा संस्कृति को अपने आँचल मे समाहित कर लेना चाहती है वहाँ संस्कृति शिक्षा को। फलतः दोनों में एक होड सी लगी रहती है। अतः कभी संस्कृति समाज मे आनेवाले परिवर्तनों से पीछे रह जाती है, तो कभी शिक्षा प्रक्रिया सांस्कृतिक मूल्यों से।

संस्कृति और सामाजिक जीवन के विकास का यह अन्तर ही विलम्बना (लैग) कहलाता है। समाज म होनेवाले विभिन्न परिवर्तनों से संस्कृति के किन्हीं वस्तुओं का पीछे रह जाना ही संस्कृति का विलम्बन है। सांस्कृतिक विलम्बन की स्थिति जीवन के प्रौद्योगिक साधनों तथा उसके मूल्यों में असंतुलन की स्थिति है। यह उसके भौतिक तथा अभौतिक तत्त्वों की असंगति से उत्पन्न होती है। सांस्कृतिक विलम्बना सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि मनुष्य की अन्वेषण शक्ति साधन और तकनीकी ज्ञान को विकसित करने की शक्ति नवीन परिस्थितियों के साथ अपने स्वभाव को अभियोजित करने की योग्यता से कहीं अधिक होती है। फलतः दोनों में तात्कालिक अभियोजन असफल हो जाता है और यह असफलता ही विलम्बना को जन्म देती है।

सामाजिक परिवर्तन तकनीकी अनुसन्धानों के साथ आरम्भ होती है, किन्तु व्यक्तियों के विचार अनुसन्धानों के व्यवहारिक प्रयोग मे विलम्ब करते हैं तथा

उसके समुचित प्रयोग मे बाधा डालते हैं, क्योंकि मनुष्य स्वभाव से ही सरक्षण-वादी है। उदाहरणत: स्वचालित गाडियो का अन्वेषण शीघ्र हो सका, किन्तु उनके प्रयोग ने लोगों के मन मे उनके प्रति विरोध भर दिया, चूंकि दीर्घ काल से ऊँटो, घोडो व बैलो का प्रयोग करनेवाले लोग एकबारगी ही यह कल्पना करने मे असमर्थ थे कि उनका स्थान स्वचालित गाडियाँ ले सकती हैं, फलत यह अनुसन्धान विलम्बना का शिकार हो गया। यही कारण है कि विश्व के कुछ देश अभी तक कोयले से धु धु करनेवाली गाडियो का प्रयोग भी आश्रान्त रहते हुए करते हैं।

जहाँ इस सिद्धान्त के समर्थक इस बात के पक्षपाती हैं कि यह विलम्बन सर्वव्यापी (यूनिवर्सल) है। वहाँ इसके आलोचकों का मत है कि यद्यपि यह सिद्धान्त न्यूनाधिक रूप से सास्कृतिक परिवर्तन की ओर इंगित करता है। तथापि सामाजिक परिवर्तन इसका अनुकरण नही करता। उनका कहना है कि सस्कृति तकनीकी तत्त्वो व मूल्यों से निर्मित होने के कारण स्वय (तकनीक) से किस प्रकार पीछे रह सकती है। हाँ, यह अवश्य कह सकते हैं कि सामाजिक परिवर्तनों का मार्गदर्शन कभी भौतिक अनुसन्धान करते हैं तो कभी विचार।

शिक्षा सस्कृति और विलम्बना के मध्य की कडी है जो दोनों के पारस्परिक अन्तर को मिटाने या कम करने का प्रयास करती है। शिक्षा का कार्य जहाँ एक ओर संस्कृति-सरक्षण है वहाँ नवीन अनुसन्धानो द्वारा समाज का विकास भी। अत शिक्षा-प्रक्रिया नवीन समाज की नवीन माँगो, आदर्शों की ओर उन्मुख होते हुए भी अपने भूत (सस्कृति) से विमुख नही होती वह सस्कृति और समाज मे सामजस्य स्थापित करती हुई सतुलन बनाये रखने का कार्य करती है।

सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों की रीति भी अनूठी होती है। मानव-समाज सस्कृति मे आनेवाले वहिर्परिवर्तन को जिस कुशलता और क्षिप्रता से स्वीकार करता है उसका अतरग उतना ही अपरिवर्तनीय या कठोर है जो परिवर्तित नहीं होना चाहता। दैनिक जीवन के अनुभवों से स्पष्ट है कि रूढिवादी लोग भी वेशभूषा के परिवर्तन को जिस सरलता से स्वीकार कर लेते हैं, वैवाहिक सम्बन्धों के प्रति उनका दृष्टिकोण उतना विशाल नही होता और वे सकीर्णता के शिकार हो जाते हैं। माता-पिता बालिकाओं को शिक्षा की ओर अग्रसर हैं उन्हें नौकरी करने की भी स्वतन्त्रता देना चाहते हैं, पर वडे ही विचित्र ढंग से वे चाहते हैं कि लडकों की भाँति उनकी कन्याएँ भी आत्म-निर्भर होकर आजीविका कमाएँ, किन्तु नही चाहते कि लडकों की भाँति उन्हें

रात को देर तक बाहर रहना पड़े या अन्य जोखिम उठाने पड़े। इतना ही नहीं, वरन् अधिक पैसा और सुविधाएं देनेवाली नौकरियाँ—जैसे स्टेनो, टाइपिस्ट डाक्टर, पायलट आदि नहीं बनाना चाहते, मात्र शिक्षण-क्षेत्र में भेजकर अध्यापिका बनाना चाहते हैं, सिर्फ अध्यापिका चाहे वह स्वयं अर्जन द्वारा अपनी आजीविका चलाने में भी असमर्थ क्यों न हो, नौकरी के लिए मैनेजरों की ठोकरें क्यों न खानी पड़े, चूंकि शिक्षण को अपने स्तर व मर्यादा का कार्य समझते हैं। पर ऐसा क्यों? सिर्फ इसलिए कि माता-पिता और अभिभावकों के सांस्कृतिक विचार समय और समाज की माँग के अनुसार परिवर्तित नहीं होना चाहते जिसके फलस्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों और शिक्षा-प्रक्रिया के विकास में स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होने लगता है और ज्यों-ज्यों यह अन्तर बढ़ता जाता है समाज में तनाव, अनुशासनहीनता, तोड़ फोड़ और असंतुलन परिलक्षित होने लगता है। यह कहना असंगत न होगा कि संस्कृति और शिक्षा-प्रक्रिया के विकास के मध्य आनेवाले पठारों को ही हम विलम्बन की संज्ञा देते हैं।

इस अन्तर को दूर करने और कम करने हेतु निदान-स्वरूप शिक्षा का आश्रय लेना पड़ता है, चूंकि शिक्षा-प्रक्रिया का कार्य है युवा पीढ़ी की माँगों को पूर्ण करें, उन्हें भविष्य-निर्माण के लिए तैयार करें और दूसरी ओर प्रौढ़ समाज को उनकी मान्यताओं का अवमूल्यन कराये बिना सन्तुष्ट रखें। प्रत्येक देश का युवक वर्ग वर्तमान की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के साथ साथ भावी विकास के लिए योजनाएं बनाना चाहता है वहाँ प्रौढ़ समाज भूत के आदर्शों के सहारे वर्तमान को व्यतीत कर देना चाहता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शिक्षा और तकनीकी विकास हमें 'अपोलो १४' जैसे आकर्षक परीक्षणों को करने की चुनौती देता है, चन्द्रलोक में विचरण करने को आकृष्ट करता है, वहाँ संस्कृति का ध्यान आते ही हम सहम जाते हैं कि हम देवलोक की व्यवस्था को भंग करनेवाले अपराधी तो नहीं हो जायेंगे!

अमेरिका का शैक्षिक विकास का इतिहास बताता है कि वहाँ के तकनीकी विकास की क्षिप्रता ने युवा समाज में क्रान्ति ला दी। वे स्कूलों के पाठ्यक्रम में आमूल परिवर्तन चाहते थे। फलतः जीवन को तकनीकी अनुसन्धानों के साथ चलाने के लिए स्कूलों में साइकिल मोटर चलाने, टाइपिंग आदि की शिक्षा देने का आयोजन किया गया, जिन्हें हम पाठ्य सहगामी क्रियाओं में स्थान देते हैं। प्रौढ़ समाज उस समय भी धर्म और साहित्य से परिपूर्ण पुरातन शिक्षा देना चाहते थे, किन्तु विजय युवा वर्ग आकांक्षा-पूर्ति के फलस्वरूप तकनीकी ज्ञान का प्रयोग करने के लिए तत्सम्बन्धी विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान मिला, किन्तु

इससे स्कूलो का कार्यभार अपेक्षा से अधिक बड गया दूसरी ओर विलम्बन भी कम होने लगा, अत शिक्षा पुन प्राचीन मूल्यो को लेकर वर्तमान की आवश्यकताओ को पूर्ण करने लगी।

आजकल भारत की अवस्था प्राचीन अमेरिका जैसी ही है जहाँ दो पीढियों सस्कृति और शिक्षा का अन्तर बढता जा रहा है, अत आवश्यकता इस अन्तर को कालक्रमेण कम करने की है और यह कार्य है हमारे शिक्षाविदो का। विलम्बन को कम करने और रोकने के लिए उन्हे दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए और शिक्षा योजनाएँ अपने देश और समाज की दस वर्ष आगे की आवश्यकताओ और मान्यताओं को ध्यान मे रखकर बनानी चाहिए, जिससे विलम्बन के लिए कोई स्थान न रह जाये। उक्त बातो को दृष्टिगत रखकर, इतिहास से सूझ बूझ लेकर शिक्षा नियोजित की जायेगी तो अवश्य ही भविष्य मे हमारा समाज हेमे आज से अधिक सतुष्ट और उन्नतिशील दिखाई देगा।

सहायक पुस्तकें

१ ब्राउन, एफ० जे०—एजुकेशनल सोसियालोजी (द्वितीय सस्करण)
२ मेरिल, फान्सिस एफ०—सोसाइटी एण्ड कल्चर : एन इन्ट्रोडक्शन टु सोसियालोजी (द्वितीय सस्करण)
३ फिचर, लुई एण्ड डोनाल्ड मार०—सोशल फाउण्डेशन आफ टामस एजुकेशन डेसिजन्स।
४ सैंयदैन, के० जी०—एजुकेशन कल्चर एण्ड सोशल आर्डर (द्वितीय सस्करण, १९५८)
५ बार्कर, एच० जेम्स०—एजुकेशनल एम्रा एण्ड सिविक नीड्स, १९१३।

कु० उमा वार्ष्णेय, एम० ए०, एम० एड० शोध-छात्रा, शिक्षा-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५

हिन्दी पद्य-शिक्षण की परम्परागत प्रणाली में परिवर्तन आवश्यक है

सोहनलाल पटनी

प्रशिक्षणकाल मे एव अध्यापनकाल मे मैंने यह अनुभव किया कि हिन्दी पद्य शिक्षण की परम्परागत प्रणाली म कही दोष है क्योकि परम्परानुसार हम प्रत्येक कविता को रसपाठ (Appreciation lesson) के रूप मे पढ़ाते रहे हैं। हमने चन्दबरदाई के छप्पयों दूहो एव पद्धडियों से लेकर पन्त एव निराला तक की कविताओ को सीधे रसपाठ के रूप मे पढाया है। हमने कभी विचार ही नहीं किया कि य कविताएँ डिंगल की है अथवा अपभ्रश की तत्सम शब्दप्रधान हैं अथवा अवधी एव बुन्देली के ठठ ठाट से युक्त हैं एव बालक उन कविताओ म प्रयुक्त शब्द के अथ एव रूपपान मे अनभिज्ञ है। हम अकेले ही रसास्वादन करते रह हैं और बेचारा निरीह बालक अनुमान के आधार पर ही रसमग्न माना गया है। यह सब परम्परागत पद्य शिक्षण की रूढ़ि का अनुसरण करने के कारण हुआ है। क्योकि वहाँ हमने प्रत्येक कविता को रसपाठ के रूप में पढाने की प्रतिज्ञा की है। पद्धति क्या है? एक अच्छी सी कवायद। पहले प्रस्तावना मे कविता वाचन (भावसाम्य की) प्रस्तुतीकरण मे आदश वाचन एव अनुकरण वाचन शब्दाथ सीधे बताकर काव्यमय वातावरण का सृजन करने हेतु वाचन भाव एव सौन्दय विश्लेषक प्रश्नो के बाद वाचन पुनरावृत्ति के बाद वाचन और न मालूम कितनी बार पुन पुन वाचन करवाकर बिना शब्द के अथ एव रूपबोध के हमने छात्र को अधिकारपूवक केवल अनुमान के आधार पर ही भावविभोर करने का प्रयत्न किया है और उसका परिणाम सौन्दयबोध के ह्रासोन्मुख स्तर के रूप म प्रस्फुटित हुआ है। ऐसा प्रयास प्रशिक्षण विद्यालय मे एव उसके बाद मैंने भी किया था पर मेरी आत्मा जानती थी कि मैं अकेला ही रसास्वादन कर रहा हूँ एव छात्रों को एक बहुत बडे रसस्रोत से तो वचित कर ही रहा हूँ पर ज्ञानाजन से भी दूर रख रहा हूँ।

एक दिन कक्षा ९ वी सूर का निम्न पद्य पढ़ा रहा था —

> कहाँ लौं बरनौ सुन्दरताई
> खेलत कुँवर कनक आँगन मे नैन निरखि छबि छाई

कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहुविधि सुरग बनाई
मानो नवघन ऊपर राजत मघवा धनुष चढाई
अति सुदेश मृदु हरत चिकुरमन मोहन मुख बगराई
मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवलि घिर आई
...

सूरदास बलि जाई।

मैंने परम्परागत कविता पाठ यानी रसपाठ के रूप मे इस पद को पढाया एव अपने प्रशिक्षणकाल के ४० पाठो मे से १ पाठ पूरा कर लिया। पर मैं सोचता रहा कि क्या सब प्रकार की कविताओ अर्थात् ब्रज, अवधी, राजस्थानी एव खडी बोली आदि की सरल एव क्लिष्ट तत्समप्रधान एव गूढ़ कविताओ को सदव सभी कक्षाओं को रसपाठ के रूप मे ही पढाया जाय? क्या कविताओ को पहले बोधपाठ के रूप में नहीं पढाया जा सकता है जिससे बालको को कवितागत शब्दो के अर्थ का बोध गद्यपाठ की तरह ही हो जाय? क्या कवितागत शब्दो के रूपज्ञान की आवश्यकता बालक को नही रहती है कि यह शब्द तत्सम से तद्भव एव देशज रूप मे किस प्रकार परिवर्तित हुआ है? क्या बालक को कवितागत वस्तु के ज्ञान की आवश्यकता नही रहती है? इन सबके अभाव मे बालक को रसमग्न कैसे किया जा सकता है? परम्परागत प्रणाली मे इसका उत्तर था कि कविता शिक्षण मे तो हम केवल बालक को रसमग्न कर एव उसकी सौदर्यबोधपरक भावनाओ का विकास कर सदवृत्तियो का विकास करते हैं। रूपबोध अर्थबोध एव वस्तुबोध तो हम गद्य एव व्याकरण शिक्षण मे करवाते हैं, यहाँ यह अभीष्ट नही। पर मेरे सामने यह प्रश्न ज्वलन्त खडा रहा। कविता पाठ रसमग्नता के लिए ही होता है पर बालक को कविता रसपयस्विनी के तट पर पहुँचाने के लिए कवितागत भाषा के रूप, अर्थ एव मर्म से परिचित कराना होगा। क्लिष्ट एव तत्सम शब्द अथवा देशज (ब्रज अवधी, बुन्देली अथवा राजस्थानी रूप) शब्दो से युक्त कविताओ को सीधे रसपाठ के रूप मे पढाकर बालक को रसमग्न करने की प्रतिज्ञा तो वैसी ही होगी कि बिना नारियल की जटा एव कवच को फोडे उसका मधुर जलपान कराया जाय। प्रशिक्षणकाल समाप्त होने पर मैंने इस प्रश्न पर विचार एव कार्य प्रारम्भ किया।

सर्वप्रथम मैंने पाठ्यपुस्तक के प्राचीन एव अर्वाचीन कवियो के पद्यो का क्लिष्ट एव सरल रूपों में वर्गीकरण किया कि अमुक पद सरल है एव अमुक क्लिष्ट—क्लिष्ट से मेरा तात्पर्य था जिन पद्यो मे तत्सम शब्दावली का बाहुल्य

ही एवं भावगूढ़ता भी। सरल कोटि में उन कविताओं को लिया गया जो उनसे अपेक्षाकृत सरल एवं गूढ़ व्यन्जनाप्रधान नही थी। मैंने प्रयोग आरम्भ किया। कक्षा १० के दो विभाग 'अ' एवं 'ब' मेरी शाला म थे ही। एक विभाग मे मैंने क्लिष्ट कविताओं को भी अत्यन्त निष्ठापूर्वक रसपाठ के रूप मे पढाना आरम्भ किया एवं दूसरे विभाग म क्लिष्ट कविताओं को पहले बोधपाठ के रूप में पढ़ाता रहा एवं दूसरे दिन उन्हे रसपाठ के रूप मे पढाता रहा। परम्परागत कविता शिक्षण के अनुसार यहाँ कठिन शब्दार्थ देने की आवश्यकता नहीं रहती थी क्योंकि मैं उन्हें पहले ही बोधपाठ के रूप मे वह पद पढा चुका होता था एवं बालक उस कविता के शब्द रूपो का ज्ञान प्राप्त कर चुके थे, अत अनुकरण वाचन के पश्चात् मैं सीधे भाव एवं सौन्दर्य विश्लेषक प्रश्न पूछता रहा। इससे एक तो समय की बचत रही और दूसरे अध्यापक एवं बालक समान स्तर पर रसास्वादन करते रहे। शब्दार्थ नही लिखाने से मुझे कक्षा म लिखित कार्य की जाँच की आवश्यकता नही रहती थी एवं उससे उत्पन्न हुए रस गतिरोध मे काव्यमय वातावरण के सृजन के लिए पुन: कविता-वाचन की आवश्यकता भी नहीं रहती थी। दोनो कक्षाओं मे पहले क्लिष्ट पद्यो का ही शिक्षण चलता रहा। एक मास बाद दोनो कक्षाओं की जाँच आयोजित की जानेवाली थी, पर क्लिष्ट कविताओं को पहले बोधपाठ के रूप मे पढनेवाली कक्षा तो केवल सूर एवं तुलसी का आधा भाग ही पढ चुकी थी जबकि सीधे रसपाठ के रूप मे कविता पढनेवाली कक्षा सूर, तुलसी का पूरा निर्धारित अंश पढ चुकी थी। पर, मुझे आत्मविश्वास था उस कक्षा पर। कारण स्पष्ट था, यह कक्षा सूर एवं तुलसी की कविता को पढते हुए शब्दो के अर्थ, मर्म एवं रूप ज्ञान से परिचित हो चुकी थी। एक ही शब्द के तत्सम, तद्भव एवं ब्रज, अवधी के रूपो को भी बालकों ने समझ लिया था। अत मैंने कह दिया कि जाँच सूर, तुलसी के पूरे पद्यो की होगी। साथ ही यह भी कह दिया कि मीरा के पद भी जाँच में पूछे जा सकेंगे। बोधपाठ एवं फिर रसपाठ के रूप में पढनेवाली कक्षा को कह दिया कि वह तुलसी के शेषांश को पढ़ने के लिए पढे पदों के शब्द ज्ञान एवं भाव ज्ञान का उपयोजन (application) आगे के पदों के लिए भी करे। बिना किसी सूचना के उसी दिन जाँच का आयोजन किया गया, अन्यथा बालक शेष अश के लिए घर पर किसीकी सहायता प्राप्त कर लेते।

जाँच हुई एवं परिणाम सामने आया। कविता को सीधे रसपाठ के रूप में पढ़नेवाली कक्षा शब्दों के मर्म को समझ ही नही सकी थी एवं उसका

प्रदान भी बोधपाठ एव फिर रसपाठ के रूप मे पढनेवाली कक्षा से फीका रहा। यह प्रयोग फिर कक्षा ९ म दुहराया गया और वहाँ भी वैसा ही परिणाम रहा। फिर यह देखने के लिए कि छोटी कक्षाओ मे यह प्रयोग कैसा रहता है, मैंने कक्षा ६ मे भी यही किया। एक कक्षा को सूर एव मीरा के पद सीधे परम्परानुसार रस-पाठ के रूप मे पढाया एव दूसरी को पहले बोध पाठ के रूप में एव फिर रसपाठ के रूप मे। यहाँ भी परिणाम वही था। बोधपाठ के रूप मे पढनेवाले बालको का ज्ञान एव उपयोजन (application) अच्छा था जबकि सीधे रसपाठ के रूप मे पढनेवाले छात्रों का उपयोजन कुछ भी नही था। इसके पश्चात् मैंने सभी कविताओ को केवल रसपाठ के रूप मे पढाने की परम्परागत प्रणाली का परित्याग कर दिया।

अब बारी थी प्राचीन कवियो क सरल पद्यो की। इनको पढाने के लिए मैंने रूप तुलना प्रणाली का सहारा लिया। मुझ यह विश्वास था कि बालक इनके शब्द रूपो को समझते ही भाव अपने आप हृदयगम कर लेंगे। रूप तुलना प्रणाली मे कवितागत शब्दो के रूपो की तुलना उनके तत्सम, तद्भव एव देशज रूपो मे की जाती है एव फिर प्रयोग, पर्याय ए विलोम आदि द्वारा उसका अर्थ स्पष्ट कर दिया जाता है —

जैसे—पीव	पीउ	प्रिय	पति
पाँख	पख	पक्ष	पक्षी
रैन	रजनी	रात	रात्रि
केवटिया	केवट	कैवर्त	
पुहुपन	पुहुप	पुष्प	फूल
गुराइसि	गुराइस	गुर-गुरु	आइस आदेश
तरैयवि	तरैया	तारे	तारक
ऊबरे	उबरना	ऊपर आना	आदि आदि

आदर्श वाचन कर फिर रूप तुलना छात्रों द्वारा ही प्रश्नोत्तर के माध्यम से कराता रहा एव फिर अनुकरण वाचन करवा कर भाव विश्लेषण के प्रश्न पूछता रहा। रूप तुलना कराते समय अध्यापक का कर्त्तव्य कम एव छात्रो का कर्त्तव्य अधिक रहता था, अत बालक प्रतिस्पर्धावश भावी पाठ की तैयारी के लिए घर पर शब्दकोष का प्रयोग भी करते रहें।

इस प्रकार उन्हे शब्दो के रूप ज्ञान के साथ उनके पर्याय एव विलोम भी ज्ञात हो गय एव उन्हे कविता का सौन्दर्यबोध भी शीघ्र हो जाता था क्योंकि वे शब्द के रूप अर्थ एव मर्म को समझने लग थे।

इन्हीं कवियों के कुछ पदों को पढाने के लिए एक दूसरी शैली भी अपनायी गयी जो उपयोजन-पाठ (Application Lesson) की प्रणाली थी। माध्यमिक स्तर तक इन कवियो के पद भक्ति, वात्सल्य एव नीति तक ही सीमित हैं, अतः उपयोजन पाठ के रूप मे इनको सम्यक्‌रूपेण पढाया जा सकता है। अत इन कवियो मे से किसी एक के ऐसे पदों को पहले दिन पढ़ाकर फिर दूसरे दिन वैसे ही भाववाले दूसरे कवि के पदों अथवा दोहों को पढ़ा दिया गया। जैसे सूर का पद—

तजौ रे मन हरि विमुखन को सग।
जाकै सग कुबुधि उपजति है परत भजन मे भग
... दूजो रग॥

को पढाकर दूसरे दिन तुलसी के निम्न पद को समानभावी होने के कारण उपयोजन-पाठ के रूप मे पढ़ा दिया गया—

जाकें प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि वैरी सम जद्दपि परम सनेही॥

उपयोजन पाठ-प्रणाली मे बालक अपने पूर्वपठित एव अर्जित ज्ञान का उपयोग अगले पाठ में करता है, अत यहाँ भी उसका कर्त्तव्य अधिक रहता है एव अध्यापक का कम। अत सूर, तुलसी एव मीरा के पदों को तथा कबीर, बिहारी, रहीम, दादू एव वृन्द आदि के नीतिपरक दोहों को उनके परस्पर समानभावी पदो अथवा दोहो के माध्यम से पढाया गया। इसके लिए विषयानुरूप कबीर के, बिहारी के, रहीम के एव वृन्द आदि के दोहों का चयन एक स्थान पर किया गया एव उनकी एक इकाई मानी गयी।

कबीर, रहीम, वृन्द, राजिया, दादू एव दीनदयाल गिरि के नीतिविषयक दोहो एव पदो को पढाते समय एक और विचार सामने आया कि क्या इनका शिक्षण कविता शिक्षण की तरह ही होना चाहिए ? मैंने उनके दोहों को कविता शिक्षण के अन्तर्गत नही माना क्योंकि इनमे तो नीति एव व्यवहार की गूढ बातें भरी हुई हैं भले ही यह रचना छन्दबद्ध होने के कारण कविता कहलाती हो। बिहारी के सौन्दर्य एव प्रेमपरक दोहे पढाते समय भी यह महसूस किया गया कि ये दोहे तो 'नावक के तीर' हैं पर रसपाठ के रूप मे पढाने के कारण उनका अर्थ, रूप एव वस्तुबोध नहीं होता है एव वे 'घाव करें गम्भीर' वाली उक्ति को चरितार्थ नहीं करते हैं क्योंकि उनमे गूढतम भावों की व्यञ्जना अर्थबोध (क्योंकि वे खडी बोली मे नहीं हैं) एव वस्तुबोध के बिना सम्भव नहीं। अत इनके ऐसे दोहो को मैंने सदैव बोधपाठ के रूप मे पढाया है एव फिर रसपाठ के रूप मे पढाने की आवश्यकता नहीं समझी है।

मुझे कविता पाठन की परम्परागत विधि यानी सीधे इस पाठ की प्रणाली का परित्याग करने से लाभ प्राप्त हुआ है एव ऐसा कर मैंने कवितागत रस का आस्वादन छात्रो को भी करवाया है। अन्यथा परम्परागत प्रणाली के अनुसार मैं तो रसास्वादन कर लेता था पर छात्र रस-पयस्विनी के पट पर खड़े ताकते ही रह जाते थे, अत मेरा हिन्दी शिक्षको से निवेदन है कि वे कविता शिक्षण की परम्परा प्रणाली मे परिवर्तन करें एव कविताओ का समयानुकूल, स्तरानुकूल एव भावानुकूल वर्गीकरण कर पहले यदि आवश्यक हो तो बोधपाठ के रूप मे पढाकर छात्रो को रूपज्ञान अर्थज्ञान एव वस्तुज्ञान करवा लें एव फिर रसपाठ के रूप मे पढायें। हमे कविता शिक्षण मे उपयोजन (Application) प्रणाली एव रूप-तुलना प्रणाली (Forms Composition) का भी अनुसरण करना चाहिए तभी हम छात्रो का ज्ञानवर्द्धन कर उनकी रुचि का सस्कार कर सकेंगे एव तभी सौन्दर्यबोध भी जाग्रत होगा। ('जन शिक्षण' से साभार)

श्री सोहनलाल पटनी पार्श्वनाथ उम्मेद माध्यमिक विद्यालय, फालना (राजस्थान)

शैक्षिक आयोजना का प्रमुख आधार : विद्यालय-योजना

चन्द्रशेखर भट्ट

किसी कार्य को सुव्यवस्थित ढग से सम्पन्न करने का सकल्पपूर्वक उपक्रम ही योजना कहलाता है। 'योजना' शब्द सस्कृत की युज् समाधौ या युज् सयमने धातु से निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस शब्द का अर्थ है—किसी कार्य का सम्यक् आधान करना, कार्यप्रणाली की रूपरेखा को मन म भली प्रकार से बिठा लेना, भली प्रकार से कार्य मे प्रवृत्त होना।

बिना योजना को किसी भी कार्य म प्रवृत्त होना सभव नहीं है। यह कहा गया है कि अधम कोटि के मनुष्य विघ्नों के भय से कार्यारम्भ ही नही करते। मध्यम कोटि के मनुष्य कार्यारम्भ तो कर देते हैं, परन्तु विघ्नो से घबराकर कार्य को अधूरा ही छोड दिया करते हैं। उत्तम मनुष्य वे होते हैं जो जिस कार्य का प्रारम्भ कर देते हैं, उसे पूरा करके ही छोडते हैं। चाहे कितने ही विघ्न उपस्थित हो जायें वे उनसे नही डरते, साहसपूर्वक उनका सामना करते हैं और अन्त मे उन पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति योजनापूर्वक कार्य करके ही अपनी अभीष्ट सिद्धि करते हैं।

जब भारत पराधीन था, हम अपना कार्य अपने ढग से योजनापूर्वक करने म समर्थ नही थे। पराधीन मस्तिष्क कभी स्वाधीन चिन्तन नही कर सकता। इसीलिये वह अपने कार्य को योजनापूर्वक सम्पन्न भी नहीं कर सकता। पराधीनता से मुक्ति पाने के लिये विगत सहस्राब्दि मे सैकडो यत्न किये गये, परन्तु सफलता न मिल सकी। इसका कारण सुयोजित ढग से यत्न किया जाना ही माना जा सकता है। सुयोजित ढग मे योजनापूर्वक काय करने का एक लक्षण यह भी है कि उसमे सभी सहकर्मियो और सहधर्मियो का सहयोग रहता है। यह सभी सम्भव होता है जब योजनापूवक सभी साधनस्रोतों को सहयुक्त किया जाता है। वेदो मे श्रम मे प्रयुक्त होनेवाले व्यक्ति को कवि कहा गया है। जो धम काव्यसर्जना करनेवाले कवि का है वही योजना बनाकर श्रम मे प्रवृत्त होनेवाले का माना जा सकता है।

हमारी शिक्षा और योजना

भारत के स्वाधीन होते ही हमने प्रगतिपथ पर चलने की योजनाएँ बनायीं।

यद्यपि इन योजनाओं का अभीष्ट प्रभाव नहीं पड सका, न इनके लक्ष्य ही सिद्ध हो पाये, परन्तु यह तो असदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि आगे बढने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही हो सकता था। इन योजनाओं का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र मे तो विशेष रूप से देखा जा सकता है। शिक्षा का प्रसार तीन पचवर्षीय योजनाओं मे जितना हुआ है उतना शीघ्र ससार के किसी अन्य राष्ट्र म इतने कम समय मे नहीं हुआ होगा।

शिक्षा से सम्बन्धित त्रुटियाँ भी इन योजनाओं मे अनेक हुई हैं। इन योजनाओं मे शिक्षा के प्रसार पर जितना बल दिया गया है उतना शिक्षा के स्तर पर नही दिया गया। शिक्षा का स्वरूप भी अंग्रेजों के समय जैसा ही चलता रहा। इससे और कुछ भले ही हुआ हो, स्वाधीन चिन्तन की परम्परा लगभग एक सी गयी। विद्यालय मे ऊँची-से-ऊँची डिग्री लेकर निकला हुआ व्यक्ति अपना पेट भरने मे भी अक्षम रहता है और इधर-उधर नौकरी के लिये भटकता रहता है। उसकी जानकारी का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है। विद्यालयीय शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य मे जन्मजात रूप से निहित, जीवन-यापन के लिये अपेक्षित, व्यावहारिक ज्ञान के विकास और प्रकाशन मे योगदान करना होता है। इसके स्थान पर वर्तमान शिक्षा मनुष्य के व्यावहारिक ज्ञान को भी समाप्त कर देती है। इसीलिये बहुधा यह कहा जाता है कि जो जितना पढा-लिखा होता है, वह उतना ही व्यावहारिक जीवन से अपरिचित, मूढ होता है।

हमारी शिक्षा-योजना सम्पूर्ण देश के लिये एक नहीं है। अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार से प्रयोग चल रहे हैं। सर्वत्र ही शिक्षा का केन्द्र औसत दर्जे का विद्यार्थी है। न तो ऐसी शिक्षा से विशिष्ट प्रतिभाशाली छात्रों को आत्मविकास मे सहायता मिलती है और न अतिसाधारण छात्रों को बौद्धिक स्तर सुधारने के लिये ही अवसर मिलता है। विदेशी अनुकरण तो सर्वत्र है ही, जिसके कारण अपनी अच्छाइयों की ओर भी ध्यान नहीं जाता। इन परिस्थितियों में शिक्षा एक अति-महत्त्वाकाक्षा की पूर्त्तिकारिणी मात्र बनकर रह जाती है। उसमें प्रतिभा का उचित मूल्यांकन होना सभव ही नहीं है। ऐसा इसलिये होता है कि हमारी योजनाएं कुछ मस्तिष्कों की कल्पना से अनित हैं और उनको कुछ लोगों द्वारा जनसाधारण पर थोप दिया जाता है। न तो यहाँ विद्यार्थी व उसके अभिभावक को यह सोचने का अधिकार है कि विद्यार्थी क्या व कैसे पढ़ना चाहता है और न उनको अनुचित कार्यों को रोकने का ही अधिकार है।

योजनाओं की त्रुटियों को दूर करने का दायित्व समाज के सभी घटकों का है। शैक्षणिक जगत् की समस्याओं को इससे सम्बन्ध रखनेवाले शिक्षणालय ही दूर कर सकते हैं। इसीलिये विद्यालय-योजनाओं का महत्त्व बढ़ जाता है। विद्यालय-योजना का तात्पर्य है—वह योजना जिसे विद्यालय संचालित करता है। एक निश्चित उद्देश्य की सिद्धि के लिये सुव्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ना ही विद्यालय-योजना की कार्यप्रणाली है। कोठारी शिक्षा-आयोग ने राष्ट्रीय योजनाओं मे विद्यालयों की व्यापक भूमि का आकलन किया है और यह दायित्व विद्यालयों पर डाला है कि वे अपने-अपने क्षेत्रों में योजना की लक्ष्य-सिद्धि करें। इस दृष्टि से विद्यालय-योजना का महत्त्व भी बढ़ जाता है। अपना संकल्प, अपनी कार्यप्रणाली, अपना लक्ष्य-निर्धारण और स्वतः लक्ष्य-सिद्धि—यही विद्यालय-योजना का स्वरूप है। विद्यालय-योजना केवल सामने आयी हुई समस्या को सुलझाने के लिये ही नहीं होती, वरन् विद्यालय की कार्यप्रणाली मे अपने ढंग से सुधार करने व अपने विकास का मार्ग स्वयं निर्धारित करने के लिये होती है। यह निश्चित है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना मार्ग स्वयं पार करना होता है। कार्य को स्वयं करने की भावना ही विद्यालय योजना का मूलाधार है। अपने विकास की योजना स्वयं बनाकर विद्यालय अपना भविष्य निश्चित करता है, अपना वर्तमान बनाता है और अपने भूतकाल का आगे बढ़ने मे अपने ढंग से उपयोग करता है।

प्रायः विद्यालयों की स्वतंत्रता की बात कही जाती है। स्वतंत्रता का तात्पर्य होता है—अपना लक्ष्य निर्धारण करने और लक्ष्य-सिद्धि के लिये साधनों को उपलब्ध करने और उनका प्रयोग करने की स्वतंत्रता। किसी विद्यालय की योजना कितनी मौलिक और प्रभावशाली है—यह बात इस पर निर्भर है कि वह विद्यालय-योजना बनाने और उसको क्रियान्वयन करने मे कितना स्वतंत्र है। विद्यालय-योजनाएँ विद्यालयों की स्वतंत्रता की घोषणा करती हैं, अध्यापकों को मनोविकास के अवसर प्रदान करती हैं तथा उन्हे इस विकास को स्थायी बनाने की सुविधा देती हैं। इनसे अध्ययन-अध्यापन के स्तर मे सुधार होता है। छात्रों मे इनसे प्राप्त साधनों का समुचित उपयोग करने की भावना जागती है। उनमे आद्योपान्त समुन्नयन भावना का विकास होता है तथा निश्चय और क्रियान्विति मे सामंजस्य स्थापित करने की भावना जागती है।

विद्यालय-योजनाएँ दो प्रकार की हो सकती हैं—(१) विद्यालय के सुधार व विकास की योजना तथा (२) अपने क्षेत्र के विकास के लिये विद्यालय द्वारा निर्मित योजना। इनमे से कुछ योजनाएं स्वल्पकालिक हो सकती हैं और कुछ दीर्घकालिक। अनेक स्वल्पकालिक योजनाएँ एक दीर्घकालिक योजना के अंग के रूप मे चलती रह सकती हैं। इनके साधन दीर्घकालिक योजना की सिद्धि मे सहायक हो सकते हैं। विद्यालय-योजनाएँ अपने जिले व राज्य की योजना का अंग बनकर अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण राष्ट्र की योजना का महत्त्वपूर्ण अंग बन सकती हैं। विद्यालय योजनाओं के असफल होने की अदूरदर्शिता और अक्षमता होती है। विद्यालयों मे योजनाओं की सफलता असंदिग्ध होती है।

योजना का महत्त्व

इतना होने पर भी यह सुज्ञात तथ्य है विगत वर्षों में शिक्षा का स्तर बराबर गिरता चला गया है। इसका एक कारण यह भी है कि शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार के लक्ष्य को लेकर चलते समय उसका स्तर प्राय. गौण हो गया है। विद्यालय-योजनाएँ स्तर गिरने की समस्या का समाधान प्रस्तुत कर सकती हैं। योजना साधन है और सुधार उसका लक्ष्य। सुधार छात्र, शिक्षक और शिक्षण-पद्धति का तो हो ही सकता है साथ ही उन परिस्थितियों का भी हो सकता है जिनमे कोई भी छात्र, शिक्षक या शिक्षण-पद्धति असफल हो जाती है। वस्तुतः सफलता का तात्पर्य है उस क्षण को खोज जहाँ मनुष्य की गति अपना औचित्य खोज लेती है। यह क्षण उपयुक्त परिस्थितियो की देन होता है।

विद्यालय दो प्रकार की परिस्थितियों मे कार्य करता है। प्रथम प्रकार की बाह्य भौतिक परिस्थितियाँ होती हैं। दूसरे प्रकार की परिस्थितियों का सम्बन्ध भावना-जगत् से होता है। कई विद्यालयों को स्थानीय राजनीतिक खींचतान का शिकार होना पड़ता है। विद्यालय योजना ऐसी खींचतान को समाप्त करने मे सहायक हो सकती है। प्रकाश वहीं से मिलता है जहाँ दीपक हो। विद्यालय अपने क्षेत्र मे विवेक की ज्योति को विकीर्ण करनेवाला एकमात्र प्रकाश-स्तम्भ माना जा सकता है। आधुनिक काल मे समाज का जितना अहित राजनीतिक पूर्वाग्रहों और अन्धविश्वासो से हुआ है उतना किसीसे नहीं। विद्यालय-योजना द्वारा ऐसा वातावरण बनाया जा सकता है जिसमे ऐसे पूर्वाग्रहों और अन्धविश्वासों को कोई स्थान न हो। यदि विद्यालय अपनी योजना द्वारा स्थानीय समाज के तात्कालिक हिताहितो के प्रति स्वस्थ दृष्टि–

कोण प्रस्तुत करके अपनी उपयोगिता प्रत्यक्ष रूप से समाज के सामने प्रकट करे तो कोई कारण नहीं है कि विद्यालय को अपने विकास में समाज का सहयोग न मिले। सच यह है कि हमारे किसी भी विद्यालय का समाज से सीधा सम्पर्क नहीं है और इसीलिए साधारण जनता विद्यालय की अपनी तात्कालिक परिस्थिति मे कोई उपयोगिता नही समझती। इसलिये न अध्यापक को समाज में समुचित आदर मिलता है और न शिक्षा विभाग के अधिकारियो को ही अन्य अधिकारियों के समान, प्रतिष्ठा का पात्र समझा जाता है। यह भले ही चौंकानेवाला तथ्य हो, परन्तु है अवश्य कि भारत में शैक्षणिक जगत् से सम्बद्ध ४½ करोड व्यक्तियों का श्रम राष्ट्रीय उत्पादन से असम्बद्ध हो। जिस राष्ट्र के सामने इतनी समस्याएँ हों, प्रतिवर्ष अकाल पडते हों और शत्रु निरन्तर हानि पहुँचाने को कटिबद्ध हों वहाँ इतने सारे लोग अनुत्पादक श्रम करते हो इससे बडी विडम्बना और क्या हो सकती है? जो श्रमपूर्वक राष्ट्रीय उत्पादन मे भाग लेते हैं और कर देकर राज्य का कोष भरते हैं उनके सामने विद्यालयों की तात्कालिक कोई उपयोगिता नहीं है। इसीलिए समाज का सहयोग विद्यालयों को नहीं मिलता। विवेकपूर्वक विद्यालय योजना का निर्माण करके यह स्थिति समाप्त की जा सकती है।

जो योजना विद्यालय का सम्बन्ध अपने परिवेश से जोड सकती है वही योजना जिला, राज्य और राष्ट्र की योजना से भी उसका सम्बन्ध जोडने में समर्थ हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी योजनाओं का अपना सम्बल हो और व्यापक दृष्टिकोण हो। विद्यालय योजना के निर्माताओं को चाहिये कि वे अपने साधन-स्रोतो को दृष्टि मे रखते हुए और अपनी आवश्यकताओं को समझकर छात्र शिक्षक, परीक्षक आदि को केन्द्र मानकर उनकी कार्यप्रणाली में यथोचित सुधार करने के लिए योजना बनायें और सामाजिक सन्दर्भों मे इनमे से प्रत्येक की उपयोगिता निश्चित करने का प्रयत्न करें।

राष्ट्रीय नीति सामने हो, शिक्षा के उद्देश्य सामने हो, व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष जानकारी हो, साधन स्रोतो की उपलब्धि का निश्चय हो— इसके उपरान्त मानव श्रम शक्ति का उपयोग करनेवाली योजना बनायी जाय तो शैक्षणिक जगत् मे अपूर्व क्रान्ति लायी जा सकती है। सुधार के लिये क्रमिक उपक्रम अपनाया जाना चाहिये। ऐसी योजना को दिखावे से बचाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि साधनस्रोत उपलब्ध न हों तो साधनों को देखते हुए प्राथमिकता निश्चित कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। योजना मे

विद्यालय-योजनाएँ दो प्रकार की हो सकती हैं—(१) विद्यालय के सुधार व विकास की योजना तथा (२) अपने क्षेत्र के विकास के लिये विद्यालय द्वारा निर्मित योजना। इनमे से कुछ योजनाएं स्वल्पकालिक हो सकती हैं और कुछ दीर्घकालिक। अनेक स्वल्पकालिक योजनाएं एक दीर्घकालिक योजना के अग के रूप में चलती रह सकती हैं। इनके साधन दीर्घकालिक योजना की सिद्धि मे सहायक हो सकते हैं। विद्यालय योजनाएँ अपने जिले व राज्य की योजना का अग बनकर अततोगत्वा सम्पूर्ण राष्ट्र की योजना का महत्त्वपूर्ण अग बन सकती हैं। विद्यालय योजनाओ के असफल होने की अदूरदर्शिता और अक्षमता होती है। विद्यालयो मे योजनाओं की सफलता असदिग्ध होती है।

योजना का महत्व

इतना होने पर भी यह सुज्ञात तथ्य है विगत वर्षों में शिक्षा का स्तर बराबर गिरता चला गया है। इसका एक कारण यह भी है कि शिक्षा के *अधिकाधिक प्रसार के लक्ष्य को लेकर चलते समय उसका स्तर प्राय गौण हो* गया है। विद्यालय-योजनाएँ स्तर गिरने की समस्या का समाधान प्रस्तुत कर सकती हैं। योजना साधन है और सुधार उसका लक्ष्य। सुधार छात्र, शिक्षक और शिक्षण-पद्धति का तो हो ही सकता है साथ ही उन परिस्थितियो का भी हो सकता है जिनमे कोई भी छात्र, शिक्षक या शिक्षण पद्धति असफल हो जाती है। वस्तुतः सफलता का तात्पर्य है उस क्षण की खोज जहाँ मनुष्य की गति अपना औचित्य खोज लेती है। यह क्षण उपयुक्त परिस्थितियो की देन होता है।

विद्यालय दो प्रकार की परिस्थितियो मे कार्य करता है। प्रथम प्रकार की बाह्य भौतिक परिस्थितियाँ होती हैं। दूसरे प्रकार की परिस्थितियो का सम्बन्ध भावना जगत् से होता है। कई विद्यालयो को स्थानीय राजनीतिक खींचतान का शिकार होना पड़ता है। विद्यालय योजना ऐसी खींचतान को समाप्त करने में सहायक हो सकती है। प्रकाश वहीं से मिलता है जहाँ दीपक हो। विद्यालय अपने क्षेत्र में विवेक की ज्योति को विकीर्ण करनेवाला एकमा' प्रकाश-स्तम्भ माना जा सकता है। आधुनिक काल मे समाज का जित *अहित राजनीतिक पूर्वाग्रहों और अन्धविश्वासो से हुआ है उतना किसी* नहीं। विद्यालय-योजना द्वारा ऐसा वातावरण बनाया जा सकता है जि ऐसे पूर्वाग्रहो और अन्धविश्वासों को कोई स्थान न हो। यदि विद्यालय अ योजना द्वारा स्थानीय समाज के तात्कालिक हिताहितो के प्रति स्वस्थ दृ

आचार्यकुल-गतिविधि

[इस अंक में गया (बिहार) और पडरौना (देवरिया, उ० प्र०) के आचार्यकुल की गतिविधियों की झांकी दी जा रही है ।—सम्पादक]

(१)

उत्तर बिहार का नौगछिया नामक स्थान हिंसात्मक घटनाओं का केन्द्र स्थल बना हुआ है । यहीं पर आयोजित सन् '७० के अंतिम दिनों २४ से २९ दिसम्बर तक, बिहार तरुण शांति-सेना के वार्षिक शिविर और सम्मेलन में, गया के कुछ तरुणों को लेकर, सकरदास नवादा उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री गिरिजानन्दन मिश्र गये थे ।

दादा धर्माधिकारी, प० रामनन्दन मिश्र और जयप्रकाश नारायण के विचारों को सुनने पर उभरते हुए युवा-विद्रोह को सामाजिक और आर्थिक क्रांति के संदर्भ में उसे विधायक दिशा कौन दे और कैसे दिया जाय, यह प्रश्न मिश्रजी के मन को कुरेद रहा था । डा० रामजी सिंह, बी० एन० कालेज पटना के अध्यापक श्री महेन्द्र नारायण कर्ण और लेखक के साथ परामर्श कर तरुण शांति-सेना और आचार्यकुल के कार्यक्रम से उन्हें समाधान मिला । पुन गया जिले के चुने हुए १५ शिक्षकों की प्रारंभिक बैठक में १० जनवरी को विचार-विमर्श कर निर्णय हुआ कि ६ और ७ फरवरी को श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा स्थापित सर्वोदय आश्रम सोखोदेवरा में आचार्यकुल की स्थापना के लिए एक गोष्ठी का आयोजन किया जाय ।

उपर्युक्त निर्णयानुसार गोष्ठी में शरीक होने के लिए जिला ग्रामस्वराज्य समिति के तत्वावधान में गया जिले के चुने हुए गंभीर-चिंतन के आदि, संकल्प में दृढ प्रायः साठ शिक्षकों को आमंत्रित किया गया । केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के संयोजक श्री वशीधर श्रीवास्तव और प्रादेशिक संयोजक डा० रामजी सिंह भी गोष्ठी में सम्मिलित हुए थे ।

६ फरवरी की संध्या समय आश्रम के जवाहर पुस्तकालय-भवन में आश्रम के तरुण और उत्साही अध्यक्ष भाई त्रिपुरारिशरणजी ने आगन्तुकों का हार्दिक स्वागत करते हुए आश्रम की स्थापना से लेकर अब तक के क्रमिक विकास का इतिवृत्त प्रस्तुत किया । तदनन्तर गोष्ठी के संयोजक श्री केशव मिश्र ने गोष्ठी की प्रयोजनीयता पर प्रकाश डाला और श्री वशीधर से सभापतित्व करने का निवेदन किया ।

लचीलापन होना चाहिए ताकि पहली बात को सबसे पहला स्थान दिया जा सके।

योजना बनाते समय अभावो का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिये और उन्होकी पूर्ति के लिये प्रयत्न करते हुए अध्ययन-अध्यापन मे सुधार किया जाना चाहिये। योजनाओ को अन्तिम रूप देने के पहले प्रशिक्षित व्यक्तियों, शिक्षाशास्त्रियो व प्रतिष्ठित नागरिको की भी सम्मति प्राप्त कर लेनी चाहिये। सबके सहयोग से ही किसी व्यापक प्रभाववाली योजना मे सफलता प्राप्त की जा सकती है। *योजनाओं मे छात्रो के मानसिक विकास मे योगदान देनेवाले* पुस्तकालय आदि साधनों के सुधार को प्राथमिकता व क्रीडागरण, विद्यालय भवन आदि को गौण स्थान मिलना चाहिये।

योजना मे सबका यथोचित सहयोग प्राप्त करने के लिये अध्यापकों, छात्रों और स्थानीय सामाजिक कार्यकर्ताओं की समन्वित समिति होनी चाहिये। छात्रो और अध्यापकों को अपने लिये पृथक् योजना बनाने व उसे क्रियान्वित करने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिये। व्यक्तिश बननेवाली ऐसी छोटी योजनाओ का सम्मिलित रूप ही विद्यालय योजना हो सकती है। प्रत्येक योजना के दीघकालीन प्रभावो का आकलन समय समय पर होते रहना चाहिये। इससे कार्यकर्ताओ को प्रोत्साहन मिलता है। अच्छाइयाँ स्वत प्रकट होने लगती हैं और बुराइयो स बचकर आगे बढने का अवसर मिल जाता है। विद्यालय-सुधार योजना का तात्पर्य है विद्यालय के सभी घटको के सुधार की योजना। इनमे से किसी भी घटक का तिरस्कार नही होना चाहिये। योजना की व्यवस्थित ढग से क्रियान्विति और समय समय पर क्रियान्वयन के परिणामों का मूल्याकन ऐसी योजनाओ को सफल बनाने मे सहायक होते हैं। निश्चय *ही ऐसी योजनाओ का विद्यालयों के लिये अत्यधिक महत्व है।*

('नया शिक्षक' से साभार)

[इस अंक में गया (बिहार) और पडरौना (देवरिया, उ० प्र०) के आचार्यकुल की गतिविधियों की झांकी दी जा रही है ।—सम्पादक]

(१)

उत्तर बिहार का नौगछिया नामक स्थान हिंसात्मक घटनाओं का केन्द्र स्थल बना हुआ है । यहीं पर आयोजित सन् '७० के अंतिम दिनों, २४ से २९ दिसम्बर तक, बिहार तरुण शांति-सेना के वार्षिक शिविर और सम्मेलन में, गया के कुछ तरुणों को लेकर, सकरदास नवादा उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री गिरिजानन्दन मिश्र गये थे ।

दादा धर्माधिकारी, प० रामनन्दन मिश्र और जयप्रकाश नारायण के विचारों को सुनने पर उभरते हुए युवा विद्रोह को सामाजिक और आर्थिक क्रांति के संदर्भ में उसे विधायक दिशा कौन दे और कैसे दिया जाय, यह प्रश्न मिश्रजी के मन को कुरेद रहा था । डा० रामजी सिंह, बी० एन० कालेज पटना के अध्यापक श्री महेन्द्र नारायण कर्ण और लेखक के साथ परामर्श कर तरुण शांति-सेना और आचार्यकुल के कार्यक्रम से उन्हें समाधान मिला । पुनः गया जिले के चुने हुए १५ शिक्षकों की प्रारंभिक बैठक में १० जनवरी को विचार-विमर्श कर निर्णय हुआ कि ६ और ७ फरवरी को श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा स्थापित सर्वोदय आश्रम सोखोदेवरा में आचार्यकुल की स्थापना के लिए एक गोष्ठी का आयोजन किया जाय ।

उपर्युक्त निर्णयानुसार गोष्ठी में शरीक होने के लिए जिला ग्रामस्वराज्य समिति के तत्वावधान में गया जिले के चुने हुए गंभीर-चिंतन के आदि, संकल्प में दृढ़ प्रायः साठ शिक्षकों को आमंत्रित किया गया । केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के संयोजक श्री वंशीधर श्रीवास्तव और प्रादेशिक संयोजक डा० रामजी सिंह भी गोष्ठी में सम्मिलित हुए थे ।

६ फरवरी को संध्या समय आश्रम के जवाहर पुस्तकालय-भवन में आश्रम के तरुण और उत्साही अध्यक्ष भाई त्रिपुरारिशरणजी ने आगन्तुकों का हार्दिक स्वागत करते हुए आश्रम की स्थापना से लेकर अब तक के क्रमिक विकास का इतिवृत्त प्रस्तुत किया । तदनन्तर गोष्ठी के संयोजक श्री केदार मिश्र ने गोष्ठी की प्रयोजनीयता पर प्रकाश डाला और श्री वंशीधर से सभापतित्व करने का निवेदन किया ।

प्रारंभ में ही तय हो चुका था कि गोष्ठी का स्वरूप भाषण का नहीं, बल्कि विमर्शात्मक होगा। गोष्ठी का समयक्रम और विचारों के बिंदु भी निर्धारित हुए।

श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने आचार्यकुल के संगठनात्मक पहलू पर प्रकाश डालते हुए उसकी स्थापना की ओर इंगित करते हुए कहा कि राष्ट्रपति बनने के बाद स्व० डा० जाकिर हुसेन साहब ने पूसा में संत विनोबाजी से मिलकर उनके समक्ष शिक्षा-क्षेत्र में व्याप्त असंतोष छात्र-विद्रोह और अवास्तविक शिक्षा पद्धति के बारे में अपनी परेशानी रखी थी। राष्ट्र के इन दोनों कर्णधारों ने, जिन्हें प्राय ३५ वर्ष पूर्व राष्ट्रपिता ने देश की भावी शिक्षण पद्धति निर्धारित करने के लिए उत्तरदायित्व सौंपा था पुनः पूसा रोड के ग्राम्य क्षेत्र के शांत कुटीर में एकचित्त होकर शिक्षा विषय पर गम्भीरतापूर्वक बातचीत की। एक तरफ डा० जाकिर हुसेन साहब राष्ट्र के सर्वोच्चतम राष्ट्रपति पद पर आसीन थे तो दूसरी तरफ संत विनोबाजी, गांधी की राह पर सतत चलकर लोकशक्ति को जगाने का काम लोकनायक की भूमिका में कर रहे थे। दोनों ही मनीषियों ने शिक्षालयों में शासन, पुलिस और राजनीति के प्रवेश को घोर आपत्तिजनक मानते हुए यह अनुभव किया कि शिक्षा को शासन और राजनीति से मुक्त करने का अविलम्ब प्रयत्न करना चाहिए। इस तरह दोनों मनीषियों ने शासन से पूरी आर्थिक मदद लेकर भी शिक्षा की स्वायत्तता को उपयुक्त माना। गांधी मार्ग के इन दोनों महान नेताओं ने शिक्षा की राष्ट्रीयकरण जैसी माँग पर भी चिंता व्यक्त की, क्योंकि इससे राष्ट्रीयकरण के नाम पर शिक्षा और शिक्षक का बंदीकरण मात्र होगा। इसी प्रसंग में देश के प्रमुख शिक्षाशास्त्रियों, शिक्षाविदों और शैक्षणिक अधिकारियों का सम्मेलन पूसा में सन १९६८ में विनोबाजी की उपस्थिति में हुआ, जिसमें बिहार विश्वविद्यालयों के सभी उपकुलपति और शिक्षाधिकारी और शिक्षाविद् शामिल थे। तत्काल केन्द्रीय शिक्षामंत्री श्री त्रिगुण सेन ने सम्मेलन का उद्घाटन किया था। इसी सम्मेलन के विचार मंथन से आचार्यकुल का विचार उत्पन्न हुआ जो आगे मुंगेर और पुनः भागलपुर में विनोबाजी की यात्रा से पुष्ट हुआ।

शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग लोकतंत्र के लिए घातक है और आचार्य कुल को इस प्रवृत्ति के विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए। रूस में सत्ता के लिए शिक्षा-नीति बनती बिगड़ती रहती है। अगर शिक्षा का राष्ट्रीयकरण हुआ तो भारत में भी ऐसा ही होगा। इस संगठन की पहली माँग यह हो कि न्याय विभाग की तरह शिक्षा विभाग भी स्वायत्त हो।

देश मे बढ़ रहे छात्रों के असन्तोष और युवा विद्रोह के कारणो पर ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट होगा कि वर्तमान अवास्तविक शिक्षण के ये दुष्परिणाम मात्र है। आज का कोई भी युवक यथास्थिति सहन करने को तैयार नही है। सबमे परिवर्तन करने की उत्कटता है। सवाल है कि परिवर्तन कैसे हो? विनोबाजी भी आज की परिस्थिति मे परिवर्तन चाहते हैं। परन्तु वे चाहते हैं कि ये परिवर्तन अहिंसक ग से हो। इसलिए वे विचार-शक्ति और हृदय परिवर्तन मे विश्वास रखनेवाले *शिक्षकों का सगठन चाहते हैं। अत आचार्यकुल का तीसरा* काम होना चाहिए छात्र विद्रोह को विधायक दिशा देना। आज तो हमारे विद्यालय दोहरे प्रहार का शिकार हो रहा है। एक ओर विद्रोही छात्रो का प्रहार और दूसरी ओर पुलिस का प्रवेश। दोनो *के हाथ मे एक ही शस्त्र है—बदूक। बदूक से, हिंसा से आज के अणुबम के युग में ससार की किसी भी समस्या का* हल नहीं होगा। छात्र-विद्रोह आज जागतिक समस्या है। परन्तु यदि यह हिंसक हुआ तो समस्या का हल नही होगा।

आचार्यकुल के सदस्यों के लिए लोकशक्ति के निर्माण का कार्य उनका दूसरा काम होना चाहिए। इसके लिए उन्हें दलीय राजनीति से अलग रहना पड़ेगा। तभी वे स्वतत्र लोकशक्ति बना सकेंगे। शिक्षक अपना सेवा शक्ति पहचान लें तो वे लोकनीति का निर्देशन कर सकते हैं।

ये तीन काम यदि आचार्यकुल करे तो वह निश्चय ही देश की अहिंसक क्रांति का अगुआ बन सकता है।

श्रीवास्तवजी द्वारा उपर्युक्त मतव्य प्रकट करने के उपरान्त उपस्थित शिक्षक-बधुओं में प्रचलित दोषपूर्ण शिक्षण से त्राण पाने के लिए आचार्यकुल के विचार और कार्यक्रम पर गभीर चिंतन शुरू हुआ।

दूसरे दिन, ७ फरवरी के प्रात ७ ३० से १ बजे तक गोष्ठी ने पुनः आचार्यकुल-सगठन के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से विचार किया और यह निश्चय किया गया कि गया जिले के ४६ प्रखण्डों मे से कम से-कम २३ प्रखण्डो मे मार्च मास के अन्दर सगठन का ढाँचा खडा किया जाय। कार्यक्रम बनाते समय आचार्यकुल के गठन के साथ ही तरुण-शातिसेना के गठन का भी न सिर्फ निश्चय किया गया, बल्कि अगले ग्रीष्मावकाश तक का लक्ष्याक भी निर्धारित किया गया और उपस्थित मित्रो मे लक्ष्याक प्राप्ति के लिए कर्तव्य-विभाजन कर लिया गया और गया जिले में शीघ्र ही आचार्यकुल और तरुण-शांतिसेना के सुदृढ़ सगठन की नींव डालने का निश्चय किया गया।

गोष्ठी ने यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया कि हम अपने इस नये सगठन को अधिकाधिक युगसापेक्ष बनाने के लिए ग्राम स्वराज्य की स्थापना के लिए किये जानेवाले प्रयत्नो मे न केवल योगदान करेंगे, बल्कि उचित और महत्वपूर्ण हिस्सा लेकर अहिंसक समाज-परिवर्तन के चक्र को गतिशील बनायेंगे।

आचार्यकुल के उद्देश्य निम्न प्रकार निर्धारित किये गये :—

१ शिक्षा द्वारा सृजनशील, उत्पादक और शोषणमुक्त व्यक्तित्व का निर्माण।

२. आचार्यकुल द्वारा लोकशक्ति के निर्माण मे करुणामूलक सहकार,

३ युवा शक्ति का विधायक शिक्षा निर्देश,

४ अपने कर्तव्य के प्रति जागरूकता, और

५ सामयिक समस्याओ पर निष्पक्ष तथा निर्भय विचार प्रकट करना।

इन उद्देश्यो को स्वीकार करते हुए केन्द्रीय आचार्यकुल समिति द्वारा निर्धारित फार्म पर कम से-कम वार्षिक शुल्क ३ रु० ६५ पैसे देकर हस्ताक्षर करनेवाले आचार्यकुल के सदस्य माने जायेंगे।

सगठन

किसी एक विद्यालय या पड़ोसी के आचार्यकुल के कम-से-कम दो सदस्यो का प्राथमिक संगठन होगा। एक प्रखड के ऐसे बीस सदस्यों की प्रखण्ड समिति होगी और उसके एक सयोजक होगे। इसी तरह प्रखण्ड सयोजकों के योग से आचार्यकुल की जिला समिति बनेगी। प्रखण्ड-सयोजको के अतिरिक्त अन्य समाजसेवी पत्रकार या साहित्यकार, जो आचार्यकुल के उद्देश्य को मानते हो, को जिला-समिति अपना सदस्य बना सकेगी।

सदस्यता-शुल्क की रकम मे से ५ प्रतिशत केन्द्रीय समिति को, १० प्रतिशत प्रान्तीय समिति को, १५ प्रतिशत जिला समिति को और ७० प्रतिशत अश प्रखण्ड समिति को प्राप्त होगा।

श्री वशीधर श्रीवास्तव ने सूचित किया कि वांछित प्रखण्डों में आचार्यकुल के कुछ सदस्य बन चुकने के बाद वे केन्द्रीय समिति की ओर से श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा की सेवा आचार्यकुल-गोष्ठी के लिए वे उपलब्ध करा सकेंगे। इसी तरह तरुण-शान्तिसेना के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षक को प्रशिक्षित करने के लिए भी वे केन्द्रीय समिति से श्री सुब्बाराव की सेवा का आवश्यक प्रबन्ध करा सकेंगे।

यह निर्णय किया गया कि आगामी माध्यमिक परीक्षा मे शामिल होनेवाले छात्रो से अपील कर ग्रीष्मावकाश के अवसर पर १००० छात्रों का समय माँगा

जाय। इस तरह जो छात्र समय दें, उनके २-२ दिनों के स्थानीय रूप से १००-१०० छात्रों के १० शिविर किये जायें और प्रत्येक शिविर से १०-१० छात्रों का चुनाव कर ऐसे १०० विशिष्ट छात्रों का तीन दिनों का विशेष शिविर किया जाय। इस प्रकार ११ शिविरों के उपरान्त आचार्यकुल के सहयोग से ग्रीष्मावकाश के अवसर पर इन एक हजार छात्रों द्वारा ग्राम-स्वराज्य का कोई प्रत्यक्ष कार्यक्रम बनाकर उन्हें लगाया जाय।

प्रारम्भिक कार्य सम्पन्न करने के लिए आचार्यकुल की जिला स्तर की एक तदर्थ समिति इस प्रकार बनायी गयी :—

१. श्री बलदेव प्र० सिंह, संयोजक प्राचार्य, महावीर उच्च माध्यमिक विद्यालय, गया नगर।
२. श्री भरत मिश्र, सदस्य, प्रधानाध्यापक, उच्च मा० वि०, रानीगंज, गया
३ " राजेन्द्र प्रसाद सिंह, सदस्य, " " " वजीरगंज, गया
४. " गिरिजानन्द मिश्र " " " " सकरदास नवादा, गया
५ " कमलेश्वरी प्र० सिंह " " " " पाण्डेयगगौट, गया
६ " रामेश्वर प्र० शर्मा " " " " ओकरी, गया
७. " तपस्वी सिंह " प्राचार्य, " " परैया, गया

उपस्थित मित्रों की राय से निम्नलिखित प्रखण्डों के उल्लिखित विद्यालयों में आचार्यकुल के सदस्य बनाने और उनके सहयोग से तरुण-शान्तिसैनिक भर्ती करने का निम्नांकित लक्ष्यांक निर्धारित किया गया :—

१. श्री भरत मिश्र, इमामगंज, आमस देव और डुमरिया प्रखण्ड के २०-२० विद्यालयों में
२ श्री विष्णुदेव सिंह, प्राचार्य, अशोक उच्च मा० वि० }
३ " तपस्वी सिंह, " " " } कोंच, परैया, टिकारी, परैया प्रखंड के २०-२० विद्यालयों में
४. " कमलेश्वरी प्र० सिंह " पाण्डेयगगौट }
५ " रामस्वरूप प्र० वियोगी, कौआकोल }
६ " लूटन महतो, फुलडीह } कौआकोल, गोबिन्दपुर, पकरीबरांवा प्रखंड के २०-२० विद्यालयों में
७ " बलदेव प्र० सिंह, गया, गया नगर के १० विद्यालयों में
८ " गिरिजानन्दन मिश्र, सकरदास नवादा, वजीरगंज प्रखंड के १० विद्यालयों में
९ " राजेन्द्र प्रसाद सिंह, अध्यक्ष, जिला माध्यमिक शिक्षक संघ ने अन्य मित्रों से सम्पर्क कर शेष प्रखण्डों में संगठन बनाये जाने के लिए प्रयत्न करने का दायित्व स्वीकार किया।

बिहार प्रान्तीय आचार्यकुल समिति के सयोजक और भागलपुर विश्व विद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष डा० रामजी सिंह दूसरे दिन गोष्ठी मे शरीक हुए। उन्होंने आचार्यकुल गोष्ठी द्वारा बनाये गये कार्यक्रमो पर सतोष व्यक्त करते हुए यह निवेदन किया कि लोकसभा के आगामी मध्यावधि चुनाव के अवसर पर निष्पक्ष चुनाव के लिए हम लोगो को मतदाता प्रशिक्षण के लिए भी यथासम्भव प्रयास करना चाहिए।

गोष्ठी के उत्तरार्ध मे, ७ फरवरी के अपराह्न काल म सभी आगन्तुक मित्रो को आश्रम के आसपास ग्रामीण क्षेत्र मे समाज के कमजोर वर्ग मे भूदान की भूमि वितरित किये जाने के बाद जो कृषि-विकास का काम हुआ है, उसका परिदर्शन गाधीधाम और पचम्मा गाँव जाकर कराये जाने के साथ ही आश्रम की कुष्ठ सेवा शाखा का परिदर्शन भी कराया गया।

गोष्ठी की समापन बैठक आश्रम के 'जवाहर पुस्तकालय भवन' मे ७ फरवरी की सध्या विशेष समारोह के साथ सम्पन्न हुई। समारोह मे आश्रम की ओर से प्रति एकड ८५ मन धान उत्पादन करनेवाले दो युवक ग्रामीण कृषि-कार्मकत्ताओं को श्री यशोधर श्रीवास्तव द्वारा घडियो का पुरस्कार दिया गया। समापन समारोह का सभापतित्व किया प० भरत मिश्रजी और समापन भाषण डा० रामजी सिंह ने दिया।

गोष्ठी मे आश्रम स्थित आस्ट्रेलिया के शिक्षाप्रेमी पत्रकार श्री स्टीवेन ने अपने देश की शिक्षा प्रणाली की चर्चा करते हुए बताया कि वहाँ की शिक्षा सैद्धातिक और व्यावहारिक के अलावा मानव निष्ठ अधिक है। परन्तु आस्ट्रेलिया मे शिक्षक दो प्रकार के हैं एक, पैसा कमानेवाले और दूसरे मानव केन्द्रित शिक्षा मे विश्वास रखनेवाले। उन्होने कहा कि प्रवेशिका की शिक्षा तक प्राय ८० प्रतिशत छात्रो को जीने लायक कला का अभ्यास करा दिया जाता है। शेष २० प्रतिशत मेधावी और चुने हुए छात्र ही विश्वविद्यालयो मे जाते हैं। फिर भी हमारे यहाँ बहुत ही कमियाँ हैं, जो भारत से सीखा जा सकता है। इसी तरह भारत को भी पश्चिम की गलतियो से बचकर उसकी विशेषताओ का परीक्षण करना चाहिए। इस तरह एक मधुर वातावरण म दृढ सकल्प के साथ शिक्षकों ने आचार्य कुल गठन की नींव डाली।

अन्त म गोष्ठी के आयोजक श्री केशव मिश्र ने आचार्य यशोधर श्रीवास्तव और डा० रामजी सिंह आगन्तुक शिक्षक मित्रों के प्रति और गोष्ठी के लिए आश्रम ने जो आतिथ्य किया, एतदर्थ उसके प्रति धन्यवाद ज्ञापन किया।

आश्रम के प्रधान मत्री श्री बनराम शास्त्री ने भी सभी अतिथियों को धन्यवाद दिया। ईश भजन के साथ गोष्ठी समाप्त हुई। —केशव मिश्र, मत्री

पडरौना, देवरिया के प्राय. सभी स्तर के विद्यालयों और महाविद्यालयों में आचार्यकुल की स्थापना हो गयी है। दो गाँव इस साल लिए गए थे जिनमें तरुण-शान्तिसेना की सहायता से सफाई-अभियान तथा 'निरक्षरता मिटाओ' अभियान चलाया गया। दोनों ही अभियान पूर्णत: सफल हुए। एक हरिजन बस्ती में प्रवेश के लिए कोई उपयुक्त मार्ग नहीं था। वहाँ सम्बन्धित लोगों से प्रार्थना करके थोडा-थोडा उनका खेत छोड़वाकर सड़क बनवाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया गया है। ग्रामीणों के एक गाँव में पंचायत की सभा करके उनकी कठिनाइयों और अन्य विवादग्रस्त प्रश्नों और समस्याओं का अध्ययन किया गया, तथा शान्तिमय और प्रेममय मार्ग से समझा-बुझाकर उन प्रश्नों का समाधान निकाला गया। उ० ना० डिग्री कालेज में लगभग १५० छात्र और छात्राएँ तरुण-शान्ति सैनिक बन चुकी हैं। ३० जनवरी १९७१ को आचार्यकुल और तरुण-शान्तिसेना का पूर्णतया मौन जुलूस निकाला गया, जो शहर के विभिन्न मार्गों में होता हुआ सभा के रूप में परिणत हो गया। अन्त में गांधीजी पर और शहीद दिवस पर चर्चाएँ हुईं। २२ फरवरी १९७१ को तरुण शान्तिसेना तथा आचार्यकुल का एक जुलूस कुछ अन्य विद्यालयों की सहायता से जिसमें लगभग ५०० शान्ति सैनिक थे निकाला गया। मौन जुलूस शहर की विभिन्न सड़कों पर घूमा। मादक वस्तुओं और लाटरी का निषेध उसका उद्देश्य था। पडरौना में इससे एक सुन्दर वातावरण तैयार हो गया है। इसी हेतु २० छात्र-सैनिकों, ५ छात्राएँ-सैनिकों और आचार्यकुल के २ सदस्यों ने २४ घंटों का अनशन रखा। लगभग पाँच हजार लोगों के हस्ताक्षर कराकर मद्य-निषेध लागू करने के लिए एक पत्रक प्रधान मंत्री को २४-२-७१ को अपने विद्यालय के मैदान में दिया गया।

महाविद्यालय के आचार्यकुल के अध्यक्ष श्री जगदीश प्रसाद सिंह ने अपना सम्पूर्ण 'आनरेरियम' तथा साथ ही श्री परशुराम सिंह, संयोजक ने अपना अर्द्धवेतन हमेशा के लिए सार्वजनिक कार्य के लिए दे दिया है।

—जगदीश प्रसाद सिंह, अध्यक्ष आचार्यकुल, उ० ना० डिग्री कालेज, पडरौना

१२वाँ अ० भा० तरुण-शांतिसेना शिविर, कलकत्ता

ग्रीष्मावकाश में रचनात्मक क्रान्तिकारियो का कलकत्ता में एक अनोखा शिविर

[शिविर की सूचना 'नयी तालीम' में इस लक्ष्य के साथ दी जा रही है कि 'नयी तालीम' के पाठक शिविर मे भाग लेने और अपने बौद्धिक सहयोग से देश की समस्याओ का समाधान प्रस्तुत करेंगे।—सम्पादक]

बगाल मे भारी उथल-पुथल है। एक तरफ पूर्वी पाकिस्तान मे शेख मुजीबुर्रहमान ने अहिंसक, असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया है और दूसरी ओर कलकत्ता मे बम से खेलनेवाले युवक और बन्दूकधारी पुलिस हैं। किसी समय कहा जाता था कि आज जो बगाल सोचता है, वह कल पूरा भारत सोचेगा। हम अपने देश मे किस बगाल को कार्यान्वित चाहेगे ? पूर्व के उस अहिंसक क्रातिकारी बगाल को या पश्चिम के इस हिंसक और निराश बगाल को ? इस प्रश्न के उत्तर की खोज १२वें अखिल भारत तरुण-शातिसेना शिविर मे की जायगी, जो मई १९७१ मे कलकत्ता मे हो रहा है। देश की विकट समस्याओ का आज कोई बना-बनाया समाधान नहीं है परन्तु अगर देश के नवजवान अपना दिमाग इन समस्याओ मे लगायेंगे और इन समस्याओ के हल का कोई रचनात्मक मार्ग ढूँढेंगे तो शायद कुछ आशा की जा सकती है। क्या आप भी अगले गर्मी मे कलकत्ता मे घटित होनेवाले इतिहास का एक हिस्सा बनना चाहेगे ?

शीघ्रता करें। कहीं ऐसा न हो कि आवेदक ज्यादा हो और स्थान कम हो।

शिविर को जानकारी

स्थान कलकत्ता या उसका उपनगर

अवधि १६ मई से ३० मई, १९७१

उद्देश्य (क) भारत के युवकों को समग्र अहिंसक क्रान्ति की आवश्यकता के प्रति जागृत करना। (ख) उन्हे ग्रीष्मावकाश मे सार्थक समूह-जीवन बिताने का अवसर प्रदान करना। (ग) उन्हे पश्चिम बगाल की विशेष परिस्थितियो के बारे म अवगत कराना।

पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम निम्न प्रकार रहेगा (क) व्याख्यान और चर्चाएँ (ख) समूह जीवन और (ग) प्रत्यक्ष कार्य।

(क) व्याख्यान और चर्चाएँ निम्न मुख्य छ विषयो पर व्याख्यान और

चर्चाएँ होंगी। प्रतिदिन एक अतिथि वक्ता व्याख्यान देगा तथा एक मुख्य विषय का विषय प्रवेश करेगा। चर्चा, गोष्ठियाँ और उसका निष्कर्ष प्रतिदिन के कार्यक्रम का मुख्य हिस्सा होगा। चर्चाएँ, चर्चा-पत्र और प्रश्न-पत्रों के आधार पर होंगी, जो शिविरार्थियों को शिविर के आरम्भ में दिये जायेंगे। शिविरार्थियों को उन चर्चा-पत्रों या प्रश्न-पत्रों में आवश्यक परिवर्तन या कुछ और आवश्यक मुद्दे काटने छाँटने की स्वतन्त्रता होगी।

मुख्य विषय (१) शिक्षा, (२) रोजगार, (३) भूमि, (४) राजतन्त्र, (५) शान्ति, (६) अहिंसा।

व्याख्यान के उप-विषय :

(१) शिक्षा (क) दुनिया के प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों के विचार, (ख) शिक्षा-क्षेत्र के कुछ प्रयोग

(२) रोजगार (क) शिक्षित बेकारों की समस्या और उसका निराकरण, (ख) अशिक्षित बेकारों की समस्या और उसका निराकरण

(३) भूमि : (क) भारत की भूमि-समस्या (ख) भारत के भूमि-सुधार कानून

(४) राजतन्त्र (क) लोकतन्त्र क्यों ? (ख) लोकतन्त्र कैसे ?

(५) शांति (क) शांति की भूमिका का विकास, (ख) आज भारत में कैसी शांति की आवश्यकता है ?

(६) अहिंसा (क) अहिंसा क्यों ? (ख) अहिंसा कैसे ?

चर्चा के विषय निम्न विषयों पर चर्चा-पत्र या प्रश्न-पत्र दिये जायेंगे :

(१) शिक्षा में क्रांति क्यों और कैसे ?

(२) बेरोजगारी के मूल कारण समस्या-निवारण के लिए तरुणों के लिए कार्यक्रम

(३) भूमि समस्या के निवारण के कार्यक्रम

(४) भारतीय राजतन्त्र में क्रांति किस प्रकार ?

(५) शांति की व्यूह रचना

(६) अहिंसा को प्रभावशाली कैसे बनाया जाय ?

(ख) समूह-जीवन शिविर के समूह-जीवन में शिविरार्थियों का पूर्ण सहयोग रहेगा और समूह-जीवन के हर पहलू को शिक्षाप्रद बनाने का पूर्ण प्रयास किया जायेगा। समूह जीवन की कुछ झाँकियाँ (१) सभा, (२) श्रम-कार्य, (३) जन सपर्क, (४) खेलकूद, (५) व्याख्यान तथा चर्चाएँ, (६) रंजन कार्यक्रम, (७) सार्वजनिक सभा तथा जुलूस

(ग) आवश्यक कार्य शिविर में भोजन बनाने के सिवाय सब कार्य शिवि-

रार्थी स्वय करेंगे। हर कार्य समूह-जीवन को सार्थक बनाने की ओर ले जानेवाला होगा। प्रत्यक्ष कार्य मे निम्न काम होगे (१) श्रम-कार्य की योजना, (२) भोजनालय मे मदद, (३) सफाई, (४) वर्ग व्यवस्था, (५) बीमार-सेवा, (६) अतिथियो की देखभाल, और (७) चौकी पहरा।

विशेष आकर्षण (क) कलकत्ता मे पहला अहिंसक क्राति के लिए शिविर।
(ख) हिसक घटनाओ के आमने सामने आने की सभावनाएँ।
(ग) भारत की प्रमुख घटनाओ को समझना, उन पर चर्चा करना, और अपने मत प्रकट करना।
(घ) रचनात्मक क्राति के चाहनेवाले देश के विभिन्न क्षेत्रों के तरुणो के साथ रहना।

माध्यम हिन्दी तथा अग्रेजी। यदि आवश्यकता पडे तो शिविरार्थी अपनी मातृभाषा का उपयोग कर सकते हैं।

कौन शामिल हो सकता है?—कोई भी तरुण भाई बहन शिविर मे भाग ले सकता है, जो—

(१) तरुण शातिसेना के मूल्य—लोकशाही, सर्वधर्म समभाव, राष्ट्रीय एकता, आर्थिक न्याय, सामाजिक समता और विश्वशाति मे विश्वास रखता हो।

(२) जिसकी आयु १६ से २४ वर्ष के बीच म हो।

(३) जिसे शिविर का अनुशासन मा य हो।

शिविर शुल्क शिविर मे प्रवेश पानेवाले शिविरार्थियो को शिविर-स्थान पर ५ रु० शिविर शुल्क देना होगा।

खर्च शिविर के लिए रेलवे कन्सेशन प्राप्त करने की कोशिश चल रही है। शिविरार्थियो को शिविर मे आने के लिए प्रवास-खर्च स्वय वहन करना होगा।

भोजन-शिविर की तरफ से नि शुल्क दिया जायगा, किन्तु कोई शिविरार्थी यदि भोजन-खर्च स्वेच्छा से देना चाहेगा तो उसे सधन्यवाद स्वीकार किया जायेगा।

आवेदन-पत्र पहुँचने की अतिम तिथि २० अप्रैल, १९७१ है। आवेदन-पत्र हाथ स लिखकर भेज सकते हैं। आवेदन-पत्र १ रु० शुल्क (डाकटिकट या मनिआडर) के साथ निम्न पते पर भेजें —

सचालक. १२वाँ अखिल भारत तरुण शातिसेना शिविर,
अखिल भारत शांतिसेना मण्डल, राजघाट, वाराणसी–१ (उ०प्र०)

१६वाँ सर्वोदय समाज-सम्मेलन

इस वर्ष सर्वोदय समाज का १९वाँ वार्षिक सम्मेलन ८ से १० मई '७१ तक नासिक (महाराष्ट्र) म होने जा रहा है। सम्मेलन के पूव वहीं पर ता० ५, ६ एव ७ मई को सर्व-सेवा सघ का अधिवेशन भी होगा।

सम्मेलन की कामवाही म भाग लेने के इच्छुक भाई बहन २० अप्रैल '७१ तक सम्मेलन मत्री, १९वाँ सर्वोदय समाज सम्मेलन बोधगया जिला गया (बिहार) के पते पर पाँच रुपये मात्र प्रतिनिधि शुल्क भेजकर प्रतिनिधि बन सकते हैं। शुल्क मत्री, सव सेवा सघ गोपुरी वर्धा के पते पर या सर्वोदय मडलो के पते पर भी भेजा जा सकता है। सम्मेलन मे भाग लेने के लिए प्रतिनिधि बनना आवश्यक है। सम्मेलन म आनेवाले लोक सेवको, जिला मण्डल के सयोजको, प्रतिनिधियो के लिए भी प्रतिनिधि बनना आवश्यक है।

सम्मेलन के सिलसिले म नासिक रोड के लिए एक तरफा किराया देकर वापसी टिकट की सुविधा रेलवे बोड की ओर से प्रदान की गयी है। तृतीय और द्वितीय श्रेणी मे १६० किलोमीटर के ऊपर सफर करनेवालो को ही यह सुविधा प्राप्त हो सकेगी। समय से कसेशन सर्टिफिकेट की प्राप्ति के लिए प्रतिनिधि शुल्क के पाच रुपये २० अप्रल १९७१ के पहले उक्त पतो पर भेजना चाहिए। प्रतिनिधि शुल्क भेजते समय नाम और पता साफ साफ लिखें, ताकि आगे की कारवाई मे असुविधा न हो।

वैसे उस समय गरमी रहेगी। लेकिन सवेरे कुछ ठढ हो सकती है। अत हल्का गरम कपडा साथ लाना चाहिए। निवास का प्रबन्ध बस स्टैण्ड के पास अप्पासाहेब पटवधन नगर में किया गया है। नासिक रोड स्टेशन सेंट्रल रेलवे का स्टेशन है, और यह दिल्ली-बम्बई एव हावडा-बम्बई मन लाइन पर बम्बई से १८८ किलोमीटर दूर है। सब गाडियाँ यहाँ ठहरती हैं।

प्रतिनिधि भाई-बहनों के भोजनालय की व्यवस्था स्वागत-समिति की ओर स की गयी है। भोजन शुल्क नासिक पहुँचने पर जमा करक भोजन टिकट प्राप्त किये जा सकेंगे। भोजन शुल्क प्रतिदिन चार रुपया एव तीन दिनों का दस रुपया रखा गया है। नासिक शहर के पचवटी मे राम वनवास के समय रहे थे। गोदावरी नदी नासिक शहर से होकर बहती है। थोडी सी दूरी पर त्र्यम्बकेश्वर का ज्योतिर्लिंग है और गोदावरी का उद्गम भी वहीं से है।

—द्वारको सुन्दरानी सम्मेलन मंत्री, बोधगया जिला गया (बिहार)

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १९
अंक : ९
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

अप्रैल, '७१

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है ।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे ।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें ।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है ।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित ।

नयी तालीम : अप्रैल, '७१
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

सर्वोदय-साहित्य-सेट (१९७१—१९७२)

[अप्रैल १९७१ से चालू]

रु० ७) में १२०० पृष्ठ

१–आत्मकथा : १८६९–१९२० :	गांधीजी	१)
२–बापू-कथा : १९२०–१९४८ :	हरिभाऊजी	३)
३–तीसरी शक्ति : १९४८–१९६६ :	विनोबा	३)
४–गीता-प्रवचन	विनोबा	२)
५–मेरे सपनों का भारत	गांधीजी	२)
६–संघ-प्रकाशन की एक पुस्तक		)५०
		११)५०

लगभग १२०० पृष्ठों का यह साहित्य-सेट रु० ७) में मिलेगा। २८ सेटों का पूरा बण्डल काशी से मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसे कमीशन।

रु० ५) मे ८०० पृष्ठ

राज्य-सरकारें, पंचायतें, शिक्षण-संस्थाएँ आदि के लिए थोक खरीदी की दृष्टि से छोटा सेट भी चालू रहेगा, जिसकी पृष्ठ-संख्या लगभग ८०० होगी। यह सेट रुपये ५) में दिया जायगा। इसमें निम्न पुस्तकें रहेंगी :

१ आत्मकथा	– गांधीजी	१)
२. बापूकथा या गांधी : जैसा देखा-समझा विनोबा ने	– हरिभाऊजी	३)
३ तीसरी शक्ति	– विनोबा	३)
४ गीता-बोध व मंगल प्रभात	– गांधीजी	१)
		८)

पाँच रुपयेवाले ४० सेटों का पूरा बण्डल काशी से मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसा कमीशन और फ्री डिलीवरी।

केवल एक ही सेट मँगाने पर डाक-खर्च के लिए रु० २-०० अधिक भेजना चाहिए। यदि ५ रु० वाले सेट अथवा ७ रु० वाले ७ सेट एकसाथ मँगाये जायँगे तो रेलवे पार्सल से फ्री डिलीवरी भेजे जा सकेंगे।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी-१

आवरण मुद्रक : मनोहरदास प्रेस, मानमंदिर, वाराणसी

वर्ष : १९
अंक : १०

- सृजनात्मक अध्यापन
- आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षा
- पाठ्यक्रम मे नैतिक शिक्षा का स्वरूप
- गांधी : सामाजिक विचार एवं बुनियादी शिक्षा

मई, १९७१

शिक्षा में क्रान्ति

वर्ष : १९
अंक : १०

जितनी निंदित हमारी शिक्षा है उतनी शायद दूसरी कोई चीज नही है, फिर भी यह शिक्षा चलती चली जा रही है। राष्ट्रपति से लेकर रिक्शा चलाने वाले तक, सभी इसमे परिवर्तन चाहते हैं, लेकिन परिवर्तन इसमे होता नही। क्यो ? जो लोग सरकार और उसके विविध कामो को चलाते हैं वे कौन-सा तर्क समझते हैं, यह समझ मे नही आता। क्या हार और प्रहार के सिवाय दूसरा भी कोई तर्क समझते हैं ? अगर उन्हे मालूम हो जाय कि एक काम ऐसा है जिसे न करने से व चुनाव मे हार जायेंगे तो वे उसे करेंगे। हार का भय उनके लिए सबसे बडा भय है। दूसरा बडा भय है प्रहार का। कलकत्ता के युवको ने जब प्रहार का रास्ता पकडा तो अनेक घटनाओ के बाद कुछ लोगो का ध्यान इस बात की ओर गया कि असली सुगध शिक्षा मे है, और उसमे सुधार लाये बिना गुजर नही है।

दिल्ली की नयी सरकार ने योजना, प्रशासन और शिक्षा मे परिवर्तन की बात कही है। अभी तक मालूम नहीं हुआ कि उसके सोचने की क्या दिशा है। बेरोजगारी दूर करनी है, देहाती क्षेत्रो मे शिक्षा के अधिक अवसर पैदा करने हैं, आदि ऐसी गोल-मटोल बातें हैं जो सुनने मे बहुत अच्छी लगती हैं, लेकिन अदर ढोल मे पोल होती है।

पहला प्रश्न है। शिक्षा मे पैवन्द लगाना है या परिवर्तन करना है? अगर सिर्फ पैवन्द लगाना हो तो एक नही अनेक पैवन्द लगाये जा सकते हैं, लेकिन पैवन्द लगाने से कुरते का फटना नही रोका जा सकता। अगर सचमुच परिवर्तन करना हो तो जड से करना चाहिए, पैवन्द लगाने की बात मन से निकाल देनी चाहिए।

दूसरा प्रश्न है - क्या हम जड से परिवर्तन के लिए तैयार हैं? दिखायी तो यह देता है कि शिक्षा मे परिवर्तन के लिए शिक्षा-विभाग का प्रशासक तैयार है, न स्कूल का प्रबन्धक (मैनेजर), और न स्वय शिक्षक। इन तीनो के लिए आज की शिक्षा निहित स्वार्थ बन गयी है। प्रशासक हुकूमत चलाना चाहता है, मैनेजर मनमाना करने का अधिकार बनाये रखना चाहता है, और शिक्षक ने तो जैसे सकल्प ही कर लिया है, कि उसे दुनिया की हर चीज मे रुचि है, लेकिन शिक्षा मे नही। वह अपनी जगह से जरा भी हिलना-डुलना नही चाहता। ऐसा कौनसा परिवर्तन होगा जिसमे अलग अलग लोगो के निहित स्वार्थ सुरक्षित रहेगे? आज के जमाने मे वही परिवर्तन माना जायगा जो निहित स्वार्थों के स्थान पर लोक-हित को प्रतिष्ठित करे। लोक की प्रधानता और प्रतिष्ठा को अस्वीकार करने-वाला परिवर्तन धोखा है।

सर्वोदय मे शिक्षित समुदाय की रुचि के कम होने का एक बहुत बडा कारण यह है कि सर्वोदय जितने बुनियादी परिवर्तन की माँग कर रहा है उतना बुनियादी परिवर्तन उसके गले उतरता नही। उसके मन मे 'सर्व' का भय घुसा हुआ है। वह सोचता है कि सर्व के हित के मुकाबिले वह अपने सकुचित स्वार्थों की रक्षा नही कर सकेगा।

लेकिन अब स्थिति ऐसी होती जा रही है कि यह शिक्षा स्वय शिक्षितो के लिए उपयोगी नहीं रह गयी है। नौकरी की शिक्षा नौकरी भी नहीं दिला पा रही है। जिस विकास की इतनी बात कही जाती है उसके लिए यह शिक्षा सर्वथा निकम्मी साबित हो रही है। जनता समझने लगी है कि इस शिक्षा मे शासको, प्रबधको और शिक्षको का स्वार्थ है, उसके हितो की चिता बहुत कम है। फिर यह क्यो न माना जाय कि यह शिक्षा जनता को विकास के अवसरो से वचित रखने

का एक षडयंत्र है। जनता की इस नयी चेतना का प्रतिनिधित्व हमारे कुछ तरुण कर रहे हैं जिन्होने इस शिक्षा से बगावत की है, और जो शिक्षा मे क्रांति का नारा बुलद कर रहे हैं। लेकिन परिवर्तन के लिए सिर्फ बगावत काफी नही है, बगावत को योजनापूर्वक क्रांति मे परिणत करने की जरूरत है। हर क्रांतिकारी बागी तो होता है, लेकिन हर बागी क्रांतिकारी हो, यह जरूरी नही है।

शिक्षा मे क्रांति और स्वामित्व मे क्रांति ये दोनो एक ही क्रांति के दो पहलू हैं, परिवर्तन क एकी ही प्रक्रिया के दो अग हैं। ग्रामदान के स्वामित्व के विसर्जन मे जिस क्रांति की कल्पना है वह तभी टिकेगी, और लोकहितकारी होगी जब शिक्षा उसके साथ साथ चलेगी। इसलिए ग्रामदान, आचार्यकुल और तरुण-शातिसेना अलग-अलग दिखाई भले ही दें, किंतु हैं वे एक ही युद्ध के तीन मोर्चे। अभी हमारे आन्दोलन मे इन तीन मोर्चों का यह अनुबंध प्रकट नही हुआ है। अब शीघ्र होना चाहिए।

हमारे शिक्षित युवक, कारण चाहे जो हो, समाज-परिवर्तन के सदर्भ मे ग्रामदान का महत्व अभी नही समझ रहे है। लेकिन शिक्षा मे क्रांति का महत्व वे समझने लगे हैं, यद्यपि यह कहना कठिन है कि वे यह भी जानते हैं कि शिक्षा मे क्या क्रांति होनी चाहिए, और उसके लिए क्या करना चाहिए। उनकी विद्रोह भावना को अभी स्पष्ट दिशा नही मिली है। शिक्षा के प्रश्न पर देश मे जो लोक-मत बनता जा रहा है उसे लोक-शिक्षण द्वारा सबल लोक मत बनाना चाहिए ताकि वह प्रभावकारी बन सके। लोक मत सगठित करने की दृष्टि से आवश्यक है कि एक 'शिक्षा का घोषणा-पत्र' तैयार किया जाय, और जनता को बताया जाय कि परिवर्तन के लिए किन सुधारो की तत्काल आवश्यकता है, तथा किन सुधारो की स्थायी तौर पर। यह काम आचार्यकुल और तरुण-शातिसेना का है।

परिवर्तन की दृष्टि से शिक्षा उतनी ही नही है जितनी हमारे स्कूल कालेजो मे दी जाती है। वर्ग शिक्षण की पद्धति शिक्षा के कई पहलुओ मे से एक है। उसमे तो परिवर्तन होना ही चाहिए, लेकिन साथ ही यह भी देखना चाहिए कि देश मे जितना भी निर्माण का कार्य हो रहा है उसकी प्रक्रिया शैक्षणिक हो। लोकतंत्र की मुख्य शक्ति

लोकशिक्षण है। लोकशिक्षण से किस तरह लोकमत बनता है, और लोकमत किस तरह संगठित होकर समाज-परिवर्तन का माध्यम बनता है, यह समग्र प्रक्रिया अभी विकसित नहीं हुई है। सर्वोदय-आन्दोलन ने पिछले वर्षों मे लोक-शिक्षण का बहुत बडा काम किया है। सघन-क्षेत्रो मे वह काम अब भी हो रहा है, लेकिन उसकी गति और व्यापकता, दोनो मे कमी है। विचार की शक्ति मे भरोसा करनेवाले आन्दोलन के लिए यह शुभ स्थिति नही है।

समय की पुकार है कि शिक्षा मे क्राति की समग्र योजना बनायी जाय और लोकमत का तूफान खडा किया जाय। एक तूफान से स्वामित्व का पैर उखडे और दूसरे से शिक्षा का, तो दोनो को मिला कर एक नयी समाज व्यवस्था की भूमिका तैयार होगी।

—राममूर्ति

आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षा : ३ :

डा० ज्यूलियस के० न्येरेरे

[डा० ज्यूलियस के० न्येरेरे के लेख की यह अन्तिम किस्त है। तन्जानिया की शिक्षा पद्धति में जो दोष हैं और जिस प्रकार के सुधारों की अपेक्षा है उनकी विशद व्याख्या डा० न्येरेरे ने की है। भारतीय शिक्षा-पद्धति के भी वही दोष हैं और डा० न्येरेरे के सुझाये हुए सुधारों का हमारे लिए उतना ही मूल्य है जितना तन्जानिया के लिए। इसीलिए हमने उनके लेख को "नयी तालीम" में पूरा छापा है। भारतीय शिक्षा मे जो क्रान्ति करना चाहते हैं वे इस लेख से बहुत कुछ सीख सकेंगे।—सम्पादक]

स्कूल-फार्म पर काम करके हमारे छात्र काम का आराम के साथ सम्बन्ध जोड सकेंगे। वे सबकी भलाई के लिए साथ रहने और साथ काम करने के साथ ही स्थानीय गैर स्कूली समुदाय के साथ काम करने का महत्व भी सीख सकेंगे। क्योंकि उन्हें तब मालूम होगा कि हमे केवल स्कूली प्रयत्नों से कहीं अधिक अन्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है, जैसे कि सिंचाई केवल पडोसी किसानों के साथ काम करने से ही हो सकती है या विकास के लिए स्वय अपने तथा अपने गाँव के वतमान तथा भावी सतोषों मे चुनाव करने की आवश्यकता है।

यह सम्भव है कि प्रारम्भ मे काम मे अनेक गलतियां हों और शुरू से ही छात्रो को एक पूर्ण समाधान प्रदान करना निश्चय ही होगा। किन्तु यद्यपि स्कूल अधिकारी छात्रो का मार्गदर्शन करें और कुछ अनुशासन भी कायम रखगा, फिर भी छात्रो मे गलती करते हुए सीखने और निर्णयो मे भागीदार बनने की योग्यता तो आनी चाहिए, उदाहरण के लिए वे स्कूल-फार्म का एक रजिस्टर रखना सीख सकते हैं, जिसमे वे किये गये काम का विवरण, उपयोग म लायी गयी रवडो का या जानवरों को दिये गये चारे का हिसाब तथा फार्म के विभिन्न भागो के कार्यों के नतीजे दर्ज कर सकते हैं। तभी कहाँ और क्यों परिवर्तन करने चाहिए यह सीखने में उनकी मदद की जा सकती है। क्योंकि नियोजन के विचार को खेत से जोडकर कक्षा में सिखाना महत्वपूर्ण और साल-भर के कार्यक्रम बनाने तथा क्रियान्वयन के उत्तरदायित्व बँटवारे मे समस्त स्कूल को भाग लेना चाहिए। एक बार स्कूल के हर सहचर को न्यूनतम स्वास्थ-विकास की दृष्टि से आवश्यक चीजें मिल जाने पर किन्हीं खास समूहों को

निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के सन्दर्भ में विशेष रियायतों का देना भी सम्भव होगा। इस प्रकार का नियोजन समाजवाद के लिए शिक्षा का एक अंग बन सकता है।

जहाँ स्कूल देहाती क्षेत्रों में हैं या भविष्य में बननेवाले स्कूलों में फार्म स्कूल-क्षेत्र का ही एक भाग होंगे। किन्तु कस्बों या घनी आबादीवाले क्षेत्रों में शायद यह सम्भव न हो। इस हालत में स्कूलों को अन्य उत्पादक क्रियाकलापों पर जोर देना होगा या फिर साल का कुछ भाग कक्षाओं में और कुछ भाग दूर स्थित फार्म पर कैम्पों में बिताना होगा। प्रत्येक स्कूल के लिए पृथक् कार्यक्रम बनाने होंगे और चाहे वे केवल दिन के ही स्कूल हों, फिर भी इस नयी योजना और दृष्टिकोण से शहरी स्कूलों को अलग रखना गलत होगा।

स्कूलों में, खासकर सेकेण्डरी स्कूलों में, छात्रों के लिए जो कार्यक्रम लिये गये हैं उन्हें वास्तव में अब स्वयं छात्रों के द्वारा ही सम्पन्न किया जाना चाहिए। आखिरकार बालक जो ७ साल की उम्र में प्राइमरी स्कूल में भर्ती होता है, वह सेकेण्डरी तक पहुँचते समय १४ साल का होता है और उसे छोड़ते वक्त २० या २१ साल का हो जाता है। फिर भी हम अपने स्कूलों में सफाई करनेवालों और मालियों को इन कार्यों को सिखाने के लिए नहीं, इन्हें करने के लिए रखते हैं। इससे छात्रों में आदत पड जाती है कि नौकर ही उन्हें भोजन बनाकर दें, उनकी थालियाँ माँजें और कमरों को साफ करें और वे ही, स्कूल-बगीचों को भी आकर्षक बनायें। यदि उन्हें इन कामों में हाथ बँटाने को कहा जाता है तो उन्हें अपमान अनुभव होता है। और बिना अध्यापकों के निरीक्षण के तो वे इन्हें करने में टालमटोल ही करते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें एक अच्छा निबन्ध या गणित के प्रश्न में प्राप्त गौरव की तरह ही अपने कमरों को या बगीचों को स्वच्छ और सुन्दर बनाने के लिए तथा अनुभव करना नहीं सिखाया गया है। किन्तु स्कूलों के सम्पूर्ण कार्यक्रमों में इन बातों को शामिल करना क्या सम्भव है? क्या स्कूलों के प्रधानाध्यापकों और उनके सहायकों के लिए ग्रीष्मावकाश के समय यात्राओं पर व्यय किये गये खर्चों के बिल बनाने पर ही सबसे लगाना आवश्यक है? क्या इन सब चीजों को कक्षा के शिक्षण कार्यक्रमों में सम्मिलित नहीं किया जा सकता, जिससे छात्र काम करते हुए ही इन्हें सीख सकें। दूसरे शब्दों में, क्या सेकेण्डरी स्कूलों के लिए, स्वावलम्बी समुदाय बनाना असम्भव है जहाँ शिक्षण और निरीक्षण तो बाहर के लोग करें परन्तु जहाँ काम समुदाय के द्वारा ही किया जाय या उसके उत्पादन से प्राप्त आमदनी से करायें जायें। यह सत्य है कि छात्रों के लिए आज स्कूल अस्थायी समुदाय है, किन्तु

७ साल की उम्र तक के बालकों के लिए तो यही एक ऐसा समुदाय है जिसमें वे रहते हैं।

स्पष्ट है कि हम एक ही रात में यह स्थिति प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसके लिए संगठन तथा शिक्षण दोनों में ही बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता है। इसे धीरे धीरे ही करना होगा, जैसे—अपने योग्य क्षेत्र की जिम्मेदारी उठाये जायें। प्राइमरी स्कूलों के बच्चों के लिए यह सब करना शायद सम्भव न होगा, यद्यपि इस वक्त तक बड़ी उम्र के बालक १३-१४ साल के हो जायेंगे, जिस उम्र में यूरोप के देशों के बच्चे खुद काम पर लग जाते हैं।

किन्तु यद्यपि प्राइमरी स्कूलों के लिए सेकेण्डरी स्कूलों की तरह अपनी पूरी जिम्मेदारियाँ खुद उठा लेना सम्भव नहीं होगा अवश्य ही उन्हें ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध करना चाहिए। छात्रों को अपने परिवार या समुदाय के आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग होना चाहिए। बालकों को समुदाय की जिम्मेदारियाँ देकर समुदाय का भाग बनाया जाना चाहिए और समुदाय को स्कूल की कार्य-विधियों में हिस्सा बँटाना चाहिए। स्कूलों का समय चक्र और कार्यक्रम इस तरह से बनाया जाना चाहिए ताकि छात्र परिवार या समुदाय के खेत पर काम कर सकें। आजकल जो बालक स्कूल नहीं जाते वे भी अमूमन खेतों पर काम करते हैं या पशुओं की देखभाल करते हैं। स्कूल जानेवाले बच्चों को मनोरंजन के लिए नहीं, वरन् जीवन की तैयारी के रूप में ही खेतों पर या परिवार के साथ काम करना चाहिए।

यह दृष्टिकोण कि समाज से भिन्न स्कूल की कोई स्थिति है या छात्रों को काम नहीं करना चाहिए, देना चाहिए। निस्सन्देह माता पिताओं की इस दृष्टि से बड़ी जिम्मेदारी है किन्तु ऐसा दृष्टिकोण बनाने में स्कूल बहुत बड़ा काम कर सकते हैं।

इस तरह के समन्वय प्राप्त करने के विभिन्न प्रकार के तरीके हैं। किन्तु यह समझ-बूझकर करना होगा और छात्रों में यह भाव भरना होगा कि समुदाय उन्हें इसलिए शिक्षित कर रहा है कि वे समुदाय के बुद्धिमान और सक्रिय सदस्य बने रहें। इसे प्राप्त करने का एक सम्भव तरीका यह भी है कि सेकेण्डरी स्कूलों की भाँति काम करके सीखने के लाभों को प्राइमरी शिक्षा में दाखिल किया जाय। यदि प्राइमरी स्कूलों के बालक समुदाय के कुछ एकड़ खेत में एक निश्चित जिम्मेदारी के साथ काम करते हैं तो वे नयी-नयी विधियों के साथ-साथ स्कूल समुदाय की फलश्रुतियों में गौरव का अनुभव करना भी सीख सकेंगे। यदि कोई सामुदायिक कार्य उपलब्ध न हो तो स्कूल अपने लिए

फार्म बनायें और प्रार्थना करें कि वे फार्म के लिए भूमि को समतल करने और झाड़ियाँ आदि साफ करने का काम करें जिसके बदले स्कूल के बच्चे किसी चालू सामुदायिक योजना मे काम कर देंगे।

पुन यदि स्कूल में नयी इमारतों अथवा किसी दूसरे काम की आवश्यकता हो तो छात्र और स्थानीय ग्रामवासी इस काम को अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार बाँटकर, मिलकर करें। बच्चो–लड़के लड़कियो–को अपने लिए सफाई का काम स्वय करना चाहिए और भविष्य के लिए योजना बनाना तथा साथ काम करने का महत्व सीखना चाहिए। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, बालको को, यदि उसकी अपनी 'शाम्बा' (Shamba) है, न केवल कार्य मे वरन् भोजन-सामग्री या अन्य पदार्थों की व्यवस्था म शामिल किया जाना चाहिए। उन्हे स्कूल या गाँव के लाभों और वर्तमान तथा भविष्य के लाभों के बीच चुनाव करने मे हिस्सा लेना चाहिए। इस प्रकार के तथा अन्य दूसरे उपयुक्त माध्यमो से छात्रो को यह सीखना चाहिए कि शिक्षा उन्ह समाज से अलग रखने के लिए नही है वरन् उन्हे अपने निजी तथा उनके पडोसी देश के हित के लिए उन्हे समुदाय का प्रभावकारी सदस्य बनाने के लिए है।

शिक्षा के इस प्रकार के पुनर्गठन के माग मे वर्तमान परीक्षा पद्धति एक बहुत बडी बाधा है। यदि छात्रों को अपना अधिकाश समय व्यावहारिक कार्य मे और अपने रख रखाव के लिए योगदान करने म लगाना है तो वे इसी तरह की समयावधि मे, वर्तमान परीक्षा मे सफल नहीं हो सकते। समझ मे नही आता कि वर्तमान परीक्षा पद्धति को ही पवित्रतम क्यो माना जाय। दूसरे देश चुनाव की इस प्रणाली से हट रहे हैं और या तो निम्न स्तर पर परीक्षाओ को एकदम त्याग रहे हैं या उन्हे दूसरी तरह के मूल्यांकनो से जोड रहे हैं। अत कोई कारण नही है कि हम तजानिया मे भी केवल पढाई की जाँच के लिए बनी परीक्षा प्रणाली को छात्रो और शिक्षको के द्वारा स्कूल समुदाय के लिए किये गये कार्य के आकलन से न जोड सकें। माध्यमिक विद्यालयो और विश्वविद्यालयो और प्रशिक्षण सस्थाओ मे प्रवेश के लिए आज की केवल बौद्धिक जाँच की पद्धति से अधिक अच्छी होगी। एक बार शिक्षा मे इस नये दृष्टिकोण की रूपरेखा बन जाने पर फिर चुनाव की प्रक्रिया पर भी पुन विचार किया जा सकेगा।

हमारे स्कूलों में कार्य की इस नयी पद्धति के लिए शिक्षा मे सगठनात्मक परिवर्तन आवश्यक है। यह भी सम्भव है कि लम्बी लम्बी छुट्टियों पर टिके इस शिक्षा क्रम पर भी हमे पुन विचार करना पडे, क्योंकि न तो पशुओ को ही

साल के काफी भाग तक हम अकेले छोड सकते हैं और न स्कूल फार्म के लिए फसल काटने या गुडाई निराई करने या बुआई करने के समय लम्बी छुट्टियों पर गये छात्रों को खिलाना ही सम्भव होगा। किन्तु भिन्न-भिन्न समूहों का भिन्न भिन्न समयो पर अवकाश लेने या दो पारियों मे सेकेण्डरी स्कूलो मे दो पारियाँ बनाकर एक समय मे एक पारी के लिए अवकाश की व्यवस्था करना असम्भव नहीं होना चाहिए। इसके लिए काफी व्यवस्था तथा सगठन की आवश्यकता पडेगी, किन्तु एक बार निश्चय कर लेने पर यह करना हमारे लिए असम्भव नहीं होना चाहिए।

सम्भवत यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार क्रिया के साथ सीखने से छात्रों का बौद्धिक ज्ञान कम होगा और इसका प्रभाव आनेवाले समयो मे हमारे देश के प्रशासन या अध्यापन पर पडेगा। वास्तव मे इसमें सन्देह है कि ऐसा होगा ही। प्राइमरी स्कूलो मे बच्चो को ५ या ६ साल की उम्र मे भर्ती करने का निश्चित अर्थ यह हुआ कि इससे पहले बहुत कम या बिल्कुल नही सिखाया जा सकता। इसके विपरीत ७ या ८ साल मे भर्ती करने से स्थिति मे कुछ सुधार सम्भव है, क्योकि बडे बच्चे निश्चय ही कुछ जल्दी सीखेंगे। यदि उसकी शिक्षा उसके चारो तरफ के जीवन से जुडी होगी तो बच्चे के लिए कम सीखने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

परन्तु यदि यह बात स्वयंसिद्ध तथ्यों पर भी आधारित हो तो भी शिक्षा पद्धति के हमारे राष्ट्रीय जीवन से समन्वय की आवश्यकता हो, नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। क्योकि हमारी अधिकाश जनता के लिए केवल इसी बात का महत्व है कि वह धाराप्रवाह रूप से स्वाहिली भाषा पढ व लिख सके, गणित का व्यवहार करने व समझने की योग्यता प्राप्त कर सके और अपने देश व सरकार के क्रियाकलापो तथा इतिहास की जानकारी रख सके और अपनी जीविका कमाने मे समर्थ बन सके। इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि तजानिया मे अधिकांश लोगों को अपने निजी या सामुदायिक खेत पर काम करके भी अपनी जीविका कमानी होगी और बहुत ही कम ऐसे लोग होंगे जिन्हें किसानों द्वारा उत्पादित वस्तुओ की खरीद के लिए मजदूरी के काम करेंगे। स्वास्थ्य, विज्ञान, भूगोल या प्रारम्भ में कुछ अंग्रेजी जैसी बातें महत्वपूर्ण हो सकती हैं, जिससे जो लोग चाहें, बाद के जीवन मे, इन चीजों का अधिक ज्ञान प्राप्त कर सके। इन सबसे अधिक महत्व की बात तो यह है कि हमारे प्राइमरी स्कूल से निकले हुए छात्र जिस समाज मे रहते हैं उसके अनुकूल बनकर उसकी सेवा करने के योग्य हों। उत्तर माध्यमिक स्तर

पर भी समुदाय के साथ शिक्षा के इस प्रकार के समन्वय के सिद्धान्तो का पालन होना चाहिए। नवजवानों से आशा भी की जाती है कि इस प्रकार की समन्वित अपनी औपचारिक शिक्षा की समाप्ति के लम्बे समय के बाद भी समुदाय के प्रति अपने कर्तव्यों को नहीं भुलायेंगे। फिर भी विश्वविद्यालयो और चिकित्सा-विज्ञान के कालेजो में छात्रों के लिए कपड़े, बर्तन धोने तथा ऐसे ही अन्य काम दूसरे लोग करें, इसकी कोई आवश्यकता नही है कि इस तरह की उच्च शिक्षण-संस्थाओं के छात्रों के लिए अपनी डिग्रियों की प्राप्ति हेतु छुट्टियों का अधिकाश भाग समाज-सेवा के ऐसे काम मे जो उनकी शिक्षा से सम्बन्धित है, लगाना अनिवार्य क्यो न बनाया जाय। आजकल कुछ निम्न स्नातक छात्र अपनी छुट्टियाँ सरकारी कार्यालयो मे काम करके कुछ उपार्जन करने मे बिताते हैं। एक बार इस तरह का सक्षम संगठन बन जाने पर उन छात्रों के लिए भी यह अधिक उचित होगा कि वे सवेतन काम करने के लिए धन की कमी होते हुए भी समुदाय के लिए कुछ उपयोगी 'प्रोजेक्टस' हाथ में लें। उदाहरण के लिए स्थानीय इतिहास का सकलन, जनगणना का काम, प्रौढ शिक्षा के कार्य मे योगदान और अस्पतालो मे कुछ काम जैसी चीजें छात्रों को अपने-अपने क्षेत्र मे कुछ अनुभव प्राप्त करने मे सहायक होंगी। इसके लिए उन्हे कुछ न्यूनतम मजदूरी के बराबर पैसा दिया जा सकता है और अधिक ऊँची मजदूरी पर कराये जानेवाले कार्यों की बाकी रकम छात्रों के कल्याण या खेलकूद के सामानो के लिए कालेज या संस्था के फण्ड मे दी जा सकती है। इस तरह के कार्यों का मूल्यांकन छात्र की परीक्षा से जोड़ दिया जाना चाहिए, एक छात्र को, जो काम करने से जी चुराता है या ठीक ढग से काम नहीं करता, दो बातों का सामना करना पड़ेगा। एक तो उसके सहपाठी उस प्रस्तावित कल्याण-कार्य या सुधार-कार्य के न करने का दोष उस पर डालेंगे और दूसरे उसकी श्रेणी घटा दी जायगी।

उपसंहार

तजानिया के छात्रों के लिए तजानिया द्वारा दी जानेवाली शिक्षण व्यवस्था को तजानिया के उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहिए। इस शिक्षा को हमारे वांछित समाजवाद के मूल्यो को पनपाना और बढाना चाहिए। इसको एक उत्तरदायी स्वतंत्र और ऐसा गौरवशाली नागरिक के विकास को प्रोत्साहन देना होगा जो अपने विकास के लिए आत्म निर्भर रहे और सहकारिता की समस्या और लाभ से परिचित हो। यह शिक्षा-पद्धति हर पढ़े-लिखे व्यक्ति मे चेतना

उत्पन्न करे कि वह राष्ट्रीय जीवन का अनिवार्य अंग है और जितनी अधिक सुविधाएँ उसे मिली हैं, उससे अधिक सेवा करने के लिए वह तैयार है।

यह केवल स्कूल संगठन का पाठ्यक्रम का ही प्रश्न नहीं है। सामाजिक मूल्यों का निर्माण परिवार, स्कूल और समाज के सम्पूर्ण वातावरण से होता है। अब हमारी शिक्षा प्रणाली का अतीत या दूसरे देशों के नागरिकों के अनुरूप ज्ञान और मूल्यों पर जोर देना आवश्यक है और यदि यह पद्धति विरासत में मिली हमारी सामाजिक असमानता तथा सुविधाओं को भी जारी रखती है तो और भी गलत है। हमारे छात्रों को राष्ट्र द्वारा वांछित न्यायपूर्ण और समाजवादी समाज के सदस्य और सेवक बनने के योग्य होना चाहिए।

(अनुदित श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा)

पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा का स्वरूप

प्रह्लादनारायण अग्रवाल

आधुनिक युग मे जहाँ विज्ञान चर्मोत्कर्ष पर पहुँचने के हौसले भर रहा है वहाँ व्यक्तिगत रूप से समष्टि के प्रति आचरणिक पतन भी पतन का पाताल नापने लगा है, जिसके कारण भौतिक समृद्धि मानव का कण्ठहार बनकर भी जीवनदायिनी बनने के स्थान में क्रमशः कुण्ठित, कलुषित, दुःखी एवं अभिशप्त बनती चली जा रही है। बलात्कार, हत्या व अपव्यवहार मानो इस भौतिक समृद्धि के नये उपहार हैं। जो इस समृद्धि के साथ मानवता का कृत्या की भाँति पीछा कर रहे हैं।

आधुनिक समाजशास्त्र का सबसे अधिक विवाद का शब्द है—नैतिकता, जिसका प्रयोग सबसे अधिक और आचरण सबसे कम किया जाता है। साथ ही परिभाषा भी प्रत्येक समुदाय की क्या व्यक्ति की भी अपनी-अपनी है। और ऊपर से ठाठ यह है कि सब एकमत होकर दुहाई देते हैं नैतिकता की और रोना रोते हैं नैतिकता का।

यह निर्विवाद सत्य है कि जहाँ भी सम्भ्रम, दोष अथवा त्रुटियाँ उत्पन्न होती हैं वहाँ सिद्धान्त पर दृष्टि रखकर लक्ष्य से हटकर बढते रहने से होती है। अतः लक्ष्य-लभिष्णु सदैव अपनी दृष्टि लक्ष्य पर ही केन्द्रित रखते हैं। जहाँ से लक्ष्य प्राप्त होता स्पष्ट दिखाई देता हो उसी मार्ग का अवलम्बन और लक्ष्य दूर हटता दिखाई दे, तत् तत् मार्ग से विरत हो, अर्थात् उन-उन सिद्धान्तों मे फेर बदल कर लक्ष्याभिमुख बढते रहते हैं। यही बात शिक्षण पर भी खरी उतरती है कि शिक्षा जीवन का लक्ष्य नहीं, मार्ग है, साध्य नही, साधन है। श्रुतियाँ स्पष्ट घोषणा कर रही हैं कि "सा विद्या या विमुक्तये"। विमुक्ति किसकी ? विमुक्ति किससे ? और विमुक्ति का लक्ष्य ? स्पष्ट है, विमुक्ति आत्मा की जो व्यक्तिगत दुराग्रह, स्वार्थ, वासना और अहम्मन्यता के दुर्ग मे बन्द छटपटा रही है, जिसका लक्ष्य अपने कोटि-कोटि सहोत्पन्न (एक ही परमपिता परमात्मा से उत्पन्न) मानव ही क्यों, प्राणिमात्र का जीवन पूर्ण प्रसन्न व प्रभविष्णु बनाकर सांस्कृतिक अरुणोदय का समर्पण का अर्घ्य देकर स्वागत कर, समस्त सृष्टि को कालुष्य, नैराश्य, वासना और अहं के पंक से विमुक्त कर, सतुलित दृष्टि से धर्म, अर्थ और काम के उपभोग की शक्ति और सामर्थ्य उत्पन्न कर, उपभुक्त करते हुए उस अनन्त सत्ता मे स्वयं को विलीन

करना है, जो परम पूर्ण है। इस प्रकार शिक्षा का लक्ष्य स्पष्ट होते ही अनुभूति हुई है कि नैतिकता तो शिक्षा का प्राण है, नैतिकता के अभाव में शिक्षा म्रियमाण है, क्योंकि जीवन का संतुलित विकास ही लक्ष्य तक पहुँचा सकेगा और संतुलित विकास नैतिकता का आत्मज है। उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो गया कि शिक्षा का लक्ष्य नैतिकता का संतुलित विकास और संतुलित विकास का लक्ष्य पुरुषार्थ-चतुष्टय को उपभुक्त करने की क्षमता कर पूर्णत्व प्राप्ति है।

हमारे शिक्षाविद् आज भी पाश्चात्य भावधारा में निमग्न रहने के कारण नैतिकता को शिक्षा को स्वादिष्ट बनानेवाला ऊपर से डाला जानेवाला मसाला मात्र मानते हैं। अतः जिस प्रकार मसाले के स्वरूप एवं मात्रा पर आज तक सभी उपभोक्ता एकमत नहीं, वही बात नैतिकता पर घट रही है। और इसी दृष्टि ने मानवता को किस कीचड भरे घाट तक घसीटा है और घसीट रही है, सभी को भली प्रकार ज्ञात है। चूँकि जीवन का प्राण है नैतिकता, अतः लौट के मियाँ घर को आनेवाली बात। इसलिए नैतिकता का बोध बनाम शिक्षा की वकालत सभी शिक्षाविद् करते भी हैं, किन्तु दृष्टिकोण के प्रकारान्तर में मूल भूल ज्यों-की-त्यों है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा मण्डल ने 'मोरल एजुकेशन' पहले लिखवाया अंग्रेजी में और फिर उसका हिन्दी रूपान्तर आया। पहला सर्वसाधारण अध्यापक एवं छात्रों के लिए दुरुह और अगम्य रहा तो दूसरा मक्खी पर मक्खी मारने के कारण उपहास का उपादान। इस प्रकार की सारी बात वहाँ की वहाँ, कि "लाल बुझक्कड़ कह गया, अर्थ न समझे कोय। अर्थ भी समझे क्या भया, लाभ कछू ना होय।।"

वास्तव मे नैतिक शिक्षा के स्वरूप का संकेत महाभारत मे भली भाँति स्पष्ट है कि "महाजनो येन गतः स पन्था."। हमे महापुरुषों के चारित्र्य का अनुसरण करना चाहिए, न कि चरित्र का और आज तक नैतिक शिक्षा के दृष्टिकोण से जो भी पाठ्यपुस्तके आयी हैं उनमें मात्र चरित्र का ही अनुसरण करने का मन्तव्य दिखाई देता है। तभी तो हमारे भावी कर्णधार लाल बुझक्कड़ डान विवकजोट की भूमिका बडी सफलता से निभा रहे हैं। लगभग सभी पाठ्यपुस्तकों में महापुरुषों का जीवन से मरने तक एक जीवन इतिहास अथवा दार्शनिक उछलकूद मात्र है। जबकि होना चाहिए उनके जीवन के प्रेरणास्पद, चरित्र-निर्माणकारी और लक्ष्यबोधक पावन प्रसंगों का चयन, जैसे—भामाशाह का संस्कृति रक्षण हेतु सर्वस्व-समर्पण, श्रीहर्ष का निष्काम कर्मयोगत्व, श्री रघु का त्याग एवं वैनम्रय, श्रीकृष्ण का लोकसेवक-स्वरूप, शिवाजी का प्रतिज्ञापालन, गार्गी का न्यायभाव, भानुमती का समर्पण और प्रह्लाद का साहस

तथा ध्येयनिष्ठा से अन्याय का सतत विरोध की वृत्ति आदि। साथ ही हमारी सांस्कृतिक भावधारा के जीवन्त प्रवाह, त्यौहार एवं विशेष तौर-तरीकों को भी रोचक ढंग से प्रस्तुति हो। यह भी स्मरण रहे कि महापुरुष देश-काल की सीमा से ऊपर उठकर समग्र मानवता के आश्वासन होते हैं। अतः संकलन करते समय विश्व के सभी वन्द्य महापुरुषों को स्थान मिले किन्तु प्रत्येक देश की अपनी संस्कृति, परम्परा, भौगोलिक वातावरण एवं शारीरिक, मानसिक दक्षता विशेष स्तर की होती है। यह दृष्टिगत रखते हुए अपने ही परिप्रेक्ष्य में चिंतननिमग्न महापुरुषों को विशेष एवं विस्तृत स्थान दिया जाना अपेक्षित है। इस प्रकार के पावन प्रसंगों के चयन में, हम मतमतान्तर एवं उपासना-पद्धतियों के पचड़े से भी बचेंगे, सब महापुरुषों को विशेषतः अपने के साथ समेट सकेंगे, साथ ही देश के विधि विधान, रीति-रिवाज, व्रत, त्यौहार की भी उपादेय एवं लाभकारी जानकारी दे सकेंगे।

यह काम कक्षाओं के स्तर के अनुसार श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। साथ ही सामाजिक ज्ञान, जो कि आजकल छोटी कक्षाओं में इतिहास एवं समाजशास्त्र का विस्तृत एवं भोंडा-सा स्वरूप है, उसे भी हम रोचक और उपादेय बना सकेंगे। नैतिक शिक्षण में यदि आप कहेंगे "सत्य बोलो", "मिलकर रहो" तो उन पर 'कन्ट्रासजेशन' (मनोविज्ञान) का सिद्धान्त लागू होगा और होता देख रहे हैं। अतः आवश्यक है कि जो कुछ भी कहा जाय, साहित्यिक मन्तव्य "कान्तासम्मित उपदेशयुजे" अवश्य हो किन्तु श्रोता अनुभव न कर सके कि मुझे उपदेश देने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही बेकार की विस्तार व्याख्याओं से बचे और इसका एक ही साधन है कि महापुरुषों के अपेक्षित दृष्टिकोण को दृष्टिगत रखते हुए पावन प्रसंगों का चयन कर बालकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाय। स्वभावतः बालक कहानी में रुचि लेते हैं अतः वहां सरस वातावरण में होगी, जो बालक पर सम्यक् प्रभाव भी डालेगी तथा बालक में उत्तरदायित्व-बोध और आत्मबल-संस्कार सम्पुष्ट कर देश और समाज को उत्तरोत्तर प्रगतिपथ पर अग्रसर कर सकेगी।

('नव शिक्षण' से साभार)

सृजनात्मक अध्ययन

गुरबख्श लाल

मार्क ट्वेन ने एक बार ऐसे व्यक्ति के बारे मे कहानी सुनायी थी, जो ससार के महानतम सेनापति की खोज मे था। पर्याप्त खोज के उपरान्त उसे पता चला कि महानतम सेनापति का पहले ही देहान्त हो चुका है। गिर्जाघर के पादरी ने एक मोची की कब्र की ओर इशारा करते हुए उसे बताया—"यदि यह व्यक्ति सेनापति बन पाता तो ससार का श्रेष्ठतम एव सफलतम सेनापति सिद्ध होता।" बहुत-से मोची तथा अन्य श्रमिक महान् व्यक्ति बनने की क्षमता तो रखते हैं परन्तु वे वह सब कुछ नहीं बन पाते जो बनने की योग्यता उनमे होती है। इस कारण उनकी व्यक्तिगत हानि तो होती ही है परन्तु इसके साथ ही समाज, राष्ट्र तथा समस्त मानवता की भी कभी न पूर्ण होनेवाली क्षति हो जाती है।

इस वास्तविकता से कोई भी इन्कार नही कर सकता कि प्रत्येक युग तथा विभिन्न भू भागों मे कर्मरत कुछ सृजनशील व्यक्तियों के अनथक प्रयत्नो के फलस्वरूप ही हम सभ्यता तथा सस्कृति के वर्तमान स्तर तक पहुँच पाये हैं। इन कर्मयोगियो ने स्वय अनेक प्रकार के कष्ट सहन करके मानवता की प्रसन्नता, सुख सुविधा तथा शाति के लिए असख्य साधन जुटाये। परन्तु यह कठोर वास्तविकता है कि अनेक बच्चो की सृजनात्मकता पर बडी निर्दयता से कुठाराघात किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप वे दबा घुटा जीवन व्यतीत करने के लिए बाधित हो जाते हैं। इस प्रकार वे समाज की प्रगति के लिए अपना योगदान भी नहीं दे पाते हैं। सृजनात्मकता की हत्या करनेवाले कारणों मे से एक महत्त्वपूर्ण कारण है 'दोषपूर्ण अध्यापन तथा अनुपयुक्त शिक्षानीति'।

पहले यह समझा जाता था कि केवल चित्रकार, कवि, सगीतकार आदि कलाकार ही सृजनशील व्यक्ति होते हैं परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोज ने यह सिद्ध कर दिया है कि सृजनात्मकता जीवन के किसी भी क्षेत्र मे अपना सुखद प्रभाव दिखा सकती है। कम खर्च करके घर को किसी नवीन ढग से सजानेवाली स्त्री, बच्चों का किसी नवीन ढग से पालन करके उन्हें आदर्श मानव बनाने वाली माँ, अधिकाधिक ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए किसी नवीन व्यवस्था का आविष्कार करनेवाला दुकानदार, वर्तमान समस्याओं के प्रति सजग, नवीनता के प्रति मोह रखनेवाला तथा अपने सहयोगियों के मौलिक चिन्तन को प्रोत्साहित करनेवाला अधिकारी, बच्चों की सृजनात्मकता की रक्षा तथा उसे

विकसित करने का प्रयत्न करनेवाला अध्यापक—ये सभी सृजनशील व्यक्ति हैं। ये सब अपने अपने क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ साथ उस क्षेत्र को भी पर्याप्त सीमा तक विकसित करने मे अपना योगदान देते हैं।

हम पहले कह चुके हैं कि दोषपूर्ण अध्यापन के द्वारा हम बच्चो की सृजनात्मकता पर तुषारापात करते हैं। सृजनात्मक अध्यापन के द्वारा बच्चे की सृजनात्मकता की न केवल रक्षा ही होती है, वरन् उसका विकास भी होता है। परन्तु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि किस अध्यापक का अध्यापन सृजनात्मक अध्यापन होगा ? इस प्रश्न का स्वाभाविक उत्तर यही है कि एक सृजनशील अध्यापक का अध्यापन ही सृजनात्मक अध्यापन हो सकता है। सृजनशील अध्यापक वह होगा जिसके व्यक्तित्व मे सृजनात्मकता के पर्याप्त तत्त्व विद्यमान होंगे और जो उनका उपयोग विभिन्न शैक्षिक स्थितियों मे अर्थात् अपने शिक्षण-कार्य मे करता है। सृजनशील व्यक्ति में मौलिकता, समस्याओ के प्रति सजगता, जिज्ञासा, विचारो की बहुलता कल्पनाशक्ति आदि गुण प्रचुर मात्रा मे होते हैं तथा वह अन्य लोगों मे भी इन गुणो को पाकर अत्यन्त प्रसन्न होता है तथा उन्हे समुचित ढग से विकसित करने का भरसक प्रयत्न करता है। एक सृजनशील अध्यापक विद्यालय तथा कक्षा मे उत्पन्न होनेवाली अनुशासन सम्बन्धी समस्याओ के प्रति सजग होता है तथा उसमे प्रत्येक समस्या के एक से अधिक समाधान सुझाने की योग्यता होती है। अज्ञात के अन्धकूप में प्रवेश करके अपने आपको ज्ञानरूपी सूर्य की सुनहरी रश्मियो से आलोकित करने की जिज्ञासा उसके मन मे होती है। वह स्वतत्र चिन्तन का अभ्यासी होता है तथा उसके हृदय मे कल्पनारूपी सागर सदा ठाठें मारता रहता है। इसके अतिरिक्त बच्चो के सृजनात्मकरूपी पौधे को सींचकर पल्लवित तथा पुष्पित करने की उत्कट अभिलाषा उसके मन मे होती है।

सृजनशील अध्यापक को अपने विषय पर पर्याप्त अधिकार प्राप्त होता है तथा और अधिक अधिकार प्राप्त करने की लालसा उसके मन मे प्रबल होती है। वह वास्तव में सत्य का अन्वेषी होता है। व्यावसायिक रूप से विकसित होने पर भी वह सतत प्रयत्न करता है। वह समय समय पर अपना मूल्याकन स्वय किया करता है। अपनी त्रुटियों का पूरी तरह से विश्लेषण करके उन्हें दूर करने का भरसक प्रयत्न भी वह अवश्य करता है। वह अपने हृदय तथा मस्तिष्क के द्वार सदा खुले रखता है अर्थात् नवीन अनुभवो के फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले ज्ञान का स्वागत करने के लिए सदा तत्पर रहता है। वह किसी भी प्रकार के अनुभव से कुछ-न-कुछ सीखने का सफल प्रयास करता है।

सृजनशील अध्यापक सीखने के नियमों को भली भाँति जानता है तथा इनके अनुसार अपनी दोषपूर्ण शिक्षण विधियों मे उपयुक्त तथा वांछित सुधार भी कर लेता है। वह प्रत्येक विद्यार्थी को भी समझाने का प्रयास करता है तथा उसकी रुचियों तथा योग्यताओ के अनुसार ही अपने अध्यापन की योजना बनाता है। इसके अतिरिक्त वह विद्यार्थियों के व्यक्तित्व सम्बन्धी विकारो का अध्ययन करता है तथा मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए उनका मार्गदर्शन करता है।

सृजनात्मक अध्ययन में इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है कि विद्यार्थी केवल अच्छी आदतें ही डालें। हमारे जीवन मे आदत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मानसिक तथा शारीरिक आदतें हमारे प्रतिदिन के कार्यों में या तो सहायता करती हैं या फिर हमारे मार्ग मे बाधा डालती हैं। अत सृजनशील अध्यापक का सदा यही प्रयत्न रहता है कि उसके विद्यार्थी कठोर तथा दुराग्रही न बनकर उदारहृदय बनें अर्थात् दूसरे लोगों की बात को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर रहें। सभी तथ्यों की पूरी जानकारी प्राप्त होने तक अपने निर्णय को स्थगित रखने की आदत, किसी समस्या की गहराई म जाकर उसके कारणो का विश्लेषण करने की आदत, तथ्यों के आधार पर किसी घटना अथवा व्यवहार का मूल्यांकन करने की आदत तथा इसी प्रकार की कुछ अन्य आदतें विद्यार्थियो मे डालने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त *स्वाध्याय की आदत डालने का प्रयास भी अवश्य किया जाता है,* क्योंकि स्वाध्याय करनेवाला व्यक्ति ही सृजनात्मक चिन्तन कर सकता है।

सृजनात्मक अध्यापन म रटने तथा अन्धानुकरण की प्रवृत्ति को बढावा न देकर स्वतन्त्र चिन्तन पर विशेष बल दिया जाता है। यह सत्य है कि हम अनुकरण द्वारा अनेक बातें आसानी से सीख लेते हैं परन्तु अनुकरण सृजनात्मकता का सबसे बडा शत्रु है। इसके कारण हम परम्परागत कार्यविधियो के दास बन जाते हैं। इनका अपना महत्त्व है परन्तु इनको मौलिकता का स्थान ग्रहण नहीं करना है। यदि हम केवल अनुकरण ही करते रहे तो सभ्यता के विकास मे एक भीषण गतिरोध पैदा हो जायेगा। अध्यापन करते समय सृजनशील अध्यापक यह ध्यान रखता है कि विद्यार्थी नवीन ज्ञान प्राप्त करते समय सीखने तथा स्मरण करने के क्षेत्र से निकलकर स्वतन्त्र चिन्तन के क्षेत्र में प्रवेश कर जायें। भारतीय संविधान पढाने के उपरान्त अध्यापक विद्यार्थियो को यह सोचने की प्रेरणा दे सकता है कि बदली हुई परिस्थितियों के परिवेश मे संविधान मे क्या क्या परिवर्तन करने आवश्यक हैं अथवा देश को समाजवाद के

निकट ले जाने के लिए सविधान मे क्या क्या परिवर्तन करने पडेंगे ? इतिहास मे १८५७ के स्वाधीनता के प्रथम सग्राम को पढाने के उपरान्त अध्यापक उन्हें यह सोचने अथवा कल्पना करने के लिए कह सकता है कि यदि हम १८५७ के सग्राम मे ही विजयी हो गये होते तो पिछले सौ वर्षों मे भारत का इतिहास किस प्रकार का होता अथवा आज भारत की क्या स्थिति होती ? ऐसा करने से विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति का उपयुक्त उपयोग भी होगा तथा समुचित विकास भी होगा।

उच्च आदर्शों तथा सिद्धान्तोवाले अध्यापक का ही अध्यापन सृजनात्मक अध्यापन हो सकता है। ऐसे अध्यापक के मन मे अपने व्यवसाय के प्रति असीम श्रद्धा तथा विश्वास की भावना होती है उसके मन मे अपने कार्य को उत्साह-पूर्वक करने की उत्कट अभिलाषा होती है, क्योकि अध्यापन-कार्य मे उसकी वास्तविक रुचि होती है। अपने विद्यार्थियो को विकसित होते देखकर उसे प्रसन्नता होती है। वह सन्तोषी स्वभाव का परिश्रमी आदर्शोवाला तथा अपने कार्य को पूरी लगन से करनेवाला होता है।

विद्यार्थी सीखते समय अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का उपयोग तभी कर सकते हैं जब उन्हे स्वतत्र वातावरण मे सीखने के अवसर प्रदान किये जायँ अर्थात् उन्ह नवीन प्रयोग करने की स्वतत्रता हो और घिसी पिटी प्रथाओ तथा परम्पराओ को उनके मार्ग मे बाधा न बनने दिया जाय। परन्तु स्वतत्रता का अर्थ यह कदापि नही है कि कक्षा तथा स्कूल मे जगल का ही कानून प्रचलित हो जाय। अनुशासन की ओर पूरा ध्यान दिया जाता है परन्तु यह अनुशासन बाहरी न होकर आतरिक तथा सृजनात्मक अनुशासन होता है। विद्यार्थियो को इस बात का प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे इस कर्त्तव्यनिष्ठ कर्मयोगी की तरह अनुशासित जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा अपने हृदय से ही प्राप्त करें।

सृजनशील अध्यापक अध्यापन-कार्य को एक कला समझकर एक कलाकार की भावना से काम करता है। एक कलाकार की भाँति वह भी सृजनात्मक अभिव्यक्ति को महत्त्वपूर्ण समझता है तथा शिक्षार्थियों के मन मे भी इसके प्रति मोह की भावना पैदा करने के लिए सृजनात्मक प्रयास करता है। यद्यपि ऐसा करने के लिए कोई एक नियम अथवा सर्वसम्मत प्रणाली नही है, परन्तु एक सृजनात्मक अध्यापक अपने अदम्य साहस, उत्साह तथा प्रबल इच्छा के कारण इस उद्देश्य में सफल हो जाता है।

यह आवश्यक नहीं है कि सृजनात्मक कार्य पहले के कार्यों से नितान्त भिन्न हो। अति साधारण कार्यों अथवा क्रियाओ को भी सृजनात्मक भावना से किया

जा सकता है। सृजनात्मक अध्यापन में यही प्रयत्न किया जाता है कि विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक क्रिया को सृजनात्मक भावना से करना सीखें। प्रत्येक अध्यापक से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रचलित शिक्षण विधियों में आमूल परिवर्तन करके नितान्त नवीन विधियों का आविष्कार करेगा। ऐसा तो कुछ महान अध्यापक ही कर सकते हैं। परन्तु अन्य अध्यापक भी प्रत्येक पाठ को सृजनात्मक भावना से पढ़ाकर सृजनशील अध्यापक कहलाने के अधिकारी बन जाते हैं। वे किसी आकर्षक तथा लाभदायक सहायक उपकरण का निर्माण कर सकते हैं। वे शिक्षार्थियों का लेख सुधारने के लिए अक्षर विन्यास की अशुद्धियाँ दूर करने के लिए संशोधन कार्य को सरल बनाने के लिए तथा इसी प्रकार की अन्य असंख्य समस्याओं को दूर करने के लिए उपाय सोचते हैं तथा उन्हें कार्यान्वित भी करते हैं।

सृजनात्मक अध्यापन सदा रचनात्मक होते हैं। इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है कि विद्यार्थी केवल मूक श्रोता ही न बने रहें वरन सक्रिय रूप से भाग प्राप्त कर। विद्यार्थियों में आज्ञाकारिता, अनुरूपता आदि के स्थान पर आत्मविश्वास मौलिकता आदि गुण उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें वर्तमान समस्याओं के प्रति सजगता की भावना पैदा की जाती है तथा उनका यथोचित समाधान ढूंढने के लिए उनमें प्रयोगात्मक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयत्न भी किया जाता है।

प्रसन्न जीवन व्यतीत करने के लिए सृजनात्मक अभिव्यक्ति आवश्यक है। सभ्यता के सूर्योदय से लेकर वर्तमानकाल तक मानव सृजनात्मक मूल्यों को अपनाकर प्राय परम आनन्द का अनुभव करता आया है। अत सृजनात्मक अध्यापन में सभी विद्यार्थियों को सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान किये जाते हैं ताकि विद्यार्थी देश के सन्तुष्ट, सन्तुलित तथा प्रसन्न नागरिक बनें।

सारांश यह कि सृजनात्मक दृष्टिकोण का विकास करना, सृजनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहन करना विद्यार्थियों को अपनी क्रियाओं को सृजनात्मक बनाने के योग्य बनाना उनमें आत्मविश्वास की भावना पैदा करना तथा उनमें बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको बदलने की योग्यता पैदा करना सृजनात्मक अध्यापन के उद्देश्य हैं। यदि हम इन उद्देश्यों की पूर्ति करने में सफल हो जाते हैं तो समाज राष्ट्र तथा मानवता का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल होगा क्योंकि इस प्रकार सृजनशील व्यक्ति मानवता के लिए सुख समृद्धि की व्यवस्था करने हेतु अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का खुलकर प्रयोग कर सकेंगे। ('नया शिक्षक' से साभार)

गांधी : सामाजिक विचार एवं बुनियादी शिक्षा

दिनेश सिंह

महात्मा गाधी विश्वबन्धुत्व की भावना को साकार मूर्ति प्रदान करना चाहते थे। देश-विदेश मे व्याप्त मानव विभेद, नीति एव अमानवीय कृत्यों के दुष्परिणामो को उन्होने स्वय के जीवन में अनुभूत किया था। मनुष्य मनुष्य के भेद को मिटाने के लिए अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया था। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक साधनो की आवश्यकता होती है। गांधीजी ने उक्त लक्ष्य की प्राप्ति हेतु 'सत्य' और 'अहिंसा' को सैद्धांतिक साधन बनाया था। महात्मा गाधी के शब्दों मे 'सत्य' शब्द 'सत्' से बना है। सत्' का अर्थ है यथार्थ सत्ता। ससार अयथार्थ सत्ता से भरा हुआ है, इसमे यथार्थ 'सत्ता' को ढूँढ निकालना, उसके लिये जीना मरना यही मनुष्य का ध्येय है। यह यथार्थ सत्ता ही सत्य है। हम प्राय अयथार्थ से पीछे भागते हैं, यथार्थ हमारी आँखो से ओझल रहता है। यह यथार्थ ही वास्तविक है, यथार्थ 'सत्य' है, 'सत्य' को ढूंढना सत्य के लिए अपने को न्योछावर कर देना मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए। महात्मा गाधी का कहना था कि 'सत्य ही ब्रह्म है। 'सत्य' की सत्ता से नास्तिक भी इकार नही कर सकता। आज के वर्तमान विश्व मे अनीश्वरवादियो की कमी नही है इस तथ्य को महात्मा गांधी ने भली-भाँति समझ लिया था। सत्य के सिद्धात द्वारा इन दोनो समूहों के एकीकरण के प्रयास की झलक स्पष्ट दृष्टिगत होती है। वे अपने जीवन को ही सत्य के प्रयोग से सम्बोधित करते थे। महात्मा गाधी ने अहिंसा के सिद्धान्त के दो रूप बतलाये थे। पहला स्थूल तथा सीमित रूप है। भिन्न भिन्न क्षेत्रो में डडे से काम न लेना, दूसरे का खून न बहाना स्थूल अहिंसा है, यह अहिंसा का सीमित क्षेत्र है। दूसरा सूक्ष्म तथा व्यापक रूप है। उनका कहना था दूसरे को दुख पहुँचाना, दूसरे से कटु बोलना, कठोर व्यवहार करना—यह सब हिंसा है और इन्हे नकारात्मक रूप बताया। उनके अनुसार साकारात्मक रूप मे अहिंसा का अर्थ दूसरे के साथ प्रेम करना है। महात्मा गाधी ने 'सत्य' और 'अहिंसा' के सिद्धान्त को सामाजिक, राजनैतिक एव धार्मिक जीवन मे समन्वय प्रदान करने का अध्ययन अत्यधिक निकट से किया था। महात्मा गाधी ने अपने स्वप्नो के भारत के लिए व्रत लिया था कि 'ऐसा भारत जिसमे लोगो के उच्च और निम्न वर्ग नही होगे। ऐसा भारत जिसमे सब जन-समुदाय पूर्ण सौहार्द्रपूर्वक रह सकेंगे। ऐसा भारत जिसमे कोई जाति

या सम्प्रदाय दूसरों से श्रेष्ठ नहीं माना जायगा और न जिसमे धनी और अधिकारसम्पन्न लोगों का ही बोलबाला होगा। सच्चे अर्थों में यह समानता पर आधारित होगा और शान्ति मे इसकी पूर्ण आस्था होगी। पूरे समाज के जीवन में भी शान्ति होगी और प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे भी।" महात्मा गाधी ने भारत में विद्यमान जाति-भेद की विषम परिस्थितियों एव धनी-निर्धन की विशाल खाई का भली भांति अध्ययन किया था। उन्होंने पूर्वाग्रहो को दूर करने और विशेषाधिकारों को छोड़ने का आन्दोलन चलाया था तथा समाज को *बताया कि जातीय-पूर्वाग्रह और भेदभाव सामाजिक बुराइयां हैं।* गाधीजी ने जातीय समस्याओं एव जातीय पूर्वाग्रहों को मानव-निर्मित बताया। इस प्रकार इनसे सम्बन्धित जन्मजात एव ईश्वरकृत भ्रमपूर्ण धारणा का निवारण किया। महात्मा गाधी सत्य के पुजारी थे। एक बार शान्तिनिकेतन जाने पर उन्होंने देखा कि भोजनगृह मे ब्राह्मणों के बालकों के लिए बैठने की अलग विशेष व्यवस्था की गयी है। इसको देखकर गाधीजी अत्यधिक व्यथित हुए। गाधीजी ने इस कृत्य को अमानवीय बतलाया। जाति प्रथा को गाधीजी ने पाप तक कहकर सम्बोधित किया। अस्पृश्यों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि सामाजिक दृष्टि से वे कोढ़ी हैं, आर्थिक दृष्टि से उनकी स्थिति सबसे खराब है, धार्मिक दृष्टि से उनका उन स्थानों मे प्रवेश निषिद्ध है, जिन्हे हम गलती से देवालय कहते हैं। यदि हम अस्पृश्यता को नहीं मिटाते तो हम स्वय दुनिया के नक्शे से मिट जायेंगे। एक बार उन्होने कहा था इस अस्पृश्यता के जीवित रहने की अपेक्षा मैं यह कहीं अधिक पसन्द करूंगा कि हिन्दू धर्म को ही मौत हो जाय। इन्ही विचारो को लेकर ३० सितम्बर १९३२ को महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता-विरोधी सघ की स्थापना की, जो बाद मे हरिजन सेवक सघ बना। महात्मा गांधी ने अस्पृश्यताविरोधी अभियान को जीवन के अन्तिम दिनो तक जारी रखा। *गांधीजी* ने हरिजनो की शिक्षा के लिए प्रचलित विद्यालयों मे प्रवेश-निषेध का कटु अनुभव भी प्राप्त किया था।

गाधीजी भारतीय जनता की भाग्यवादिता और निष्क्रियता से भी पूर्णत. परिचित थे। अत वे समाज के व्यक्तियों मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को उत्पन्न करना चाहते थे। गाधीजी विदेशी शासन को समाप्त कर देश को सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था में मौलिक परिवर्तन लाना चाहते थे। उनकी दृष्टि मे आर्थिक विषमता महाकलक थी। उन्होंने कहा था कि स्वतन्त्र भारत में ऐसा एक दिन भी नहीं चल सकता कि एक ओर नयी दिल्ली में बडे-बडे महल और भवन *बनते रहें और दूसरी ओर गरीब मजदूर लोग झोपडियो और कुटियों में*

नारकीय जीवन व्यतीत करते रहे । गांधीजी टालस्टाय को अपना आदर्श मानते थे । महान रूसी लेखक टालस्टाय और गांधीजी के विचारों में पर्याप्त साम्य था । आर्थिक समानता के साथ-साथ समान अधिकार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दिलाना उनकी हार्दिक अभिलाषा थी । उन्होंने कहा है : "लोकतंत्र के सम्बन्ध में मेरी यह धारणा है कि इसके अन्तर्गत दुर्बलतम लोगों को प्रबलतम लोगों के समान अधिकार मिलने चाहिये ।"[1] गांधीजी द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त तथ्य, मात्र पुरुष वर्ग के लिये ही सीमित नहीं थे । वे स्त्रियों को किसी भी दशा में कम महत्ता नहीं प्रदान करते थे । स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ दिनों पूर्व उन्होंने कहा था कि मैं चाहता हूँ कि भारत का प्रथम राष्ट्रपति कोई हरिजन स्त्री बने । भारतीय समाज में स्त्रियों की जो दीन हीन अवस्था थी वह महात्मा गांधी की परिभाषा में हिंसा का ही एक रूप था । महात्मा गांधी ने अपनी शिक्षा की नयी योजना में बालकों के समान ही बालिकाओं की शिक्षा की समुचित व्यवस्था की ।

गांधीजी देश में यथार्थ समाजवाद लाने के लिए आत्मनिर्भरता को महत्त्वपूर्ण समझते थे । इसीलिए उन्होंने खादी के प्रयोग, एवं सूत कातने का व्यापक प्रचार किया था । गांधीजी श्रम एवं कार्य की महत्ता को ही सदैव बल प्रदान करते रहे । उड़ीसा में अकाल पड़ने के समय गांधीजी ने धन, वस्त्र एवं भोजन एकत्रित कर भूखे तथा वस्त्रविहीन लोगों को बाँटना प्रारम्भ किया । परन्तु जितना अधिक वे लोगों को देते उतना वे और माँगते । इस घटना से गांधीजी ने अनुभव किया था कि वे दान देकर उन लोगों को लाभ नहीं, वरन् हानि पहुँचा रहे हैं । उनको यह महसूस हुआ कि वस्त्र, भोजन एवं धन की अपेक्षा काम देना अत्यधिक उपयुक्त है । गांधीजी की बुनियादी शिक्षा में किसी शिल्प का माध्यम प्रदान किया जाना काम की महत्ता एवं श्रम की महत्ता का ही बोधक है ।

महात्मा गांधी के तथाकथित सामाजिक विचार पुस्तकीय ज्ञान मात्र नहीं थे, वरन् उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में अनुभूत किया था । समाज में चारों ओर उन्हें धार्मिक कट्टरता अंधविश्वास, जातीय श्रेष्ठता, अस्पृश्यता, शारीरिक श्रम की उपेक्षा एवं अवहेलना तथा निरक्षरता आदि सामाजिक व्याधियाँ स्पष्ट एवं विनष्टकारी रूप धारण किये हुए दृष्टिगत हुईं । गांधीजी ने अपने जीवन की अनुभूतियों से यह निष्कर्ष निकाला कि इन सब व्याधियों के

---

१. जी० डी० तेण्डुलकर : "लाइफ आफ मोहनदास करमचन्द गांधी" भाग-५, पृष्ठ-३४३

निवारण का एकमात्र उपाय एवं आधार शिक्षा है। गांधीजी ने तत्कालीन शिक्षा-पद्धति को सामाजिक व्याधियों से घिरा हुआ पाया था। सन् १९२१ ही में 'यंग इण्डिया' में उन्होंने लिखा था कि वर्तमान शिक्षा पद्धति विदेशी संस्कृति पर आधारित है एवं स्थानीय संस्कृति से पूर्णतः रहित है। यह मात्र मस्तिष्क-प्रधान है। शारीरिक श्रम और संवेदनशीलता की उपेक्षा करती है। सच्ची शिक्षा विदेशी माध्यम से कदापि सम्भव नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधीजी दीर्घकाल तक समाज की विषम परिस्थितियों एवं शिक्षा की तत्कालीन पद्धति का अध्ययन एवं विवेचन करते रहे हैं। इससे यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि गांधीजी सदा शिक्षक ही रहे हैं। तत्कालीन शिक्षा पद्धति में उन्होंने यह देखा एवं प्रत्यक्ष अनुभव किया कि ब्रिटिश अधिकारी सदैव से जनसाधारण की शिक्षा की अवहेलना करते चले आ रहे हैं। जनसाधारण की शिक्षा का व्यय भार वहन करने में वे असमर्थता प्रकट करते रहे हैं। मातृभाषा के स्थान पर शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ने ग्रहण कर लिया है।

गांधीजी ने तत्कालीन शिक्षा पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन का निश्चय किया और अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को क्रियात्मक रूप देने के लिए अक्तूबर १९३७ में वर्धा में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में एक समिति निर्मित की गयी। समिति के अध्यक्ष डा० जाकिर हुसैन थे। अन्य सदस्यों में सर्वश्री के० जी० सैयदैन, के० वी० शाह, मश्रूवाला, विनोबा भावे एवं ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम् थे। 'डा० जाकिर हुसैन समिति' ने २ दिसम्बर १९३७ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। १९३८ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस के हरिपुरा-अधिवेशन में इस रिपोर्ट पर विचार किया गया और इस शिक्षण प्रणाली को राजकीय शिक्षा पुनर्निर्माण की बुनियाद के रूप में स्वीकार कर लिया गया। समिति की रिपोर्ट प्रकाशित होने के पूर्व केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने १९४४ में भारत की शिक्षा पर सुधारों का सुझाव देने के लिए सर जान सारजेंट की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्ति की। इसमें वर्धा योजना के स्वावलम्बनवाले पक्ष का पूर्णतः बहिष्कार कर दिया गया। महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तुत शिक्षा की योजना के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश में सात से चौदह वर्ष के बालक बालिकाओं के लिए सामान्य शिक्षा अनिवार्य एवं शिक्षा का माध्यम मातृभाषा तथा शिक्षा का आधार कुछ चुने हुए हस्तशिल्प थे। गांधीजी ने सैद्धान्तिक शिक्षा और रचनात्मक कार्य में पारस्परिक घनिष्ठता का सम्बन्ध स्थापित किया। बालक बालिकाओं को सहकारी क्रियाकलापों और नैसर्गिक अनुशासन के द्वारा सामाजिक समुदाय के रूप में रहना सिखलाया जाय तथा

सामाजिक सेवा के अवसर उपलब्ध कराये जाने की महत्ता स्पष्ट व्यक्त की। गाधीजी ने कहा था—"अपने जीवन का प्रत्येक क्षण उपयोगी कामो मे लगाने का सिद्धान्त ही अच्छे नागरिक की शिक्षा का आदर्श होना चाहिए, केवल पुस्तकों का ज्ञान अर्जित करना नहीं। उन्होंने यह भी बताया कि ज्ञान निश्चय ही जीवन के लिए श्रेयस्कर है, वह मानव की नैतिक, भौतिक और शारीरिक अभिवृद्धि के लिए अपरिहार्य नहीं है।"[1] महात्मा गाधी ने बुनियादी शिक्षा के कार्यक्रम मे धार्मिक शिक्षा को स्थान नहीं प्रदान किया। "भारत मे ऐसे कई विभिन्न समूह एव पद्धतियाँ हैं कि धर्मनिरपेक्ष एव धार्मिक शिक्षा का मिश्रण करना बिलकुल असम्भव है। भारत मे धर्म-धर्मान्धिता से युक्त है। यह एक तरह की बारूद है। धर्म के नाम पर लोगो को धर्मान्धता की ओर उत्तेजित किया जाता है।"[2] गाधीजी ने भारत की एकता मे धर्म को बाधक समझा। अत उन्होने बुनियादी शिक्षा की योजना से धार्मिक शिक्षा को हटाने मे तनिक भी सकोच नहीं किया।

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर स्पष्ट होता है कि देश की आर्थिक, सामाजिक एव राजनैतिक परिस्थितियो के लिए गांधीजी ने शिक्षा के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया। खेद का विषय यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तो की रूढिता पर बल देना ही श्रेयस्कर समझा गया। बुनियादी शिक्षा योजना को राष्ट्रीय स्तर पर सफल बनाने के प्रयास नहीं किये गये। देश के नेता भी बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में उच्च आदर्श उपस्थित करने मे असमथ रहे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के २४वें वर्ष तक शिक्षा की समस्याएँ अत्यधिक विषम एव जटिल हो गयी हैं। सभी शिक्षाशास्त्री यह प्रत्यक्ष रूप से महसूस कर रहे हैं कि हमारी शिक्षा सैद्धान्तिक एव पुस्तकीय अधिक है, व्यावहारिक कम। शिक्षा मे सामाजिक सेवा का कोई स्थान नहीं है। वर्तमान शिक्षण प्रणाली ने बेरोजगारी बढाने म पर्याप्त सहायता की है। बेरोजगारी भारत के लिए ही नहीं अपितु सयुक्त राष्ट्र अमेरिका जैसे धनी एव सम्पत्तिशाली देश के लिए गम्भीर समस्या बनती जा रही है। बुनियादी शिक्षा के सिद्धा त अत्यधिक लचीले हैं। उन्हें देश काल की परिस्थितियो के अनुकूल सचालित एव विकसित किया जा सकता है। हमको बुनियादी शिक्षा की महत्ता एव उपयोगिता को पुन दृष्टिगत

१. 'इडिया आफ माई ड्रीम्स,' पृष्ठ ७५

२ डा० के० एल० श्रीमाली · 'दी वर्धा स्कीम", पृष्ठ २२५

करना होगा। बुनियादी शिक्षा को रूढ़िग्रस्तता से निकालना होगा। दूरदर्शिता को आधार बनाना होगा। बुनियादी शिक्षा को समझने एवं क्रियान्वित करने के लिए महात्मा गांधी के सामाजिक विचारों में निहित वैज्ञानिक दृष्टिकोण को शिक्षा का आधार स्तम्भ बनाना होगा।

श्री दिनेश सिंह, शिक्षा सकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

साक्षरता क्या, किसके लिए ?

फर्नाण्डो वल्डरामा

साधारण बोलचाल मे 'निरक्षर' शब्द 'अज्ञानी' शब्द का पर्याय बन गया है और कभी-कभी तो इसका अर्थ 'अपमानजनक' होता है। परन्तु बहुत-से निरक्षर व्यक्ति अपनी स्थिति के बारे मे कभी भी लज्जित नही होते। निरक्षर होते हुए भी वे न तो इस तथ्य से अभिज्ञ हैं, और न ही वे यह जानते हैं कि साक्षर व्यक्ति के सामने निरक्षर व्यक्ति कुछ भी नहीं है। और इसीलिए वे परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव भी नहीं करते।

कुछ पर्यवेक्षणो के अनुसार साठ तथा सत्तर प्रतिशत निरक्षर व्यक्ति पढ़ना-सीखना ही नही चाहते, यहाँ तक कि कुछ देशो मे निरक्षर व्यक्ति पूरा नागरिक ही नहीं माना जाता और वह मताधिकार से वंचित भी रहता है, तथा यह समझा जाता है कि वह समाज के एक किनारे पर रहा रहा है।

निरक्षरता को अब एक रोग अथवा महामारी समझा जाने लगा है। और अब यह अवस्था आ गयी है, जहाँ निरक्षर व्यक्ति विद्रोही वर्ग से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं, तथा जिन्हे उखाड फेंकना ही चाहिए। निरक्षरता के सम्बन्ध मे जो सैनिक शब्दावली प्रयुक्त होती है उससे इस बात का अनुमोदन होता है, जैसे, निरक्षरता के विरुद्ध हम 'संघर्ष' तथा 'लडाई' शब्दो का प्रयोग करते हैं, 'युद्ध नीति' तथा 'सामूहिक आक्रमण', 'निरक्षरता', परिसमापन' अथवा 'उन्मूलन तथा अन्तिम आक्रमण' करना आदि शब्दो से यही प्रकट होता है।

इस प्रकार से दिखाये जाने पर निरक्षर व्यक्ति आखेटी पशु के समान बनकर रह जाता है, एक मानव जैसा नही, जिसे सुधारकर समाज के लिए उपयोगी बनाया जा सके। यह बात अधिक बुद्धिमत्ता की होगी कि इन निषेध वाची अभिव्यक्तियों को हटा दिया जाय तथा इनके स्थान पर अधिक सकारात्मक तथा आशावादी शब्द रखे जायें।

निरक्षर अज्ञानी नहीं

"साक्षरता की परिधि के बाहर मानव समाज' का यह विचार धीरे-धीरे फैल रहा है। इस धारणा के अनुसार समाज के वर्ग जो अलग-अलग हैं, इस कारण से निरक्षर हैं कि वे "साक्षरता की परिधि" के बाहर रहते हैं, और इस कारण से नहीं कि वे अज्ञानी हैं।

निरक्षर, अज्ञानी नहीं होता। पहली बात तो यह है कि समस्त प्रौढ

व्यक्तियों को जीवन का कुछ-न-कुछ व्यावहारिक अनुभव तो होता ही है, विशेषत: वृद्ध आदमियों को जिन्हें कुछ-न-कुछ काम तलाश करना पड़ा है, जिन्हें अपने परिवार का भरण-पोषण करना पड़ा है तथा जिनके ऊपर कुछ-न-कुछ उत्तरदायित्व रहा है।

प्रौढ़ अपठित व्यक्ति की अंकगणित-सम्बन्धी समझ एक अच्छा उदाहरण है। जब एक बच्चा अंकगणित सीखना प्रारम्भ करता है तो वह बिना गल्ती किये दस तक कठिनता से ही गिन सकता है और अंकों का यह क्रम भी उसके लिए कुछ ठोस अथवा व्यावहारिक नहीं होता।

विद्यालय में बालक गिनती, अंक लिखना तथा प्रश्न निकालना सीखता है और फिर वह अपने ज्ञान को इधर-उधर इस्तेमाल करता है। अन्य विषयों की भाँति अंकगणित बच्चे को एक अद्भुत जगत् से परिचित कराता है, जिसकी जानकारी उसे अपनी कक्षा में पढ़ने के साथ-साथ अधिकाधिक होती जाती है।

अनपढ़ प्रौढ़ व्यक्ति की तो बात ही अलग है। उसकी कोई सामान्य शिक्षा नहीं होती तथा भूगोल, इतिहास और विज्ञान की तो बात ही दूसरी है। फिर भी वह बहुत-सी वस्तुएँ खरीदता है तथा बेचता है, उसे अपने काम का पारिश्रमिक भी लेना होता है और उसे यह पड़ताल भी करनी पड़ती है कि उसका हिसाब सही है। परिणामत: ऐसे छोटे छोटे सवालों को निकालने के लिए वह प्राथमिक तरीकों का प्रयोग करता है। वह हिसाब लगाकर भुगतान भी करता है। अपने पास के अथवा आनेवाले रुपये के आधार पर वह कुछ योजनाएँ भी बनाता है, किसी भूखण्ड की नापजोख भी करता है। संक्षेप में आर्थिक समस्याएँ तो वह पहले से ही समझे हुए होता है और जब वह किसी पढ़ाई की कक्षा में बैठता है तो अंकगणित उसके लिए कोई नया विषय नहीं होता। यह सच है कि उसे लिखित अंकों की जानकारी नहीं होती, परन्तु ज्यों ही वह '८' का अंक लिखना सीख लेता है तो वह इस अंक को इसका ठीक व्यावहारिक मूल्य भी दे सकता है।

अनपढ़ होते हुए भी वह व्यापारी हो सकता है, वह कृषि मजदूर, लोहार या बढ़ई भी हो सकता है तथा अपने कार्य-क्षेत्र में वह उस शिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा अधिक जानकारी रखता है, जिसके लिए वह काम बिलकुल ही नया हो।

दूसरी ओर जब उसके सामने नये विचार या नयी कारीगरी का कोई काम आता है तो उसका मन नवीनता के प्रति सामान्यतया सदिग्ध हो जाता है तथा उसकी प्रवृत्ति साक्षरता की ओर अग्रसर होती है। वह अपने पारम्परिक जीवन

से सो परिचित होता ही है, और वह अब तक अपने काम मे किसी सीमा तक सफल भी रहा है।

उदाहरणार्थ, एक बार एक ग्रामीण वृद्धा स्त्री ने कहा था। "तुम यह सोचते हो कि तुम हमे हर बात सिखाओगे। यदि तुम्हारे कहन के अनुसार हमने अब तक अपौष्टिक भोजन खाया है, अपने खेतों को गलत ढग से जोता तथा बोया है तथा अपने बच्चो का पालन-पोषण नियमानुकूल नहीं किया है, तो अब तक हम सब मर गये होते। परन्तु तुम देख रहे हो कि हम जीवित हैं।"

परम्परा को अधिक मान्यता देनेवाला एक ग्रामनिवासी, नगरनिवासी का विश्वास नहीं करता। उसके लिए धार्मिक आस्थाओ से युक्त अधविश्वास सामाजिक जीवन के ठोस आधार होते हैं और इन्हीं अधविश्वासो के कारण वह कोई परिवर्तन करना नहीं चाहता। यदि कोई विशेष बात नहीं हो (जैसे किसी खान का उद्‌घाटन, सडक का निर्माण, किसी नये उद्योग का प्रारम्भ) तो उसका जीवन उसी ढर्रे पर चलता रहता है। परन्तु यदि कोई परिवर्तन हो और छोटे-से किसान को इसम अपना तथा अपने परिवार का कोई लाभ दिखाई दे तो इससे उसके छोटे ग्रामीण समाज को महान प्रेरणा मिलती है।

यदि ग्रामनिवासी पढना सीखे तो उसके पास ऐसी कोई लिखित सामग्री नहीं होती जिस पर वह अपने ज्ञान का प्रयोग करे। ग्रामीण क्षेत्र मे अलग-अलग गाँव होते हैं जहाँ गलियो के नाम तक नहीं होते, तथा गाँव के प्रवेश-द्वार पर कोई नामपट्ट नहीं होता। उनके पास कोई समाचारपत्र भी नहीं पहुँचता और ग्रामीणो का जीवन आशा अथवा महत्त्वाकांक्षाओ से शून्य तथा उकताहट से भरा हुआ होता है।

यदि एक नगरनिवासी पढना सीखे तो उसको सब जगह लिखित सामग्री मिल जायेगी, दुकान की खिडकियो मे, दीवारों पर, तथा इश्तहारो मे उसे कुछ-न-कुछ पढने को मिल ही जायेगा। नगर स्वय एक खुली हुई पुस्तक है, जहाँ नूतन पठित व्यक्ति अपनी शिक्षा जारी रख सकता है।

अपठित व्यक्ति के चार वर्ग

किसी भी देश में अपठित व्यक्ति चार वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं

एक तो वे जो नगरो या उपनगरो मे रहते हैं जो आवश्यकतावश ऐसे व्यक्तियो के सम्पर्क मे आते हैं जिनके लिए पढ़ना साधारण बात है (जैसे किसी फैक्टरी में सहकामचारी अथवा एक ही रेजिमेंट के सैनिक इत्यादि)। ये अपठित व्यक्ति पढने लिखने के लाभ को समझते हैं। वे जानते हैं कि यदि वे

इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लें तो उनकी दशा सुधर जायेगी। और इसलिए, तदर्थ आवश्यक प्रयत्न करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होती। इस वर्ग के अपठित व्यक्तियों को प्रोत्साहन की आवश्यकता भी नहीं होती। उनको पहले से ही इतमिनान रहता है और वे किसी अवसर की प्रतीक्षा मात्र में रहते हैं।

दूसरे वर्ग में वे अपठित व्यक्ति आते हैं जो किसी ऐसे नागरिक अथवा ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं जहाँ कोई सामुदायिक विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा हो अथवा जहाँ कोई कृषि अथवा औद्योगिक संस्थान अभी अभी स्थापित किया गया हो। यहाँ उन्हें प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होती है क्योंकि उनके लिए काम तथा पढ़ने लिखने के मूल्य के बीच कोई सम्बन्ध अभी स्थापित नहीं हुआ होता। इस प्रकार के निपट निरक्षर समुदाय में विकास-केन्द्र द्वारा एक नया वातावरण तैयार कर दिया जाता है जिसकी स्पष्ट व्याख्या की जानी चाहिए या जिसका स्पष्ट मूल्यांकन किया जाना चाहिए। यह कर्तव्य नवीन *उद्योग अथवा वाणिज्य संस्थान के नेताओं का है कि वे अपने संस्थानों में साक्षर* कर्मचारियों को लें, जिनका उत्पादन निरक्षर कर्मचारियों के उत्पादन की अपेक्षा कहीं अधिक हो, तथा उनकी सहायता करने में सहयोग दें।

यदि ये नेता सचाई से काम करें तो बहुत दिनों से चली आ रही इस जड़ता को बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सुनियोजित क्रियाविधि के द्वारा हटाना कठिन नहीं होगा, और कर्मचारी लिखने पढ़ने के लाभ को भी सरलता से समझ सकेंगे।

तीसरे वर्ग में वे फार्म के अवैतनिक कर्मचारी आते हैं जिनको माल के रूप में अदायगी की जाती है। *कुछ देशों में इस प्रकार के बेगारी कर्मचारियों* की पर्याप्त संख्या है और उनके नियोक्ताओं की रुचि उनके कल्याण की ओर बिल-कुल नहीं दिखाई देती। पर्याप्त प्रशासनिक शक्ति के बिना प्राधिकारियों के लिए यह कठिन है कि वे नियोक्ताओं को समझायें कि वे अपने कर्मचारियों की शिक्षा तथा विकास के लिए हितकर वातावरण तैयार करें। यदि सुविधा मिले तो यह वर्ग समाज में बहुत शीघ्र उन्नति कर सकता है, तथा फलस्वरूप उत्पादन की स्थिति को बढ़ा भी सकेगा।

अपठित व्यक्तियों का अंतिम वर्ग बिलकुल ही अलग अलग रहता है। ये व्यक्ति ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहाँ संचार का कोई साधन नहीं है और जहाँ लिखित शब्द *एकदम अज्ञात है। यहाँ साक्षरता कार्य के साथ-साथ उनके आर्थिक* तथा सामाजिक ढाँचे में भी परिवर्तन किया जाना चाहिए। सदियों पुराने उनके प्रमाद को दूर करने के लिए और इन आदमियों के सामने एक नये जीवन की

आशा प्रस्तुत करने के लिए नयी रुचि, प्रेरणा तथा उत्साह की आवश्यकता होती है। और यह एक बहुत ही कठिन कार्य है।

यह वर्गीकरण सर्वांगपूर्ण न होते हुए भी साक्षरता का कार्यक्रम बनाने का आधार हो सकता है। इस कार्य के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को प्रत्येक वर्ग से सम्बन्धित निरक्षरों के बारे में पर्याप्त सूचना की आवश्यकता होगी, उनका ठिकाना, उनकी सख्या, उनके स्त्रीत्व अथवा पुरुषत्व की सूचना और उनकी निरक्षरता की सीमा के बारे में भी जानकारी होनी चाहिए।

प्रथम दो वर्गों को सर्व-प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इन दो वर्गों में नगरों तथा उपनगरों के निवासी शामिल हैं, इसलिए उनको प्रोत्साहन तथा प्रेरणा देना बहुत सरल है तथा उन्हें साक्षर बनाने का कार्य शीघ्र ही आरम्भ किया जा सकता है। उनको एक बार लिखना-पढना मात्र आ जाय तो वे बहुत ही उन्नति करेंगे क्योंकि नगरों में पठन-सामग्री पर्याप्त मात्रा में होती है। इसके अतिरिक्त, उनके व्यावसायिक कौशल को बढाने के लिए अन्य तरीके अपनाने चाहिए ताकि वे सक्षम कर्मचारी बनकर अपने तथा अपने वर्ग के हितों की रक्षा कर सकें।

दूसरे वर्ग के अपठित व्यक्तियों ने अपने समाज के ढाँचे में आये हुए परिवर्तन को देख लिया है। और इसी परिवर्तन से उनको साक्षरता के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

साक्षरता-कार्यक्रम को बुद्धिमानी से तैयार करके उनके अनुकूल इस प्रकार बनाना चाहिए कि उनके व्यक्तिगत तथा सामूहिक उद्देश्यों की भलीभाँति पूर्ति हो सके। यह काम बिलकुल सीधा है—काम उपलब्ध हो तथा नौकरियाँ प्रार्थियों की योग्यता के अनुसार दी जायें। परिणामत: जो लिख पढ सकते हैं उनको अवश्य ही अच्छी-से-अच्छी नौकरियाँ मिलेंगी और तदनुसार उन्हें अच्छे-से-अच्छा वेतन भी मिलेगा।

अन्तिम दो वर्ग भौतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से समान हैं, परन्तु उनके बीच एक महत्वपूर्ण अन्तर है। एक वर्ग तो अपने नियोक्ताओं पर आश्रित है जो लिखने-पढ़ने के मूल्य को पूरी तरह जानते हुए भी अपने कर्मचारियों को पढ़ने-लिखने योग्य बनाने में बिलकुल ही सहायता नहीं देते, तथा दूसरे वर्ग के सम्मुख न तो कोई सुधार या उदाहरण है और न ही उनका कोई पथ-प्रदर्शक है।

तथापि इन दोनों वर्गों में नये सामाजिक ढाँचे तैयार करने की स्पष्ट आवश्यकता है, ताकि उनमें आर्थिक परिवर्तन लाया जा सके और एक

प्रेरणारहित भावशून्य समाज को पुनर्जीवित किया जा सके। इन तमाम बातों पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए।

साक्षरता कार्यक्रम को प्रभावशाली कैसे बनाया जाय ?

कोई भी साक्षरता-कायक्रम तभी प्रभावशाली हो सकेगा जबकि उसके उद्देश्य की स्पष्ट व्याख्या की जाय। इस बात का अनुशीलन न करने के कारण ही कुछ देशो मे नगरीय तथा ग्रामीण विद्यालयो में समान पाठ्यक्रम हैं, तथा प्रान्तीय और क्षेत्रीय विशषताओं के बीच कोई भेदभाव नही रखा गया है।

कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ परिपूर्ण नगरीय विद्यालय के निकट ही अपरिपूर्ण ग्रामीण विद्यालय है। एशिया तथा अफ्रीका के कुछ स्कूलो मे देश के वातावरण के अनुकूल पाठ्य पुस्तको की बहुत कमी है इसलिए यहाँ के अध्यापक यूरोपीय बालको के लिए लिखी गयी पुस्तकें काम मे लाते हैं। इन पुस्तको में आये हुए नाम, निदर्शन चित्र तथा विषय यहाँ की क्षेत्रीय अवस्थाओं से तालमेल नही खाते। यहाँ तक कि प्रौढ़ शिक्षा-कायक्रम के अन्तर्गत उन पुस्तकों को काम म लाया जाता है जो बच्चों के लिए लिखी गयी हैं और इसका कारण योजना अथवा द्रव्य की कमी है। और इसीसे प्रौढ़ विद्यार्थियो मे उत्साह-हीनता फैली हुई है।

अलग अलग अवस्थित ग्रामीण क्षेत्रो म अधूरे विकास की तीन मुख्य समस्याएँ निरक्षरता, निर्धनता तथा रुग्णता की हैं। ये तीनों अन्योन्य सम्बन्धित हैं, इसलिए *योजनाकार के लिए यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि* इनम से किस पर सर्वप्रथम ध्यान दिया जाय। उदाहरणार्थ, भू क्षरण की समस्या का समाधान किये बिना स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना व्यर्थ है, क्योकि भू-क्षरण से कुपोषण तथा निर्धनता की वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप स्वास्थ्य का अभीष्ट स्तर प्राप्त नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार लोगो को लिखने पढ़ने की शिक्षा देना भी तब तक व्यथ ही है; जब तक उन्हें शिक्षा के लाभ न बता दिये जायँ तथा उन्हे, प्राप्त किये गये अपने नवीन ज्ञान से अपनी जीवन-दशा को सुधारने का अवसर न दिया जाय।

इसी प्रकार यदि रोग तथा निरक्षरता के कारण कृषि कार्यकर्त्ता की मानसिक जडता बनी रही, तो कृषि सम्बन्धी विकास-कार्य भी नहीं किया जा सकता।

परिणामतः यह आवश्यक है कि आर्थिक तथा सामाजिक विकास के दृष्टि-कोण से इन समस्याओं को एकसाथ हल करने के लिए विशेषज्ञ अनेक क्षेत्रों मे सगठित कार्य करें, क्योंकि साक्षरता-कार्यक्रम की सफलता अन्य कई कार्यों के

साथ जुडी हुई है, जैसे कृषि सुधार, सहकारी कार्यो का विकास तथा बहुत-से अन्य सामाजिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक विकास-कार्य। इनके साथ कभी-कभी राजनीतिक कारण भी लगा दिये जाते है, जिसका कभी भी अवमूल्यन नही किया जा सकता।

साक्षरता-प्रशिक्षण स्वत एक उद्देश्य नही है बल्कि उद्देश्य का साधन मात्र है। अत विकास की दिशा मे इसे एक आवश्यक तत्व समझा जाना चाहिए। इसलिए इसकी व्यवस्था अभीष्ट परिणाम की प्राप्ति के लिए की जानी चाहिए तथा सुस्पष्ट व्याख्यात उद्देश्यो को ध्यान मे रखते हुए प्रत्येक मामले के अनुकूल बनाया जाना चाहिए, ताकि आवश्यकता की भलीभाँति पूर्ति हो सके।

प्रौढ शिक्षा का प्रतिलाभ

केवल साक्षरता के लिए साक्षरता की बात तो बहुत पीछे रह गयी, इस लिए साक्षरता कार्यक्रम को एक पृथक परियोजना के रूप मे चलाना बुद्धिमानी नही है, क्योकि विस्तृत रूप मे उपयुक्त योजना तथा दूरदर्शिता के अभाव के कारण असफलता अवश्यम्भावी है।

जिस देश मे सामाजिक ढाँचे तथा अपनी विकास-योजनाओ मे रूपान्तरण करने का सकल्प नहीं है, वहाँ सामूहिक साक्षरता-कार्यक्रम को हाथ मे लेना सर्वथा अनुपयुक्त होगा। इससे केवल नयी आशाएँ उत्पन्न होगी परन्तु उनकी पूर्ति के साधन नही होगे। इस मामले मे यह अच्छा होगा कि प्रयत्न कुछ सीमित तथा उन्ही क्षेत्रो मे किया जाय जहाँ विकास योजनाएँ पहले से ही चालू हैं अथवा चालू की जानेवाली हैं। सामान्यतया, साक्षरता कार्यक्रम को समस्त सामुदायिक विकास-कार्यों (औद्योगिक, कृषि-सम्बन्धी, गृह निर्माण-सम्बन्धी, स्वास्थ्य सम्बन्धी इत्यादि) मे शामिल किया जाना चाहिए।

साक्षरता प्रशिक्षण की यह चयन-पद्धति राजनीतिक दृष्टिकोण से आकर्षक भले ही न हो, क्योकि यह चमत्कारिक नही है, परन्तु यह वास्तविक रचनात्मक अवश्य है और इसके परिणाम भी अधिक प्रभावशाली तथा चिरस्थायी है।

यह सुस्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा मे धन लगाने से प्रतिलाभ विलम्ब से मिलता है जबकि प्रौढों के लिए क्रियात्मक शिक्षा मे धन लगाने से शीघ्रतर लाभ की प्राप्ति होती है। इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति इस कार्य के अन्तर्गत आते हैं वे बडी आयु के होते हैं, इसलिए मानव शक्ति की विशेषता जल्दी ही उन्नत हो जाती है।

साक्षरता-कार्यक्रम व्यावसायिक प्रशिक्षण की दिशा मे महत्वपूर्ण कदम हो सकता है, तथा वातावरण को परिवर्तित करने मे आधारभूत हो सकता है।

इससे शिक्षा का द्वार खुल जाता है तथा साक्षर प्रौढ इस प्रकार अधिक जानकार नागरिक और उत्पादक हो सकते हैं।

पाठ्य सामग्री का चुनाव

इसलिए पाठ्य सामग्री का चुनाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। केवल विषय-वस्तु ही नवीन शिक्षितों के साधारण क्रियाकलापों से सम्बन्धित नहीं होनी चाहिए, बल्कि, इसकी शैली भी सरल तथा आकर्षक होनी चाहिए, ताकि पढने की रुचि को बढावा मिल सके।

एक बार किसी व्यक्ति ने कहा था कि साक्षरता कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रौढो को 'पढने के लिए सीखने' से प्रारम्भ करना चाहिए और 'सीखने के लिए पढने' पर समाप्ति करनी चाहिए। इसी समय प्रौढ व्यक्ति अपनी पठन सामग्री का चुनाव या तो ज्ञान-वृद्धि के लिए या मनोविनोद के लिए करता है।

परन्तु केवल कोई पुस्तक या समाचारपत्र ऐसे व्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं होता, जिसने अभी पढना ही सीखा है। उसके प्राथमिक ज्ञान तथा पढने के लिए समुपलब्ध पुस्तकों या समाचारो के बीच एक अन्तराल रहता है। इस अन्तराल को ऐसे साहित्य से भरना चाहिए जो विशेष रूप से उसके स्तर के अनुकूल हो, ताकि वह अधिक उन्नत पाठ्य पुस्तकों की ओर धीरे धीरे अग्रसर हो सके।

किसी भी प्रौढ शिक्षा-कार्यक्रम का यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू है, और नवीन शिक्षित व्यक्ति का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि उसको किस प्रकार की पठन सामग्री समुपलब्ध करायी जाती है।

यह बात सर्वविदित है कि साक्षर बनाने की समस्या बडी जटिल है। यह राष्ट्र से सम्बन्धित मामला है तथा देश को इस बात से परिचित होना ही चाहिए। तकनीकी तथा सगठन सम्बन्धी कुछ ऐसे विवरण होते हैं जिनकी जानकारी सामान्यत जनता को नहीं होती और जिनके बारे मे कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है। साक्षरता प्रशिक्षण के प्रयोजन, इसके द्वारा अधिकारी जिन उद्देश्यो की प्राप्ति की आशा करते हो उनकी तथा उनमे निहित सामान्य तथा विशिष्ट समस्याओ के बारे मे जनता को जानकारी दी जानी चाहिए।

'अभियान चलाने' की तैयारी करते समय ऐसे इश्तहार निकालने का रिवाज सा चल गया है जिनमे अन्योक्तिपरक निदर्शन चित्रों के साथ-साथ नारे भी लिखे हुए होते हैं। परन्तु चूंकि इन इश्तहारो मे वे अपठित व्यक्ति ही सम्बोधित किये जाते हैं जो इन्हें न पढ सकते हैं और न समझ ही सकते हैं, इसलिए इश्तहार निकालना बिलकुल व्यर्थ है। तथापि, जनता का एक ऐसा भी भाग

है, जिसकी अधिकतर जानकारी मिलनी ही चाहिए। जनता के इस समुदाय मे उत्तरदायित्वपूर्ण हैसियत के आदमी, नियोक्ता, निदेशक तथा वे सब व्यक्ति आते हैं, जिनका अपने देश मे साथ सीधा सम्बन्ध होता है। अत. प्रेस तथा जनता को जानकारी देने के अन्य साधन अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं।

जिन देशों म एक से अधिक साधारण बोलचाल की भाषाएँ हैं वहाँ पर सरकार का यह कर्तव्य है कि साक्षरता प्रशिक्षण मे काम मे लायी जानेवाली भाषा का चयन करे। जब तक साक्षरता के लिए जितनी भी सभाएँ या सम्मेलन हुए हैं, उनमे एकमत से इस बात की सिफारिश की गयी है, कि साक्षरता-कार्यक्रम के प्रथम चरण मे परस्पर व्यवहार, अवबोध तथा आपसी सम्बन्ध के लिए देशी भाषा का ही प्रयोग किया जाय।

प्रौढ़ो को साक्षर बनाने के लिए एक विस्तृत अध्यापक निकाय की आवश्यकता होती है, जिसम प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक हों, जो कार्यक्षम तथा सेवानिवृत्त हो, सुपठित अव्यावसायिक हो। विशिष्ट क्षेत्रों मे (कृषि, हस्त-शिल्प इत्यादि) तकनीकी विशेषज्ञ, वर्ग-नेता तथा वाद विवाद निर्देशक, तथा दृश्य श्रव्य उपकरण आदि के सचालक भी इस निकाय में शामिल हैं, और ये सब पूर्णकालिक अथवा अशकालिक हो, वैतनिक हों या स्वयसेवी हों।

बालको को पढाने के लिए शैक्षणिक अनुभवहीन अध्यापको को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए क्योंकि नये काम के लिए अपने आपको उपयुक्त बनाने की दिशा मे उ हे विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। समस्त समाज का अनुशीलन किया जाना चाहिए ताकि प्रौढों के सम्मुख आनेवाली समस्याओ को समझा जा सके। साक्षरता की कक्षाओ को इस प्रकार चलाना चाहिए कि पढनेवालों को अपनी समस्याएँ जानने का अवसर मिले, तथा वे उनका समाधान कर सकें।

प्रौढ शिक्षा की चर्चा करते समय 'शिक्षा' शब्द को, मानव के पूर्ण विकास को ध्यान मे रखते हुए, बहुत व्यापक अर्थ दिया जाता है। हम प्राय. कहते हैं "साक्षरता विकास के साथ जुडी हुई है" क्योकि यदि इसे कारगर होना है और रचनात्मक परिणाम दिखाने हैं तो, इसकी कल्पना इसी अर्थ मे करनी पडेगी। परन्तु यह बात साफ समझ लेनी चाहिए कि 'विकास' समाजिक भी है, आर्थिक, सास्कृतिक और नैतिक भी।

प्रौढ़ शिक्षा के प्रसग मे साक्षरता को मानव उन्नति की क्षमय गतिमत्ता मे एकीकरण का साधन बनाया जाना चाहिए। ['यूनेस्को कूरियर' से पुनर्मुद्रित]

आचार्यकुल गतिविधि

सहर्षा जिला आचार्यकुल शिविर तथा सम्मेलन, मधेपुरा

गत जनवरी माह मे सारे जिले मे आचार्यकुल का गठन हो जाने के बाद यह तय किया गया था कि सभी प्रखडस्तरीय आचार्यकुल समितियो के अध्यक्षो, मत्रियो और सयोजको का तीन दिन का एक शिविर और सम्मेलन किया जाय, जिसमे जिला इकाई के गठन के साथ-साथ आगे के कार्यक्रम पर भी विचार किया जाय। इस उद्देश्य से गत १७, १८ और १९ अप्रैल, १९७१ को मधेपुरा मे यह शिविर किया गया।

शिविर-सचालन के लिए स्थानीय महाविद्यालय के प्राचार्य प्रोफेसर श्री रतनचांदजी की अध्यक्षता मे २० आदमियो की एक स्वागत-समिति का गठन किया गया है और यह तय हुआ कि यह शिविर स्थानीय नगर स्वराज्य-समिति के तत्वावधान मे हो। समिति की ओर से उसके सयोजक डा० श्री महावीरजी भगत ने सयोजन का जिम्मा लिया। स्थानीय अवर प्रमडल शिक्षा-पदाधिकारी श्री वासुदेव प्रसाद सिंह ने भी स्वागत समिति को सहयोग देने का दायित्व लिया।

शिविर स्थानीय बहुद्देश्यीय उच्च विद्यालय-भवन मे १७ अप्रैल को दोपहर को आरम्भ हुआ। कुल मिलाकर पाँच सत्रो मे शिविर का कार्य बाँटा गया और प्रत्येक सत्र की अध्यक्षता क्रमश: सुश्री गार्गी सिंहजी, प्राचार्या, महिला प्रशिक्षण विद्यालय, मधेपुरा, श्री लाला सुरेन्द्र प्रसादजी, आचार्य बहुद्देश्यीय उच्च विद्यालय, मधेपुरा, श्रीमती कौशल्या सिन्हा सहायक जिला शिक्षा० निरीक्षिका, मधेपुरा और श्री भोलाप्रसाद सिंहजी, एम० एल० ए० ने की। शिविर मे तीन मुख्य विषयों पर मुख्य वक्ताओं ने व्याख्यान दिये और उन पर चर्चाएँ की गयीं। दूसरे तथा चौथे सत्र मे सर्व सेवा सघ के श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने क्रमश: *सामाजिक क्रान्ति, आचार्यकुल का दृष्टिकोण और छात्र-असतोष,* युवको का शैक्षणिक निर्देशन, समस्या तथा समाधान, इन विषयों पर और तृतीय सत्र मे मधेपुरा के लब्धप्रतिष्ठित विद्वान् श्री ललितेश्वरजी मल्लिक ने हमारी समस्याएँ और शिक्षा, समाधान और दिशाएँ, इन विषयों पर अपने-अपने व्याख्यान दिये।

शिविर का समारम्भ प्रसिद्ध सर्वोदय कार्यकर्ता, केन्द्रीय आचार्यकुल

समिति के सदस्य और श्री विनोबाजी के निजी सचिव श्री कृष्णराजजी मेहता ने किया। समारम्भ सत्र मे अपना समारम्भ-भाषण देते हुए श्री मेहता ने कहा कि समाज को बनाने मे आचार्यों की महती जिम्मेदारी है। आचार्यों को अपनी यह जिम्मेदारी समझनी चाहिए। इसके लिए निरन्तर अध्ययनशीलता आवश्यक है। आजादी के पूर्व हमारे यहाँ लोगो म अध्ययन के प्रति काफी रुचि थी। किन्तु कुछ ऐसा दीखता है कि यह रुचि अनेक कारणों से कम होती जा रही है। किन्तु ज्ञान मे यदि आचार्यों की आस्था नही होगी तो फिर हम कोई क्रान्ति नही कर सकते। शकराचार्य इतनी बड़ी क्रान्ति केवल ज्ञान के आधार पर ही कर सके थे और आज विनोबा भी ज्ञान के बल पर इतना बड़ा काम देश भर म कर पाये हैं। गाधीजी ने बुनियादी शिक्षा के माध्यम से जो बात कही थी हमने तो उस पर कोई ध्यान नही दिया, किन्तु चीन ने 'हाफ हाफ स्कूल' चलाकर उसे अपने ढग से लागू किया है। हम बिना शिक्षा म परिवर्तन किये समाज म परिवर्तन नहीं कर सकते। आचार्यकुल के माध्यम से ज्ञान व कर्म का समन्वय होगा तो फिर आचार्य की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

सत्र के प्रारम्भ मे स्वागत समिति के अध्यक्ष की बीमारी के कारण उनकी ओर से श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने प्रतिनिधियो का स्वागत करते हुए जिले मे आचार्यकुल की प्रगति पर प्रकाश डाला और शिविर के सामने उसका उद्देश्य रखते हुए कहा कि शिविर को शिक्षा तथा समाज मे व्याप्त अराजकता और किंकर्तव्यविमूढता की स्थितियों का विश्लेषण करके समाज को कोई राह बतानी होगी। यह ऐसे शिविरों और सम्मेलनों का ही काम है कि वे छात्रो, शिक्षकों और अन्य बुद्धिजीवियों मे व्याप्त कुठा और निराशा को समाप्त करें तथा उन्हे भविष्य के प्रति आस्थावान् बनायें।

द्वितीय सत्र मे श्री बहुगुणा ने सामाजिक क्रान्ति पर आचार्यकुल के दृष्टिकोण की चर्चा करते हुए कहा कि 'क्रान्ति' शब्द का आजकल हम बिना उसका सही अर्थ जाने ही उपयोग करते हैं। ऐसा अवसर शब्दों के साथ हो जाता है और इससे शब्द अपना अर्थ तथा प्रतिभा खो देते हैं। क्रान्ति, समाजवाद आदि शब्दो का आज यही हाल है। आचार्यकुल को इससे सावधान रहना होगा। क्रान्ति हमेशा मनुष्य को उसके पहले के स्तर से ऊँचा उठाती है, तभी कोई क्रान्ति, क्रान्ति कही जा सकती है। इस कसौटी पर केवल गांधीजी के द्वारा सम्पन्न क्रान्ति ही क्रान्ति कही जा सकती है।

बहस मे भाग लेते हुए त्रिवेणीगज के श्री शोभाकान्त झा ने कहा कि क्रान्ति के लिए कभी-कभी हिंसा भी आवश्यक हो जाती है। आचार्यकुल यदि

हमे यह आत्मविश्वास दिला सके कि हम बिना हिंसा के भी क्रान्ति कर सकते हैं तो यह आचार्यकुल की बहुत बडी उपलब्धि होगी। श्री विदानन्द शर्मा ने कहा कि जब तक समाज मे आर्थिक विषमता व्याप्त है तब तक कोई मूल्यात्मक क्रान्ति नही की जा सकती। उन्होने लेनिन के एक कथन का हवाला देते हुए कहा था कि यदि तुम अपने दुश्मन को जीतना चाहते हो तो उससे घृणा करना सीखो। श्री लाला सुरेन्द्र प्रसादजी ने कहा कि यह व्यर्थ का सिद्धान्त है और परिवर्तन के लिए केवल आर्थिक समानता ही काफी नही है। आज अमेरिका तथा रूस सहित सारे यूरोप मे आर्थिक दृष्टि से काफी समानता आ गयी है, किन्तु क्या वहां सर्वत्र क्रान्ति हो गयी ? वहाँ तो आज सबसे अधिक उद्विग्नता है। वहाँ से जो भ्रम फैले हैं हम तो उनसे ही ग्रस्त हैं। श्री परमेश्वरी प्रसाद मडल ने कहा कि अब असल मे डमरूवादी राजनीति का युग बीत गया है और जनसेवावादी राजनीति का युग आया है। आचार्यकुल का यह काम है कि वह हमे डमरूवादी राजनीति से मुक्त करे। यह काम केवल आचार्यकुल ही कर सकता है। सुशासन प्रशिक्षण विद्यालय के अध्यापक श्री सच्चिदानन्द सिंह ने कहा कि कोई भी क्रान्ति किसी देश की परम्परा के ही अनुरूप हो सकती है। क्रान्ति के लिए आर्थिक समानता से भी अधिक आत्म सुधार की बडी आवश्यकता है। चर्चा मे श्री लक्ष्मी भाई ने कहा कि आचार्यकुल का काम तेजी से फैलेगा तो ही देश मे असली क्रान्ति हो सकेगी।

तृतीय सत्र में श्री ललितेश्वरजी मल्लिक ने अपना विषय प्रवेश करते हुए कहा कि सर्वोदय हमारे युग की सबसे बडी चुनौती है। हम इसका क्या जवाब देते हैं, इसी पर हमारा भविष्य निर्भर करता है। शिक्षा मे बुनियादी परिवर्तन आवश्यक है और यह केवल उन्हींके द्वारा सम्भव होगा जो आचारवान और ज्ञानी होंगे। श्री मल्लिक ने कहा कि मैं नही मानता कि सर्वोदय का सर्वसम्मति का आदर्श व्यावहारिक है, किन्तु इसका कोई विकल्प भी हमारे पास नहीं है।

बहस में भाग लेते हुए श्री लाला सुरेन्द्र प्रसादजी ने कहा कि शिक्षा मे आज एक तरह का ह्रास आ गया है और जब तक यह दूर नही होगा तब तक इसके माध्यम से कोई बुनियादी परिवर्तन नही लाया जा सकता। इसमें शिक्षकों का बहुत योगदान है। वे आज केवल वेतन पर जीनेवाले मजदूर बन गये हैं और छात्र तथा समाज दोनों का विश्वास खो बैठे हैं। उन्हें छात्रों और समाज का विश्वास प्राप्त करना होगा। छात्रों मे वीर-पूजा का भाव रहता है किन्तु आज उनके सामने कोई वीर ही नही है जिसकी वे पूजा करें। पहले गुरु मे

वीर होते थे और छात्र उनसे प्रेरणा लेते थे। सुश्री शार्मी सिंहजी ने कहा कि शिक्षकों में मातृ भाव होना चाहिए। छात्रों को अपने वात्सल्य के समान देखे और अनुभव किये बिना शिक्षक उनका प्रेम और आदर प्राप्त नहीं कर सकते। आज हम शिक्षक इस दृष्टि से एकदम ही गैरजिम्मेदार हो गये हैं और शिक्षा का सारा काम केवल पैसे के लिए हो रहा है। श्रीमती कौशल्या सिन्हा ने कहा कि शिक्षा को समाज से जोड़ देना होगा तभी वह समाज की सेवा कर सकती है और उसे नेतृत्व दे सकती है। श्री सोमाकांत झा ने कहा कि हमें आर्थिक असमानता के साथ साथ अब उन सब नेताओं से भी मुक्ति प्राप्त करनी होगी जो वायदे तो बहुत करते हैं, किन्तु आचरण नहीं कर सकते। श्री परमेश्वरी प्रसाद मंडल ने कहा कि शिक्षा में परिवर्तन लाना हो तो शिक्षक के जीवन में परिवर्तन पहले आना चाहिए। श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने कहा कि शिक्षक और छात्र के बीच अब नये सम्बन्धों का निर्माण होना चाहिए लोकतांत्रिक समाज में अब वे सम्बन्ध पिता-पुत्र के बजाय सखा सखा के होने चाहिए। पितृवादी मूल्यों पर से हम किसी लोकतांत्रिक समाज की रचना नहीं कर सकते। श्री फूलदीप नारायण सिंहजी ने कहा कि किसी भी समाज की बुनियाद शिक्षक ही होता है। आज भी वही है। हमारी एकमात्र समस्या गरीबी की है। वह हल हो जाय तो शिक्षक अपना स्वाभाविक सम्मान पुनः प्राप्त कर सकते हैं। श्री सुशील राय ने कहा कि शिक्षक का आचरण संदेह से परे होना चाहिए। श्री रूपनारायण यादव ने कहा कि शिक्षकों को अब समाज के निर्माण का प्रत्यक्ष काम हाथ में लेना होगा।

चतुर्थ सत्र में श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने छात्र असंतोष, युवकों का शैक्षणिक निर्देशन और समस्या तथा समाधान पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि हमें इस युवा असंतोष को उसके ऐतिहासिक परिवेश में देखना होगा। इसके अनेक कारणों में से इसका एक बड़ा कारण यह है कि आज का आदमी शिक्षाजन्य व्यक्तित्व विभाजन से ग्रस्त है। शिक्षा ने प्रारम्भ से ही एक बड़ी भूल की है कि उसने मनुष्य की आकांक्षाओं को तो खूब बढ़ाया है, किन्तु वह उसकी क्षमताओं में कोई वृद्धि नहीं कर सकी है। इससे व्यक्ति का विखण्डन हुआ है। आज विज्ञान भी वही गलती कर रहा है और इससे यह अंत विभाजन और भी घनीभूत हो गया है। भारतीय युवकों में, खासकर इस असंतोष का कारण आर्थिक विपन्नता और भविष्य के प्रति निराशा है। किन्तु वास्तव में यह आज की विश्वव्यापी स्थिति है। पश्चिम में हमारे यहाँ से भी अधिक असंतोष और आक्रोश व्याप्त है। वहाँ एक जमाना था जब 'कम

काम और अधिक आराम' का नारा क्राति का नारा था और मजदूर वर्ग ही क्राति करता था। किन्तु अब स्थिति बदल गयी है और अब वहाँ वे लोग क्राति कर रहे हैं जो आरामभोगी हैं। अमेरिका का हिप्पी आन्दोलन, ब्रिटेन का बिटल आन्दोलन और रूस का वीची आन्दोलन इसके उदाहरण हैं।

बहस में भाग लेते हुए **श्री मोली सिंहजी यादव** ने कहा कि युवक विद्रोह के रूप म हमारे सामने जो चुनौती खडी है उसका एक बडा कारण हमारे शिक्षको का गल्त आचरण है। उनकी कथनी और करनी मे कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। राजनीति मे जो लोग हैं वे तो पहले ही समाज की निगाह से गिर चुके हैं। अब शिक्षक बचे थे तो वे भी राजनीतिज्ञो की राह लग गये और अप्रतिष्ठित हो गय है। आचार्यकुल के द्वारा श्री विनोबाजी ने हमारे सामने जो यह एक योजना रखी है हम सबकी भलाई इसीमे है कि हम इसे ईमानदारी से उठा लें। केवल यही देश को इस चारित्रिक ह्रास से बचायेगा और शिक्षक को प्रतिष्ठा दिलायेगा। **श्री ब्रजनन्दनजी मल्लिक** ने कहा कि आचार्यकुल के रूप में हमे पहली बार वाणी मिली है। आज तक हम गूंगे थे। अत अब यदि शिक्षक अपने ही छात्रों के कोप से बचना चाहता हो तो उसे निर्भय होकर शिक्षा मे बुनियादी परिवर्तन के लिए आगे आना होगा। शिक्षा मे बुनियादी परिवर्तन किये बिना हम इस युवा आक्रोश का कोई हल नहीं निकाल सकते हैं। **श्री परमेश्वरी मडल** ने कहा कि युवकों की शक्ति का स्वागत किया जाना चाहिए, किन्तु उसे रचनात्मक दिशा मिलनी चाहिए। यह दिशा केवल वे ज्ञानी और आचारवान शिक्षक ही दे सकते हैं जो छात्र के साथ रहते हैं। आज की राजनीति से शिक्षकों को बचना होगा क्योंकि यह राजनीति स्वय तो भ्रष्ट है ही, इसने देश को भी भ्रष्ट कर दिया है। **श्री दयाकान्त झा** ने कहा कि युवकों मे हमेशा श्रद्धा भाव रहता है, किन्तु उस श्रद्धा का कोई स्थल ही न हो तो वह आक्रोश मे परिणत हो जाती है। सुश्री गार्गी सिंह ने कहा कि युवको को हम कोई दोष नहीं दे सकते। वे तो वही करते हैं जो वे अपने बडो, या तो शिक्षकों या अभिभावकों या प्रशासकों या राजनेताओं को करते देखते हैं। यदि बडों का खुद का आचरण शुद्ध नहीं होता तो युवक तो भ्रमित होंगे ही।

सत्र के अत मे सम्मेलन की ओर से अतिम प्रतिवेदन तैयार करने के लिए एक समिति का गठन किया गया। समिति म सर्वश्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा (विशेष आमत्रित के रूप मे), लाला सुरेन्द्र प्रसाद, सुशील राय, शोभाकान्त झा, ठाकुर प्रसाद सिंह, सुश्री गार्गी सिंह और श्री वैद्यनाथ प्रसाद सिंह रहे। सुश्री गार्गी सिंह को समिति का सयोजक बनाया गया। समिति

में सन्नी एवं विशेष बैठक में एक प्रतिवेदन तैयार किया जो पाँचवें सत्र में सदन के विचारार्थ रखा गया और फिर विचार विमर्श के बाद सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

पंचम सत्र में प्रतिवेदन पर विचार करने और उसे स्वीकार करने के अलावा जिला इकाई का भी गठन हुआ। नीचे लिखे सज्जनों की जिला समिति बनायी गयी है :

१—श्री लाला सुरेन्द्र प्रसाद, संयोजक

२—सुश्री गार्गी सिंह, संयोजक (महिला शाखा)

३—श्री शोभाकांत झा, मंत्री

४—श्रीमती अहिल्या सिन्हा, मंत्री (महिला शाखा)

५—श्री व्रजनन्दन मल्लिक, सदस्य। अध्यक्ष, वसन्तपुर प्रखंड आचार्यकुल समिति, पो० वीरपुर

५—श्री दयाकांत झा, सदस्य। मंत्री, राघोपुर प्रखंड आचार्यकुल समिति, राघोपुर

७—श्री वैद्यनाथ प्रसाद सिंह, सदस्य। अध्यक्ष, आलमनगर प्रखंड आचार्यकुल समिति, आलमनगर

८—श्री मिश्रीलाल शाह, सदस्य। मंत्री, त्रिवेणीगंज प्रखंड आचार्यकुल समिति, त्रिवेणीगंज

९—श्री भुवनेश्वरी प्रसाद मंडल, सदस्य। आचार्य, रासबिहारी उच्च विद्यालय, मधेपुरा

१०—श्री ठाकुर प्रसाद सिंह, सदस्य। अध्यक्ष, सुपौल प्रखंड आचार्यकुल समिति, सुपौल

११—नन्दकिशोर लाल नन्दन, सदस्य। राष्ट्रपति-पुरस्कारप्राप्त शिक्षक, मधेपुरा

१२—श्री रूपनारायण यादव, सदस्य। मंत्री, कुमारखंड प्रखंड आचार्यकुल समिति, कुमारखंड

१३—श्री सियाराम यादव, सदस्य। संयोजक, सहर्षा प्रखंड आचार्यकुल समिति, सहर्षा

१४—श्री नरसिंह प्रसाद यादव, सहमंत्री। संयोजक, मधेपुरा प्रखंड आचार्यकुल समिति, मधेपुरा

समिति को यह भी अधिकार दिया गया कि वह आगे जिला समिति में और भी सदस्यों को शामिल कर लें।

प्रखंड आचार्यकुलों के पायलेट प्रोजेक्ट्स

शिविर मे चर्चाओं के बाद लोगो ने अनुभव किया कि आचार्यकुल को कोई प्रत्यक्ष कार्य हाथ मे लेना चाहिए। श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने मार्च में सभी आचार्यकुलो के नाम एक अपील भेजी थी कि वे गर्मी की छुट्टी का एक माह, जून का समय ग्रामस्वराज्य के काम के लिए दें। इस पर चर्चा हुई और सात प्रखडों ने अपने अपने क्षेत्र मे एक-एक 'पायलेट प्रोजेक्ट' लेने का निर्णय लिया। प्रत्येक प्रखड में आचार्यकुल अपनी शक्ति और सामर्थ के अनुसार इस एक माह मे अपने द्वारा चुने गये गाँवों या पचायतों मे ग्रामसभा बनाने, बीघा कट्ठा वितरण कराने, ग्रामकोष की स्थापना करने और ग्राम-शातिसेना का गठन करने का प्रयास करेंगे। इस एक माह के अनुभवो के प्रकाश मे फिर आगे के काम के बारे मे सोचा जायेगा। यह प्रस्ताव किया गया है कि हर 'प्रोजेक्ट' का सचालन आचार्यकुल के कोई वरिष्ठ सदस्य करें और अपने साथ कम से कम पाँच स्थानीय हाईस्कूल तक के छात्रो को भी काम मे लगायें। यदि यह सध सका तो इससे आगे की सभावनाएँ स्पष्ट हो जायेंगी। नीचे लिखे प्रखडो म 'पायलेट प्रोजेक्टस' प्रारभ करने का तय हुआ —

१—वसतपुर प्रखड निर्देशक—श्री ब्रजनन्दन मल्लिक, कार्यक्षेत्र—वसतपुर गाँव, २—आलमनगर प्रखड निर्देशक, श्री वैद्यनाथ प्रसाद सिंह, कार्यक्षेत्र—औराय गाँव, ३—त्रिवेणीगज प्रखड निर्देशक—श्री मिश्रीलाल शाह और श्री शोभाकान्त झा, कार्यक्षेत्र—बरजोडा पचायत, ४—राघोपुर प्रखड निर्देशक—श्री दयाकांत झा, कार्यक्षेत्र—पिपलास पचायत ५—मधेपुरा प्रखड: निर्देशक—श्री नरसिंह प्रसाद यादव और श्री सुशील राय कार्यक्षेत्र—पतराहा पचायत, ६—सुपौल प्रखड निर्देशक—श्री ठाकुर प्रसाद सिंह, कार्यक्षेत्र—बडगाँव, ७—कुमार खड निर्देशक—श्री रूपनारायण यादव और प्रखड शिक्षा पदाधिकारी कुमारखड, कार्यक्षेत्र—रहटा पचायत।

सम्मेलन के अत म अतिम सत्र के अध्यक्ष श्री भोली प्रसाद सिंहजी यादव ने अपने समापन भाषण मे कहा कि मैं इस शिविर से बहुत कुछ सीखकर जा रहा हूँ। मैं यहाँ नहीं आता तो सचमुच एक बडी बात से वचित रह जाता। मुझे आज तक यह पता नही था कि देश मे इतना बडा एक वैचारिक काम हो रहा है। यह सचमुच खेद की बात है कि हम लोग जो राजनीति के चक्कर मे पडे हैं देश को बडी-से-बडी बुनियादी बातों से एकदम अनभिज्ञ रह जाते हैं। इस राजनीति ने हमे और कोई चीज देखने-समझने मे एकदम असमर्थ ही बना दिया है। श्री विनोबाजी ने यह देश के सामने एक बहुत बडी चीज रखी

है और अब यह देश का काम है कि वह उनकी इस सलाह पर ध्यान दे और उस पर चले। तभी इस देश का उद्धार होगा। शिविर के अंत मे श्री बहुगुणा ने सभी प्रतिनिधियों का और खासकर ऐसे स्थानीय सज्जनो का आभार प्रकट किया जिनके सहयोग से शिविर सफल हो सका।

शिविर व्यवस्था :

शिविर की यह उत्साहप्रद बात रही कि उसकी सारी व्यवस्था स्थानीय लोगो ने ही उठा ली। श्री लाला सुरेन्द्रप्रसादजी, जो स्थानीय बहुद्देश्यीय उच्च विद्यालय के आचार्य हैं और जिनके भवन मे ही शिविर हुआ, के प्रयासो के ही कारण यह संभव हो सका कि शिविर के प्रतिनिधियो का तीन दिन का पूरा भोजन स्थानीय लोगो ने अपने अपने घरो मे करा दिया। नगर के श्री गौरी-शकरजी बाहेती, श्री मैनेजर कचन स्टोर्स, श्री डा० विभूतिचन्द्रजी और स्थानीय विद्यालयो के दो शिक्षक बघुओ ने अलग-अलग दिन शिविर के लोगो को भोजन दे दिया। श्री भोलीप्रसाद सिह यादव, एम०एल०ए० और श्री बाहेती ने तो समय-समय पर शिविर कार्य के लिए अपनी अपनी गाडियों की सुविधा भी कर दी।

शिविर के ही समय में सयोग से शिक्षको की राज्यव्यापी हड़ताल हो जाने और मौसम खराब हो जाने से यद्यपि लोग अधिक नही आये, किन्तु कुल मिलाकर शिविर को हम सफल कह सकते हैं। इससे खासकर मधेपुरा नगर भर मे आचार्यकुल की विचार-चर्चा होती रही, शिक्षको को विचार स्पष्ट हुआ, वे अपने-अपने क्षेत्रो मे कुछ सक्रिय हुए और आगे के लिए एक सकल्प लेकर गये। यह सब शिविर की उपलब्धि कही जा सकती है। ग्राम-स्वराज्य आन्दोलन से आचार्यकुल का सम्बन्ध जुड़े यह हमारी आज की आवश्यकता है। इस शिविर से इस ओर हमारे कदम बढ़े हैं।

शिविर की उपस्थिति

१—श्री कृष्णराज मेहता, विनोबा आश्रम सहर्षा
२—श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, सर्व सेवा सघ, राजघाट, वाराणसी
३—श्री वासुदेव प्रसाद सिंह, अवर प्रमडल शिक्षा पदाधिकारी, मधेपुरा
४—श्री लक्ष्मी प्रसाद भोले, बबई
५—श्री लाला सुरेन्द्र प्रसाद, आचार्य, बहुद्देश्यीय उच्च विद्यालय, मधेपुरा
६—सुश्री गार्गी सिंह, प्राचार्या, महिला प्रशिक्षण विद्यालय, मधेपुरा
७—श्रीमती कौशल्या सिन्हा, सहायक जिला शिक्षा निरीक्षिका, मधेपुरा
८—श्रीमती सुमित्रादेवी, मधेपुरा

९—श्रीमती चंल सिन्हा, आचार्या, कन्या उच्च विद्यालय, मधेपुरा
१०—श्रीमती मनोरमा देवी, सयोजिका (महिला शाखा), प्रखड आचार्य-कुल समिति, सौरबाजार
११—श्री सुशील राय, अनुदेशक, महिला प्रशिक्षण विद्यालय, मधेपुरा
१२—श्री सच्चिदानन्द सिंह, प्राध्यापक, प्रशिक्षण विद्यालय, सुखासन
१३—श्री कमलेश्वरी प्रसाद मडल, प्र० अ०, अभ्यास विद्यालय, मधेपुरा
१४—श्री नन्द किशोर लाल नन्दन, शिक्षक, मधेपुरा
१५—श्री नरसिंह प्रसाद यादव, सयोजक, मधेपुरा प्रखड आचार्यकुल, मधेपुरा
१६—श्री रूपनारायण यादव, मत्री, प्रखड आचार्यकुल, कुमारखड
१७—श्री प्रखड शिक्षा-प्रसार अधिकारी, कुमारखड
१८—श्री मिश्रीलाल शाह, मत्री, प्रखड आचार्यकुल, त्रिवेणीगज
१९—श्री शोभाकात झा, स० शि० हाईस्कूल त्रिवेणीगज
२०—श्री दयाकात झा, मत्री, प्रखड आचार्यकुल, राघोपुर
२१—श्री वैद्यनाथ प्रसाद सिंह, अध्यक्ष, प्रखड आचार्यकुल, आलमनगर
२२—श्री ठाकुर प्रसाद सिंह अध्यक्ष, प्रखड आचार्यकुल, सुपौल
२३—श्री ब्रजनन्दन मल्लिक, अध्यक्ष, प्रखड आचार्यकुल, बसतपुर
२४—श्री भुवनेश्वरी प्रसाद मडल, प्राचार्य, रासबिहारी उच्च विद्यालय, मधेपुरा
२५—श्री चिदानद शर्मा, प्रखड शिक्षा अधिकारी, मधेपुरा
२६—श्री ब्रजेन्द्र नारायण यादव, प्रखड शिक्षा अधिकारी, मधेपुरा
२७—श्री लक्ष्मी भाई, मधेपुरा
२८—श्री डा० महावीर भगत, मधेपुरा
२९—श्री ललितेश्वर मल्लिक, मधेपुरा
३०—श्री परमेश्वरी प्रसाद मडल, पुस्तकालयाध्यक्ष, मधेपुरा महाविद्यालय
३१—श्री भोली प्रसाद सिंह यादव, एम० एल० ए०, मधेपुरा
३२—श्री कुलदीप नारायण सिंह, स० शि०, रासबिहारी विद्यालय, मधेपुरा
३३—श्री जयदेव मराउत, मधेपुरा
३४—श्री सियाराम प्रसाद यादव, सयोजक, प्रखड आचार्यकुल, सहर्षा
३५—श्री डा० विभूति चन्द्र, मधेपुरा
३६—श्री प्रमोद कुमार प्रेम, सपादक-'सहर्षा समाचार' विनोबा आश्रम, सहर्षा

इनके अलावा स्थानीय कन्या विद्यालय की छात्राओं ने भी भाग लिया।•

शिक्षा में आमूल परिवर्तन हो

(आचार्यकुल-सम्मेलन, मधेपुरा का प्रतिवेदन)

१. शिक्षा का उद्देश्य वैयक्तिक और सामाजिक मुक्ति ही हो सकता है। शिक्षा को अपने इस पुराने दोष का, कि वह मनुष्य की आकांक्षा बढ़ाने का काम तो करती रही है, किन्तु वह मनुष्य को क्षमता मे कोई वृद्धि नहीं कर सकी है, परिमार्जन करना होगा। क्षमता और आकांक्षा मे यदि समन्वय नहीं होता है तो सग्रथित व्यक्तित्व का निर्माण नही किया जा सकता है जो कि एक स्वस्थ, विवेकवान् और न्यायनिष्ठ समाज की रचना के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से शिक्षा उस सामाजिक तकनीकी की एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने पशुत्व पर काबू पा सके और मनुष्यत्व की ओर निरन्तर प्रगति कर सके।

२. ऐसे सग्रथित व्यक्तित्व के निर्माण के लिए ऐसे व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयासो और पद्धतियों की आवश्यकता है जो मनुष्य को मनुष्यत्व की ओर अग्रसर होने मे मदद कर सके। अभी तक का समाज जिस तरह से काम कर रहा है उससे वह व्यक्तित्व के इस विभाजन को रोकने मे एकदम असफल है। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे मूल्यों का ह्रास हमारी आज की सबसे बड़ी समस्या है। मूल्य तो हमारे न्याय, स्वातत्र्य और समता के हैं किन्तु सामाजिक जीवन की सरचना मे इनका कोई स्थान नहीं बन पाया है। समाज म सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विषमता व्याप्त है। अनुकरणीय आदर्शों उदाहरणो और व्यक्तियो को निरन्तर कमी अनुभव की जा रही है। जो लोग समाज का नेतृत्व करने का दम भरते हैं उनके आचरण के कारण वे अब आस्था के पात्र नही रह गये हैं। सस्कार प्रदान करने की पद्धति, साधन और सगठन अर्थात् शिक्षा का जीवन से कोई विधायक सम्बन्ध नही रह गया है, अभिभावको या अध्यापकों या प्रशासको और युवको की नयी पीढ़ी मे परस्पर द्वन्द्व की स्थिति खड़ी हो गयी है और इस सबका नतीजा यह हुआ है कि आज हम सब अनास्था के शिकार हो गये हैं। किन्तु जीवन का सम्बल केवल आस्था ही हो सकती है। इसलिए ऐसे सगठित प्रयासो की आवश्यकता है जो तटस्थ, असम्बद्ध रहकर विवेकपूर्ण दिशा प्रदान कर सकें। शिक्षक-समुदाय का निश्चय ही इसम सर्वाधिक महत्व है। सम्मेलन की राय मे शिक्षकों को आचार्यत्व प्रदान करने, समाज मे उन्हें उच्चतम प्रतिष्ठा दिलाने और सबसे अधिक उनमे मार्गदर्शक का आत्म विश्वास पैदा करने की दृष्टि से आचार्यकुल सर्वोत्तम साधन

बन सकता है। सम्मेलन अपना यह संकल्प जाहिर करता है कि विनोबाजी के द्वारा आचार्यों का जो आवाहन किया गया है, सम्मेलन के सदस्य उनके इस विचार को समाज मे और खासकर शिक्षक और छात्र-समुदाय म प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते रहेगे।

३. सम्मेलन की राय मे सामाजिक पुनर्निर्माण की दिशा मे हमे नीचे लिखे कार्यक्रम पर तुरन्त अमल आरम्भ कर देना चाहिए —

(क) शिक्षा मे बुनियादी परिवर्तन होना चाहिए, उसे जीवन से सयुक्त कर देना चाहिए और इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा सरकारी नियन्त्रण से मुक्त हो। इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि शिक्षको और शिक्षालयो का आर्थिक दायित्व सरकार की जिम्मेदारी हो, किन्तु शिक्षा का निर्देशन आचार्यों का हो। हायर सेकेण्डरी स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था, नियत्रण और निर्देशन शिक्षकों और अभिभावको की सयुक्त जिम्मेदारी रहे और उच्चतम शिक्षा के मामले मे शिक्षक और अभिभावक के साथ ही छात्र को भी स्थान दिया जाय।

(ख) सम्मेलन यह भी अनुभव करता है कि सामाजिक और आर्थिक विषमता के जारी रहते हुए कोई विधायक (Positive) सामाजिक परिवर्तन सम्भव नही है। इसलिए विषमता समाप्त करने का दायित्व सरकार और समाज को तत्काल उठाना चाहिए। गाँवों से अन्याय, शोषण और परावलम्बन समाप्त करने की दिशा मे ग्रामीण समुदायो का सगठन करना होगा, गांवो के बुनियादी मामलो मे सरकार सहित सभी तरह के बाहरी हस्तक्षेप को एकदम खत्म या न्यूनतम करने का दायित्व ग्रामीण समुदायो को लेना होगा और सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर से आय तथा व्यय के वर्तमान अन्तर को कम करके अधिक-से अधिक १ : ५ के अनुपात म ले आना होगा। आचार्यकुल इस दिशा मे दो काम तुरन्त कर सकता है। गाँव-गाँव मे ग्रामस्वराज्य के कार्यक्रम को उठाकर ग्रामीण समुदायो का सगठन कर सकता है और अपने सगठनात्मक स्तर पर लोकशिक्षण की प्रक्रियाओं के माध्यम से समाज और सरकार में व्याप्त असमानता को खत्म करने के लिए देश का आवाहन कर सकता है।

(ग) सम्मेलन अनुभव करता है कि समाज मे निरन्तर बढती हिंसा और अराजकता भारी चिन्ता की बात है। खासतौर पर देश का युवक समुदाय उस ओर तेजी से जो प्रभावित हो रहा है यह देश के लिए खतरे की घटी है। सम्मेलन की मान्यता है कि इस हिंसा और अराजकता के लिए हमारी सामाजिक रचना के साथ-साथ देश की शासन और राजनीतिक प्रणाली भी जिम्मेदार है। भारत जैसे प्राचीन और सम्पन्न परम्परा तथा विविधतायुक्त देश मे कोई भी

बाहर से आयातित (Imported) राजनीतिक प्रणाली सफल नहीं हो सकती। सम्मेलन की यह निश्चित राय है कि संख्या पर आधारित वर्तमान राजनीतिक प्रणाली भारत जैसे देश के लिए अनुपयुक्त ही नहीं, घातक भी है। हम मानते हैं कि हमारी राजनीतिक प्रणाली को संख्या के बजाय गुण पर आधारित होना चाहिये, क्योंकि समाज की दिशा संख्या से नहीं, उसके गुणों याने उसके सदस्यों के चरित्र से निर्देशित होती है। आवश्यकता इस बात की भी है कि हम व्यक्तिगत मतभेदों को विरोध समझने की गलती न करें। परस्पर मतभेदों में समानताओं पर निगाह रखने और उस पर आधारित क्रिया पद्धति का निर्माण सम्भव है। इस दिशा में आचार्यकुल का प्रयास यह हो कि वह निष्पक्ष और तटस्थ होकर राजनीतिक प्रणालियों का विवेचन करे और नागरिकों का समय पर उचित मार्गदर्शन करे। ऐसा करते वक्त वह ध्यान में रखे कि वह युवकों के मनोभावों और क्रियाशक्ति को उचित रचनात्मक दिशा दे रहा है। स्कूलों और कालेजों में छात्र संघों और छात्र संसदों की कार्य प्रणाली में से आपसी टकराव की वर्तमान पद्धति के स्थान पर परस्पर मनाव और समभाव की पद्धतियों का विकास करना तथा छात्रों को उसका प्रशिक्षण देना इस दिशा में आचार्यकुल का अत्यन्त महत्त्व का कार्य होगा।

४—सम्मेलन ने शिक्षकों और उनकी समस्याओं के सन्दर्भों पर भी विचार किया और इस सन्दर्भ में शिक्षक संघों का आचार्यकुल से सम्बन्धों का भी विचार हुआ। सम्मेलन की राय में इन शिक्षक संघों का और आचार्यकुल का सम्बन्ध परस्पर-पूरक का है। आचार्यकुल शिक्षकों का कोई अतिरिक्त संगठन नहीं है वरन् वह तो शिक्षा और समाज की समस्याओं पर तटस्थ, निर्भीक और विवेकपूर्ण चिंतन और निर्णय तथा अमल करने का ऐसा मंच मात्र है जिसमें प्राथमिक शाला से लेकर विश्वविद्यालय तक के सभी शिक्षक समान सदस्य की भूमिका से विचार कर सकते हैं। सम्मेलन की मान्यता है कि समाज से श्रेणीवाद समाप्त होना चाहिए, किन्तु कम से कम शिक्षक समुदाय में तो यह पहले मिटे। पैसे और पद के कारण प्रतिष्ठा और सुविधा का वर्तमान रिवाज शिक्षा जगत से पहले मिटना चाहिए। आचार्यकुल इसके लिए हमें अवसर प्रदान करता है।

५—सम्मेलन में यह विचार भी सामने आया कि आजकल शिक्षक आम तौर पर समाज के प्रति उदासीन हो गये हैं। इससे उनको उचित प्रतिष्ठा मिलने में बाधा होती है। उदासीनता का कारण जहाँ एक तरफ गलत सामाजिक और आर्थिक संरचना है वहीं दूसरी तरफ स्वयं शिक्षकों में आत्म विश्वास

की कमी है। उन्हे यह विश्वास ही नही होता कि वे चाहें तो समाज को एक बुनियादी दिशा प्रदान कर सकते हैं। इसका एक और कारण यह भी है कि शिक्षा के वर्तमान ढांचे और व्यवस्था के कारण शिक्षको का प्रत्यक्ष सामाजिक जीवन से बहुत कम सम्बन्ध रह गया है। किन्तु बिना धर्म के आत्म विश्वास नहीं पनप सकता है। अत यह आवश्यक प्रतीत होता है कि विद्यालयो मे हम जिन मूल्यो की शिक्षा देते हैं समाज मे उनकी स्थापना का प्रत्यक्ष कार्य अध्यापक हाथ मे लें। वे अब समाज में 'दर्शक' की भूमिका छोडकर हिस्सेदार की भूमिका अदा करें। इसमें समाज की भी महती जिम्मेदारी है और वह यह स्वीकार करे कि समाज की प्रगति और सुरक्षा के लिए शिक्षक की सुरक्षा और सम्मान की गारन्टी प्रथम शर्त है।•

सम्पादक मण्डल :
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १९
अंक १०
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

मई, '७१

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम : मई, '७१
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

सर्वोदय-साहित्य-सेट (१९७१—१९७२)

[मई १९७१ से चालू]

रु० ७) में १२०० पृष्ठ

१—आत्मकथा : १८६९–१९२० :	गांधीजी	१)
२—बापू-कथा : १९२०–१९४८ :	हरिभाऊजी	२)५०
३—तीसरी शक्ति : १९४८–१९६९ :	विनोबा	?)
४—गीता प्रवचन	विनोबा	२)
५—गीताबोध-मंगलप्रभात	गांधीजी	१)
६—मेरे सपनों का भारत	गांधीजी	१)५०
७—संघ-प्रकाशन की एक पुस्तक		१)
		११)

वर्ष : १९
अंक : ११
जून, १९७१
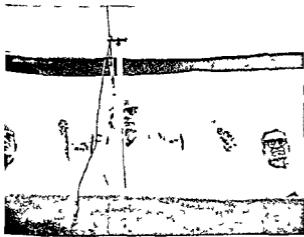
सर्वोदय सम्मेलन नासिक

श्री जय प्रकाश जी
श्री सिद्धराज ढड्ढा
प्रो० रामचन्द्र गोरा

श्रोता

हमारे सर्वोदय सम्मेलन और शिक्षा

हमारे सर्वोदय सम्मेलनो और सर्व सेवा सघ के अधिवेशनो से शिकायतें उनको भी है जो अधिवेशन की 'मुख्य धारा' मे हैं और जिनके कार्य और कार्य-पद्धति की ही चर्चाएँ इनमे होती हैं। वे भी सोचने लगे हैं कि "इन अधि- वेशनो और सम्मेलनो का रूप जितनी जल्दी बदल जाय उतना ही अच्छा होगा, नहीं तो डर है कि जो कुछ अच्छाइयाँ इनमे बची हैं, वे भी समाप्त हो जायेंगी।"

वर्ष : १६
अंक : ११

यह अपेक्षा की जाती है कि 'इन सम्मेलनो और अधिवेशनो मे आन्दोलन (ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य आन्दोलन) के हर पहलू पर अखिल भारतीय भूमिका मे चर्चा होगी और चर्चा के बाद आन्दोलन को एक सर्व-सम्मत दिशा और कार्य-पद्धति स्थिर होगी और आन्दोलन को मुख्य रीति-नीति के सम्बन्ध मे कार्यकर्ताओ को स्पष्ट मार्ग दर्शन प्राप्त होगा।' परन्तु होता ऐसा नही है। जिन पहलुओं पर चर्चाएँ होती हैं उनके अधूरी और उलझी हुई होने को बातें छोड भी दी जायँ तो आन्दोलन के कुछ ऐसे पहलू हैं जो बिलकुल अछूते रह जाते है। 'शिक्षा' उनमे से एक है। यह सब जानते हैं कि अगर ग्राम स्वराज्य को पुष्ट और प्रभावी होना है तो उसके लिए 'नयी शिक्षा' चाहिए। जिन मूल्यो

से 'ग्राम-राज्य' का पोषण होगा उन मूल्यों की 'नर्सरी' (पौध-घर) तो गाँव के स्कूल ही होंगे। ग्रामदान की प्राप्ति का एक आयाम (प्रदेश-दान के बाद) खतम हुआ और पुष्टि का दूसरा आयाम शुरू हुआ तो 'आचार्यकुल' का आन्दोलन प्रारम्भ कर शायद विनोबा इसी पक्ष पर जोर देना चाहते थे। बात साफ है कि शिक्षा को छोड़कर समग्र क्रान्ति की कल्पना सम्भव ही नही है। परन्तु 'शिक्षा' पर चर्चा न १९६९ के राजगीर सम्मेलन मे हुई और न इस बार के नासिक सम्मेलन मे और इस बीच मे सर्व सेवा सघ के जो अधिवेशन हुए हैं, उनमे भी नही हुई। हुआ है तो बस इतना कि गतवर्ष 'एक नयी तालीम समिति' बना दी गयी। (सर्व सेवा संघ अक्तूबर १९७० के वर्धा अधिवेशन मे बाजाप्ता इस समिति की स्थापना हुई और तब से इसको दो बैठकें हुई हैं।) लेकिन 'शिक्षा का प्रश्न क्या इतना अदना प्रश्न है, उसे एक समिति, भले ही वह सक्षम समिति हो, के ऊपर छोड दिया और हमारे खुले अधिवेशनो मे जिनमें देश के समस्त कार्यकर्ता एकत्र हुए हैं, उस पर चर्चा ही न हो। लेकिन हो यही रहा है।

एक दिन विनोबा ने कहा था और मैं मानता हूँ कि भावुकता में नही कहा था कि भूदान और नयी तालीम मे कोई अन्तर नही है। नयी तालीम की परिभाषा ही उन्होने की थी 'भूदान-यज्ञ-मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति', और उन दिनो सर्वोदय सम्मेलनों का काफी अधिक समय नयी तालीम पर चर्चा करने मे बीतता था। दोनों का लक्ष्य एक ही है—ऐसा बराबर कहा गया और १९५९ में जब यह अनुभव किया गया कि देश के रचनात्मक कार्यक्रमो के प्रति एक समन्वयात्मक दृष्टि-कोण अपनाने की जरूरत है, तो मात्र नयी तालीम के प्रचार और प्रसार के लिए एक अलग संगठन की आवश्यकता नही रही और हिन्दुस्तानी तालीम संघ का सर्व सेवा संघ की मुख्य धारा के साथ विलयन कर दिया गया और आर्यनायकमूजी नयी तालीम का काम बन्द कर विनोबा के साथ भूदान माँगने के लिए पदयात्रा करने लगे। अगर 'अभिन्नता' का यह एहसास न होता तो आर्यनायकमूजी ऐसा व्यक्ति, जो यह कहता था कि 'एक बार बापू चाहे नयी तालीम का काम छोड़ दें—वह नहीं छोड़ेगा', नयी तालीम का काम छोड़कर गाँव-गाँव नही घूमता। मैं यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि

एक दिन शिक्षा का हमारे आन्दोलन से अभिन्न सम्बन्ध माना गया था और सम्मेलनो और अधिवेशनो मे काफी सजीदगी के साथ उस पर चर्चा होती थी।

परन्तु १९५९ के बाद से ही सर्व सेवा सघ के अधिवेशनो, सर्वोदय सम्मेलनो मे 'शिक्षा' की चर्चा बन्द हो गयी और आज जब सर्व सेवा सघ ने अनुभव किया है कि ग्रामस्वराज्य की स्थापना मे शिक्षा की भूमिका महत्त्वपूर्ण होगी और उसके लिए पुन एक स्वायत्त सगठन बनाना चाहिए (जिसके फलस्वरूप नयी तालीम समिति की स्थापना हुई है) तब भी इन अधिवेशनो मे शिक्षा पर चर्चा नही हो रही है। और यही चिन्ता की बात है। क्या वास्तव मे हमारा आन्दोलन 'विचार-निरपेक्ष' रहेगा।

इस बार सघ अधिवेशन के कार्यकर्ताओ को सम्बोधित करते हुए जयप्रकाशजी ने कहा था कि 'आज जो शिक्षा चल रही है, उसी प्रकार की शिक्षा, उसी प्रकार के स्कूल से, तो काम चलता नही। समाज बदलना है, तो जो प्रचलित विद्यालय है उनको बदलना होगा। (उनका पाठ्यक्रम और उनकी कार्य-पद्धति बदलनी होगी।) हम चाहते हैं, कि शिक्षक, विद्यार्थी, अभिभावक और ग्रामसभा को लेकर शिक्षा मे किस प्रकार की क्रान्ति हो इस पर विचार हो, उसके अनुसार काम शुरू हो। वर्तमान शिक्षा को बदलकर ऐसी शिक्षा देनी है कि शिक्षा प्राप्त कर शिक्षित लोग कुछ उत्पादन का काम करें, समाज के ऐसे अग बनें कि भविष्य के निर्माण मे, ग्रामसभा के चलाने मे कारगर हो।' परन्तु जयप्रकाशजी के इस स्पष्ट आह्वान के बावजूद नासिक अधिवेशन और सम्मेलन मे शिक्षा पर चर्चा नही हुई।

यह ठीक है कि जब एक स्वायत्त नयी तालीम समिति बन गयी है तो ग्रामदानी गाँवो की शिक्षा की समस्या पर वह चिन्तन करे। एक आचार्यकुल भी काम कर रहा है तो वह शिक्षा के विषय पर सोचे। ये समितियाँ ही शिक्षा के विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिए अधिक सक्षम हैं और जो ये तय करेंगी और जिस नीति का निर्धारण करेंगी—वह सब सेवा सघ को मान्य होगी। लेकिन सम्मेलनो मे इतना मौका तो मिलना ही चाहिए कि इन *समितियो की ओर से निर्धारित 'शिक्षा नीति' की बातें विस्तार के*

साथ प्रतिनिधियो को बतायी जा सकें और अधिवेशन या सम्मेलन मे आये हुए सर्वसाधारण का कर्ता इन बातो पर चर्चा करें। ऐसा होगा तभी सर्व सेवा सघ की शिक्षा-नीति के विषय मे कार्यकर्ताओ को स्पष्ट दिशा मिलेगी।

एक बात और कहनी है। नयी तालीम और आचार्यकुल तो 'स्पेशलिस्ट' सस्थाएँ हैं—यह मान लेना चाहिए कि वे जो भी नीति निर्धारित करेंगी वह व्यावहारिक होगी और 'धरती से निकट सम्पर्क' रखने के बाद ही विकसित हुई होगी। फिर भी साधारण कार्यकर्ता जबतक ग्रामदान-पुष्टि और ग्राम स्वराज्य की स्थापना के रोजमर्रा के अपने काम की पृष्ठभूमि मे उस नीति की आलोचना कर उसे परख नही लेता तब तक उस नीति को व्यावहारिक नही मानना चाहिए। अधिवेशन और सम्मेलन ही के मच हैं जिनपर 'स्पेशलिस्ट समितियो' की नीतियो पर मुहर लगनी चाहिए। इसलिए समितियो के सयोजक और मत्री चाहते है अधिवेशनो और सम्मेलनो मे उनके काम की चर्चा हो, साधारण कार्यकर्ता यह जानें कि उनकी समितियाँ क्या काम कर रही हैं और उनकी कार्य पद्धति और कार्य नीति पर मुहर लगे। आज तो स्थिति यह है कि हमारे हजारो-हजार कार्यकर्ता यह नही जानते कि आचार्यकुल क्या काम कर रहा है और न यह ही जानते हैं कि नयी तालीम समिति पुन. एक स्वायत्त समिति के रूप मे काम करने लगी है।

—वंशीधर श्रीवास्तव

नये समाज की नयी शिक्षा की दिशा

धीरेन्द्र मजूमदार

स्कूलों म जो नया प्रयोग किया जा रहा है—विद्यार्थी समूह मे बैठें, विषयों पर आपस मे चर्चा करें और फिर शिक्षको के साथ भी चर्चा करें, यह अच्छी चीज है। इसका अपना स्थान तथा महत्त्व भी है। लेकिन यह शिक्षा की समस्या का हल नहीं है। इससे सिर्फ इतना होगा कि अब तक शिक्षण-संस्थाओं म केवल स्मरण शक्ति की कसरत करायी जाती थी, अब बुद्धि को भी थोडी कसरत होगी। मुख्य प्रश्न यह है कि शिक्षित मनुष्यों का समाज मे क्या रोल (भूमिका) होगा? आज उसका केवल एक ही रोल है और वह है व्यवस्था का। इसलिए शिक्षा मैनेजरीयल रोल (व्यवस्था की भूमिका) अदा करने लायक बनायी गयी है और यह पद्धति सार्वजनिक मांग और आकांक्षा के अनुरूप है। इस देश मे काम की प्रतिष्ठा नही है, इसलिए शिक्षा पाने का ध्येय व्यवस्थापक वर्ग मे दाखिल होना ही है। कृषि कालेज का स्नातक भी खेती करना नहीं चाहता। वह फार्म-मैनेजर बनना चाहता है। वहाँ भी शिक्षा का प्रकार उसी ढग का बनाया गया है कि अगर वह फार्म-मैनेजर नहीं बन सका, तो अपने से खेती करके गुजारा न कर सके।

लोकतंत्र की शिक्षा से न्यूनतम मांग

आज जमाना लोकतंत्र का है। लोकतंत्र मे हर बालिग स्त्री पुरुष को वोट का अधिकार है। अगर इस अधिकार को न्याय देना है, तो हर बालिग स्त्री पुरुष को इतनी शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे वह चुनाव घोषणा पत्र पढ सके और उसे समझ सके। शिक्षा से लोकतंत्र की यह न्यूनतम मांग है। यही कारण है कि आज कम से-कम मैट्रिक तक सबको शिक्षा मिले, यह आवाज उठ रही है। जब सबको इतनी तालीम दी जायेगी और वह तालीम व्यवस्थापकीय काम के लिए होगी, तो फिर यह समस्या उत्कट रूप से समाज के सामने पेश होगी कि ये शिक्षित लोग करेंगे क्या? आखिर सब तो मैनेजर नही बन सकते। आज देश के अधिकारी कह रहे हैं कि वे पांच लाख को काम देंगे। वे कितना भी काम दें, वह व्यवस्थापक किस्म का होगा और उसकी एक सीमा है। उसमे जनता का बहुत कम प्रतिशत ही दाखिल होगा। इसका मतलब यह है कि शिक्षित लोगों मे निराशा आयेगी और देशभर मे निराशा प्रेरित उपद्रव होंगे। यह हो भी रहा है। इसलिए आपको शिक्षा के

इस पहलू पर गभीरता से सोचना पडेगा कि व्यवस्थापकीय कार्य मे कितने लोग लगेंगे ? जब तक आप इस प्रश्न पर निर्णय नही कर लेंगे, तब तक शिक्षापद्धति मे सुधार की बात चाहे जितनी सोचें, उसकी कोई निष्पत्ति नहीं होगी।

आपका प्रश्न है कि इसके लिए कौन मार्गदर्शन करेगा ?' समझना चाहिए कि वही मार्गदर्शन करेगा, जिसने वास्कोडिगामा का मार्गदर्शन किया था। उसे दिशा मालूम थी, मार्ग स्वय खोजना पडा था। उसी तरह समस्या आपके सामने है। मार्ग आपको ही यानी शिक्षाविदो को ही खोजना होगा।

शिक्षक मार्गदर्शक बनें

जब शिक्षा और शिक्षक की बात करते हैं तो आज की दुनिया की गभीर समस्या पर भी विचार करने की जरूरत है। आज देश मे नेतृत्व नही है, क्योकि नेता नही हैं। पहले जो नेता थे, वे सब स्वराज्य के बाद प्रतिनिधि बन गये। प्रतिनिधि नेता नही हो सकता, क्योकि उसे जनमत का अनुसरण करना पडता है। उसकी भूमिका वही है। नेता का काय दूसरा है। उसे परिस्थिति के अनुसार जनमत का निर्माण करना पडता है। जनमत मूलतः रूढिग्रस्त होता है और काल निरतर प्रवाहित है। इसलिए परिस्थिति और समस्याएँ नित्य परिवर्तनशील होती है। नेता का काम यह होता है कि वह जनमत को काल की गति के साथ कदम मिलाने मे मार्गदर्शन करे अर्थात् जनमत के आगे चले। विनोबाजी, जयप्रकाशबाबू या चद सर्वोदय कार्यकर्ताओ को छोड दीजिए, जो विचार दे सकते हैं। इतने बडे देश मे इतने थोडे लोगों से नेतृत्व उपलब्ध नही हो सकता है। इसलिए विनोबाजी आचार्यकुल की आवश्यकता पर इतना जोर देते हैं। इसीलिए वे चाहते हैं कि शिक्षा और शिक्षक राजनीति से ऊपर हो, ताकि वे प्रतिनिधियो के अधीन न रहें। आप पूछ सकते हैं कि आज शिक्षक सरकारी तत्र के नीचे दबे हुए हैं, फिर वे आचार्यकुल बनाकर जनमत स्वतत्ररूप से कैसे निर्माण कर सकते हैं ? शिक्षक को इस स्थिति के लिए निश्चय ही सघर्ष करना होगा। आचार्यों का समाज में जो स्थान होना चाहिए, उस स्थान पर अगर वे नहीं पहुँच सकेंगे, तो नेतृत्व के अभाव मे दिशाभ्रष्ट होकर समाज का नाश हो जायेगा और वह हो रहा है।

वस्तुत आज के जमाने मे दो ही प्रतिष्ठानो की आवश्यकता है, समाज और शिक्षक। क्योकि यह युग समाजवाद का है। समाजवाद कुछ व्यक्तियो की कल्पना या उद्घोष मात्र नहीं है, बल्कि यह इन्सान की प्रगति का एक स्टेज

(अवस्था) है। पुराने जमाने म यानी अधकार युग मे जब चेतन समाज बहुत थोडा था, तो समाज का कार्य कुछ व्यक्ति करते थे। एक राजा, एक गुरु, एक पुरोहित समाज को चलाता था, शिक्षित करता था कल्याण काय के लिए प्रेरित करता था या सहायता करता था। ज्ञान विज्ञान की तरक्की के साथ यानी चेतना के विकास के साथ समाज का दायरा बढने पर कोई भी व्यक्ति अपनी शक्ति से समाज की आवश्यकता को पूरा नही कर सकता था और न उसे चला सकता था। तब समाज म फक्शनल एजेसी' (काय का माध्यम) व्यक्ति के स्थान पर सस्थाएँ बनी। सब काम सस्थागत बन गये। आज व्यक्तिवाद से आग बढकर इसान सस्थावाद पर पहुँचा है। आज का समाज राज्य सस्था शिक्षण सस्था तथा सेवा सस्था के सहारे चल रहा है। लेकिन ज्ञान विज्ञान के अति प्रसार के कारण तथा लोकतत्र और समाजवाद के उद्घोष के कारण जन मानस में सार्वजनिक चेतना का सचार हो रहा है ऐसी स्थिति म राज्यसहित सभी सस्थाएँ पूरे चेतन समाज तक पहुँचने के लिए छोटी पड रही हैं। अतएव, आज वे मनुष्य को सस्थावाद से भी आगे बढकर समाजवाद पर पहुँचना होगा। अर्थात् समाज कैसे अपने आप फक्शन (काम) करे, इसका मार्ग खोजना पडेगा। आज जब जड यत्र भी आटोमेशन (स्वय सचालन) की ओर तेजी से बढ रहा है तब चेतन समाज तत्र आटोमेशन से पीछे कैसे रह सकता है ? विनोबाजी तत्र मुक्ति तथा सर्वसम्मति के विचार पेश करके इसान को इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता के प्रति सकेत कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिति मे इसान के लिए नेतृत्व ही एकमात्र सहारा रह जाता है। अगर समाज को फक्शन करना है, तो सामाजिक शक्ति एकमात्र सर्वसम्मति ही हो सकती है। समाज से बाहर या समाज के ऊपर व्यक्ति या सस्था भले ही दडशक्ति से सचालन कर लें, लेकिन जब समाज को अपने आप फक्शन करना होगा तब वह काम दडशक्ति से नहीं हो सकता। उसके लिए तो सम्मति शक्ति का ही विकास करना होगा। दडशक्ति का साधन शस्त्र है और साधक सैनिक। लेकिन सम्मति शक्ति का साधन शिक्षण है और साधक शिक्षक।

अतएव शिक्षक-समाज यह कहकर चुप नहीं बैठ सकता कि वह राज्यतत्र के नीचे दबा हुआ है। उसे सघर्ष करके शिक्षा के लिए जुडिशियरी स्टेटस (न्यायपालिका की प्रतिष्ठा) हासिल करना होगा। आज जब शिक्षक सघ अखिल भारत पैमाने पर तनख्वाह बढ़ाने जैसी छोटी बात के लिए हडताल आदि शातिमय प्रतिकार का सगठन कर रहा है तो उसके लिए क्या शिक्षा का

स्वतन्त्र स्टेटस हासिल करने के लिए संघर्ष करना मुश्किल है? इतने बड़े सिद्धांत के लिए अत्यन्त छोटी बात का त्याग करना क्या असंभव है? आवश्यकता है स्थिति को परखने की, परखने के प्रयास की और परिस्थिति के अनुसार नेतृत्व करने की आवश्यकता के एहसास की।

बदलती परिस्थिति मे शिक्षा पद्धति

शिक्षण के संदर्भ मे एक और बड़ी परिस्थिति का विचार करने की जरूरत है। पिछले दो हजार वर्षों में विज्ञान और टेकनालाजी (तकनिकी) का जितना विकास हुआ था, उससे कहीं अधिक विकास हाल के दो-सौ वर्षों मे हुआ है और पिछले दो-सौ वर्षों मे जितना विकास हुआ था, उससे कई गुना अधिक पिछले बीस सालो में हुआ है। उसी हिसाब से जमाना बदलता रहा है और आज जमाने की परिस्थिति और इन्सान की मन स्थिति इतनी तेजी से बदल रही है, एक पीढ़ी और दूसरी पीढ़ी की खाई इतनी अधिक बढ़ गयी है कि एक दूसरे को पहचानना भी मुश्किल हो गया है। पुराने जमाने मे कई पीढियों तक परिस्थिति करीब करीब समान रहती थी। इसलिए पिता के अपने जीवन के अनुभव का लाभ पुत्र के जीवन को मिलता था और गुरु के अनुभव से शिष्य का मार्गदर्शन होता था। तब शिक्षण की रूपरेखा उस समय के वर्तमान समाज के प्रकार के आधार पर बन सकती थी, लेकिन आज शिक्षक को द्रष्टा बनना पड़ेगा। आज उसके हाथ मे जो बच्चा आता है, वह कम से कम सोलह वर्ष बाद प्रौढ़ होकर जीवन मे प्रवेश करेगा। परिवर्तन की वर्तमान गति को देखते हुए सोलह वर्ष बहुत लम्बी अवधि है। अगर शिक्षा-पद्धति वर्तमान परिस्थिति के सन्दर्भ मे बनायी गयी और उसी भूमिका मे उसके शिक्षण का क्रम चला, तो सोलह वर्ष बाद वह बच्चा जीवन संघर्ष मे पराजित होगा। क्योंकि तब तक समाज बहुत बदल चुका होगा। इसलिए शिक्षाविद् और शिक्षक को इस ढंग से शिक्षाक्रम को सजाना होगा, जिससे बच्चा आगे आनेवाले जमाने मे सफल नागरिक बन सके। अर्थात् शिक्षा और शिक्षक को अत्यन्त दूरदृष्टि रखनी होगी। इसलिए आवश्यक है कि वे वर्तमान हलचल से ऊपर रहें।

विज्ञान का अभिशाप : शिक्षण का कर्तव्य

ऊपर जो कहा कि आज जो शिक्षण चल रहा है, वह मैनेजर बनाने के लिए है, उस सिलसिले म देश की एक अत्यन्त खतरनाक मन स्थिति की ओर भी ध्यान देना होगा। अति प्राचीन काल में जब उत्पादन के औजार बहुत निम्न स्तर के थे, तब मनुष्य को अपनी आवश्यकता की पूर्ति मे ही अत्यन्त कठिन श्रम करना पड़ता था। आराम के लिए उसके पास अवकाश नहीं था।

स्वभावत, उसको इस कठिन श्रम से मुक्ति की चाह बनी थी। इसी चाह ने उत्पादन के यन्त्र में सुधार की दिशा में ज्ञान-विज्ञान का उपयोग किया। हस्त-उद्योग से शुरू होकर शक्ति-संचालित बड़े बड़े उद्योगों तक कल-कारखानों का ग्राविष्कार हुग्रा। उससे ग्रागे बढ़कर ग्राज उद्योग ग्रभिनवीकरण स्वय-संचालन (ग्राटोमेशन) साइबरनेटिक्स (विज्ञान-शाखा) तक पहुँच गये हैं। ग्राटोमेशन में यन्त्र चलानेवाले की ग्रावश्यकता नहीं रहती, लेकिन बटन दबानेवालों तथा दूसरे दिमाग से काम करनेवालों की जरूरत तो रहती है। साइबरनेटिक्स (विज्ञान-शाखा) में उनकी भी जरूरत नहीं रहती, मस्तिष्क का काम भी कम्प्यूटर से सध जाता है। इस तरह साइबरनेटिक्स के कारण उत्पादन के क्षेत्र में सब लोग खाली होते चले जा रहे हैं। विशेषज्ञों का तो कहना है कि पूरे ग्रमरीका के उद्योगों के लिए केवल तीन सौ व्यक्ति पर्याप्त हैं, तो हिन्दुस्तान के उद्योगों के लिए कितने मनुष्य चाहिए, यह सहज ग्रनुमान लगाया जा सकता है। शायद पचास पर्याप्त हों। मनुष्य की काम से मुक्ति पाने की ग्राकांक्षा ने केवल उत्पादन के क्षेत्र को ही प्रभावित किया है, ऐसी बात नहीं है। कम्प्यूटरों की प्रगति के कारण ग्राज भारत में जो मैनेजर बनाने की शिक्षा दी जा रही है, वे मैनेजर भी ग्रपने काम से मुक्त होंगे। थोड़ा ग्रौर ग्रागे बढ़कर विचार करेंगे तो स्पष्ट होगा कि टेलिविजन के विकास से शिक्षकों की ग्रावश्यकता भी खत्म होती जायेगी। एक शिक्षक एक भाषा के एक क्लास के तमाम विद्यालयों के लिए काफ़ी होगा। विज्ञान जिस रफ्तार से प्रगति कर रहा है, उसे देखते हुए टेलिविजनों के 'टू वे ट्रैफिक' (दोनों तरफ से व्यवहार) बनना कोई ग्राश्चर्य की बात है क्या? तब विद्यार्थियों के प्रश्नों के उत्तरों की भी व्यवस्था हो सकेगी। कहा जायेगा कि मनुष्य ने विज्ञान की ग्राराधना कर तथा उसे संतुष्ट कर काम से मुक्ति का वरदान देने की प्रार्थना की, तो विज्ञान ने सहज भाव से कहा, 'तथास्तु'।

लेकिन इस वरदान का नतीजा क्या हुग्रा? एक ग्रोर विज्ञान की प्रगति के ये नतीजे हैं ग्रौर लोकतन्त्र ग्रौर समाजवाद के विचार के प्रसार से समानता का मानस तीव्र से तीव्रतर होता चला जा रहा है। ग्रर्थात् ग्राज की ग्रावश्यकता यह है कि काम न करनेवाले ग्रौर करनेवाले के रूप में दो वर्ग न रहें, सब समान रहें, यानी समाज में ग्राज ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि या तो कोई काम न करे, या सब काम करें। ग्रगर कोई काम न करे कहें, तो ग्रवकाश की उत्कट समस्या पैदा होती है। संसार की सभी चीजों की तरह ही ग्रवकाश भी 'ला ग्राफ डीमिनिशिंग रिटर्न' (ह्रासानुक्रम के नियम) से मुक्त नहीं। ग्रवकाश

के रचनात्मक इस्तेमाल की भी एक सीमा होगी, जिसके बाद इसका इस्तेमाल ध्वंसात्मक ही होगा। फिर दुनिया कहाँ रहेगी ?

इस तरह अगर 'कोई काम न करें' का सिद्धान्त असम्भव है, मानव समाज को ध्वंस करने का वह साधन है, तो किस प्रकार से सब काम कर सकें, यह उपाय खोजना होगा। अतएव उत्पादन के औजार और साधनों को ऐसा बनाना होगा, जिससे हर हाथ में काम रहे, लेकिन साथ साथ काम से शरीर को आराम और मन को आनन्द मिले। यह तभी हो सकता है जब उत्पादन की प्रक्रिया ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति का माध्यम बने, जब उत्पादन सांस्कृतिक विकास के साधन के रूप में इस्तेमाल हो, क्योंकि जब सबको शिक्षित बनाना है और सब शिक्षितों को हाथ से काम करना है, तो कोई भी व्यक्ति आज का चरखा और चक्की नहीं चलायेगा। आज का चरखा चक्की चलाकर ड्रजरी (निरस श्रम) में नहीं पड़ेगा। इसलिए शिक्षाविद् और शिक्षक शिक्षण पद्धति की बात सोचते हैं तो उन्हें इस बुनियादी तथ्य को ध्यान में रखना होगा और किसी न-किसी रूप में उत्पादन तथा वैज्ञानिक खोज को शिक्षा से समन्वित करना होगा। जब विज्ञान मनुष्य को चन्द्रमा पर पहुँचा सकता है तो उसके लिए क्या यह असम्भव है कि चक्की चलाने की प्रक्रिया में वीणा की झंकार सुनायी दे ? आज चूंकि सभी लोगों की आकांक्षा काम से मुक्त होने की है, तो मनुष्य के लिए विज्ञान का उपहार 'साइबरनेटिक्स, कम्प्यूटर और टेलिविजन सेट्स' हैं। लेकिन जिस दिन मनुष्य की आकांक्षा यह हो जायेगी कि सबको काम करना है तो विज्ञान भी इन्सान को उसी प्रकार के साधन मुहैया करेगा। अतएव शिक्षा के सामने यह एक बड़ी जिम्मेदारी है कि वह समाज की काम न करनेवाली आकांक्षा को बदले।

इस तरह देश के शिक्षा जगत के सामने एक अत्यन्त कठिन जिम्मेदारी उपस्थित हो गयी है—वह है समाज को सर्वनाश से बचाने की जिम्मेदारी। आचार्यकुल का संगठन और प्रगति ही आज की चुनौती का उत्तर है। शिक्षा-विदों और शिक्षकों को गम्भीरता से इस जिम्मेदारी की तरफ ध्यान देना होगा।
(सहरसा (बिहार) जिला शिक्षाधिकारियों के सामने किया प्रवचन)

क्या आपका स्कूल बेसिक स्कूल है ?

वशीधर श्रीवास्तव

क्या स्कूल का काम प्रारम्भ होने के पहले आपके स्कूल के बच्चे नित्य नियम से अपनी कक्षा की सफाई का काम स्वय करते हैं ? क्या कक्षा मे बैठने के पहले, वे अपने बैठने के स्थान को झाड पोछकर अपने आसन को सुरुचिपूर्ण ढग से सजा लेते हैं ? अपनी कक्षा की सफाई के अतिरिक्त क्या वे नियम पूवक सप्ताह म एक बार स्कूल क दूसरे बच्चा के साथ मिलकर अपने स्कूल के अहाते की सफाई और महीने म एक बार अपन पास पडोस की सफाइ कर लेते हैं ? क्या सफाई और सुरुचिपूर्ण व्यवस्था का यह काम उनके विद्यार्थी जीवन का अभिन्न अग बन गया है– ऐसा अग जो उनके सारे जीवन को सुरुचिपूर्ण और सफाई-पसन्द बना देगा और सफाई करनेवालो के प्रति अनुराग भर देगा ? यदि हाँ, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है।

सफाई और व्यवस्था के इस काम को आपको बालको से प्रजातात्रिक ढग से करवाना चाहिए। इस काम के लिए सफाई समिति बना लीजिए। इस समिति के मत्री और उपमत्री हो। नियमपूर्वक उनका चुनाव हो। प्रति मास इस समिति का पुन निर्वाचन हो जिससे अधिक से अधिक लडको को काम करने का अनुभव प्राप्त हो सके। आपको सफाई के इस काम को प्रोत्साहन देना चाहिए। एक सप्ताह तक जिस कक्षा का कमरा सबसे सुरुचिपूर्ण ढग से सजा हो उसे पारितोषिक दीजिए जिससे लडको मे स्वय स्पर्धा का भाव जगे। यदि आप एसा करते हैं तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है।

स्कूल का काम प्रारम्भ होने के पहले क्या आपके स्कूल के लडके नित्य नियम स श्रद्धा-पूर्वक प्रार्थना करते हैं ? ऐसी प्रार्थना जिसका सम्बन्ध किसी विशेष धम 'मजहब' से नही वरन जिसका सम्बन्ध शील और आचार से है, मानव जीवन को उच्च और पवित्र बनाने से है और जिससे बच्चो मे दूसरो के लिए त्याग और बलिदान की भावना आती है, दूसरो से प्रेम करने और दूसरो को सुखी बनाने के लिए हँसते हँसते मर जाने की भावना आती है। अपने देश के लिए और अखिल विश्व के लिए आत्म बलिदान की भावना आती है। क्या आपके स्कूल की प्रार्थना का यह कार्यक्रम श्रद्धा और उत्साह की सीढी बनकर विद्यार्थी के जीवन में रम गया है और उसके जीवन को प्रतिपग पर शील और सयम की ओर, सुन्दर आचार और विचार की ओर, प्रेम और

शान्ति की ओर अग्रसारित करता है ? यदि हाँ तो आपका स्कूल सचमुच बेसिक स्कूल है। बेसिक स्कूल मे जहाँ खेती और कारखाने का उत्पादन-सृजनात्मक वातावरण होना चाहिए वहाँ प्रेम, शाति श्रद्धा, शील और सयम का भी वातावरण होना चाहिए। नित्य एक साथ बैठकर शा त मन से प्रार्थना करने मे अपने मन और आचार को पवित्र बनाने की इच्छा व्यक्त करने मे एकता भाईचारा और सयम के लिए प्रतिश्रुत होने मे, शक्ति और शान्ति का जो रहस्य छिपा है, आपका स्कूल जितना जल्द इस रहस्य को समझेगा उतना जल्द ही वह अच्छा बेसिक स्कूल बन सकेगा। प्रार्थना का यह काम उपचारमात्र न होकर जीवन का प्रेम मत्र होना चाहिए।

क्या आपके स्कूल के सब बच्चे एक साथ बैठकर भोजन या दोपहर का नाश्ता करते हैं ? और इस सम्बन्ध मे स्थान की सफाई, नाश्ता अथवा भोजन परोसना, बरतन साफ कर यथास्थान रखना और पीने के लिए स्वच्छ पानी का प्रबन्ध करना आदि सब काम क्या वे स्वय समितियाँ बनाकर बारी-बारी से करते हैं ? यदि हाँ तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है। इस प्रकार सबका साथ बैठकर नाश्ता या भोजन करना बेसिक स्कूल की अनिवार्य प्रवृत्ति होनी चाहिए। गाधीजी ने तालीम द्वारा जिस सामाजिक क्रान्ति की बात कही है इस तरह का खान पान उसकी ओर बढने का एक मजबूत कदम है।

क्या आपके स्कूल मे बालकों के स्वास्थ्य निरीक्षण का प्रब ध है ? क्या आपके स्कूल मे बालकों को स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमो से अवगत कराने और उनको स्वास्थ्य सम्बन्धी सलाह देने का नियम है ? क्या आपके स्कूल मे लडको द्वारा खुद अपने गदे कपडे साफ करने और गदे होने पर स्नान आदि करने का और इस सम्बन्ध मे उचित सलाह और सहायता देने का प्रबन्ध है ? क्या इस प्रकार का कार्यक्रम आपके पाठशाला सगठन का अभिन्न अग है ? यदि हाँ, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है।

बेसिक स्कूल के बच्चे आपके पास राष्ट्र की धरोहर हैं। उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखना आपका सबसे बडा कर्तव्य है। हमारा देश गरीब है और हमारे अधिकाश बच्चों के अभिभावक स्वास्थ्य के नियमों से अपरिचित हैं और उनके पास इतना पैसा नहीं है कि नित्य अपने बच्चों को साफ कपडे पहना कर स्कूल भेज सकें। अत बेसिक स्कूल म लडको के बाल साफ करने, नाखून काटने, स्नान करने और गन्दे कपडे साफ करने का प्रबन्ध होना चाहिए। बच्चे

नियम से अपने गन्दे कपड़ो मे सावुन लगायें अथवा उन्हें सज्जी या रेह से साफ करें। उन्हें कपड़े धोने की शिक्षा दी जाय।

क्या आपके स्कूल मे बागवानी, खेती, कताई बुनाई गत्ते का काम, बढ़ईगिरी आदि समाजोपयोगी, उत्पादक उद्योग धन्धों को सीखने सिखाने की सुविधा है ? क्या इन उद्योग धन्धो के वैज्ञानिक शिक्षण के लिए योग्य प्रशिक्षित अध्यापकों और पूर्ण सज्जा सामग्री और कच्चे माल का प्रबन्ध है ? क्या आपके विद्यार्थी उद्योग सम्बन्धी क्रिया कलापो का पूरा लेखा जोखा एव तत्सम्बन्धी ग्राफ और चार्ट रखते हैं ? यदि हाँ, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है।

क्या आपके स्कूल मे उद्योगों के वैज्ञानिक शिक्षण का प्रबन्ध है ? अर्थात् स्कूल मे आप जो भी उद्योग सिखाते हैं क्या उसकी प्रत्येक क्रिया का 'क्यो और कैसे' बच्चों को समझाया जाता है ? अर्थात् क्या आपका विद्यार्थी उद्योग-सम्बन्धी प्रत्येक क्रिया के बौद्धिक पक्ष को समझता है ? यदि हाँ, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है।

क्या आप जो भी क्रिया करते हैं अपने विद्यार्थियो की सहायता से उसकी योजना पहले बना लेते हैं और विद्यार्थियों की क्षमता के अनुसार कार्य वितरण करके काम प्रारम्भ करते है ? और काम करते समय क्या आपके बालको के सामने पूरी योजना का सम्पूर्ण सश्लिष्ट चित्र उपस्थित रहता है और प्रत्येक बालक उस सश्लिष्ट चित्र मे अपने स्थान और काम को जानता है ? योजना के कार्यान्वयन मे जिन औजारो और वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी क्या आपके विद्यार्थियों ने पहले से ही उन्हें जुटा लिया है और किस क्रम से काम किया जायगा, यह तय कर लिया है ? क्या योजना के कार्यान्वयन में आपके विद्यार्थियों को प्रयोग करने का और गलती करके सुधारने और सीखने का पूरा अवसर मिलता है ? और, क्या कार्यान्वयन के बाद आप उन्हे इस बात का अवसर देते हैं कि वे अपने काम को परखें और देखें कि उन्ह उसमे कितनी सफलता मिली है और कितनी कोर-कसर रह गयी है ? यदि इन प्रश्नों का उत्तर हाँ है, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है।

क्या उत्पादक उद्योग-धन्धो के वैज्ञानिक शिक्षण के फलस्वरूप जो उत्पादन होता है उसकी खपत का उचित प्रबन्ध है ? क्या आपके विद्यार्थी इस उत्पादन का नियमित लेखाजोखा रखते हैं ? और क्या उन्हें इस बात का एहसास है कि स्कूल मे जो उत्पादन होता है, उसके प्रथम उपभोक्ता वे और उनके साथ काम करनेवाले उनके अध्यापक हैं ? क्या वे जानते हैं कि जो कुछ वे पैदा

कर रहे हैं उनपर उनका और उनकी कक्षा का अधिकार है ? यदि उनमें ऐसी भावना आ गयी है तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है ।

क्या आपके स्कूल के छात्र आपके स्कूल के संगठन के अन्तर्भूत अंग हैं ? अर्थात् आपकी पाठशाला का संचालन आपके बच्चों की अपनी सरकार के द्वारा होता है ? क्या आपके स्कूल में बच्चों की अपनी सरकार यानी 'बालसभा' है जिसकी नियमित रूप से निर्वाचित समितियाँ और मंत्रीमंडल हैं जो स्कूल के सारे काम का संचालन प्रजातान्त्रिक ढंग से करते है ? और क्या आपके स्कूल में चुनाव का ऐसा प्रबन्ध है जिससे कक्षा के प्रत्येक बालक को समितियों अथवा मंत्रीमंडल का सदस्य बनने का अवसर मिल जाता है, जिससे प्रत्येक बालक को उत्तरदायित्व निभाने का, अपने कर्तव्य को समझने का और प्रजातान्त्रिक ढंग से काम करने का अवसर मिले ? यदि हाँ, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है ।

क्या आपके स्कूल में बच्चों की ऐसी सहकारी दूकान है जहाँ उनकी जरूरत की सब चीजें उन्हें मिल जाती हैं ? क्या उनके स्कूल में सहकारी बैंक है ? और क्या वे इस दूकान और बैंक का सारा काम एक शैक्षिक योजना की तरह चलाते हैं और इसके लाभ हानि के उपभोक्ता हैं ? यदि हाँ, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है ।

क्या आपके स्कूल में विद्यार्थियों के लिए पर्यटन, गोष्ठी, स्काउटिंग, अभिनय, वाद विवाद आदि सांस्कृतिक और रचनात्मक क्रिया-कलापों का प्रबन्ध है जिनमें बालक अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भाग लेकर अपने व्यक्तित्व का विकास करते है ? इस प्रकार के क्रिया-कलापों का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास की दृष्टि से बड़ा मूल्य है । अतः आपके स्कूल में इन कार्य-कलापों के लिए उचित प्रबन्ध है ? यदि हाँ, तो सच्चे अर्थ में आपका स्कूल बेसिक स्कूल है ।

क्या आपके स्कूल में विद्यार्थी समाज सेवा सम्बन्धी प्रसार-कार्यो द्वारा अपने पास-पड़ोस के समुदाय के निकट-सम्पर्क में आते हैं । अर्थात् क्या आपका स्कूल गाँव समुदाय अथवा पास-पड़ोस के लोगों के लिए किये जानेवाले सारे विकास कार्यों का केन्द्र है ? क्या आपका स्कूल यह प्रयत्न करता है कि गाँव और मुहल्लेवाले आपके स्कूल में एकत्र होकर, स्कूल के रचनात्मक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लें ? संक्षेप में, क्या आपके स्कूल से समुदाय के लिए ज्ञान और प्रगति की किरणें सतत विकिरण होती रहती हैं । क्या इस

क्या इस प्रकार का प्रसार कार्य जिससे समुदाय का विकास हो आपके पाठ्यक्रम का अन्तरंग है ? यदि हाँ, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है ?

क्या आपके स्कूल मे इस बात का प्रयास किया जाता है कि बालक को जो बौद्धिक ज्ञान दिया जाय उसे बालक के जीवन और उनके क्रिया-कलापो से सम्बन्धित करके दिया जाय अर्थात् क्या आपका स्कूल यह चेष्टा करता है कि बालक किताबो से रटकर सीखने के स्थान पर स्वयं अपने हाथ से काम करके और स्वयं अपने आप निरीक्षण और प्रयोग करके अपने अनुभवों से सीखे ? यदि बालक इस प्रकार सीखता है तो उसे जो ज्ञान प्राप्त होता है वह सहज-प्राप्त ठोस और टिकाऊ होगा और तब आप अपने स्कूल को बेसिक स्कूल कह सकते हैं।

क्या आपका स्कूल यह प्रयास करता है कि स्कूल के विद्यार्थियो को उनके प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण का सम्यक ज्ञान हो ? अर्थात् आपके स्कूल के विद्यार्थी प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के नियमो और तथ्यो को समझकर अपने और अपने समाज के जीवन को अधिक सम्पन्न बना सकें ? यदि हाँ, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है।

क्या आपके स्कूल मे विद्यार्थियों को समाजोपयोगी उत्पादक कामों की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनमे अपना काम अपने हाथ से कर लेने की और अपने पैरों पर खड़े हो सकने की क्षमता का विकास हो और वे अपने समाज के जिम्मेवार, उपयोगी सदस्य बनकर समाज की प्रगति मे भाग ले सकें ? अर्थात् क्या आपका स्कूल अपनी व्यावहारिक शिक्षा द्वारा अपने विद्यार्थियों मे स्वावलम्बन की मनोवृत्ति का सृजन कर आत्मनिर्भरता की भावना भरता है ? यदि हाँ, तो आपका स्कूल बेसिक स्कूल है।

नयी तालीम समिति की गोष्ठी-रिपोर्ट

(१६-१७ जनवरी '७१ को राजभवन ग्रहमदाबाद में हुई नयी तालीम समिति की चर्चा का सारांश)

समिति के भविष्य के कार्यों पर बातचीत हुई और सभी उपस्थित सदस्यो ने बातचीत मे भाग लिया।

अध्यक्ष ने बातचीत की शुरुआत की। उन्होने कहा कि समय आ गया है कि नयी तालीम समिति पूर्ण रूप से देश मे शिक्षा के पुन सगठन के बारे मे विचार करे जो नयी तालीम की दिशा मे हो। देश के सभी देहाती एव शहरी स्कूलो मे शिक्षा को नया जीवन देने के लिए 'पायलट प्रोजेक्ट' के विशेष कार्यक्रम चलाये जायें। शिक्षा-पदाधिकारियो ने सदा आर्थिक कठिनाइयाँ पेश की हैं, परन्तु यह याद रखना चाहिए कि अगर सभी सरकारी और गैरसरकारी विकास करनेवाली शक्तियाँ देहातो और नगरो के सभी स्तर मे स्कूलो के सहयोग के साथ काम करती तो बिना फिजूल आर्थिक खर्च के स्कूलो मे बहुत सारे अच्छे काम हो सकते थे। बेकारी और अध बेकारी की समस्याएँ केवल नयी तालीम के ठोस कार्यक्रमो को अपनाने से ही हल हो सकती हैं। नयी तालीम समिति को वह दिशा भी बतानी चाहिए जिसमे नगरो मे नयी तालीम आसानी से चलायी जा सके।

मार्जरी बहन ने जोर दिया कि नयी तालीम न तो कोई टेकनीक थी, न पद्धति बल्कि एक रचनात्मक विचार थी। विभिन्न स्कूलो मे स्वतत्र तरीके पर शिक्षा की उन्नति की सम्भावना होनी चाहिए, बशर्ते कि उत्पादक श्रम के मूल्य पर जोर रहे। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि स्कूलो मे परीक्षा की प्रचलित पद्धति ही शिक्षा की सभी बुराइयों की जड है। लोग समवायी शिक्षा का बड़ा ढोल पीटते हैं, मानो यह नयी तालीम की कोई खास देन हो, जबकि समवाय सभी अच्छी शिक्षा का एक ठोस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है।

श्री बनवारीलाल चौधरी ने बताया कि चूँकि भारतीय सविधान के ४५वीं अनुच्छेद अध्याय ४ के अनुसार राज्य को १४ साल तक की उम्र के सभी बच्चो को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देनी चाहिए, राज्य का उत्तरदायित्व है कि माध्यमिक स्तर तक अच्छी राष्ट्रीय शिक्षा लोगों को दी जाय। राज्य ने विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा के लिए बड़ी बड़ी मदद देकर सविधान के इस अनुदेश को पूर्ण रूप से नजरअन्दाज कर दिया है। इसलिए नयी तालीम समिति

को लोकशिक्षण के द्वारा लोगों को शिक्षण देना चाहिए कि केन्द्र और राज्यों की सरकारों से वे निवेदन करें कि वे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर पूर्णतः ध्यान दें, जो अच्छी नागरिकता की बुनियाद है।

नयी तालीम समिति का जो उद्देश्य है कि जीवन के द्वारा जीवन के लिए शिक्षा दी जाय और शोषण रहित समाज का विकास हो, इस पर चर्चा की गयी। सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि नयी तालीम समिति देश में अच्छी शिक्षा की माँग के लिए क्रान्तिकारी वातावरण के निर्माण करने का दृढ कदम उठाये। ऐसा करने के लिए समय और परिस्थितियाँ अनुकूल हुई हैं, क्योंकि विद्यार्थी आज की प्रचलित उच्च शिक्षा के विरुद्ध हैं जो उन्हें अन्धकार की ओर ले जाती हैं। अगर उनके उग्रवादी दृष्टिकोण और रचनात्मक दिशा में परिवर्तन की आकांक्षा को हम केवल सही दिशा दे सकें तो इसकी बड़ी सम्भावना है कि हमारी बात सुनी जाय। इसलिए नयी तालीम समिति को शिक्षा-पद्धति में क्रान्तिकारी समग्र परिवर्तन पेश करना चाहिए, विशेष तौर से विश्वविद्यालय के स्तर पर, और वर्तमान पद्धति में थोड़ा बहुत सुधार या जोड़ से हम सन्तोष न मानें। कुछ सदस्यों ने तो यहाँ तक कहा कि बेहतर होगा कि कुछ दिनों के लिए कालेज बन्द कर दिये जायें जब तक कि उच्च शिक्षा की कोई क्रान्तिकारी पद्धति नहीं निकलती है।

यह निश्चय किया गया कि इस विचार पर आधारित एक घोषणा पत्र तैयार किया जाय और इसे विद्यार्थियों, अध्यापकों, विधायकों और दूसरे लोगों में बाँटा जाय। श्री नारायण देसाई से निवेदन किया गया कि वह श्री आचार्लू और श्री मनुभाई पचोली के साथ मिलकर घोषणा-पत्र तैयार कर दें। यह घोषणा-पत्र नयी तालीम समिति के सदस्यों में तथा लोगों में बाँटा जायेगा, ताकि सम्मेलन में स्वीकृति से पहले वे अपनी राय दे सकें। यह राष्ट्रीय सरकार, विश्वविद्यालयों और जनता की स्वीकृति के लिए पेश किया जायेगा ताकि वह देश की राष्ट्रीय नीति बन सके।

श्री मनुभाई पचोली ने सदस्यों को गुजरात राज्य में बुनियादी शिक्षा के विकास और राज्य सरकार द्वारा नियुक्त की हुई विशेष समिति के कार्यों के बारे में बताया। गुजरात में बहुत सारे बुनियादी शिक्षा के स्कूल थे जो स्वतन्त्र और सरकारी एजेन्सियों द्वारा चलाये जाते थे और उनमें से बहुत सारे अच्छा काम कर रहे थे, परन्तु बहुत सारे स्कूलों के पास साधनों की कमी थी। बुनाई और कताई शिक्षा का महत्त्वपूर्ण भाग बन गया है। बहुत सारे उत्तर बुनियादी स्कूल हैं। जिन्होंने ठोस संगठन बना लिया है, और समाज सेवा के काम उठाये

है। परन्तु गुजरात की बुनियादी शिक्षा में प्रचलित पद्धति से समझौता करना पड़ा ताकि विद्यार्थी यू० बी० और एस० एस० सी० परीक्षा के लिए तैयार हो सकें। इसके बिना विश्वविद्यालयों में प्रवेश नहीं मिलता है। प्रशंसा की बात यह है कि यू० बी० में विद्यार्थियों ने परीक्षा में बहुत अच्छा किया। बहुत सारी आर्थिक कठिनाइयाँ थी परन्तु यह विकास के लिए सहयोग देनेवाली एजेन्सियों द्वारा हल हुई।

शहरी क्षेत्रों में उत्तर बुनियादी स्कूलों पर परामर्श माँगे गये। काफी वार्ता के बाद आम राय यह थी कि शहरी यू० बी० स्कूलों को 'कार्य शिक्षा' के केन्द्र इंजीनियरिंग, छपाई, बैंकिंग और सहयोगी संस्थाओं तथा लघु उद्योगों आदि, के रूप में प्रयोग में लाना चाहिए। विश्वविद्यालय के स्तर पर भी ऐसे तरीके निकाले जायँ ताकि विद्यार्थी उपयोगी और उत्पादक कार्य में हिस्सा ले सकें जो कि उनकी शिक्षा से सम्बन्धित हो।

श्रीमती मदालसा नारायण ने बताया कि अगर समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना है तो घरों और माता पिता के रोल के महत्त्व को समझना होगा। परन्तु हर चीज नयी तालीम के शिक्षकों की निष्ठा पर निर्भर करती है। चर्चा के दरम्यान कहा गया कि शिल्प की शिक्षा के लिए स्कूल में जो समय निर्धारित किया गया था वह कम था। इस पर मार्जरी बहन ने कहा कि स्कूलों में शिल्प के कितने वर्ग रखे जाते हैं इसमें मेरा विश्वास नहीं है बल्कि इसमें है कि शिल्प-कार्य का स्तर क्या है। अच्छे स्कूल में उद्देश्यपूर्ण, उत्पादक शैक्षिक कर्म पर जोर देना चाहिए। उन्होंने बच्चों और शिक्षकों, दोनों के लिए स्वतंत्र वातावरण की अपील की।

कुछ और परामर्श भी दिये गये :

(क) पूर्व प्राथमिक शिक्षा और प्रौढ़ लोगों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

(ख) सम्मेलन के लिए नयी तालीम की रिपोर्ट तैयार की जाय जिसमें इसका अबतक का इतिहास भी हो।

(ग) नयी तालीम और सर्वोदय (हिन्दी तथा अंग्रेजी पत्रिकाएँ) समिति के लिए कुछ जगह निकाला करें, ताकि नयी तालीम समिति की कार्यवाही छप सके।

—के० एस० आचार्लु

छात्रों का शिक्षा का घोषणा-पत्र

[आज समाज में सामाजिक असमानता और अन्याय के प्रति जितनी चेतना है उतनी कभी नही रही, और वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन करने के लिए कुछ करने की इच्छा भी इसी चेतना का अंश है। यह चेतना आज छात्र-वर्ग मे स्पष्ट देखी जा सकती है। उनमे कुछ करने की उतावली है—उनमें तरुणाई का उफान ही नहीं शक्ति भी है। आदर्श के लिए मर मिटने की उनमे तमन्ना भी है। परन्तु इस शक्ति का दुरुपयोग वे तोडफोड मे करते हैं। परन्तु जब तोडफोड से कुछ सिद्ध नही होता तो उनमे एक हताश की भावना का उदय होता है। इस हताशा का परिहार कैसे हो और युवा-विक्षोभ और शक्ति का उपयोग समाज-परिवर्तन में कैसे किया जाय यह आज की बहुत बड़ी समस्या है। इसी समस्या के हल के लिए कलकत्ता के गाधी शाति प्रतिष्ठान केन्द्र ने गत फरवरी में एक 'कन्वेंशन' किया था जिसमे अधिकाशत विद्यार्थी ही थे। दो दिन की चर्चा के बाद इस कन्वेंशन ने शिक्षा पर एक छः सूत्री घोषणा-पत्र तैयार किया है जो 'नयी तालीम' के पाठको के लिए उद्धृत किया जा रहा है।—सम्पादक]

१. भारत की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली बौद्धिक शोषको के एक वर्ग का निर्माण करती है जो जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं के उत्पादन करनेवालो के श्रम पर जीने की इच्छा रखते हैं और जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण और रुचियाँ सामान्य जनता से अलग होती हैं। अत शिक्षा को सामान्य जन, किसान, मजदूर और कारीगर के नित्यप्रति के जीवन की उत्पादक प्रक्रियाओं से अभिन्न रूप से सम्बन्धित होना चाहिए। अधिक 'स्पेसिफिक' शब्दों में कहा जा सकता है कि शिक्षण-संस्थाओं को पाठ्यक्रम के विभिन्न अग के रूप मे छोटी छोटी मशीनों की सहायता से वस्तुओं के उत्पादन और मरम्मत की ऐसी प्रक्रियाओं को लेना चाहिए जिसे एक या एक से अधिक छात्र पूरा कर सकें। जहाँ सम्भव हो वहाँ खेती भी की जाय।

२—वर्तमान शिक्षा-पद्धति को समाप्त कर देना चाहिए और उसके स्थान पर मूल्याकन की ऐसी वैज्ञानिक और सार्थक प्रणाली प्रयोग में लानी चाहिए जिससे विद्यार्थियों के गुणों और क्षमताओं और समाज के आर्थिक और नैतिक संस्कृति मे जो रोल वे अदा करना चाहते हैं, उसकी जाँच हो सके।

३ शिक्षा का अभ्यासक्रम (करीक्यूलम) जीवन के सामाजिक आर्थिक

और भावनात्मक समस्याओं को महत्व देने पर बल दे और वर्तमान सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों को परिवर्तित करने की चेतना का निर्माण करने में सहायक हो जिससे वास्तविक गणतान्त्रिक, अशोषक, शांतिमय, धर्म निरपेक्ष, न्यायपूर्ण, समाजवादी समाज की स्थापना हो सके। प्रारम्भ करने की दृष्टि से जिन विद्यार्थियों का ग्रामीण वातावरण से कोई परिचय नहीं है, वे पर्याप्त समय गाँवों में व्यतीत करें और गाँववालों के साथ काम करके गाँव के यथार्थ जीवन के सम्पर्क से अपने अनुभव को सम्पन्न करायें।

४. शैक्षिक प्रशासन में छात्रों का अधिकाधिक प्रतिनिधित्व हो और निर्णय की प्रक्रिया में उनका हाथ हो।

५ उच्च शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश का आधार मात्र प्रतिभा हो न कि अभ्यर्थियों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति।

६. विद्यार्थी आधुनिक युग में समाज-परिवर्तन की संगठित एजेन्सी के रूप में प्रभावपूर्ण ढंग से आगे आयें और शान्तिपूर्ण ढंग से अपने को वर्तमान अन्यायों के प्रतिकार के लिए और सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए तैयार करें।●

आचार्यकुल की गतिविधि

(राजगीर सम्मेलन, अक्तूबर १९६९ से नासिक अधिवेशन, मई १९७१ तक)

अक्तूबर, १९६९ के राजगीर सम्मेलन में सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति ने आचार्यकुल आन्दोलन की प्रगति और विधिवत संयोजन के लिए एक समिति नियुक्त की थी।

इस समिति की पहली बैठक २६-१२-'६९ को श्रीमती महादेवी वर्मा के निवासस्थान (अशोकनगर, इलाहाबाद) पर हुई, जिसमें निश्चय हुआ कि यद्यपि लक्ष्य पूरे देश में काम करने का रहे, परन्तु फिलहाल बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और राजस्थान में सघन रूप से काम किया जाय। यह भी तय हुआ कि केन्द्रीय समिति के संयोजक श्री वंशीधर इन प्रदेशों के शिक्षा-शास्त्रियों और उपकुलपतियों से संपर्क स्थापित कर इनसे प्रार्थना करें कि वे आचार्यकुल के संयोजक अथवा अध्यक्ष का पद स्वीकार करें और तदर्थ समितियाँ बनाकर आचार्यकुल का काम करें। यह भी निश्चय हुआ कि केन्द्रीय समिति का विस्तार किया जाय और उसमें राज्यों के संयोजकों और अध्यक्षों के अतिरिक्त देश के दूसरे शिक्षाशास्त्री और चिन्तक भी रखे जायें।

कार्य-क्षेत्र

आचार्यकुल के कार्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में चर्चा के बाद तय हुआ कि फिलहाल प्रखण्ड, जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर निम्नांकित काम किया जाय :—

१—सामाजिक, शैक्षिक, राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं पर गोष्ठियाँ एवं परिषदों का आयोजन।

२—लोक-सेवा एवं लोक शिक्षण का काम।

३—लोकनीति एवं लोकशक्ति के विकास के लिए रचनात्मक संस्थाओं के साथ सहयोग।

४—शिक्षा की स्वायत्तता के लिए गोष्ठियाँ एवं सभाओं का आयोजन।

५—मतदाता-प्रशिक्षण-शिविरों का आयोजन।

६—समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने के लिए सभी दलों के लिए एक समान मंच का आयोजन।

७—छात्रों एवं शिक्षकों के कल्याण के काम।

८—आचार्यकुल के लक्ष्यों से संबंधित साहित्य का प्रचार और प्रकाशन।

९—अपने लक्ष्यो की पूर्ति के लिए अन्य प्रयोग, प्रशिक्षण एव काम ।

१०—शिक्षाशास्त्रियों के ऐसे गैर-सरकारी सगठन का निर्माण और सचालन जो आचार्यकुल की शिक्षा-नीति का निर्देशन करें और शिक्षा के सम्बन्ध मे जिसकी सलाह लेना सरकार के लिए अनिवार्य हो ।

केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की दूसरी बैठक

समिति की दूसरी बैठक २२-८-१९७० को आगरा विश्वविद्यालय, आगरा (उ० प्र०) मे हुई। बैठक मे आगरा विश्वविद्यालय और कानपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपतियो ने भी भाग लिया। दोनो महानुभाव केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के सदस्य हैं।

सर्वप्रथम समिति ने तय किया कि श्री वशीधर श्रीवास्तव केन्द्रीय आचार्यकुल के सयोजक का काम करते रहे ।

संगठन

इसके बाद आचार्यकुल के सगठन और आचार्यकुल का सर्व सेवा सघ के सम्बन्ध पर चर्चा हुई ।

जैनेन्द्रजी ने इस सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि आचार्यकुल को एक स्वायत्त सस्था होना चाहिए। आचार्यकुल से सर्व सेवा सघ के साथ वैचारिक और आइडियोलाजिकल' सम्बन्ध हो, जिसमे उत्तरोत्तर वृद्धि हो, परन्तु किसी प्रकार के बन्धन का आभास न हो । डाक्टर रामजी सिंह (बिहार) ने जैनेन्द्रजी के विचार से सहमति प्रकट की ।

आचार्य राममूर्तिजी ने कहा कि यह ठीक है कि आचार्यकुल की स्वायत्तता मे कहीं से किसी प्रकार का दखल न हो। परन्तु सर्व सेवा सघ एक समग्र क्राति (टोटल रेवोल्यूशन) का एक्सप्रेशन है और आचार्यकुल को यह तय करना है कि विनोबाजी ने जिस समग्र क्रांति की कल्पना की है, आचार्यकुल सर्व सेवा सघ के साथ उसे 'शेयर' करता है या नहीं। वह इस बुनियादी क्रांति का शिक्षण करना चाहता है या केवल एक 'पायस ब्रदरहुड' (एक पवित्र बिरादरी) बनना चाहता है । अपनी स्वायत्तता को कायम रखते हुए यदि उसे इस समग्र क्रान्ति का 'एक्सप्रेशन' बनना है तो सर्वोदय आन्दोलन से उसका एक निश्चित सम्बन्ध रहना चाहिए ।

श्री वशीधर ने कहा कि दखल देने का सवाल तो नही उठता परन्तु आचार्यकुल जिन लक्ष्यो को सामने रखकर स्थापित हुआ है, उन्हें अगर 'डाइल्यूट' होने से बचाना है तो वैचारिक स्तर पर ही नहीं, संगठनात्मक स्तर पर भी दोनो का सम्बन्ध रहना चाहिए ।

श्री कृष्णराजजी ने कहा कि आचार्यकुल जिन लक्ष्यों को सामने रखकर स्थापित किया गया है उन्हें यदि सामने रखा जाय तो सब सेवा संघ से सम्बन्ध रखना सभी दृष्टियों से लाभप्रद होगा। मैंने इस सम्बन्ध में विनोबाजी की राय पूछी थी। उन्होंने कहा कि सब सेवा संघ के साथ आचार्यकुल जैसा चाहे सम्बन्ध रखे। सब सेवा संघ साल भर में पैसा दे और काम में दखल न दे ऐसा चाहता है तो वैसा करे या आचार्यकुल चाहे तो सब सेवा संघ थोड़ी मदद करेगा।

निश्चय हुआ कि आचार्यकुल एक स्वायत्त संस्था है और वह सब सेवा संघ अथवा सर्वोदय आन्दोलन से जैसा भी सम्बन्ध चाहे रख सकता है। अगर आचार्यकुल को आवश्यकता हो तो वह सब सेवा संघ से मदद ले सकता है। वह इस मदद का हकदार है। लेकिन सब सेवा संघ को इस बात का अधिकार नहीं है कि जबर्दस्ती उसे घसीट कर अपने साथ ले चले। आचार्यकुल सर्वोदय आन्दोलन से जैसा भी सम्बन्ध रखना चाहे रख सकता है। उसकी पूरी स्वायत्तता कायम रहनी चाहिए।

आचार्यकुल का विधान

इसके बाद दूसरे प्रादेशिक आचार्यकुलों से केन्द्रीय आचार्यकुल का क्या सम्बन्ध हो इस विषय पर चर्चा हुई और चर्चा के बाद आचार्यकुल का विधान बनाने के लिए एक उप समिति बनायी गयी। इस समिति ने विधान का एक प्रारूप तैयार किया है।

उत्तर प्रदेश छात्र संघ अध्यादेश गोष्ठी

आचार्यकुल का एक महत्वपूर्ण काम देश विदेश की सामाजिक, शैक्षिक और राजनैतिक समस्याओं पर निष्पक्ष विचार प्रस्तुत करना है। जिस समय बैठक हो रही थी उस समय उत्तर प्रदेश सरकार के छात्र संघ अध्यादेश के कारण उत्तर प्रदेश के शिक्षा जगत् का वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था। अतः केन्द्रीय समिति ने प्रस्ताव किया कि उत्तर प्रदेश के छात्र संघ सम्बन्धी अध्यादेश पर विचार करने के लिए छात्रों अध्यापकों अभिभावकों, संस्था प्रबंधकों एवं विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की बैठक बुलायी जाय।

तदनुसार दिनांक १६ २० और २१ सितम्बर, १९७० को वाराणसी के गांधी विद्या संस्थान के सभा कक्ष में कानपुर विश्वविद्यालय काशी विद्यापीठ और आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति–सर्वश्री राधाकृष्णजी

शीतलप्रसादजी तथा श्री राजाराम शास्त्री की अध्यक्षता मे एक गोष्ठी सम्पन्न हुई ।

गोष्ठी मे अधिकाश वक्ताओ ने इस प्रकार से अध्यादेश जारी करने के फलितार्थों पर विचार करते हुए यह अनुभव किया कि यह अध्यादेश जनतत्र के हितों के विरुद्ध है ।

किन्तु कुछ वक्ताओं ने यह भी अनुभव किया कि छात्रसघो की सदस्यता अनिवार्य कर देने से छात्रो की स्वतत्रता का हनन होता है । अत. सदस्यता ऐच्छिक रहनी चाहिए और छात्रो को सघो का सदस्य बनने या न बनने की स्वतत्रता होनी चाहिए, क्योकि वह प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार है ।

बैठक के दूसरे निर्णय

बैठक मे यह भी निश्चय किया गया कि समय-समय पर आचार्यकुल द्वारा सह जीवन शिविरो का आयोजन किया जाय, जिससे आचार्यकुल के विचारो मे निष्ठा रखनेवाले तीन-चार दिन तक साथ रह सकें । समान विचार रखनेवाले छात्रो को भी इस शिविर मे शामिल किया जाय । इस प्रकार के सहजीवन शिविर महाराष्ट्र और बिहार मे आयोजित हुए हैं ।

इसी कमेटी मे यह भी तय हुआ कि श्री ईश्वर भाई पटेल, जो वल्लभ विश्वविद्यालय, गुजरात के भूतपूर्व उपकुलपति थे, से सम्पर्क स्थापित किया जाय और उनसे प्रार्थना की जाय कि वे केन्द्रीय आचार्यकुल समिति मे किसी उत्तरदायित्व का काम सम्हालें । श्री ईश्वर भाई पटेल से सम्पर्क स्थापित किया गया है और प्रसन्नता का विषय है कि वे आचार्यकुल के काम मे योगदान करने को तैयार हो गये हैं ।

प्रदेशों में आचार्यकुल की प्रगति

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश में प्रादेशिक स्तर की एक तदर्थ समिति का निर्माण केन्द्रीय आचार्यकुल की पहली बैठक मे हुआ था । डा० कालूलाल श्रीमाली, उपकुलपति काशी विश्वविद्यालय इस समिति के अध्यक्ष हैं । उत्तर प्रदेश मे ५४ जिले हैं, इनमे से मार्च १९७१ तक ३० जिलो मे आचार्यकुल के विचार-प्रचार का काम हुआ है। प्रदेश के सात पूर्वी जिलो मे, वाराणसी, बलिया, गोरखपुर बस्ती, देवरिया, आजमगढ़ और फैजाबाद मे अधिक सघन काम हुआ है । इन जिलों के ४२ माध्यमिक विद्यालयो और डिग्री कालेजो मे आचार्यकुल की सस्था-इकाइयाँ हैं । सदस्यों की कुल सख्या ४५३ है ।

प्रदेश मे वाराणसी, कानपुर, आगरा और गोरखपुर के विश्वविद्यालयो और उनसे सलग्न डिग्री कालेजों में आचार्यकुल की सख्या इकाइयाँ हैं। उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयो मे सबसे पहले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आचार्य-कुल की स्थापना हुई। वहाँ सदस्यों की सख्या कुल ३५ है। यहाँ के आचार्यकुल ने कालज हॉस्टल के छात्रों के जीवन को अधिक सुखकर और सम्पन्न बनाने का काम किया है। ग्रामस्वराज्य कोष एकत्र करने मे भी सोत्साह काम किया है। उत्तर प्रदेश आचार्यकुल के प्रथम सम्मेलन का पूर्ण आतिथ्य भी इन्होंने सम्भाला।

आगरा विश्वविद्यालय से सल्ग्न लगभग ७० डिग्री कालेज हैं। उनके आचार्यों ने एक बैठक म प्रस्ताव पास किया है कि वे अपन कालेज मे आचार्य कुल की स्थापना करेंगे और इस काम के लिए डाक्टर हरिहरनाथ टडन सेंट जान्स कालेज आगरा के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष (अवकाश प्राप्त) को सयोजक चुना था।

आगरा से सलग्न डिग्री कालेजों मे काम का विवरण निम्नांकित है—

१—सस्थाएँ जहाँ आचार्यकुल कार्य कर रहा है।

(१) सेंट जान्स कालेज, आगरा (२) दयालबाग इजीनियरिंग कालज, आगरा (३) धर्म समाज कालेज, अलीगढ़ (४) के० जी० के० कालेज, मुरादाबाद (५) हिन्दू कालेज, मुरादाबाद (६) गोकुलदास कया महाविद्यालय, मुरादाबाद (७) शुकदेवानन्द कालेज, शाहजहाँपुर (८) डिग्री कालेज, कासगज।

२—सदस्यो की सख्या

(१) मे ८ (२) मे २० (३) मे ६० (४) (५) (६) मे १२० (७) मे ६ (८) मे १०। कुल २२४।

३—अलीगढ़ और मुरादाबाद मे हिन्दू मुस्लिम अशान्ति मे शान्ति-स्थापन और सहायता एव आगरा मे चुनाव म प्रशिक्षण।

(४) तरुण शान्तिसेना की स्थापना—बरेली कालेज और सेंट जान्स कालेज आगरा मे।

गोष्ठियाँ और सम्मेलन

१—पूर्वी जिलों की क्षेत्रीय परिगोष्ठी

पूर्वी जिलों की क्षेत्रीय परिगोष्ठी ६ जून से ११ जून, १६७० को सर्व सेवा सघ वाराणसी में आयोजित की गयी थी। गोष्ठी मे गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़, बलिया और वाराणसी के २३ प्रतिनिधियो ने भाग लिया था।

शिक्षा की स्वायत्तता के मुद्दे पर चर्चा के बाद इस गोष्ठी ने निर्णय लिया कि शिक्षा अगर शासन के अधीन हुई तो विचारो का रेजिमेन्टेशन होगा और परिणामस्वरूप अधिनायकवाद से बचा नहीं जा सकता। अत पैसा और सहकार सरकार का, और स्वायत्तता शिक्षा संस्थाओ की, ऐसी नीति आचार्यकुल की होनी चाहिए।

आचार्यकुल और तरुण शान्तिसेना की अन्योन्याश्रयिता के विषय मे गोष्ठी ने निर्णय किया कि दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू है। अत सक्रिय आचार्यकुल का एक लक्षण यह होना चाहिए कि जहाँ आचार्यकुल हो, वहाँ तरुण शान्ति सेना भी हो।

२—कुशीनगर (देवरिया) की बैठक

१६-१७-१८ नवम्बर, १९७० को कुशीनगर मे देवरिया जनपद के २० शिक्षा-संस्थाओ, डिग्री कालेजो और हायर सेकेण्डरी स्कूलो के आचार्यकुल के सयोजको की बैठक हुई। गोष्ठी का एक मात्र मुद्दा था— ग्रामदान की प्रक्रिया मे आचार्यकुल का सक्रिय सहयोग। गोष्ठी ने निर्णय किया कि जिन गाँवो मे ग्रामदान प्राप्ति की घोषणा हो चुकी है, उन गाँवो मे आचार्यकुल के सदस्य ग्रामस्वराज्य का दर्शन समझाने, ग्रामदान मे सकल्पित भूमि का वितरण, ग्राम-सभा के निर्माण का काम, अपनी सस्थाओ के ढाई मील की परिधि के भीतर करेंगे और इस प्रकार लोकशक्ति के सगठन का प्रयास करेंगे। तीन सस्थाएँ अपनी ढाई मील की परिधि मे आनेवाले क्षेत्रों में काम कर रही हैं।

३—श्रावस्ती शिक्षक सम्मेलन

१५ जनवरी, १९७१ को बाबा राघवदास हीरकजयन्ती के अवसर पर श्रावस्ती मे गोण्डा और बहराइच जिलो के शिक्षकों का सम्मेलन आचार्यकुल का विचार समझाने के लिए और इन शिक्षा-सस्थाओ म आचार्यकुल की इकाई स्थापित करने के लिए किया गया। सम्मेलन म दोनो जिलो के लगभग २०० शिक्षक, डिग्री कालेजो और माध्यमिक सस्थाओ के आचार्य, प्रवक्ता और अध्यापक सम्मिलित थे।

४—उत्तर प्रदेश आचार्यकुल सम्मेलन

आचार्यकुल का पहला प्रदेशीय सम्मेलन २९-३० नवम्बर को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी मे आयोजित हुआ। देश मे यह पहला प्रदेशीय स्तर का सम्मेलन था। सम्मेलन मे उत्तर प्रदेश के वाराणसी, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, अलीगढ़, मुरादाबाद, आगरा, फर्रुखाबाद, गोरखपुर, देवरिया,

बलिया, आजमगढ, गाजीपुर, गोण्डा, ज्ञानपुर (वाराणसी) रायबरेली जिलो के १२१ प्रतिनिधियो ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन श्रीमती महादेवी वर्मा और समापन डाक्टर कालूलाल श्रीमाली ने किया। सम्मेलन तीन सत्रो मे सम्पन्न हुआ, जिनकी अध्यक्षता क्रमश श्री शीतल प्रसाद, डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं श्री राजाराम शास्त्री ने की। सम्मेलन मे मुख्यत दो विषयो पर चर्चा हुई—(१) आचार्यकुल की संरचना और कार्य-क्षेत्र तथा (२) आचार्यकुल की शिक्षा-नीति।

(१) चर्चा के बाद आचार्यकुल की सरचना और कार्य-क्षेत्र पर जो निर्णय हुए, उसे आचार्यकुल के विधान मे शामिल कर लिया गया है।

(२) आचार्यकुल की शिक्षा-नीति पर घोषणा-पत्र तैयार करने के लिए श्री वशीधर श्रीवास्तव के सयोजकत्व मे प्रदेश के शिक्षको की एक उप-समिति बना दी गयी है।

बिहार

यद्यपि बिहार के मुगेर कालेज और भागलपुर विश्वविद्यालय मे आचार्यकुल की स्थापना विनोबाजी की उपस्थिति मे राजगीर सम्मेलन के पहले ही हो चुकी थी, फिर भी बिहार मे सघन रूप से काम पिछले चार-पांच महीनों से ही प्रारम्भ हुआ है। केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की ओर से सहरसा म श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा काम कर रहे हैं और गया जिले मे श्री केशव प्रसाद मिश्र की पहल के कारण तदर्थ जिला स्तरीय समिति बनी है। महावीर विद्यालय गया के प्राचार्य श्री अलखदेव प्रसाद सिंह इस समिति के सयोजक हैं।

अब तक की रिपोर्ट के अनुसार सहरसा जिले के २३ प्रखण्डो मे से १३ प्रखण्डों मे प्रखण्ड स्तरीय इकाइयां स्थापित हो चुकी हैं। सदस्यो की कुल सख्या ६७६ है, जिनमे से १७२ प्रखण्ड की कार्यकारी समितियो के सदस्य हैं। लगभग ६० अध्यापकों ने अलग अलग प्रखण्डों मे अपने अपने गांवो म जहां वे रहते हैं या जहां वे काम करते हैं, एक निश्चित अवधि मे ग्रामसभा बनाने, बीघा-कट्ठा बँटवाने, ग्राम-शान्तिसेना का निर्माण करने और ग्राम कोष का प्रारम्भ करवाने का तथा खुद अपनी भूमि, यदि वे किसान हैं तो बँटवान की घोषणाएं की हैं। ५-६ अध्यापको ने १५-१५ दिन का अवकाश लेकर ग्राम स्वराज्य के काम मे समय देने की तैयारी बतायी है। वहां आचार्यकुल के लगभग ११ सदस्य अध्यापकों ने अपनी अपनी पचायतो और गांवो मे काम करने का भी दायित्व लिया है।

आचार्यकुल और तरुण शांतिसेना का कार्य एक ही सिक्के के दो पहलू जैसा कार्य है, अतः जिन संस्थाओ मे आचार्यकुल स्थापित हुए हैं उन संस्थाओं मे तरुण शांतिसेना की स्थापना भी हुई है। ऐसे १३५ छात्रो ने तरुण शांति-सेना के सदस्यता-पत्र भरे हैं और टोलियो और नायको का चुनाव किया है। आचार्यकुल के सदस्यो के साथ वे प्रत्यक्ष ग्राम स्वराज्य के काम मे लगे हैं।

गया जिले मे १९ शिक्षा संस्थाओ मे आचार्यकुल की इकाइयाँ स्थापित हुई हैं, जिनमे आचार्यकुल के सदस्यो की संख्या १२० और तरुण शांतिसेना की संख्या ६५ है।

केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की ओर से पूर्णिया जिले मे भी आचार्यकुल का काम हो रहा है।

३० दिसम्बर, १९७० को अखिल भारतीय शिक्षक संघ के पैंतालिसवें अधिवेशन के अवसर पर बिहार के शिक्षकों को आचार्यकुल का विचार समझाने के लिए एक बैठक का आयोजन किया गया। बैठक मे लगभग दस हजार शिक्षक उपस्थित थे। आचार्यकुल का दृष्टिकोण समझाते हुए श्री जयप्रकाश नारायण, दादा धर्माधिकारी, जैनेन्द्रजी, श्री यशोधर श्रीवास्तव ने शिक्षकों का उद्बोधन किया। आशा की जाती है कि इससे आचार्यकुल के काम में गति आयेगी।

आचार्यकुल के काम मे गति लाने के विचार से जनवरी, १९७१ से बिहार आचार्यकुल के संयोजन मे कुछ परिवर्तन किया गया है। पटना विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री महेन्द्र प्रताप सिंह बिहार प्रदेश आचार्यकुल के अध्यक्ष और डा० रामजी सिंह (भागलपुर, बिहार) संयोजक मनोनीत हुए हैं। आचार्य कपिलजी बिहार आचार्यकुल के उपाध्यक्ष रहेंगे। आशा है कि नये पदाधिकारी एक तदर्थ समिति बनाकर काम शुरू करेंगे।

महाराष्ट्र

आचार्यकुल का प्रचार अभी तक महाराष्ट्र के २६ जिलो मे से २२ जिलो में हुआ है। जिन जिलो म अध्यापकों ने संकल्प-पत्र भर दिया है, और जहाँ आचार्यकुल का कुछ काम हो रहा है, ऐसे जिले १८ हैं और वहाँ की सदस्य-संख्या कुल ४०१ है।

महाराष्ट्र के शिक्षण-सचिव श्री स० नो० दापकरजी और श्री हि० ह० महाजनुद्धे आचार्यकुल के समर्थक और प्रभावी प्रचारक बने हैं। आचार्य भिसेजी का प्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त होने से ठाणे जिला के ग्रामदानी क्षेत्र में बहुत कुछ काम हो सकेगा, ऐसी अपेक्षा है। विदर्भ के आचार्य राम शेवालकर,

खानदेश के आचार्य वि० वि० भागवत, नासिक के प्राध्यापक बेदरकर, मराठवाड़ा के प्राचार्य रामदास शगे, प्राचार्य म्हैसेकर, प्राचार्य वि०वि० चिपळूणकर, ऐसे कई सज्जनों का सक्रिय सहयोग प्राप्त हो रहा है।

आचार्यकुल द्वारा आयोजित गोष्ठियाँ और सहजीवन शिविर

१-पुणे	२७ २८ दिसम्बर, १९६९	चर्चा गोष्ठी विषय—शिक्षा का लोकशाहीकरण
२-गोपुरी (वर्धा)	२४ जनवरी, १९७०	पू० विनोबाजी की उपस्थिति में आचार्यकुल के सदस्यों की बैठक
३-परभणी	२२ फरवरी १९७०	आचार्यकुल परिसवाद अध्यक्ष, श्री बालासाहेब भारदे (विधान सभा के सभापति)
४-वसमतनगर	५-६ ७ मई, १९७०	६० अध्यापकों का शिविर
५-अचलपुर	२५ से २८ जुलाई, ७०	छात्र नायकों का शिविर (सात पाठशाला के १०० छात्र-नायक)
६-परभणी	६ सितम्बर, ७०	परिगोष्ठी, 'विद्या का व्यासपीठ'
७-चालिसगाँव	२२ नवम्बर, ७०	४० अध्यापकों की गोष्ठी
८-वणी	१६ १७ १८ जनवरी, ७०	शिविर (५० उपस्थिति)

पू० विनोबाजी ने समारोप करते हुए संदेश दिया 'खूब अध्ययन करो, सफाई करो, स्त्री शक्ति जागृत करो और ज्ञानशक्ति और श्रम-शक्ति का संयोग करो'।

९-औरङ्गाबाद	३ ४ अप्रैल, १९७१	गोष्ठी विषय—व्यक्तिगत और संस्थागत कार्यक्रम, उपस्थिति ६०

भावी योजनाएं

१—आचार्यकुल की सदस्य संख्या एक हजार तक बढ़ायी जाय।

२—महाराष्ट्र की प्रतिनिधि 'आचार्यकुल परिषद' पू० विनोबाजी की उपस्थिति में आयोजित की जाय।

३—महाराष्ट्र राज्य के स्तर पर आचार्यकुल के कुछ ज्येष्ठ और श्रेष्ठ व्यक्तियों का एक 'विचार शासन मंडल' स्थापित किया जाय और उनके मार्गदर्शन में सामाजिक और शिक्षा क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं पर विभिन्न स्थानों में गोष्ठियों का आयोजन करके उनके निष्कर्ष लोगों की जानकारी के लिए प्रसारित किये जायें।

४—प्रत्यक्ष केन्द्रों पर अध्यापक तथा छात्रों के कम-से कम ५ दिन के श्रम-सहकार शिविर आयोजित किये जायें।

५—आचार्यकुल सम्बन्धी साहित्य निर्माण करना तथा मुखपत्र के तौर पर एक मासिक या त्रैमासिक प्रकाशित करना।

राजस्थान

राजस्थान म जयपुर, बीकानेर, श्रीगंगानगर, जोधपुर, अजमेर, भीलवाडा और उदयपुर मे आचार्यकुल के विचार का प्रचार हुआ है और साथियो से सम्पर्क स्थापित किया गया है। जुलाई अगस्त मे ग्रीष्मावकाश के बाद शिक्षा-संस्थाओं के खुलने पर अधिक सघन रूप से काम करना सम्भव होगा। बीकानेर म तो जिला स्तरीय आचार्यकुल की स्थापना की तिथि निश्चित करके केन्द्रीय आचार्यकुल को सूचना भी दी जा चुकी थी, परन्तु मध्यावधि चुनाव के कारण बैठक स्थगित कर दी गयी। गरमी की छुट्टियो के बाद ही यह बैठक भी आयोजित की जायगी। गांधी शान्ति प्रतिष्ठान मे आने के बाद श्री शान्तिस्वरूप गुप्ता (जयपुर) इस काम को देख रहे हैं।

मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश मे तदर्थ समिति ही काम कर रही है और वहाँ विधिवत् प्रादेशिक स्तरीय आचार्यकुल की स्थापना नही हुई है। २८ से ३० जनवरी तक टीकमगढ जिले मे जिला स्तरीय आचार्यकुल की स्थापना के लिए एक शिक्षक सम्मेलन राजकीय हायर सेकेण्डरी स्कूल मे बुलाया गया था, परन्तु मध्यावधि चुनाव के कारण उसे स्थगित कर दिया गया।

दिल्ली

ता० ८ २-७१ की सर्वोदय मण्डल की कार्यकारिणी सभा म निश्चय किया गया कि मण्डल की ओर से आचार्यकुल का कार्यक्रम भी चलाया जाय।

ता० ११ २-७१ को दिल्ली के विभिन्न कालेजो के प्रतिनिधियों की एक बैठक सर्वोदय मण्डल ने बुलायी, जिसमे आचार्यकुल के उद्देश्य और स्वरूप के बारे मे विचार विमर्श हुआ और अन्त मे सबने मिलकर आचायकुल की स्थापना का निर्णय लिया। साथ ही प्रति मास आचार्यकुल की बैठक बुलाने का भी निश्चय हुआ।

ता० १४ ३ ७१ को अपराह्न तीन बजे आचार्य काका साहेब कालेलकर के सान्निध्य म सन्निधि में आचायकुल की दूसरी बैठक हुई जिसकी अध्यक्षता दिल्ली की प्रमुख समाजसेवी श्रीमती सावित्री सचदेव ने की।

विभिन्न कालेजों के प्राध्यापक भाई बहनो ने मिलकर आचार्यकुल की एक समिति बनायी, जिसका संयोजक डा० सीता को बनाया गया।

बैठक के अन्त मे आचार्य काका साहेब कालेलकर ने उपस्थित प्राध्यापको और कार्यकर्ताओं को दिल्ली मे आचार्यकुल की स्थापना के लिए बधाई देते हुए आचार्यकुल की कल्पना को मूर्त स्वरूप देने के लिए तैयार होने के लिए प्रोत्साहित किया।

श्री जैनेन्द्रजी ने आचार्यकुल के कार्य के लिए सहयोग और मार्गदर्शन करने का आश्वासन दिया है। दिल्ली सर्वोदय मण्डल के संयोजक श्री बसन्त व्यास ने भी आचार्यकुल के काम मे शक्ति लगाने का आश्वासन दिया है।

आध्र

आंध्र मे सर्वोदय कार्यकर्ता श्री च० जनार्दन स्वामी के प्रयास से गुंटूर जिले में छोटे पैमाने पर आचार्यकुल के विचार प्रचार का काम हुआ है। जनवरी, १९७१ के तीसरे सप्ताह मे तेनाली शहर मे आचार्यकुल का क्षेत्रीय सम्मेलन बुलाने की उनकी योजना थी। उनकी मांग के अनुसार उनके पास आचार्यकुल का साहित्य भेज दिया गया है।

मैसूर

मैसूर मे धारवाड में २ फरवरी, १९७१ को शिक्षकों की एक कान्फ्रेन्स मे नयी तालीम के मंत्री श्री के० एस० आचार्लूजी ने आचार्यकुल का विचार समझाया। उनके आदेश के अनुसार धारवाड में गांधी शांति प्रतिष्ठान के संगठक श्रीमती शकुन्तला कुर्तकोटि और श्री के० बी० तेरेगावकर के पास आचार्यकुल का साहित्य भेज दिया गया है।

केरल और तमिलनाडु

आचार्यकुल सम्बन्धी साहित्य गांधी शांति प्रतिष्ठान के मंत्री श्री राधाकृष्ण के आदेशानुसार केरल के मित्रो के पास भी भेजा गया है। तमिलनाडु मे साहित्य भेजा गया है। इस प्रकार धीरे-धीरे दक्षिण में आचार्यकुल के विचार का प्रचार हो रहा है।

—वंशीधर श्रीवास्तव

सेवाग्राम-शिविर-योजना

भौगोलिक दृष्टि से व वैचारिक दृष्टि से सेवाग्राम भारत के हृदय-स्थल पर विराजमान है। भारतीय आजादी और एकता के प्रवाह इसी मंगल भूमि से अनुस्यूत हुए और आगे चलकर जिस सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति का स्वप्न बापू ने संजोया था, और हमारे लिए उसे साकार करने का जो उत्तराधिकार वे छोड़ गये हैं, उसके निमित्त कारण रूप पू० विनोबा भी, इसी हृदयस्थली से संचरण करते हुए शासनमुक्त शोषणहीन अहिंसक समाज रचना की नवीनतम क्रान्ति में भारतवर्ष को दीक्षित करने हेतु बरसों तक पैदल घूमे। हमारे लिए यह खुशी की बात है कि विनोबा ने, सबको सुलभता से मिल सके इस हेतु से, अपने आपको, परधाम पवनार, ब्रह्मविद्यामंदिर में स्थानबद्ध कर लिया है।

बापूजी ने जीवनभर इस उपमहादेशनुमा विशाल देश के बिखरे हुए मणियों को, वत्सलता के अदृश्य धागे से जोड़ने का कार्य किया और इसके लिए अपनी आत्माहुति तक दे दी। सेवाग्राम आश्रम का आखिरी निवास अपने हृदय में इसी भाव को सजोये आज भी खड़ा है। आज भी उस मानव-महान की लघु कुटिया, सत्य की-सी सादगी लिये, धरति की-सी नम्रता सजोये, सत्ता और संपत्ति के द्वारा ढाये जानेवाले अन्यायों के प्रतिकार की प्रतिमूर्ति के रूप में सन्नद्ध खड़ी है। देश के और विश्व के कोने-कोने से हजारों की तादाद में लोग यहाँ आकर नयी दृष्टि, नयी प्रेरणा और नया उत्साह लेकर प्रतिवर्ष अपने-अपने स्थान को लौटते हैं।

उद्देश्य

उपरोक्त विचारों की पृष्ठभूमि में से ही सेवाग्राम-शिविर-योजना साकार हुई है। बापूजी के अंतिम वसियतनामे में, हिंसा शक्ति की विरोधी, दंडशक्ति से भिन्न ऐसी तीसरी लोकशक्ति के निर्माण हेतु लोक-सेवक संघ की स्थापना की अपेक्षा रखी थी। इनके सपनों का भारत, मानो साढ़े पाँच लाख, स्वयंभू, स्वायत्त, स्वावलम्बी, स्वयंपूर्ण गाँवों का स्वेच्छाधारित महासंघ ही था। उस ग्राम-स्वराज्य को साकार करने के लिए प्रत्येक गाँव में लोकनिष्ठ और लोकाधारित एक-एक लोक-सेवक बैठकर, लोकजागृति और लोक-शक्ति को प्रवृत्त करने के काम में जुटे यह जरूरी है। उसके लिए नयी पीढ़ी को प्रेरित और सक्रिय करने की अनिवार्य आवश्यकता है। उसका एक कारगर माध्यम शिविर-गोष्ठी-सम्मेलन है। शिविर मानो पुराने अनुभवों को नयी पीढ़ी तक पहुँचाने

का एक सफल माध्यम, नये सदर्भ मे नये आयामो को खोज निकालने का प्रयोग-स्थान ही माना जायगा। उसके द्वारा हजारो की तादाद मे नये युवा शिक्षित और दीक्षित होकर लक्ष्य की ओर अग्रसर हों, यह अपेक्षा है। एक लम्बे अर्से तक उसे चलाने हेतु सुनियोजित ढंग से हमें कार्य करना होगा।

योजना का सूत्रपात

इन विचारो और शताब्दी वर्ष के अनुभव के आधार पर यह सोचा गया कि सेवाग्राम मे इस प्रकार के शिविर-सम्मेलन के माध्यम से लोगो को शिक्षित और दीक्षित करने का कार्यक्रम हाथ मे लिया जाय। उसके जरिये, विभिन्न समाज-सेवी, शासकीय, अशासकीय, सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, रचनात्मक सगठन और सस्थाओ को सेवाग्राम मे विभिन्न स्तर के (राष्ट्रीय, राज्य, क्षेत्रीय) और विभिन्न उद्देश्य के शिविर, परिसवाद या सम्मेलन करने के लिए आवाहन किया जाय, और इस प्रकार इस ऐतिहासिक क्रान्ति-धाम सेवाग्राम को शक्ति का केन्द्र बिन्दु फिर से बनाया जाय।

योजना का स्वरूप

भारत मे राष्ट्रीय स्तर की सभी रचनात्मक और समाजसेवी सस्थाऐं मसलन् सर्व सेवा सघ, अ० भा० शान्तिसेना मडल, आचार्यकुल, राष्ट्रीय गाधी स्मारक निधि, गाधी शाति प्रतिष्ठान, अ० भा० हरिजन सेवक सघ, आदिवासी और गिरिजन सेवा सघ, ग्रामीण महिला मडल, कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट, भारत स्काउट्स एण्ड गाईड्स, अखिल भारतीय स्तर के विभिन्न तरुण, विद्यार्थी, शिक्षक और मजदूर सगठन, स्वायत्त सस्थाओ के सगठन जैसे कि अ० भा० पचायत परिषद्, यग मेन विमेन क्रिश्चियन एसोसियेसन्स्, सास्कृतिक मडल—जैसे गुरुदेव सेवा मडल, साधु समाज, अ०भा० गोसेवा सघ, प्राकृतिक चिकित्सा सघ, भारत सेवक समाज आदि सगठन और सस्थाऐं अपने-अपने राष्ट्रीय राज्य या क्षेत्रीय स्तर के विभिन्न समयावधि और उद्देश्य के शिविर गोष्ठी या सम्मेलन, प्रति वर्ष कम-से-कम एक बार सेवाग्राम के वातावरण मे आयोजित करें और गाधी के सपनो के भारत के निर्माण-कार्य मे लगें, यह आवश्यक है और अपेक्षित है।

व्यक्तिगत तौर पर और पारिवारिक दृष्टि से भी सेवाग्राम आश्रम के वातावरण मे समरस होकर जिज्ञासु भाई-बहन समाज बदलने की अहिंसक क्रान्ति के काम मे सहभागी हों यह भी उम्मीद है। इस योजना के जरिये हम उनका भी आवाहन करते हैं।

शिविर के लिए सुविधाएँ

देश की सभी रचनात्मक संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि व सेवाग्राम मे स्थित सुविधाओं का लाभ उठाकर अपने कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण अथवा अन्य भी किसी प्रकार के शिविर को आयोजित करेंगे उसके लिए निम्न सुविधाएँ इस योजना के अन्तर्गत प्राप्त हैं —

वरधा में निम्न संस्थाओं के अवलोकन तथा शिक्षण प्रवास का लाभ शिविरार्थियों को प्राप्य है। सेवाग्राम मे—आश्रम, तालीमी संघ, कस्तूरबा मेडिकल कालेज, गाधी सेवा सघ, खादी उद्योग समिति, वरधा मे मगनवाडी, जमनालाल बजाज खादी ग्रामोद्योग रिसर्च इंस्टिट्यूट, मगन संग्रहालय, सर्व सेवा सघ प्रयोग समिति, राष्ट्रीय गाधी कुष्ठ प्रतिष्ठान, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, महिलाश्रम, मातृसेवा सघ, नालवाडी मे—सर्व सेवा सघ केन्द्रीय कार्यालय, प्राकृतिक चिकित्सा-केन्द्र गोपुरी चर्मालय, सरजाम कार्यालय, गोशाला, दत्तपुर मे—कुष्ठधाम, पिपरी मे—रूरल इंस्टिट्यूट, गोशाला, पवनार मे—ब्रह्मविद्यामंदिर ग्रामसेवा मडल सेलडोह मे—कृषि कार्य। वरधा मे स्थायी निवास करनेवाले जिन विचारकों तथा साधकों के विचारों का लाभ शिविर को मिल सकता है वे हैं—सर्वश्री अण्णा साहब सहस्रबुद्धे (अनुभवी सर्वोदय विचारक), चिमनलाल भाई (आश्रम के गुरुजन), के० आचालू (नयी तालीम शिक्षाविद), श्री निर्मला गाधी (बापू की पुत्रवधू), सरयूताई धोत्रे (समाजसेवी), श्री डा० रा० पडित (मेडिकल कालेज गृहपति) श्री मुक्तेश्वर (कृषि विशेषज्ञ), श्री आपटे गुरुजी, श्री नानाभाई (सामाजिक स्वास्थ्य), मेडिकल कालेज के प्रोफेसर्स, श्री हातेकर (प्रिंसिपल रूरल इंस्टिट्यूट), दत्तोबा दास्ताने (सर्वोदय विचारक), डायरेक्टर (ग्राम रिसर्च इंस्टिट्यूट), श्री ना० रा० सोवनी (प्रयोग समिति खादी विशेषज्ञ) कृष्णामूर्ति मिरमिरा (पोटरी विशेषज्ञ), रामभाऊ म्हसकर, साधक डा० रविशकर शर्मा (कुष्टरोग चिकित्सक), डा० महोदय (समाजसेवी डाक्टर), मुन्नालालजी (आश्रम के अतेवासी), प्रो० जाजूजी, ठाकुरदास बग (मत्री, सघ सेवा सघ), सुमनताई (सर्वोदय विचारक), श्री वसत बोबटकर (अध्यक्ष, महाराष्ट्र सर्वोदय मडल), डा० निलकण्ठराव (कुष्ठ प्रतिष्ठान), श्री महेन्द्र शास्त्री (शाति प्रतिष्ठान), श्री सत्यनारायण (नयी तालीम विशेषज्ञ), रसूल महमद अबोध (राष्ट्रीय एकता के पुरस्कर्ता), श्री बेग वकील, प्रो० खान, प्रिंसपाल शाह (सुप्रसिद्ध विद्वान), श्रीमती रमाबहन रुइया (महिला आश्रम, सचालिका व विचारक), श्रीमती शातिशीला बहन (नयी तालीम विशेषज्ञ), श्रीमती कमलाताई लेले (समाज सेविका), श्री द्वारकानाथ लेले (खादी काम के विशेषज्ञ) आदि।

शिविर, सम्मेलन या व्यक्तिशः मुलाकात लेने आनेवाले सभी भाई-बहनों को सेवाग्राम आने हेतु रियायती टिकट की व्यवस्था, आश्रम प्रतिष्ठान द्वारा दी जा सकेगी। आयोजक-संस्था को आवश्यक संख्या में रेलवे कन्सेसन सर्टिफिकेट्स सेवाग्राम शिविर योजना के मारफत भेजे जा सकेंगे।

सेवाग्राम, वर्धा और पवनार की रचनात्मक संस्थाओं की मुलाकात अध्ययन के निमित्त से लेने का आयोजन यहाँ के कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग माना गया है। छोटी बड़ी संख्या की मुलाकातों को पू० बाबा विनोबाजी) से चर्चा-विचारणा करने का अवसर भी मिल सकेगा। सामूहिक सर्वधर्म प्रार्थना, सामूहिक श्रम और सफाई, सामूहिक भोजन तथा सामूहिक खेल और सांस्कृतिक कार्यक्रम के जरिये समूह जीवन बिताने का अवसर आश्रम का वातावरण प्रदान करता है।

आश्रम में स्वच्छता, पवित्रता और शांति एवं प्रेरणा का वातावरण बापू-कुटी के पास में सहज ही मिलता है।

शिविर की दृष्टि से ५० व्यक्ति आसानी से वहाँ रह सकते हैं। उनके निवास, भोजन, बिजली पानी तथा अन्य प्रकार की आवश्यकताओं का प्रबन्ध सादगीपूर्ण ढंग से यहाँ मिल सकेगा।

५० व्यक्ति १० दिन के लिए सेवाग्राम शिविर-योजना के अन्तर्गत रहेंगे। उसका न्यूनतम खर्च इस प्रकार अनुमानित किया गया है —

भोजन व्यय प्रति व्यक्ति प्रतिदिन २.५० के हिसाब से–

	रु० पै०
नाश्ता पेय समेत ५० × १० × २ ५०	१,२५० ००
निवास, बिजली, पानी ५० × २ ५०	१२५ ००
स्थानीय प्रवास (वर्धा पवनार) ५० × २ ५० =	१२५ ००
अन्य खर्च	५०० ००
	२,०००.००

यह अनुमानित न्यूनतम बजट है। जो प्रत्यक्ष व्यय आयेगा वही लिया जायगा।

सम्मेलन आदि में २०० व्यक्तियों के भोजन निवास आदि की व्यवस्था आश्रम में की जा सकेगी।

सेवाग्राम में उपलब्ध सुविधाएँ

डाकखाना, तारघर, टेलीफोन-व्यवस्था (सस्थागत व सार्वजनिक), सेन्ट्रल बैंक की शाखा, उपाहार के लिए कैंटीन, गांधी दर्शन-प्रदर्शन तथा राष्ट्रीय महत्व की डाक्युमेन्टरी फिल्म्स के प्रदर्शन की व्यवस्था तथा पुस्तकालय।

आवश्यक जानकारी

आयोजक सस्था को अपने शिविर-परिसवाद गोष्ठियाँ, सम्मेलन आदि की तारीख और समयावधि, उद्देश्य आदि, काफी पहले से सगठक, सेवाग्राम-शिविर-योजना, पो० सेवाग्राम, वर्धा (महाराष्ट्र) के पते से पत्र व्यवहार द्वारा निश्चित कर लेना उचित होगा।

सेवाग्राम आने हेतु वर्धा जक्शन उतरना ठीक होगा। वर्धा, बम्बई हावडा एव मद्रास-दिल्ली रेल मार्ग पर स्थित मध्य रेलवे (से० रे०) का जक्शन है। वहाँ से सेवाग्राम आश्रम, करीब ९॥ किलोमीटर दूर है। स्टेट ट्रान्सपोर्ट की बस-सर्विस, सुबह, दोपहर, शाम, समय-समय पर चलती रहती है। ३० पैसा आश्रम स्टैन्ड तक का किराया है। साइकिल रिक्शा और तागा सामान्यतया २ रुपये से ३ रुपये तक का किराया लेते हैं।

सेवाग्राम भी छोटा सा स्टेशन है जो भुसावल नागपुर लाइन पर स्थित है। यहाँ सभी पैसेन्जर गाडियाँ खडी होती है। स्टेशन से आश्रम करीब २ ५ कि०मी० (१॥ मिल) की दूरी पर है। वहाँ वाहन-व्यवस्था किसी प्रकार की नहीं है।

सेवाग्राम का जलवायु खुश्क होता है। गरमी के मौसम मे ११५° फेरनहीट तापमान रहता है व ठडी के मौसम से ५०° तक नीचे गिरता है। रात्रि के उपयोग के लिए मसहरी और टार्च रखना आवश्यक है।

शिविर के प्रकार

विभिन्न उद्देश्यो को नजर मे रखते हुए विभिन्न प्रकार के शिविर आयोजित किये जाते हैं, उसके कुछ प्रकार ये हैं। अपनी रुचि और विशेषता के अनुरूप उद्देश्य के अनुसार शिविर सपन्न किये जा सकेंगे।

अ—पूर्व सचित ज्ञान मे नयी जानकारी जोडने हेतु प्रत्यासमरण शिविर

आ—विषय विशेष को केन्द्र मे रखते हुए उसका गहरा अध्ययन करने की दृष्टि से अध्ययन-शिविर।

इ—निर्माण कार्य को केन्द्र मे लेकर श्रम शिविर

ई—विचारो को फैलाने और सास्कृतिक कार्यक्रम को माध्यम बनाकर गीत सगीत-भजन, प्रशिक्षण शिविर।

उ—सम्मिलित परिवारो को, दीक्षित, शिक्षित और सस्कारी बनाने हेतु पारिवारिक शिविर।

ऊ—समाजसेवा के लक्ष्य की पूर्ति हेतु समाज सेवा शिविर।

ए—उद्देश्य और आवश्यकतानुरूप विभिन्न प्रकार के कार्यकर्ता, सगठक, प्रशिक्षक, आदि को प्रशिक्षित करने हेतु प्रशिक्षण शिविर।

इस प्रकार के विविध लक्ष्यो के अनुरूप विभिन्न समयावधि के शिविरो का आयोजन सेवाग्राम के वातावरण मे किया जा सकता है।

व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से शिविर मे हाथ, हृदय और मस्तिष्क के विकास के अवसर पर्याप्त मिलें यह भी दृष्टि सामने है। तदनुसार अभ्यासक्रम की त्रिविध रूपरेखा इस प्रकार की हो सकती है।

अ—बौद्धिक चर्चा और वर्ग आदि के कुछ साकेतिक विषय—

(१) अध्यात्म और विज्ञान (२) राजनीति बनाम लोकनीति (३) सर्वोदय-समाज क्या, क्यो और कैसे ? (४) रचनात्मक कार्यक्रम (रहस्य और पद्धति) (५) गांधी के बाद का सर्वोदय (६) गाधी विचार व हमारी मौजूदा समस्याएँ (७) सर्वधर्म समभाव (८) मानवीय एकात्मता (९) क्रान्ति का त्रिभुज और त्रिविध कार्यक्रम स्वतत्रता, समता बन्धुता, ग्रामदान, शान्तिसेना, ग्रामाभिमुख खादी) (१०) विश्व शान्ति के नये आयाम (११) स्त्री पुरुष सहजीवन (१२) मानवीय अर्थशास्त्र, (१३) अन्याय कारण और निवारण (१४) नव-समाज-निर्माण और हमारा दायित्व (१५) शिक्षा मे क्रान्ति (१६) लोकतांत्रिक मूल्य (१७) प्रार्थना क्या, क्यों और कैसे ? (१८) शासन बनाम अनुशासन (१९) जीवन मे व्रत का स्थान और व्रत विचार (२०) साम्यवाद और गाधी विचार।

[टिप्पणी · उपरोक्त विषय-सूची साकेतिक है। शिविर के प्रकार व उद्देश्य के अनुरूप नये विषय जोडे और इन विषयो मे से घटाये जा सकते हैं।]

आ—क्रियात्मक-वर्ग

व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता, शिविर-जीवन का एक महत्वपूर्ण आवश्यक अनिवार्य अग है। जैसे कि निवास सफाई, कपडे धोना, अपने बर्तन

लोगों ने खुद होकर इस विचार को अपना लिया, या शांतिपूर्वक समझाकर उन्हें इस बात की स्वीकृति के लिए उद्यत किया गया तो इससे अच्छी कोई बात हो नहीं सकती।' (यंग इंडिया' १५-११ '२८)

इस विषय में सर्वोदय की दृष्टि यह है कि लोकशिक्षण के द्वारा समर्थ साधनवानों को सार-संभाले (स्टूवर्डशिप) के सिद्धांत से और गरीबों को स्वय-सहायता के सिद्धांत से दीक्षित करना चाहिए। (हरिजन' ४ ८ ४६) सर्वोदय विचार को "यह विश्वास है कि मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति को इस प्रकार विकसित कर सकता है कि जिससे (दुनिया म) शोषण की मात्रा कम से-कम रहे। (गाधीजी का लेख 'माडन रिव्यू अक्तूबर १९३५) इसी विश्वास के कारण विश्वस्तवृत्ति (ट्रस्टीशिप) का निम्न कोष्ठक सर्वोदय विचारवालो ने दुनिया के सामने प्रस्तुत किया है। यह कोष्ठक स्व० किशोरलालभाई तथा नरहरिभाई परीख ने तैयार किया था और बापू ने उसे स्वीकृति दी थी। कोष्ठक इस प्रकार है -

(१) ट्रस्टीशिप (विश्वस्तवृत्ति) वर्तमान पूजीवादी समाज व्यवस्था को मानव समानता पर आधारित समाज व्यवस्था म परिवर्तित करने का साधन जुटा देती है। वह पूंजीवाद को किसी प्रकार का प्रश्रय नहीं देती परन्तु स्वामित्व रखनेवाले वर्ग को अपना सुधार करने का अवसर प्रदान करती है। वह इस विश्वास पर काम करती है कि मानवी प्रकृति कभी भी पाप विमुक्ति के विमुख नहीं।

(२) संपत्ति के निजी स्वामित्व का कोई अधिकार वह स्वीकृत नहीं करती, सिवा इसके कि समाज अपनी भलाई के लिए कुछ रखने की अनुज्ञा दे।

(३) संपत्ति के स्वामित्व का एव उपयोग का कानून से नियमन करना वह अपनी क्षमा के बाहर नहीं मानती।

(४) इस प्रकार राज्य की ओर से नियमित विश्वस्तता के मातहत व्यक्ति अपने स्वार्थी संतृप्ति के लिए या समाज के हितो का ख्याल न करते हुए संपत्ति रखने या अपनी संपत्ति का इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र नहीं होगा।

(५) जिस तरह यह प्रस्ताव है कि एक योग्य न्यूनतम (डिसेंट मिनिमम) जीवन वेतन निर्धारित किया जाय उसी तरह अधिकतम (मेक्सिमम) आय की सीमा निर्धारित की जाय, जो कि किसी व्यक्ति को समाज मे अनुज्ञात हो। इस प्रकार के न्यूनतम और अधिकतम आयों म युक्तिसगत और न्यायसगत अंतर हो इस अन्तर को समाप्त करने की वृत्ति रहे और उस दिशा मे ले जानेवाला परिवर्तन समय पर होता रहे।

"अपनी धन सपत्ति का प्रयोग इस प्रकार करो कि उससे अपने पडोसी की हानि न हो। यह केवल कानूनी तत्व ही नही है, जीवन का एक महान सिद्धात है। अहिंसा का सुयोग्य आचरण करने की यह कुजी है।" ('गांधीजी के लेख' ५-३-'३६)

इसी दृष्टि से विनोबाजी कहते हैं कि सपत्ति समाज मे विपुल हो और उसका एक स्वरूप हो। 'धन कण घर-घर में' यदि इकट्ठा करना ही हो, तो सपत्ति कुछ विशेष व्यक्तियों के हाथ मे रखने के बजाय समाज मे सबके हाथ मे रहेगी, इस प्रकार उसे रखा जाय। यह कैसे ? देहात मे अनुभवी लोग एक तालाब खोद रखते हैं। इस तालाब पर किसी एक का स्वामित्व नही होता, सिचाई के लिए भी इस तालाब का उपयोग नही होता, लेकिन उसके होने के कारण ग्राम मे सिचाई के समस्त कुँओ मे सालभर पर्याप्त पानी रहता है। सर्वोदय की आर्थिक रचना मे इस प्रकार की सापत्तिक आयोजना की आवश्यकता होगी। सपत्ति थोडी-थोडी सबके पास रहेगी और कुछ ऐसी होगी, जिसके विषय मे हर किसीको अपनेपन का भान दिलाया गया हो।

सवो का उदय जहाँ अभिप्रेत है, वहाँ 'उदय' शब्द का अभिप्राय भी समझ लें। 'उदय' मे बाधाओ का निरास, अवसरो की लब्धि, इस लब्धि का भान सार्वत्रिक अभिक्रम और सभी की उन्नति की ओर आरोहण निहित है। किसी भी योजना मे, प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व के सपूर्ण प्रकटीकरण की स्वतत्रता का अस्तित्व अतीव आवश्यक है, गाधीजी का यह आग्रह सत्य-आग्रह है।

'सर्व' का एक अर्थ समग्र भी है। मानव की आर्थिक उन्नति उसकी नैतिक उन्नति का खयाल छोडकर हो नहीं सकती। यदि कही होती हुई दीखती हो, तो वह आर्थिक उन्नति नहीं, अनर्थ-परम्परा की पूर्वसूचना है, यह विचार सर्वोदय के अर्थशास्त्र मे अतर्भूत है। यह अर्थशास्त्र मानता है कि युक्ति के आधार से ही नीति का व्यवहार सधता है और नैतिक व्यवहार से आर्थिक सयोजना हो सकती है, वरन् वह आर्थिक योजना सयोजना नही, मृत्युयात्रा होगी।"

अर्थशास्त्र के विचार मे कुछ बातो का विशेष विचार किया जाता है। इन बातो के विषय म सर्वोदय की क्या दृष्टि है, देखें।

निजी सम्पत्ति

निजी सम्पत्ति के विषय मे गाधीजी कहते हैं : "निजी सम्पत्ति का, सत्या का खातमा असग्रह के नैतिक विचार का आर्थिक क्षेत्र मे प्रयोग मात्र है। और यदि

लोगों ने खुद होकर इस विचार को अपना लिया, या शांतिपूर्वक समझाकर उन्हें इस बात की स्वीकृति के लिए उद्यत किया गया तो, इससे अच्छी कोई बात हो नहीं सकती।' (यंग इंडिया' : १५-११-'२८)

इस विषय में सर्वोदय की दृष्टि यह है कि लोकशिक्षण के द्वारा "समर्थ साधनवालों को सार-सभाले (ट्रस्टीशिप) के सिद्धांत से और गरीबों को स्वय-सहायता के सिद्धात से दीक्षित करना चाहिए।' ('हरिजन' ४ ८-'४६) सर्वोदय विचार को "यह विश्वास है कि मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति को इस प्रकार विकसित कर सकता है कि जिससे (दुनिया में) शोषण की मात्रा कम से-कम रहे।" (गांधीजी का लेख 'माडर्न रिव्यू' अक्तूबर १९३५) इसी विश्वास के कारण विश्वस्तवृत्ति (ट्रस्टीशिप) का निम्न कोष्ठक सर्वोदय-विचारवालों ने दुनिया के सामने प्रस्तुत किया है। यह कोष्ठक स्व० किशोरलालभाई तथा नरहरिभाई परीख ने तैयार किया था और बापू ने उसे स्वीकृति दी थी। कोष्ठक इस प्रकार है :

(१) ट्रस्टीशिप (विश्वस्तवृत्ति) वर्तमान पूंजीवादी समाज व्यवस्था को मानव-समानता पर आधारित समाज-व्यवस्था में परिवर्तित करने का साधन जुटा देती है। वह पूंजीवाद को किसी प्रकार का प्रश्रय नहीं देती, परन्तु स्वामित्व रखनेवाले वर्ग को अपना सुधार करने का अवसर प्रदान करती है। वह इस विश्वास पर काम करती है कि मानवी प्रकृति कभी भी पाप विमुक्ति के विमुख नहीं।

(२) संपत्ति के निजी स्वामित्व का कोई अधिकार वह स्वीकृत नहीं करती, सिवा इसके कि समाज अपनी भलाई के लिए कुछ रखने की अनुज्ञा दे।

(३) संपत्ति के स्वामित्व का एवं उपयोग का कानून से नियमन करना वह अपनी कक्षा के बाहर नहीं मानती।

(४) इस प्रकार राज्य की ओर से नियमित विश्वस्तता के मातहत व्यक्ति अपने स्वार्थी सतृप्ति के लिए या समाज के हितों का ख्याल न करते हुए संपत्ति रखने या अपनी संपत्ति का इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र नहीं होगा।

(५) जिस तरह यह प्रस्ताव है कि एक योग्य न्यूनतम (डिसेंट मिनिमम) जीवन-वेतन निर्धारित किया जाय, उसी तरह अधिकतम (मेक्सिमम) आय की सीमा निर्धारित की जाय, जो कि किसी व्यक्ति को समाज में अनुज्ञात हो। इस प्रकार के न्यूनतम और अधिकतम आयों में युक्तिसंगत और न्यायसंगत अंतर हो, इस अन्तर को समाप्त करने की वृत्ति रहे और उस दिशा में ले जानेवाला परिवर्तन समय पर होता रहे।

"अपनी धन संपत्ति का प्रयोग इस प्रकार करो कि उससे अपने पडोसी की हानि न हो। यह केवल कानूनी तत्त्व ही नही है, जीवन का एक महान सिद्धात है। अहिंसा का सुयोग्य आचरण करने की यह कुजी है।" ('गाधीजी के लेख' ५-३ '३६)

इसी दृष्टि से विनोबाजी कहते हैं कि सपत्ति समाज मे विपुल हो और उसका एक स्वरूप हो। 'धन कण घर-घर में' यदि इकट्ठा करना ही हो, तो सपत्ति कुछ विशेष व्यक्तियो के हाथ मे रखने के बजाय समाज म सबके हाथ म रहेगी, इस प्रकार उसे रखा जाय। वह कैसे? देहात मे अनुभवी लोग एक तालाब खोद रखते हैं। इस तालाब पर किसी एक का स्वामित्व नहीं होता, सिचाई के लिए भी इस तालाब का उपयोग नही होता, लेकिन उसके होने के कारण ग्राम मे सिचाई के समस्त कुँओ मे सालभर पर्याप्त पानी रहता है। सर्वोदय की आर्थिक रचना मे इस प्रकार की सापत्तिक आयोजना की आवश्यकता होगी। सपत्ति थोडी-थोडी सबके पास रहेगी और कुछ ऐसी होगी, जिसके विषय मे हर किसीको अपनेपन का भान दिलाया गया हो।

सबो का उदय जहाँ अभिप्रेत है वहाँ 'उदय' शब्द का अभिप्राय भी समझ लें। 'उदय' म बाधाओ का निरास, अवसरो की लब्धि, इस लब्धि का भान सार्वत्रिक अभिक्रम और सभी की उन्नति की ओर आरोहण निहित है। किसी भी योजना मे, प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व के सपूर्ण प्रकटीकरण की स्वतत्रता का अस्तित्व अतीव आवश्यक है गाधीजी का यह आग्रह सत्य आग्रह है।

'सर्व' का एक अर्थ समग्र भी है। मानव की आर्थिक उन्नति उसकी नैतिक उन्नति का खयाल छोडकर हो नहीं सकती। यदि कहीं होती हुई दीखती हो, तो वह आर्थिक उन्नति नहीं, अनर्थ परम्परा की पूर्वसूचना है, यह विचार सर्वोदय के अर्थशास्त्र मे अतर्भूत है। यह अर्थशास्त्र मानता है कि युक्ति के आधार से ही नीति का व्यवहार सधता है और नैतिक व्यवहार से आर्थिक सयोजना हो सकती है, वरन् वह आर्थिक योजना सयोजना नहीं, मृत्युयात्रा होगी।"

अर्थशास्त्र के विचार म कुछ बातो का विशेष विचार किया जाता है। इन बातो के विषय म सर्वोदय की क्या दृष्टि है, देखें।

निजी सम्पत्ति

निजी सम्पत्ति के विषय म गाधीजी कहते हैं : "निजी सम्पत्ति का, सत्या का सातमा असग्रह के नैतिक विचार का आर्थिक क्षेत्र म प्रयोग मात्र है। और यदि

"अपनी धन संपत्ति का प्रयोग इस प्रकार करो कि उससे अपने पडोसी की हानि न हो। यह केवल कानूनी तत्त्व ही नही है, जीवन का एक महान सिद्धात है। अहिंसा का सुयोग्य आचरण करने की यह कुजी है।" ('गाधीजी के लेख' ५-३-'३६)

इसी दृष्टि से विनोबाजी कहते हैं कि सपत्ति समाज मे विपुल हो और उसका एक स्वरूप हो। 'धन कण घर-घर में' यदि इकठ्ठा करना ही हो, तो सपत्ति कुछ विशेष व्यक्तियो के हाथ मे रखने के बजाय समाज म सबके हाथ में रहेगी, इस प्रकार उसे रखा जाय। वह कैसे ? देहात मे अनुभवी लोग एक तालाब खोद रखते हैं। इस तालाब पर किसी एक का स्वामित्व नही होता, सिंचाई के लिए भी इस तालाब का उपयोग नही होता, लेकिन उसके होने के कारण ग्राम मे सिंचाई के समस्त कुँओ म सालभर पर्याप्त पानी रहता है। सर्वोदय की आर्थिक रचना मे इस प्रकार की सापत्तिक आयोजना की आवश्यकता होगी। सपत्ति थोडी-थोडी सबके पास रहेगी और कुछ ऐसी होगी, जिसके विषय मे हर किसीको अपनेपन का भान दिलाया गया हो।

सबो का उदय जहाँ अभिप्रेत है, वहाँ 'उदय' शब्द का अभिप्राय भी समझ लें। 'उदय' मे बाधाओ का निरास, अवसरो की लब्धि, इस लब्धि का भान सार्वत्रिक अभिक्रम और सभी की उन्नति की ओर आरोहण निहित है। किसी भी योजना मे, प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व के सपूर्ण प्रकटीकरण की स्वतत्रता का अस्तित्व अतीव आवश्यक है गाधीजी का यह आग्रह सत्य-आग्रह है।

'सर्व' का एक अर्थ समग्र भी है। मानव की आर्थिक उन्नति उसकी नैतिक उन्नति का खयाल छोडकर हो नहीं सकती। यदि कही होती हुई दीखती हो, तो वह आर्थिक उन्नति नही, अनर्थ-परम्परा की पूर्वसूचना है, यह विचार सर्वोदय के अर्थशास्त्र म अतर्भूत है। यह अर्थशास्त्र मानता है कि युक्ति के आधार से ही नीति का व्यवहार सधता है और नैतिक व्यवहार से आर्थिक सयोजना हो सकती है, वरन् वह आर्थिक योजना सयोजना नहीं, मृत्युयात्रा होगी।"

अर्थशास्त्र के विचार मे कुछ बातो का विशेष विचार किया जाता है। इन बातो के विषय म सर्वोदय की क्या दृष्टि है, देखें।

निजी सम्पत्ति

निजी सम्पत्ति के विषय म गाधीजी कहते हैं : "निजी सम्पत्ति का, सस्था का खातमा असग्रह के नैतिक विचार का आर्थिक क्षेत्र म प्रयोग मात्र है। और यदि

लोगों ने खुद होकर इस विचार को अपना लिया, या शांतिपूर्वक समझाकर उन्हें इस बात की स्वीकृति के लिए उद्यत किया गया तो, इससे अच्छी कोई बात हो नहीं सकती।" (यंग इंडिया' : १२-११ '२८)

इस विषय में सर्वोदय की दृष्टि यह है कि लोकशिक्षण के द्वारा "समर्थ साधनवालों को सार-सभाले (स्टूवर्डशिप) के सिद्धात से, और गरीबों को स्वयं-सहायता के सिद्धात से दीक्षित करना चाहिए।" ('हरिजन' ४ ८-'४६) सर्वोदय-विचार को "यह विश्वास है कि मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति को इस प्रकार विकसित कर सकता है कि जिससे (दुनिया में) शोषण की मात्रा कम से-कम रहे।" (गाधीजी का लेख 'माडर्न रिव्यू', अक्तूबर १९३५) इसी विश्वास के कारण विश्वस्तवृत्ति (ट्रस्टीशिप) का निम्न कोष्ठक सर्वोदय-विचारवालो ने दुनिया के सामने प्रस्तुत किया है। यह कोष्ठक स्व० किशोरलालभाई तथा नरहरिभाई परीख ने तैयार किया था और बापू ने उसे स्वीकृति दी थी। कोष्ठक इस प्रकार है :

(१) ट्रस्टीशिप (विश्वस्तवृत्ति) वर्तमान पूँजीवादी समाज व्यवस्था को मानव-समानता पर आधारित समाज-व्यवस्था में परिवर्तित करने का साधन जुटा देती है। वह पूँजीवाद को किसी प्रकार का प्रश्रय नहीं देती, परन्तु स्वामित्व रखनेवाले वर्ग को अपना सुधार करने का अवसर प्रदान करती है। वह इस विश्वास पर काम करती है कि मानवी प्रकृति कभी भी पाप विमुक्ति के विमुख नहीं।

(२) सपत्ति के निजी स्वामित्व का कोई अधिकार वह स्वीकृत नहीं करती, सिवा इसके कि समाज अपनी भलाई के लिए कुछ रखने की अनुज्ञा दे।

(३) सपत्ति के स्वामित्व का एवं उपयोग का कानून से नियमन करना वह अपनी कक्षा के बाहर नहीं मानती।

(४) इस प्रकार राज्य की ओर से नियमित विश्वस्तता के मातहत व्यक्ति अपने स्वार्थी सतृप्ति के लिए या समाज के हितों का ख्याल न करते हुए सपत्ति रखने या अपनी सपत्ति का इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र नहीं होगा।

(५) जिस तरह यह प्रस्ताव है कि एक योग्य न्यूनतम (डिसेंट मिनिमम) जीवन-वेतन निर्धारित किया जाय, उसी तरह अधिकतम (मेक्सिमम) आय की सीमा निधारित की जाय, जो कि किसी व्यक्ति को समाज में अनुज्ञात हो। इस प्रकार के न्यूनतम और अधिकतम आयों में युक्तिसगत और न्यायसगत अंतर हो, इस अन्तर को समाप्त करने की वृत्ति रहे और उस दिशा में ले जानेवाला परिवर्तन समय पर होता रहे।

(६) गांधी-विचार के अनुकूल आर्थिक व्यवस्था मे उत्पादन का स्वरूप समाज की आवश्यकता निश्चित करेगी, न कि व्यक्तिगत लोभ या सनक। ('हरिजन' . २५-१०-'५२)

इसीसे सम्बन्धित एक प्रश्न उपस्थित है मनुष्य की प्रेरणा का। मनुष्य परिश्रम किसलिए करता है ? यह प्रश्न नित नयी चर्चा का है। अक्सर कहा जाता है कि मनुष्य अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए ही परिश्रम करता है। परन्तु यह अधूरा ज्ञान है, विपरीत ज्ञान भी है। मनुष्य स्वार्थ के लिए भी काम करता है, परार्थ के लिए भी करता है और परमार्थ के लिए भी करता है। सामाजिक प्रवाह जिस समय जैसा हो उस प्रकार साधारण मनुष्य बरतता है। पर मनुष्य की मूल प्रवृत्ति तथा समाज का स्थायी प्रवाह, 'सत' प्रवृत्तिर्भूतानाम्' एवं 'मा शुच. संपद दैवीं' अभिजातोऽसि' के अनुसार परमार्थ-प्रवण होता है। सुज्ञो का यह अनुभव है। व्यक्ति के विषय मे तो यह यथार्थ है ही, पर समूह के विषय मे गांधीजी कहते हैं कि अहिंसा—परमार्थ-प्रवणता वैयक्तिक ही नहीं, सामाजिक भी है। इसीको समझाने और सिद्ध करने मे सर्वोदय-विचारक अपना जीवन सार्थक समझते हैं।

निजी सपत्ति और मानवी प्रेरणा के विषय मे सोचने के बाद, अर्थशास्त्र के (१) उत्पादन, (२) सभुजन, (३) वितरण या विभाजन और (४) विनिमय (एक्स्चेंज), इन चार विभागो के विषय मे सर्वोदय की विचार-दृष्टि साररूपेण देख लें।

उत्पादन

उत्पादन की दृष्टि क्या हो, इसका सकेत विश्वस्तवृत्ति के कोष्ठक मे आ गया है। उत्पादन मे श्रम एक महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित अग है। विनोबाजी ने राष्ट्रीय योजना-आयोग को दो मूलभूत सूचनाएँ की थीं—(१) देश अनाज में स्वावलम्बी हो, (२) काम चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्य को काम मिले।

इस दूसरी सूचना म परिश्रम की महत्ता की ओर निर्देश किया गया है। सर्वोदय-विचार मानता है कि जिस प्रकार मानवी देह सुचारु रूप से काम कर सके इसलिए उसे अन्न की आवश्यकता है, उसी तरह मनुष्य के गुण-विकास के लिए, उसकी मानवता का सरक्षण और सवर्धन होने के लिए उसे श्रम में जुटे रहने को नितान्त आवश्यकता है। "श्रम मानव के भीतर छिपे हुए पशु को सुनियत्रित कर, उसके व्यक्तित्व को विकसित करता है तथा उसकी सर्वोत्तम शक्ति को प्रकट करने का उसे अवसर देता है।" (जे० सी० कुमारप्पा: 'इकॉनामी आफ परमेनेन्स') श्रम के कारण मनुष्य वस्तुओ का और सेवाओ

इस विभाग मे ध्यान मे रखने के आवश्यक सूत्र है स्वदेशी, क्षेत्रीय स्वय-पूर्णता स्वावलम्बन, वैश्विक सहयोग और भूतानुकूलता। आज विनिमय का साधन है पैसा। पैसे पर ही आधारित अर्थ-व्यवस्था ने आज दुनिया को बहुत मुसीबतो मे फसाया है। पैसा शोषण का एक साधन बन गया है। पैसे के मूल्य मे जीवन पद्धति के अनुसार फरक पडता है। एक ही समय मे, एक रुपया किसी एक गरीब के पास एक समय के भोजन का पर्याय होता है, तो किसी श्रीमान् के पास शायद आधी सिगरेट का। फिर पैसा आज एक बात बोलेगा, तो कल दूसरी। उसम कोई स्थिरता है नही। पैसे के द्वारा होनेवाला शोषण कम करने के कुछ इलाज इस प्रकार सुझाये जा सकते है

(१) सरकार अपना लगान अनाज मे वसूल करे और अपने कर्मचारियो को वेतन म कुछ निश्चित अनाज और कुछ नकद रकम दे।

(२) व्यवस्था ऐसी खडी की जाय कि पैसे का विनियोग कम स-कम हो।

(३) समय समय पर बड़ी रकम की नोटो का अवमूल्यन किया जाय।

(४) एक सीमा के बाहर सम्पत्ति रखने से कानूनन रोका जाय।

(५) जिस प्रकार अनाज आदि सम्पत्ति म छीजन होती है, उसी प्रकार नकदी रकम म भी छीजन हो, इसकी कुछ तदबीरें सोची जायँ।

सर्वोदय-विचार के अनुसार अर्थशास्त्र की दृष्टि के विषय मे कुछ बातें सूत्र-रूप म रखने की यहाँ कोशिश की गयी है। आशा है विश्वस्तवृत्ति, सामूहिक उत्तरदायित्व, निजी सम्पत्ति का निरसन और दान वृत्ति—य चार ग्रामदान-विषयक सूत्र सर्वोदयी अर्थशास्त्र के साररूपेण सूत्र हैं, यह बात भी यहाँ सहज ही पाठकों के ध्यान म आ जायगी।

('मैत्री' से साभार)

श्री अच्युतभाई देशपाडे, गाधी भवन, औरगाबाद (महाराष्ट्र)

ग्रामदान के सम्बन्ध में संघ द्वारा स्वीकृत नीति

[५, ६, ७ मई, १९७१ को नासिक मे सर्व सेवा सघ का अधिवेशन हुआ। उस अधिवेशन मे स्वीकृत हुई नीति प्रस्तुत है। स०]

(१) ग्रामदान सकल्प पत्र पर हस्ताक्षर प्राप्त करने का कार्य आन्दोलन के लिए एक प्रारम्भिक, लेकिन आवश्यक कदम है। इसलिए पूर्व स्वीकृत शर्तों के आधार पर घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर कराने का काम चलना चाहिए। किन्तु हस्ताक्षर प्राप्त करने मे पूरी-पूरी सतर्कता और सावधानी बर्तनी चाहिए। इसके लिए हस्ताक्षर लेने के पूर्व गाँव की ग्रामसभा का आयोजन करना चाहिए और इसमे सारा विचार समझाना चाहिए, छोटे-छोटे समूहो मे चर्चा-गोष्ठी द्वारा *विचार समझाना चाहिए और गाँव के सहयोगियो को साथ लेकर* भी व्यक्तिगत हस्ताक्षर प्राप्त करना चाहिए। हस्ताक्षर देनेवाले ग्रामवासियो की सभा करके सामूहिक सकल्प अवश्य दोहराया जाना चाहिए।

ग्रामदान के लिए सकल्प और पुष्टि एक ही प्रक्रिया के अग हैं, इसलिए दोनों के बीच समय का अन्तर नही रहना चाहिए। यह स्पष्ट है कि ग्रामसभा-गठन, *भूमि वितरण, ग्राम-कोष निर्माण और मालकियत के विधिवत् हस्तातरण* के बिना ग्रामदान सकल्प मात्र ही रहेगा और उसका समाज पर अपेक्षित परिणाम भी नहीं आयेगा। इसलिए सकल्पित ग्रामदानो मे पुष्टि के लिए जोरदार प्रयत्न करना हमारी प्राथमिक जिम्मेदारी है। जिन ग्रामो मे पहले ग्रामदान का सकल्प हुआ है, वहाँ पुष्टि का अभियान चलाना तो आवश्यक है ही, साथ ही ऐसे नये क्षेत्रो में भी जहाँ अब 'सकल्पित-ग्रामदान' हो, वहाँ भी तुरन्त ही पुष्टि का कार्य उठा लेना चाहिए।

(२) सकल्प के पश्चात् अनौपचारिक पुष्टि (डीफैक्टो) का कार्य करना अगला कदम है। इसमे तुरन्त ग्रामसभा का गठन और सर्वानुमति से ग्रामसभा की कार्य-समिति का गठन, ५ प्रतिशत भूमि निकालने और उसका भूमिहीनो मे वितरण, ग्रामसभा सदस्यों द्वारा ग्राम कोष के लिए अपना भाग अर्पित करने, ग्राम शान्ति सेना की इकाई का गठन और कानूनी पुष्टि के लिए आवश्यक कागजात तैयार करना चाहिए। अनौपचारिक पुष्टि सपन्न होने पर ही इन्ह 'ग्रामदान' कहा जायगा।

(३) अनौपचारिक पुष्टि सम्पन्न करने के पश्चात जिन प्रदेशों मे ग्रामदान-विधान बन गये हैं, वहाँ कानूनी पुष्टि के लिए कोशिश करनी चाहिए।•

सम्पादक मण्डल :
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १९
अंक ११
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

जून, '७१

निवेदन

- 'नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं म व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : जून, '७१
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

सर्वोदय-साहित्य-सेट (१९७१—१९७२)

[मई १९७१ से चालू]

रु० ७ में १२०० पृष्ठ

१—आत्मकथा (१८६९-१९२०)	गांधीजी	१)
२—बापू-कथा (१९२०-१९४८)	हरिभाऊजी	३)
३—तीसरी शक्ति (१९४८-१९६९)	विनोबा	३)
४—गीता-प्रवचन	विनोबा	२)
५—मेरे सपनों का भारत	गांधीजी	२)
६—संघ-प्रकाशन की एक पुस्तक		)५०
		११)५०

लगभग १२०० पृष्ठों का यह साहित्य-सेट रु० ७ में मिलेगा।

केवल एक ही सेट मँगाने पर डाक-खर्च के लिए रु० २ अधिक भेजना चाहिए। ७ सेट एकसाथ मँगाये जायेंगे तो रेलवे पार्सल से फ्री डिलीवरी भेजे जा सकेंगे। २८ सेटों का पूरा बण्डल काशी से मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसे कमीशन व फ्री डिलीवरी।

*

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी-१

आवरण मुद्रक [illegible] प्रेस मानमंदिर वाराणसी

नयी तालीम

सर्व-सेवा-संघ की मासिकी

वर्ष : १९
अंक : १२

जुलाई, १९७१

जीवन की शिक्षा

शिक्षा में क्रान्ति

नयी तालीम की स्थापना अर्थात् शिक्षा में क्रान्ति

वर्ष : १६
अंक : १२

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसका प्रयोजन दोहरा है—समाज को बदलना और समाज को बनाना। गांधीजी पूँजीवादी सामन्तवादी मूल्यों पर आधारित पुराने समाज को बदल कर शोषणविहीन, वर्ग वर्ण-भेद-मुक्त लोकतन्त्र बनाना चाहते थे तो उन्होंने सामन्ती और परम्परागत सीमाओं से आबद्ध साम्राज्यवादी प्रशासन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गठित पुरानी तालीम के स्थान पर नयी तालीम की स्थापना की। अपने सपनों के भारत के निर्माण के लिए उन्होंने जिस अहिंसक प्रक्रिया की खोज की थी उन्होंने उसीका नाम रखा था 'नयी तालीम'—बुनियादी शिक्षा। जहाँ तनिक भी शोषण है, वहाँ हिंसा है, और जहाँ हिंसा है वहाँ लोकतन्त्र टिक नहीं सकता क्योंकि लोकतन्त्र तो अशोषण की विशुद्ध प्रक्रिया है। शोषण की प्रवृत्ति जन्मी थी, स्वयं उत्पादन न करके दूसरों से उत्पादन कराकर उपभोग करने की प्रवृत्ति से। इसीलिए गांधीजी ने एक ऐसी शिक्षण-पद्धति की कल्पना की थी, जिसके केन्द्र-बिन्दु में समाजोपयोगी दस्तकारी थी। उन्होंने जोर दिया था कि बालक विद्यालय में प्रवेश के समय से निकलने समय तक एक समाजोपयोगी उत्पादक काम को वैज्ञानिक ढंग से सीखता रहे। उत्पादक उद्योग के सतत करते रहने से स्वावलम्बन की प्रवृत्ति का उदय होता है और जब स्वावलम्बन की प्रवृत्ति संस्कार बन जाती है तो शोषण की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है।

और चीन मे जब अध्यक्ष माओ ने देखा कि चीन का साम्यवादी आन्दोलन एक ऐसा मोड ले रहा है जिसमे पूंजीवादी और विशेषाधिकार प्राप्त नौकरशाही (ब्यूरोक्रैसी) के पनपने की आशका है तो उन्होने देश मे 'सात मई स्कूल' चलाये, जहां चीन के ब्यूरोक्रट्स टेक्निशियन्स और बुद्धिजीवियों का पुनर्शिक्षण होता है। इन स्कूलो मे रहकर इन्हे महीनो और कभी-कभी वर्षों तक हाथ से उत्पादक काम करना पडता है, जिससे उनका वैचारिक परिष्करण और परिशोधन (इण्डाक्ट्रिनेशन) होता है। सीमूर-टॉप्गि जो अभी हाल मे चीन अमेरिका के सुधरे हुए सम्बन्ध के कारण चीन घूमकर लौटे हैं—'दि न्यूयार्क टाइम्स' मे लिखते हैं—"पीकिंग के पूर्वी देहाती क्षेत्र मे इस प्रकार के 'सात मई स्कूल' मे 'मिग कुई शान' नाम के ३८ वर्ष के एक विद्यार्थी हैं, जो कभी पीकिंग के सास्कृतिक ब्यूरो के शिक्षा विभाग के उप मुख्याधिकारी थे, और जो अब धान के खेत मे मजदूर का काम करते हैं। इसी स्कूल मे २६ वर्षीय श्रीमती सू इग' हैं जो पहले अध्यापिका थी। अब वह 'राजगीर' का काम करती है। यही 'तिन-चि-चेन' नामक व्यक्ति थे, जो कभी किसी ट्रेड यूनियन के उपाध्यक्ष थे, और अब जो स्कूल द्वारा चलाये जानेवाले कारखाने मे पानी रखने का बर्तन बनाते है। यही चीन की सास्कृतिक क्रान्ति हैं, जिससे चीन मे एक नये समाज और नये मानव का निर्माण हो रहा है और जिसकी बदौलत सामान्य चीनवासी को एक नयी प्रतिष्ठा का भान हुआ है। आम जनता की भौतिक स्थिति मे जो प्रगति हुई है, वह भी आश्चर्यजनक है। वे असख्य भूखे और बीमार भिक्षुक, जिनसे कभी चीन भरा था, अब कही दिखाई नही देते। चीन मे एक नया समाज बन रहा है।"

अत- अगर समाजवादी समाज बनाना है और वह लोकतत्रीय ढग से, तो यह शिक्षा प्रणाली मे परिवर्तन से ही बनेगा और जिस एक परिवर्तन की सबसे अधिक आवश्यकता है वह यह कि देश का प्रत्येक छात्र हाथ से कोई न कोई समाजोपयोगी धन्धा निष्ठापूर्वक नित्य डेढ दो घटे करे। शिक्षा मे यही सबसे बडी क्रान्ति होगी। जिस दिन यह हो जायगा उसी दिन बुनियादी शिक्षा की स्थापना भी हो जायगी।

—वशीधर श्रीवास्तव

विनोबा के विचार

मैं इस तालीम से बेहद असंतुष्ट हूँ। असलियत से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। आज के जमाने की माँग है कि आज जो तालीम चल रही है उसे जल्द-से-जल्द दफना दिया जाय। दफनाना दो तरह से होता है। पिता की लाश इज्जत के साथ दफनायी जाती है। लेकिन हमारी यह तालीम इज्जत के साथ दफनाने लायक है ही नहीं। यह बुरी चीज है, जो हिन्दुस्तान के जिगर को खा रही है। यह लोगो का पराक्रम खतम कर रही है।

× × ×

मैंने सरकार से कहा है कि परीक्षा के लिए डिग्री की कैद नहीं होनी चाहिए। जो नौकरी दे वह वह परीक्षा ले ले। जो परीक्षा देना चाहे वह फीस देकर परीक्षा दे और पास हुआ तो उसे नौकरी मिलेगी।

× × ×

सर्वोदय विचार की यही माँग है कि तालीम सरकार के हाथ मे नही होनी चाहिए। अपनी सरकार को चाहिए कि वह देश के विद्वानो को आजादी दे दे और लोगो को प्रेरणा दे कि लोग जिस किस्म की तालीम चाहते हैं लोगों को दे सकें।

× × ×

तालीम मे बच्चों को कुछ-न-कुछ मुफीद काम सिखाना चाहिए, आज ऐसी तालीम नहीं दी जाती, जिससे देश की दौलत बढ़े। तालीम का दूसरा नुक्स यह है कि अंग्रेजी लादी जाती है जिसकी वजह से लडके अपनी मादरी जबान भी ठीक से नहीं सीख पाते। तीसरा नुक्स यह है कि इस तालीम में आध्यात्मिक चीज नही है। कहा जाता है कि बाइबिल, कुरान शरीफ, गीता, जपुजी आज नहीं सिखा सकते। यानी जिन चीजों ने वर्षों से हम लोगो के दिल और दिमाग पर असर डाला है और जिनसे लोगों का स्वभाव बनता है, वह सब स्कूलो म नहीं सिखा सकते। कहा जाता है कि स्कूलो में धर्म निरपेक्ष ज्ञान नही दिया जा सकता है। लोग कहते हैं मजहबवाली जो किताबें हैं उनकी कोई जरूरत नहीं है। अब आप जरा सोचिए हिन्दी मे तुलसी के रामायण से अच्छी कौन किताब होगी, जो साहित्य की दृष्टि से बढ़कर हो। संस्कृत मे उपनिषद्, रामायण, महाभारत, तमिल मे कुरल एव रामायण, वहां के भक्तों

के भजन, इनसे बढकर कौन चीज है जो साहित्य के ख्याल से सीखने लायक है। हिन्दुस्तान का कुल साहित्य धर्म के साथ जुडा हुआ है, फिर चाहे वह हिन्दी का हो, बगाली का हो पजाबी का हो या तमिल का हो। चैतन्य, कबीर, मीरा, नानक, तुलसी, इनको टालकर आप कौन सी चीज बच्चो को सिखानेवाले हैं। ये सभी चीजें धर्म निरपेक्षता म नही आती, यो कहकर आप पढाना छोड देंगे तो फिर क्या पढायेंगे। जिस तालीम का रुहानियत से कोई वास्ता नही, जिसमे काई चीज पैदा करने का इल्म नही, जिसमे मातृभाषा का ज्ञान नही, ऐसी तालीम से क्या फायदा होनेवाला है। ऐसी तालीम पाने से तो तालीम न पाना बेहतर है।

× × ×

हमारे देश मे यह बात चल पडी है कि जो हाथ से काम करगा उसको इज्जत कम होगी। शिक्षक, प्रोफेसर, डाक्टर, वकील, ये लोग हाथो से काम नही करेंग, लेकिन इनकी इज्जत ज्यादा होगी। वे शरीरश्रम से नफरत करेंगे। भगत, बाबा, फकीर, साई, सन्त, महात्मा, ये भी हाथ स काम नही करेंगे। उत्पादन के काम में कोई भाग नही लेंगे। यह पहले से चला आया है। अंग्रेजी सीखे लोग भी कभी उत्पादन का काम नही करेंगे। यानी एक मध्यम वर्ग खडा हो रहा है इस तालीम से, जो खुद काम नही करेगा और दूसरो से काम कराता रहेगा। इस प्रकार यह शिक्षा वर्ग सघर्ष को जन्म दे रही है।

× × ×

आज की शिक्षा मे बहुत बडी खामी यह है कि इसमे उद्योग की शिक्षा नही दी जाती। इससे शिक्षा भी बढ रही है और बेकारी भी बढ रही है। यानी शिक्षा और बेकारी दोनो पर्यायवाची बन गये है।

× × ×

आप लाख कोशिश करें आजाद हिन्दुस्तान का दिमाग परकीय भाषा को कबूल नही करेगा। बच्चे उसे कबूल नही कर रहे हैं इसी से जाहिर होता है कि उनका दिमाग आजाद है। अगर वे अंग्रेजी मे दिलचस्पी लेते तो मैं हिन्दुस्तान के भविष्य के बारे मे मायूस हो जाता। अगर बच्चो पर अंग्रेजी न लादी जाय और मातृभाषा के जरिए उन्हें सब विषयो का ज्ञान दिया जाय तो बहुत ही कम समय मे वे ज्ञान ग्रहण कर सकेंगे। प्रयोग करने से यह बात सिद्ध हो जायगी।

× × ×

मेरी निगाह मे इन दिनो तालीम पर जो खर्च हो रहा है, वह लगभग

बेकार है। अगर मुझसे पूछा जाय कि क्या आप इस तालीम के मुकाबिले यह पसंद करेंगे कि लड़कों को कतई तालीम न दी जाय तो मैं हाँ कहूँगा। मैं मानता हूँ कि आज जो तालीम दी जा रही है, व न दी जाय और लड़कों को ऐसा ही छोड़ दिया जाय, तो उससे देश का नुकसान नहीं होगा। आज लड़कों को ऐसे ही छोड़ दिया जाय और तालीम पर जो खर्च किया जा रहा है वह न किया जाय, तो मैं शुक्रिया अदा करूँगा।

× × ×

तालीम की तीन कसौटियाँ हैं संयम, निर्भयता और विचार स्वातंत्र्य। *अगर शिक्षा सरकार के हाथ में गयी तो इन तीन गुणों का विकास नहीं होगा।* इसलिए शिक्षा शासन मुक्त रहे।

× × ×

ग्रामस्वराज्य की स्थापना के बाद गाँव का शिक्षण गाँव की पद्धति से चलेगा। प्रत्येक गाँव ही हमारा विद्यालय हो। मेरी कल्पना है कि हर गाँव में सम्पूर्ण तालीम होनी चाहिए। जिसे हम यूनिवर्सिटी कहते हैं वह हर गाँव में होनी चाहिए क्योंकि हर गाँव चाहे वह कितना ही छोटा हो सारी दुनिया का प्रतिनिधि है। कुल दुनिया थोड़े में वहाँ मौजूद है अतः थोड़े में वहाँ पूरी तालीम मिलनी चाहिए।

× × ×

आज की समाज रचना कृत्रिम है। उसका आधार विषमता पर है। इस लिए *नयी तालीम से जो लड़का पैदा होगा वह समाज के खिलाफ बागी होगा।* जैसा कि गांधीजी ने कहा था वह प्रतिकार करेगा। लेकिन उसका प्रतिकार सविनय होगा इसमें कोई शक नहीं। *नयी तालीम विद्रोह की दीक्षा है।*

× × ×

प्राथमिक पाठशाला में पढ़ानेवाले शिक्षक को कम तनख्वाह देते हैं और कालेज में पढ़ानेवाले को अधिक देते हैं—इसलिए कि उनकी अधिक जिम्मेवारी मानी जाती है। पर मुझसे पूछा जाय तो मैं कहूँगा कि प्राथमिक शिक्षक की जवाबदेही अधिक है। इसलिए प्राथमिक शिक्षकों को कम तनख्वाह और प्रोफसरों को अधिक तनख्वाह की बात हम समझ नहीं पाते। एक को पचास रुपये मिलते हैं और दूसरे को पाँच सौ रुपये। *दोनों में इतना फर्क क्यों? यह* सारी योजना पूँजीवादी दृष्टिकोण के अनुसार बनी है। वतन का सम्बन्ध योग्यता से नहीं जरूरत से हो।•

शिक्षा में क्रान्ति आचार्यकुल का लक्ष्य बने

धीरेन्द्र मजूमदार

आज देश भर में सभी स्तर के लोग शिक्षा मे बदल करना चाहते है। शिक्षा मे क्रान्ति शब्द का उच्चारण बहुत हो रहा है। वस्तुतः आचार्यकुल को इस समय इन्ही प्रश्नो पर मुख्य ध्यान देने की जरूरत है। आखिर क्रान्ति का अर्थ क्या है। आज की शिक्षा-पद्धति का केवल विरोध करने से क्रान्ति होगी नही। नये मूल्य तथा नयी बुनियाद पर नयी परिकल्पना तथा पद्धति के प्रतिपादन के बिना तो क्रान्ति होगी नही। उसके बिना परिवर्तन की सार्वजनिक मांग के कारण जो मानसिक शून्यता का निर्माण होगा उससे शुद्ध निराशा ही हाथ लगेगी।

मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ कि आप जितना भी सोचेंगे उतना ही स्पष्ट होगा कि गाधीजी द्वारा परिकल्पित बुनियादी शिक्षा ही, जिसे उन्होने आगे बढाकर नयी तालीम की सज्ञा दी थी, एक-मात्र व्यावहारिक और समाधानकारी पद्धति है, क्योंकि वह पद्धति अब तक के मान्य मूल्य तथा बुनियाद छोडकर नयी दिशा की यात्रा है इसलिए तत्काल वह कल्पना अव्यावहारिक लगेगा, कठिन लगेगा और शायद आज की परम्परागत मनःस्थिति के कारण असमाधानकारी मालूम होगा। लेकिन अगर गहराई से तथा वर्तमान परिस्थिति के सन्दर्भ मे विचार करेंगे तो स्पष्ट होगा कि शिक्षा मे क्रान्ति के लिए उसी दिशा को पकडना होगा जिसके सकेत वे बार-बार १९३७ से १९४८ तक करते रहे हैं।

आज मानव-समाज को तीन महान् देन प्राप्त है : विज्ञान, लोकतत्र तथा समाजवाद। अगर आपको शिक्षा की नयी बुनियाद डालनी है तो इन तीनो उपलब्धियों की पृष्ठभूमि मे मार्ग खोजने की आवश्यकता है। विज्ञान ने मनुष्य के अन्दर से अन्धकार दूर करके सार्वजनिक चेतना का विस्तार किया है। लोकतत्र ने मैत्री तथा स्वतत्रता की भावना के शिक्षण द्वारा समाज पर से अधिकारवाद के निराकरण का प्रयास किया है। समाजवाद ने वैयक्तिक क्रियाशीलता के स्थान पर सामाजिक क्रियाशीलता की आवश्यकता का उद्घोष किया है। वर्तमान युग की उपर्युक्त परिस्थिति मे शिक्षण को वैयक्तिक भूमिका मे सयोजित नहीं किया जा सकता।

प्राचीन काल म जब चेतन समाज का दायरा छोटा था, समस्याएँ सरल तथा स्थानीय होती थी तब व्यक्तिवादी क्रियाशीलता चल सकी थी। तब एक राजा, गुरु या पुरोहित सामाजिक समस्या का समाधान दे सके थे और उसी सन्दर्भ म यानी व्यक्तिवादी क्रियाशीलता के युग मे शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तित्व का विकास हो सका था, लेकिन धीरे धीरे जब विज्ञान का प्रसार हुआ तथा लोकतत्र का अधिष्ठान हुआ, समाज के चेतना का दायरा बढ़ा और साथ-ही साथ व्यक्तियों के चरित्र और शक्ति म बलद होने के कारण व्यक्तिवादी क्रियाशीलता समाज की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकी। तब मनुष्य ने *सस्थावादी क्रियाशीलता का आविष्कार किया।* समाज मे राजा गुरु और पुरोहित के स्थान पर राज्य, शिक्षण-सस्था तथा कल्याण सस्थाएँ क्रियाशील बनी। लेकिन अब विज्ञान के अति प्रगति तथा लोकतत्र और समाजवाद की सार्वजनिक स्वीकृति के कारण मनुष्य की चेतना सार्वजनिक बन गयी है तथा हर समस्या जागतिक बन गयी है। साथ साथ सस्थाएँ भ्रष्टाचारी बन गयी हैं। ऐसी परिस्थिति म आज की आवश्यकता सस्थावादी क्रियाशीलता को समाप्त कर सामाजिक क्रियाशीलता का मार्ग खोजना है अर्थात् आज की *आवश्यकता सस्थावाद से निकलकर समाजवाद की ओर बढने लगी है।*

जिस समय मनुष्य ने व्यक्तिवाद को छोडकर सस्थावाद की ओर बढने का निर्णय किया था, उस समय शिक्षा मे भी उसके अनुरूप क्रान्ति की थी। आज जब सस्थावाद को छोडकर समाजवाद की ओर बढना है तो शिक्षा म भी तदनुरूप क्रान्ति करने की जरूरत है। अर्थात् आज शिक्षा के मूल उद्देश्य को ही बदलना होगा। अब शिक्षा का उद्देश केवल व्यक्तित्व का विकास न होकर सम्बन्धो का विकास होगा। क्योकि सम्बन्धो के समन्वय के बिना सामाजिक क्रियाशीलता असम्भव है। *साथ-साथ शिक्षा को सस्था के घेरे से निकालकर* पूरे समाज म व्याप्त करना होगा। पूरा समाज किसी अकुश के बिना अपने-आप गतिशील तथा क्रियाशील हो, इसके लिए आवश्यक है कि पूरे समाज को समुचित तथा समन्वित शिक्षा मिले। इसी दृष्टि को सामने रखकर गाधीजी ने कहा था कि नयी तालीम की अवधि गर्भ से मृत्यु तक है, तथा इसका क्षेत्र पूरा समाज है। इसी दृष्टि को साकार करने के लिए १९५७ मे हिन्दुस्तानी तालीमी सघ ने सन्त विनोबा की प्रेरणा से यह निर्णय किया था कि पूरे गाँव को तालीम की इकाई मानकर उसे शिक्षणशाला के रूप म विकसित *करना है।*

इधर कई वर्षों से देश मे ग्राम विश्वविद्यालय की चर्चा चल रही है। लेकिन उसके लिए जो योजनाएँ बन रही हैं वे सब पुरानी मान्यता की भूमिका

मे ही बन रही हैं अर्थात् ग्राम विश्वविद्यालय से यही समझा जाता है कि गाँव मे विश्वविद्यालय की संस्थापना हो और वहाँ पुराने ढग की पढ़ाई के साथ कुछ खेती बागवानी का कार्य जोड दिया जाय। वस्तुतः उस प्रक्रिया से आज की समस्या का समाधान नही होगा। ग्राम विश्वविद्यालय का अर्थ ग्राम को विश्व-विद्यालय बनाना है। इसी भूमिका मे सोचने की जरूरत है।

लेकिन प्रश्न यह है कि आज का जो गाँव है और उसकी जीवन-पद्धति और कार्य क्रम जैसा है वैसा ही रहते हुए गाँव को शिक्षा के प्रोजेक्ट के रूप मे इस्तेमाल किया जा सकता है क्या? वस्तुत आज का गाँव कोई समाज का टुकडा नही है। वह तो जगल का ही एक हिस्सा है। जगल के जानवर ने अपने अस्तित्व के लिए व्यक्तिगत प्रयास और पुरुषार्थ को ही अपनाया है और उस प्रयास मे अपने से कमजोर जानवर को मारकर खा जाता है। उसी तरह गाँव का प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए व्यक्तिगत प्रयास तक ही पुरुषार्थ को अपनाये हुए है और उस प्रयास मे अपने से कमजोर को नोचता है। मैं अकसर विनोद मे कहता हूँ कि जगल के दो टोले हैं—एक जानवर टोला और एक मनुष्य टोला।

अतएव यदि शिक्षा मे क्रान्ति लानी है और अगर सामाजिक बुनियाद पर शिक्षा की इमारत खडी करनी है तो सबसे पहले शिक्षा की प्रक्रिया मे आज के विक्षिप्त गाँवो को व्यवस्थित समाज के रूप मे परिणित करने की कोशिश करनी होगी। सौभाग्य से पिछले २० साल से आचार्य विनोबाजी ग्रामदान तथा ग्रामस्वराज्य के आन्दोलन से इस दिशा मे निश्चित तथा व्यवस्थित कदम उठाने का सकेत कर रहे हैं। यदि आचार्यकुल ग्रामविश्व-विद्यालय के संस्थापन को अपना एकमात्र रचनात्मक कार्यक्रम मानता है तो उसके लिए विनोबाजी द्वारा प्रतिपादित इस आन्दोलन से एक सक्रिय तथा व्यवस्थित क्षेत्र मिल जायेगा। विनोबाजी कहते हैं कि इस आन्दोलन से ग्रामीणो की श्रमशक्ति बढेगी। यह एक शक्ति है। दूसरी शक्ति ज्ञान शक्ति है जो आचार्यों की है। दोनो इकट्ठी हो जायें, दोनो का योग हो, तो भारत मे ताकत बनेगी। शिक्षको की ज्ञान शक्ति और गाँव की श्रम शक्ति, दोनो को इकट्ठा करने की कोशिश है—'आचार्यकुल'।

आचार्यकुल शब्द का अर्थ ही है कि उसके शिष्य हैं। अतएव आचायकुल के सदस्य के लिए यह प्रश्न है कि उसका शिष्य कौन है। स्पष्ट है कि आज के सरकारी तत्र के विद्यार्थी आचार्यकुल के सदस्य का शिष्य नही हो सके हैं। आज जिस शिक्षा पद्धति को समूल बदलना चाहते हैं उसके शिक्षार्थी शिक्षा-

क्रान्ति के आचार्यों के शिष्य की पात्रता रखते है क्या? अतएव मैं अपने मित्रो से निवेदन करना चाहता हूँ कि एक या दो आचार्य मिलकर एक गांव को अपना शिष्य मानें और उसे ग्राम विश्वविद्यालय म परिणित करने का प्रयास करें। यह काम अनचार्टेड ओशन की यात्रा है, जिसका कोई पिछला इतिहास और परम्परा नहीं है। आचायकुल के सदस्य इस काम मे लगेंगे और चिन्तन तथा अनुभव स आगे बढ़ते रहगे। जब वे इस कार्य म लगेंगे तो उन्हे धीरे धीरे सीढी दिखाई देगी जिस पर से उच्च शिक्षा तक का मार्ग देखने को मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

बिना इस दिशा की शिक्षा पद्धति से अब जनता को राज्यवाद, संनिकवाद और नौकरशाही से मुक्त नही कर सकते। आज जमाने की मांग उस मुक्ति की है, इसलिए आज की माग समस्त स्त्री पुरुष की समुचित शिक्षा की है। यदि शिक्षा को सावजनिक बनाना है तो सवजन के स्वाभाविक कार्यक्रम को शिक्षा का माध्यम बनाना ही होगा। इसलिए शिक्षकों को पूरे समाज मे प्रवेश करना होगा। अगर विज्ञान सामान्य जन की सम्पत्ति नही हुई तो ब्यूरोक्रेसी' से मुक्ति मिल भी जाय तो उसके स्थान पर लोकतत्र की स्थापना नही होगी, टेक्नोक्रेसी (प्रोद्योगतत्र) आ जायगी। ब्यूरोक्रेसी (नौकरशाही) मे मजबूत सामान्य चेतनावान् सामान्यजन का प्रवेश हो भी सका है लेकिन 'टेकनोक्रसी' म सामान्यजन के लिए दरवाजा बन्द ही रहेगा।

अतएव मेरा निवेदन है कि आचायकुल के सदस्य उपरोक्त विचार पर गम्भीरता से ध्यान दें और हर सदस्य शिष्य के रूप मे गांव चुन ले।

२५-५ १९७१
श्री रामवचनसिंह को लिखे गये पत्र से

शिक्षा में क्रान्ति क्यों ? कैसे ?

वशीधर श्रीवास्तव

हम शिक्षा म आमूल परिवर्तन चाहते हैं, मात्र सुधार नही। हम एक भिन्न प्रकार की शिक्षा-प्रणाली ही चाहते हैं। इसलिए हम (१) शिक्षा के लक्ष्य मे, (२) शिक्षा के पाठ्यक्रम म, (३) शिक्षण-प्रणाली मे, (४) परीक्षा-पद्धति मे, (५) शैक्षिक प्रशासन मे, (६) शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर व्यय और (७) शिक्षको के चुनाव और उनकी व्यावसायिक तैयारी मे क्रान्तिकारी परिवर्तन चाहते हैं।

हमारी प्रचलित शिक्षा औपनिवेशिक काल की 'साम्राज्यवादी-सामन्तवादी-पूँजीवादी' मान्यताओ पर आधारित है। वह सामन्ती और परम्परागत सीमाओ से आबद्ध साम्राज्यवादी प्रशासन की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए गठित की गयी थी। उसकी कल्पना ही कुछ सम्भ्रान्तों के लिए की गयी थी, जो राजकाज चलाने मे अग्रेज महाप्रभुओं की सहायता करें। फलतः उसने श्वेतागो के अलगाव और देश के सर्व-साधारण को 'हीन' समझने के बौद्धिक दम्भ एव शोषण की प्रवृत्तियो को ही पनपाया और आज भी पनपा रही है।

स्वतत्र भारत एक दूसरे प्रकार का समाज बनाना चाहता है—एक ऐसा समाज जिसमे सभी मनुष्यो के लिए सम्मान और समानता होगी, किसी के द्वारा किसी का शोषण नही होगा और अपने से उत्पादित साधनो म सबका सहभाग होगा। पूँजीवाद-सामन्तवाद-मूलक औपनिवेशिक समाज से लोकतात्रिक समाजवाद की यह कल्पना भिन्न है। इसीलिए हमको प्रचलित शिक्षा-प्रणाली से भिन्न एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली चाहिए, जो सबमे साथ रहने की और साथ-साथ समाजोपयोगी उत्पादक काम करने की भावना का पोषण करे, व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर सर्व के कल्याण का भाव विकसित करे, बौद्धिक दम्भ के स्थान पर समाजवादी समाज के मूल्यो को स्वीकार करने की नम्रता उत्पन्न करे और व्यक्ति की उन्नति के स्थान पर सहयोगी प्रयासो को महत्त्व देना सिखाये। सक्षेप मे शिक्षा का लक्ष्य व्यक्तित्व के उन्मुक्त विकास के साथ-साथ सामुदायिक व्यक्तित्व को विकसित करना भी होना चाहिए।

व्यक्तित्व और व्यक्तिवाद मे अन्तर होता है। व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक गुणों का स्वतन्त्र और मुक्त विकास शिक्षा का उत्तम लक्ष्य है, परन्तु इस विकास से यदि व्यक्ति मे अपने लिए सत्ता और सम्पत्ति के सग्रह की इच्छा बढती है, और वह भी पडोसी के शोषण की कीमत पर तो वह असामाजिक प्रवृत्ति है और त्याज्य होनी चाहिए। इस प्रवृत्ति के स्थान पर सामुदायिक प्रवृत्ति का विकास समाजवादी समाज की शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। सामुदायिक प्रवृत्ति का अर्थ होता है व्यक्ति मे पाये जानेवाले उस नैतिक तत्व का पोषण जो समुदाय के लिए आत्मत्याग कर प्रसन्नता का अनुभव करता है।

शिक्षा के लक्ष्य

(१) अतः जहाँ तक लक्ष्य का सम्बन्ध है, हम चाहेंगे कि हमारी शिक्षा का सम्बन्ध समाजवादी लोकतान्त्रिक राष्ट्र के जीवन, उसकी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप हो। हम चाहेंगे कि *व्यक्ति के स्वतन्त्र और* मुक्त विकास मे किसी प्रकार की बाधा न पडे और कभी भी उसके स्वतन्त्र भाव-प्रकाशन पर समाज या राज्य का अकुश न रहे। परन्तु हम यह भी चाहेगे कि व्यक्ति का यह मुक्त विकास उसके सामुदायिक जीवन के हित मे हो।

(२) शिक्षा का दूसरा लक्ष्य होना चाहिए, शिक्षा-सम्बन्धी अवसरो को सबके लिए समान बनाना। आज स्वतन्त्रता के तेईस वर्ष बाद भी इस देश म गरीबों के बच्चों को शिक्षा की वह सुविधा प्राप्त नहीं है जो अमीरो के बच्चों को प्राप्त है। हमारा सविधान सबके लिए शिक्षा के समान अवसर की बात करता है, परन्तु हमारी शिक्षण-प्रणाली ऐसी है, जो असमानता को प्रश्रय देती है। शिक्षण की यह प्रणाली समाप्त होनी चाहिए और लोक-शिक्षा की एक समान स्कूल-प्रणाली का विकास होना चाहिए।

(३) सामुदायिक कार्य और समाज-सेवा .

शिक्षा के सभी स्तरो पर सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा एव सामुदायिक कार्य को सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होना चाहिए। छात्र स्कूल और कालेजो म भी सामुदायिक जीवन व्यतीत करें। शिक्षा सस्थाओं और छात्रावासों म नौकर बिलकुल न रखे *जायें और शिक्षक तथा विद्यार्थी* सब काम अपने हाथ से करें।

(४) सामाजिक, नतिक एव ग्राध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा

हमारी शिक्षा प्रणाली को सामाजिक नैतिक ग्रोर ग्राध्यात्मिक मूल्यों के विकास पर जोर देना चाहिए, जिससे विज्ञान ग्रोर ग्रध्यात्म में सम वय स्थापित किया जा सके जो ग्राज के युग की सबसे बडी ग्रावश्यकता है।

(५) विश्व बधुत्व का विकास ग्रोर मानवमात्र का एकीकरण

ग्राज के विश्व मे किसी भी ग्रच्छी शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य मानव मात्र का भाईचारा होना चाहिए। ग्रगर विश्व को ग्रणु युद्ध की विभीषिका से बचाना हो तो मानव मात्र को एक करने का प्रयास करना ही होगा।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

व्यक्ति के मुक्त विकास के साथ उसके सामुदायिक व्यक्तित्व का विकास इस पाठ्यक्रम से नहीं होगा, जो ग्राज चल रहा है। यह पाठ्यक्रम शास्त्रीय ग्रोर एकागी है—केवल बुद्धि पक्ष पर जोर देता है ग्रौर हाथ के सृजनात्मक पक्ष की ग्रवहेलना करता है। इसम छात्रो को कोई समाजोपयोगी धधा सिखा कर उत्पादक चेतन इकाई बनाने की कल्पना ही नही है। नतीजा यह होता है कि इस शिक्षा को पानेवाले 'परमुखापेक्षी शोषक बन जाते हैं। ग्रत हमे शिक्षा का एक ऐसा पाठयक्रम चाहिए—

(१) जो छात्र को समाज का उत्पादक नागरिक बनने म सहायता दे। ग्राज की शिक्षा का कोई सम्बन्ध उत्पादिता स नही है। शिक्षा उत्पादक तभी होगी जब वह कार्यपरक (वर्कग्रोरियेन्टेड) हो ग्रोर तभी उससे राष्ट्रीय सम्पदा की वद्धि मे सहायता मिलेगी। ग्रत समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग (जिसमे खेती बागवानी ग्रनिवायत शामिल है) ऐसे पाठ्यक्रम का ग्रभिन्न ग्रग होना चाहिए। विज्ञान ग्रोर तकनीकी के ग्रभाव मे ग्राज कोई भी उद्योग उत्पादक नही होगा खेती भी नही। ग्रत सम्बन्धित विज्ञान ग्रोर तकनीकी का शिक्षण उद्योग शिक्षण का ग्रावश्यक ग्रग होना चाहिए।

(२) जिसकी सामान्य भूमिका उस खेतिहर ग्रौद्योगिक (एग्रो इण्डस्ट्रियल) एव समता मूलक समाज की हो, जैसा समाज हम बनाना चाहते हैं। देश की ग्रस्सी प्रतिशत जनता गांवो मे रहती है। कृषि ग्रोर ग्रामोद्योग उसके जीवन के ग्राधार हैं। परन्तु हमारी शिक्षा प्रणाली मे कृषि ग्रौर ग्रामोद्योग की यह सर्वाधिक महत्ता प्रतिबिम्बित नहीं होती। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली कृषि ग्रामोद्योग मूलक होनी चाहिए ग्रौर पाठ्यक्रम मे विविध दस्तकारियों मे शिक्षण की गुजाइश होनी चाहिए।

(३) जो कुल मिलाकर एक स्वावलम्बी आत्म-निर्भर व्यक्तित्व का सृजन कर सके। ऐसा पाठ्यक्रम शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर—प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर पर भी—अपने में पूर्ण इकाई होगा। इसका अर्थ यह है कि प्रारम्भिक शिक्षा का पाठ्यक्रम माध्यमिक शिक्षा के लिए और माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम स्नातक-स्तरीय शिक्षा के लिए तैयारी मात्र न होकर जीवन के लिए तैयारी होगा। इस दृष्टि से प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों में उद्योग अथवा कार्य-अनुभव के शिक्षण के लिए कम-से-कम आधा समय मिलना चाहिए।

(४) जो माध्यमिक शिक्षा का पूर्णत व्यवसायीकरण करने पर जोर दे, जिससे इस स्तर के बाद अधिकांश छात्र रोजी कमाने के योग्य हो सके। यह तभी सम्भव होगा जब सभी माध्यमिक स्कूलों के साथ फार्म और कारखाने संलग्न हो, जिससे छात्र को काम करने का पूरा अवसर प्राप्त हो। जहाँ यह तत्काल सम्भव न हो, वहाँ पडोस के खेतों और कारखानों या दूकानों में काम करने की व्यवस्था हो। समुदाय से इस काम में सहायता ली जाय।

जहाँ पर स्कूलों के साथ फार्म या वर्कशाप की व्यवस्था हो, वहाँ यह स्पष्ट कर दिया जाय कि ये कारखाने और फार्म केवल शिक्षा के माध्यम ही नहीं है, बल्कि स्कूल की आत्मनिर्भरता के साधन भी हैं। जैसे खेतों और कारखानों पर किसान और मजदूर का योगक्षेम निर्भर करता है, वैसे ही स्कूल के उत्पादन पर स्कूल का योगक्षेम निर्भर करेगा। इस प्रकार की आत्म-निर्भरता स्वायत्त व्यक्तित्व के सृजन की पहली सीढी है। उत्पादन के सम्बन्ध में इतना ध्यान रखना चाहिए कि यह उत्पादन स्कूल के इर्द-गिर्द के उत्पादन से कम न हो और इसके प्रथम उपभोक्ता विद्यार्थी हों। जो उत्पादन शेष बचे उसकी खपत शिक्षकों और अभिभावकों में हो, नहीं तो सरकार उसे क्रय कर ले।

(५) इस प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्माण विद्यालय-स्तर पर ही सम्भव है, क्योंकि स्कूल-स्कूल की परिस्थितियाँ भिन्न होंगी। आज पाठ्यक्रम का निर्माण राज्य-स्तर पर होता है और फिर उसे राज्य के सभी स्कूलों के लिए समान रूप से निर्धारित कर दिया जाता है। उद्योगपरक अथवा कार्यानुभव-मूलक पाठ्यक्रम में ऐसा नहीं हो सकता। अतः पाठ्यक्रम-निर्माण के लिए जिला-स्तर की एक समिति की स्थापना हो, जिसमें अध्यापकों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त शिक्षा-विशेषज्ञ भी हों। राज्य अथवा राष्ट्रीय स्तर पर जो पाठ्यक्रम बनें, वे मात्र संकेत के लिए हों (केवल सजेस्टिव हों)।

हमारी शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य सबको शिक्षा का समान अवसर प्रदान करना होना चाहिए, क्योंकि हम एक लोकतन्त्रीय समाजवादी समाज बनाना चाहते हैं। परन्तु हमारी वर्तमान शिक्षण प्रणाली अमीरों और गरीबों के लिए अलग अलग शिक्षण व्यवस्था को प्रश्रय देती है। अमीरों के लडके उच्च स्तर की शिक्षा देनेवाले उन पब्लिक स्कूलों में पढ़ते हैं, जहाँ लम्बी-लम्बी फीसें ली जाती हैं और गरीब मजबूर होकर अपने बच्चों को घटिया स्तर के निःशुल्क सरकारी अथवा स्थानीय बोर्ड के स्कूलों में भेजते हैं। इस प्रकार शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय एकीकरण की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के स्थान पर अलगाव की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती है।

शिक्षा प्रणाली के इस दोष का सम्बन्ध हमारे संविधान से है। संविधान के अनुच्छेद ३० के अनुसार धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्प संख्यक वर्गों को, अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना का अधिकार है। अनुच्छेद २८ (१) और २८ (२) के अनुसार सभी नागरिकों को अपनी रुचि की धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए गैर-सरकारी शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार है। अनुच्छेद १९ के खंड (ग) और घ के अनुसार तो सभी नागरिकों को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी भी उद्देश्य से गैर सरकारी स्कूल स्थापित कर सकते हैं। (कोठारी कमीशन १०, ७७)।

इसका परिणाम यह हुआ कि आज देश में पूर्व प्रारम्भिक शिक्षण के लिए पूर्व बेसिक, बालवाडियाँ भी चल रही हैं और मान्टसरी और किंडर गार्टेन स्कूल भी चल रहे हैं, जहाँ प्रारम्भ से ही शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर भी आम जनता जिन निःशुल्क स्कूलों में अपने बच्चों को भेजती है, वे सरकार और स्थानीय बोर्डों द्वारा चलाये जाते हैं और उनका स्तर साधारणतः घटिया होता है। इसके विपरीत इसी स्तर की शिक्षा के लिए कुछ ऐसे स्कूल हैं जो गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाये जाते हैं और चूंकि वे काफी फीस लेते हैं अतः मध्यम और उच्च-वर्ग के लडके ही उनमें जा पाते हैं। पब्लिक स्कूल कहलानेवाली ये संस्थाएँ पूर्व प्राथमिक से माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा देती हैं और इनमें माध्यम अंग्रेजी होता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस प्रकार के स्कूलों की संख्या बहुत बढ़ी है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि सामान्य जनता और उच्च वर्गों की खाई पहले से भी अधिक चौड़ी हो गयी है और होती जा रही है।

इस प्रकार इस समय समाजवाद के प्रति संकल्पित इस लोकतंत्र में दो प्रकार के स्कूल चल रहे हैं। एक जो काफी पैसा लेकर अच्छी शिक्षा देकर उच्च वर्ग की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं, और शेष लोक निधि से चलनेवाले घटिया स्तर के स्कूल हैं, जिनमें आम जनता के बच्चे जाते हैं। जब तक शिक्षा में यह असमानता बनी रहेगी, समाज में भी असमानता बनी रहेगी। शिक्षा सामाजिक अलगाव को बढ़ाती रहेगी और फलतः न वर्ग भेद का निराकरण होगा और न समाजवाद की स्थापना होगी।

यह वर्तमान शिक्षा प्रणाली की बहुत बड़ी कमजोरी है। समाजवादी राष्ट्र में होना तो यह चाहिए कि समाज के हर स्तर के सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा सुलभ हो। इसके स्थान पर आज अच्छी शिक्षा केवल उन मुट्ठी भर लोगों को उपलब्ध है, *जिनका प्रवेश प्रतिभा और योग्यता के आधार पर नहीं*, अपितु शुल्क देने की क्षमता के आधार पर किया जाता है। सुविधा प्राप्त माता-पिता अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा खरीद रहे हैं। गरीब इस शिक्षा को खरीद नहीं सकता। अतः उसकी योग्य सन्तान भी अच्छी शिक्षा पाने से वंचित रह जाती है। यह स्थिति अलोकतांत्रिक है और समतावादी समाज के आदर्श से मेल नहीं खाती। इस स्थिति को समाप्त करना है, क्योंकि इसके तीन भयंकर परिणाम हो रहे हैं :—

(१) अमीर गरीब के अलगाव की खाई चौड़ी होती जा रही है, और सामाजिक संश्लेषण की क्रिया समाप्त होती जा रही है, क्योंकि पब्लिक *स्कूलों में पढ़े हुए अमीरों के बच्चे राष्ट्र-जीवन की वास्तविकता के सम्पर्क* में नहीं आते और इसलिए स्कूलों से निकलने पर वे अपने को सामान्य भारतीय जीवनधारा में निमज्जित नहीं कर पाते।

(२) राष्ट्र योग्य गरीब की प्रतिभा से वंचित होता जा रहा है। अवसर मिलता और उपयुक्त शिक्षा मिलती तो न जाने कितने ही गरीब बच्चे राष्ट्र की निधि होकर राष्ट्र की सम्पदा और वैभव में वृद्धि करते।

(३) इन पब्लिक स्कूलों के विद्यार्थी ही अखिल भारतीय और प्रादेशिक सेवाओं में अधिक सफल होते हैं। फलतः धीरे धीरे देश का प्रशासन ऐसी नौकरशाही के हाथ में चला जा रहा है, जो देश के सर्व-साधारण के जीवन *और उसकी समस्याओं को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से समझ ही नहीं सकती। अभी* इस वर्ष भारतीय प्रशासनिक सेवाओं (इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विसेज) में जो विद्यार्थी सफल हुए हैं, उनमें से ५२ प्रतिशत ऐसे हैं, जो पब्लिक या कान्वेन्ट स्कूलों में पढ़े हैं।

अतः अगर हम लोकतन्त्र और समाजवाद के प्रति सच्चे रहना चाहते है, तो हमे विभिन्न प्रयोगो की पूरी गुंजाइश रखते हुए भी, लोक-शिक्षा की समान स्कूल प्रणाली अपनानी होगी जो जाति, सम्प्रदाय, समाज और धर्म एव आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा का भेद किये बिना सभी बच्चो के लिए सुलभ हो। ऐसा होगा तभी अमीर और गरीब सुविधा प्राप्त और सुविधाहीन, शहरी और ग्रामीण के बीच की खाई पटेगी और सामाजिक विघटन की खतरनाक प्रक्रिया रुकेगी। इस मार्ग मे अगर हमारा सविधान बाधक है तो हमको इसमे इस तरह सशोधन करना चाहिए, जिससे :—

(१) देश मे लोकशिक्षा की सामान्य विद्यालय-प्रणाली (कामन स्कूल सिस्टम आफ पब्लिक एजुकेशन) चले।

(२) पडोसी स्कूल की सकल्पना कार्यान्वित हो, अर्थात् एक स्तर की शिक्षा के लिए पडोस के सब बच्चे एक ही तरह के स्कूल मे जायँ।

परन्तु जब तक यह संशोधन न हो, राज्य सरकारें (राज्य सरकारों को इसलिए कि शिक्षा राज्य का ही विषय है) को निम्नांकित कदम उठाने चाहिए।—

(१) किसी भी स्कूल मे पढाई की कोई भी फीस न ली जाय। यदि आवश्यक हो तो शिक्षा के खर्च की पूर्ति शिक्षा उपकर (एजुकेशन सेस) लगा कर की जाय।

(२) उच्च-से-उच्च अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर धन या वर्ग पर निर्भर न कर प्रतिभा पर निर्भर करे। इसके लिए गरीब और योग्य छात्रो के लिए पर्याप्त छात्र-वृत्ति की योजना चलायी जाय।

(३) शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा या राज्य की भाषा हो और इसी भाषा मे राज्य का प्रशासन भी चले।

शिक्षा मे क्रान्ति करनी है तो देश की शिक्षण-प्रणाली मे ये परिवर्तन करने होगे।

परीक्षा-पद्धति

हमारा सारा शैक्षिक प्रयास परीक्षापरक हो गया है और परीक्षाफल ही उसके साफल्य का मापदण्ड हो गया है। इससे ज्ञान की खोज का पक्ष नितान्त गौण हो गया है और सारा शिक्षण परीक्षा मे सिमट गया है। परीक्षा नौकरी का पासपोर्ट बन गयी है। छात्र विद्यालयो मे पढने और सीखने नहीं परीक्षा

पास करने जाते हैं जिससे कही नौकरी मिल सके। अत परीक्षा पास करना कराना चाहे वह पेस पेपस से हो चाहे नकल करके हो प्रमुख हो गया है और अध्ययन अध्यापन गौण हो गया है। इस स्थिति मे परिवतन करने के लिए तीन बातें करनी होंगी —

(क) परीक्षा का नौकरी से सम्बन्ध वि छेद करना होगा। नौकरी या रोजगार देनेवाला अपनी परीक्षा स्वय ले और इस परीक्षा मे बठने के लिए किसी दूसरी परीक्षा के प्रमाण पत्र की आव यकता न हो। नौकरी का मिलना डिग्री या डिप्लोमा पर निभर न करे।

(ख) आज की लिखित बाह्य परीक्षा से परीक्षार्थी के रुझानो प्रवत्तियो और कौशलो का मूल्याकन नही हो सकता चरित्र का तो कतई नही हो सकता। मूल्यांकन छात्रो के समग्र विकास का हो। इस प्रकार का मूल्याकन तो वही अध्यापक कर सकता है जो विद्यार्थी के साथ रहता है। अत आतर मूल्याकन को महत्त्व दिया जाय और विद्यार्थी का मूल्याकन सतत एव नियमित रूप से होता रहे। प्रत्येक छात्र को आ तरिक मू यांकन का प्रमाण पत्र दिया जाय।

(ग) अगर कुछ कारणो से बाह्य परीक्षा रखी भी जाय तो उसत ढग की हो और प्रमाणपत्र म केवल अक दिये जाय और उस पर उत्तीर्ण या अनुत्तीण न लिखा जाय। *यह प्रमाणपत्र वणनात्मक मात्र हो।*

(घ) स्कूलो को अ तिम पब्लिक परीक्षा (जब तक मा य हो) लेने का अधिकार हो और उनकी सस्तुति पर राज्य परीक्षा बोड उन्हे प्रमाणपत्र दे।

शक्षिक प्रशासन

शक्षिक प्रशासन का दकियानूसी ढाँचा शिक्षा के किसी भी प्रगतिशील प्रयास का गला घाट सकता है। अत आज की शिक्षा म किसी भी परिवतन के पहले शक्षिक प्रशासन और विद्यालय प्रबध मे परिवतन करना आवश्यक है।

(१) उत्तर स्वात त्र्य काल म शि ा के केन्द्रीकरण और राष्ट्रीयकरण की माँग बढ़ी है शिक्षा आज राज्य का विषय है उसे केन्द्र का विषय बनाया जाय *ऐसी माँग बराबर होती रही है। केन्द्रीयकरण की पद्धति का अहिंसक समाज रचना से मेल नहीं बठता। लोकतत्र के लिए सत्ता और सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण से भी अधिक घातक शिक्षा के प्रशासन के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति है।* क्योंकि यदि शिक्षा का केन्द्रीयकरण और राष्ट्रीयकरण हुआ तो विचारों

के रेजिमेन्टेशन से बचा नही जा सकता और विचारो का 'रेजिमन्टेशन' अधिनायकवाद को जन्म देगा। लोकतन्त्र की रक्षा के लिए लोक निर्णय की पवित्रता अक्षुण्ण रहनी चाहिए, जो शिक्षा के केन्द्रीयकरण से समाप्त हो जायगी।

अत शिक्षा मे आमूल परिवर्तन के लिए शिक्षा के प्रशासन का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। इस विकेन्द्रीकरण का प्रायोगिक रूप निम्न प्रकार का होगा —

क–विद्यालय समिति —

राष्ट्रीयकरण के स्थान पर शिक्षा का विद्यालयीकरण हो और विद्यालयो की सारी प्रवृत्तियों का सचालन विद्यालय के प्रतिनिधियो द्वारा हो। प्रत्येक स्कूल या निश्चित क्षेत्र के कुछ समान स्तर के स्कूलो के लिए एक विद्यालय समिति हो, जिसमे विद्यालय के अध्यापको के प्रतिनिधि, ग्रामसभा के प्रतिनिधि (अभिभावक) और जिला शिक्षा बोर्ड द्वारा मनोनीत जिले के कुछ शिक्षा विशेषज्ञ रहें।

ख–प्रखण्डस्तरीय समिति —

प्रखण्डस्तरीय समिति म आधे सदस्य प्रखण्ड के विद्यालयो के प्रतिनिधि होगे और आधे मे प्रखण्ड की ग्रामसभाओ और स्थानीय स्वायत्त निकायो के प्रतिनिधि और जिला शिक्षा बोर्ड द्वारा नामजद शिक्षा विशेषज्ञ होगे। यह समिति ब्लाक (प्रखण्ड) मे स्थित समस्त शिक्षा का सचालन करेगी। अगर ब्लाक मे कोई डिग्री कालेज होगा तो वह भी समिति के अन्तगत होगा। समिति के निम्न कार्यक्रम होगे —

(१) अध्यापको की नियुक्ति और प्रखण्ड के अन्तगत स्थानान्तरण।

(२) वेतन वितरण और अन्य वित्तीय उत्तरदायित्व।

(३) पाठ्यक्रम निर्माण और पाठ्यक्रमीय और पाठ्यक्रमेतर प्रवृत्तियो का सचालन।

ग–जिला शिक्षा बोड :—

प्रत्येक जिले मे जिले की समग्र शिक्षा के सचालन के लिए एक जिला शिक्षा बोड स्थापित होना चाहिए, जो जिले के सारे विद्यालयो (जिसमे डिग्री कालेज भी शामिल होगे) का कार्यभार सभालेगा। इस बोर्ड के निम्न कार्यक्रम होंगे —

(१) जिला की सभी शिक्षा सस्थाओ को अनुदान देना।

(२) प्रखण्ड समिति की संस्तुति पर जिले के भीतर अध्यापकों का *स्थानान्तरण।*

(३) प्रखण्ड की शैक्षिक एवं पाठ्यक्रमेतरीय प्रवृत्तियों का संचालन।

(४) शिक्षा उपकर (एजुकेशनल सेस) लगाने और उससे विनियोग का अधिकार।

इस जिला शिक्षा-बोर्ड के निम्न सदस्य होंगे —

(१) जिला-स्थित सभी प्रखण्ड स्तरीय समितियों के प्रधान।

(२) *जिला के लोकसभा, विधानसभा और राज्यसभा के सदस्य।*

(३) उन सभी विभागों के प्रतिनिधि जिन पर शिक्षा का भार हो, जैसे उद्योग, कृषि आदि।

(४) शिक्षा-विभाग और विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि और शिक्षा-विभाग *द्वारा मनोनीत शिक्षा शास्त्री।*

(५) उच्च शिक्षा संस्थाओं के छात्र प्रतिनिधि।

जिला शिक्षा बोर्ड का वैतन भोगी पूर्णकालिक अध्यक्ष और उसका कार्यालय होना चाहिए।

नोट—प्रखण्ड स्तर एवं जिला-स्तर की समितियों में छात्र-प्रतिनिधियों को अवश्य रखा जाय। विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजों में उन्हें कोर्ट में, विद्या परिषद में और कार्यकारी परिषद में भी स्थान दिया जाय, जिससे *विद्यार्थी शैक्षिक प्रयास में केवल निष्क्रिय भागीदार नहीं रहें, वरन् शैक्षणिक* और प्रशासनिक दोनों मामलों में सक्रिय साझेदार बन सकें।

प्रशासन का वित्तीय पक्ष : सरकार शिक्षा-संस्थाओं को पूरा पैसा दे और *किसी प्रकार का दखल न दे यही क्रान्ति का 'प्रप्रोच' है।*

(क) आज की वित्तीय स्थिति यह है कि सरकार स्वायत्त निकायों (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपल बोर्ड) को लगभग ७५ प्रतिशत (७३.७) और गैर सरकारी स्कूलों को लगभग ५० प्रतिशत (४८.३) अनुदान *के रूप में देती* है और लगभग ३७ प्रतिशत (३६.७) फीस से आता है। (शिक्षा-आयोग १०.४)। अतः सरकार यह पूरा अनुदान प्रस्तावित जिला शिक्षा बोर्डों को दे और जिला शिक्षा बोर्ड को शिक्षा उपकर लगाने का अधिकार दे दे तो वित्त का प्रश्न नहीं उठेगा।

(ख) भूमि और वर्कशाप के लिए साधनों का प्रबन्ध गाँवसभाएँ करें। जहाँ तत्काल स्कूलों के साथ फार्मों और कारखानों को संलग्न करना सम्भव न हो

वहाँ सामुदायिक अथवा व्यक्तिगत फार्मों और कारखानों में शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर व्यय

हमारे संविधान में अनिवार्य और निःशुल्क प्रारम्भिक अर्थात् कक्षा १ से ७ (८) तक की, ६ से १४ वर्ष तक की, शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व राष्ट्र का माना गया है। १९६५ तक हम इस लक्ष्य को पूरा कर लेंगे, ऐसी आशा थी। परन्तु लक्ष्य पूरा न होता देख सरकार ने ५ साल की शिक्षा (६ से ११ वर्ष) को ही अनिवार्य करने का प्रयास किया, परन्तु वह भी नहीं हुआ और यह लक्ष्य सन १९७५-७६ तक भी पूरा होगा, ऐसी आशा नहीं है और सात वर्ष तक की प्रारम्भिक शिक्षा सन् १९८६ तक भी शायद ही दी जा सके। प्रौढ शिक्षा पर तो बहुत ही कम ध्यान दिया गया है और आज भी निरक्षरों का प्रतिशत ७० से कम नहीं है। अर्थात् आज भी इस देश की दो तिहाई जनता पढ-लिख नहीं सकती और जिस ढंग से हम चल रहे हैं, उस ढंग से चलते रहे तो सन २००० तक भी हम पूरे देश को साक्षर नहीं बना सकते।

इसका कारण है। हमने उच्च शिक्षा पर जरूरत से ज्यादा रुपये खर्च किये हैं। सन् १९६५ ६६ तक प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च स्तर के प्रत्यक शिक्षा स्तर की शिक्षा के लिए, शिक्षा पर व्यय होनेवाले कुल धन का, एक एक तिहाई दिया गया है (कोठारी कमीशन १९, १३)। ब्रिटेन, अमेरिका और रूस म उच्च शिक्षा और स्कूली शिक्षा पर व्यय का अनुपात क्रमश ८५ ९ और १४ १, ७२ ४ और २७ ६, तथा ८६ ७ और १३ ३ है। सर्जेन्ट कमीशन ने प्रारम्भिक शिक्षा को सर्व-सुलभ कराने के लिए स्कूली शिक्षा के लिए कुल शैक्षिक व्यय का २।३ हिस्सा निश्चित किया था और तब जब उसने अवधि १९८० तक रखी थी। परन्तु हमने उक्त शिक्षा पर, जिसम पढ़ने पढ़ानेवालों की संख्या कम होती है, बहुत अधिक व्यय किया। स्तर के अनुसार हमारा प्रति छात्र व्यय निम्न प्रकार है :—

१—लोअर प्राइमरी (कक्षा १ से ४)	रु०	३०-००
२—हायर प्राइमरी (कक्षा ५ स ७)	रु०	४५ ००
३—माध्यमिक शिक्षा	रु०	१०७ ००
४—उच्च शिक्षा (आर्ट कोर्स)	रु०	३२८-००
५—उच्च शिक्षा (साइन्स कोर्स)	रु०	११६७-००

अत प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर के लिए अगर अच्छी शिक्षा

का प्रबन्ध करना है, तो सरकार को मजबूर किया जाय कि विश्वविद्यालयी शिक्षा पर अपना व्यय कम करे। विश्वविद्यालयों में प्रवेश उन्हीं छात्रों का हो जो प्रतिभा-सम्पन्न हों। विश्वविद्यालयों एवं डिग्री कालेजों में प्रवेश लेनेवालों का प्रतिशत माध्यमिक स्तर से उत्तीर्ण प्रतिशत का किसी दशा में १५ से अधिक न हो। अगर हम प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तरों की शिक्षा को अपने में पूर्ण इकाइयाँ बना देते हैं तो उन पर और भी अधिक खर्च करना होगा। इस खर्च के लिए उच्च शिक्षा पर किया जानेवाला व्यय कम करना होगा।

शिक्षक

स्वायत्त आत्मनिर्भर शिक्षक शिक्षा में क्रान्ति की सबसे पहली शर्त है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि शिक्षा के स्तर को और किसी भी शैक्षिक योजना के क्रियान्वयन को, जितनी भी बातें प्रभावित करती हैं उनमें शिक्षक का चरित्र और क्षमता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अध्यापक शिक्षण-यन्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुर्जा है। अतः शिक्षा के मूल्यों में परिवर्तन करना है तो मेधावी अध्यापकों के चयन और नियुक्ति को वरीयता देनी होगी और अध्यापकों के उचित पारिश्रमिक, प्रगति के अवसर और उनके कार्य एवं सेवा की उपयुक्त शर्तों की व्यवस्था करनी होगी। इस सम्बन्ध में निम्न कदम उठाने चाहिए —

(१) समान वेतन —

सबसे पहले यह द्रष्टव्य है कि समान योग्यता और समान दायित्ववाले अध्यापकों का वेतन और उनके कार्य और सेवा की स्थितियाँ समान नहीं हैं। यह कथन स्कूल के अध्यापकों के विषय में भी सच है और उच्च शिक्षा के अध्यापकों के विषय में भी। स्कूल अध्यापकों में विभिन्न प्रबन्धों के अन्तर्गत काम करनेवाले अध्यापकों के वेतन में पर्याप्त अन्तर है। एक ही विश्वविद्यालय में एक संकाय का वेतन दूसरे संकाय के वेतन से कम या अधिक है। सम्बद्ध कालेजों में वह वेतन नहीं मिलता जो विश्वविद्यालयों में मिलता है। देश के सात राज्यों में, आन्ध्र, केरल, मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर, पंजाब और राजस्थान में, स्कूली शिक्षा के सभी आधारों पर यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। असम, गुजरात और महाराष्ट्र में प्रारम्भिक स्कूलों के लिए यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया है, परन्तु माध्यमिक स्तर के अध्यापकों के लिए नहीं। परन्तु पाँच राज्यों में, बिहार, जम्मू और कश्मीर, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश,

और पश्चिमी बंगाल में किसी स्तर पर भी इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया है। (कोठारी कमीशन ३,९)। यह असमानता दूर होनी चाहिए और समान योग्यता और समान दायित्ववाले सभी अध्यापकों को एक समान अथवा एक जैसा वेतन मिलना चाहिए।

(२) वेतनक्रम की एकता —

एक दूसरा परिवर्तन जो वाछनीय है, वह है शैक्षिक संस्थाओं में इतने अधिक वेतनक्रम न रहें। स्कूल स्तर पर, यहाँ तक कि प्रारम्भिक स्कूलों में भी कई-कई वेतनक्रम हैं। एक संस्था में काम करनेवाले सभी अध्यापकों का वेतनक्रम एक हो। विशेष काम करने के लिए अलग से भत्ता दे दिया जाय।

(३) वेतनमान में न्यूनतम अन्तर :—

चूँकि अध्यापन एक रचनात्मक कार्य है और उसमें सबके लिए निष्ठा और समर्पण की भावना समान है, अतः अध्यापक का वेतन उसकी योग्यता पर आधारित होना चाहिए, चाहे वह प्रारम्भिक स्कूल का अध्यापक हो, चाहे विश्वविद्यालय का प्रोफेसर। अतः प्रारम्भिक स्कूल के अध्यापक और विश्व-विद्यालय के अध्यापक के वेतनमान का अन्तर न्यूनतम होना चाहिए। आज औसत अन्तर एक और छ का है। (कोठारी आयोग सारिणी ३, १)। यह अन्तर १-३ से अधिक न हो।

(४) प्रधानाचार्य के पद का बदलते रहना —

देखा यह गया है कि शिक्षा संस्थाओं में प्रिंसिपल का पद निहित स्वार्थ का कारण बन जाता है। ऐसा न हो, इसलिए यह आवश्यक है कि प्रधानाचार्य का पद अध्यापकों के बीच बदलता (रोटेट) रहे।

(५) सभी अध्यापकों के लिए निःशुल्क आवास की सुविधा, बच्चों की निःशुल्क शिक्षा, अनुपूरित चिकित्सा व्यवस्था, प्राविडेंट फण्ड और पेंशन का समुचित प्रबन्ध किया जाय, जिससे अध्यापक निश्चित होकर अध्यापन का कार्य कर सकें।•

शिक्षा में क्रान्ति : क्या, क्यों ?

(कुछ पहलू)

राममूर्ति

विकास शिक्षा का 'बाई प्रोडक्ट'—उत्पादक हुनर

यह प्रश्न उठाया गया है कि आज देश का विकास केन्द्रित तकनीक (सेन्ट्रलाइज्ड टेकनालोजी) के आधार पर हो रहा है। बड़े बड़े कल-कारखानों का विकास हो रहा है, और उसी को सरकार बढ़ावा दे रही है। लेकिन शिक्षा में जब हम छोटे छोटे हुनर सिखायेंगे तो इनको सीखकर विद्यार्थी कहाँ जायगा, और क्या करेगा ? यह प्रश्न महत्व का है। स्पष्ट है कि शिक्षा में सुधार की माँग हो और सारी अर्थनीति में सुधार नहीं हो तो फिर शिक्षा और अर्थनीति *अलग-अलग किसी देश में नहीं चल सकतीं। आज विकसित* देशों में भी विकास और शिक्षा एक समन्वित प्रक्रिया बन गयी है। दोनों मिलकर देश के राष्ट्रीय जीवन का विकास करती हैं। हम अपने देश में विकास को शिक्षा से अलग मानते हैं। ये बी० डी० ओ० और डी० पी०ओ० है—विकास के अधिकारी हैं, तथा वाइसचान्सलर, हेडमास्टर, प्रिन्सिपल—शिक्षण के अधिकारी हैं। दोनों के काम बिलकुल अलग हैं। यह बिलकुल गलत चीज है। बी० डी० ओ० नहीं जानता कि प्रिंसिपल क्या कर रहा है, और प्रिंसिपल नहीं जानता कि बी० डी० ओ० क्या कर रहा है। दोनों नहीं जानते कि कहाँ जा रहा है देश का विकास, और कहाँ जा रही है देश की शिक्षा। इस भूमिका में यह माँग जरूरी है कि विकास की दिशा और पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि हर विद्यार्थी के उत्पादक हुनर का इस्तेमाल हो। गांधीजी इसीलिए कहते थे कि विकास शिक्षा का 'बाई प्रोडक्ट' है। मनुष्य को आर्थिक प्राणी नहीं बनाना है। आज तक दुनिया चली है आर्थिक प्राणी (इकनामिक मैन) की धारणा के आधार पर। मार्क्सवाद और पूँजीवाद, दोनों मानते हैं कि मनुष्य आर्थिक प्राणी है। वह अपने 'अर्थ' को देखता है। उसी में से यह चीज निकल आयी की वह स्वार्थ के सिवाय कुछ नहीं देखता। वह संग्रहशील (ऐक्विजिटिव) है। वह ज्यादा से-ज्यादा संग्रह करके अपने घर में रखना चाहता है। संग्रह उसकी प्रेरणा है। यह चीज पूँजीवाद और *साम्यवाद के दर्शन में समान रूप से मिलेगी।* एक नयी बात गांधीजी ने यह जोड़ी कि विकास को शिक्षा का 'बाई प्रोडक्ट' बनाओ। सभ्य मनुष्य

को सांस्कृतिक पहले होना है, आर्थिक बाद को। एक आदमी अगर सही अर्थ में शिक्षित हुआ है तो उसके द्वारा विकास का काम अनायास होना चाहिए। वह उत्पादन तो करेगा ही, दूसरे तरह के काम भी करेगा। किस तरह के उत्पादन के लिए हम किस तरह के यंत्र इस्तेमाल करेंगे, यह सवाल अलग है। कुछ भी हो, विकास शिक्षण का 'बाई प्रोडक्ट' ही हो।

नौकरी डिग्री से अलग हो

इस भूमिका में श्री वंशीधरजी के निबन्ध* में माँग की गयी है कि हर विद्यार्थी में उत्पादक हुनर होना चाहिए। इतना परिवर्तन हो जाय कि डिग्रियों को नौकरियों से अलग कर दिया जाय। जो नौकरी देनेवाला हो वह अपनी परीक्षा ले ले, या जो भी दूसरा तरीका निकाले। कल-कारखानेवाले लोग हैं, अन्य लोग हैं, सरकारी लोग हैं, उनको आदमी की जरूरत है, वे परीक्षा ले लेंगे, और चुनाव कर लेंगे। यह क्यों देखा जाय कि हमारे पास बी० ए० का सर्टिफिकेट है या नहीं? हमने नहीं पढ़ी है वह पढ़ाई जो विश्वविद्यालयों में होती है, लेकिन आप देखिए कि हमको हिन्दी आती है कि नहीं, इतिहास-भूगोल आता है कि नहीं। देखो, देखकर ठीक समझते हो तो हमको नौकरी दो, नहीं तो छोड़ो। एक माँग है उत्पादक हुनर की, दूसरी माँग है नौकरी को डिग्री से अलग करने की। ये दो माँगें मान्य हो जाती हैं तो फिर अभ्यासक्रम क्या होगा, परीक्षा कैसे होगी, आदि प्रश्न बहुत आसान हो जाते हैं।

विद्यालय एक स्वायत्त इकाई

एक दूसरी माँग जो की गयी है वह है विद्यालयों के प्रशासन के सम्बन्ध में। सर्वोदय की विचार-धारा हमेशा से राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध रही है जिसको आज का कोई शिक्षक मानता नहीं। न मानने का कारण है। प्राइवेट स्कूलों में वेतन आदि के बारे में कई प्रकार की शिकायतें होती है कि समय पर वेतन नहीं मिलता, उतना नहीं मिलता जितना सरकार के विद्यालयों में मिलता है, या कहीं कहीं यह होता है कि दस्तखत कुछ वेतन पर करा लेते हैं और देते कुछ हैं। यह सब गोल-माल चलता है। इसलिए शिक्षकों की माँग है राष्ट्रीयकरण की। वे कहते हैं कि शिक्षक आज प्राइवेट विद्यालयों में अरक्षित हैं, सरकार की ही शरण में जाकर सुरक्षित होंगे, इसलिए राष्ट्रीयकरण का नारा वे कैसे छोड़ें। जिस लोकशक्ति पर सर्वोदय का सारा क्रान्ति दर्शन खड़ा हो

*निबन्ध इसी अंक के पृष्ठ ५३८ पर देखें

-हा है, उसके सम्बन्ध मे वे कहते हैं कि यह शक्ति हमारे काम की नहीं। जिला परिषदों के स्कूलो को देखिये, प्राइवेट स्कूलो को देखिये क्या हाल हो रहा है ? वे मान लेते हैं कि यही लोकशक्ति है जिलापरिषद और नगरपालिका क्योंकि इनमें जनता के प्रतिनिधि लोग आते हैं। सरकार को वे ठीक समझते हैं। सरकार के खजाने मे पैसा कम होगा तो वह नोट छपाकर दे सकती है। मैनेजर तो नहीं दे सकता। कोई गैर-सरकारी संस्था तो नहीं दे सकती। तो एक समझौता यह हो सकता है कि ठीक है, आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज में जो होता है उसको मान लिया जाय कि सरकार पैसा दे, लेकिन विद्यालय के अभ्यास क्रम और प्रशासन मे हस्तक्षेप न करे। उतनी बात मान लीजिए जितनी बात न्याय विभाग मे चलती है। सरकार जजों को तनख्वाह देती है लेकिन हर मौके पर सरकार यह नहीं कहती कि इस मुकदमे मे यह फैसला देना। जो *कानूनन यह है कि जिस मुकदमे में जैसा जो उचित मालूम होता हो वैसा फैसला* करने की छूट है। उतनी स्वतन्त्रता तो जज को है ही। आजकल कई तरह के *राजनैतिक दबाव पड़ने लगे हैं और हाईकोर्ट भी अब शिकायत से बरी नहीं* रह गया है, लेकिन वह आज की परिस्थिति का दोष है। व्यवस्था ऐसी ही है कि न्याय विभाग सरकार के नियन्त्रण से मुक्त है। कम-से कम उतनी मुक्ति शिक्षा को भी मिलनी चाहिए।

अभ्यासक्रम विद्यालय स्वयं बना ले। परीक्षा जिस तरह की तय हो विद्यालय ले। शिक्षक ने विद्यार्थी को क्या पढ़ाया है, वह उसका *सर्टिफिकेट दे दे। विद्यार्थी पास है या फेल है, इसका फैसला करने* के लिए शिक्षक दूसरा भगवान बनकर न बैठे। हम शिक्षक का यह अधिकार नहीं मानते कि किसी विद्यार्थी को पास करार दे या फल करार दे। हम पास या फल अपनी जिन्दगी मे होंगे, दुनिया में होंगे, आप क्यों अपने ऊपर यह जिम्मेवारी लेते हैं ? हम ९९ चीजों मे पास हैं, एक अंग्रेजी मे फेल हैं, तो आपने लिख दिया कि हम फल हैं। ९९ चीजों मे पास क्यो नही लिख दिया ? तो जो आपने पढ़ाया है—आप लिख दीजिए कि इस विद्यार्थी ने यहाँ इतने दिनों तक शिक्षा पायी है, इतना अभ्यासक्रम इसने पूरा किया है। जो नौकरी देनेवाला है वह देखेगा कि हमने कितना पढ़ा, नहीं पढ़ा। हम नौकरी नहीं करेंगे तो हम अपनी जिन्दगी मे सफल होंगे या विफल होंगे। वह हमारी जिम्मेदारी है पढ़नेवाले की जिम्मेदारी है, पढ़ानेवाले की जिम्मेदारी क्यों हो ? तो एक माँग यह है कि शिक्षा मे आर्थिक सहायता सरकार दे लेकिन विद्यालय के भीतरी जीवन मे हस्तक्षेप न करे। क्या अभ्यासक्रम होगा, क्या

परीक्षा पद्धति होगी और विद्यालय की व्यवस्था किस प्रकार चलेगी ये प्रश्न भीतरी है। हर विद्यालय मे उसके शिक्षक अभिभावक विद्यार्थी की सम्मिलित व्यवस्था हो। स्वायत्त व्यवस्था हो। आज तो विद्यार्थी १८ साल की उम्र म वोट का अधिकार माँग रहा है। और कइ पार्टियो ने कबूल भी कर लिया है कि १८ साल की उम्र ठीक है। अगर १८ साल के लडके लडकी के वोट से सरकार बनने और बिगडनेवाली हो तो हम किस मुँह से कह सकेंग कि वे विद्यालय की व्यवस्था में दखल नहीं दे सकते। जो सरकार बना सकता है, वह विद्यालय चलाने मे क्या नहीं शरीक हो सकता? वह आज की परिस्थिति मे अनिवाय है। इनकार कैसे कीजिएगा? पुराने शास्त्रो ने तो लडके को १६ साल मे मित्र माना था, आज तो वे बेचारे विनम्र हैं कि १८ साल में बराबरी का दावा करते हैं।

ये मुख्य बातें इस वक्तव्य* मे लिखी हुई हैं। ये कोई निषधात्मक बातें नहीं हैं। आज तक ये बातें सरकार से कभी कही नही गयी। अगर सरकार इन मुद्दो को कबूल कर लेती है तो फिर यह बात उससे की जा सकती है कि आप अपने विशेषज्ञों को सामने लाइए और हममे से जो इस विषय के जानकार हैं तरुण शांति सेना के लोग और आचायकुल के लोग, अभिभावको मे से जो रुचि रखते हैं, जानकारी रखते हैं व सब सरकारी लोगो के साथ बैठेंगे और सब मिलकर डिटेल तय कर लेंगे।

मानवीय शक्ल की शिक्षा

यह जो शिक्षा मे क्रांति का काम शुरू किया गया है, वह इसलिए नही शुरू किया गया है कि सर्वोदय के लोग विद्यार्थियो के उपद्रवो से बहुत चिंतित थे या शिक्षको के मारे जाने से बहुत घबडाये हुए थे। जिसका चिराग है उसके घर में आग लग रही है। कोई हमने तो यह चिराग जलाया नही। तो हम जिम्मेदारी से बहुत आसानी से बरी हो सकते थे। लेकिन सर्वोदय आन्दोलन ने यह देखा कि जिस समग्र क्रान्ति की बात की जाती है वह बहुत अधूरी रहती है अगर शिक्षा की बात नही की जाती क्योकि आखिर क्रान्ति की दिशा में ले जानेवाला एक दिमाग चाहिए। जय जगत का नारा आज सर्वोदय जगत को प्रेरित करता है। हम तमाम दुनिया को अपना परिवार मानते हैं। उस जगह तक हमारी कल्पना गयी है कि हम मनुष्य को मनुष्य के नाते देखना चाहते है। और इसीलिए किसी संघर्ष आदि की बात न करते हुए हम सब

*श्री वंशीधरजी का निबंध पृष्ठ ५३८ पर देखें

चीजों के प्रति एक मानवीय दृष्टिकोण अपना रखते हैं। हिन्दू और मुसलमान, मालिक और मजदूर, गरीब और अमीर, सवर्ण अवर्ण—ये सब जो दीवालें हैं उनसे अलग हम आँख में आँख मिलाकर मनुष्य को देखना चाहते हैं। चेकोस्लोवाकिया का दूबचेक था। उसने कहा, समाजवाद हम भी चाहते हैं, लेकिन हम 'सोशलिज्म विद ए ह्यूमन फेस' चाहते हैं। मानवीय शक्ल का समाजवाद हमको चाहिए। रूस का समाजवाद उसको मानवीय नहीं दीखा। उसने मानवीय समाजवाद की बात कह दी तो उसको जेल का रास्ता दिखा दिया गया। यह कैसा समाजवाद है? हम भी समाजवाद चाहते है लेकिन मानवीय समाजवाद चाहते हैं। गांधीजी ने जब चरखे की बात कही, खादी की बात कही, तो उनके मन में भी यह चीज थी कि हमको यंत्र चाहिए टेक्नालोजी चाहिए, लेकिन 'टेक्नालोजी विद ए ह्यूमन फेस' चाहिए। वह ऐसा यंत्र चाहते थे जिसकी शक्ल मानवीय हो। वह मानव का शोषण करनेवाली न हो, मानव की हैसियत गिरानेवाली न हो, और मानव में जो श्रमशक्ति है उसको बेकार करनेवाली न हो।

जब गांधी ने गांव के गणराज्य की कल्पना की थी तो यही बात कही थी कि हमको राजनैतिक व्यवस्था तो चाहिए, लेकिन पालिटिकल आर्गनाइजेशन विद ए ह्यूमन फेस चाहिए। जब हम राजनैतिक व्यवस्था की मानवीय शक्ल बनाने बैठते हैं तो दिल्ली से उतरकर गाँव में पहुँचना पड़ता है, क्योंकि वहाँ मानवों का सहज समुदाय रहता है। अपने गुण दोषों के साथ जो मनुष्य है, सहज रूप में जहाँ रहता है उस जगह व्यवस्था को ले जाना पड़ता है—जैसे शिक्षा को ले जाना पड़ता है। हर जगह आज 'मानवीय शक्ल' की तलाश है। आज के पूँजीवाद की शक्ल मानवीय नहीं है, इसलिए हम उसको अस्वीकार करते हैं। आज के राज्यवाद की शक्ल मानवीय नहीं है, इसलिए हम उसको अस्वीकार करते हैं। ऐसी बात नहीं है कि हमारी पूँजीपतियों से लड़ाई है। पूँजीपति की शक्ल तो हमारी शक्ल से अच्छी होगी, लेकिन पूँजीवाद की शक्ल मानवीय नहीं है। राज्य चलानेवाले एक-से एक अच्छे हो सकते हैं लेकिन उस राज्यवाद की शक्ल मानवीय नहीं है। और, सैनिकवाद की शक्ल तो कतई मानवीय नहीं है। इसलिए हम उसको भी अस्वीकार करते हैं। लोग कहते हैं कि सर्वोदय वर्ग संघर्ष की क्रान्ति से घबड़ाता है। हम इन्सान हैं तो घबड़ाते बहुत सी चीजों से हैं, सबसे ज्यादा हम जरूर इस बात से घबड़ाते हैं कि क्रान्ति इन्सान की हैसियत को गिरानेवाला षडयन्त्र न बन जाय। हम क्रान्ति के धोखे में षडयन्त्र को स्वीकार नहीं करना चाहते। क्रान्ति भी हम मानवीय

शक्ल की चाहते है, राजनीति भी मानवीय शक्ल की और अर्थनीति भी मानवीय शक्ल की चाहते हैं। इस देश ने हिम्मत करके हर बालिग को मत का अधिकार दिया है—अपढ को, गरीब से गरीब को अधिकार दिया है। ऐसे देश मे क्रान्ति अगर मानवीय नहीं हो सकती तो कहाँ होगी ?

आज क्रान्ति का दिमाग केवल नेशनल नहीं रह गया है, बल्कि 'वर्ल्ड माइण्ड' बन गया है। जय-जगत का जमाना है। लेकिन हमारी शिक्षा युवक और युवतियों को कहाँ ले जा रही है ? विश्व-चित्त की बात छोड दीजिए, राष्ट्रीय चित्त भी नहीं, बिलकुल 'ट्राइबल माइण्ड' यह शिक्षा बना रही है। जैसे पुराने कबीलो का चित्त था, कि एक दूसरे से बात करते थे तो बन्दूक से बात करते थे, ऐसा 'ट्राइबल माइण्ड' यह शिक्षा देश मे पैदा कर रही है—बिलकुल आदिवासियो का दिमाग। आदिवासी तो बहुत चीजो में बहुत अच्छे हैं, लेकिन बावजूद अच्छाइयों के उनमे एक दोष यह होता है कि उनका दिमाग सीमित होता है। वह अपने घर, अपने पडौस, अपनी बिरादरी से बाहर की बात नहीं सोच पाते। आज जो विद्यार्थी डिग्री लेकर निकलता है उसका दिमाग भी 'ट्राइबल' है। वह यह भी नहीं जानता कि उसकी किताब में क्या लिखा है ? इतना सकुचित दिमाग 'ट्राइबल' नहीं होगा तो क्या होगा ? इसलिए तय किया गया कि एक मोर्चा 'शिक्षा मे क्रान्ति' का बनना चाहिए।

क्रान्ति सबका काम—विद्यार्थी, शिक्षक, अभिभावक

शिक्षा की समस्याओ को अभी कम विद्यार्थी और शिक्षक समझ रहे हैं। एक गोष्ठी मे विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने तो यह बात कही कि आज की शिक्षा मे क्या खराबी है ? आखिर इसी शिक्षा मे से गाधीजी पैदा हुए, नेहरूजी पैदा हुए, कितने बडे आदमी पैदा हुए ? क्यो लोग डडा लेकर इस शिक्षा के पीछे पड़ गये हैं ? कौन समझाये ऐसे विद्वान को ? विद्वान का दिमाग भी इतना 'ट्राइबल' है कि उसको कोई समझा नही सकता। एक निरक्षर आदमी को समझा सकते हैं लेकिन ऐसे लोगो को कैसे समझायें ? शिक्षा में क्रान्ति का मोर्चा शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक को अपने हाथ मे लेना चाहिए। यह मोर्चा उन्ही लोगो का है जो उसके शिकार हैं।

शिक्षा मे क्रान्ति पर आयोजित बैठक मे दिये गये भाषण से, लखनऊ, २४-६-'७१

आचार्यकुल की शिक्षा-नीति
—घोषणा-पत्र का प्रारूप

रोहित मेहता

भारत मे शैक्षिक प्रयास को नयी दिशा देने के लिए अनिवार्य है कि आचार्यकुल स्पष्ट शब्दो मे शिक्षा के प्रति अपने दृष्टिकोण की व्याख्या करे। इस व्याख्या म व्यक्ति और समाज के सन्दर्भ मे शिक्षा के निदेशक सिद्धान्तो का उल्लेख होना चाहिए। इन निदेशक सिद्धान्तो मे केवल शिक्षा के दर्शन का ही नही बल्कि उसके व्यावहारिक साधनो का भी जिक्र होना चाहिए। इसी दृष्टि से शिक्षा का एक व्यापक घोषणा-पत्र बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा रहे हैं :

जिस मौलिक प्रश्न पर आचार्यकुल को ध्यान देना है वह यह है कि भारत मे सभी स्तर पर, प्राथमिक से विश्वविद्यालय-स्तर तक, शिक्षा का क्या उद्देश्य होना चाहिए। यह स्पष्ट है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के मुक्त विकास का प्रोत्साहन होना चाहिए, परन्तु यह विकास समाज के हित मे हो। यह आवश्यक है कि हम वैयक्तिकता (इन्डीविजुअलिटी) और व्यक्तिवाद (इन्डीविजुअलिज्म) का स्पष्ट भेद जान लें। आचार्यकुल पहले का समर्थक और दूसरे का प्रबल विरोधी है। दूसरे शब्दों में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के एक ऐसे सामाजिक व्यक्तित्व का विकास है जिससे वह जिस समाज मे रहता है उसके प्रति उत्तरदायित्व महसूस कर सके। शिक्षा को शिक्षा के विभिन्न स्तर पर, विद्यार्थी और शिक्षक मे उत्तरोत्तर अधिकाधिक सामाजिक चेतना पैदा करनी चाहिए। समाज मे कार्यों मे भाग लेना राजनीति और राज्य के कामो मे भाग लेना नहीं समझना चाहिए। समाज राज्य से अधिक बडा है, और इसलिए अगर विद्यार्थी और शिक्षक समाज के प्रति अधिकाधिक उत्तरदायित्व महसूस करेंगे तो सामाजिक कार्यक्रमो में उनका भाग लेना राज्य को प्रगतिशील नीति और कार्यक्रम उठाने के लिए बाध्य कर सकेगा। व्यक्तित्व के विकास के बारे मे एक बात और स्पष्ट कर देने की है कि आचार्यकुल अपने बौद्धिक दंभ का प्रदर्शन करनेवाले किसी विशिष्ट वर्ग का विकास नहीं चाहता और न तो वह समाज मे असमानता स्थापित करने के प्रयास को प्रोत्साहन देना चाहता है। वह मानता है कि असमानता समाप्त होनी तो चाहिए परन्तु परिणामस्वरूप

एकरूपता (यूनिफार्मिटी) भी नही स्थापित होनी चाहिए। इसी सन्दर्भ मे वैयक्तिकता के प्रश्न को समझना चाहिए और शैक्षणिक कार्यों का मुख्य आधार बनाना चाहिए।

उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए, शैक्षणिक प्रयत्नो को एक ऐसा आधार देना चाहिए जहाँ स्वतन्त्रता और अनुशासन के परस्पर विरोधी तत्वों का समन्वय किया जा सके। इस सिलसिले मे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि जो अनुशासन स्वतन्त्रता को सीमित करता है वह आज के समाज मे स्वीकृत नही होगा, परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि जिस स्वतन्त्रता का परिणाम अनुशासनहीन आचरण होगा, वह समाज के स्वस्थ विकास के लिए हानिकारक होगा। अतः इन प्रकटत दो परस्पर विरोधी तत्वों के समन्वय के लिए शिक्षा को प्रयास करना चाहिए जिससे विद्यार्थी और शिक्षक को, जीवन के मौलिक मानव-मूल्यों के पता लगाने मे सहायता मिले। यह सत्य है कि मूल्य स्थिर नही रह सकते, परन्तु अगर शैक्षणिक कार्य छात्र और अध्यापक मे स्वस्थ जीवन का सही दृष्टिकोण निर्माण करता है तो व्यक्ति को इस योग्य होना चाहिए कि वह किसी भी परिस्थिति में निश्चय कर सके—क्या सत्य है और क्या असत्य है। मूल्यो के सन्दर्भ म शिक्षा के दर्शन मे सत्य और अहिंसा को, जो कि भारतीय समाज की अक्षुण्ण चेतन-धारा रही है, शामिल कर लेना चाहिए। अनुशासन के सम्बन्ध म यह स्पष्ट होना चाहिए कि दमन का सभी रूप सभी स्तरो पर समाप्त होना चाहिए, क्योंकि सभी प्रकार के दमन से भय और विवशता पैदा होती है। आचार्यकुल को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि सभी स्तर पर शैक्षणिक कार्य हृदय-परिवर्तन (परसुएशन) द्वारा होना चाहिए, क्योकि हृदय परिवर्तन का परिणाम स्वस्थ ही नही बल्कि स्थायी भी होता है। स्वतन्त्रता और अनुशासन की समस्या के सम्बन्ध मे यह भी साफ समझ लेना चाहिए कि दड और पुरस्कार की नीति शैक्षिक कार्यों के सभी स्तर से पूर्ण रूप से हटा देनी चाहिए, क्योकि उससे एक अस्वस्थ वातावरण उत्पन्न होता है जो वैयक्तिकता को नहीं, बल्कि व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन देता है।

इस बात का भी ध्यान रहना चाहिए कि शिक्षा मे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक शिक्षण पर अत्यधिक बल देने की आधुनिक प्रवृत्ति व्यक्ति के विकास मे एकांगिता को जन्म देगी। इस प्रश्न का सम्बन्ध शिक्षा मे समन्वित विकास की समस्या से है। यह आवश्यक है कि विज्ञान और कला-विषयो का सफल ढग से समन्वय किया जाय। लेकिन यह समन्वय छिटपुट ढग से नही हो सकता। वास्तव मे यह आवश्यक है कि विज्ञान पढाते समय शिक्षक और विद्यार्थी कला-विषयों के

मूल्यों का पता लगा सकें और इसी तरह कला विषयों को पढ़ते समय उनमे यह क्षमता आनी चाहिए कि वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मूल्यों को समझ सकें। इसके अतिरिक्त विषयों के आपसी सम्बन्ध शिक्षा के सभी स्तर पर सामने लाये जायें क्योंकि इसके बिना उचित समन्वय सम्भव नहीं है।

आधुनिक शिक्षा म एक और ऐसी समस्या है जिसकी ओर से कोई आदमी उदासीन नहीं रह सकता, और वह है समय से पहले और अत्यधिक विशेषीकरण (स्पेशलाइजेशन) की समस्या। हमारा विश्वास है कि दसवें वर्ग तक प्रत्येक विद्यार्थी को सामान्य बुनियादी शिक्षा मिलनी चाहिए और सभी विशेषीकरण (स्पेशलाइजेशन) उसके बाद हो। विशेषीकरण की आवश्यकता को हम पूर्णत स्वीकार करते हैं, परन्तु हम यह भी महसूस करते हैं कि जिनके हाथों मे शिक्षा है, व विशेषीकरण के दोषों को भी समझें जिससे शिक्षण की प्रक्रिया मे आवश्यक पूरक तत्वो का सम्मिश्रण किया जा सके और अत्यधिक विशेषी-करण के दोषो मे बचा जा सके।

आधुनिक शिक्षा की एक बहुत बड़ी समस्या यह भी है कि विद्यार्थी और शिक्षक को जीवन के वास्तविक मूल्यो के शोध करने की दिशा मे किस प्रकार प्रवृत्त किया जाय ? क्या केवल नैतिक शिक्षा के दाखिल करने से इस उद्देश्य की प्राप्ति हो जायगी ? हम इस विचार के हैं कि जीवन-मूल्यो की खोज ऐसा प्रश्न नहीं है कि जो पारस्परिक धम और नैतिकता की शिक्षा देने से हल हो जाय। हम प्रार्थना के मूल्य को मानते हैं, क्योंकि प्रार्थना से जो वातावरण बनता है, उसमे जीवन के उच्च मूल्यों की ओर उन्मुख होना आसान हो जाता है। सारे ससार की शिक्षा के सामने यह प्रश्न है कि शिक्षा-पद्धति मे विज्ञान और अध्यात्म को एक दूसरे से कैसे जोड़ा जाय। हमको यह लगता है कि विद्यार्थी और शिक्षक मे मनुष्य और प्रकृति के प्रति चेतना और जागृति पैदा करके इस दिशा में शुरुआत की जा सकती है। ऐसा मनुष्य जो अपने वातावरण के प्रति सवेदनशील है, उसमे आध्यात्मिक चेतना का विकास होना अधिक आसान है। हम यहाँ यह कहना चाहेंगे कि अध्यात्म को धर्म का पर्याय नहीं समझना चाहिए। अध्यात्म की परिभाषा करनी ही हो तो यह हो सकती है कि जिस विश्व मे मनुष्य रहता है, उसकी परिस्थितियो के प्रति सवेदनशील विकास की एक प्रक्रिया और दूसरो की आवश्यकताओं की अनुभूति अध्यात्म है। जिन लोगो का शिक्षानीति से सम्बन्ध है, उन्हे इस समस्या का अध्ययन करना चाहिए और अच्छा यह होगा कि आचार्यकुल

एक उप समिति नियुक्त करे जो यह देखे कि इसे शिक्षा म व्यावहारिक रूप कैसे दिया जा सकता है।

भारतीय शिक्षा की एक बहुत कठिन समस्या विद्यार्थी और शिक्षक के बीच का बढता हुआ अलगाव है। आधुनिक लोकतन्त्रात्मक समाज मे शिक्षक और विद्यार्थी के बीच एक नया सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए। आज शिक्षा की प्रक्रिया म विद्यार्थी और शिक्षक दोनो को सक्रिय भाग लेना चाहिए। विद्यार्थी अब इस प्रक्रिया मे निष्क्रिय साझेदार नहीं रह सकता है। उसे शिक्षा के शैक्षणिक एव प्रशासकीय मामलो म सक्रिय साझेदार बनना है। समस्या को केवल इसी दृष्टिकोण से देखने से हम विद्यार्थी—उपद्रव की समस्या का समाधान कर सकते हैं जो कि हमारे शिक्षा ससार की जागतिक विशेषता हो गयी है।

हम यह कहना चाहेंगे कि प्रशासकीय सन्दर्भ म निहित स्वार्थ न काम करने लगे। शायद यह अच्छा होगा कि शैक्षणिक सस्था मे प्रिंसिपल का काम एक दो आदमी का न होकर शिक्षको को बारी बारी से दिया जाय जिससे *प्राचाय का पद रक्षित स्वार्थ न बन जाय।*

हम इस बात की भी आवश्यकता महसूस करते हैं कि परीक्षा की सकल्पना और पद्धति पर नये ढग से सोचने का समय आ गया है। आज हमारे सारे शैक्षिक प्रयास परीक्षापरक हो गये हैं और परीक्षा हमारी शैक्षिक सफलता की मापदड हो गयी है। इससे ज्ञान की खोज का पक्ष नितान्त गौण हो गया है। हमारे विद्यार्थी परीक्षाएँ पास कर लेते हैं परन्तु उनकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति सदा के लिए समाप्त हो जाती है। परीक्षा में विद्यार्थी की बुद्धि जाँचने का प्रयत्न करना चाहिए, स्मरणशक्ति जाँचने का नहीं। अगर यह दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया जाय तो परीक्षा भय और भ्रष्टाचार का वातावरण नही पैदा करेगी। विद्यार्थियो को परीक्षा के कमरे मे पुस्तक ले जाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। अगर परीक्षा बुद्धि की है, स्मरणशक्ति की नही, तो ऐसा करने म कोई क्षति नही है। हम यह सलाह देते हैं कि परीक्षा के सन्दर्भ मे आचार्यकुल को शीघ्रगामी और दूरगामी नीति के विषय में सोचना चाहिए।

हमे यह स्वीकार करना चाहिए कि आज हमारी शिक्षा उस सामाजिक वातावरण से, जिसम विद्यार्थी रहता है, बिलकुल विच्छिन्न है। हमको शैक्षिक प्रक्रिया और समाज की (नागरिक और ग्रामीण) आवश्यकताओ में सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। आज तो स्थिति यह है कि या तो छात्र मे विरोध की प्रवृत्ति पनपती है अथवा दुबल समजन की (ऐडजस्टमन्ट की)। हम ऐसा प्रयास करना चाहिए कि हम इन दोपो से बचें और विद्यार्थी मे ऐसी क्षमता

उत्पन्न करें कि वह समाज में रचनात्मक भूमिका अदा कर सके। हमारी शिक्षा पद्धति ऐसी हो जो उत्पादक व्यक्तित्व का विकास करे। आज की शिक्षा अनुत्पादक व्यक्तित्व विकसित करती है। हमें इस सिलसिले में बुनियादी शिक्षा के अच्छे कार्यक्रमों को सामने रखना चाहिए और विभिन्न दस्तकारियों को शैक्षिक प्रक्रिया से जोड़ना चाहिए। हर हालत में शिक्षक और विद्यार्थी जिस वातावरण में रहते हैं उस वातावरण के हर पहलू को हमें अपने शैक्षिक प्रयासों में दाखिल करना चाहिए। इस सम्बन्ध में 'प्रोजेक्ट' पद्धति को व्यापक पैमाने पर प्रारम्भ करने की योजना बनायी जा सकती है।

एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या शिक्षा का सम्बन्ध केवल विद्यार्थियों और शिक्षकों से है अथवा अभिभावकों से भी। आज यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षा विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक का सम्मिलित उत्तरदायित्व हो। प्रश्न यह है कि अभिभावक को शिक्षा के कार्यक्रम में सक्रिय सरकारदार कैसे बनाया जाय। इस प्रश्न से अभिभावकों को शिक्षित करने का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है जिससे उनमें शिक्षा के नये दृष्टिकोण की चेतना जागे। शायद प्रौढ़ शिक्षा की उस तरह की योजनाओं को जैसी पाश्चात्य देशों में प्रचलित है यहाँ भी लागू करना आवश्यक होगा। शिक्षा की ऐसी 'स्कीम' का सम्बन्ध केवल अक्षरज्ञान से नहीं, बल्कि शिक्षा के व्यापक पहलुओं से होगा। माता पिता के भागीदारी के सम्बन्ध में यह स्वीकार करना चाहिए कि पिता से अधिक माता का शिक्षा से सम्बन्ध होना चाहिए। विशेषत स्कूल के स्तर पर यह अधिक लाभदायक सिद्ध होगा।

शिक्षा के सम्बन्ध में एक प्रश्न ऐसा भी है जो महत्व का होते हुए भी आम चिन्तन धारा से अलग है और वह यह है कि क्या तरुण की विद्रोह-भावना समाज की प्रगति का एक स्वस्थ तत्व नहीं है! अगर ऐसा है तो शैक्षिक प्रक्रिया विद्रोह के इस तत्व को रचनात्मक दिशा कैसे दें जिससे विद्यार्थी अपनी तारुण्य शक्ति का अपव्यय व्यर्थ के आन्दोलनों में न करें।

यह सच है कि अगर तरुण अपनी विद्रोह शक्ति खो दें तो जिस समाज में वे रहते हैं, वह गतिशील नहीं हो सकेगा। आज का विद्यार्थी विद्रोह निष्प्रयोजन और निरर्थक होता है। परन्तु इन निष्प्रयोजन आन्दोलनों के पीछे विद्रोह की आग देखी जा सकती है। विद्रोह की यह प्रवृत्ति जगी कैसे रहे और कैसे उसे व्यापक आधार दिया जाय? विद्रोह की यह शक्ति पूरी शैक्षिक प्रक्रिया का भाग कैसे बनेगी? विनोबाजी ने शिक्षा पर अपने विचार प्रकट करते हुए यह सलाह

दी है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर इस विद्रोह-भावना का प्रशिक्षण, शैक्षणिक कार्य का एक अंग होना चाहिए।

शिक्षा के इस नये दृष्टिकोण (अप्रोच) के अनुरूप शिक्षा की प्रगतिशील प्रशासनिक संरचना कैसी होगी?

हमको भूलना नहीं चाहिए कि शैक्षिक प्रशासन का दकियानूसी (ब्यूरोक्रेटिक) ढाँचा शिक्षा के किसी भी प्रगतिशील दृष्टिकोण को समाप्त कर सकता है, अतः इससे बचना चाहिए।

वर्तमान स्थिति यह है कि विश्वविद्यालय-स्तर के नीचे की शिक्षा-संस्थाओं का प्रबन्ध तीन एजेंसियों द्वारा होता है—सरकार, स्थानीय स्वायत्त निकाय और स्वैच्छिक संगठन। जहाँ तक वित्त का सम्बन्ध है, राज्य न केवल अपनी संस्थाओं का खर्च पूरा करता है, जो कुल संख्या का केवल पाँचवाँ भाग है, बल्कि स्थानीय स्वायत्त निकायों और स्वैच्छिक संगठनों के स्कूलों का खर्च भी बहुत हद तक पूरा करता है। स्थानीय निकायों को लगभग ७५ फीसदी और स्वैच्छिक संगठनों को लगभग १५ फीसदी सहायता मिलती है। वास्तविकता यह है कि स्कूली शिक्षा पर खर्च होनेवाली अधिकांश राशि राजकीय और शिक्षा-शुल्क से प्राप्त होती है। हम सब जानते हैं कि स्थानीय निकायों और स्वैच्छिक संगठनों का प्रबन्ध दोषपूर्ण है, अतः उत्तर-स्वातंत्र्य काल में स्वभावतः शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग की जाती रही है। तर्क किया जाता है कि जब सरकार शिक्षा का लगभग पूरा खर्च देती ही है तो शिक्षा का राष्ट्रीयकरण क्यों नहीं कर दिया जाय।

परन्तु शिक्षा का राष्ट्रीयकरण लोकतंत्र के लिए घातक सिद्ध होगा, क्योंकि तब विचारों के 'रेजिमेन्टेशन' से बचा नहीं जा सकेगा, जिससे किसी भी कीमत पर बचना है।

नये प्रशासकीय 'अप्रोच' का आधार विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वायत्त निकायों और स्वैच्छिक संगठनों के कुप्रबन्धों से ही नहीं, सरकार से भी मुक्ति होनी चाहिए। हम विनोबाजी के इस सुझाव को स्वीकार करना चाहिए कि न्याय-विभाग की भाँति शिक्षा को भी प्रत्येक स्तर पर सरकारी नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए। शिक्षा को सभी प्रकार के नियंत्रण से स्वतंत्र होना चाहिए, यह नियंत्रण चाहे राज्य का हो चाहे स्थानीय निकायों का हो।

यह भी जरूरी है कि प्राथमिक शिक्षा स्थानीय निकायों के हाथ से ले ली जाय। जब तक नगरसभा या ग्रामसभा न बन जाय, शैक्षणिक कार्यों की देखभाल के लिए शिक्षा सम्बन्धी समितियाँ नियुक्त की जायँ। यह

स्पष्ट तौर से समझ लेना चाहिए कि जितना शीघ्र हो शिक्षा जनता की स्वैच्छिक संस्थाओं के हवाले की जायगी और सरकारी नियंत्रण से बाहर होगी, उतना ही अच्छा है। हम यह महसूस करते हैं कि शिक्षा के उच्च स्तर पर भी गवर्नरों को विश्वविद्यालय का चान्सलर बनाने की परम्परा छोड़नी चाहिए। उपकुलपतियों की भी नियुक्ति इस प्रकार होनी चाहिए कि उसमें शिक्षक और विद्यार्थी का अधिक हाथ हो। पाठ्यपुस्तकों पर राज्य का नियंत्रण नहीं होना चाहिए क्योंकि यह शिक्षा के सभी स्वस्थ सिद्धान्तों के विरुद्ध है। भिन्न स्तर पर शिक्षाशास्त्रियों की परामर्श देनेवाली समितियाँ होनी चाहिए, जिनसे परामर्श लिये बिना शिक्षा से सम्बन्धित न कोई परिवर्तन किये जायें और न कानून बनाये जायें।

यह वक्तव्य एक प्रारूप मात्र है और हम आशा करते हैं कि आचार्यकुल के वे सदस्य जो बुनियादी परिवर्तन लाना चाहते हैं, साथ मिलकर सोचेंगे, ताकि इस प्रारूप से आगे बढ़कर शिक्षा के सिद्धान्तों और उसके साधनों का एक घोषणापत्र तैयार हो सके और जनता के सामने रखा जा सके। ऐसा प्रयास शिक्षानीति में परिवर्तन लाने और कार्यक्रम बनाने में देश की सभी प्रगतिशील शक्तियों को, जो शिक्षा को व्यक्ति के लिए सृजनात्मक और समाज के लिए उत्पादक बनाना चाहती हैं, एकत्र कर सकता है। •

शिक्षा में क्रान्ति के लिए आचार्यकुल क्या करे ?

कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

समाज शिक्षा से ही बनता है। आजादी के बाद देश को जिस तरह की शिक्षा दी जानी चाहिए थी वह हम अब तक भी नही कर पाये हैं। किन्तु अब अधिक देर करना घातक होगा। शिक्षा म क्रान्ति की माँग को अब अनसुना नही किया जा सकता। आचार्यकुल इस माँग की पूर्ति का ही प्रयास है।

हम जिस शिक्षा म क्रान्ति की बात करते हैं उसमे आचार्यकुल समाज का मार्गदर्शक और अग्रणी होगा। इस प्रकार की शिक्षा के लिए शिक्षक के आचार्यत्व की ओर समाज की सम्मति तथा सहकार की आवश्यता होगी। गाधीजी के द्वारा बताये मार्ग पर चलकर ही शिक्षक ऐसा वाछित सहकार तथा आचार्यत्व प्राप्त कर सकता है। आज विनोबा ग्रामस्वराज्य का जो कार्यक्रम दे रहे हैं वह गाधीजी के द्वारा बताये मार्ग का सर्वोत्तम रूप है। आचार्यकुल इसे समझे और इसे अपना ले। समाज को इसे समझाये और सामाजिक क्रान्ति की दिशा में आगे बढे। समाज की सहमति और सहकार के बिना हम शिक्षा मे क्या, कोई भी क्रान्ति नही कर सकेंगे।

अत आचार्यकुल इस दिशा मे नीचे लिखे कदम उठाये

(१) लोक सम्पर्क :

आज शिक्षा और शिक्षक का समाज से सीधा और विधायक सम्बन्ध नहीं रह गया है। इससे वह समाज म उपेक्षित और अब असुरक्षित भी होता जा रहा है। अत शिक्षा व शिक्षक का समाज से सम्पर्क कराने में और दोनो को निकट लाने म आचार्यकुल माध्यम बने। आचार्यकुल शिक्षको को वाणी और लोक-समर्थन दोनो देगा। शिक्षकों को आचार्यकुल के माध्यम से शिक्षा के बारे म अपने विचारो को स्पष्ट और प्रखर बनाना चाहिए।

(२) लोक शिक्षण :

शिक्षा म कोई भी परिवर्तन करने स पहले समाज में उसके लिए बुनियाद बनानी होगी। आज ग्रामस्वराज्य के माध्यम से यह बुनियाद बनायी जा रही है। अत आचार्यकुल ग्रामस्वराज्य के 'लोक क्रान्ति काय' अपना ले। हर शिक्षक और विद्यालय अपने आस पास एक या अधिक गाँवों को 'दत्तक' रूप म लेकर यह काम करे। उनका यह कार्य उनकी कार्य क्षमता का मापदड माना जा सकता है।

(३) लोक सम्मति

ग्राम स्वराज्य का काम सतत चलनेवाला और विकासमान है। गाँव-गाँव म ग्रामसभाएँ बन जायँ, ग्रामकोष के माध्यम से ग्रामस्वावलम्बन का प्रारम्भ हो जाय, गाँव के सभी भूमिहीनो में गाँव की भूमि के बीसवें भाग का वितरण हो जाय और गाँव की सुरक्षा तथा शान्ति के लिए ग्राम शान्तिसेना का गठन हो जाय, यह पहला काम है। यह पहले पूरा करना होगा। तब यह देखना होगा कि ग्रामसभाएँ ठीक ढग से काम करने लग जायें। उनकी नियमित बैठके होती रहे, कार्यवाही लिखना, सर्वसम्मति से निर्णय और अमल करना, जैसे कामों म आचार्यकुल के सदस्य ग्रामसभाओं का प्रशिक्षण और मार्गदर्शन कर सकते हैं। समाज मे आज गाँव की प्रतिष्ठा नही रह गयी है किन्तु हमारी परम्परा और सस्कृति के लिए यह गम्भीर खतरा है। ग्रामसभा की गाँव समाज मे प्रतिष्ठा बने, आचार्यकुल को इसका सतत प्रयास करना होगा।

(४) लोक सहकार :

ग्रामसभा के माध्यम से गाँव का सर्वे करना, ग्राम-निर्माण की योजना बनाना, विकास के साधनो का चयन, सगठन और नियमन करना, गाँव के आयात निर्यात पर गाँवसभा का नियत्रण कायम हो जाय, वह उसकी समुचित व्यवस्था करने मे सक्षम हो जाय, और ग्रामकोष गाँव की अर्थ-व्यवस्था का केन्द्रबिन्दु बन जाय, इन सबके लिए ग्रामसभा को प्रशिक्षित करना तथा इसम उसका मार्गदर्शन करना आचार्यकुल का काम है। हर विद्यालय यह काम आसानी से कर सकता है।

(५) लोक सगठन :

सगठन के लिए उद्देश्यो मे सहमति आवश्यक होती है। यह शिक्षण की प्रक्रिया है। अत- इस काम के लिए गाँव को ही 'शिष्य' क रूप म मानकर चलना होगा। हमारा हर गाँव अपयाधुनिक विद्या का घर हो जाय, यानी हर गाँव विश्वविद्यालय का रूप ग्रहण कर ले, आचार्यकुल ऐसे प्रयोग करे। गाँव म, व्यसन-मुक्ति-अदालत हो और सफाई का सस्कार बने, निर्माण-मुक्तिकार्य में गाँव के शिक्षक, छात्रों और अभिभावकों का सहकार बने, इस सबसे लोक-सगठन का काम हो सकता है।

(६) लोक नीति

देश मे प्रचलित राजनैतिक और प्रशासनिक प्रणाली को भी हमें तत्काल ही बदलना होगा। दल्गत राजनीति हमारी प्रतिभा और स्वभाव के विपरीत है।

अत दलविहीन राजनीति या लोकनीति का चलन करना होगा। हम दलमुक्त सरकार और सरकार मुक्त गाँव चाहते हैं। किन्तु यह तभी हो सकता है कि जब गाँव मे दलविहीन संगठन-प्रणाली का विकास हो, और विधान-सभा तथा ससद के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति चालू होकर उनमे मतदाता परिषदो के माध्यम से दलो के बजाय ग्रामसभाग्रो का प्रतिनिधित्व हो तथा चुनाव 'लडने' की चीज न होकर 'करने' की चीज हो। साथ-साथ मतदाता को प्रतिनिधि वापस बुलाने का हक हो। आचार्यकुल इस सबके लिए जनता को प्रशिक्षित करे। कालेजो और विश्वविद्यालयों से छात्र-सघो और छात्र-संसदों में तदर्थ कार्य-प्रणालियों को विकसित कर और प्रशिक्षण देकर तुरन्त ही यह काम आरम्भ किया जा सकता है।

(७) नया समाज·

किसी भी देश की शिक्षा-पद्धति का लक्ष्य समाज का निर्माण करना ही है। हमारी शिक्षा का लक्ष्य भी यही है। हम जिस तरह का समाज बनाना चाहते हैं उसके लिए उचित शिक्षा-प्रणाली का विकास और प्रचलन करना आचार्यकुल का काम है। शिक्षा सरकारमुक्त हो और शिक्षा मे आमूल परिवर्तन हो, आचार्यकुल यह माँग करे और खुद अपने गाँव से यह कार्य तत्काल आरम्भ कर दे।

यदि हमने ऊपर बताये कदमो के आधार पर अपने कार्य को सगठित किया तो हम उस समाज की रचना कर सकेंगे जिसे हम सर्वोदय-समाज कहते हैं। यह समाज मानव-स्वभाव के अनुकूल और 'सहज' होगा।

क्या शिक्षक और छात्र-समुदाय तथा शिक्षा-विभाग इस जिम्मेदारी को उठाने को तैयार है? क्या कोई क्षेत्र लेकर हम ऐसे प्रयोग कर सकते हैं? कर सके तो बहुत अच्छा होगा। यदि शिक्षा-विभाग शिक्षको को इसके लिए आवश्यक सुविधा दे सके तो अच्छा होगा। शिक्षा-विभाग तदर्थ सुविधा का प्राविधान तो आसानी से कर सकता है। आचार्यकुल इसके लिए माँग करे। यह शिक्षा-विभाग और सरकार का नैतिक तथा कानूनी दायित्व है कि शिक्षा को समाज-निर्माण का माध्यम बनाया जाय। शिक्षा मे क्रान्ति का यह प्रतिफल होगा। शिक्षण-पद्धति और शिक्षा-प्रणाली मे परिवर्तन एक दूसरा पहलू है और उसका औचित्य भी केवल इसी सन्दर्भ से सिद्ध हो सकेगा।

कैसे करें?

(१) स्वाध्याय

हर गाँव मे, जहाँ शाला है वहाँ शिक्षक को स्थायी रूप से रहना चाहिए।

वह अपने छात्रों और गाँव के अभिभावकों के साथ रोज घटा-आध घटा प्रात. या साय बैठकर कुछ स्वाध्याय करे। इसमें विभिन्न धर्मों के मूल ग्रंथों और महापुरुषों से सम्बन्धित साहित्य का प्रमुख स्थान रहे। यह कार्य रोजाना की प्रात' साय की प्रार्थनाओं के साथ भी जोड़ा जा सकता है। यदि इन प्रार्थनाओं को इस तरह से आयोजित किया जाय कि उसमे सभी धर्मावलम्बी भाग ले सकें तो बहुत ही अच्छा होगा। मौन प्रार्थनाएँ भी चल सकती हैं।

(२) श्रम

हर शिक्षक और छात्र रोजाना अभिभावकों को साथ लेकर या खुद घटा-दो घटा का श्रमदान करे। यह श्रमदान शाला के खेत पर, जो उसके पास होना ही चाहिए, या गाँव के किसानो के खेत पर कुछ पारिश्रमिक लेकर या बिना उसके भी किया जा सकता है। पारिश्रमिक केवल बड़े किसानो से ही लिया जाय और छोटे किसानो के खेत को केवल शिक्षण-प्रक्रिया मानकर किया जाय। इस श्रम का पारिश्रमिक ग्रामकोष मे जमा हो और उसका हिसाब रखा जाय।

(३) सस्कार

रोजाना या साप्ताहिक प्रभातफेरियाँ निकाली जायें, विशिष्ट अवसरों पर जुलूस और प्रदर्शन हो। ये विशिष्ट अवसर धार्मिक पर्व या राष्ट्रीय दिवस हो सकते हैं या स्थानीय पर्व अथवा त्योहारो, जैसे होली, दिवाली, दशहरा, ईद मुहर्रम या ऐसे ही अन्य अवसर हो सकते हैं। विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित पर्व सब धर्मों के लोग मिलकर मनावें यह प्रथा गाँव मे कायम की जाय और पुष्ट की जाय। छात्रों से दीवालो पर सुवचन, नारे और उद्घोष लिखाये जायें और गाँव मे फिजूलखर्ची रोकने के उपाय किये जायें तथा मेलों आदि के अवसर पर सेवा-सहायता कार्य भी सगठित किये जायें।

(४) सगठन :

ग्रामस्वराज्य के कार्य के लिए हर रोज हर शिक्षक और छात्र कुछ नियमित समय दे। समर्पण पत्र भराना, बीघा-कट्ठा पहले स्वयं बाँटना और फिर दूसरों को लेकर बँटवाना, ग्रामकोष में पहले अपना नियमित अशदान करके दूसरों से दिलवाने का काम करना और उसकी वसूली मे ग्रामसभा की मदद करना, यह सब काम शिक्षक अपने चुने हुए विद्यार्थियो के साथ कर सकता है।

(५) शिक्षण -

शाला के कार्यक्रम को लोकशिक्षण का माध्यम बना दिया जाय। गाँव के अनपढ़ो के लिए 'रात्रि शालाएँ, चलायी जायें और इसमें स्वय शिक्षक कम लगें,

छात्रों को ही अधिक लगायें। छात्रों की परीक्षा में उनके इस काम का भी विचार किया जाय। इन रात्रिशालाओं के लिए साधन सामग्री जुटाने का काम ग्रामसभा या सरकार करे।

(६) साधना

चाहे कुछ हो जाय, किन्तु शाला से अवांछित और अनावश्यक अनुपस्थिति न हो, परीक्षा और पढ़ाई में प्रामाणिकता और निष्पक्षता हो तथा अधिकारियों को खुश करने की गरज से कोई काम न किया जाय, शिक्षक और शिक्षा विभाग ग्रामसभा से मिलकर इस तरह का एक संकल्प करे। साप्ताहिक गोष्ठियाँ कीर्तन और मिलन का रिवाज भी गाँव में चलाया जा सकता है।

प्राथमिक शाला से लेकर हाई स्कूल तक हर गाँव में इस तरह का कार्यक्रम उठाया जा सकता है। इसे शिक्षण का अनिवार्य भाग माना जाना चाहिए और शिक्षा विभाग उसके लिए आवश्यक सुविधा तथा अवसर प्रदान करे तो अच्छा होगा। हाईस्कूलों और अन्य बड़े स्कूलों में तो इनके साथ साथ और भी अनेक काम किये जा सकते हैं जैसे कि गाँव के कच्चे माल से कोई पक्का माल बनाने के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो सकती है। यानी उसे शिक्षण-कर्मशाला का रूप दिया जा सकता है। हर शाला ग्रामीण या सामाजिक जीवन के लिए प्रकाशस्तंभ का काम करे यह इष्ट है।●

ग्रामदानी गाँव की शिक्षण-योजना

रामसूर्ति

गाँव ही विद्यालय

१ ग्रामदान का लक्ष्य ग्राम-स्वराज्य है। इसलिए ग्रामदानी गांव का शिक्षण ऐसा होना चाहिए जो उसे ग्रामस्वराज्य की दिशा में ले जाय। ग्रामदान गाँव को एक इकाई मानता है। गाँव आज इकाई है नहीं, उसे इकाई बनना है। इकाई के रूप में उसे शिक्षित, संगठित और विकसित करना है। इसलिए ग्रामदानी गाँव की शिक्षण व्यवस्था गाँव के किसी निवासी को या गाँव के जीवन के किसी पहलू को, यहाँ तक की किसी भी क्रिया प्रक्रिया को, छोड़कर चल नहीं सकती। ऐसी स्थिति में अनिवार्य रूप से ग्रामदानी शिक्षण के लिए पूरा गाँव ही विद्यालय बन जाता है तथा उस गाँव के पुरुष, स्त्री, प्रौढ़, युवक, बच्चे, सब उस विद्यालय के विद्यार्थी बन जाते है। ऐसे विद्यालय गाँव की खेती बारी, पशु, वृक्ष, उद्योग धन्धे, स्वास्थ्य-सफाई, पर्व, उत्सव, लड़ाई-झगड़े शिक्षण के अभ्यासक्रम के अन्तर्गत आ जाते हैं। हर क्रिया शिक्षण का विषय बन जाती है। गाँव का शिक्षण ही जीवन बन जाता है। उत्पादन-क्रिया, प्रकृति और सामाजिक वातावरण, नयी तालीम में अनुबन्ध के ये जो तीन स्रोत हैं, ग्रामदानी गांव में भरपूर मिल जाते हैं।

२ जिन ग्रामदानी क्षेत्रों में सघन रूप से काम चल रहा है उनमें कुछ चुने हुए गाँव, ऐसे गाँव जिनमें ग्रामदान की शर्तें पूरी हो गयी हो और चेतन नेतृत्व उभर रहा हो, इस प्रकार के समग्र प्रयोग के लिए लिये जा सकते हैं।

३. ग्रामस्वराज्य मूलक समग्र शिक्षण के अभ्यासक्रम के तीन मुख्य पहलू हो सकते हैं

१ उत्पादन वृद्धि
२ शोषण मुक्ति
३ संस्कार-निर्माण

१ उत्पादन वृद्धि के अन्तर्गत गाँव का पूरा कृषिक औद्योगिक (एग्रो-इण्डस्ट्रियल) विकास आ जाता है। इसमें विकास के नये साधन, नयी प्रक्रिया, क्रमिक योजना, तकनीकी प्रशिक्षण, हिसाब किताब, पूँजी का संग्रह, श्रम का संयोजन, ग्रामीण इंजीनियरिंग, संगठन, कला कौशल, भवन-निर्माण, स्वास्थ्य-सफाई तथा प्रकाशित साहित्य को पढ़ने समझने भर की साक्षरता आदि सभी शामिल हैं।

समग्र शिक्षण के क्रम मे ऐसी स्थिति आनी चाहिए और आ सकती है कि गाँव मे श्रम का काम श्रम-सहकार से चले और हर श्रमिक कारीगर बन जाय। तब यह कठिन नही होगा कि विकास का हर कार्य शिक्षा का एक 'प्रोजेक्ट' बन जाय और शैक्षणिक ढग से उसे पूरा किया जाय। ऐसे 'प्रोजेक्ट' मे श्रमिक मात्र श्रमिक न रहकर साझेदार बनाया जा सकता है। अगर यह दृष्टि मान लें तो विकास और शिक्षण को मिलाकर गाँव के लिए एक विस्तृत अभ्यासक्रम बनाया जा सकता है। गाँव के जो प्रौढ काम करने मे योग्य हो उन्हें उत्पादन की क्रियाओ और यत्रो के शास्त्रीय पहलुओ का ज्ञान देकर शिक्षक बनाया जा सकता है और उन्हीं के द्वारा शिक्षण का क्रम जारी रखा जा सकता है। समग्र शिक्षण के लिए गाँव की प्रतिभा का इस्तेमाल करना ही होगा। स्त्रियो को भी उत्पादक हुनर सिखाना चाहिए। उनका उपयोग उत्पादक कार्य, गृहवाटिका, खेती और उद्योग, तीनो क्षेत्रो मे हो सकता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियो के लिए गृह-व्यवस्था और शिशु-पालन का ज्ञान देने के लिए अनिवार्य व्यवस्था होनी चाहिए।

गाँव की उत्पादन-वृद्धि मे गाँव के बच्चो का, चाहे वह स्कूल मे पढते हो या नही, उपयोगी रोल हो सकता है। वे बोआई, कटाई, और सफाई आदि के अभियानो मे शरीक हो सकते हैं। गाँव के अभियानो के अलावा स्कूल मे उनका अलग अभ्यासक्रम भी हो सकता है।

शोषण-मुक्ति

शोषण मुक्ति के लिए कानून, लोक-निर्णय तथा अहिंसक प्रतिकार, तीनो से काम लेना पडेगा। कानून के लिए लोकमत तैयार करना, लोक शिक्षण का एक मुख्य काम है। लेकिन गाँव के भीतर ग्रामदानी, ग्रामस्वराज्य सभा सही निर्णय ले और अपने निर्णयो मे परिवार-हित, जनहित, वर्ग-हित के स्थान पर सर्व-हित को ध्यान मे रखकर अन्तिम व्यक्ति को प्राथमिकता दे, इसके लिए अनुकूल मानस बनाना शिक्षण का ही काम है। ग्रामदान मे भूमि-जैसे उत्पादन के मुख्य साधन पर ग्राम-स्वामित्व स्थापित हो जाने के कारण निजी स्वामित्व से पैदा होनेवाले झगडों और छीना-झपटी की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। मानस-परिवर्तनो के सन्दर्भ मे दो चीजो की आवश्यकता है—एक उचित बाह्य व्यवस्था और दो करुणचित्त-निर्माण, स्वायत्त ग्रामसभा (अटानोमस विलेज असेम्बली) दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व (पार्टीलेस विलेज रेप्रेजेन्टेशन) पुलिस-अदालत-निरपेक्ष व्यवस्था तथा सम्मत अथवा सर्वानुमत निर्णय—के जो ग्राम-स्वराज्य के मूल तत्व हैं—द्वारा ऐसी ग्रामव्यवस्था की कल्पना की गयी है जो

दण्डशक्ति से अधिक ग्रामीणों की सहकार शक्ति से चलेगी और गाँव को ग्राम-स्वराज्य के सन्दर्भ में एक सगठित, स्वायत्त, समन्वित इकाई के रूप में विकसित कर सकेगी। इसके लिए ग्रामस्वराज्यसभाओं के पदाधिकारियों तथा ग्राम-शान्ति सैनिकों के निरन्तर शिक्षण की *आवश्यकता होगी। ऐसा शिक्षण* शिविर पद्धति से होगा। लेकिन बाह्य व्यवस्था चाहे जितना निर्दोष बना ली जाय चित्त निर्माण के बिना वह टिकाऊ नहीं होगी। चित्त निर्माण का काम अधिक सूक्ष्म और कठिन है। उसके लिए शोषण मुक्त जीविका के साथ साथ जीवन मूल्य बदलने चाहिए तथा एक नया चरित्र विकसित होना चाहिए। इतना सूक्ष्म परिवर्तन शिक्षण के सिवाय अन्य किसी प्रक्रिया द्वारा नहीं हो सकता।

प्रतिकार

शोषण मुक्ति के सन्दर्भ में प्रतिकार का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। सरकार की ओर से या निहितस्वार्थों की ओर से समाज में जिस तरह की अनीति और अत्याचार होता है *उसका प्रतिकार करने की* वृत्ति और शक्ति *समाज में* आनी चाहिए, और प्रतिकार के सफल प्रयास का अभ्यास भी होना चाहिए। *युवकों में विधायक विद्रोह वृत्ति हो, नागरिकों में अधिकारियों द्वारा* अधिकार के दुरुपयोग के मुकाबिले खड़ा होने की शक्ति हो यह स्थिति आनी चाहिए। कैसे आयेगी? अहिंसक प्रतिकार-शक्ति शिक्षण और सगठन से ही विकसित हो सकती है। गाधीजी ने कहा भी है कि सगठन अहिंसा की कसौटी है। ग्रामदानी शिक्षण को विरोध, विद्रोह और प्रतिकार को भी अपने अभ्यास-*क्रम में रखना होगा। इन विषयों का अभ्यास शान्तिपूर्ण लोकतंत्र तथा* शान्ति की शक्ति से समाज परिवर्तन के लिए आवश्यक है।

सस्कार-निर्माण

हमारा चित्त सब का नहीं है। हमारा परम्परा से बना हुआ चित्त परिवार और जाति का चित्त है, ऊँच नीच और धनी-गरीब में भेद-भाव का चित्त है। खेती की व्यवस्था इस ढग से विकसित हुई है कि उसमें स्वामियों की परस्पर *प्रतिद्वंद्विता और श्रमिकों का शोषण निहित है। स्वतंत्रता के बाद बढ़ती हुई* शहरी अर्थनीति और दलों की राजनीति ने गाँवों के जीवन में पुरानी दरारों के साथ नयी दरारें जोड़ी हैं। इन दरारों की पृष्ठभूमि में लोकतंत्र, समाजवाद, या सर्वोदय की बातें कही जा रही हैं। लेकिन इनकी सफलता इस बात पर निर्भर है कि समाज इनके मूल्यों को स्वीकार करे, तथा व्यक्तिगत और सामू-*हिक जीवन उन मूल्यों से अनुप्राणित हो।*

व्यक्ति की महत्ता, विचार की शक्ति की स्वीकृति, सर्व के हित मे अपना हित, परस्पर सहमति से निर्णय, अन्तिम व्यक्ति को विकास मे प्राथमिकता, आदि ऐसे मूल्य है जिनकी स्वीकृति के बिना समाज-परिवर्तन का कोई अर्थ नही रह जाता। वास्तव मे ग्रामदानी गाँव मे ग्रामदान के बाद का सारा कार्य सास्कृतिक क्रान्ति का कार्य है, आर्थिक विकास उसकी सहज निष्पत्ति है, और शिक्षण उसकी प्रक्रिया। नयी तालीम मे कल्पना भी यह है कि विकास शिक्षण की निष्पत्ति हो यानी भौतिक जीवन सत्य-अहिंसा जैसे सामाजिक, सास्कृतिक मूल्यो से अनुप्राणित हो। ये मूल्य नागरिक के चित्त मे सस्कार बनकर बैठ जाय। केवल सरकार के कानून मे न लिखे रह जायें। ऐसे सस्कार विकसित करना, व्यक्ति और समाज को सतत ऊँचाई की ओर ले जाना, एक चुनौती है जिसे ग्रामदान की नयी तालीम को स्वीकार करना है।

गाँव मे चल रहे विद्यालय

ग्रामदान के कारण नयी तालीम के दोनों पहलू समान और तात्कालिक महत्व के हो गये हैं। तालीम की सम्पूर्ण योजना में लोक-शिक्षण और बाल-शिक्षण मे से किसी को गौण मानकर टाला नही जा सकता। लेकिन लोक शिक्षण के लिए नये साधन और माध्यम विकसित करने पडेंगे। बाल शिक्षण के लिए गाँवो मे प्राइमरी से हायर सेकेंडरी तक के विद्यालय गाँवो मे मौजूद है; उन्हे समग्र शिक्षण योजना का अग बनाना पडेगा। कैसे? इस दिशा मे निम्नलिखित कुछ कदम सुझाये जा सकते हैं —

(१) ग्रामदानी गाँवो मे नयी तालीम के प्रयोग की दृष्टि से सघन क्षेत्र लेने चाहिए। जिन ब्लाको मे पुष्टि-कार्य के क्रम मे प्रखण्डस्वराज्य सभाएँ बन गयी हैं उनमे शिक्षण की सम्पूर्ण योजना लागू करनी चाहिए। लेकिन ऐसा करने के पहिले इस बात का ध्यान रखना होगा जो दो-चार गाँव समग्र विकास और शिक्षण के लिये जायें उनके विद्यालय मे ऐसे शिक्षक चुनकर रखे जायें जो इस कार्यक्रम मे सक्रिय रुचि रखते हो और अपना पूरा रोल अदा करने को तैयार हों। ऐसे अग्रणी गाँवो में जो काम हो उसके अलावा पूरे ब्लाक के विद्यालयो मे ग्रामस्वराज्य की दिशा मे अनुकूल वातावरण होना चाहिए। जिस विद्यालय मे शिक्षक प्रधानाध्यापक, और मैनेजर प्रतिकूल हो उन्हे शिक्षण-योजना मे तभी शरीक किया जाय जब वे अपनी इच्छा जाहिर करें। जहाँ तक सरकारी स्कूलो का सम्बन्ध है, उनके ब्लाक स्थित अधिकारी तो अनुकूल होने ही चाहिए और उन्हे सरकार की ओर से अधिकार मिला होना चाहिए कि निर्णय हो जाने पर दिनचर्या, अभ्यास-क्रम, परीक्षा-पद्धति आदि

में तत्काल परिवर्तन कर सके, और एक सीमा के अन्दर खर्च कर सके। किसी हालत में इस *कार्यक्रम को लाल फीताशाही का शिकार नहीं होने* देना चाहिए।

(२) इतनी सतर्कता बरतने के बाद निम्नलिखित क्रम में कदम उठाये जा सकते हैं :—

(क) प्रखण्डस्वराज्यसभा के अन्तर्गत एक विकास समिति गठित की जाय, उसकी एक उपसमिति के रूप में "शिक्षण उपसमिति" बनायी जाय। शिक्षण-उपसमिति अपने क्षेत्र में ग्रामदान के सन्दर्भ में नयी तालीम को लागू करने के लिए जिम्मेदार हो।

(ख) समग्र प्रयोग के लिए ऐसे गाँव, जिनकी पुष्टि में कोई कमी न हो, चुन लिये जायें, उनमें बैठने के लिए शिक्षक का आवाहन किया जाय। यदि कोई सरकारी शिक्षक तैयार हो तो उसे सरकार से प्राप्त किया जाय। यह शिक्षक गाँव की प्रतिभा (विलेज टेलेन्ट) विकसित करेगा, और नये साथी शिक्षक तैयार करेगा। शिक्षण के साधन जुटाने और आवश्यक व्यवस्था करने में ग्रामस्वराज्य-सभा से और प्रखण्डस्वराज्य सभा से हर सम्भव सहायता की अपेक्षा रहेगी। प्रारम्भिक कदम के तौर पर वह ज्ञानचर्या के लिए घंटे भर का *विद्यालय चलायेगा (इसका अभ्यासक्रम बनाया जा सकता है)*।

(ग) विद्यालयों के शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, मैनेजरों आदि की गोष्ठियाँ हों, और *प्रयोग का लक्ष्य तथा पद्धति अच्छी तरह समझायी जाय। उनका पूर्ण* समर्थन ही नहीं, सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जाय।

(घ) अनुकूल विद्यालयों में *तरुण-शान्तिसेना (तथा किशोर-शान्तिसेना)* और आचार्यकुल की इकाइयाँ गठित की जायँ। ऐसी इकाइयाँ अपने लगभग एक मिल की परिधि में स्थित ग्राम-स्वराज्यसभाओं के कार्य में सक्रिय दिलचस्पी लें।

(च) ऐसे सभी विद्यालयों में विद्यालय-समितियाँ गठित की जायँ जिनमें विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों का प्रतिनिधित्व हो। इन विद्यालय-समितियों की सलाह से विद्यालयों की भीतरी व्यवस्था का नियमन-संचालन हो—तत्काल कम-से-कम उन क्षेत्रों में *जिनका सीधा सम्बन्ध विद्यार्थियों से* आता है।

(छ) *इतनी भूमिका बन जाने पर* जो विद्यालय-समिति चाहे वह अपने विद्यालय में परिवर्तन ला सकती है। परिवर्तन की दिशाएँ ये हो सकती हैं :

(१) विद्यालय समय से खुले और कायदे से पढाई हो।

(२) विद्यार्थी और शिक्षक अपनी सम्मिलित बैठक मे तय करें कि वे विद्यालय मे दलगत राजनीति, जातिवाद या सम्प्रदायवाद नही घुसने देंगे।

(३) विद्यालय और शिक्षक अपने-अपने लिए आचार-सहिता (कोड आव कान्डक्ट) बनायें और उसका पालन करें। आचार-सहिता की अवज्ञा के मामले विद्यालय-समिति के सामने लाये जायें। विद्यालय-समिति के निर्णय सर्व-सम्मति से हो।

(४) लोकतत्र के सन्दर्भ में शान्तिपूर्ण विरोध तथा अवज्ञा के शिक्षण की व्यवस्था की जाय ताकि तरुणो की विद्रोह-शक्ति विधायक समाज-निर्माण के काम आय।

(५) उत्पादक श्रम की व्यवस्था की जाय। जमीन हो तो खेती के लिए तरुण शान्तिसेना, किशोर-शान्तिसेना और आचार्यकुल की टोलियाँ बनायी जायें। उत्पादन मे खेती का खर्च काटकर ५० प्रतिशत श्रमिकों को तथा २५ प्रतिशत खेती के विकास-कोष मे डाला जाय। इसी तरह एक विद्यालय 'वर्कशाप' कायम की जाय जो पास-पडोस के क्षेत्र के लिए खेती-सिचाई मे 'सर्विसिंग सेन्टर' का काम करे तथा सामान्य इस्तेमाल की चीजो की मरम्मत करे और उत्पादन करे।

(६) इस प्रकार के उत्पादक श्रम के प्रारंभिक अभ्यास और अनुभव के आधार पर धीरे-धीरे ऐसी स्थिति लायी जाय कि हर कक्षा शुरू मे एक घटा बढ़ते बढ़ते आधा समय उत्पादन कार्य करे और बाकी समय पढ़ाई करे।

(७) जब ग्रामदान ग्रामस्वराज्य की दिशा मे इतना बढ़ चुकेगा कि स्वायत्त ग्रामसभाएं सक्रिय हो जायेंगी, दलमुक्त ग्राम प्रतिनिधित्व की भूमिका बन जायगी, क्षेत्र पुलिस अदालत की जरूरत छोड़ने मे प्रगति कर चुकेगा और शिक्षण को सरकार के नियत्रण से मुक्त करने की माँग होने लगेगी तब समय आयेगा कि विद्यालयों मे स्वावलम्बन और समन्वय (सेल्फ सफिशियेंसी और कारिलेशन) के आधार पर नयी तालीम का शुभारम्भ हो सके। तब उस ओर ले जानेवाली प्रवृत्तियो और सुधारों से भूमिका बनानी होगी।

(३) ग्रामदान-प्राप्ति के बाद पहला काम है पुष्टि। जबतक नये मूल्यो से प्रेरित और अनुप्राणित नयी लोकशक्ति का उदय नहीं होगा तब तक शिक्षण का काम यही होना चाहिए कि वह लोकशक्ति सगठित करने मे सहायक हो। ग्रामस्वराज्य सभाओ तथा प्रखण्डस्वराज्यसभाओं के रूप मे लोकशक्ति के सगठित हो जाने पर ही लोक-शिक्षण के साथ प्रत्यक्ष बाल-शिक्षण की दिशा मे ठोस कदम उठाया जा सकता है।•

---

९ अगस्त का कार्यक्रम

तरुण शान्ति सेना ने 'शिक्षा मे क्रान्ति' को अपने कार्यक्रमों मे विशेष स्थान दिया है। इस क्रान्ति-अभियान का श्रीगणेश ९ अगस्त, '७१ से किया जा रहा है। आप सभी छात्रों, शिक्षको, अभिभावको, शिक्षाशास्त्रियो, तथा नागरिको से सादर अनुरोध है कि ९ अगस्त के निम्न कार्यक्रमों मे सक्रिय योगदान प्रदान करने की कृपा करें:—

- वर्तमान शिक्षा मे परिवर्तन के लिए देश के छात्र, शिक्षक, अभिभावको के हस्ताक्षर लिये जायँ।
- शिक्षा मे क्रान्ति के लिए गुजरात, महाराष्ट्र, दिल्ली, बिहार, उत्तरप्रदेश की राजधानियों मे माँग-जुलूस निकाले जायँ तथा आमसभा की जाय।
- शिक्षा मे क्रान्ति का घोषणा-पत्र वितरित किया जाय।
- शिक्षामंत्री को हस्ताक्षर-फार्म तथा घोषणा-पत्र दिया जाय।
- 'शिक्षा मे क्रान्ति' के पदक (बैज) बिक्री किये जायँ।
- गोष्ठियो तथा आमसभाओं के माध्यम से शिक्षा मे क्रान्ति के लिए जनमत तैयार करने की दिशा मे प्रयास किया जाय।
- शिक्षा मे क्रान्ति-अभियान के लिए भावी कार्यक्रम तथा उसके लिए आवश्यक सगठन गठित किये जायँ।

विशेष जानकारी के लिए निम्नलिखित पते से पत्र-व्यवहार किया जाय।

तरुण शान्तिसेना
राजघाट, वाराणसी–१

सम्पादक मण्डल :
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १९
अंक : १२
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

जुलाई '७१

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ: रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : जुलाई, '७१
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

खादी भण्डारों पर १ अगस्त से रियायती दर पर सर्वोदय साहित्य की बिक्री

सर्व सेवा संघ, खादी ग्रामोद्योग कमीशन, खादी ग्रामोद्योग प्रमाण पत्र समिति, गांधी स्मारक निधि, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के मिले-जुले प्रयास से एक करोड़ की साहित्य-प्रसार-योजना बनी है।

खादी भण्डारों पर १ अगस्त १६७१ यानी तिलक पुण्य तिथि के दिन से इस योजना के अन्तर्गत रियायती दर से साहित्य प्राप्त किया जा सकता है।

विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए :

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी-१

आवरण मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी-१